पण्डितमधुसूदनओझा-ग्रन्थमाला-६

पण्डितमधुसूदनओझा-विरचित:

इन्द्रविजय:

(भारतवर्षीयार्योपाख्यानम्)

हिन्दीभाषानुवादसहित:

पण्डित-मधुसूदन-ओझा-ग्रन्थमाला—६

पण्डितमधुसूदनओझा-विरचित:

इन्द्रविजय:

(भारतवर्षीयार्योपाख्यानम्)

हिन्दीभाषानुवादसहित:

प्रधानसम्पादक:
डॉ. गणेशीलाल: सुथार:
निदेशक:
पण्डितमधुसूदनओझाशोधप्रकोष्ठ:
संस्कृतविभाग:, जयनारायणव्यासविश्वविद्यालय:, जोधपुरम्।

सम्पादक:
डॉ. कलानाथ: शास्त्री
अध्यक्ष:
राजस्थानसंस्कृताकादमी, जयपुरम्।

अनुवादिका
डॉ. (श्रीमती) लक्ष्मी शर्मा
अध्यक्षा —' संस्कृतविभाग:
राजस्थानविश्वविद्यालय:, जयपुरम्।

प्रकाशक:
निदेशक:, पण्डितमधुसूदनओझाशोधप्रकोष्ठ:
संस्कृतविभाग:, जयनारायणव्यासविश्वविद्यालय:
जोधपुरम्
१९९७ ई०

प्रकाशक :
निदेशक
पण्डित मधुसूदन ओझा शोधप्रकोष्ठ
संस्कृत-विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय
जोधपुर-३४२ ००१ (राजस्थान)

Published by :
Director
Pt. M. S. Ojha Research Cell
Department of Sanskrit
J.N. Vyas University
Jodhpur-342 001 (Rajasthan)

प्रथम संस्करण
दिसम्बर, १९९७

First Edition
December, 1997

मूल्य : रु. ३९०.००

Price : Rs. 390.00

मुद्रक :
चीनू प्रकाशन
बी-३५, शास्त्री नगर
जोधपुर (राजस्थान)

Printed by :
Cheenu Prakashan
B-35, Shastri Nagar
Jodhpur (Rajasthan)

प्राप्तिस्थान :
निदेशक
पण्डित मधुसूदन ओझा शोधप्रकोष्ठ
संस्कृतविभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय
जोधपुर-३४२ ००१ (राजस्थान)

Can be had of :
Director
Pt. M. S. Ojha Research Cell
Department of Sanskrit
J.N. Vyas University
Jodhpur-342 001 (Rajasthan)



वेदविद्यासमुद्धारकस्वर्गीयपण्डितमधुसूदनशर्म्ममैथिलाः

पुरोवाक्

यह अत्यधिक प्रसन्नता का विषय है कि जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर के पण्डित मधुसूदन ओझा शोधप्रकोष्ठ द्वारा प्रकाशित की जाने वाली वेदविज्ञानसम्बन्धी ग्रन्थमाला के छठे पुष्प के रूप में विद्यावाचस्पति समीक्षाचक्रवर्ती पण्डित मधुसूदन ओझा के 'इन्द्रविजय:' (भारतवर्षीयार्योपाख्यान) नामक ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशन सम्पन्न हो रहा है। इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण सन् १९३० में प्रकाशित हुआ था और द्वितीय संस्करण वि.सं. २००९ में। दीर्घ काल से यह ग्रन्थ वेदमनीषियों तथा वेदविज्ञान में अभिरुचि रखने वाले पाठकों के लिये दुर्लभ हो गया था। भारतवर्ष के प्रागैतिहासिक स्वरूप और स्थिति के अध्ययन की दृष्टि से अत्यन्त प्रामाणिक और महत्त्वपूर्ण यह ग्रन्थ संस्कृत के विद्वानों, इतिहासज्ञों एवं भूगोलवेत्ताओं के लिये ही नहीं, जनसामान्य के लिये भी पठनीय और मननीय है, इसलिये इसका हिन्दी अनुवादमय संस्करण अत्यधिक अपेक्षित और प्रतीक्षित था। इसके द्वितीय संस्करण के सम्पादक और भूमिकालेखक ने हिन्दी अनुवाद की महती आवश्यकता की ओर इंगित किया है। अत: शोधप्रकोष्ठ द्वारा इस ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद सहित बृहत्काय संस्करण के प्रकाशन से वेदमनीषियों, इतिहासविदों, शोधकर्ताओं और वेदविज्ञान के पाठकों के अत्यधिक लाभान्वित होने के कारण इसकी सार्वजनिक उपयोगिता सिद्ध हो सकेगी।

इस ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद और भूमिकाओं के अवलोकन से मुझे यह ज्ञात हुआ है कि अभिनव बादरायण व्यास दिव्य-विभूति पण्डित ओझा ने अपनी आर्ष दृष्टि से त्रिविध त्रिलोकी, भारतवर्ष के नामकरण के हेतु, हिन्दुस्तान शब्द का भारत के एक भाग के लिये प्रयोग, सिन्धु नद को विभाजक मान कर बृहत्तर (बहुविस्तृत) भारत के पूर्वी और पश्चिमी दो भेदों की स्थापना द्वारा सीमानिर्धारण, सिंहल द्वीप के लंका होने के भ्रम का खण्डन और लक्कदीव तथा मालदीव की लङ्का के रूप में स्थापना, संहितामन्त्रों के निर्माणकाल में लिपि होने की स्थापना, धर्म-स्वरूप, विद्याओं के प्रभेद, आर्यों की मौलिक भारतीयता की स्थापना और वैदेशिकता का खण्डन, भारतीय राष्ट्र पर वैदेशिक अनार्य दासों के आक्रमण, देवेन्द्र द्वारा दस्युओं का निग्रहण, इन्द्रविजय के उपलक्ष्य में प्रमह नामक महोत्सव का आयोजन आदि विषयों का प्रबलतम प्रमाणों और तर्कों से विवेचन कर आश्चर्यजनक और रहस्योद्घाटक तथ्य प्रस्तुत किये हैं। इस ग्रन्थ ने पण्डित ओझा को बृहत्तर भारतवर्ष के प्राचीनतम इतिहास के रहस्यवेत्ता मनीषी के रूप में स्थापित किया है। भौगोलिक सीमाओं के सूक्ष्म विवेचन से यह ज्ञात होता है कि पण्डित ओझा भूगोलशास्त्र में भी पारङ्गत थे। समाजशास्त्रीय दृष्टि से भी यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें प्राचीनयुगीन धर्म-परिवर्तन की घटनाओं और परिस्थितियों का भी उल्लेख प्राप्त होता है। पण्डित ओझा वैदिक वाङ्मय में विज्ञान की स्थापना के लिये तो अद्वितीय विद्वान् थे ही, वेद में इतिहास की स्थापना करने वाले मनीषियों में भी वे अग्रगण्य थे। वेद में इतिहास न मानने वाले विद्वद्वर्ग की मान्यता पण्डित ओझा के 'इन्द्रविजय:' और

'जगद्गुरुवैभवम्' आदि ग्रन्थों से सर्वथा भ्रान्त सिद्ध हो जाती है। प्राचीन भारत के अन्य इतिहासज्ञ तो ४००० वर्ष पूर्व का ही इतिहास खोजने में समर्थ हो सके हैं, परन्तु महर्षि ओझा ने दिव्य दृष्टि से उसकी अपेक्षा अतिप्राचीन इतिहास का अन्वेषण कर दिखाया है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन से वेदविदों, प्राचीन भारत के इतिहासविदों और भूगोलवेत्ताओं को अपनी मान्यताओं पर पुनर्विचार तथा पण्डित ओझा की मान्यताओं के अध्ययन और परीक्षण के लिये सुन्दर अवसर प्राप्त हुआ है जिसका, मुझे आशा है, अधिकतम लाभ उठाने में वे प्रवृत्त होंगे। हम लोग राजस्थानी भाषा में ईश्वर के लिये 'हे तीन त्रिलोकी रा नाथ' इस सम्बोधन का भी प्रयोग करते हैं, परन्तु इस प्रयोग का रहस्य पण्डित ओझा के इस ग्रन्थ में वर्णित तीन प्रकार की त्रिलोकी (दिव्य, शारीर और भौम) को समझने से ही मुझे पहली बार ज्ञात हुआ है। जनसामान्य ही नहीं, विद्वज्जगत् में भी यही धारणा प्रचलित है कि स्वर्ग दिव्य ही होता है, परन्तु पण्डित ओझा ने तीन प्रकार की त्रिलोकी के विवेचन में यह स्थापित किया है कि भौम स्वर्ग भी था।

इस ग्रन्थ के सम्पादक डॉ. कलानाथ शास्त्री तथा हिन्दी-अनुवादकर्त्री डॉ. लक्ष्मी शर्मा हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं। पण्डित मधुसूदन ओझा शोधप्रकोष्ठ के निदेशक डॉ. गणेशीलाल सुथार ने ग्रन्थमाला के प्रधान सम्पादक के रूप में आदि से अन्त तक पर्यवेक्षण कर इस बृहत्काय ग्रन्थ को विद्वानों के समक्ष लाने में सफलता प्राप्त की है। शोधप्रकोष्ठ की प्रगति के लिये डॉ. सुथार की निरन्तर सक्रियता प्रशंसनीय है। शोधप्रकोष्ठ पण्डित ओझा के शेष ग्रन्थों के अनुवाद सहित अथवा अनुवाद और समीक्षात्मक टिप्पणी सहित संस्करणों के प्रकाशन के लिये कृतसंकल्प है।

जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय के लिये यह अत्यधिक गौरव का विषय है कि वेदविद्या के उद्धारक पण्डित मधुसूदन ओझा के वैदिक विज्ञान-विषयक अध्ययन और अनुसन्धान के लिये भारतवर्ष के ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व के विश्वविद्यालयों में यह प्रथम और एक मात्र शोधपीठ राजस्थान सरकार द्वारा यहाँ स्थापित है। जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय संस्कृतविभाग के प्रथम अध्यक्ष और पण्डित ओझा के अनन्य श्रद्धावान् शिष्य स्वर्गीय स्वामी सुरजनदास जी की कर्मभूमि रहा है। उन्होंने जीवन के अन्तिम क्षण तक वेदविज्ञान की साधना कर अपने गुरुवर्य पण्डित ओझा के प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि अर्पित की थी। मेरी यही हार्दिक अभिलाषा है कि शोधप्रकोष्ठ की गतिविधियों के फलस्वरूप वेदविज्ञान के सूर्य का आलोकमण्डल विश्व में परिव्याप्त हो।

दिनाङ्क १४.११.१९९७
(कार्तिक पूर्णिमा)

प्रोफेसर (डॉ.) श्यामलाल
कुलपति
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय,
जोधपुर (राजस्थान)

PREFACE

Our happiness knows no bounds while placing the treatise entitled 'Indravijayaḥ' (इन्द्रविजयः) alias 'Bhāratavarṣīyāryopākhyānam' (भारतवर्षीयार्योपाख्यानम्) along with Hindi translation published under Pandit Madhusudan Ojha Granthamālā in the hands of scholars, researchers and common readers interested in the Vedavijñāna propounded by Vidyāvācaspati Madhusudan Ojha, the versatile genius and 'a human storehouse of Vedic wisdom and philosophy'. Its Hindi rendering has been accomplished by Dr. (Mrs.) Laxmi Sharma, Head of the Department of Sanskrit at the University of Rajasthan, Jaipur. Her endeavour of translating this voluminous work is commendable. We are thankful to Dr. Kalanath Shastri, Chairman, Rajasthan Sanskrit Academy, Jaipur and former Director, Language Department, Govt. of Rajasthan, Jaipur for undertaking the editing of this important work on the Vedavijñāna. He has highlighted the salient features and importance of the work in his learned introduction.

The book was earlier published twice, but was devoid of translation in any language. It is noteworthy that the first edition was published during the lifetime of Pandit Ojha in 1930 under the supervision of his disciple, Pandit Adyadatta Thakur. The work gained popularity by leaps and bounds and was prescribed as a textbook in the Acharya syllabus of Sanskrit Colleges as is evident from Dr. Shastri's introduction to the present edition. The revised second edition accompanied with the introduction by Pandit Giridhar Sharma Chaturvedi was brought out in V.S. 2009 under the editorship of Pandit Ojha's son Pandit Pradyumna Sharma after the first edition had gone out of print. The second edition, too, had gone out of print long before. The then His Highness of Alwar Sir Tej Singh Bahadur, who had granted financial assistance for the publication of the second edition, desired to see that the work should see the light of the day along with Hindi translation for its wider circulation and greater utility, but his desire could not be translated into reality for the reasons beyond control of the editor. Pointing to the paramount importance of the work, Pandit Giridhar Sharma Chaturvedi, disciple of Pandit Ojha, had rightly stressed the necessity of its translation in his introduction to the second edition as follows-

"इस ग्रन्थ का मनन कर पुराणों का अन्वेषण करने से पुराणों का समन्वय भी इन विषयों में प्रतीत होगा। ऐतिहासिकों के लिये अन्वेषण की यह एक बहुत बड़ी सामग्री प्रस्तुत की गई है। इस ग्रन्थ का हिन्दी, अंग्रेजी भाषाओं में अनुवाद परमावश्यक है जिससे इसकी उपयोगिता और भी विशेष रूप से हो सकती है। ...... भारत वासियों के स्वरूप-परिचय

और स्वाभिमान की जागृति के लिये इस ग्रन्थ का अधिकाधिक प्रचार ईश्वर से वाञ्छनीय है, इति।"

Pandit Ojha's another disciple Shri Naval Kishore Kankar, categorising the work as Vedic historical kāvya (वैदिकमैतिहासिककाव्यम्), had acclaimed its excellence as follows – "यद्यपि सन्ति कानिचित् वैदिकेतिवादसम्बन्धीनि पुस्तकानि, तथापि कतिपयेष्वंशेषु तान्यप्यतिशेतेऽदसीयं पुस्तकमिति कथयतान्नो न स्पृशत्यन्तरमतिशयोक्तिगन्धलेशोऽपि। इदं हि वैदिकेतिवादैरशेषैः सर्वविधश्लेषैः प्रसादादिगुणैरतितरामाकर्षति अविनीतमपि मानसं रसास्वादचपलस्य रसिकस्य।"[१]

The treatise 'इन्द्रविजयः' pertains to the subdivision entitled 'Divyavibhuti' of the Brahmavijñāna which is the first and foremost of the four divisions devised by Paṇḍit Madhusudan Ojha for encompassing the whole Vedic literature and philosophy. It sheds flood of light on the history of ancient greater India of the period prior to 4000 years which has remained beyond the range and reach of the historians and archaeologists who mainly depend on material findings and lack in the penetrating insight and acumen which Pandit Ojha had acquired by diving deep in the ocean of the vedic literature. There are divergent opinions of scholars about the historicity in the Vedas. This treatise of Pandit Ojha proves historicity in the Vedas beyond doubt. Here I deem it proper to quote verbatim the view of Pandit Motilal Ṣhastri, the devout and distinguished disciple of Pandit Ojha, who firmly ratified the historicity in the Vedas upheld by his revered Guru–

"अपनी शब्दवेदभक्ति को अणुमात्र भी कम न करते हुए हमें यह कहना ही पड़ता है कि ब्राह्मणवेद की कौन कहे, स्वयं मंत्रवेद भी ऐतिह्य-मर्यादा से शून्य नहीं है। अपौरुषेयभावानुगता भ्रान्ति ने अपनी स्वरूपरक्षा के लिए इस एक दूसरी भ्रान्ति को जन्म दे डाला है। अपौरुषेयता की रक्षा के लिए ही वेद-भक्तों को आगे जाकर अपना यह मन्तव्य बनाना पड़ा कि वेद क्योंकि अपौरुषेय है, ईश्वरप्रणीत है, ईश्वर के निःश्वास हैं, अत एव इनमें इतिहास (मानव-चरित्र) नहीं हो सकता।'त्रिकालज्ञ ईश्वर प्रजापति अपने से पीछे होने वाले सूर्य-चन्द्र-पृथ्वी-अग्नि-इन्द्र-वरुण आदि का तो प्रतिपादन कर सकता था, किन्तु मानवचरित्र इसे विदित नहीं था', इस हेतु का हम किस आधार पर समन्वय करें, यह आज तक समझ में न आ सका। सहयोगियों की अपौरुषेयभक्ति का अभ्युपगमवाद से अभिनन्दन करते हुए क्या उनसे यह नहीं कहा जा सकता कि - भगवन्! मानवचरित्र के समावेशमात्र से भय करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि वह उत्तरभावी सृष्टिपर्वों का निरूपण करता हुआ अपनी कृति का अनादित्व सिद्ध कर सकता है तो उत्तरभावी मानवचरित्र के समावेश से भी इसकी कृति के अपौरुषेयत्व पर कोई आक्रमण नहीं हो सकता। इतिहास मान लेने पर भी विश्व का कोई भी विद्वान् वेद की स्वतः प्रमाणता में सन्देह नहीं कर सकता।"[२]

---

१. वेदाङ्क of संस्कृतरत्नाकर, Jaipur, V.S. 1993, p. 256

२. उपनिषद्विज्ञानभाष्यभूमिका – द्वितीय खण्ड, पृष्ठ ३७०

Further, Pandit Ojha has established the duality of ancient greater India having two parts – The Eastern and The Western with the river Indus as dividing line by putting forth fourteen proofs –

"पौरस्त्यं पाश्चात्यं भारतवर्षं द्विधाकृतं भवति।
अनयोरस्ति विभाजक एष नदः सिन्धुरिति विद्यात्॥"[१]

The eastern and the western parts of Bhārata were called Āryāvarta and Aryāyana respectively –

"आर्य्यावर्तः शब्दो भवति यथा भारते पूर्व्ये।
पाश्चात्येऽपि तथास्मिन् आर्य्यायणः शब्द ईराने॥"[२]

He has also pointed out that the eastern Bhārata should be known as ऐन्द्र and the Western Bhārata as वारुण –

"तत्सिन्धुना द्विभक्तं तत्रैन्द्रं भारतं पूर्वम्।
तत्पश्चिमं तु भारतमस्तीदं वारुणं विद्यात्॥"[३]

Lankā has been established as distinct from Sinhal refuting the twelve views as confounding opinions. His conclusive view is as follows – "तथा च सिध्यत्यन्यः सिंहलद्वीपोऽन्यश्च लङ्काद्वीप इति युक्तं भागवतादिषु सिंहललङ्कयोः पार्थक्येनाभिधानम्। अयुक्तं च सिंहलस्य लङ्काभिधानम्।"[४]

The scholars are divided over whether the Aryas were of Indian origin or came from outside as invaders. Pandit Ojha in this treatise has repudiated the view upholding Āryas as foreigners. He opines as follows –

"ओंकार एष येषामविशेषान्मन्त्र आराध्यः।
येषां भिन्नमतानामप्यत्रास्त्येकबन्धुत्वम्॥१॥
येषां शास्त्रं वेदश्चातुर्वर्ण्ये विभाजितो धर्मः।
धेनुर्गङ्गाऽऽराध्या तेषां देशोऽस्ति भारतं वर्षम्॥२॥
आर्य्यास्तेऽमी उदिताश्चातुर्वर्ण्ये विभाजिता लोकाः।
तेषां स्वोऽयं देशो न तु परदेशादिहागता एते॥"[५]

The ancient etymons of the prevalent names of various countries, rivers, places and persons have been provided. Their old geographical sites too have been discussed. It was Pandit Ojha alone who had for the first time discussed the secret of the usage of the word 'श्रुति' in such a great detail. He has advanced

---

१. इन्द्रविजयः, पृष्ठ २२

२. वही, पृष्ठ, २३

३. वही, पृष्ठ, ३१५

४. वही, पृष्ठ, १५६

५. वही, पृष्ठ, २५८

eight proofs to establish that there existed the Brāhmī (Daivī) Script when the hymns of the Vedas were composed by the seers. Thus it can be said in a nutshell that Pandit Ojha has discovered hitherto unrevealed and astonishing facts dispelling the darkness of ignorance about the history of ancient greater India having two parts-the eastern and the western.

The treatise entitled 'Jagadguruvaibhavam' and 'Indravijayaḥ' are inseparably interlinked from the point of view of right comprehension of their subject-matter. Or it can be said precisely that both the treatises are complementary to each other. Hence the study of one without that of the other remains incomplete. The former had already been brought out along with' Hindi translation in 1994. Pandit Kedarnath Sharma Sahityabhushan, one of the disciples of Pandit Ojha, emphasizing the profound utility of 'Indravijayaḥ' for the study of 'Jagadguruvaibhavam' in his introduction to the latter, had also felt the necessity of translation of the former as early as 1943 in the following words – "श्री जगद्गुरुवैभव के पढ़ने में इन्द्रविजय का बड़ा उपयोग है। इस कारण मर्मज्ञ लोग उस ग्रन्थ का अवलोकन करके इस ग्रन्थ को देखेंगे तो बड़ा लाभ होगा। यद्यपि उसका भाषा में अभी अनुवाद नहीं हो पाया है किन्तु प्रमाण वगैरह सब उसमें लिख दिये गये हैं। उनको उसी ग्रन्थ में देखना चाहिये।" (p.8.) Thus the publication of the work 'Indravijayaḥ' along with Hindi translation was a longfelt desideratum which Pandit Madhusudan Ojha Research Cell of J.N.Vyas University, Jodhpur has been able to fulfil.

I express my deep sense of gratitude to Professor Dr. Shyamlal, Vice-Chancellor, J.N. Vyas University, Jodhpur for having written a learned 'Foreword' for this edition. His keen interest and inspiration have boosted the academic progress of the Research Cell. It is hoped that the publication of this important work will be of great value to the world of scholars and researchers.

December 1, 1997

(Dr. G.L. Suthar)
Director
Pandit Madhusudan Ojha Research Cell
Department of Sanskrit
J.N. Vyas University,
Jodhpur (Rajasthan)

विषयानुक्रमः

इन्द्रविजयः सानुवादः

भारतपरिचयाख्यः प्रथमः प्रक्रमः

विषयाः	पृष्ठसंख्या

विषयाः	पृष्ठसंख्या
उभयोः परितोषार्थमैन्द्रवारुणभारतयोर्मध्ये वसिष्ठनिवासः	८६
इतिहासोपसंहारे जरथुस्त्राभिज्ञानम्	८७
अरणानां मूजवतां महावृषाणां बाह्लिकानां च जरथुस्त्रमतानुयायित्वम्	८९
विरोधपरिहाराय ब्रह्मणा कृतः पूर्वपश्चिमभेदेन भारतवर्षस्य द्वेधा विभागः	९०
अथ भारतवर्षस्य भूवृत्तचतुर्थांशत्वाख्यानं चतुर्थं प्रमाणम्	
पृथिवीमण्डलस्य पद्मत्वाभ्युपगमः	९१-९४
भूपद्मस्य चतुःपत्रत्वप्रतिपत्तिः	९२
भारतवर्षाद् बहुपूर्वस्थानामुपद्वीपानां भारतीयत्वाख्यानं भारतवर्षस्य **बहुविस्तृतप्रदेशत्वे पञ्चमं प्रमाणम्**	९४-१००
इन्द्रद्वीपनागद्वीपसौम्यगान्धर्ववारुण कशेरुमद्गभस्तिमत्ताम्रपर्णकुमारिका-ख्यानां नवद्वीपानां भारतवर्षीयत्वेनाख्यानाद् भारतवर्षस्य बहुविस्तृतत्वम्	९५-१००
सिन्धोः पश्चिमस्थानां देशानां भारतीयदेशत्वाख्यानं षष्ठं प्रमाणम्	१००-११३
गान्धारमद्रपारदपह्लवकाम्बोजशकयवनादिदेशानां भारतीयोदीच्यदेशत्वम्	१००
गान्धारमद्रौ	१०१
सगरनिर्वासिताः धर्मभ्रष्टाः पञ्चगणाः	१०२
पारदाः	१०४
पह्लवाः	१०४
कम्बोजाः	१०५
शकाः	१०६
यवनदेशाभिज्ञानम्	१०८
यूनानदेशीयेषु यवनशब्दप्रचारस्यार्वाचीनत्वम्	१०९
हैलेयासुरजातीनां ग्रीकायिनाम्ना पुराप्रसिद्धानां निवासाभिजनदेशविशेषे ग्रीसशब्दयवनशब्दोपचारारम्भकालविचारः	११०
गान्धारतः पश्चिमोत्तरेषु मद्रेषु यज्ञवेदाध्यापकस्य काप्यमहर्षेर्निवासः सप्तमं प्रमाणम्	११३-११५
वाजसनेयश्रुतौ काप्यमहर्षेर्मद्रदेशवासित्वाख्यानम्	११३
मद्रदेशाभिज्ञाने नवीनमतप्रत्याख्यानम्	११४
यवनदेशस्य भारतवर्षीयपश्चिमसीमात्वाख्यानमष्टमं प्रमाणम्	११५-११८
अद्यत्वे यवनशब्दस्य अर्बदेशप्रान्तविशेषे यमनदेशे संकोचः	११५

विषयाः	पृष्ठसंख्या
तुरुष्कदेशस्य भारतवर्षीयोत्तरसीमात्वाख्यानं द्वादशं प्रमाणम्	१३६-१३७
पश्चिमसमुद्रस्य भारतवर्षीयपश्चिमसीमात्वाख्यानं त्रयोदशं प्रमाणम्	१३८-१३९
ईरानविलोचिस्तानाफगानस्तानादिशब्दानां शासनक्रान्ति-भेदमूलकत्वेनाव्यवस्थितत्वात् तेषां गणितव्यवस्थितभारतवर्ष-शब्दप्रयोगप्रतिरोधकत्वासम्भवश्चतुर्दशं प्रमाणम्	१३९-१४०
४. **उपद्वीपप्रसङ्गः**	१४१-१४४
जम्बूद्वीपस्याष्टोपद्वीपभेदाः	१४१
५. **लङ्काप्रसङ्गः**	१४५-१५९
द्वादशविप्रतिपत्तिभिः सिंहलद्वीपस्य लङ्कात्वभ्रमखण्डनम्	१४५
१. भारतीयशास्त्रे सिंहललङ्कयोः पृथक्त्वेनाख्यानम्-	१४५
२. निरक्षे लङ्काशब्दस्य निरूढत्वात् साक्षस्य सिंहलस्य लङ्कात्वाभावः	१४६
३. उज्जयिनीसदेशस्य लङ्कात्वसिद्धान्तात् पञ्चभिर्देशान्तरांशैः पूर्वस्य सिंहलस्य लङ्कात्वाभावः	१४६
४. उज्जयिनीतो लङ्कायास्त्रयोविंशांशान्तराख्यानाच्चतुर्विंशांशान्तरस्य सिंहलस्य लङ्कात्वाभावः	१४७
५. महेन्द्रगिरितो लङ्कायाश्चतुःशतकोशान्तरितत्वाख्यानाच्छतार्द्ध-प्रायक्रोशान्तरितस्य सिंहलस्य तत्त्वाभावः	१४७
६. लङ्कायाश्चतुः शतक्रोशदीर्घत्वाख्यानात् पंचत्रिंशदधिकशतक्रोशदीर्घस्य सिंहलस्य लङ्कात्वाभावः	१४८
७. लङ्कायां गङ्गाया अनुक्तेर्महाबलिगङ्गायुक्तस्य सिंहलस्य लङ्कात्वाभावः	१४९
८. सिंहलस्य रावणविहारस्थानतया तत्राशोकवाटिकादिप्रसिद्धावपि तस्याः लङ्कात्वसिद्धौ प्रामाण्याभावः	१४९
९. सिंहलाभिप्रायेण प्रयुक्तस्य टापरोवेनशब्दस्य ताम्रपर्णशब्दापभ्रंशतया टापूरावणत्वकल्पनाया असारत्वम्	१५०
१०. रामेश्वरसिंहलयोरन्तरतो गिरीणां प्राकृतत्वात् प्लवमानसेतुस्तम्भकल्पानाया असारत्वम्	१५०
११. कालेन लङ्कायाः समुद्रगर्भे प्रवेशादनुपलब्धावपि अलङ्काया लङ्कात्वाख्यानं साहसमात्रम्	१५१
१२. लङ्काभग्नावशिष्टप्रान्तयोर्लक्कदीवमालदीवयोरद्याप्युपलब्धत्वात् तद्भिन्नस्य सिंहलस्य लङ्कात्वाख्यानं साहसमात्रम्	१५३

विषयाः	पृष्ठसंख्या

विषयाः	पृष्ठसंख्या

विषयाः | **पृष्ठसंख्या**

आर्यदासीयाख्यो द्वितीयः प्रक्रमः

विषयाः	पृष्ठसंख्या

विज्ञानभवनं तृतीयः प्रसङ्गः

दस्युनिग्रहश्चतुर्थः प्रक्रमः।

विषयाः	पृष्ठसंख्या

विषयाः	पृष्ठसंख्या

इन्द्रविजयाभिनन्दनं पञ्चमः प्रक्रमः

विषयाः	पृष्ठसंख्या
वासुक्रः	५२०
वसुक्रः	५२१
अष्टादंष्ट्रो वैरूपः	५२१
शतप्रभेदनो वैरूपः	५२२
बृहदुक्थो वामदेवः	५२३
वत्सः काण्वः	५२४
श्रुष्टिगुः काण्वः	५२४
मेध्यः काण्वः	५२४
गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ	५२५
नोधा गौतमः	५२५
अङ्ग औरवः	५२५
कृतज्ञतास्तुतिसूक्तपाठानन्तरमिन्द्रेण कुत्साय वेशभूषापरिच्छदैः स्वसारूप्यं सोमसग्धिश्चेति द्विविधं प्रीतिप्रसाददानम्	५२७
देवेन्द्रस्य पुनः स्वर्गे गमनम्	५२८
सभाविसर्जनावसरे जिगमिषुं देवेन्द्रं प्रति विश्वामित्रस्य प्रणयवचनम्	५२८
इन्द्राकुत्सयोर्वेषादिसाम्यकृतसारूप्ययोः स्वर्गाय सहप्रस्थानम्	५३०
स्वर्गे विजयाभिनन्दनीयः प्रमहः	५३१
इन्द्रस्तुतिविधानाय नृमेधपुरुमेधाभ्यां मरुद्गणमभिलक्ष्य मन्त्रपाठः	५३२
नृमेधपुरुमेधकृता देवेन्द्रस्तुतिः	५३३
पुनर्नृमेधपुरुमेधकृतं देवेन्द्राभिवर्णनम्	५३४
तिरश्चीर्द्युतानो वा	५३५
बभ्रो वैखानसः	५३६
सप्तगुः स्वर्णरः	५३६
अभिगरप्रतिगरनियमः	५३८
सप्तगुमुखेन देवानामभिगरे देवेन्द्रस्य प्रतिगरः	५३८
स्वर्गप्रमहेण दस्युविजयनीयेन्द्रचरितपूर्णताख्यानम्	५४०
उदयनीयं परिशिष्टाख्यानम्	५४१
दस्युभिः सारस्वतसूर्यापहरणम्	५४१
सीरियादेशे बालवकभवननिर्म्माणम्	५४२
सरस्वत्याख्यब्राह्मीसूर्यप्रतिनिधित्वेनाब्राह्मीसूर्यप्रतिष्ठापना	५४३
पूर्वभारतस्य पश्चिमसीम्नि सूर्येऽस्तमिते पश्चिमभारतस्य	

॥ **ग्रन्थसम्पूर्तिः** ॥

चित्रपरिलेख-सूची



भूमिका

आज जब हम प्राचीन भारत का इतिहास छात्रों को पढ़ाते हैं तो सिंधुघाटी सभ्यता से या वेदों से प्रारम्भ करते हैं। क्या उससे पूर्व भारत का इतिहास नहीं था? यदि वेद एक विकसित सभ्यता की परिणति हैं तो अवश्य ही उनसे पूर्व भी हमारा कुछ इतिहास रहा होगा। वह कैसा था? हम अपना इतिहास कहां से शुरू करें? इस बात पर पिछली एक सदी से बहुत शास्त्रार्थ हुए हैं कि वेदों में इतिहास है या नहीं। वेदों में इन्द्र के द्वारा पुरों का भेदन, दाशराज्ञ (सुदास् आदि दस राजाओं के) युद्ध, शुनःशेप, हरिश्चन्द्र, याज्ञवल्क्यादि के संवाद आदि अनेक घटनाएं वर्णित हैं। क्या वह इतिवृत्तात्मक घटनाओं का उल्लेख है? लगता तो यही है पर इसमें एक कठिनाई आती है। हम वेदों को अनादि और अपौरुषेय मानते हैं। वे ईश्वर की वाणी हैं और नित्य हैं। "अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा" (महाभारत)। यदि यह मानें कि उनमें कोई घटनाएं वर्णित हैं तो यह सिद्ध होगा कि इस वर्णन से पहले कुछ घटनाएं हुई थीं अर्थात् ये ऋचाएं उन घटनाओं के बाद की हैं तो फिर वेद अनादि कैसे हुए?इस दृष्टि से वेदों में इतिहास मानते ही ईश्वरकर्तृत्व और स्वयंभूत्व स्वतः खण्डित हो जाता है। परंपरा तो वेद को अपौरुषय ही मानती रही है पर बहुत से मनीषियों ने जो बुद्धिवादी और तार्किक थे, उसे एक दृष्टि से पौरुषेय माना है, कुछ ने अनादि नहीं माना है। उनके मत में तो इतिहास होना वेदों में संगत बैठ जाता है। कणाद ने कहा है " बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे", "ब्राह्मणेषु संज्ञाकर्म सिद्धिलिंगम्"। वाक्य तभी बन सकते हैं जब कोई बुद्धिपूर्वक उनकी रचना करे। तब वे अपौरुषेय कैसे हुए? जब हम ब्राह्मणों को भी वेद मानते हैं और वे ऐतरेय, तैत्तिरीय आदि नाम से ऋषियों द्वारा निर्मित बताये गये हैं तो स्वतः वे ऋषिकर्तृक हुए न? क्यों न उन्हें ऋषिप्रणीत मान लें? किन्तु हमारी परंपरा तो उन्हें अनादि और अपौरुषेय मानती है। जिन ऋषियों को जो विद्या सिद्ध हुई उनका नाम उसके साथ जुड़ गया। ऋषि केवल मंत्रद्रष्टा कहे जाते हैं, निर्माता नहीं। फिर उनमें इतिहास कैसे बताया जा सकता है? या तो उन्हें पौरुषेय ही मान लो या उनमें से इतिहास निकाल लो। इस गुत्थी को सुलझाना बड़ा कठिन है।

क्या वेदों में इतिहास है?

आर्य -समाजियों ने जो वेदों को अनादि, सृष्टि से पूर्व अवतीर्ण और ईश्वर की प्रथम वाणी मानते हैं, जोर देकर यह सिद्ध किया है कि वेदों में इतिहास बिल्कुल नहीं है। इन्द्र का, सुदास् आदि राजाओं का जो उल्लेख है वह देवताओं का, ईश्वर का या विभिन्न वैज्ञानिक तत्त्वों का प्रतीकात्मक वर्णन है, इतिहास नहीं। महर्षि दयानन्द ने इसका पूरा विवेचन करते हुए यहां तक सिद्ध किया है कि गंगा यमुना आदि

का जो उल्लेख है वह भी नदियों के नाम नहीं हैं बल्कि इडा पिंगला आदि नाड़ियों के नाम हैं। किन्तु इन्द्र आदि के युद्धवर्णन, ऋषियों के संवाद, शुनःशेप आदि की गाथाएं, देवों के अनेक पराक्रम-वर्णन तथा वेदों के अन्य स्थल ऐसे हैं जिनमें इतिहास माने बिना काम नहीं चलता। इस पर विद्वानों ने बहुत विचार मंथन किया है और गुत्थी को सुलझाने के अनेक मार्ग निकाले हैं। हजारों पृष्ठ इस पर लिखे गये हैं। स्वयं महर्षि जैमिनि को यह द्वन्द्व खला था। वे यह मानने के बहुत पक्षधर हैं कि वेद नित्य हैं अतः उनमें मनुष्यचरित्र का उल्लेख नहीं है। पर कहीं राजाओं आदि के नाम पाये जाते हैं तो वह क्या है? वे कहते हैं वह अलग ही चीज है। किसी का नाम सूर्यनारायण हो तो वह सूर्य थोड़े ही हो गया। उनके दो सूत्र बहुत उद्धृत हैं —पूर्वपक्ष का " अनित्यदर्शनाच्च" और सिद्धान्त का "परन्तु श्रुतिसामान्यमात्रम्"। वेदों के भाष्यकार इन दोनों मार्गों के बीच भटकते रहे हैं। शबरस्वामी ने कहा है कि बबरः प्रावाहणिः (जिसे सामान्यतः प्रवाहणपुत्र बबर का व्यक्तिनाम माना जाता है) आदि नाम जहाँ दिखलायी दें उन्हें वायु आदि तत्त्वों का वाचक मानो। बबर किसी का नाम नहीं है ब-ब करके बहने वाली वायु का नाम है। सायण ने भी वेदों को नित्य माना है पर भाष्य करते हुए अंगिरा को केवल तत्त्व न मानकर ऋषि (वंशपुरुष) भी मान लिया है। इन गुत्थियों को सुलझाने का एक मार्ग तो यह निकाला गया कि किसी अन्य कल्प में ये नाम और घटनाएं रही होंगी, उनका उल्लेख अब किया गया है किन्तु इससे भी वेदों का अनादित्व खण्डित हो जाता है।

दूसरा दिलचस्प समाधान यह निकाला गया कि ईश्वर त्रिकालदर्शी होता है इसलिए उसने भविष्य की बातें पहले से ही बता दी थीं। वही इतिहास वेदों में है याने वह भूतकाल नहीं, भविष्यत् काल है। म.म.पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी आदि विद्वानों ने इसी प्रकार के समाधान करते हुए परम्परा और शोधदृष्टि, दोनों में समन्वय किया है। किसी न किसी प्रकार का समन्वय किये बिना मार्ग नहीं निकल सकता। वेदों में भूतकाल जगह जगह पर है। " जज्ञे वसिष्ठः" " ददर्श वाचम्" इत्यादि में लिट् लकार है। पर पाणिनि आदि उसे सामान्य-वाचक मानते हैं, वह भविष्य-वाचक भी हो सकता है, वर्तमानकालवाची भी। आर्यसमाजी विद्वान् उसे वर्तमान काल मानते हैं। वेदभाष्यकार स्कन्दस्वामी भी ऐसा मानते हैं। आर्यसमाज को वेद में इतिहास देखना बिल्कुल पसन्द नहीं। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर प्रथमतः आर्य समाज के भी मान्य विद्वान् थे। उन्होंने वेदों में इतिवृत्त का विवेचन कर दिया। इस पर जयदेव विद्यालंकार आदि विद्वानों ने उनके खण्डनपरक अनेक ग्रन्थ लिखे।

ओझा जी की इतिहासदृष्टि

इस गुत्थी को सुलझाने के लिए ओझा जी ने क्या मार्ग अपनाया यह देखने पर उनकी प्रतिभा का कायल हुए बिना नहीं रहा जा सकता। उन्होंने इस प्रसंग में पूर्णतः शोधात्मक और वैज्ञानिक दृष्टि अपनाई है। यह सर्वविदित है कि उनका बहुत बड़ा अवदान है वेदों में विज्ञान की स्थापना तथा इस बात का सुसंगत विवेचन कि वेद में किस प्रकार सृष्टिविद्या आई है, भृगु, अंगिरा आदि ऋषिनाम तथा इन्द्र, मित्र, वरुण आदि देवनाम किस प्रकार वैज्ञानिक तत्त्वों के प्रतीक हैं। उन्होंने इसका

सुसंबद्ध शास्त्र संकलित कर एक नया युग ही शुरू कर दिया था। इन्द्र आदि देवों एवं अन्य व्यक्ति- नामों तथा गंगा यमुना आदि नदियों को वैज्ञानिक तत्त्व बताने वाले स्वामी दयानन्द यदि यह सब देखते तो हर्षित हुए बिना नहीं रहते। मधुसूदन जी ने जब अध्ययन शुरू किया उसी के आस पास दयानन्द का निधन हो गया (१८८३) । दोनों के समयों में इतना सा ही अन्तर है। ओझा जी ने जिस प्रकार विज्ञान की स्थापना करके वेदों की व्याख्या को नई दिशा दी उसी प्रकार इतिहास की स्थापना करके भी एक नया मार्ग निकाला। पं. गिरिधर शर्मा ने उनके दो अवदान माने हैं, विज्ञान की स्थापना और इतिहास की स्थापना। विज्ञान की स्थापना की जितनी चर्चा हुई है उतनी इतिहासदृष्टि के बारे में नहीं हो पायी। उसे यदि देखा जाए तो मधुसूदन जी का कृतित्व उसमें भी उतना ही अद्‌भुत सिद्ध होगा।

संभवत: इतिहासदृष्टि को वेदव्याख्यान में समायोजित करने के फलस्वरूप ही उन्होंने वेद के अपौरुषेयत्व पर भी अनेक पक्ष विवेचित किये। अपने ग्रन्थों में इस प्रकार के ४२ पक्ष उन्होंने बताये हैं और सबका समन्वय किया है। वे कहते हैं कि वेद स्वयं ईश्वर हैं क्योंकि ईश्वर ज्ञानरूप है। दूसरी ओर वेद ईश्वरप्रणीत भी हैं। ज्ञान के रूप में वेद अपौरुषेय हैं किन्तु वर्णाक्षरमय वाणी के रूप में ऋषिप्रणीत। इसी प्रकार ऋषि प्राणों के या तत्त्वों के वाचक हैं। भृगु, अंगिरा आदि ऋषि विभिन्न तत्त्वों के स्वरूप तो उन्होंने बताये ही हैं, उन तत्त्वों के विवेचक महर्षियों का नाम भी उन्हीं पर पड़ा इसलिए ये ऋषिनाम भी हैं, यह भी उन्होंने माना है । इस प्रकार का व्यापक मार्ग सर्वत्र अपनाने के कारण उन्होंने दोनों पक्षों का भली भांति समन्वय स्थापित कर दिया है। ठीक यही दृष्टि उन्होंने इतिहास वाली गुत्थी के लिए भी अपनायी है। उन्होंने इन्द्र, वरुण आदि को वैज्ञानिक तत्त्व मानकर जो विस्तृत विवेचन किया है उनके साथ यह नहीं भूले हैं कि ये देवों के नाम भी थे। वेदों का आधुनिक अध्येता पाश्चात्य विद्वानों के विवेचनों को पढ़कर यह जान जाता है कि इन्द्र के बारे में किस किस प्रकार के वर्णन आते हैं। इन्द्र के लिए सैकड़ों सूक्त ऋग्वेद में हैं। उनमें 'वृत्र' नामक असुर (जो ड्रैगन के रूप में वर्णित है) का उसने संहार किया, पर्वतों के पंख काटे, ये सब वर्णन आते हैं। मधुसूदन जी ने इन्द्र और वृत्र को वैज्ञानिक तत्त्वों के रूप में तो विवेचित किया ही किन्तु यह भी सोचा कि क्या ये सारे वर्णन वैज्ञानिक तत्त्वों के प्रतीकों के रूप में घटाये जा सकते हैं? कुछ अतिवादी विद्वानों ने शायद ऐसा किया हो पर यह संभव नहीं है। जो वेदों में इतिहास बिल्कुल नहीं मानते उनकी समस्याएं इसी से बढ़ती हैं। महर्षि यास्क को भी लगा था कि इन्द्र, वृत्र आदि आधिदैविक तत्त्व अवश्य होंगे किन्तु उनकी जो घटनाएं वेदों में वर्णित हैं वे इतिहास में कहीं न कहीं अस्तित्व रखती होंगी। तभी उन्होंने कहा था " कोऽयं वृत्र इति। त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिका:। मेघ इति नैरुक्ता:।" (वृत्र मेघ का प्रतीक है यह बुद्धिवादियों का और एक असुर था यह ऐतिहासिकों का कथन है।) मधुसूदन जी तो सनातनी परंपरा के पक्षधर थे अत: वेदों के साथ- साथ पुराणों को भी प्रामाणिक मानते थे। आर्य समाजियों की तरह उन्हें कल्पित नहीं मानते थे।

अनेक स्थानों पर वैदिक वाङ्मय में ' इतिहास' के उल्लेख मिलते हैं — " तत्र ब्रह्मेतिहासमिश्रम्, ऋङ्मिश्रं गाथामिश्रं व भवति" (निरुक्त) द्वारा संकेत किया गया

है कि ब्रह्मोद्य के अंग के रूप में इतिहास, गाथा, स्तुति आदि भी परंपरागत हैं। गोपथब्राह्मण में व छान्दोग्य में इतिहास और पुराण अलग अलग उल्लिखित हैं। बृहदारण्यक में पुराणों का उल्लेख है। "इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्" उक्ति प्रसिद्ध है। अत: यह तो स्पष्ट ही है कि ऋषिप्रज्ञा ने मानव का इतिहास अभिलिखित करना अभीष्ट माना था। उसे सृष्टि के आरम्भ से लेकर अद्यतन काल तक लाने के लिए ही पुराण का यह सिद्धान्त बना "सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंश्यानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम्।" प्रारम्भ से लेकर आज तक का इतिहास कैसे बन पाये यह ललक उत्तरवैदिककाल से ही दिखलाई पड़ जाती है। पुराणों ने यही कार्य किया। तभी यह कहा गया कि वेदों के आख्यान भी उसी इतिहास के भाग हैं। " पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्। अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गता: ॥ (मत्स्यपु.) का यही रहस्य है। पुराणों में विसृष्टि से लेकर आज तक का इतिहास स्पष्ट विवेचित है। भविष्यपुराण लिखे जाने का भी यही रहस्य है। इस दृष्टि से उन्होंने इन सबका समन्वय करते हुए वेदों में संकेतित इतिहास को पूरी तरह आद्योपांत वर्णित करके इस तरह फैला दिया कि अध्येता को कोई असंगति नहीं लगे। वे इन्द्र आदि देवताओं को वैज्ञानिक तत्त्वों के प्रतीक मानते हुए भी यह स्पष्ट करते हैं कि उसी प्रकार के नाम वाले देव भी थे।

उन्होंने इतिहास और पुराण में अन्तर स्पष्ट करने वाली परिभाषा दी है—

"विज्ञानशास्त्रे प्रतिपादनीये लोकेतिवृत्तस्य भवत्यपेक्षा।
तच्चेतिवृत्तं द्विविधं पुराणेतिहासभेदात् प्रवदन्ति वृद्धाः॥
यद् विश्वसृष्टेरितिवृत्तमासीत् पुरातनं तद्धि पुराणमाहुः।
यच्चेतानानां तु नृणां चरित्रं पृथक्कृतं स्तात्स इहेतिहासः॥"

(जगद्गुरुवैभवम्, पृ.३)

उन्होंने 'पुराणनिर्माणाधिकरण' में लिखा है—"विश्वसृष्टेरितिहासः पुराणम्"। सर्वत्र ये दो संज्ञाएं अलग-अलग मिलती हैं, चाहे आती एक साथ हों। तब इतिहास क्या है, पुराण क्या? ओझाजी के ग्रन्थों में यह भेद-विवेचन नहीं मिलता है, किन्तु इन्हें परिभाषित करने हेतु कुछ इसी प्रकार कहा जा सकता है "आख्यातं लोकवृत्तमितिहासः, वंशवृत्ताद्युपबृंहितं सर्गवृत्तं पुराणानि/पुराणम्।" वेदों में आये इन्द्र, वरुण आदि के वृत्त को इतिहास कहा गया है। पुराणों ने सृष्टि के आरम्भ से लेकर वर्तमान तक के वंशवृत्त को क्रमबद्ध करने का प्रयत्न किया था, इसलिये वह पंचांगयुक्त है, क्रमबद्ध है, सांगोपांग है। प्राचीन ग्रन्थों में घटना, वृत्तान्त या दृष्टान्त के लिए भी 'इतिहास' शब्द आता है।"अत्रेमं पुरातनमिहासं प्रचक्षते।" इस दृष्टि से लोकवृत्त, इतिवृत्त की घटनाएँ इतिहास हुईं और सृष्टि का क्रमबद्ध इतिहास लिखने वाला शास्त्र पुराण। यही बात उन्होंने पुराणनिर्माणाधिकरण में कही है। पुराणों में शिल्प, कला आदि सभी के शास्त्र अन्तःस्यूत हैं इसलिये वे तो विश्वकोष ही हो गये हैं। अस्तु।

इस प्रकार वेदाकालीन इतिहास के लेखन का कार्य संहिताओं व ब्राह्मणों में बिखरे लोकवृत्तों, आक्यानों आदि के श्रमपूर्वक व बुद्धिपूर्वक सुसंगत समन्वय द्वारा ही हो सकता है, यह स्पष्ट है। "यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः" आदि संकेतों से हमें उसे

खोज निकालना होगा। ओझाजी ने इसी आधार पर बतलाया कि उस युग में किस प्रकार साध्य, महाराजिक आदि वर्गों में विभाजित देव थे जो विज्ञानसंपदा के धनी थे, उन्होंने यज्ञ किये, प्रथम धर्मों का प्रवर्तन किया, इतिहास बनाया। इन्द्र, जो एक पद था, उस युग का सर्वोच्च शासक होता था। यदि उस प्राचीन भारत का इतिहास लिखा जाए तो एक दृष्टि से उसे इन्द्र का इतिहास भी कहा जा सकता है। इस प्रकार 'इन्द्र' हमारे प्रागैतिहासिक इतिवृत्त का प्रतीक हुआ। यही रहस्य है उनके इतिहासग्रन्थ ाम इन्द्रविजय रखे जाने का। वेदों में इन्द्र वैज्ञानिक तत्त्व भी है, ऐतिहासिक राजा भी जिसका चरित्र तथा महिमा वेदों में वर्णित है। तभी इन्द्र के बारे में कहा गया है—

"इन्द्र यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च श्रृङ्गिणो वज्रबाहुः।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान्न नेमिः परि ता बभूव॥

(ऋ० १.३२.१५)

इन्द्र वर्तमान और अतीत का राजा है। वह हमारा इतिहासपुरुष है। इन्द्र चौदह पृथक् सन्दर्भों में चौदह प्रकार से वेदों में वर्णित है, यह ओझाजी ने स्पष्ट किया है। यहाँ आ कर जैमिनीय सूत्र " परंतु श्रुतिसामान्यमात्रम्" सुसंगत रूप से समझ में आ जाता है। उन्होंने इन्द्रविजय ग्रन्थ में यही ऐतिहासिक कार्य किया है कि वेदों में वर्णित सभी सूक्तों तथा ऐतिहासिक उल्लेखों के आधार पर आर्यों का सुसंगत इतिहास वर्णित कर अध्येता के लिए पूरा शास्त्र बना दिया है। इसलिए उनका अवदान दो भागों में बताया जाता है, एक तो वेदों में विज्ञान की स्थापना, दूसरे इतिहास की स्थापना। उनके अभिनन्दनसमारोह के अवसर पर जयपुर के संस्कृत मासिक संस्कृतरत्नाकर ने जो विशेषांक "वेदांक" के नाम से प्रकाशित किया था उसमें तत्कालीन मूर्धन्य भारतीय वेदमनीषियों ने लेख भेजे थे। उसमें विज्ञान विषय के जितने लेख थे उससे अधिक वेदों में इतिहास के बारे में थे। ओझा जी का यह प्रमुख अवदान माना गया था।

इन्द्र और वरुण

वेदों में इन्द्र और वरुण, मित्रावरुण आदि देवों तथा द्यावापृथिवी आदि के बारे में विभिन्न प्रकार की मान्यताएं विभिन्न ऋचाओं में मिलती हैं। कहीं इन्द्र को स्वाराट् कहा गया है, कहीं वरुण को। कहीं इन्द्र सम्राट् बताया गया है। वरुण अप् और आदित्यों आदि के माध्यम से द्यौ में क्रमण करता है। इन्द्र मरुत्, रुद्र और आदित्यों से क्रमण करता है। कहीं वरुण को द्युस्थानीय देवता बताया है, कहीं इन्द्र को। वैसे इन्द्र को अंतरिक्षस्थानीय देवता भी माना जाता है। इन सब गुत्थियों का समाधान ओझा जी ने एक इतिहास के सूत्र में बांध कर कर दिया है। उनके मत में बाह्लीक देश का जरदष्टि नामक ऋषि जो ऋज्राश्व ऋषि का पुत्र था, वरुण का समर्थक था। उसने असुरधर्म स्वीकार कर लिया और सुरों का विरोधी हो गया। असुरों ने सुरा बनायी और एक यज्ञ किया जिसमें सब देवताओं को बुलाया। इन्द्र को सुरा की आहुति दी गई जो इन्द्र ने स्वीकार की। इस पर इन्द्राणी भी क्रुद्ध हुई, अन्य देवता

भी। वहाँ ऋषियों में इन्द्र और वरुण के पारस्परिक महत्त्व पर जो वाद विवाद हुआ वह ऋग्वेद में विस्तार से वर्णित है। उसमें रोदसी, क्रंदसी तथा संयती के देवताओं का महत्त्व विवेचित करते हुए इन्द्र और वरुण दोनों के दावे पेश किये गये। इन्द्र और वरुण के सूक्तों में अनेक ऐसी ऋचाएं है जो परस्पर विरोधी लगती हैं। ओझा जी ने इन्हें ऋषियों के शास्त्रार्थ के रूप में व्याख्यात करते हुए बताया है कि वे ऋषियों द्वारा इन्द्र के या वरुण के आपेक्षिक महत्त्व को बताने वाली हैं। अन्त में यह तय हुआ कि इन्द्र स्वाराट् है, वरुण सम्राट्। रोदसी, क्रंदसी और संयती तीनों द्यावापृथिवी हैं। इन तीनों में इन्द्र और वरुण दो पृथक् पृथक् विभागों के स्वामी हुए। वैज्ञानिक तत्त्व के रूप में जिस प्रकार मित्र और वरुण खगोल के दो भागों का प्रतिनिधित्व करते हैं उसी प्रकार इन्द्र और वरुण भूगोल के दो भागों के स्वामी बतला दिये गये हैं। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि जिन देवताओं का उल्लेख केवल प्रतीकात्मक है, वे केवल विज्ञान से संबद्ध तत्त्व हैं, ऐतिहासिक पुरुष नहीं , जैसे मित्र, अग्नि, सोम आदि किन्तु जिनका इतिहास में भी उल्लेख है वे ऐतिहासिक व्यक्ति भी हैं जैसे इन्द्र, वरुण, वसिष्ठ आदि। ओझा जी के मत में भारत की सीमा वेदकाल में बहुत विशाल थी। इसके पश्चिम भाग का स्वामी वरुण हुआ, पूर्व भाग का इन्द्र। इस प्रकार के इतिहास के ताने बाने से अध्येता को सभी समस्याओं का समाधान मिल जाता है। अफगानिस्तान और ईरान तक की भौगोलिक इकाइयों का वेद में जहाँ जहाँ संकेत है वह भी संगत हो जाता है और गंगा, यमुना आदि के संदर्भ भी बैठ जाते हैं।

देव और असुर

ओझा जी ने देव, असुर, मनुष्य आदि का स्वरूप तथा देवासुर-संग्राम का रहस्य बताते हुए इस प्रकार के सूत्र दे दिये हैं जिनसे सभी वैदिक उल्लेख स्पष्ट हो जाएं। जिस प्रकार उन्होंने आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक तीन विभागों द्वारा त्रैलोक्य को समझाया है जिसे दिव्य, शारीर और भौम कहा है (जिनके स्वामी अग्नि, वायु, और इन्द्र को बताया है) उसी प्रकार देवासुरों का भी विभाजन किया है। उनके सूत्र हैं —

अखिला नराः पुरात्वे त्रेधा भिन्नाः प्रधानतो ह्यभवन्।
देवा अथ च मनुष्या देवविरोधात् त्वदेवाश्च।
अत्युन्नतविज्ञानाः प्रभाववन्तोभवन् देवाः।
विज्ञानदुर्बला अपि बहुलप्रज्ञा महाबला असुराः।
साधारणी तु जनता मनुष्यनाम्ना प्रतीताऽऽसीत्।
तत्रादेवा आसन् दानव-दैत्याश्च दस्यवः पणयः।
अफ्रीकाद्या देशा दैत्यानां दानवानां च।
फीनीशिया पणीनां दस्यूनां हेमकूटाद्याः।
वेदग्रन्थे कथिताः समराः सर्वेऽपि पंचभेदाः स्युः।
देवानां तैः पणिभिर्दानव-दैत्यैश्च दस्युभिश्चार्यैः।

देवाः सूर्ये दासैः पणिभिर्गोष्वद्रिसोमके दैत्यैः।

क्षित्यर्थे दानवकैरार्यैर्युयुधुः प्रकीर्ण-विषयेषु।

इससे स्पष्ट होता है कि नरों के ही तीन विभाग थे। देव, मनुष्य और अदेव। अत्यन्त उत्कृष्ट मेधा और विज्ञान वाली जाति देव कही गई। उत्कृष्ट बुद्धि किन्तु कमजोर विज्ञान वाले असुर हुए जो बलशाली थे। अदेवों में चार प्रकार की जातियां थीं, दैत्य, दानव, दस्यु और पणि। वेदों में जो संग्राम वर्णित हैं वे पणियों, दानवों, दैत्यों, दस्युओं और आर्यों से हुए थे। वे किस उद्देश्य से हुए थे इन सबको स्पष्ट करते हुए उन्होंने बताया है कि दासराजाओं से सूर्यविज्ञान के सिलसिले में देवों का युद्ध हुआ, गायों के लिए पणियों से, सोम के लिए दैत्यों से, पृथ्वी के लिए दैत्यों और दानवों से युद्ध हुआ। कुछ अन्य कारणों से आर्यों से भी देवों के युद्ध हुए थे। देवेन्द्र स्वयं ऐसे अवसरों पर सेनाओं का नेतृत्व करते थे और युद्ध में विजयी होते थे। ओझा जी ने इन युद्धों में इन्द्र की विजय का इतिहास इन्द्रविजय में वर्णित किया है। इसी प्रसंग में उसी भू-भाग से जिसे ओझा जी स्वर्ग कहते हैं इन्द्र का भारत में आगमन, दस्युओं का निग्रह तथा उनका साथ देने वाले राजाओं पर विजय आदि इसमें विस्तार से वर्णित किया है। इन इतिहासों में इन्द्र के वे सारे वर्णन समाहित हो जाते हैं जिनसे अध्येता दिग्भ्रांत हो जाते थे। इन्द्र और वृत्र के संग्राम को जहाँ आधिदैविक स्तर पर ओझा जी ने विज्ञान के तत्त्वों की अंतःक्रिया के रूप में समझाया है वहीं इतिहास के स्तर पर भी उसका निर्वचन करते हुए आख्यान स्पष्ट किया है। वृत्र को नागवंशी राजा बताया है जिसने बड़ी बड़ी पहाड़ी चट्टानों को तोड़ा जिससे नदियों का जल फिर बहने लगा। यही रहस्य है सांप के रूप में नागवंशी वृत्र के वैदिक स्वरूप का तथा इन्द्र द्वारा पर्वतों के पंख काटने का। इसी प्रकार ऋग्वेद के दाशराज्ञ युद्ध के आख्यानों का समन्वय भी उन्होंने 'इन्द्र-विजय' में कर दिया है। इसे अधिकांशतः दास राजा से युद्ध के रूप में देखा है उन्होंने। सृंजय के पुत्र दिवोदास अतिथिग्व को जब शंबरासुर ने सताया तो किस प्रकार इन्द्र ने महासमर में उसका वध करवाया और १०० पुरियों का नाश किया इसका इतिहास वर्णित करते हुए उन्होंने इन्द्र का पुरंदर नाम, शंबरारि नाम आदि की सार्थकता बताते हुए युद्धों के आख्यान व्याख्यात किये हैं। चूंकि यज्ञ ऋषियों के ज्ञानसत्र, वैज्ञानिक प्रयोग, सेमिनार आदि की तरह आयोजित समारोह होते थे, उनमें सम्राटों को भी बुलाया जाता था। यही थी आहुति या आहूति याने बुलावा। इन्द्रादि देव आते थे, सोम पीते थे, उनका अभिनन्दन होता था। ऋषि लोग अभिनंदनपत्र पढ़ते थे। यही थे उनके सूक्त। ऋषियों के शास्त्रार्थ, संवाद इसी प्राचीन इतिहास के अंग है। इन्द्र को भूस्वर्ग से (जो भारत के सुदूर उत्तर में था) यहाँ आने पर ठहराया गया, उसकी क्या खातिर की गई इसका वर्णन भी वैदिक सूक्तों में है। इसे इतिहास के रूप में विवेचित करना बाकी था जो ओझा जी ने किया है।

भूगोल

इस इतिहास के प्रसंग में ही उन्होंने भूगोल का भी विस्तृत विवेचन किया है। उनकी मान्यता है कि पहले प्रायः समूचे एशिया को ही भारत कहा जाता था। उसकी

पश्चिम सीमा लोहित समुद्र (रेड सी) तक थी और पूर्व सीमा फारमोसा तक। इससे अपने आप स्पष्ट हो जाता है कि आर्य भारतवासी थे। बाहर से नहीं आये। अंग्रेज लोग एशिया माइनर से आर्यों के आने का जो उल्लेख करते हैं वह भी भारत में ही सिद्ध हो जाता है। उन्होंने " सीमाप्रसंग" नाम अध्याय में १४ प्रसंगों से सिद्ध किया है कि भारत की इतनी विस्तृत सीमा उन्होंने किस आधार पर मानी है। बाद में १२ प्रमाणों से बतलाया है कि आज जिसे श्रीलंका या सीलोन कहा जाता है वह रावण की लंका नहीं थी, वह तो सिंहल द्वीप था। रावण की लंका लक्ष्यद्वीप के आसपास एक बहुत बड़ा भू-भाग था जिसका अधिकांश भाग अब समुद्र में डूब गया है। यहीं उन्होंने यह भी सिद्ध किया है कि लिपि का आविष्कार वेदकाल में ही हो गया था। इसी प्रसंग में हमारे यहां कितनी विद्याएं थीं यह बतलाते हुए उन्होंने प्राचीन भारत की वैज्ञानिक प्रतिभा का भी संकेत किया है।

इन प्रसंगों में उनकी कुछ स्थापनाएं बहुत महत्त्व की हैं जिन पर आज भी शोध किया जा सकता है। उदाहरणार्थ " यवन" शब्द के लिए उनकी मान्यता है कि यह यूनानियों या मुसलमानों का ही वाचक नहीं है मूलत: यहूदियों के लिए प्रयुक्त होता था। बाद में यूनानियों के लिए होने लगा और आजकल मुस्लिम आदि सभी के लिए चल रहा है। उनकी मान्यता को इसलिए आधार मिल जाता है कि उन्होंने यहूदी और यूनानी सभ्यताओं का जो समय बतलाया है वह आधुनिक स्थापनाओं से बिल्कुल मेल खाता है। सेमिटिक सभ्यता के लिए यवन चल पड़ा यह बात संगत भी लगती है। सरयू नदी को उन्होंने वेदकाल में पश्चिम भारत में माना है। उनकी स्थापना है कि ईरान के पूर्वोत्तर में आरियुस नामक जो नदी बहती है वह सरयू थी। तभी तो उसे अफगानिस्तान की कुभा, वंक्षु आदि नदियों के साथ उल्लिखित किया गया है। इसी के पास से अर्ण और चित्ररथ गंधर्व आए थे जिन्हें तुर्वस, यदु आदि ने व इन्द्र ने परास्त किया था। इसी प्रकार मद्र, बाल्हीक, पुष्कर आदि भौगोलिक स्थानों को पाश्चात्य अक्षांश, देशान्तर आदि का हवाला देते हुए सप्रमाण भारत की पश्चिम सीमाओं में उन स्थानों पर सिद्ध किया है जहाँ आज अरब, अफगानिस्तान आदि देश हैं। अफगानिस्तान को गांधार व ईरान को मद्र कहा जाता था। पुष्कर को वे बुखारा में स्थापित करते हैं। सरस्वती को वे हिमालय के उत्तर की प्राचीन नदी मानते हैं जिसके किनारे अनेक वेधशालाएं वैज्ञानिक शोध करती थीं। हेमकूट सरोवर (बिन्दुसर) से निकली इस नदी के किनारे जो विज्ञानभवन बना था उसे सूर्यसदन कहा गया है। उसमें ऋषियों के वैज्ञानिक विमर्श चलते थे। उस पर दस्युओं के आक्रमण होते थे जिनका इन्द्र आदि प्रत्युत्तर देते थे। ऐसे प्रसंगों में इन्द्र की सेनाओं के अभियान का वर्णन वेद की ऋचाओं मे मिलता है। उनके वर्णन के सूक्तों को तथा इन्द्र के विजय के बाद ऋषियों द्वारा जो स्तुतियां की गई थीं उन सूक्तों को ओझाजी ने विस्तार से उद्धृत किया है। ऋग्वेद के अनेक सूक्त जो विभिन्न ऋषियों ने लिखे हैं इस प्रकार के इतिहास में उनकी संगति भी बैठ जाती है।

प्रस्तुत ग्रन्थ

ओझा जी के इतिहास विवेचन की विशेषता यह है कि उसमें केवल वैदिक प्रसंगों से ही विभिन्न स्थापनाओं का समर्थन नहीं किया गया है अपितु समस्त पौराणिक आख्यानों का भी उसमें भली भांति समन्वय हो जाता है। भूगोल और इतिहास के विवेचन में उन्होंने मत्स्य, मार्कण्डेय आदि प्राचीन पुराणों से लेकर श्रीमद्भागवत तक के आख्यानों और नामों का समन्वय कर दिखाया है। उनका मानना है कि मूर्तिपूजा का प्रारंभ वेदकाल में ही ऋषि वामदेव द्वारा हो गया था। इन सब पर पृथक् पृथक् विवेचन की आवश्यकता है और प्रत्येक संदर्भ पर एक एक ग्रन्थ लिखा जा सकता है। यहाँ अत्यन्त सूत्रात्मक प्रतीकों द्वारा उसका संकेत मात्र दिया गया है। इन्द्रविजय का ओझा जी ने ५ भागों में विभाजन किया है (१) भारत परिचय (जिसमें भारत का नाम, सीमाएं, भाषा, धर्म, विद्याएं आदि वर्णित हैं। (२) आर्यदासीय (जिसमें वेद के इतिवृत्तात्मक आख्यानों का विवेचन है। (३) विज्ञानभवन (जिसमें सौरविज्ञानशाला, इन्द्र के द्वारा उसकी रक्षा तथा इन्द्र, उषा आदि के सूक्तों की ऐतिहासिक संगति वर्णित है (४) दस्युनिग्रह (जिसमें दस्यु राजाओं का इन्द्र द्वारा पराभव वर्णित है) और (५) इन्द्रविजयाभिनंदन (जिसमें इन्द्र के विभिन्न सूक्तों की महर्षियों द्वारा विजयी इन्द्र के अभिनन्दन के रूप में संगति की गई है) । इन विवेचनों में भारत के अतिप्राचीन इतिहास के वे सूत्र समाहित हैं जिनके आधार पर हम पूर्व वैदिक इतिहास का समूचा ताना-बाना बुनने की दिशा में अग्रसर हो सकते हैं।

इन्द्रविजय ओझा जी के प्राचीन इतिवृत्त से संबंधी ग्रन्थों में प्रमुख है। इसका सर्वप्रथम प्रकाशन ओझा जी के जीवनकाल में ही सन् १९३० में श्री आद्यादत्त ठाकुर एम. ए. के संपादकत्व एवं प्रकाशकत्व में हुआ था। ग्रंथ लखनऊ में छपा था। सर्वाधिकार ग्रंथकार के अधीन अंकित थे। दूसरा संस्करण म.म.पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी के संपादकत्व में निकला। प्राचीन इतिवृत्त से संस्कृत के छात्रों को अवगत कराने के उद्देश्य से ही इन्द्रविजय को स्वतंत्रता से पूर्व ही जयपुर राज्य के महाराजा संस्कृत कालेज की परीक्षाओं की उच्चतर श्रेणी के लिए पाठ्य पुस्तक के रूप में नियत कर दिया गया था। माध्यमिक कक्षाओं में पं. लक्ष्मीनाथ शास्त्री जी द्वारा लिखित भारतेतिवृत्तसार नामक सरल एवं संक्षिप्त इतिहास ग्रंथ नियत कर दिया गया था जो वेदकाल से लेकर आधुनिक भारत तक के इतिहास को सरल संस्कृत में समझाता था। इसकी दृष्टि यद्यपि प्राचीन संस्कृति का परिचय कराने की भी थी किन्तु इसका अभिगम लगभग उसी प्रकार का था जिस प्रकार पाश्चात्य इतिहासकार राजवंशों का इतिहास बताते हुए मौर्य काल, गुप्तकाल, हर्षकाल, मुगलकाल और अंग्रेजों के काल का इतिहासक्रम बताते हैं। ओझा जी के इन्द्रविजय में केवल प्राचीन भारत का इतिहास ही नहीं था, उनकी शोधदृष्टि भी प्रतिबिम्बित थी अत: इसे सर्वदा उच्चतर कक्षाओं में ही रखा गया। यह ग्रंथ राजस्थान बनने के बाद संस्कृत कॉलेज की संस्कृत परीक्षाओं के राजस्थान राज्य के अधीन राजकीय परीक्षाओं के रूप में संचालित होने की स्थिति में भी पाठ्यक्रम में बना रहा। अब तो इसके सभी संस्करण अनुपलभ्य हो गये हैं।

मूलतः ओझा जी ने अपने सम्पूर्ण शोधफलक का जो ढांचा प्रस्तावित किया था वह भी इन्द्रविजय के प्रथम संस्करण के मुखपृष्ठ पर ही अंकित था। इसमें उन्होंने द्वादशवाद इस प्रकार अंकित किये थे :—

१. विज्ञानेतिवृत्तवाद
२. सदसद्वाद
३. रजोवाद
४. व्योमवाद
५. अपरवाद
६. आवरणवाद
७. अम्भोवाद
८. अमृतमृत्युवाद
९. अहोरात्रवाद
१०. दैववाद
११. संशयोच्छेदवाद
१२. सिद्धान्तवाद

इसमें से प्रथम विज्ञानेतिवृत्तवाद के अन्तर्गत पांच उपाख्यानों के नाम से पांच ग्रंथ लिखने का उनका इरादा था—

१. जगद्गुरुब्रह्मोपाख्यान
२. स्वर्गदैवतोपाख्यान
३. भारतवर्षीयार्योपाख्यान
४. परिषद्ब्रह्मोपाख्यान
५. द्वादशविज्ञानोपाख्यान

उपर्युक्त उपाख्यानों में तीसरा भारतवर्षीय आर्यों का उपाख्यान उन्होंने प्राचीन इतिहास का शोध करके लिखा और उसका नाम इन्द्रविजय रखा। अन्य उपाख्यानों के ग्रंथ इतने विशालकाय नहीं थे।जगद्गुरुवैभवम् आदि ग्रंथों में तथा वैदिक उपाख्यानों को कथा के रूप में प्रस्तुत करने वाले आलेखों में ओझा जी ने अपने इतिहास संबंधी उपाख्यानों (वृत्तों) का प्रणयन किया है। इन्द्रविजय प्राचीन इतिहास का महत्त्वपूर्ण संदर्भग्रंथ होने के कारण हमें यह आधार देता है कि यदि हम पाश्चात्य इतिहासकारों द्वारा प्राचीन भारत के इतिहास की जो रूपरेखा बताई जाती है उससे भी पूर्व के भारत के इतिहास का परिचय छात्रों को देना चाहें तो वह किस प्रकार का होगा।

इन्द्रविजय इसी दृष्टि से विद्वानों में लोकप्रिय हुआ कि इसमें प्राचीन भूगोल और प्राचीन इतिहास को शोधदृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। उल्लेखनीय है कि इसके प्रणयन के समय ओझा जी ने अंग्रेजी के उन इतिहास और भूगोल ग्रंथों का गहरा अनुशीलन किया होगा जो उनकी विदेश यात्राओं के अवसर पर भी उन्होंने देखे होंगे तथा जयपुर महाराजा के पोथीखाने के प्रभारी होने के नाते तथा सर्वोच्च राजपंडित होने के नाते पुस्तकालयों में पढ़े होंगे। तभी तो उन्होंने भूगोल के अक्षांशों और

देशांतरों का सर्वत्र वही संदर्भ दिया है जो ग्रीनविच के शून्य देशांतर वाली पद्धति से अंग्रेजी के एटलसों में दिया मिलता है। उन्होंने चीन के इंशान, खिंघान आदि पर्वतों के, ट्रिपोली आदि नगरों के आधुनिक नामों को भी उद्धृत किया है और उनके मत मे प्राचीनकाल में इनका संस्कृत नाम क्या रहा होगा इसका भी उल्लेख किया है। मुझे स्मरण है मैने भी साहित्याचार्य कक्षा में इस ग्रंथ को स्व. पं. पुरूषोत्तम भट्ट से महाराजा संस्कृत कॉलेज के छात्र के रूप में सन् १९५२ में पढ़ा था। उस समय आधुनिक इतिहास और आधुनिक भूगोल का संदर्भ देते हुए तुलनात्मक दृष्टि से हमारे प्राध्यापक पढ़ाते थे क्योंकि वह सर्वोच्च कक्षा थी और उस समय तक छात्रों को विश्व के भूगोल और इतिहास का थोड़ा ज्ञान हो सकता था। इसी कारण इस ग्रंथ के नवीनतम शोधों को हम लोग सुखद आश्चर्य के साथ रोमांचकारी उपलब्धि के रूप में पढ़ते थे।

प्रस्तुत संस्करण

यह महत्त्वपूर्ण ग्रंथ अब तक संस्कृत में ही उपलब्ध था जिसमें गद्य और पद्य दोनों थे। ऋग्वेद की अनेक ऋचाएं जो प्राचीन इतिहास का आधार बन सकती हैं, मूल रूप से बड़ी संख्या में उद्धृत थीं ही। इसका न तो हिन्दी अनुवाद उपलब्ध था न कोई टीका। जब से जयपुर की राजस्थान पत्रिका के (जो अब देश के प्रमुख हिन्दी पत्रों में से एक है) संस्थापक संपादक श्री कर्पूरचन्द्र कुलिश की रुचि ओझा जी के प्राचीन विज्ञान एवं इतिहास संबंधी ग्रंथों में हुई तब से उन्होंने यह स्तुत्य अभियान चलाया कि ओझा जी के जो ग्रंथ अनुपलब्ध हो गए हैं उनका प्रकाशन कराया जाय और वे केवल संस्कृतज्ञों तक ही सीमित न रहें इस दृष्टि से उनका हिन्दी अनुवाद भी कराया जाय जिनका अनुवाद अब तक उपलब्ध नहीं था। इसी अभियान के तहत उन्होंने मुझे इसके अनुवादार्थ प्रेरित किया। मैंने अनुवाद प्रारम्भ भी कर दिया किन्तु राज्यसेवा तथा अन्य कार्यक्रमों की व्यस्ततावश यह बहुत समयसाध्य लगा अत: कुछ अन्य विद्वानों से यह कार्य प्रारम्भ करने का अनुरोध मैंने किया। प्रसन्नता की बात है कि श्री कुलिश जी की प्रेरणा से डॉ. लक्ष्मी शर्मा ने जो जयपुर के संस्कृत पंडित परिवार की ही पुत्री है (संस्कृत कॉलेज के स्नातक पं. रामप्रपन्न शर्मा जी की पुत्री) इसका परिश्रमपूर्वक अनुवाद प्रारम्भ किया। यह सम्पूर्ण हो गया है तथा प्रकाशित हो रहा है यह अत्यन्त हर्षप्रद परिणति है। इस महनीय आकर-ग्रंथ की हिन्दी में अवतारणा के लिए परमस्नेही श्री कर्पूरचन्द कुलिश तो कोटि-कोटि अभिनन्दनों के पात्र हैं ही जिन्होंने वेदविज्ञान का यह अलख जगाकर जयपुर की वेदव्याख्यान-भागीरथी की नवीन अवतारणा कर दी है, डॉ. लक्ष्मी शर्मा भी बधाइयों की पात्र हैं। कुलिशजी के सत्प्रयत्नों के फलस्वरूप राज्य सरकार के आर्थिक अनुदान से मधुसूदन ओझा वेदविज्ञान पीठ, जोधपुर विश्वविद्यालय में स्थापित हुआ है और उसी के तत्त्वावधान में इस ग्रंथ का प्रकाशन जोधपुर से हो रहा है यह भी प्रसन्नता की बात है।इसी पीठ द्वारा शोधसंगोष्ठियों आदि के आयोजन तो होते ही हैं, ऐतिहासिक महत्त्व का यह कार्य भी हो रहा है कि ओझाजी के दुर्लभ और गूढ वेदविज्ञान,

इतिहास आदि के ग्रन्थों का संपादन तथा समीक्षात्मक टिप्पणियों और हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन निरन्तर चल रहा है। इस महनीय ज्ञानसत्र की धारा अजस्र रहे इस शुभाकांक्षा के साथ —

व्यास पूर्णिमा
संवत् २०४९

कलानाथ शास्त्री
निदेशक
भाषाविभाग,
राजस्थान शासन, जयपुर

प्राक्कथन

समीक्षाचक्रवर्ती, वेदमार्तण्ड, विद्यावाचस्पति स्व. पं. श्री मधुसूदन ओझा ने अपने जीवनकाल में लगभग २५० ग्रन्थों की रचना करके अज्ञान एवं मिथ्याधारणा रूप अन्धकार के आवरण से आवृत लोगों को एक देदीप्यमान ज्योतिपुंज प्रदान किया है।

श्री ओझा ने अन्य वैज्ञानिक विषयों के अतिरिक्त कुछ इतिहासग्रन्थों की भी रचना की है, जिनको विज्ञानेतिवृत्तवाद के नाम से भी अभिहित किया गया है। उन इतिवृत्तग्रन्थों में इन्होंने भारतीय इतिहास के संबंध में प्रसारित भ्रान्त धारणाओं के निराकरण हेतु वैदिक एवं पौराणिक वाङ्मय के उद्धरणों सहित एक नई दृष्टि प्रदान की है।

इसी विज्ञानेतिवृत्तवाद से संबद्ध ग्रन्थों की श्रृंखला में "इन्द्रविजय" एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण श्री ओझा जी के जीवनकाल में ही सन् १९३० में लखनऊ से प्रकाशित हुआ था तथा द्वितीय संस्करण १९४८ में जयपुर से ही प्रकाशित किया गया था, साथ ही म.म. स्व. पं. श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी द्वारा लिखी भूमिका का भी प्रकाशन हुआ। यह द्वितीय आवृत्ति भी वर्तमान में प्रायः अनुपलभ्य ही है।

सम्प्रति स्व. पं. श्री मधुसूदन ओझा के वेद-विज्ञान की ज्ञानसरिता में अवगाहन करके इस ज्ञानप्रवाह को चारों दिशाओं में व्याप्त करने के पुण्य कार्य मं संलग्न तथा 'राजस्थान पत्रिका' के संस्थापक श्रीमान् कर्पूरचन्द जी कुलिश की प्रेरणा से पं. मधुसूदन ओझा शोधप्रकोष्ठ, जयनारायण व्यास विश्व विद्यालय, जोधपुर (राज.) द्वारा इसकी तृतीय आवृत्ति का प्रकाशन किया जा रहा है।

मुझे पूज्य पिताजी पं. श्री रामप्रपन्न शर्मा व्याकरणाचार्य के सानिन्ध्य में रहकर एवं स्वं. पं. श्री मोतीलाल जी शास्त्री के ग्रन्थों का अध्ययन करने से श्री ओझा जी के वेद-विज्ञान की ओर जिज्ञासा उत्पन्न हुई, जिसको राजस्थान पत्रिका में समय समय पर प्रकाशित हुए वेद-विज्ञान-विषयक लेखों का अध्ययन करने से संवर्धन प्राप्त हुआ। इसी जिज्ञासापूर्ण अभिरुचि को श्रीमान् कुलिश जी ने एक नई दिशा प्रदान की और मुझे इन्द्रविजय का अनुवाद लिखने की प्रेरणा प्रदान की, साथ ही एतदर्थ समस्त प्रकार की सुविधाएं एवं मार्गदर्शन प्रदान किया, जिनके प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ। जैसा कि सर्वविदित है कि गम्भीरता की दृष्टि से भारतीय वाङ्मय के सदृश विश्व में अन्य कोई वाङ्मय उपलब्ध नहीं हुआ है, तथापि समय-समय पर अन्य जातियों के आक्रमण तथा मुगलों एवं पाश्चात्यों के शासनप्रभाव से लुप्तप्राय होते हुए वैदिक ज्ञान को पं. ओझा ने एक नई अवधारणा प्रदान की है। इस दृष्टि से श्री ओझा ने वैदिक ऋचाओं का भाष्य लिखने का प्रयास नहीं किया अपितु वेद के गूढ एवं गहन गम्भीर तत्त्वज्ञान की खोज करके सिद्ध कर दिया है कि वेद की प्रत्येक ऋचा वैज्ञानिक तथ्यों से ओतप्रोत है।

विज्ञानेतिवृत्तवाद के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ " इन्द्रविजय" में भारतीय इतिहास से संबद्ध भ्रान्त धारणाओं का निराकरण प्रस्तुत किया गया है, जिनमें प्रमुख है— भारतीय आर्यों का अन्य स्थानों से आक्रांता के रूप में भारत में आ कर निवास करना। इस संबंध में पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय इतिहास को एक मिथ्या अवधारणा प्रदान की है, जिसके आधार पर हम यह मानने लगे हैं कि वस्ततु: मूल रूप से भारत में असभ्य दस्यु जाति निवास करती थी और सभ्य आर्य अन्य स्थानों से आक्रांता के रूप में यहाँ आये और इस दस्यु जाति को परास्त करके भारतवर्ष में निवास करने लगे। "इन्द्रविजय" में इस भ्रांति को चौदह पुष्ट प्रमाणों से निरस्त किया गया है। इसी प्रकार आज की श्रीलंका को रावण की श्रीलंका मानने की भ्रान्त धारणा का भी बारह विप्रतिपत्तियों द्वारा खण्डन करते हुए छ: ठोस प्रमाणों से सिद्ध किया गया है कि वस्तुत: रावण की लंका निरक्ष देश (०°) पर स्थित लक्षद्वीप और मालदीव के विशाल भूभाग पर स्थित थी, जिसका अधिकांश भाग आज जलमग्न हो गया है।

इसी प्रकार भारत की प्राचीन सीमा, प्राचीन भारत की विशिष्ट कलाएँ एवं विद्याएँ, वेदों का लिपिबद्ध होना इत्यादि महत्त्वपूर्ण तथ्य इस ग्रन्थ के संस्कृत में लिखे होने के कारण सामान्य जनता के ज्ञानक्षेत्र की परिधि से परे थे, जिसका समाधान प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद से संभव हो सकेगा।

चूंकि इन्द्रविजय एक इतिहासग्रंथ ही नहीं है, अपितु वैज्ञानिक इतिहास ग्रंथ है, जिसमें पद-पद पर विषय की गंभीरता एवं दुरूहता निरन्तर बनी रही है। अत: ग्रंथ का अनुवाद करते समय इस प्रकार की दुरूहता के समाधान में पं. श्री देवीदत्त जी चतुर्वेदी, पं. श्री रामप्रपन्न जी शर्मा व्याकरणाचार्य एवं पं. श्री हनुमद्दास जी शास्त्री ने पूर्ण मार्गदर्शन एवं दिशानिर्देश प्रदान करके इस अनुवाद कार्य को सफलता प्रदान की, जिनके प्रति श्रद्धापूर्वक कृतज्ञता प्रकट करने हेतु मैं शब्दों का संकलन करने में भी स्वयं को असमर्थ अनुभव कर रही हूँ।

मैंने इस ग्रंथ का यथाशक्ति सांगोपांग अनुवाद करने का प्रयास किया है। इन्द्रविजय में श्री ओझाजी ने सिद्धान्तों की स्थापनार्थ प्रामाणिकता सिद्ध करने हेतु अनेक वैदिक ऋचाओं को भी उद्धृत किया है जिन्हें सम्प्रदायमुक्त रखनेके उद्देश्य से अनुवाद करते समय मैंने सायणाचार्य को ही आधार माना है। विषय को और अधिक स्पष्ट करने के उद्देश्य से मैंने अनेक स्थानों पर अनुवाद को आकर्षित एवं सुन्दर चित्रों से भी अलंकृत करने का प्रयास किया है। इन चित्रों में प्रमुख चित्र हैं — दिव्य त्रैलोक्य, शारीरिक त्रैलोक्य, भौम त्रैलोक्य, प्राचीन भारत की सीमा, भूपद्म चतुष्पत्रत्व, पंचपुण्डीर परिलेख, जम्बुद्वीप के आठ उपद्वीप, सप्ताहोरात्रवृत्त परिलेख, भू-स्वस्तिक और ख-स्वस्तिक, सरस्वती नगरी, स्वर्गधरुण इत्यादि।

प्रस्तुत अनुवाद में मूल ग्रन्थ के साथ-साथ ग्रन्थ की विषयसूची का भी अनुवाद कर दिया गया है, जिससे आशा की जाती है कि ग्रन्थ के पाठकों को विषय की ग्राह्यता भी सुलभ हो सकेगी।

भूमिकालेखन के पश्चात् ही किसी ग्रंथ की पूर्णता स्वीकार की जाती है, अतः श्रीमान् कलानाथ जी शास्त्री ने इस महत्त्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न करके मुझे कृतार्थ किया है।

इस अनुवाद कार्य में मैं अपने परिवार के सदस्यों का हृदय से धन्यवाद-ज्ञापन करती हूँ, जिन्होंने यथासमय सहयोग प्रदान किया है। मेरे भ्राता श्री लाला पुरुषोत्तम शर्मा (सिविल इंजिनियर) धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने इस ग्रंथ के भौगोलिक एवं तकनीकी तत्त्वज्ञान को सुगम बनाया। मैं अपने पति श्री राजकुमार शर्मा की विशेष रूप से आभारी हूँ, जिन्होने इस पूरे अनुवाद कार्य में आने वाली कठिनाइयों का न केवल निराकरण किया अपितु सक्रिय सहयोग करके उत्साहवर्धन किया।

अंत में इन्द्रविजय का यह अनुवादकार्य विद्वानों को स्वीकार्य हो तथा जिज्ञासु पाठकों को लाभान्वित करने में समर्थ हो, ऐसी मेरी ईश्वर से कामना है।

डॉ. (श्रीमती) लक्ष्मी शर्मा
एम. ए. (हिन्दी-संस्कृत), पी-एच-डी.
सहायक प्रोफेसर, संस्कृतविभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

—: हिन्दी-अनुवाद :—

विज्ञानविषयक इतिहास ग्रन्थों में जो पाँच उपाख्यान हैं, उनमें तीसरा उपाख्यान, जिसका नाम "भारतवर्षीयार्य्योपाख्यान" है, प्रारम्भ किया जाता है —

भारत-परिचय-प्रकरण में त्रैलोक्य का प्रसंग ॥१॥

ग्रन्थारम्भ में दिव्य, शारीर और भौम भेद से तीन प्रकार के त्रैलोक्य का निरूपण किया जाता है।

दिव्य, शारीर और भौम भेद से तीन प्रकार का त्रैलोक्य

देवयुग में ब्रह्मा द्वारा तीन प्रकार के त्रैलोक्य निर्दिष्ट किये गये हैं। अधिदैविक, अध्यात्म और इसी प्रकार से अधिभूत त्रैलोक्य बताये गये हैं ॥ १ ॥

दिव्यत्रैलोक्यम्।

तद्दिव्यं शारीरं भौमं चेति क्रमादुक्तम्॥
अग्निर्वायुश्चेन्द्रश्चेति त्रैलोक्यमिष्यते दिव्यम्॥२॥

पृथ्वीयमग्निलोकः सूर्य्यो द्यौरिन्द्रलोकः सः॥
अनयोर्मध्ये वायोर्लोकः स्यादन्तरिक्षमिदम् ॥३॥
एतेऽतिष्ठावानो देवास्तेषु त्रयस्त्रिंशत्॥
वसुरुद्रादित्याख्या द्वावन्यावश्विनौ चेति॥४।

दिव्य-त्रैलोक्य

ये त्रैलोक्य दिव्य, शारीर और भौम त्रिलोकी के क्रम से कहे गये हैं। अग्नि, वायु और इन्द्र को दिव्य-त्रैलोक्य कहा जाता है॥२॥

यह पृथ्वी अग्निलोक है, सूर्य द्युलोक है और यही इन्द्रलोक है। इन दोनों लोकों के मध्य वायुलोक है और यही अन्तरिक्ष हो सकता है॥३॥

इन तीनों लोकों के अधिष्ठातृ देवों की संख्या तैंतीस हैं, जिनमें आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य और दो अश्विनी कुमार हैं॥४॥

दिव्यत्रैलोक्य



त्रिवृत् (9) स्तोम पर्यन्त अग्निमयी पृथिवी

15 स्तोम पर्यन्त अग्निगर्भिता वायुमयी पृथिवी

21 स्तोम पर्यन्त अग्नि वायुगर्भिता आदित्यमयी पृथिवी

33 स्तोम पर्यन्त व्याप्त रहने वाला सोमगर्भित विष्णु है, जो क्रमशः पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ और आपः, इन चार लोकों का आरम्भक है । यह वायुलोक है, अन्तरिक्ष है ।

48 स्तोम पर्यन्त ब्रह्मा है, यहाँ प्राणमय ब्रह्मसत्यात्मा व्याप्त रहता है । यह द्यौः है । यह सत्य है ।

शारीरिकत्रैलोक्यम्।

गुदनाभ्यन्तः पृथ्वीद्यौर्हृत्कण्ठान्तरन्तरे व्योम॥
उदरमुरश्च शिरश्चेत्यथवा देहे त्रिलोकी स्यात्॥५॥
उदरगुहाऽग्नेर्लोको लोको वायोरुरोगुहाऽध्यात्मम्॥
लोकः शिरोगुहेन्द्रः सर्वे प्राणास्तदायत्ताः॥६॥

शारीरिक त्रैलोक्य

गुदा से नाभि पर्यन्त भाग पृथ्वीलोक है, हृदय से कण्ठ पर्यन्त भाग द्युलोक है तथा इन दोनों के मध्य उदर भाग व्योम (अन्तरिक्ष) लोक है। इसी प्रकार उदरलोक, हृदय-लोक तथा शिरोलोक रूप से देह में भी त्रिलोकी बताई गई है ॥५॥

इस देहत्रिलोकी में उदर गुहा अग्निलोक है, उरोगुहा वायुलोक है तथा शिरोगुहा इन्द्रलोक है, समस्त प्राणतत्त्व इसी शिरोगुहास्थित इन्द्र प्राण द्वारा नियन्त्रित रहते हैं ॥६॥

भौमत्रैलोक्यम्।

एवं कृतमधिभूतं भूमौ त्रैलोक्यमत्र देवयुगे॥
अधिदैवतवत् तत्र च विहितानि हि नामरूपकर्माणि॥७॥
मनुजास्तैर्य्यग्योना देवा भौमत्रिलोकीति॥
वैवस्वतमनुविट्त्वं व्यवस्थितं त्वत्र मनुजत्वम्॥८॥
मानुषलोकः पृथ्वी तैर्य्यग्योनोऽन्तरिक्षं स्यात्॥
दैवो लोको द्यौरिति भौमं त्रैलोक्यमाख्यातम्॥९॥
अधिपतिरग्निः पृथ्व्या वायुरधीशोऽन्तरिक्षस्य॥
इन्द्रो दिवस्पतिश्चाध्यक्षा दिव्यवत् कल्प्याः॥१०॥
दक्षिणसमुद्रतोऽग्नेर्लोकोऽस्ति हिमालयं यावत्॥
अलतायिगिरेरैन्द्रो लोकश्चोत्तरसमुद्रान्तः ॥११॥
यस्तु हिमाचलशैलादलताय्यचलान्त आन्तरो देशः॥
वायोर्लोकः स इदं त्रैलोक्यं भूतले विद्यात् ॥१२॥
भारतमग्नेर्लोकोऽस्त्यैरावतवर्षमिन्द्रलोकोऽन्यः॥
अनयोर्मध्ये मरुतां लोको देवाः स्थितास्तेषु ॥१३॥
उत्तरकुरवः कथिताः श्रृङ्गिगिरेरुत्तराः पुराणेषु॥
नीलगिरेरुत्तरस्तूक्तास्ते भारते भैष्मे ॥१४॥

भौमत्रैलोक्य

देवयुग में इसी प्रकार अधिभूत त्रैलोक्य पृथ्वी पर भी तीन प्रकार का था। अधिदैवत त्रैलोक्य के समान वहाँ भी नाम, रूप तथा कर्म विभाजित थे ॥७॥

मनुष्य, तिर्यग्योनि (पशु पक्षी तथा अन्य जन्तु) तथा देवता, ये तीनों ही भौमत्रिलोकी में समाहित हैं। विवस्वान् के पुत्र मनु की सन्तति जहाँ व्यवस्थित हैं, वहीं मनुष्य है ॥८॥

यह पृथ्वी मनुष्यलोक है, जहाँ मनुष्य निवास करते हैं, तिर्यग्जगत् की सृष्टि का लोक अन्तरिक्ष लोक है, द्युलोक देवताओं का लोक हैं। इसी को भौमत्रिलोकी कहा गया है ॥९॥

दिव्य त्रिलोकी के समान ही भौम त्रिलोकी के भी अध्यक्ष कल्पित किये गये हैं, जिनमें पृथ्वी लोक के अधिपति अग्नि हैं, अन्तरिक्ष लोक का स्वामी वायुदेव है तथा स्वर्ग लोकाधिपति इन्द्र है ॥१०॥

दक्षिण समुद्र से हिमालय पर्यन्त भाग अग्नि लोक है, अलतायि पर्वत से लेकर उत्तर समुद्र पर्यन्त इन्द्रलोक है ॥ ११ ॥

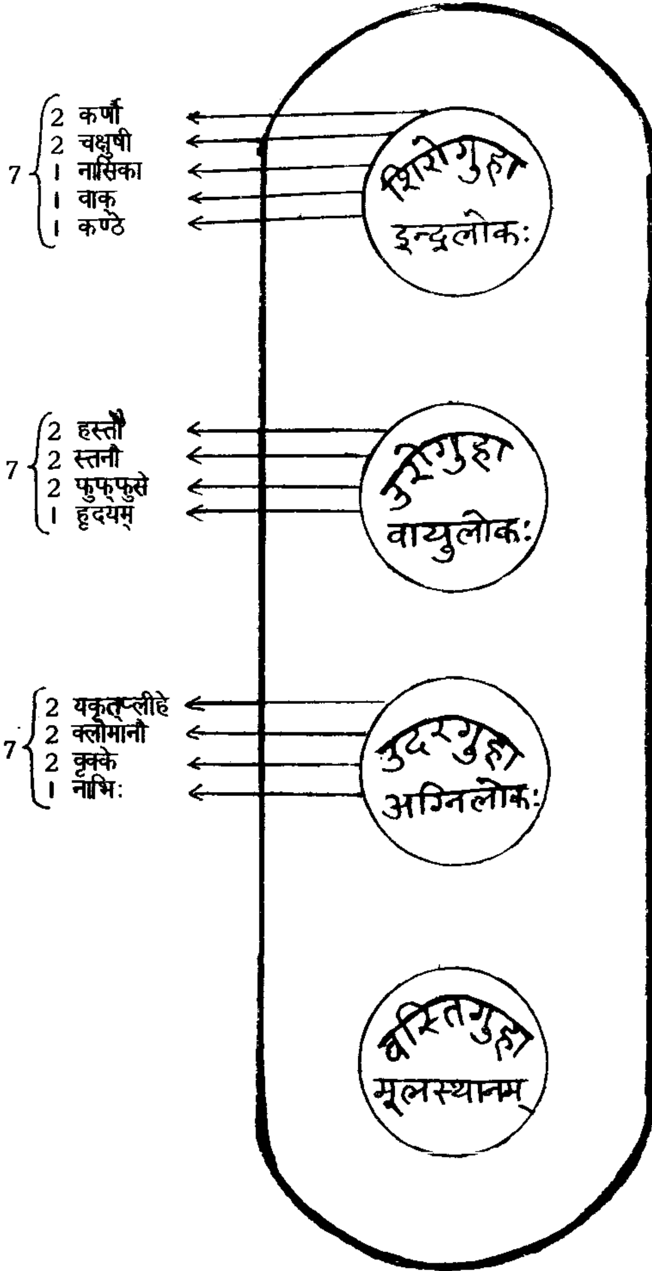
हिमालय पर्वत से अलतायि पर्वत तक का जो मध्यभाग है, वह वायुलोक है। इस प्रकार इस पृथ्वी पर यही त्रैलोक्य समझना चाहिये ॥१२॥

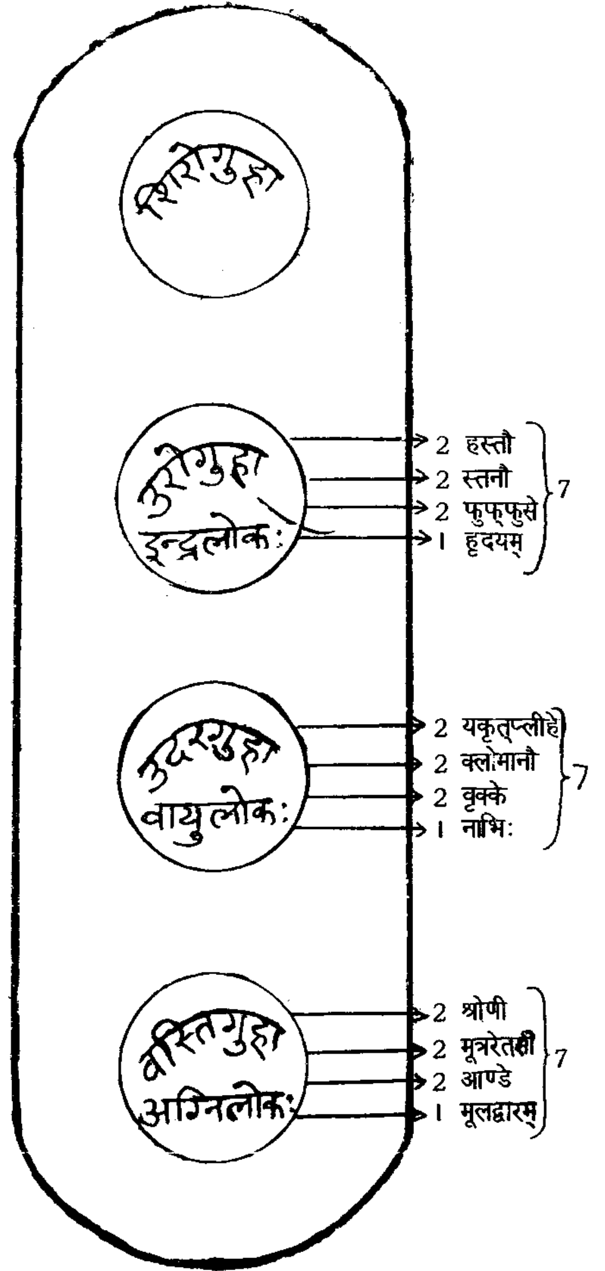
भारतवर्ष अग्नि लोक है तथा ऐरावत वर्ष दूसरा इन्द्र लोक है। इन दोनों के मध्य वायुलोक है, जिसमें देवता निवास करते हैं ॥१३॥

पुराणों में श्रृङ्गिपर्वत के उत्तर भाग को उत्तर कुरुप्रदेश कहा गया है, जबकि महाभारत के भीष्म पर्व में यह प्रदेश नीलगिरि के उत्तर भाग में बताया गया है। ॥१४॥

इस त्रैलोक्यविभाजन को एक तालिका से स्पष्ट किया गया है, जिसमें दिव्य त्रिलोकी, शारीरिकत्रिलोकी तथा भौमत्रिलोकी स्पष्ट करते हुए बताया गया है कि भूपिण्ड से २१ स्तोम पर्यन्त अग्निवायुगर्भिता आदित्यमयी पृथ्वी है, जो अग्निलोक माना गया है। ३३ स्तोम पर्यन्त व्याप्त रहने वाला सोमगर्भित विष्णु है, जो वायुलोक है और ४८ स्तोम पर्यन्त ब्रह्मा है, यह द्यौः है। इसी प्रकार भौमत्रिलोकी दक्षिण समुद्र से उत्तर समुद्र पर्यन्त क्रमशः १-३२, ३३-४० तथा ३८-४८ उत्तर अक्षांश में विभाजित की गई है तथा शारीरिक त्रिलोकी दो प्रकार की बताई है, एक दैव त्रिलोकी और दूसरी आसुरी त्रिलोकी। विस्तृत रूप से इन तीनों त्रिलोकियों को आगे चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा रहा है।)

शारीरिक त्रैलोक्य





दैव - त्रैलोक्य

शिरोगुहा - द्यौः

उरोगुहा - अन्तरिक्ष

उदरगुहा - पृथिवी

आसुर - त्रैलोक्य

बस्तिगुहा - अग्निलोक

उदरगुहा - वायुलोक

उरोगुहा - इन्द्रलोक

भौमत्रैलोक्यवासिषु औपचारिकाः शब्दव्यपदेशाः ॥

भारतवर्षस्थानामासीत् क्लृप्तं मनुष्यदेवत्वम् ॥
उत्तरकुरुस्थितानां देवत्वं वा मरुत्त्वमन्येषाम् ॥१५ ॥
अग्नेः प्रजा मनुष्या भारतवर्षे नियन्त्रिता मनुना ॥
ऐन्द्री प्रजा तु देवा उत्तरकुरुषु स्थिता अभवन् ॥१६ ॥

भौमत्रैलोक्यवासियों में औपचारिक शब्दव्यवहार

भारतवर्ष मनुष्यदेवत्व से युक्त स्थान था। उत्तर कुरु प्रदेश में निवास करने वालों की देव संज्ञा हुई। अन्य सभी मरुत् कहलाये ॥१५ ॥

मनुष्य अग्निदेव की सन्तान थे, जो प्रजापति मनु द्वारा भारतवर्ष में नियंत्रित किये गये थे। इन्द्र की सन्तान देवता थे, जो उत्तर कुरु प्रदेश में निवास करते थे ॥१६ ॥

प्राचीनत्रैलोक्ये एशियादेशेऽद्यापि त्रैलोक्यविभागाभासः।

भौमं यत् त्रैलोक्यं तदिदानीमेशियानाम्ना ॥
ख्यातं तत्र च देवासुरसन्ताना वसन्त्यद्य ॥१७ ॥
अद्याप्येते देशास्त्रिधा विभक्ताः प्रदृश्यन्ते ॥
ते च त्रयोऽपि लोकाः प्रत्येकं स्युर्द्विधा भिन्नाः ॥१८ ॥
हिन्दुस्तानं पारस्तानं चेत्यस्ति दक्षिणतः ॥
चीनस्तातारो वा मध्ये रूसो द्विधोत्तरतः ॥१९ ॥

प्राचीन त्रैलोक्य एशिया देश में आज भी त्रैलोक्य-विभाग का आभास

प्राचीन काल में जो भौम त्रैलोक्य था वह वर्तमान में एशिया नाम से प्रसिद्ध है, वहाँ आज भी देवों और असुरों के वंशज निवास करते हैं ॥१७ ॥

आज भी ये देश तीन भागों में विभक्त दिखाई देते हैं, वे तीनों लोक भी प्रत्येक दो दो भागों में विभक्त हैं ॥१८ ॥

दक्षिण की ओर हिन्दुस्तान और पारस्तान विभाग है, मध्यभाग में चीन और तातार तथा उत्तर की ओर रूस देश दो भागों में विभक्त है ॥१९ ॥

तातारस्य रूसदेशस्य च पुरायुगे भौमस्वर्गत्वम्।

क्षुद्रैशियान्ततः प्राक् चीनात् प्रत्यक् तु विष्टपं ब्राह्मम्॥
सर्कैशियादिपश्चिमरूसप्रान्तोऽत्र विष्टपं विष्णोः॥२०॥
आसीद् विष्टपमैन्द्रं प्राग् रूसः सायिवीर्य्याख्यः॥
इत्थं प्रसिध्यति स्म त्रिविष्टपं स्वर्गलोकोऽसौ ॥२१॥

तातार तथा रूस देश प्राचीन काल में भौम स्वर्ग माने गये हैं

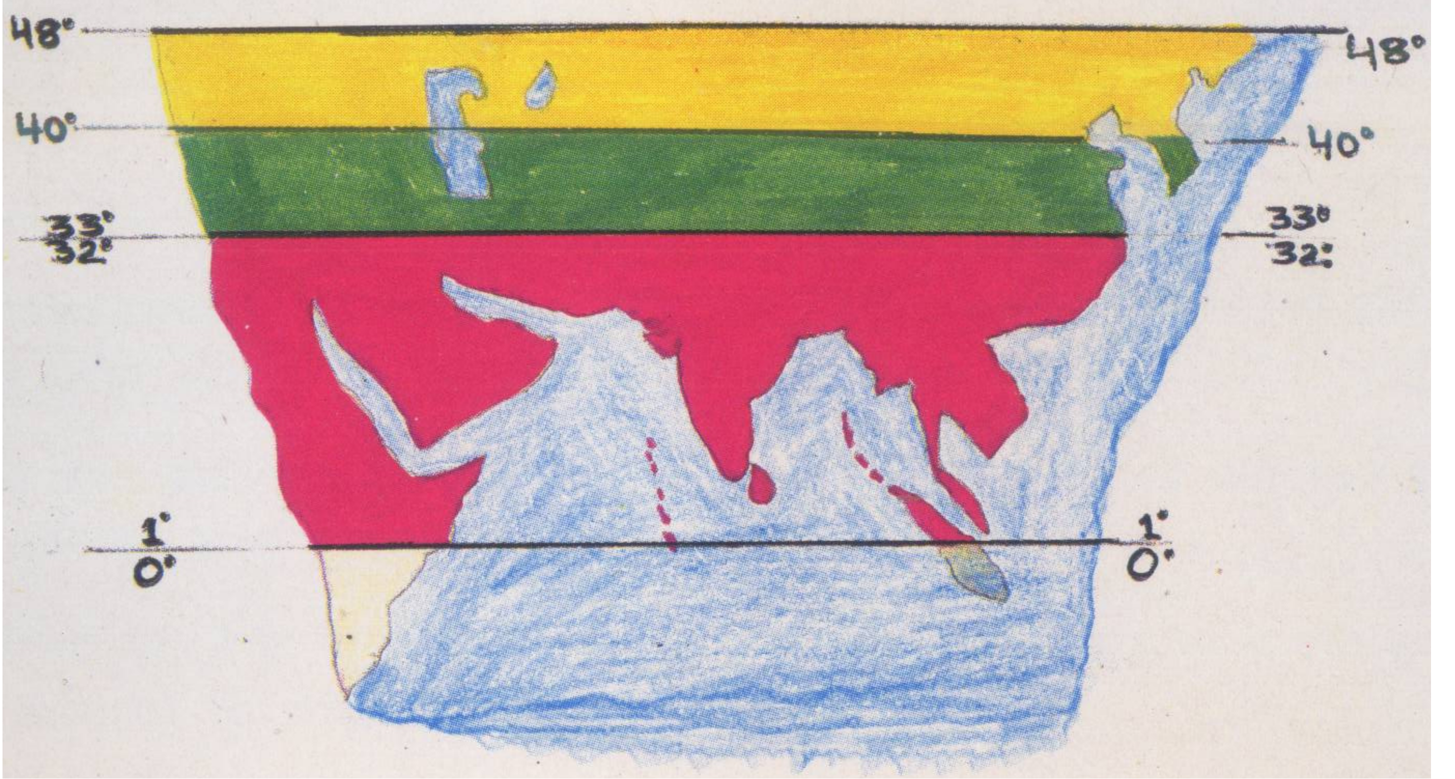
क्षुद्रैशिया (एशिया माइनर) से पूर्व तथा चीन से पश्चिम तक का भाग ब्रह्मा का स्थान (विष्टप) था तथा सर्कैशिया से पश्चिम रूस तक का प्रदेश विष्णु का स्थान था ॥२०॥

प्राचीनकाल में रूस का साइबीरिया नामक प्रदेश इन्द्र का विष्टप कहा गया है। इस प्रकार यह तीनों देवों का स्थान होने के कारण त्रिविष्टप के नाम से प्रसिद्ध था, यही स्वर्गलोक था ॥२१॥

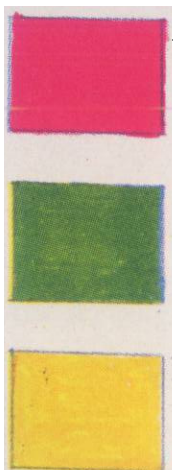
सायिवीरियोत्तरीयकतिचिद्भागस्य समुद्रमग्नत्वम्।

यावानद्य स रूसस्तावानखिलः पुराऽभवत् स्वर्गः॥
अपराजिता दिगेषा यो देशः सायिवीरिया नाम॥२२॥
इह सायिवीरियासौ यद्यप्यद्यास्त्यसभ्यजनताढ्या॥
कृच्छ्रप्रधानभूमिः किन्त्वासीत् सा न चेदृशी पूर्वम्॥२३॥
इह सायिवीरियातो यदुदक्प्रान्ते समुद्रतटम्॥
यश्च समुद्रप्रान्तो भूरितुषारावृतोऽद्यास्ति ॥२४॥
न्यू सायिवीरिया या प्रसिध्यति म्लेच्छभाषायाम्॥
तत्र पुराऽसीन्नगरं सोद्यानं विबुधजनताढ्यम्॥२५॥
अपि वनमासीन्नानावृक्षचितं पशुभिरावृतं बहुभिः॥
कालेन तत् तुषारप्रवर्षणाद् भ्रंशमायातम् ॥२६॥
अत एव तत्र कूले समुद्रगर्भे कदा च लभ्यन्ते॥
मेमाथनामकरिणां दन्ता बहुधाऽस्थिपञ्जरा अपि वा ॥२७॥
सपादषड्ढस्तमितः स उच्चः पादोनितैकादशहस्तदीर्घः॥
सपादषड्ढस्तमितेन दन्तद्वयेन मेमाथकरी युतोऽभूत् ॥२८॥
दन्तोऽस्य वक्रो महिषस्य श्रृङ्गवत् कृष्णानि लोमानि तनौ तथोर्णवत्॥
न चेदृशः सप्रति दृश्यते करी यथा स मेमाथकरी पुराऽभवत्. ॥२९॥
एकोदराश्च द्विशिरोधराः पुरा भेरुण्डनामान इहाभवन् खगाः॥
न चेदृशाः संप्रति पक्षिणः क्वचिद् दृश्यन्त आद्ये तु युगे यथा श्रुताः॥३०॥

भौम त्रैलोक्य



अधिभूत त्रिलोकी में –



पृथिवी लोक अग्नि लोक 1–32° उ.अ.	–	दक्षिण समुद्र से हिमालय पर्यन्त भारतवर्ष इस भौम त्रिलोकी का पृथिवी लोक है
अन्तरिक्ष लोक वायु – लोक 33–40° उ.अ.	–	हिमालय से अलतायि गिरि पर्यन्त इस भौम त्रिलोकी का अन्तरिक्ष लोक है ।
द्युलोक इन्द्र लोक 40–48° उ.अ.	–	अलतायि पर्वत से उत्तर समुद्र पर्यन्त इस भौम त्रिलोकी का द्युलोक है ।

विज्ञायते तेन पुरा युगेऽभवद् वनं पशुक्रान्तमिहोत्तराम्बुधेः ॥
स्थाने जनानां च पुराणि भूयसा तत्रैव सन्ति स्म च तर्हि देवताः ॥३१॥

साइबीरिया के उत्तर के कुछ भाग का समुद्र मग्न हो जाना

आज जितना रूस देश है उतना सम्पूर्ण प्रदेश प्राचीन काल में स्वर्ग था तथा जो देश साइबीरिया के नाम से कहा जाता है वह दिशा अपराजिता (उत्तर पूर्व) दिशा थी ॥२२॥

इसी साइबीरिया में यद्यपि आज असभ्य लोग निवास करते हैं, तथा यह भूभाग अत्यन्त कष्टप्रद है तथापि प्राचीन समय में यह इस प्रकार का नहीं था ॥२३॥
इस साइबीरिया से उत्तर भाग में जो समुद्र तट है और जो समुद्री प्रदेश है वह आज अत्यधिक मात्रा में बर्फ से ढका हुआ है ॥२४॥

जो भाग म्लेच्छ (अनार्य अथवा विदेशी) भाषा में "न्यू सायिबीरिया" के नाम से प्रसिद्ध है वहाँ प्राचीन काल में जनबाहुल्य से युक्त नगर तथा उपवन थे ॥२५॥

यहाँ अनेक वृक्षों से घिरे हुए वन थे और यह प्रदेश अनेक पशुओं से घिरा हुआ था, परन्तु धीरे धीरे समय व्यतीत होने पर हिमपात से नष्ट हो गया ॥२६॥

इसीलिए वहाँ समुद्र के किनारे तथा समुद्र के अन्दर मेमाथ नाम के हाथी के दाँत तथा उनके अस्थिपंजर भी प्राप्त होते हैं। ॥२७॥

यह मेमाथ हाथी सवा छः हाथ ऊँचा और पौने ग्यारह हाथ लम्बा तथा सवा छः हाथ लम्बे दो दाँतों से युक्त होता था ॥२८॥

इस मेमाथ हाथी के दाँत भैंसे के सींग के समान टेढे होते थे, शरीर पर ऊन के समान काले बाल होते थे। वर्तमान समय में इस प्रकार का कोई हाथी उपलब्ध नहीं होता है ॥२९॥

प्राचीनकाल में इस प्रदेश में भेरुण्ड नाम के पक्षी होते थे, जिनके एक पेट और दो सिर होते थे। आज के युग में तो इस प्रकार के पक्षी कहीं दिखाई नहीं देते हैं, जैसे कि सुने जाते थे ॥३०॥

इससे सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में इस उत्तर समुद्री प्रदेश में पशुओं से व्याप्त जंगल था। इस उत्तर समुद्री प्रदेश पर अनेक लोगों के नगर थे, जहाँ देवता निवास करते थे ॥३१॥

स्वर्गीयविष्टपत्रयविध्वंसे दैवो हेतुः।

नाकस्थविष्णोः परितस्तु वेद दृग् व्यासार्धजे सञ्चरति ध्रुवं ध्रुवः ॥
वृत्ते ध्रुवस्तत्र तथा पुरा युगे प्राग्मेरुखस्वस्तिकगोभिजित्यभूत् ॥३१॥

ध्रुवादधस्तादतिशय्य शैत्यं प्रवर्तते तेन तदा पुरात्वे ।।
प्राग् मेरुदेशे बहुशैत्यमासीत् नतूत्तराम्भोधितटप्रदेशे ।।३३ ।।
एष ध्रुवो जनयते च तुषारवर्षा विभ्रंशयत्यपि पुरातनवासिलोकान् ।।
तौषारवर्षणवशादिव नाशमायन् प्राग् मेरुगाः क्वचिदुदक्कुरुभूमिपिण्डाः ।।३४ ।।

स्वर्ग के तीनों विष्टपों (निवासों) के नष्ट होने में प्रमुख रूप से दैव ही कारण

नाक बिन्दु (वह कदम्ब बिन्दु है, जो ध्रुव के परिभ्रमण वृत्त के ठीक मध्य का बिन्दु अथवा केन्द्र स्थल है, जिस धुरी पर यह ध्रुव संचरण करता है) पर स्थित विष्णु पद (यह कदम्बवृत्त विष्णु का स्थान "तद् विष्णोः परमं पदम्" बताया गया है) के चारों ओर २४ अंश के व्यासार्द्ध पर यह ध्रुव संचरण करता है। इसलिए प्राचीन समय में यह ध्रुव पामीर के खस्वस्तिक (इस कदम्ब वृत्त को केन्द्र मानकर चारों दिशाओं में २४-२४ अंश का जो स्वस्तिक बनाता है, वही उल्टा करने पर आकाशमण्डल पर २४-२४ अंश का स्वस्तिक बनाता है, वही ख-स्वस्तिक है) पर अभिजित् नक्षत्र में था ।।३२ ।।

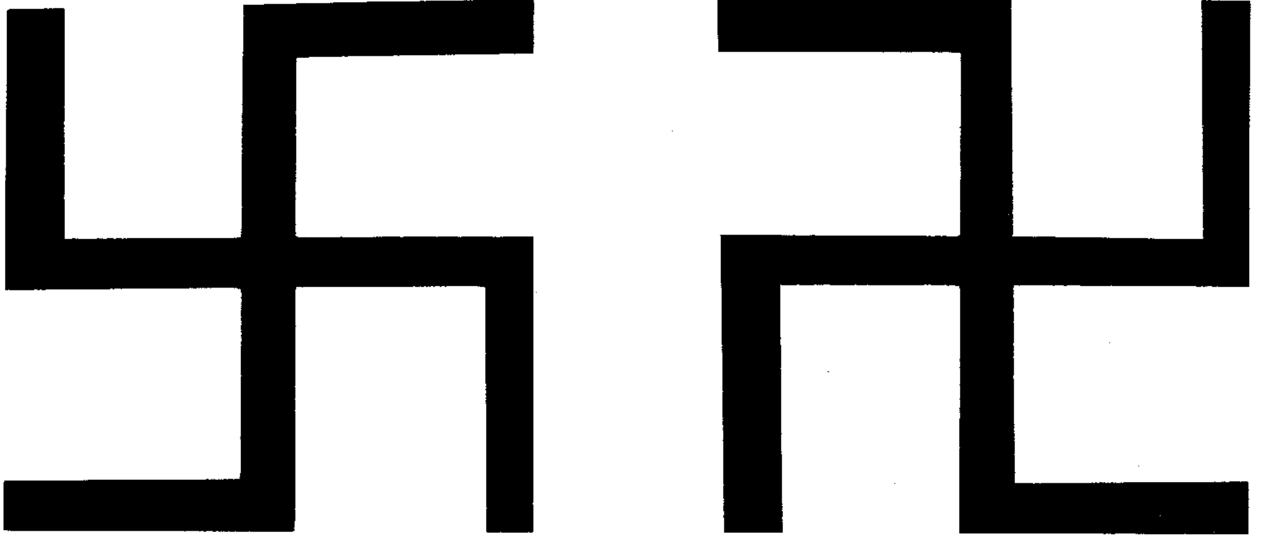
ध्रुव के ठीक नीचे शैत्याधिक्य होता है। इसलिए प्राचीन समय में उस पामीर प्रदेश में ठण्ड अधिक पड़ती थी न कि उत्तरी समुद्र तक के प्रदेश में ।।३३ ।।

यह ध्रुव हिम की वर्षा करता है। इसीलिए प्राचीनकाल के लोगों को तुषारवर्षा ने नष्ट कर दिया था। इसी तुषारवर्षा के फलस्वरूप ही प्राग मेरुप्रदेश के लोग तथा उत्तर कुरु भूमि का भाग नष्ट हो गया ।।३४ ।।

विज्ञाने दिव्याया इवेतिहासे भौम्यास्त्रिलोक्या व्यवहारः।

इत्थं त्रिलोकी त्रिविधा निरुक्ता दिव्या च भौमी च शरीरगा च ।।
त्रिधाग्निभिः सा शवसोनपाद्भिर्धृता पृथग् देवनिकायपूर्णा ।।१ ।।
विज्ञानभाषासु यदि त्रिलोकीप्रसंग आयाति स दिव्य एव ।।
ऐतिह्यभाषासु यदि त्रिलोकीप्रसङ्ग आयाति स भौम एव ।।२ ।।
दिव्यत्रिलोकीमनु दिव्यदेवा भौमत्रिलोकीमनु भौमदेवाः ।।
ऐतिह्यमत्र प्रवदामि तस्माद् भौमा हि भाव्या इह लोकदेवाः ।।३ ।।
ब्रह्मा गुरुः शिक्षयतीह विद्यया शक्रः प्रभुः शास्त्यनुगृह्य वा बलैः ।।
विष्णुः सुहृद् यज्ञजसंपदाऽवति त्रयोऽपि भौमा इतिहासगा इह ।।४ ।।
विज्ञानेऽस्ति यथैतेषु त्रिषु सर्वं प्रतिष्ठितम्।
तथेह भौमस्वर्गेऽपि त्रिषु तेष्ववलम्बितम् ।।५ ।।

पार्थिवस्वस्तिमण्डलम्　　　　　　　　ख-स्वस्तिमण्डलम्



ये दोनों पार्थिवस्वस्तिक और ख-स्वस्तिक परस्पर मिलकर पूर्ण ब्रह्माण्ड-स्वरूप का निमार्ण करते हैं, जिनका श्रीमद्भागवत में दो दल (चने की दाल) के रूप में वर्णन किया है - "एतेन हि दिवो मण्डलमानं तद्विद उपदिशन्ति यथा द्विदलयोर्निवापादीनां ते ते अन्तरेणान्तरिक्षं तदुभयसन्धितम्" (भा.म.पु. ५/२१)

यही ख-स्वस्तिक पुराकाल में प्राग्-मेरू पर स्थित था, जहाँ अभिजित् में ध्रुव संचरण करता था।

विज्ञान के इतिहास में इसी दिव्य त्रिलोकी के समान भौम त्रिलोकी का भी व्यवहार

इस प्रकार तीन प्रकार की त्रिलोकी बताई गई है —दिव्य, भौम और शारीर त्रिलोकी। शवसोनपातः (बल को न गिरने देने वाली अध्यक्ष) तीनों अग्नियों के द्वारा धारण की हुई अलग अलग देवताओं के निवास से परिपूर्ण हैं ॥१॥

विज्ञान की भाषा में जहाँ त्रिलोकी प्रसंग आता है, वहाँ दिव्य त्रिलोकी ही समझना चाहिये। यदि इतिहास की भाषा में त्रिलोकी का प्रसंग आता है तो वह भौम-त्रिलोकी ही मानना चाहिये ॥२॥

दिव्य त्रिलोकी से दिव्य देवों का संबंध है, भौम-त्रिलोकी भौम देवों से सम्बद्ध है। यहाँ हम इनका इतिहास बताते हैं कि लोकदेवों से तात्पर्य इस लोक में निवास करने वाले भौम देवों को ही समझना चाहिये ॥३॥

इस लोक में ब्रह्मा गुरु रूप में विद्या से शिक्षित करते हैं, इन्द्र अपने शौर्य से प्रजा पर शासन करता है अथवा अनुग्रह करता है। विष्णु मित्रवत् यज्ञ से उत्पन्न सम्पत्ति से रक्षा करता है। इस प्रकार इतिहास बताते समय ये तीनों ही भौमत्रिलोकी के देव हैं, ऐसा मानना चाहिये ॥४॥

विज्ञान में जिस प्रकार इन्हीं तीनों में सब कुछ प्रतिष्ठित हैं, उसी प्रकार इस भूलोक के स्वर्ग में इन्हीं तीनों देवों पर सब कुछ आश्रित है ॥५॥

भारतवर्षस्य भौमत्रैलोक्यान्तर्गतपृथ्वीलोकत्वम्।

***दिवमधिजगुर्बुधा यां पूर्वयुगे सा बभूव वसुधायाम्॥**
उत्तरमेरौ स्वर्गस्तत्र स वसति स्म देवतावर्गः ॥१॥
दक्षिणतः प्राग् मेरोरिरावतीनिर्गमाद् गिरेस्तूदक्॥
अयमन्तरिक्षलोको वसतिः सा देवयोनीनाम् ॥२॥
देशो य उदग् विषुवत इरावतीनिर्गमाद् गिरेस्त्वर्वाक्॥
तदिदं भारतवर्षं पृथ्वीलोकस्त्रिलोक्यां सः ॥३॥
भारतवर्षं मानुषदेशः शिखिशशिरविकुलजोऽत्र नरेशः॥
धेनुभिरन्नधनैरपि धन्यः स हि देशानामिह मूर्द्धन्यः ॥४॥

---

* भारद्वाज उवाच— अस्माल्लोकात्परो लोकः श्रूयते नोपलभ्यते॥ तमहं ज्ञातुमिच्छामि तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥१॥ भृगुरुवाच। उत्तरे हिमवत्पार्श्वे पुण्ये सर्वगुणान्विते॥ पुण्यः क्षेम्यश्च यो देशः स परो लोक उच्यते ॥२॥स स्वर्गसदृशो देशः तत्र युक्ताः शुभा गुणाः। काले मृत्युः प्रभवति स्पृशन्ति व्याधयो न च ॥३॥ भारत॰शान्ति॰प॰ मोक्षधर्मे

यावान् मनुष्यलोकः सा पृथ्वी तच्च भारतं वर्षम् ॥
तत्र च मनुष्यशब्दः पृथ्वीशब्दश्च लाक्षणिकः ॥५ ॥

इति भारतपरिचये त्रैलोक्यप्रसंगः समाप्तः ॥१ ॥

भौम त्रिलोकी के अन्तर्गत भारतवर्ष की पृथ्वीलोक के रूप में स्थापना

*प्राचीनकाल में विद्वान् महापुरुष जिस स्वर्ग-स्थली पर गये थे वह स्थली इस पृथ्वी पर ही थी। इस पृथ्वी के ही उत्तर मेरू प्रदेश पर स्वर्ग था, जहाँ देवता लोग निवास करते थे ॥१ ॥

पामीर के दक्षिण की ओर इरावती नदी के उद्गम पर्वत के उत्तर की ओर यह अन्तरिक्ष लोक है, यह देवयोनियों (अतिमानवों अथवा उपदेवों) का निवास स्थान है ॥२ ॥

जो प्रदेश विषुवत् रेखा के उत्तर की ओर तथा इरावती नदी के उद्गम प्रदेश से नीचे की ओर का स्थान है, वह भौमत्रिलोकी में पृथ्वीलोक कहलाता है, वह भारतवर्ष है ॥३ ॥

यह भारतवर्ष मनुष्यों का देश है, जहाँ अग्नि, सूर्य और चन्द्र वंश के राजा राज्य करते थे। यह देश अन्न धन और गोधन से समृद्ध था और इसीलिए समस्त देशों में इस देश का सर्वश्रेष्ठ स्थान था ॥४ ॥

जितना भाग मनुष्यलोक है, वही पृथ्वी लोक है और वही भारतवर्ष है। यहाँ 'मनुष्य' शब्द तथा 'पृथ्वी' शब्द लाक्षणिक शब्द हैं ॥५ ॥

इस प्रकार भारत-परिचय में त्रैलोक्य-प्रसंग समाप्त हुआ ॥१ ॥

---

* भारद्वाज बोले — इस लोक से आगे भी लोक सुना जाता है, परन्तु उपलब्ध नहीं होता है। उस लोक को मैं जानना चाहता हूँ, जिसे आप ही कह सकते है। भृगु बोले— उत्तर में पुण्य और समस्त गुणों से युक्त हिमालय पर्वत के बगल में जो पुण्य और कल्याणकारी प्रदेश है, वही परलोक कहा जाता है। वह देश स्वर्ग तुल्य है, शुभ गुणों से युक्त स्थान है। वहाँ मृत्यु समय पर होती है तथा वहाँ के लोगों को व्याधियाँ स्पर्श भी नहीं करती हैं।

(भारत, शान्तिपर्व, मोक्षधर्म)

नामधेयप्रसङ्गः ॥२॥

भारतवर्षस्य चत्वारि नामानि।

(४) (१)
यदिदं भारतवर्षं स्कान्दे तन्नाभिवर्षमप्युक्तम्।
(२) (३)
आर्षभवर्षं चान्यैर्हैमवतं वर्षमप्यन्यैः ॥१॥
भरतस्यायं देशस्तस्माद् भारत इति प्रथितः ॥
भरतं त्वेतमनेकं स्मरन्ति पौराणिकाः सर्वे ॥२॥

नामधेय-प्रसंग

भारतवर्ष के चार नाम

स्कन्दपुराण में इस भारतवर्ष को नाभिवर्ष भी कहा गया है। अन्य कुछ लोगों के द्वारा आर्षभवर्ष तथा अन्य लोगों के द्वारा हैमवतवर्ष भी कहा गया है॥१॥

यह भरत का देश है, इसलिए भारत नाम से प्रसिद्ध हुआ। सभी पौराणिक इस 'भरत' नाम से अनेक व्यक्तियों का स्मरण करते हैं॥२॥

(१) भारतशब्दव्यपदेशे मतचतुष्टये पौराणिकं प्रथमं मतम्।

स्वायंभुवस्य हि मनोराग्नीध्रः सूनुरस्य नाभिस्तु ॥
नाभेर्ऋषयस्तस्माद् भरतस्तस्यैष देशोऽभूत् ॥३॥

१—"आग्नीध्रसूनोर्नाभेस्तु ऋषभोऽभूत् सुतो द्विजः ॥
ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताद्वरः ॥४॥
हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय पिता ददौ ॥
तस्मात्तु, भारतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः" ॥५॥ (इति मार्क० अ० ५०)

२—ततश्च भारतं वर्षमेतल्लोकेषु गीयते ॥
"भरताय यतः पित्रा दत्तं प्रातिष्ठता वनम्" ॥६॥ (इति वैष्णवे १ अ० २ अ० ३२ श्लो०)

३—"नाभेः पुत्रश्च ऋषभ ऋषभाद् भरतोऽभवत् ॥
तस्य नाम्ना त्विदं वर्षं भारतं चेति कीर्त्यते" ॥७॥ (इति स्कान्दे माहे० कौमार ३७ अ०)

(२) पौराणिकं द्वितीयं मतम्।

विदुरपरे दौष्यन्तिर्भरतः शाकुन्तलेयो यः ॥
वीरः स सर्वदमनस्तन्नाम्ना देश एषोऽस्ति ॥१॥

१—"तंसुरोधाच्च दुष्यन्तो दुष्यन्ताद् भरतोऽभवत् ॥
शकुंतलायां तु बली यस्य नाम्ना तु भारताः" ॥२॥ (अग्निपु० २७८)
एष जगद्विजयीति प्रथितो वेदे पुराणे च ॥
काण्डे त्रयोदशे सोऽश्वमेधकृच्छतपथश्रुतावुक्तः ॥३॥

२—"अष्टा सप्तति भरतो दौष्यन्तिर्यमुनामनु ॥
गङ्गायां वृत्रघ्नेऽबध्नात्पञ्चपञ्चाशतं हयान् ॥४॥
शकुन्तला नाडपित्त्यप्सरा भरतं दधे ॥
पुरा सहस्त्रानिन्द्रायाश्वान् मेध्यान् य आहरत् ॥
विजित्य पृथ्वीं सर्वाम् ॥५॥
महदद्य भरतस्य न पूर्वे नापरे जनाः ॥
दिवं मर्त्य इव बाहुभ्यां नोदापुः पञ्चमानवाः" ॥६॥ (शतपथे१३कां०)
स्कान्दे प्रभासखण्डे द्वासप्ततिशततमेऽध्याये ॥(१७२)
यत्वार्षभभरतस्याश्वमेधकर्तृत्वमित्थमाख्यातम् ॥७॥
तत इह भिन्नं मन्ये तमश्वमेधं यमाहरद् भरतः ॥
दौष्यन्तिः संख्याया भेदाद् वेदे पुराणे च ॥८॥

३—"भरतो नाम राजाऽऽसीदाग्नीध्रः प्रथितः क्षितौ ॥
यस्येदं भारतं वर्षं नाम्ना लोकेषु गीयते ॥९॥
षट्पञ्चाशदश्वमेधान् गङ्गामनु चकार यः (५६) ॥
त्रयस्त्रिंशद् यमुनाप्रान्ते (३०) भरतो लोकपूजितः" ॥१०॥
भरतस्यैताः कीर्तेर्गाथाः पूर्वैः पुरा गीताः ॥
भरतो हीमां पृथिवीं मनुष्यलोकं शशास चिरमेतम् ॥११॥
तन्नाम्नायं देशो भारत इति विश्रुतो लोके ॥
पौराणिकमतमेतत्सा भरताय प्रशस्तिचाटूक्तिः ॥१२॥
भरतेनैतेनैते न भारता इति किल श्रुता देशाः ॥
कुलमेव तेन भारतमस्योक्तं भारताख्याने ॥१३॥

४—"दुष्यन्तस्तु ततो राजा पुत्रं शाकुन्तलं तदा ॥
भरतं नामतः कृत्वा यौवराज्येऽभ्यषेचयत् ॥१४॥
स राजा चक्रवर्त्यासीत् सार्वभौमः प्रतापवान् ॥
भरताद्भारती कीर्तिर्येनेदं भारतं कुलम् ॥१५॥ (आदिप०अ० ७४)

भारतशब्द-प्रयोग के चार मतों में से पौराणिकों का प्रथम मत

स्वायम्भुव मनु के "आग्नीध्र" नाम के पुत्र हुए, आग्नीध्र के नाभि, नाभि के ऋषभ हुए और उनके पुत्र भरत हुए, जिनका यह देश हुआ अर्थात् इन्हीं भरत के नाम से यह देश "भारत" कहलाया ॥३ ॥

१—हे द्विज ! आग्नीध्र के पुत्र नाभि हुए, उनके पुत्र ऋषभ और ऋषभ के भरत नाम का पुत्र हुआ, जो सौ पुत्रों में सर्वश्रेष्ठ था ॥४ ॥

"हिम" नाम का दक्षिण वर्ष अर्थात् "हैमवतवर्ष" नाम का देश पिता ने भरत को दिया। उस भरत नाम के महात्मा के नाम से ही यह भारतवर्ष प्रसिद्ध हुआ ॥५ ॥ (मार्क.अ.५०)

२—इसी भरत से ही यह भारतवर्ष इन लोकों (तीनों लोकों) में प्रसिद्ध हुआ। विष्णु पुराण में लिखा है —"भरत के पिता ने वन में प्रस्थान करते समय भरत को यह देश प्रदान किया था ॥६ ॥ (विष्णु. अ. २.अं. ३२ श्लोक)

३—नाभि के पुत्र "ऋषभ" और ऋषभ के पुत्र भरत हुए, उसी के नाम से यह देश "भारतवर्ष" के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥७ ॥ (स्कन्द. माहे. कौ. ३७ अ.)

(२) द्वितीय पौराणिक मत

१—अन्य लोगों के मत के अनुसार जो दुष्यन्त और शकुन्तला का पुत्र भरत था वह समस्त शत्रुओं का दमन करने वाला था, उसी के नाम से यह देश भारत देश है ॥१ ॥

अग्निपुराण में लिखा है — तंसुरोध का पुत्र दुष्यन्त, दुष्यन्त से शकुन्तला के बलवान् पुत्र भरत हुआ, जिसके नाम से इस देश का नाम "भारत" पड़ा ॥२ ॥ (अग्निपुराण२७८)

यह भरत जगद्-विजयी (चक्रवर्ती) था, ऐसा वेद और पुराणों में प्रदर्शित किया गया है। "शतपथ" के तेरहवें काण्ड में यह भरत अश्वमेध यज्ञ करने वाला बताया गया है ॥३ ॥

२—"शतपथ" में लिखा है — दुष्यन्त के पुत्र भरत ने "वृत्रघ्न" इन्द्र के लिए अठहत्तर घोड़े यमुना के किनारे तथा पचपन घोड़े गंगा के किनारे बांधे अर्थात् इतनी संख्या में अश्वमेध यज्ञ किये ॥४ ॥

नाडपित्ति नाम की अप्सरा ने भरत को धारण किया (जन्म दिया), जिसने प्राचीनकाल में सम्पूर्ण पृथ्वी को जीत कर एक हजार अश्वमेध यज्ञ किये ॥५ ॥

आज पूर्व काल अथवा उत्तर काल के कोई भी जन भरत की कीर्ति को नहीं पा सकते हैं तथा मर्त्य लोक के प्राणी सातों मन्वन्तर में होने वाले मनुष्य, ऋषि और महर्षि इत्यादि भी द्युलोक को अपने हाथों से अथवा पांवों से प्राप्त नहीं कर सकते हैं। ॥६ ॥ (शतपथ. १३ कां॰) (प्रस्तुत श्लोक शतपथ से लिया गया है, जहां मूल में "पंचमानवा: और "बाहुभ्यां" के स्थान पर क्रमश: "सप्तमानवा:" और "पद्भ्यां" पाठ मिलता है।

स्कन्द पुराण के प्रभास खण्ड के १७२वें अध्याय में ऋषभ के पुत्र भरत द्वारा किये गये अश्वमेध यज्ञ का इस प्रकार वर्णन किया गया है ॥७॥

वेद और पुराण में संख्याभेद होने से दुष्यन्तपुत्र भरत ने जो अश्वमेध यज्ञ किये गये उन्हें मैं इनसे भिन्न मानता हूँ ॥८॥

३— इस पृथ्वी पर यज्ञकार्यों को करने वाला आग्नीध्र (भरत) नाम का राजा प्रसिद्ध हुआ है, जिसके नाम से इस भारतवर्ष की कीर्ति संसार भर में गायी जाती है ॥९॥

इस भरत ने ५६ अश्वमेध गंगा के किनारे तथा ३३ अश्वमेध यमुना के किनारे सम्पन्न करके संसार में सम्मान को प्राप्त किया ॥१०॥

प्राचीनकाल में लोगों ने इसी भरत की यशोगाथा गायी थी। इसी भरत ने इस मनुष्य लोक (पृथ्वी) पर चिरकाल तक शासन किया ॥११॥

उसी भरत के नाम से यह देश "भारत" कहलाया, ऐसा संसार भर में प्रसिद्ध है। पौराणिकों के मत में इस प्रकार भरत की प्रशंसा में अनेक उक्तियाँ कही गई हैं ॥१२॥

इसी भरत के नाम से यह देश भारत नहीं कहलाया अपितु महाभारत में लिखा है कि इस भरत के नाम से इस कुल में उत्पन्न होने वाले सभी लोग भारत कहलाये ॥१३॥

४— महा. भा. के आदिपर्व में लिखा है — " तब राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला के पुत्र भरत को उसके नाम से अर्थात् "भारत" नाम से युक्त करके युवराज पद पर अभिषिक्त किया" ॥१४॥

वह राजा सर्वशक्तिमान्, यशस्वी तथा चक्रवर्ती राजा था। भरत से ही भारतवर्ष की कीर्ति विश्व भर में फैली और इसी से यह भरतवंश भारत कहलाया ॥१५॥ (आदिपर्व/अ.७४)"

(३) वैदिकमतानुसन्धानम्।

१—"ब्रूमो वयं तु पूर्वं देवयुगेऽप्यत्र मानुषे लोके॥
अग्निर्भरतोऽधिपतिर्नियुक्त इन्द्रेण मनुरासीत्॥१॥
२—आसीद् व्यवस्थितं तु त्रैलोक्यं यत्र देवयुगे॥
तत्र च भारतवर्षं पृथ्वीमाहुर्मनुष्यलोकः स॥२॥
३—स्वर्गेश्वरो यथेन्द्रो यथान्तरिक्षेश्वरो वायुः॥
पृथ्वीश्वरस्तथाऽग्निर्भरत इति ह्यस्य नामासीत्॥३॥

४—देवेश्वरो यथेन्द्रो वायुरयं देवयोनीशः॥
अग्निस्तथा मनुष्येश्वरो मतो भारतो नाम्ना ॥४॥
५—शवसोनपात एते दिवि मरुतो वायुरन्तरिक्षेऽस्मिन्॥
भूमावग्निर्भारत एवं वरुणः समुद्रेऽप्सु ॥५॥

६—"दिवा यान्ति मरुतो भूम्याऽग्निरयं वातो अन्तरिक्षेण याति ॥
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रैर्युष्मानिच्छन्तः शवसोनपातः" ॥६ ॥(ऋ० सं०
१ ।१६१ ।२४)
७—ऋग्वेदस्य तुरीयकमण्डलसूक्ते हि पञ्चविंशतिके ॥ (४ ।२५ ।४)
भारत इत्याख्यातं नामाग्नेर्भूमनुष्यलोकपतेः ॥७ ॥
८—"तस्मा अग्निर्भारतः शर्म यं सज्योक् पश्यात्सूर्य्यमुच्चरन्तम् ॥
य इन्द्राय सुनवामेत्याह नरे नर्य्याय नृतमाय नृणाम्" ॥८ ॥(४ ।२५ ।४)
९—अपि च यजुर्वेदस्यावृति चोक्तो दर्शपूर्णमासेष्टौ ॥
*अपि सामिधेन्यकर्मणि उपमदनं भारतस्याग्नेः ॥९ ॥

(३) वैदिक मत का परीक्षण

१— वैदिकों का मत है — हम कहते हैं कि प्राचीन देवयुग में इन्द्र ने मनुष्यलोक का अधिपति भरत रूप अग्नि को नियुक्त किया , वही अग्नि मनु था ॥१ ॥

२— देवयुग में जिस भौम त्रैलोक्य की व्यवस्था की गई थी, उसमें भारतवर्ष को पृथ्वीलोक कहा गया था और यही मनुष्यलोक है ॥२ ॥

३—जिस प्रकार स्वर्ग का स्वामी इन्द्र है तथा वायु को अन्तरिक्ष का अधिपति बताया गया है, उसी प्रकार पृथ्वी का अधिपति अग्नि है और इस अग्नि का नाम ही भरत है ॥३ ॥

४— जिस प्रकार देवताओं का स्वामी इन्द्र है तथा देवयोनि (यक्ष, गन्धर्वादि मनुष्य देव) का स्वामी वायु है उसी तरह यह अग्नि मनुष्यों का अधिपति है और उसी अग्नि के नाम से भारत माना गया है ॥४ ॥

५— ये सभी देवता अपने अपने लोक के अध्यक्ष हैं, बल के रक्षक हैं। द्युलोक में मरूत् विचरण करते हैं, अन्तरिक्ष में वायुदेव और इसी तरह भूमि पर भारत (भरण करने वाला) अग्नि और समुद्र के जल में वरुण देव विचरण करते हैं ॥५ ॥

६—ऋग्वेद में लिखा है — हे बल के रक्षक, देदीप्यमान देवगण तुम्हें पाने की इच्छा करते हुए मरुद्गण द्युलोक से जाते हैं, अग्नि भूलोक से जाता है, वायु अन्तरिक्ष से जाता है तथा वरुण देव जल-प्रवाह में विचरण करता है ॥६ ॥ (१/१६१/१४)

७— ऋग्वेद के चौथे मण्डल के पच्चीसवें सूक्त में इस पृथ्वी लोक का, जो कि मनुष्यलोक है, अधिपति अग्नि ही भारत नाम से कहा गया है ॥७ ॥

---

* अत्रापिशब्दो दर्शपूर्णमासेष्टौ प्रयाजब्राह्मणेऽग्निनिविदुप-संग्रहार्थः॥ स यथा- "अग्निर्देवो दैव्यो होता देवान् यक्षद्विद्वांश्चिकित्वान् मनुष्यवद् भरतवद्-इति- अनेन यजुर्मन्त्रेण होतृत्रयप्रवरणे अग्निं प्रवृणीते। अत्राधिदैविक आध्यात्मिको वा प्राणोऽग्निर्भरतसंज्ञक एव। तद्वत्त्वात् तेन तादात्म्यविवक्षणाच्च मनुष्यलोकेश्वरस्य देवदूतस्याग्नेर्भरतवत्त्वं भारतत्वं भरतत्वं च विवक्षावशादिष्यते उभयथा व्यवहारदर्शनात् ॥

८— जो मनुष्यों का हित करने वाले, आगे ले जाने वाले तथा नेताओं में सर्वोत्तम हैं, ऐसे इन्द्र के लिए हम सोम रस निकालें, ऐसा कहते हैं। उसके लिए भरण पोषण करने वाला अग्नि सुख प्रदान करे तथा मनुष्य उदित होते हुए सूर्य का चिरकाल तक दर्शन करें ॥८॥ (४/२५/४)

*९—यजुर्वेद के आवरण में जो "दर्शपूर्णमासेष्टि" का वर्णन प्राप्त होता है, उसमें सामिधेन्य कर्म में भी भारत रूप अग्नि को जागृत (उपमर्दन) करते हैं ॥९॥

१०—अग्ने महां असि ब्राह्मण भारतेति॥
अस्मिन्निगदे मन्त्रे भरतोऽग्निः पठ्यते स देवेभ्यः॥
हव्यं भरति स्मेति ब्राह्मणवाग् भारतं ततः प्रथितम् ॥१०॥
११—अग्निर्वै भरतः। स वै देवेभ्यो हव्यं भरति॥
(इति कोषीतकिब्राह्मणम्)
एष हि देवेभ्यो हव्यं भरति तस्माद् भरतोऽग्निरित्याहुः॥
एष उ वा इमाः प्रजाः प्राणो
भूत्वा बिभर्ति तस्माद्वेवाह—भारतेति—तस्माद्वेवाहुः भरतवदिति ॥११॥
(इति वाजसनेयब्राह्मणम्)
१२—वैवस्वतमनुभिन्नो मनुरग्निरयं मनुष्यलोकेशः॥
भरतो नाम्ना तस्य च भवनानि त्रिषु समुद्रकूलेषु॥१॥
विवस्वद्दूतत्वमस्याग्नेः श्रूयते॥
१३—अग्निर्जातो अथर्वणा विदद्विश्वा न काव्या॥
भुवद्दूतो विवस्वतः॥ (ऋ॰सं॰ १०।२२।५)
१४—एतं भारतवर्षाधीश्वरमग्निं मनुष्यलोकपतिम्॥
शवसोनपातमैन्द्रं महर्षयो वर्णयन्ति स्म॥२॥
१५—त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः॥
देवेभिर्मानुषे जने ॥३॥ (६।१६।१११ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः)

---

* यहाँ भी दर्शपूर्णमासेष्टि में प्रयाज ब्राह्मण में अग्नि निविद् के उपसंग्रह के लिए "अपि" शब्द का प्रयोग किया गया है। वह जैसे —"अग्नि देवता है, यह "दैवी-होता " है, देवताओं का पूजन करता हुआ, जानने वाला, सलाह करता हुआ, मनुवान्, भरतवान् हैं।" इस यजुर्वेद के मंत्र से तीनों होताओं के वरण के समय अग्नि का वरण करते हैं। यहाँ आधिदैविक, आध्यात्मिक प्राण-रूप अग्नि की भरत संज्ञा है। इसलिए अग्निमान् होने के कारण उसके तादात्म्य कथन की इच्छा से मनुष्य लोकेश्वर देवदूत अग्नि को भी विवक्षावश भरतवान्, भारत और भरत संज्ञा से कह देते हैं। इस प्रकार दोनों तरह का ही व्यवहार देखा गया है।

१६—यो अग्निः सप्तमानुषः श्रितो विश्वेषु सन्धिषु ॥
तमागन्मत्रिपस्त्यं मन्धातुर्दस्युहन्तममग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥४॥ (नाभाकः काण्वः ।८। ३६।८)
१७—६।१५।८। त्वां दूतमग्ने अमृतं युगे युगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम् ॥
देवासश्च मर्तास जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा विषेदिरे ॥५॥
१८—६।१५।९। विभूषयन्नग्न उभयां अनुव्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे ॥
यत्तेधीति सुमतिमावृणीमहेऽध मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव ॥६॥
१९—६।१५।१३। अग्निर्होता गृहपतिः स राजा विश्वा वेद जनिमा जातवेदाः ॥
२०—६।१६।१९।अग्निरमामि भारतो वृत्रहा पुरुचेतनः ॥
दिवोदासस्य सत्पतिः ॥८॥
२१—६।१६।४५। उदग्ने भारत द्युमदजस्त्रेणदविद्युतत् ॥
शोचा विभाह्यजर ॥९॥
२२—६।१६।४। त्वामीडे अधद्विता भरतो वाजिभिःशुनम् ॥ ईजे यज्ञेषु यज्ञियम् ॥१०॥
२३—इत्थं बहुधा बहवो महर्षयो भारतं वदन्त्यग्निम् ॥
तत्समयो भरतः सः स दिवोदासः स मान्धाता ॥११॥
२४—मत्स्यपुराणाध्याये चतुर्दशाधिकशतप्रमिते(११४) ॥
मनुसंबन्धाद् भारतमुक्तं स मनुस्तु लोकपालोऽग्निः ॥१२॥
२५—"भरणात्प्रजनाच्चैष मनुर्भरत उच्यते ॥
एतन्निरुक्तवचनाद् वर्षं तद् भारतं स्मृतम् ॥१३॥
२६—यस्त्वयं मानवो द्वीपस्तिर्य्यग्यामः प्रकीर्तितः ॥
य एनं जयते कृत्स्नं स सम्राडिति कीर्तितः" ॥१४॥

१०—"हे अग्नि! तुम महान् हो, तुम ब्राह्मण हो, तुम भारत हो।" इस पूर्वोक्त मंत्र में अग्नि को भारत कहा गया है, यह अग्नि देवताओं के लिए हवि का भरण करता है। अतः ब्राह्मण ग्रन्थों में अथवा ब्राह्मण ग्रन्थों की भाषा में इसी अग्नि को भारत कहा गया है ॥१०॥

११— "यह अग्नि ही भरत है। यही देवताओं के लिए हवि का भरण करता है।" (कौ.ब्रा.)

यह अग्नि ही देवताओं के लिए हवि का भरण करता है, इसलिए अग्नि को भरत कहा गया है। यह अग्नि इन प्रजाओं का प्राण रूप होकर भरण करता है, इसलिए इसे भारत कहा गया है। इसीलिए इसे भरतवत् कहा गया है ॥११॥ (वाज. ब्रा.)

१२— यह मनुष्य अग्नि वैवस्वत मनु से भिन्न है, यह मनुष्य लोक का स्वामी है। वह भरत नाम का मनु है, जिसके नाम से तीनों समुद्रों के किनारे इसके निवास स्थान हैं ॥१२॥

अग्नि के लिए विवस्वान् का दूत होना वेदमंत्रों में सुना जाता है।

१३—यह अग्नि अथर्वा ऋषि द्वारा उत्पन्न है। यह समस्त प्रकार के स्तुति एवं स्तोत्रों को जानता है। यह अग्नि इच्छित देवों को बुलाने के लिए यजमान का दूत भी है ॥१३॥ (ऋग्. १०/२/५)

१४— इस भारत वर्ष का स्वामी मनुष्यलोकाधिपति अग्नि को बताया गया है। ऋषिमहर्षियों द्वारा इस इस मनुष्यलोक का अध्यक्ष (बल के रक्षक) इन्द्र को बताया गया है ॥२॥

१५— हे अग्नि! तुम मनुष्यों के बीच समस्त प्रकार के यज्ञों को पूर्ण करने वाले हो, अतः विद्वानों द्वारा तुम्हें यहाँ स्थापित किया गया है ॥३॥ (६/१६/१११)

१६—जो अग्नि सात होताओं समस्त नदियों तथा तीनों लोकों में निवास करता हुआ ज्ञानी पुरुषों की रक्षा करता है, उन्हें धारण करता है। अनिष्ट-कर्त्ता दुष्टों का नाश करने वाले, हम यज्ञ में सर्वश्रेष्ठ उस अग्नि को प्राप्त करें, जिससे हमारे समस्त शत्रुओं का नाश हो सके ॥४॥(८/३९/८)

१७—हे अग्नि देव! देवता और मनुष्य तुम्हें दूत बनाते हैं। हे अमर! युग-युगान्तर में हव्य को वहन करने वाले! स्तवनीय, जागृत रहकर सर्वत्र व्याप्त, प्रजाओं का पालन करने वाले हे अग्नि! हम नमस्कार करते हुए तुम्हारी सेवा करते हैं ॥५॥ (६/१५/८)

१८—हे अग्नि! देव और मनुष्यों को विभूषित करके यज्ञादि कर्म में देवों का दूत बन कर तू द्यावापृथ्वी में विचरण करता है, हम तेरे लिए स्तुति करते हैं और हम तीनों तरह (मन, बुद्धि और शरीर) के संरक्षणों से युक्त होवें। तू हमारे लिए सुख देने वाला हो ॥६॥ (६/१५/९)

१९— देवों को बुलाने वाला राजा, प्रकाशमान, वह अग्नि घरों का स्वामी है, वह ज्ञाता है, समस्त प्राणिमात्र को जानता है। जो देवों और मनुष्यों का अत्यधिक पूजनीय है, सत्यपालक वह अग्नि देवों को यज्ञ से सन्तुष्ट करें ॥७॥ (६/१५/१३)

२०—भरतों का पालन करने वाला, वृत्रादि असुरों का नाश करने वाला, अत्यन्त ज्ञानी, सर्वज्ञ, दिवोदास (सन्मार्गगामी), सज्जनों का पालक यह अग्नि आया है ॥८॥ (६/१६/१९)

२१—हे भरण पोषण करने वाले अग्नि! तुम ऊर्ध्वगति से जाने वाली ज्वाला से प्रकाशित हो। हे अजर! प्रकाशमान! तुम कान्तिमान् होकर अजस्र तेज से युक्त हो ॥९॥ (६/१६/४५)

२२—हे तेजस्वी अग्नि देव! भरत ने बलवान् पुरुषों के साथ भौतिक और अभौतिक सुख देने वाले तुम्हारी स्तुति की तथा पूजनीय देव का तुम्हारे यज्ञों में यजन किया ॥१०॥ (६/१६/४)

२३—इस प्रकार अनेक बार अनके महर्षियों ने भारत को ही अग्नि कहा है। उस समय वही भरत दिवोदास था, वही मान्धाता था ॥११॥

२४—मत्स्यपुराण के ११४वें अध्याय में मनु के संबंध पें भारत की व्याख्या की गई है। वह लोकपाल मनु तो अग्नि ही है ॥१२।

२५—भरण-पोषण करने से तथा उत्पन्न करने के कारण ही यह मनु भरत कहा जाता है। 'निरुक्त' के इस वचन के अनुसार ऐसा देश, जो भरण पोषण करने वाला है, को भारत मानना चाहिये ॥१३॥

२६—जो यह मानवद्वीप तिरछे आकार का कहा गया है, जो इस सम्पूर्ण मानव द्वीप को जीत लेता है, वही सम्राट् कहा गया है ॥१४॥

(४) लोकमतम्।

भूमौ क्षेत्रीयाग्निः सस्यं भरते नरस्य देहेऽपि।
अग्निर्विश्वजनानां भरणप्रवणां मतिं धत्ते ॥१॥
दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः संततिरेव च।
श्रद्धा च नो मा व्यगमद् बहुदेयं च नोऽस्त्विति ॥२॥
अन्नं च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि।
याचितारश्च न सन्तु मा च याचिष्म कंचन ॥३॥ इति॥
एता आशिष एषामपेक्षिता भारतीयानाम्॥
व्यवहारे मन्तव्या नीतिरियं भारतस्यास्य ॥४॥
अन्नैर्धनैर्यतोऽयं देशस्त्वेषां परेषां च।
उदरं भरति ततोऽयं देशो भारत इति प्रथितः ॥५॥

लोकमत

भूमि पर खेत की अग्नि (उपज की क्षमता) धान्य को उत्पन्न करती है और मानवशरीर में ऊष्मा तत्त्व के रूप में विद्यमान अग्नि भरण पोषण करता है। इसलिए यह अग्नि सम्पूर्ण मानव मात्र के भरण पोषण के स्वभाव को धारण करता है ॥१॥

हम दानदाता के रूप में वृद्धि को प्राप्त करें, हमारा दातृत्व बढ़े, हमारा ज्ञान और सन्तति बढ़े! हमारी श्रद्धा समाप्त न हो और हमारे पास देने को बहुत सा धन हो ॥२॥

हमारे पास विपुल अन्न हो, हमारे पास बहुत से अतिथि आवें। अन्य लोग हमसे याचना करने वाले हों, हम किसी से याचना नहीं करें ॥३॥

इन भारतीयों की यही आशीर्वाद प्राप्त करने की इच्छा रहती है। व्यवहार रूप से भारतवर्ष की यही नीति मानी गई है ॥४॥

यह देश अन्न और धन से अपने देश के तथा दूसरे देश के लोगो की उदरपूर्ति करता है, भरण पोषण करता है। इसीलिए यह देश भारत नाम से प्रसिद्ध है ॥५॥

हिन्दुस्तानशब्दस्य भारतैकदेशसंज्ञात्वव्यवस्था।

हिन्दुपदेन च हिन्दुस्तानपदेन च यदाहुरद्यतनाः।
भारतवर्षं तत् खलु नामार्द्धस्यास्य जानीयात् ॥१॥
सिन्धुनदोऽयं यद्दिशि तद्दिश्यं भारतं पूर्व्यम्।
सिन्धुस्थानपदेन व्यवजह्रुः सिन्धुपश्चिमगाः ॥२॥
*** अपि पारसीकजातेरस्ति दसातीरनामके ग्रन्थे।**
पौरस्त्यभारतार्थं हिन्दपदं सर्वतः पूर्वम् ॥३॥
+ जरथुस्तस्य यदायतमस्त्यस्मिन् पञ्चषष्टितमम् (६५)।
तत्र व्यासो हिन्दुस्तानादागत उदीरितो भक्तया ॥४॥
व्यासो नाम ब्राह्मण आयातो हिन्ददेशाद् यः।
तत्सदृशो धीमानिह कश्चिन्नास्तीति तस्यार्थः ॥५॥
= अपि च त्रिषष्टिशततम आयत उक्तं पुनस्तत्र।
व्यासमुनेर्वाह्लीके गमनं गस्तास्पनृपसमये ॥६॥
स प्रेत्यभावविषये व्यासात् संवदितुमेव गस्तास्पः।
जरथुस्तमाजुहाव च धर्माचार्यं स्वदेशस्थम् ॥७॥
गुप्ताश्वापभ्रंशो गस्तास्पः क्षितिप ईराने।
व्यासात् स पुनर्जन्मनि संदेहं स्वं निराचक्रे ॥८॥
× गस्तास्पेन तु पृष्टस्तद्व्यवहारानुसारतो व्यासः।
हिन्दुस्तानाभिजनं विज्ञपयामास चात्मानम् ॥९॥

इति भारतपरिचये नामधेयप्रसङ्गः समाप्तः ॥२॥

---

* "वैव हिंद वाजगश्ते।"
स पुनः (व्यासः) सिन्धुस्थानं प्रतिगतः।

\+ "अकनू विरहमने व्यास नाम, अज हिंद आमद वसदान के आकिल चुना नेस्त, जरथुस्त की ६५वीं आयत। एको ब्राह्मणों व्यासो नाम सिन्धुस्थानादागतः। तत्सदृशो बुद्धिमान् क्वचिन्नास्ति ॥६५॥

= चू व्यास हिदा बलख आमद। गस्तस्प जरतुस्तरा बखवाँद १६३ वीं आयत यतो व्यासः सिन्धुस्थानीयो बाह्लीके आगतः (ततः) गुताश्वः (ईरानभूपः) जरथुस्तमाजुहाव।

× " मन मरदे अमं हिन्दी नजाई" अयमहं पुरुषः सिन्धुस्थानीयोऽनुजातः।

हिन्दुस्तान शब्द भारत के एक देश मात्र की संज्ञा

आजकल के लोग हिन्दु शब्द से अथवा हिन्दुस्तान शब्द से जिस भाग को संबोधित करते हैं, वह इस भारतवर्ष का अर्धभाग मात्र ही है, ऐसा जानना चाहिये ॥१ ॥

सिन्धु नदी जिस दिशा में है, वह भारतवर्ष का पूर्वी भाग है। सिन्धु नदी के पश्चिम में निवास करने वालों के द्वारा इस भाग को सिन्धु स्थान शब्द से कहा गया है ॥२ ॥

पारसियों के "दासातीर" नाम के ग्रन्थ में सबसे पहले पूर्वी भारत के लिए "हिन्द" शब्द का प्रयोग किया गया था ॥३ ॥

"जरथुस्त्र" के ग्रन्थ की ६५वीं आयत में श्रद्धापूर्वक लिखा गया है कि व्यास हिन्दुस्तान से आया ॥४ ॥

व्यास नाम का ब्राह्मण हिन्द देश से आया, यहाँ उसके समान बुद्धिमान् कोई नहीं था, ऐसा इस आयत (जरथुस्त्र की पैंसठवीं) का अर्थ है ॥५ ॥

इसी जरथुस्त्र की १६३वीं आयत में फिर से व्यास मुनि का " गस्तास्प" नाम के ईरानी राजा के समय बाह्लीक देश जाने के विषय में भी लिखा है ॥६ ॥

उस गुप्ताश्व (गस्तास्प) नाम के राजा ने आत्मा के संबंध में व्यास से परिचर्चा करने के लिए अपने देश के निवासी धर्माचार्य जरथुस्त्र को बुलाया ॥७ ॥

ईरान में "गुप्ताश्व" का अपभ्रंश "गस्तास्प" नाम का राजा हुआ है, जिसने व्यास से पुनर्जन्म के संबंध में अपने सन्देह का निराकरण किया ॥८ ॥

गुप्ताश्व (गस्तास्प) द्वारा पूछे जाने पर व्यास ने अपने व्यवहार के अनुसार स्वयं को हिन्दुस्तान का निवासी होना बताया ॥९ ॥

इस प्रकार भारत-परिचय-प्रसंग में
नामधेय-प्रकरण समाप्त हुआ ॥२ ॥

सीमाप्रसङ्गः ॥३ ॥

(१) पौरस्त्यपाश्चात्यभेदाद् भारतवर्षद्वैविध्ये चतुर्दशप्रमाणानि ॥१४ ॥

पौरस्त्यं पाश्चात्यं भारतवर्षं द्विधाकृतं भवति।
अनयोरस्तिविभाजक एष नदः सिन्धुरिति विद्यात् ॥१ ॥
प्राच्यां दिशि तु समुद्रे यो देशः फारमोसाख्यः।
भारतवर्षस्यैषा सीमा पूर्वास्ति पूर्वस्य ॥२ ॥
यच्च विलूचिस्तानं ह्यपगानस्तानमद्य यद् ब्रुवते।
ईरानदेश एवं मेसोपोटेमिया देशः ॥३ ॥
अर्बप्रान्ते यवनास्तपश्चाल्लोहिताम्भोधिः।
एतावत्खलु पश्चिमभारवर्षं विजानीयात् ॥४ ॥
चीनसमुद्रारब्धं रक्तसमुद्रान्तमिष्यते यदिदम्।
भारतवर्षं तत्र च हेतव एते प्रदर्श्यन्ते ॥५ ॥

सीमाप्रसंग ॥३ ॥

(१) पूर्वी और पश्चिमी भेद से भारतवर्ष के दो भागों में विभक्त होने के संबंध में चौदह प्रमाण—

पूर्वी और पश्चिमी भेद से भारत दो भागों में विभाजित है। इन दोनों भागों की विभाजक रेखा यह सिन्धु नदी है ॥१ ॥

पूर्व दिशा में समुद्रतट पर जो फारमोसा नाम का देश है, यह प्राचीनकाल में भारतवर्ष की पूर्वी सीमा थी ॥२ ॥

और जो बिलूचिस्तान है, जिसे आज अफगानिस्तान कहा जाता है, ईरान देश, मेसोपोटेमिया देश, अरब में यवन देश और उसके पीछे की ओर लाल समुद्र है, निश्चय ही इतना पश्चिमी भारत जानना चाहिये ॥३—४ ॥
चीन समुद्र से लेकर लाल समुद्र पर्यन्त भारतवर्ष का जो विस्तार बताया गया है, इस संबंध में ये कारण बताये गये हैं ॥५ ॥

(२) तत्र पुरायुगीयाः संज्ञाशब्दविशेषाः प्रथमं प्रमाणम् ॥१ ॥

सिन्धोः पश्चिमतो यः प्रदेश आलोहिताम्भोधेः ॥
तस्य च संज्ञाशब्दाः प्रमाणमस्यार्य्यदेशत्वे ॥१ ॥

(३) सिन्धुस्थान-पारस्थानशब्दावन्योन्यसापेक्षौ प्रान्तवचनौ।

अद्यत्वे यद् ब्रुवते भारतवर्षस्य सीमानम्।
*सिन्धुनदं सा हिन्दुस्थानस्यैतस्य सीमा स्यात्॥१॥
पूर्व्यं भारतवर्षं सिन्धुस्थानाख्यया ब्रुवते।
पश्चिमभारतवर्षं पारस्थानं पुरातना ऊचुः॥२॥
निखिलं पारस्थानं सिन्धोरालोहिताम्भोधेः॥३॥

(४) पौरस्त्यभारते आर्य्यावर्तशब्दवत्पश्चिमभारते आर्य्यायणशब्दः।

आर्य्यावर्तः शब्दो भवति यथा भारते पूर्व्ये।
पाश्चात्येऽपि तथास्मिन् आर्य्यायण शब्द ईराने॥१॥

(५) पश्चिमभारतस्य औरियंससंज्ञाऽप्यार्य्यवंशनिवासमूला।

रक्तसमुद्रात्प्रागथ सिन्धुनदात् प्रत्यगर्णवात्तूदक्।
आरालकाश्यपीयनजलधिभ्यां दक्षिणान् देशान्॥१॥
प्रागोरियंस (ORIENS) नाम्नाऽनार्य्याः पूर्वे वदन्ति स्म।
तेन च पश्चिमभारतमार्य्यनिकेतनमिति प्रतीतं नः॥२॥

(२) प्राचीन युग के प्रदेशों के नामविशेष-प्रथम प्रमाण

सिन्धु नदी के पश्चिम से लाल समुद्र तक का जो प्रदेश है, उसका नाम ही देश का आर्य देश होने में प्रमाण है॥१॥

(३) प्रान्तवाची सिन्धुस्थान तथा पारस्थान शब्दों का परस्पर सापेक्ष होना

*आज सिन्धु नदी को जो भारतवर्ष की सीमा बताई जाती है, वह वास्तव में इस हिन्दुस्तान की सीमा है॥१॥

---

* यत्तु— आ हिमवत आ च कुमार्य्याः सिन्धुर्वैतरणी नदी। सूर्य्यस्योदयनं पुरः। यावद्वा कृष्णमृगो विचरति तावद् ब्रह्मवर्चसम् — इति पैठीनसिना सिन्धोः सीमात्वमाख्यायते तद्वैद्विकधर्माचरणयोग्यप्रदेशपरिच्छेदापेक्षमर्वाचीनं न तु तत्पुरायुगीयं भारतवर्षसीमापेक्षम्। ब्रह्मावर्तब्रह्मर्षिदेशमध्यदेशादिवदार्य्यावर्तदेशस्यापि धर्म्मसंबन्धेन परिच्छिन्नत्वात्।

* हिमालय से कन्याकुमारी तक जो वैतरणी नदी है, जहाँ पूर्व में सूर्य का उदय होता है, जहाँ तक कृष्ण-मृग विचरण करते हैं, उतना ब्रह्मवर्चसप्रदेश है, ऐसा पैठीनसीन ब्राह्मणाध्यायियों का मत है। इस प्रकार वैदिक धर्माचरणयोग्य प्रदेश के रूप में अर्वाचीन सीमा का विभाजन है न कि प्राचीन भारतवर्ष की सीमा का। जैसा कि ब्रह्मावर्त, ब्रह्मर्षि देश, मध्यदेश इत्यादि के समान आर्यावर्त देश का भी धर्म के संबंध से विभाजन किया गया है।

प्राचीनकाल में भारतवर्ष सिन्धुस्थान नाम से कहा जाता था, प्राचीन लोग पश्चिमी भारत को पारस्थान कहते थे ॥२ ॥

आज मात्र ईरान देश को पारस्थान कहा जाता है किन्तु सिन्धु नदी से लाल समुद्र पर्यन्त सम्पूर्ण प्रदेश पारस्थान था ॥३ ॥

(४) पूर्वी भारत में आर्यावर्त शब्द के समान पश्चिम भारत के लिए आर्यायण शब्द का प्रचलन—

पूर्वी भारत में जिस प्रकार आर्यावर्त शब्द प्रचलित है उसी प्रकार पश्चिमी भारत लिए ईरान में आर्यायण शब्द प्रचलित है ॥१ ॥

(५) पश्चिमी भारत के ओरियन्स शब्द का भी आर्यवंश का निवासमूलक शब्द होना

लाल समुद्र से पूर्व में, सिन्धु नदी से पश्चिम में, हिन्द महासागर से उत्तर में तथा अराल और कैस्पियन समुद्र से दक्षिण में जो देश हैं, उनको पूर्वकाल में प्राचीन आर्य "ओरियन्स" कहते थे। इसीलिए हमें प्रतीत होता है कि पश्चिमी भारत भी आर्यों की निवासस्थली थी ॥१—२ ॥

(६) मतान्तरेण ओरियंसशब्दाभिधानेऽन्यहेतूपन्यासः।

ऋज्राश्वो नामासीत् पश्चिमभारत ऋषिः कश्चित्।
जरथुस्त्रस्तस्याभूद्दौहित्रो ब्राह्मणद्वेषी ॥३ ॥
ब्राह्मणविद्वेषात् स हि तेषां ब्राह्मीं लिपिं त्यक्त्वा।
विपरीतां तु खरोष्ठीं लिपिमन्यां कल्पयामास ॥४ ॥
ऐन्द्रं देवाराधनधर्म्मं त्यक्त्वा स वारुणं विद्वान्।
असुराराधनधर्मं लोके बलवत् प्रचारयामास ॥५ ॥
विपरीताचरणात् ते मगा इति ख्यातिमायाताः।
शाकद्वीपाभिजना मगा इमे ब्राह्मणा अभवन् ॥६ ॥
बाह्लीकानुप्रान्तः शाकद्वीपः प्रसिद्ध आसीत् प्राक्।
शाकद्वीपाध्यक्षाः शका इति क्षत्रियाः प्रथिताः ॥७ ॥
ते मलेच्छभाषयोक्ताः स्कीथीया स्कीदिया देशाः।
शकबलदृप्तास्तु मगा युध्वा धर्मं प्रचारयामासुः ॥८ ॥
आर्ज्राश्वो जरथुस्त्रस्त्वसुरैरुक्तः स आरियस्प इति।
तन्मतधरमम्श्च लोकास्तन्नानावारियस्पनाम्नोक्ताः ॥९ ॥
एषां यावान् देशो युद्धजितस्त मतानुगतः।
सोऽप्यारियस्प उक्तः कालेनाभूत् स ओरियंस इति ॥१० ॥

इत्थं केचिद् ब्रुवते तथापि नैतावतः प्रदेशस्य।
आर्य्यक्षितिता हीयत ऋज्राश्वादेरिहार्य्यत्वात् ॥११ ॥
ऋज्राश्ववंशजातैराय्यैर्धृत आसुरो धर्म्मः।
तेन च पश्चिमभारतमार्य्यनिकेतनमिति ब्रूमः ॥१२ ॥

(६) ओरियन्स शब्द के नामकरण में दूसरे मत से अन्य कारणों का विवेचन—

प्राचीन भारत में कोई ऋज्राश्व नाम का ऋषि था, उसका कोई जरथुस्त्र नाम का एक दौहित्र हुआ, जो ब्राह्मणों से द्वेष रखता था ॥३ ॥ इसने ब्राह्मणों से द्वेष होने के कारण ब्राह्मणों से सम्बद्ध ब्राह्मी लिपि का त्याग करके विपरीत अर्थात् उल्टे क्रम से लिखी जाने वाली "खरोष्ठी" लिपि की रचना की ॥४ ॥

इस जरथुस्त्र ने इन्द्र से सम्बद्ध देवार्चनधर्म का परित्याग करके वरुण से सम्बद्ध आसुर धर्म का बलपूर्वक लोक में प्रचार किया ॥५ ॥

विपरीत आचरण करने के कारण वे लोग "मग" कहलाये। (मग से तात्पर्य है "मा गा" अर्थात् ब्राह्मणमार्ग पर मत जा।) इस मत के समर्थक शाकद्वीप में उत्पन्न हुए ब्राह्मण भी मग ही कहलाये ॥६ ॥

प्राचीन समय में बाह्लीक के समीप का प्रान्त "शाकद्वीप" के नाम से प्रसिद्ध था। शाकद्वीप के अध्यक्ष (शासक) क्षत्रिय ही शक नाम से प्रसिद्ध हुए ॥७ ॥

वे प्रदेश म्लेच्छभाषा में स्कीथिया और स्कीदिया कहे जाते थे। इन प्रदेशों के निवासी इन मग लोगों ने शकबल के अहंकार से युक्त होकर युद्ध करके अपने धर्म का प्रचार किया ॥८ ॥

यह देश ऋज्राश्व के वंशज जरथुस्त्रादि असुरों के द्वारा "आरियस्प" नाम से कहा गया तथा उसके मत को मानने वालों ने भी इस देश को इसी "आरियस्प" नाम से कहा ॥९ ॥

जितना देश इन असुरों द्वारा युद्ध में जीत लिया गया वह भी इस मत का अनुयायी बन गया, तथा वह जीता हुआ देश "आरियस्प" कहलाया, जो कुछ समय पश्चात् "ओरियन्स" हो गया ॥१० ॥

इस प्रकार कुछ लोग कहते हैं। परन्तु केवल इतना कहने मात्र से ही इस प्रदेश का आर्य-भूमि होना क्षीण नहीं होता है, क्योंकि स्वयं ऋज्राश्व इत्यादि आर्य ही थे ॥११ ॥

इस ऋजाश्व के वंश में उत्पन्न आर्यों ने भी आसुर धर्म का पालन किया । इसीलिए पश्चिमी भारत को हम आर्यों की ही निवासभूमि कहते हैं ॥१२ ॥

(७) एरियानाशब्दोऽप्यार्य्यनिवासमूलः ।

प्रान्तोऽस्ति मागियाना तदधो हिन्दूकुशस्य दक्षिणतः ।
निर्गत्य पश्चिमां प्रागथोत्तरां या शरीफिशैलस्य ॥१३॥
पश्चिमलग्ना वहते तामाहुर्वैदिका नदीं सरयूम् ।
तस्याः प्रान्तो दक्षिण उक्तोऽनार्यैः पुरैरियानेति ॥१४॥

(८) इण्डिया-वामनियादिशब्दा अप्यार्य्यनिवासमूलाः ॥

प्राच्यां तदेरियानाप्रान्तात्प्रत्यग्गिरेः सुलेमानात् ।
प्रान्तोऽयमिण्डियाख्यः कथितोऽनार्य्यैः स आर्य्यवसतित्वात् ॥१५॥
अत एव वेदमन्त्रश्चतुर्थमण्डलगते त्रिंशे ।
सूक्तेऽष्टादश आर्य्यान् सरयोः पारे समामनति ॥१६॥
"उत त्या सद्य आर्य्या सरयोरिन्द्र पारतः ।
अर्णाचित्ररथावधीः" इति (४।३०।१८) ॥१७॥

इति पुरायुगीयाः प्रादेशिकसंज्ञाविशेषाः प्रथमं प्रमाणम् ॥१॥

(७) एरियाना शब्द भी आर्यों का निवासमूलक शब्द—

मार्गियाना नाम का जो प्रान्त है, उससे नीचे की ओर हिन्दुकुश पर्वत के दक्षिण से निकल कर पश्चिम, पूर्व और उत्तर में शरीफि पर्वत के पश्चिम से सटी हुई जो नदी बहती है, उसे वैदिक लोग "सरयू नदी" कहते हैं। उसी सरयू के दक्षिण प्रान्त को प्राचीन आर्यों के द्वारा "ऐरियाना" शब्द से कहा गया ॥१३—१४॥

(८) इण्डिया, वामनिया इत्यादि शब्द भी आर्यों के निवासमूलक शब्द—

एरियाना प्रान्त से पूर्व में, सुलेमान पर्वत से पश्चिम का भाग आर्यों की निवास-भूमि होने के कारण अनार्यों द्वारा "इण्डिया" नाम से कहा गया ॥१५॥

इसीलिए ऋग्वेद के चौथे मण्डल के तीसवें सूक्त के अठारहवें मंत्र में आर्यों को सरयू के पार बताया गया है ॥१६॥

ऋग्वेद में लिखा है— हे इन्द्र ! उन आर्यों ने सरयू के पार रहने वाले अर्ण तथा चित्ररथ को तत्काल मार दिया ॥१७॥ (४/३०/१८)

इस प्रकार प्राचीन युग के प्रदेशों के नामविशेष से सम्बद्ध प्रथम प्रमाण समाप्त हुआ ॥१ ॥

अवरयुगीयाः संज्ञाविशेषा द्वितीयं प्रमाणम् ॥२ ॥

ओरियंसशब्दवत् पश्चिमे भारते पश्चात् खुरासानशब्दः ।

१—विश्वामित्रः पूर्वं राजासीत् कान्यकुब्जदेशस्य ।
स वसिष्ठस्य कदाचिद्धर्तुं गां नन्दिनीमैच्छत् ॥१ ॥
सा नन्दिनी तु नैच्छत् तं विश्वामित्रमनुगन्तुम् ।
क्रोधात्सा बहुवारं खुरतो भूमिं तदा व्यखनत् ॥२ ॥
तत्र वसिष्ठो वरुणादैच्छत् साहाय्यमात्मकुलसुहृदः ।
उक्तं वेदे सख्यं वरुणेन हि तद्वसिष्ठस्य ॥३ ॥
बाह्लीकदेशराजो वरुणोऽयं देवयुग आसीत् ।
पारस्थानाधीशः सप्तसमुद्रेश्वरोऽसुराधीशः ॥४ ॥
जग्मुर्वरुणाज्ञप्ताः पारस्थानाधिवासिपञ्चगणाः ।
पह्लव—पारद—यवनाः, शककाम्बोजौ परे च दरदाद्याः ॥५ ॥
नन्दिन्यास्तु खुरं ते मूर्द्धन्यादाय प्रणम्य तां भक्त्या ।
वैश्वामित्रं सैन्यं व्यमर्दयन्नञ्जसा निखिलम् ॥६ ॥
तदवधि ते किल कथिताः खुरधाः खुरदास्तथा कुर्दाः ।
तेषां जनपदसंघः खुर्दस्थानं खुरासानम् ॥७ ॥
मोगलसम्राड् बाबर आह खुरासानमात्मजीवन्याम् ।
अफगानाश्च बलूचिन एकेऽद्याप्याहुरेवमिव ॥८ ॥
भारतवर्षीया अपि चक्रुस्तावत्प्रदेशस्य ।
तच्छब्दव्यपदेशं यथोदितं शक्तिसंगमे तन्त्रे ॥
हिङ्गुपीठं समासाद्य मक्केशान्तं सुरेश्वरि ।
खुरासानाभिधो देशो म्लेच्छमार्गपरायणः ॥इति ॥१० ॥

(२) परवर्ती युग का नामविषयक द्वितीय प्रमाण—

ओरियन्स शब्द के समान परवर्ती युग में खुरासान शब्द की पश्चिमी भारत के लिए प्रसिद्धि

१—प्राचीन काल में विश्वामित्र नाम का कान्यकुब्ज देश का राजा हुआ था। एक समय इसने वसिष्ठ ऋषि की नन्दिनी नामक गाय का हरण करने की इच्छा की ॥१ ॥

परन्तु वह नन्दिनी गाय विश्वामित्र के साथ जाना नहीं चाहती थी। इसलिए उस नन्दिनी ने बार-बार (जगह-जगह) भूमि को खोद दिया ॥२॥

तब वसिष्ठ ने अपने कुलमित्र वरुण से सहायता की इच्छा की। वसिष्ठ के साथ हुई वरुण की इस मित्रता को वेदों में कहा गया है ॥३॥

यह वरुण देवयुग में बाह्लीक देश का राजा हुआ है। यह पारस्थान का स्वामी था, सातों समुद्रों का और असुरों का स्वामी था ॥४॥

वरुण की आज्ञा प्राप्त करके पारस्थाननिवासी पाँच गण पह्लव, पारद, यवन, शक और काम्बोज तथा अन्य दरद आदि ने नन्दिनी के खुरों को धारण करके श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया और विश्वामित्र की सम्पूर्ण सेना को सफलतापूर्वक नष्ट कर दिया ॥५—६॥

उस समय से ही वे लोग खुरध (खुर को धारण करने वाले), खुरद और कुर्द कहलाये तथा उनका राष्ट्रसंघ खुर्दस्थान अथवा खुरासान कहलाया ॥७॥

मुगलसम्राट् बाबर ने अपनी जीवनी में खुरासान का उल्लेख किया है। अफगानिस्तान और बलूचिस्तान के कुछ लोग आज भी ऐसा कहते हैं ॥८॥

भारतवर्ष के लोगों ने भी उस प्रदेश का इसी शब्द से उल्लेख किया है, जैसा कि "शक्तिसंगमतंत्र" में लिखा है ॥९॥

हे देवेश्वरि! हिंगुपीठ से मक्केश (मक्का) पर्यन्त खुरासान नाम का प्रदेश है, जो आज म्लेच्छमार्ग से युक्त है अर्थात् म्लेच्छों के मत को मानने में परायण है ॥१०॥

पश्चिमभारते ईरानशब्दोऽप्यार्य्यनिवासमूलकः ।

२— एवं पुनरिदमखिलं जनपदवृन्दं च सिन्धुतः पश्चात्।
भूमध्यसागरात् प्रागासीदीराननाम्नैकम् ॥११॥
ईरानव्यपदेशे त्वार्य्यायणतेरणत्वमरणत्वम्।
मूलमथर्वणि तदरणमुक्तं त्वार्य्यद्विषां वासात् ॥१२॥
आर्य्यद्वेषिजनानामरणानां बाह्लिका देशाः।
अपि मूजवन्त एवं महावृषा वा विशिष्यासन् ॥१३॥
अथवा कम्पनशीले प्रयुज्यते शब्द ईराणः।
भीतानां चानियताभिजनानां देश ईराणः ॥१४॥
द्वादशकाण्डे प्रथमे सूक्तेऽष्टाविंशके मंत्रे। (अथ०१२।१। २८)
आथर्वणे स शब्दः प्रयुक्त आन्दोलितेऽर्थेऽस्ति ॥१५॥

उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः ।
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्म हि भूम्याम् ॥१६॥
(अथ०१२।१/२८)

पश्चिम भारत में ईरान शब्द भी आर्यों का निवासमूलक शब्द—

२—इस प्रकार सिन्धु नदी से आगे तथा भूमध्यसागर से पूर्व का सम्पूर्ण राष्ट्रसंघ ईरान नाम से कहा जाता है ॥११॥

"ईरान" शब्द में आर्यायणता, ईरणता और अरणता शब्द हैं, अथर्ववेद में इनका मूल आर्यों के शत्रुओं का निवासस्थान होने के कारण "अरण" (शत्रु). शब्द को बताया गया है ॥१२॥

आर्यों से द्वेष करने वाले अरणों के देश बाह्लीक में रहने वाले लोग मूजवान् और महावृष कहलाते थे ॥१३॥

अथवा कम्पनशील के लिये "ईराण" शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसीलिए डरे हुए और अनियमित निवासभूमि वाले, जिनकी सेनाएँ डरकर भाग रही हैं, लोगों का देश "ईराण" है ॥१४॥

अथर्ववेद के १२ वें काण्ड के प्रथम सूक्त के २८वें मंत्र में "ईराण" शब्द आन्दोलित (कम्पनशील) के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ॥१५॥

"आन्दोलित होते हुए, बैठे हुए, खड़े हुए, दाहिने और बाँये पांव से टहलते हुए भूमि पर हम किसी को दुःख न दें। हम किसी के दुःख का कारण न बनें ॥१६॥ (अथर्व. १२/१/२८)

पश्चिमभारते ओरियंसपारस्थानखुरासानादिशब्दानां शासनभेदेन भिन्न-काले प्रयोगाः।

३—इत्थं पश्चिमभारतमुक्तं क्वचिदोरियंसनाम्ना प्राक्।
पारस्थानं क्वचन क्वचन खुरासानमीरानम् ॥१७॥

ईरानखुरासानपर्सियादिशब्दानां महादेशवाचिनामपि कालभेदेन तत्प्रान्तमात्राभिधायित्वम्।

४— अद्य तु नैवं ब्रुवते नायं देशः समग्र एकोऽस्ति।
प्रान्तः पारस्थानं प्रान्त इरानं खुरासानम् ॥१८॥
राज्ञां शासनभेदाद् व्यवहर्तॄणांच भेदतोऽज्ञानात्।
प्रान्तं हिरातसंज्ञं केवलमाहुः खुरासानम् ॥१९॥

शासनभेदात् पश्चादफगानस्तानतः खुरासानम्।
तत ईरानमिराको रोमकसामोऽथ पश्चिमाम्भोधिः ॥२०॥
अपि सीरियेति रोमकसामप्रान्तं विदुस्तथेराकम्।
कैलडिया चासुर्य्या मेसोपोटेमिया चेति ॥२१।
मिडिया नाम्नाऽप्यासीदा च खुरासानमन्वितः प्रान्तः।
अद्यत्वे पर्य्यायादीरानं पर्सियेत्याहुः ॥२२॥
अपि वास्ति काश्यपीयनसिन्धोराग्नेयतः खुरासानम्।
तद्दक्षिणत इराकं तद्दक्षिणतस्तु पारस्यम्॥२३॥

५— क्रान्तिप्रधान एषोऽस्त्यापृथिवीजन्मतो देशः।
इह परचक्रक्रांतिर्यथाऽभवन्न हि तथाऽन्यत्र॥२४॥
तस्मादनेकसीमा नामविभागाश्च दृश्यन्ते।
क्षुद्रैशियाप्रदेशादासिन्धोरस्य देशस्य ॥२५॥

शासनभेद से समय-समय पर पश्चिमी भारत में ओरियन्स, पारस्थान और खुरासानादि शब्दों का प्रयोग—

३—इस प्रकार प्राचीन समय में पश्चिमी भारत को कहीं "ओरियन्स", कहीं पारस्थान, कहीं खुरासान और कहीं ईश्वर शब्द से कहा गया है॥१७॥

ईरान, खुरासान, पर्सिया इत्यादि शब्दों का विशाल देशवाचक होते हुए भी समय बदलने पर मात्र प्रान्तवाची हो जाना—

४—आज तो ये देश न तो समग्र रूप से एक देश के रूप में हैं और न ही एक देश के वाचक कहे जाते हैं, अपितु पारस्थान प्रान्त, ईरान-प्रान्त और खुरासान-प्रान्त के रूप में सीमित रह गये हैं॥१८॥

महादेशवाची खुरासान शब्द से आज शासकों के परिवर्तित होने के कारण, व्यवहार करने वालों के भेद से अथवा अज्ञानतावश मात्र "हिरात" नामक प्रान्त को ही कहा जाता है॥१९॥

परवर्ती काल में शासनभेद से अफगानिस्तान से खुरासान और इसी प्रकार फिर ईराक, ईरान, रोम, साम इत्यादि पश्चिम समुद्र की संज्ञाएं हुईं॥२०॥

तथा असुर जाति के लोग रोमक और साम प्रदेश को सीरिया तथा ईराक को कैलड़िया और मेसोपोटेमिया नाम से कहते हैं ॥२१॥

खुरासान से मिले हुए प्रान्त को "मीडिया" के नाम से भी कहा जाता था, जो आज पर्याय रूप में ईरान और पर्सिया कहा जाता है॥२२॥

अथवा काश्यपीयन समुद्र (Caspian sea) के अग्निकोण में खुरासान प्रान्त है, इसके दक्षिण में ईराक और उसके भी दक्षिण में पारस (पर्सिया) नामक प्रान्त है॥२३॥

५— यह देश (सम्पूर्ण भाग) पृथ्वी के जन्म से ही क्रान्ति (विद्रोह) प्रधान रहा है। यहाँ परचक्र-क्रान्ति अर्थात् दूसरे देशों के आक्रमण जिस तरह के हुए हैं, वैसे अन्यत्र कहीं नहीं हुए॥२४॥

क्षुद्रैशिया (एशिया माइनर) से समुद्र तक इस देश के युद्ध-प्रधान होने के कारण ही यहाँ अनेक सीमाएँ, नाम और विभाग बदलते देखे गये हैं ॥२५॥

नियतसंज्ञाव्यवस्थापकभारतीयानां भुवनकोशशास्त्रे शासनमूलकसंज्ञाप्रभेदानामनादरः।

६—अस्तु तु यद्वा तद्वा शासनभेदात्तु देशभेदोऽयम्।
न च तच्छास्त्रं वक्तुं शक्यं तस्याव्यवस्थानात्॥२६॥
तस्मादिह भूगोलग्रन्थो वैदेशिको नितराम्।
शास्त्रं तथा यथेदं व्यवस्थितं भारतं शास्त्रम्॥२७॥
शासनदेशविभागो नियतो न भवति हि तेन तमुपेक्ष्य।
आर्य्या व्यवस्थितं प्राग् देशविभागं निसर्गजं ददृशुः ॥२८॥
देशप्रकृतिः शास्ता न तु शास्तृप्रकृतिको देशः।
अस्तु च शास्ताऽन्योऽन्यो मुञ्चति देशो न चात्मनः प्रकृतिम्॥२९॥
तस्मात् सिन्धोः पश्चिमदेशोऽद्य तु शास्तृभेदेन।
यद्यपि पृथगिव दृष्टो वस्तुत इदमस्ति भारतं वर्षम्॥३०॥

इत्यवरयुगीयाः संज्ञाविशेषा द्वितीयं प्रमाणम् ॥२॥

निश्चित नाम की व्यवस्था करने वाले भारतीयों के भुवनकोश-शास्त्र में शासन के आधार पर नामपरिवर्तन को महत्त्व नहीं दिया जाना—

६—शासनभेद से जो भी देशभेद होते रहे हैं, शास्त्र में उस शासनभेद से हुए परिवर्तित नाम का वर्णन नहीं किया जा सकता है, क्योंकि ऐसा करने पर अव्यवस्था हो जाती है॥२६॥

इसीलिए विदेशियों का भूगोलशास्त्र पूरी तरह से उतना व्यवस्थित नहीं है, जितना भारतीय भूगोलशास्त्र व्यवस्थित है ॥२७ ॥

शासनभेद से देश का विभाजन करना कभी निश्चित नहीं होता है। इसलिए आर्यों ने इसकी उपेक्षा करके पहले से ही प्रकृति के आधार पर देश का विभाजन करना उचित समझा ॥२८ ॥

शासन देश की प्रकृति (भौगोलिक स्थिति) के अनुसार होने चाहियें, न कि शासकों की प्रकृति (स्वभाव) के अनुसार देश। क्योंकि भले ही शासक अलग अलग बदलते रहें, परन्तु देश अपनी प्रकृति उसके अनुसार नहीं बदलता है ॥२९ ॥

इसलिए सिन्धु नदी का पश्चिमी भाग यद्यपि शासकों के भेद से पृथक् दिखाई देता है, वस्तुतः यह भारतवर्ष ही है ॥३० ॥

इस प्रकार परवर्ती युग के संज्ञाविशेष
से सम्बद्ध द्वितीय प्रमाण समाप्त हुआ ॥२ ॥

इन्द्रवरुणनिमित्ते ब्राह्मणानां वैज्ञानिकं वाग्युद्धं तृतीयं प्रमाणम् ॥३ ॥

भारतवर्षविभागद्वयहेतुर्ब्राह्मणानां प्राक् ।
वैज्ञानिकवाक्समरस्तृतीयमस्ति प्रमाणमिह ॥३१ ॥
आसुरधर्मे प्रविशतो जरथुस्त्रस्य देवेन्द्रनिन्दकत्वं विरोधहेतुः ॥
बाह्लीके यो जज्ञे जरथुस्त्रस्तस्य समये प्राक् ॥
सौत्रामण्यामिष्टौ ब्राह्मणवृन्दे विरोधोऽभूत् ॥३२ ॥
आर्ज्राश्वो जरदष्टिर्ब्राह्मण आसीत् तथाप्ययं धृष्टः ।
विद्विष्य देवमिन्द्रं वरुणस्तुद् धर्ममासुरं दध्रे (१)
येऽसून् प्राणान् दधते तेऽमी असुरा महाप्राणाः ।
असुरत्वं तु न येषां तेऽमी देवाः "सुराः स्म" इत्यूचुः (२)

इन्द्र और वरुण को निमित्त मान कर ब्राह्मणों में वैज्ञानिक वाग्-युद्ध रूप तृतीय प्रमाण—

प्राचीन काल में भारतवर्ष के दो भागों में विभक्त होने के कारण ब्राह्मणों में वैज्ञानिक वाग्युद्ध होना, यह तीसरा प्रमाण है ॥३१ ॥

आसुर धर्म में प्रवेश करने के पश्चात् 'जरथुस्त्र' का देवराज इन्द्र का निन्दक हो जाना विरोध का कारण हुआ। प्राचीनकाल में बाह्लीक देश में पैदा हुए जरथुस्त्र द्वारा किये गये सौत्रामणी यज्ञ में ब्राह्मणसमूह में परस्पर विरोध हो गया ॥३२ ॥

ऋज्राश्व का वंशज जरदष्टि यद्यपि ब्राह्मण था, तथापि वह अविनीत था। वह देवराज इन्द्र से द्वेष करके वरुण का प्रशंसक बना और उसके आसुर धर्म को धारण कर लिया ॥१ ॥

जरदष्टि का मानना था कि जो असु (प्राणों) का धारण करते हैं, वे असुर हैं तथा महाप्राण अथवा महान् शक्तिशाली हैं और जिनमें यह असुरत्व (प्राणशक्ति) नहीं हैं वे ही ये देवगण स्वयं को "सुराः स्मः" अर्थात् हम सुर हैं, ऐसा कहते हैं। तात्पर्य है कि देवता शक्तिहीन हैं और असुर शक्तिमान् हैं ॥२ ॥

इन्द्रप्रियसोमप्रतिद्वंद्वितया वरुणेन सुरानिर्म्माणम्।

असुरा विनाश्य सोमं जनयामासुस्तु वारुणीं मदिराम्।
तां च सुरामिति जगदुः पीतामनु तां सुरान् पिबाम इति (३)
असुरवदेव त्वार्य्या अपि तां पातुं क्रमात् क्रमन्ते स्म।
अपि देवेन्द्रः सौत्रामण्यामिष्टौ सुरामपिबत् (४)
गुरुरसुराणामार्य्याऽनार्य्याणां यो न्युवास बाह्लीके।
आर्य्यैः सुरा न पेया बुद्धिहरीत्युपदिदेश तान् स भृगुः (५)
"सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते।
तस्माद् ब्राह्मणराजन्यौ वश्यश्च न सुरां पिबेत्" (६) (मनुस्मृतौ भृगुः)

इन्द्र के प्रिय सोमरस की प्रतिस्पर्धा से वरुण द्वारा सुरा का निर्माण—

असुरों ने सोम का विनाश करके वारुणी नाम की मदिरा विशेष का निर्माण किया और उसको सुरा ((मदिरा) कहा। उस सुरा को पीते हुए"सुरान् पिबामः" अर्थात् "हम सुरा का पान करते हैं, " इस प्रकार कहते थे। (इसको इस प्रकार कहने से दोनों ही बातें स्पष्ट हो जाती हैं। यथा "सुरान्" का नकार पहले अनुस्वार होकर परसवर्ण से सुराम् अर्थात् मदिरा का पान करते हैं तथा सुरान् अर्थात् देवताओं को पीते हैं यह अर्थ भी द्योतित होता है) ॥३ ॥

असुरों के समान देवताओं ने भी उस सुरा को पीना प्रारम्भ कर दिया और इसी क्रम में देवराज इन्द्र ने भी सौत्रामणी यज्ञ में सुरा का पान किया। (सौत्रामण्यां सुरां पिबेत्) व्यवस्था के अनुसार इन्द्र ने सुरा का पान किया ॥४ ॥

बाह्लीक (बलख) देश में निवास करने वाले अनार्यों के गुरु आर्य भृगु (शुक्राचार्य) ने आर्यों को उपदेश दिया कि आर्यों को मदिरा का पान नहीं करना चाहिये। यह बुद्धि का नाश करती है ॥५ ॥

मनुस्मृति में लिखा है— " सुरा अन्न का मल है अर्थात् विकृत अन्न से सुरा का निर्माण होता है। मल को पाप तथा घृणास्पद बताया गया है, अतः ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्यों को सुरापान नहीं करना चाहिये ॥६ ॥ (मनु/भृगु)

आर्ज्राश्वैरिन्द्राधिक्षेपः ।

इन्द्रस्याधिक्षेपं कर्तुमिवैतेऽसुराः सुरायज्ञम्।
सैत्रामणीं विधातुं वृषाकपिं प्रेरयामासुः ॥३३॥
एष वृषाकपिरासीदसुरेन्द्रः प्राक् प्रियः सखेन्द्रस्य।
पुत्रत्वेन तमिन्द्रः प्रेम्णा ह स्मानुगृह्णांति ॥३४॥
वैकुण्ठस्य विकुण्ठागर्भोत्पन्नस्य दैवतेन्द्रस्य।
नाम वृषाकपिरासीत् नामैक्यात् सख्यमेतयोरभवत् ॥३५॥
देवेन्द्रः स वृषाकपिरसुरवृषाकपिकृते यज्ञे।
सोमं पातुमिहागादिन्द्राण्या सह तु सञ्जयाभिधया ॥३६॥
एष वृषाकपिरसुरस्तेने सौत्रामणीयज्ञम्।
तत्र सुरामपि सोमं देवेन्द्राय न्यवेदयत् पातुम् ॥३७॥
इन्द्रः पिबति सुरामिति पारस्थानाः प्रचक्रिरे निन्दाम्।
सौत्रामण्यामिष्टौ घोरविरोधं प्रचक्रिरेऽनिन्द्राः ॥३८॥
मन्त्रेष्वनिन्द्रशब्दः षट्स्वाम्नातः पुरा वरुणम्।
आराधयन्त एते नेन्द्रं देवं त्वमंसत हि ॥३९॥
इन्द्रः पिबति सुरामिति हन्त पिबामो वयं सोमम्।
इत्युक्त्वा तेऽनिन्द्रा असुराः सोमं बलादहरन् ॥४०॥
इन्द्रनिवेदितसोमं यज्ञादपहृत्य तं पातुम्।
तत्र वृषाकपिमसुरं न्ययुञ्जतासौ पपौ सोमम् ॥४१॥
सोमं तत्र पिबन्तं दृष्ट्वेन्द्राणी वृषाकपिं पुत्रम्।
क्रोधादपगतचेताः स्वामिनमेवोपधर्षयामास ॥४२॥

ऋज्राश्व के अनुयायियों द्वारा इन्द्र का अपमान

इन्द्र का अपमान करने के लिए ही इन असुरों ने सौत्रामणी नामक सुरायज्ञ करने के लिए वृषाकपि नाम के असुर को प्रेरित किया॥३३॥

यह असुरराज वृषाकपि पहले देवराज इन्द्र का प्रिय मित्र था। इसलिए इन्द्र इस असुर वृषाकपि पर पुत्र के समान स्नेहपूर्वक कृपा रखते थे ॥३४॥

विकुण्ठा के गर्भ से उत्पन्न वैकुण्ठ देवराज इन्द्र का नाम भी वृषाकपि था। ("वर्षति आकम्पते च" अर्थात् जो वर्षा करता है, कम्पित करता है। यहाँ वर्षा करने के कारण देवराज इन्द्र भी वृषाकपि कहलाये)। अतः नाम की एकता होने के कारण दोनों में परस्पर मित्रता थी॥३५॥

वह देवेन्द्र वृषाकपि असुर वृषाकपि द्वारा किये गये यज्ञ में "संजया" नामक इन्द्राणी के साथ सोमपान करने के लिए आये ॥३६॥

इस असुर वृषाकपि ने देवराज वृषाकपि को उस सौत्रामणी यज्ञ में पीने के लिए सोम के साथ सुरा भी प्रस्तुत की ॥३७॥

"इन्द्र सुरा पी रहा है।" इस प्रकार कहते हुए पारस्थान के निवासियों ने इन्द्र की घोर निन्दा की। इस तरह उस सौत्रामणी यज्ञ में अनिन्द्रों (इन्द्र के विरोधियों) ने घोर विरोध उत्पन्न कर दिया ॥३८॥

प्राचीन काल में वरुण की आराधना करते हुए इन अनुयायियों ने इन्द्र को देवता नहीं माना अर्थात् इन्द्र को महत्त्व नहीं दिया। इसी प्रकार छः मंत्रों में "अनिन्द्र" शब्द का प्रयोग भी किया गया है ॥३९॥

"इन्द्र सुरा पी रहा है और हम सोम का पान कर रहे है।" इस प्रकार कहते हुए देवेन्द्र-निन्दक असुरों ने सोम का बलपूर्वक हरण कर लिया ॥४०॥

उस सौत्रामणी यज्ञ में इन्द्र को निवेदित सोम का बलपूर्वक हरण करके असुर वृषाकपि को बलपूर्वक सोम पीने के लिए नियुक्त किया गया और उस असुर वृषाकपि ने सोम का पान किया ॥४१॥

पुत्रवत् वृषाकपि असुर को सोमरस पीते हुए देखकर इन्द्राणी क्रोध से विचलित हो गयी और अपने पति को ही प्रताड़ित करने लगी ॥४२॥

इन्द्राणीकृतः क्रोधः।

हन्त न किन्तेऽन्यत्रोपलभ्यते पीतये सोमः।
यदतिव्यथितो धावसि वृषाकपेरत्र यज्ञमिमम् ॥४३॥
किमनेनोपकृतं ते पुष्टमृगेणेति यस्मै त्वम्।
वितरसि सोमसदृक्षं बहुमूल्यं धनमनुग्रहात् क्षमसे ॥४४॥
यत्त्वं प्रियमिव रक्षसि तं शूकरभक्षकः इवाऽद्य।
कर्णेपिगृह्य भक्षतु मा जीवतु दुष्टजीवोऽयम् ॥४५॥
अहमस्मि वीरपत्नी वीरवती तामवीरावत्।
अवमनुतेऽयं धृष्टस्तदिदं क्षमसे कथं दृष्ट्वा ॥४६॥
इत्थं वृषाकपेः खल्वपराधान् क्षाम्यते तदेन्द्राय।
क्रोधादधिक्षिपन्तीमिन्द्राणीं तामुवाचेन्द्रः ॥४७॥

इन्द्राणी द्वारा किया गया क्रोध—

बड़े दुःख की बात है। क्या तुम्हें अन्यत्र कहीं सोम पीने के लिए नहीं मिलता है? जो इतनी व्यग्रता से वृषाकपि के इस यज्ञ में दौड़ते हो अर्थात् व्यग्रतापूर्वक सोमपान के लिए आ गये ॥४३॥

इन्द्राणी कहती है कि इस हृष्टपुष्ट पशु ने तुम्हारा क्या उपकार किया है? जो तुम इसके लिए सोम जैसा बहुमूल्य धन देकर भी अनुग्रहपूर्वक क्षमा कर रहे हो ॥४४॥

इन्द्राणी कहती है कि तुम प्रिय की तरह जिसकी रक्षा करते हो, उसके कानों को भी पकड़ कर यह सूअर को खाने वाला कुत्ता खा जावे, यह दुष्ट जीव जीवित न रहे ॥४५॥

मैं वीर पति की पत्नी हूँ तथा वीर पुत्रों की माता हूँ। ऐसी वीर पति और पुत्रों से युक्त मुझे "अवीरा" के समान यह दुर्विनीत अपमानित कर रहा है, यह सब देखकर भी तुम इसे क्षमा कर रहे हो ॥४६॥

इस प्रकार वृषाकपि के प्रति किये गये अपराधों को क्षमा करने वाले इन्द्र के प्रति क्रोध करती हुई उस इन्द्राणी को इन्द्र कहने लगे ॥४७॥

इन्द्राणीं प्रति इन्द्रकृता परिसान्त्वना।

एष वृषाकपिरीजे सोमं सोतुं मयाज्ञप्तः।
अन्ये त्वसुरा नेदं मन्वत इति तद्भयात्स सोममपात् ॥४८॥
अयि भद्रकेशपाशे न त्वपराध्यति वृषाकपिस्तत्र।
किमभिक्रुध्यसि सहसा वृषाकपिं वीरपत्नी त्वम् ॥४९॥
न वृषाकपिं सखायं विना रमे देवि यद्द्वारा।
इदमासुरकुलतोऽप्यां प्रियं हविर्याति देवेषु ॥५०॥
सोमं पातुमिहाहं नायातः किन्तु तन्मिषतः।
एमि समीक्षितुमेव त्वार्यं दासं विचेतुमिव ॥५१॥

इन्द्र बोले — यह वृषाकपि मेरी आज्ञा से ही सोम का सवन करने के लिए तैयार हुआ है। अन्य सूअर इसको महत्त्व नहीं देते हैं। इसलिए इसने उनके भय से सोम का पान किया है ॥४८॥

हे सुन्दर केशराशि से युक्त इन्द्राणि! इस वृषाकपि ने यहाँ कोई अपराध नहीं किया है। हे वीर पत्नि। तुम व्यर्थ ही क्यों सहसा इस वृषाकपि पर क्रोध कर रही हो ॥४९॥

हे देवि! यह वृषाकपि मेरा मित्र है, इसके बिना मैं प्रसन्न नहीं रह सकता हूँ। क्योंकि इसी वृषाकपि के द्वारा असुरकुल से भी देवताओं की प्रिय हवि देवों तक पहुँचती है ॥५०॥

हे इन्द्राणि! यहाँ मैं सोम पीने के लिए नहीं आया हूँ अपितु मैं यहाँ आर्य और दास विषयक विचार करने की तरह समीक्षा करने आया हूँ ॥५१॥

इन्द्राणीं प्रति वृषाकपिकृता परिसान्त्वना।

अथ च वृषाकपिरपि तामिन्द्राणीं प्रत्युवाच विनयेन।
इन्द्राणि नित्यसुभगे जरया म्रियते न जातु ते दयितः ॥५२॥
पञ्चत्रिंशन्मम मयानुक्ष्णः संप्रति पचन्ति भुक्तिकृते।
यानहमद्मि स्थूलो याभ्यां कुक्षी उभौ पृणन्ति मम ॥५३॥
ऐन्द्रं सोमं पिबतो मम पुनरेतान् पशून् भक्ष्यान्।
काचित्करं हविः प्रियमेष नवेन्द्रः स्वतंत्रमश्नातु ॥५४॥
इन्द्रोऽयमसुरकन्यागर्भज एतस्य पत्नी च।
अस्ति पुलोमासुरजा तत इन्द्रोऽश्नातु गोमांसम् ॥५५॥
अयमिन्द्रो विश्वस्मादुत्तर इति हि प्रतिज्ञातम्।
इन्द्राण्यपीन्द्रेणापि वृषाकपिनाऽसुरेन्द्रेण ॥५६॥

इन्द्राणी के प्रति वृषाकपि द्वारा दी गई सान्त्वना

तदनन्तर वृषाकपि ने भी विनयपूर्वक उस इन्द्राणी को प्रतिवचन कहे। वह बोला—हे इन्द्राणि! नित्य सौभाग्यवति! तुम्हारा पति न वृद्धावस्था को प्राप्त होता है और न ही मृत्यु को प्राप्त होता है अर्थात् अजर और अमर है ॥५२॥

सोमपान के प्रायश्चित्त स्वरूप वृषाकपि कहते हैं — मेरे भोजन के लिए जिन पैंतीस बैलों को अभी पकाते हैं अर्थात् इस समय पकाया जा रहा है, जिनको मैं खाता हूँ और जिनको खाने से मैं स्थूल हो रहा हूँ और जिनसे मेरी दोनों कुक्षियाँ पुष्ट हो रही हैं, अतः इन्द्र का सोम पीते हुए मेरे इन भक्ष्य पशुओं को, जो कभी-कभी होने वाला हवि है, इस हवि का इन्द्र स्वतंत्र रूप से भक्षण करे अथवा न करे ॥५३-५४॥

वृषाकपि बोले — यह इन्द्र असुरकन्या के गर्भ से उत्पन्न हुआ है और इसकी पत्नी भी पुलोम नाम के असुर की पुत्री है। इसलिए इन्द्र गोमांस का भक्षण करे ॥५५॥

वृषाकपि के द्वारा इन्द्राणी तथा इन्द्र के साथ प्रतिज्ञा की गई कि यह इन्द्र समस्त विश्व में श्रेष्ठ है ॥५६॥

एतदाख्यानस्य ऋग्वेदसंहितायामुल्लेखः।

ऋग्वेदसंहितायां दशमे तन्मण्डले तदा सूक्ते (१०।८६)
आख्यानमेतदुक्तं तन्मन्त्रा अत्र दर्श्यन्ते ॥५७॥

इन्द्राणीक्रोधविषया वेदमन्त्रा यथा।

(१) पराहीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः ।
नो अह प्रविन्दस्यन्यत्र सोमपीतये ॥
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ (१० ।८६ ।२) ॥१ ॥
(२) किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः ।
यस्मा इरस्यसी दुन्वर्यो वा पुष्टिमद्वसु ॥
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ (१० ।८६ ।३) ॥२ ॥
(३) यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि ।
श्वान्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुः ॥
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः (१० ।८६ ।४) ॥३ ॥
(४) अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते ।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा ॥
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ (१० ।८६ ।९) ॥४ ॥

इस आख्यान का ऋग्वेद संहिता में उल्लेख

ऋग्वेदसंहिता के १०वें मण्डल के ४६वें सूक्त में यह आख्यान वर्णित है, जिसके मंत्र यहाँ प्रदर्शित है ॥५७ ॥

इन्द्राणी के क्रोध से संबंधित मंत्र

हे इन्द्र, तू अत्यन्त व्यथित होकर वृषाकपि के पीछे दौड़ रहा है। तू अन्यत्र सोम पीने के लिए क्यों नहीं जाता है? क्योंकि निश्चित ही इन्द्र सबसे श्रेष्ठ है ॥१ ॥ (१०/८६/२)

तुम्हारे इस हृष्टपुष्ट हरितवर्ण वृषाकपि ने, जो मृग के समान है, क्या किया है? जिसके लिए तू इसे उदारतापूर्वक पुष्टिकारक धन देता है। वह इन्द्र निश्चित ही सर्वश्रेष्ठ है ॥२ ॥ (१०/८६/३)

हे इन्द्र, तुम जिस वृषाकपि की रक्षा करते हो, इसके कानों को वराह को खाने की इच्छा करने वाला कुत्ता शीघ्र खा जावे। निश्चय ही इन्द्र सर्वश्रेष्ठ है ॥३ ॥ (१०/८६/४)

यह घातक अथवा धृष्ट वृषाकपि मुझे वीर पति. तथा पुत्र से रहित मानता है और मैं मरुत्सखा इन्द्र की पत्नी हूँ तथा वीरपुत्रों से युक्त हूँ। निश्चित ही इन्द्र सर्वश्रेष्ठ है ॥४ ॥ (१०/८६/९)

देवेन्द्रवृषाकपिकृतपरिसान्त्वनामंत्रा यथा

(१) वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत।
यत्रामदद् वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥
(१० ।८६ ।१) ॥५ ॥

(२) किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाङ्घने।
किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्यमीषि वृषाकपिं॥
विश्वास्मादिन्द्र उत्तरः ॥१० ।८६ ।८) ॥६ ॥

(३) नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते।
यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति॥
विश्वास्मादिन्द्र उत्तरः ॥ (१० ।८६ ।१२) ॥७ ॥

(४) अयमेमि विचाकशद्विचिन्वन् दासमार्य्यम्।
पिबामि पाकसुत्वनोऽभि धीरमचाकशं।
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः । (१० ।८६ ।१९) ॥८ ॥

देवेन्द्र वृषाकपि द्वारा दी गई सान्त्वना के वेदमंत्र

मैंने (इन्द्र ने) ही सोमयाग करने के लिए स्तोताओं को कहा था, परन्तु उन्होंने मेरी स्तुति नहीं की, बल्कि वृषाकपि असुर की स्तुति की, जहाँ सोमयाग में मेरे मित्रश्रेष्ठ वृषाकपि ने सोमपान किया और प्रसन्न हुआ। फिर भी मैं (इन्द्र) विश्व में सर्वश्रेष्ठ हूँ ॥५ ॥ (१०/८६/१)

इन्द्र वृषाकपि कहते हैं-- हे सुन्दर बाहु वाली! हे सुन्दर अंगुलियों वाली! हे सुकेशि! हे विशाल जंघा वाली! हे शूरपत्नि इन्द्राणि! तुम हमारे वृषाकपि पर क्यों क्रुद्ध हो रही हो? क्योंकि इन्द्र विश्व में सर्वश्रेष्ठ है ॥६ ॥ (१०/८६/८)

मैं यजमानों को देखता हुआ, शत्रुओं को दूर करता हुआ और आर्यों का अन्वेषण करता हुआ यज्ञ में आता हूँ। पक्व, दृढ मन से सोम को निचोड़ने वालों का सोमपान करता हूँ और बुद्धिमान् यजमानों की रक्षा करता हूँ। इन्द्र सबसे श्रेष्ठ है ॥८ ॥ (१०/८६/१९)

असुरेन्द्रवृषाकपिकृतपरिसान्त्वनामंत्रा यथा।

१— इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम्।
न ह्यस्या अपरं च न जरसा मरते पतिः॥
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ (१० ।८६ ।११) ॥९ ॥

२— उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम्।

उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे ॥
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ (१० ।८६ ।१४) ॥१० ॥

असुरराज वृषाकपि द्वारा दिये गये सान्त्वना के मंत्र

मैं समस्त स्त्रियों में इन्द्राणी को सौभाग्यशाली सुनता आया हूँ। अन्य स्त्रियों के पुरुषों के समान इन्द्राणी का पति अजर और अमर है। इन्द्र विश्व में सर्वश्रेष्ठ है ॥९ ॥ (१०/८६/११)

मेरे लिए याज्ञिक लोग पंद्रह बीस बैल पकाते हैं, जिन्हें खाकर मैं स्थूल और पुष्ट होता हूँ। याज्ञिक मेरी दोनों कुक्षियों को सोम से भरते हैं। इन्द्र विश्व में सर्वश्रेष्ठ है ॥१० ॥ (१०/८६/१४)

देवेन्द्रासुरेन्द्रयोर्वृषाकप्योः सन्धिशान्तिः ।

अपिबत् सुरां सुरेन्द्रः स चासुरेन्द्रोऽपिबत् सोमम् ।
तत्रेन्द्रयोर्विवादोऽशाम्यत्कथमपि तयोर्नीत्या ॥५८ ॥

देवेन्द्र और असुरेन्द्र वृषाकपि में परस्पर सन्धि और शान्ति ।

देवेन्द्र वृषाकपि ने सुरा का पान किया और असुरेन्द्र वृषाकपि ने सोम को पीया। वहाँ उस यज्ञ में दोनों वृषाकपि में जो विवाद उत्पन्न हुआ था, वह इन दोनों की नीति से किसी प्रकार शान्त हो गया ॥५८ ॥

क्रमशस्तत्रैव ब्राह्मणानां वैज्ञानिकविप्रतिपत्तिप्रारम्भः ॥

वरुणस्य राजधानीनगरेऽस्मिन् किन्तु वाह्लीके ।
यज्ञे समवेतानां विप्राणां विग्रहोऽत्यभवत् ॥५९ ॥
अग्निर्वसुभिः क्रमते सोमो रुद्रैर्मरुद्भिरिन्द्रोऽयम् ।
आदित्यैरथ वरुणो विश्वैदेवैर्बृहस्पतिः क्रान्तः ॥६० ॥
अग्निर्वसुभिः क्रमते, रुद्रैरिन्द्रोऽथ वरुण आदित्यैः ।
सोमः पितृभिः क्रमते विश्वैर्देवैर्बृहस्पतिः क्रान्तः ॥६१ ॥
अग्निर्वसुभिः क्रमते वायू रुद्रैरथेन्द्र आदित्यैः ।
सोमः पितृभिर्वरुणस्त्वद्भिर्विश्वैर्बृहस्पतिर्देवैः ॥६२ ॥
इत्थं त्रयः प्रवादा अभवन् वैज्ञानिके समरे ।

असुराः प्रथमं पक्षं जगृहुस्तत्रोत्तमं त्वैन्द्राः ॥६३॥
*परमर्षयस्त्वपश्यन् न विसंवादावकाशमिह।
शवसोनपात एते युञ्जन्त्यधिदैवतैस्तैस्तैः ॥६४॥
अग्निर्वायुश्चेन्द्रो रोदस्यां क्रन्दसी देवाः।
सन्ति बृहस्पतिसोमौ वरुणः स्वस्तेऽधिदैवतैः सयुजः ॥६५॥
पूर्वेषामयमुत्तम एष बृहस्पतिरथेन्द्रस्तु।
प्रथमोऽयमुत्तरेषामित्यृषिभिर्हि स्थितिर्दृष्टा ॥६६॥
इत्याह संयतीतोऽर्वाक् क्रमतो रोदसीदृष्ट्या।
पृथ्वीक्रमतस्त्वग्निः प्रथमस्तुर्यो बृहस्पतिः सोस्ति ॥६७॥
अग्निश्च वायुसोमौ सहेन्द्रवरुणौ बृहस्पतिश्चान्ते।
लोकचतुष्टयदेवा इत्थं क्रमसंनिविष्टास्ते ॥६८॥
अग्निर्वसुभिः प्रथमो विश्वदेवैर्बृहस्पतिः क्रमते।
वायू रुद्रैः सोमो रुद्रैः पितृभिश्च संयुङ्क्ते ॥६९॥
आदित्यैरपि रुद्रैर्मरुद्भिरिन्द्रः सजूर्भवति।
वरुणोऽद्भिश्चादित्यैर्युनक्ति नान्यैरिति ज्ञेयम् ॥७०॥
इत्थं कृतसिद्धान्ते विज्ञाने निर्विवादेऽपि।
अधिकृत्येन्द्रं वरुणं विप्रा विप्रोदिरे तत्र ॥७१॥
असुरो वरुणो मान्यो न त्विन्द्रो देव इत्यन्ये।
इन्द्रो देवो मान्यो नत्वसुरो वरुण इत्यन्ये ॥७२॥
जरदष्ट्यादयः केचिन्नेन्द्रं देवममंसत।
बृहद्दिवादयस्त्विन्द्रमागध्यं निग्धारयन् ॥७३॥

वहीं से ब्राह्मणों में क्रमशः वैज्ञानिक मतभेद का प्रारम्भ

परन्तु वरुण की राजधानी बाह्लीक (बलख) में यज्ञ के समय एकत्रित ब्राह्मणों में परस्पर विद्रोह उत्पन्न हो गया ॥५९॥

*

	१	२	३	४	५	६
	अग्निः	वायुः	सोमः	वरुणः	इन्द्रः	बृहस्पतिः
	वसुभिः	रुद्रैः	रुद्रैः पितृभिः	आदित्यैः अद्भिः	आदित्यैः रुद्रैः मरुद्भिः	विश्वैर्देवैः
	पृथ्वी	अन्तरिक्षम्	अन्तरिक्षम्	द्यौः	द्यौः	दिवःपृष्ठम्
	१	२	२	३	३	४

इस वैज्ञानिक युद्ध में तीन विवाद उत्पन्न हुए, जिनमें प्रथम मतानुसार अग्नि आठ वसुओं से व्याप्त है, सोम रुद्रों से, इन्द्र मरुद्‌गणों से चलता है, वरुण आदित्यों से व्याप्त है तथा बृहस्पति की विश्वेदेवों से व्याप्ति होती है ॥६० ॥

इनमें द्वितीय मत था — अग्नि (आठ) वसुओं से चलता है, इन्द्र ग्यारह रुद्रों से चलता है तथा पितृगणों से सोम चलता है। बारह आदित्यों से वरुण तथा विश्वेदेवों से बृहस्पति की व्याप्ति होती है ॥६१ ॥

तृतीय मत के अनुसार — अग्नि वसुओं से चलता है, वायु मरूद्‌गणों से तथा इन्द्र की आदित्यों से व्याप्ति होती है। सोम पितृगण से, वरुण जल से और बृहस्पति विश्वे देवों से व्याप्त है ॥६२ ॥

इस प्रकार उस वैज्ञानिक युद्ध में तीन विवाद उत्पन्न हो गये, जिनमें असुरों ने प्रथम पक्ष का समर्थन किया तथा इन्द्र के अनुयायियों (देवों) ने उत्तम अर्थात् तृतीय मत का समर्थन किया ॥६३ ॥

*परन्तु परम ऋषियों ने तो इस विवाद के लिए किसी प्रकार का स्थान ही नहीं पाया। क्योंकि उनके मतानुसार यह वस्तुतः विवाद न होकर बल के द्वारा नियंत्रित तत्तद् अधिदैवतों के आध्यक्ष से युक्त है ॥६४ ॥

अग्नि, वायु और इन्द्र रोदसी के देव हैं। बृहस्पति, सोम और वरुण क्रन्दसी के देव हैं। ये सभी स्वर्ग में अपने-अपने अधिदैवतों से युक्त हैं ॥६५ ॥

पूर्व के अर्थात् ऊपर के लोकों में बृहस्पति प्रथम है तथा बाद वाले अर्थात् नीचे के लोकों में इन्द्र प्रथम है। इस प्रकार ऋषियों के द्वारा स्थिति देखी गई ॥६६ ॥

इस प्रकार संयती के नीचे के क्रम से रोदसी की दृष्टि से कहा गया और पृथ्वी के क्रम से अग्नि प्रथम है तथा बृहस्पति चौथा देव है ॥६७ ॥

अग्नि, वायु, सोम, इन्द्र और वरुण तथा बृहस्पति सबसे अन्त में हैं। इस प्रकार चारों (पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्यु और दिवः पृष्ठ) लोकों के अधिष्ठातृदेव क्रम से स्थित हैं ॥६८ ॥

*

	१	२	३	४	५	६
	अग्नि	वायु	सोम	वरुण	इन्द्र	बृहस्पति
	वसुओं के द्वारा	रुद्रों के द्वारा	रुद्र पितृगणों के द्वारा	आदित्यों जलों के द्वारा	.आदित्य रुद्र मरुतों के द्वारा	विश्वेदेवों के द्वारा
	पृथ्वी	अन्तरिक्ष	अन्तरिक्ष	द्यु	द्यु	दिवःपृष्ठ
	१	२	२	३	३	४

अग्नि वसुओं से व्याप्त है और प्रथम है, बृहस्पति विश्वेदेवों से व्याप्त है, वायु रुद्रों से चलता है और सोम रुद्रों और पितृगण से संयुक्त रूप से व्याप्त है। आदित्य, रुद्र और मरुद्गणों से संयुक्त रूप से इन्द्र अतिक्रान्त हैं तथा वरुण जलों और आदित्यों से संयुक्त रूप से व्याप्त है, इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, ऐसा जानना चाहिये ॥६९-७० ॥

इस प्रकार इस निर्विवाद वैज्ञानिक सिद्धान्त में भी इन्द्र और वरुण को आधार बनाकर ब्राह्मणों में विवाद उत्पन्न हो गया ॥७१ ॥

कुछ ब्राह्मणों ने कहा कि असुर वरुण को ही देव मानना चाहिये न कि इन्द्र को, तथा अन्य ब्राह्मणों ने कहा कि इन्द्र को ही देव मानना चाहिये न कि वरुण को ॥७२ ॥

जरदष्टि इत्यादि ब्राह्मणों ने इन्द्र को देव नहीं माना तथा बृहद्देवता इत्यादि ब्राह्मणों ने इन्द्र को आराध्य देव निर्धारित किया ॥७३ ॥

तत्र तावत्संक्षेपतो वरुणपरमासुरविज्ञानम्।

वरुणेऽध्याहितमिन्द्रं पश्यन्तश्चक्षते त्वमी असुराः।
वरुणो भवतु स्वाडिन्द्रः सम्राट् तथा हि विज्ञानम् ॥७४ ॥
भूयस्य आप एताः कनीय एवात्र चेतना ज्योतिः।
अप्स्वेव तु चैतन्यं बुध्यति वरुणः परस्ततो हीन्द्रात् ॥७५ ॥
भूतानि दैवतानि च जातान्यद्भ्योऽत एव ता आपः।
प्राणः प्रज्ञा चेन्द्रो भूतान्यालम्बते तानि ॥७६ ॥
देहेऽप्यधिका आपो लवणं चाधिकमिदं द्वयं वरुणः।
प्राणप्रज्ञाचेष्टावहः स इन्द्रोऽप्सु संश्रितो भाति ॥७७ ॥
अन्नमभुक्त्वा जीवति नापीत्वापस्तदाप एवात्मा।
अन्नैरपीह भुक्तैस्तद्रस एवात्मनि ध्रियते ॥७८ ॥
परमेष्ठ्यपां समुद्रः प्रतिपत् तत्रानुचरवद् द्यौः।
योऽसाविन्द्रो द्युस्थः स वारुणीस्वप्सु संश्रितस्तपति ॥७९ ॥

संक्षेप में वरुणविषयक आसुर विज्ञान

वरुण में ही इन्द्र आधारित है, ऐसा मानते हुए असुरों ने उद्घोषणा की कि विज्ञान के अनुसार इन्द्र तो सम्राट् है और वरुण स्वाराट् है, ऐसा मानना चाहिये ॥७४ ॥

असुरों का कहना था कि इस भू-मण्डल पर जल का आधिक्य है और इन्द्र तत्त्व (चैतन्य ज्योति) की मात्रा जल तत्त्व से कम है क्योंकि आपः (जल) में ही चैतन्य तत्त्व का उद्बोध (जागृति) होती है। अतः वरुण इन्द्र से श्रेष्ठ है ॥७५ ॥

समस्त भूत और दैवत अप्तत्व से ही उत्पन्न होते हैं। प्रत्येक वस्तु में स्थित प्राण, बुद्धि और इन्द्र (चैतन्य) तत्त्व तथा समस्त भूत तत्त्व जलों पर ही आश्रित हैं। ("आपो वे प्राणाः" व्यवस्था के अनुसार जल ही सर्वोपरि तत्त्व है।) ॥७६ ॥

देह में भी अप्तत्व तथा लवण का आधिक्य है और ये दोनों ही पदार्थ वरुण हैं। (प्राण, प्रज्ञा और चेष्टा को धारण करने वाला इन्द्र (चैतन्य ज्योति) जल (वरुण) पर ही आश्रित है ॥७७ ॥

अन्न ग्रहण किये बिना प्राणी जीवित रह सकता है परन्तु जल पीये बिना प्राणी जीवित धारण नहीं कर सकता है। अतः आपः (जल) ही आत्मा हैं। अन्न खाने पर भी उस अन्न का रस भाग ही देह में धारण किया जाता है, जबकि स्थूल भाग निष्कासित कर दिया जाता है। ॥७८ ॥

यह परमेष्ठी मण्डल जल का समुद्र है, वहाँ पहुंचने के लिए प्रत्येक पद पर यह द्युलोक सेवक के समान स्थित है तथा इन्द्र जो द्युलोक में स्थित है, वह भी इस अप्तत्त्व में आश्रित रहकर देदीप्यामान हो रहा है ॥७९ ॥

अथ प्रतिपादे संक्षेपत इन्द्रपरं दैवविज्ञानम्।

१— इन्द्राध्याहितवरुणं पश्यन्तश्चक्षतेऽथ देवास्तु।
इन्द्रः स्वाराड् वरुणः सम्राडेवं हि विज्ञानम् ॥८० ॥
भूयस्यो विश एता एकः स्वाराट् प्रशास्त्यधिष्ठाय।
स्वाराड् विक्ष्वनुबुद्धो विभवति तास्वेक उद्रिक्तः ॥८१ ॥

		अग्निः	वायुः	इन्द्रः		बृहस्पतिः	सोमः	वरुणः	शवसोनपातः
प्रथममते	१	वसुभिः ८	०	मरुद्भिः ७		विश्वैर्देवैः	पितृभिः ८	आदित्यैः १२	आसुरमतेऽ-
मध्यममते	२	वसुभिः ८	०	रुद्रैः ११		विश्वैर्देवैः	पितृभिः ८	आदित्यैः १२	धिदेवाः
उत्तममते	३	वसुभिः ८	रुद्रैः ११	आदित्यैः १२		विश्वैर्देवैः	पितृभिः ८	अद्भिः४	ऐन्द्रमतेऽधि-देवाः
		१	१	३		१	२	२	
	३	रोदसीदेवाः			३	क्रन्दसीदेवाः			द्यावापृथिव्यौ

आत्मानः

३. द्यौः संयत्यां

द्यौः—अन्तर्य्यामी—अभ्वम् =३ कर्म्मरूपनामानि।
अं०—सूत्रात्मा—सूत्रम् =२ ऋतं सत्यम्।
पृ०—वाचस्पतिः—वेदाः =३ ऋक्, साम, यजूंषि।

२ अं० क्रन्द्रस्यां	द्यौः—वरुणः—आपः =४ अम्भः मरीचिः मरः श्रद्धा। अं०—सोमः पितरः =३ भृगवः अङ्गिरसः अथर्वाणः। पृ०—बृहस्पतिः विश्वेदेवाः =२
१. पृ० रोदस्याम्	द्यौः—इन्द्रः—आदित्याः =१२ अं०—वायुः रुद्राः =११ पृ०—अग्निः—वसवः =८

हिरण्यगर्भमते

		बृहस्पतिः	विश्वेदेवाः।
	द्यौः	इन्द्रः	आदित्याः रुद्राः—मरुतः।
रोदस्याम्		वरुणः	आदित्याः —आपः।
		सोमः	रुद्राः—पितरः।
	अं.	वायुः	रुद्राः।
	पृ०	अग्निः	वसवः।

तदनन्तर इन्द्रपरक दैवविज्ञान का संक्षेप में प्रतिपादन

१—तब देवों ने वरुण को इन्द्र पर आश्रित मानते हुए कहा कि इन्द्र स्वाराट् है तथा वरुण सम्राट् ही है ॥८० ॥

प्रजायें बहुत सी हैं तथा उन पर प्रतिष्ठित रहता हुआ यह स्वाराट् अकेला ही शासन करता है। यह प्रजाओं में जागृत होकर तथा बुद्धि को प्राप्त करता हुआ वैभव से युक्त होता है ॥८१ ॥

	अग्नि	वायु	इन्द्र	बृहस्पति	सोम	वरुण	शवसोनपात
प्रथम मत १	वसुओं से ८	०	मरुतों से ७	विश्वेदेवों से	रुद्रों से ११	आदित्यों से ८	असुरमत के अधिदेव
द्वितीय मत २	"	०	रुद्रों से ११	"	पितृगण से ८	"	----------
तृतीय मत ३	"	रुद्रों से	आदित्यों से १२	"	"	जलों से ४	ऐन्द्रमत के अधिदेव
	१	१	३	१	२	२	
३	रोदसी के देव		३	क्रन्दसी के देव			द्यावापृथिवी

आत्मा

द्युलोक—अन्तर्यामी—अभ्व तीन प्रकार के हैं—कर्म, रूप और नाम।

द्युलोक संयती में — अं०—सूत्रात्मा—सूत्र दो हैं —ऋत और सत्य।
पृ.— वाचस्पति—वेद तीन हैं —ऋक्, यजुः, साम।

अं०/क्रन्दसी में — द्युलोक—वरुण—अप्तत्त्व चार हैं—अम्भ, मरीचि, मरः और श्रद्धा।
अं.—सोम—पितृगण तीन हैं —भृगु, अंगिरा, अथर्वा।
पृं.—बृहस्पति—विश्वेदवा दो हैं।

पृथ्वी/रोदसी में — द्युलोक—इन्द्र—आदित्य १२
अं.—वायु—रुद १२।
पृ.—अग्नि—वसु ८।

हिरण्यगर्भ के मतानुसार।

	द्युलोक	बृहस्पति	विश्वेदेव।
रोदसी में		इन्द्र	आदित्य—रुद्र—मरुत्।
शवसोनपात		वरुण	आदित्य—अप्तत्त्व।
(अध्यक्ष)	अ.	सोम	रुद्र—पितृगण।
		वायु	रुद्र।
	पृ.	अग्नि	वसु।

२— आत्मेन्द्रो ह्यधितिष्ठति रक्षति वा दैवतानि।
नश्यन्ति तानि सद्यो यदात्मना तानि हीयन्ते ॥८२॥
आपः शरीरमेतद्भोगाधिष्ठानमात्मनस्तदिन्द्रस्य।
आलोम चानखाग्रं विभवत्यात्मा स देहेऽस्मिन्॥८३॥
आत्मा शरीरयष्टिं धत्ते तेनोत्थितेऽत्र चेष्टास्ति।
अथात्मना विहीनं निपतति सद्योऽथ पूयते श्वयति॥८४॥
आपः सोमः सोमं भुनक्ति हीन्द्रः पिबन्ति तेनापः।
रोगा जलोदराद्या दृष्टा नात्मास्ति तेनापः ॥८५॥

३— अपि च भवन्ति द्यावाभूम्यस्तिस्तो मिथोऽनुगताः।
अर्वागहीयस्यः परावरीयस्य आम्नाताः॥८६॥
प्रथमा तु रोदसीयं तद्गर्भा क्रन्दसी मध्या।
तदुभयगर्भा सान्या या संयत्युत्तमा महती ॥८७॥
प्रतिपद् द्यौरथ भूम्योऽनुचरन्त्यस्ताश्च बह्व्यः स्युः।
एकैकस्यां द्यावाभूम्यां द्यौरेकधैव स्यात्॥८८॥
एकैकस्यां द्यावाभूम्यां ब्रह्मेन्द्रविष्णवो हृदये।
सयुजोऽध्यक्षाः कुर्वत एते विश्वानि कर्माणि॥८९॥
रोदस्यामिह सूर्य्यो हिरण्यगर्भोऽस्ति स ब्रह्मा॥
क्रन्दस्यां तु परमेष्ठी संयत्यां तु स्वयंभूः सः ॥९०॥

त्रिविधं च वैश्वरुप्यं संयत्यां व्योममण्डलं पमम्।
क्रन्दस्यां तु समुद्रो ब्रह्माण्डं रोदसीविषयम्॥९१॥
इन्द्रोऽस्ति विश्वकर्मा व्योम्नि स वाचस्पतिस्तु वेदमयः।
वरुणस्तु विश्वकर्मा स समुद्रेऽपांपतिर्मध्यः॥९२॥
ब्रह्माण्डविश्वकर्मा त्विन्द्रः सोऽग्निक्लृप्तः।
वेदा आपोऽग्नय इति तेषामिह कर्मयोनयस्त्रिविधाः॥९३॥

४— पृष्ठे दिवस्तु वरुणः समुद्रनाथोस्ति पारमेष्ठ्यो यः।
ऊर्ध्वं ततोऽन्य इन्द्रस्तपति तपोलोकनायकश्चेता ॥९४॥
दिव्यादित्यास्त्विन्द्रो दिव्यादित्यं प्रशास्ति यं वरुणम्।
वरुणस्ततः स भिन्नः स्वायंभुव इन्द्र एष यं शास्ति॥९५॥
दिव्यादित्यं त्विन्द्रं शास्ति स वरुणः स्वमण्डलान्तस्थम्।
परमे व्योम्नि स्वाराडिन्द्रः शास्ति स समुद्रमात्मगतम्॥९६॥

५— वाग् वै स इन्द्रोऽस्ति स सत्यलोके वाग्लोकतोऽपोऽसृजदत्र पश्चात्।
अपा समुद्रो जनदस्ति लोकः स सत्यलोकादवरः प्रतीतः ॥९७॥

६— परमं तु वैश्वरूप्यं स्वायंभुवमस्ति पारमेष्ठ्यं तु॥
तदवरमथ पुनरवरं सौरं भौमं ततोऽप्यवरम्॥९८॥
प्रति वैश्वरूप्यमिन्द्रो ब्रह्मा विष्णुर्नियम्यन्ते।
वरुणस्तु पारमेष्ठ्ये सौरे वा वैश्वरूप्येऽस्ति ॥९९॥
इत्थं परावतीन्द्रो वरुणादर्वावतीन्द्र आभाति।
अन्तर्बहिरुभयेन तु वरुणोऽनुगृहीत इन्द्रेण ॥१००॥

७— तस्मादिन्द्रः स्वाराड् वरुणः सम्राडिदं हि विज्ञानम्।
विज्ञानादनपेतो योऽर्थः स ब्राह्मणैर्ग्राह्यः ॥१०१॥

२— यह इन्द्र ही आत्मा है, यही अधिष्ठित होता हुआ विद्यमान है, रक्षा करता है तथा जब आत्मा रूप इन्द्र के द्वारा त्याग दिया जाता है तो वे दैवत शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं॥८२॥

यह आपः या शरीर उस आत्मा रूप इन्द्र का भोगाधिष्ठान है (भोगस्थली है)। इस शरीर में लोम और नाखून के अग्र भाग पर्यन्त अर्थात् सर्वत्र इस आत्मा का ही प्रमुख स्थान है॥८३॥

यह आत्मा ही इस शरीरयष्टि को धारण करता है, इस आत्मा के शरीर में रहने पर ही क्रियशीलता रहती है। जैसे ही यह शरीर आत्मा से विहीन हो जाता है तो शीघ्र ही शरीर से दुर्गन्ध आने लगती है तथा वह नष्ट हो जाता है॥८४॥

यह अप्तत्त्व ही सोम है तथा इन्द्र इस सोम का भोग करता है तथा जल रूप में परिणत होने पर इस जल को संसार पीता है तो उसी से जलोदरादि रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं, क्योंकि उस जल की आत्मा (केन्द्र) नहीं होती है ॥८५ ॥

३.— तीन प्रकार की द्यावापृथ्वी है — रोदसी, क्रन्दसी, और संयती। ये तीनों परस्पर अनुगत हैं अर्थात् मिली हुई है। बाद वाली अहीयसी कहलाती है तथा पर (ऊपर वाली) वरीयसी कहलाती है ॥८६ ॥

यह रोदसी प्रथम द्यावा-पृथिवी है तथा इस रोदसी को धारण करने वाली क्रन्दसी नामक द्यावा-पृथ्वी है जो मध्य में स्थित है। इन दोनों (रोदसी और क्रन्दसी) को धारण करने वाली तीसरी द्यावा-पृथ्वी है और वह है संयती। यह सर्वोपरि है, यही महान् है ॥८७ ॥

प्रतिक्षण भूतियाँ द्यौ का अनुसरण करती हैं, ये भूमियाँ अनेक हैं, परन्तु एक-एक द्यावापृथ्वी में द्युलोक एक ही हैं ॥८८ ॥

प्रत्येक द्यावापृथ्वी के हृदय में ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्र निवास करते हैं। ये सभी मिलकर इनके अध्यक्ष हैं और समस्त कार्यों का विधान करते हैं ॥८९ ॥

रोदसी में सूर्य ही हिरण्यगर्भ है, वही प्रधान है। क्रन्दसी में परमेष्ठी प्रधान है तथा संयती में स्वयम्भू प्रधान है ॥९० ॥

इस प्रकार तीन प्रकार का विश्व रूप भाव है तथा इनमें से संयती में व्योममण्डल सर्वोत्तम है, परम है। क्रन्दसी में समुद्र प्रधान है और रोदसी में ब्रह्माण्ड ही प्रधान विषय है ॥९१ ॥

इन्द्र उस परम व्योममण्डल का विश्वकर्मा है, वही वाचस्पति है, वही वेदमय है। जलों का स्वामी वरुण तो समुद्र का विश्वकर्मा है और वह मध्य में स्थित है ॥९२ ।।

ब्रह्माण्ड में विश्वकर्मा इन्द्र है। वह तीनों अग्नियों (सूर्य, वायु, इन्द्र) से कल्पित है। वेद, आप: और अग्नि ये तीन प्रकार की इनकी कर्मयोनियाँ हैं ॥९३ ॥

४— द्युलोक के पृष्ठ में वरुण है, जो समुद्र नाथ है और परमेष्ठी का स्वामी है। उसके ऊपर दूसरा इन्द्र है, वह तपोलोक का स्वामी है, चेतना देने वाला है तथा देदीप्यमान है ॥९४ ॥

द्युलोक का सूर्य इन्द्र है, इस दिव्यादित्य पर शासन करने वाला वरुण है, परन्तु वह वरुण इस वरुण से भिन्न है, जिस पर वह स्वयम्भूमण्डल का स्वामी इन्द्र शासन करता है ॥९५ ॥

अपने मण्डल में स्थित दिव्यादित्य इन्द्र पर वरुण शासन करता है। परन्तु परम व्योममण्डल में तो वह इन्द्र ही अपने गर्भ में स्थित वरुण पर शासन करता है ॥९६ ॥

५— वह इन्द्र ही वाक् (वेद का स्वामी) है, उसी ने सत्यलोक में वाग्लोक से जल का सृजन किया है। इस वाग्लोक से आगे जलों का समुद्र रूप जनत् लोक है, वह सत्यलोक से नीचे दिखाई देता है ॥९७ ॥

६— सर्वोपरि विश्व रूप भाव तो स्वम्भूमण्डल का है, परमैष्ठी लोक तो उससे नीचे है, उससे भी छोटा सूर्यलोक है और उससे भी छोटा (नीचे) भौमलोक है ॥९८ ॥

प्रत्येक विश्वरूप को ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र नियंत्रित करते हैं, परन्तु वरुण तो परमेष्ठी अथवा और विश्वरूप में स्थित है। इस प्रकार स्वयम्भू की दृष्टि से उच्चतम इन्द्र नीचा भी प्रतीत होता है। इस प्रकार अन्दर और बाहर दोनों ओर से वरुण ही इन्द्र के द्वारा अनुगृहीत है ॥९९-१०० ॥

७— इसलिए इन्द्र स्वाराट् है तथा वरुण सम्राट् है, यही विज्ञान है, वास्तविकता है तथा विज्ञान से सिद्ध है (अविरहित है) यही अर्थ ब्राह्मणों के द्वारा स्वीकार, किया जाता है ॥१०१ ॥

अथेन्द्रपक्ष्यैर्ब्राह्मणैरुद्घोषितं देवेन्द्रमहत्त्वम्।

(ब्राह्मणैरर्पितमिन्द्रमहत्त्वे स्वसंमतिरूपं स्वीकारपत्रम्)

(१) तत्र प्रक्रान्ते ब्राह्मणानां विचारयुद्धे प्रथमं तावत् काण्वो देवेन्द्रपक्षपाती स्ववर्ग्यानार्य्यानभ्यादिदेश।

मा चिदन्यद् वि शंसत सखायो मा रिषण्यत।
इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत॥८।१।१॥

(२) नृमेधा आह–

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत्।
धर्म्मकृते विपश्चिते पनस्यवे॥(८।९८।१)

(३) हिरण्यस्तूप आह–

सूर्य्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसुपः साकमीरते।
तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो नेन्द्रादृते पवते धाम किञ्चन॥(९/६९/६)

---

(१) विशंसत =वृथोच्चारयत। रिषण्यत =वृथोपक्षीणा भवत॥ वृषणं =कामदम्। इत् =एव। सचा =सह। उक्था =स्तोत्रैः।

(२) धर्मकृते =संस्कारकर्त्रे। विपश्चिते =विवेचकबुद्धये। पनस्यवे = स्तुतिकामाय॥

(३) द्रावयित्नवोः =द्रवणशीलाः। मत्सरासः =मदकराः। प्रसुपः =स्वापयितारः। आशवः =आश्नुवानाः। सर्गासः = सृज्यमानाः सोमाः रश्मयो वा। ततं विस्तृतं तन्तुं सूत्रं परितः सहैव प्रेरयन्ति।

(४) वामदेव आह-

नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायां अस्ति वृत्रहन्।
नकिरेवा यथा त्वम्।। (४।३०।१) ।
त्वोतासो मघवन्निन्द्र विप्रा वयं ते स्याम सूरयो गृणन्तः।
भेजानासो बृहद्दिवस्य राय आकाय्यस्य दावने पुरुक्षोः ।।(४।२९।५) ।

(५) रेणुर्वैश्वामित्र आह-

इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या इन्द्रो अपामिन्द्र हत् पर्वतानाम्।
इन्द्रो वृधामिन्द्र इन्मेधिराणामिन्द्रः क्षेमे योगे हव्य इन्द्र।।(१०/८९/१०)

(६) पूरणो वैश्वामित्र इन्द्रं संबोध्याह-

तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्त्वासस्त्वां गिरः श्वात्र्या आ ह्वयन्ति।
इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि सोमम्।।(१०।१६०।२)
अथ स स्ववर्ग्येभ्य इन्द्रं प्रशंसति-
अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान्न सुनोति सोमम्।
निररत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः ।। (१०/१६०/४)

७. अथ गर्ग आह-

तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रों अस्मे आराच्चिाद्द्वेषः सनुतर्युयोतु ।।(६।४७।१३)

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्य्यस्य पतयः स्याम।।(६।४७।१२)

---

(४) नकिः = नत्वेव। त्वोतासः = त्वया रक्षिताः। गृणन्तः = स्तुवन्तः। वृहद्दिवस्य = महाप्रकाशस्य। आकाय्यस्य = समन्तात् स्तुत्यस्य। रायो = धनस्य। दावने = दाननिमित्ते। भेजानासः = भजमानाः स्याम। पुरुक्षोः = ब्रह्वन्नस्य ॥

(५) अपां = तरलानां। पर्वतानां = कठिनानां। वृधाम् = वृद्धानां । मेधिराणां = प्राज्ञानाम् । क्षेमे = प्राप्तस्य रक्षणे। योगे = अप्राप्तलाभाय प्रयोगे ॥

(६) सुताः = अभिषुताः सौमाः। सोत्वासः = अभिषोतव्या । श्वात्र्यः = क्षिप्रं प्रवर्त्तमानाः ।आह्वयन्ति = आक्रोशन्ति। जुषाणः = सेवमानः। पाहि=पिब। अनुस्पष्टः = प्रत्यक्षः । रेवान् = धनवान्। अरत्नो = निर्दधाति हन्ति = गृह्णाति। अनानुदिष्टं = अप्रार्थितः। ब्रह्मद्विषः = ब्राह्मणस्य शत्रून्।

(७) स्ववान् = धनवान्, आत्मीयतावान् वा। अस्मे = अस्माकम्। द्वेषः = शत्रून्। सनुतः = अन्तर्हितान्, न्तर्हितो वा। आराच्चित् = दूरत एव। युयोतु = पृथक् करोतु। अवोभिः = रक्षाभिः। सुमृडीकः = खप्रदः। विश्ववेदाः = सर्वधनः।

१५. इन्द्रपक्ष के ब्राह्मणों के द्वारा देवेन्द्र के महत्त्व को उद्घोषित किया जाना

(ब्राह्मणों द्वारा इन्द्र के महत्त्व के बारे में अर्पित स्वसंमतिस्वरूप स्वीकृतिपत्र)

(१) ब्राह्मणों के इस मतभेद रूप विचारयुद्ध के उत्पन्न हो जाने पर देवराज इन्द्र के पक्ष-पाती कण्व मुनि ने सर्वप्रथम अपने वर्ग के आर्यों को आदेश दिया॥

हे मित्रो! तुम किसी अन्य देव की स्तुति मत करो। अन्य देव की स्तुति करके दुःखी मत होओ। सोमरस के निचोड़े जाने वाले यज्ञ में बलशाली इन्द्र की ही एकमात्र स्तुति करो। इन्द्र के स्तोत्रों को ही बार-बार बोलो॥ (८/१/१)

(२) नृमेधा ऋषि ने कहा–

हे मनुष्यों! ज्ञानी, महान् धर्म के काम करने वाले, विद्वान् तथा प्रशंसनीय इन्द्र के लिए बृहत् साम का गान करो ॥(८/९८/१/)

(३) हिरण्यस्तूप ने कहा–

सूर्य की किरणों के समान, गमनशील तथा आनन्द देने वाले, शत्रुओं का विनाश करने वाले, त्वराशील, सोमरस तने हुए धागों में से छाने जाते हैं। ऐसे सोमरस इन्द्र के अतिरिक्त अन्य किसी भी स्थान पर नहीं जाते हैं॥ (९/६९/६)

(४) वामदेव ने कहा–

हे वृत्र को नाश करने वाले इन्द्र! तुम से श्रेष्ठ अन्य कोई भी नहीं हैं। तुम से बड़ा भी कोई नहीं है। जैसे तुम हो वैसा अन्य कोई नहीं है॥ (४/३०/१)

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र! तेरे द्वारा संरक्षित ज्ञानी, स्तुति करने वाले तथा बुद्धिमान् हम अत्यन्त तेजस्वी, चारों ओर प्रशंसित होने वाले तथा बहुत अन्न से युक्त तेरे धन के दान में भाग लेने वाले हों॥४/२९/५)

---

(१) विशंसत = व्यर्थ। रिषण्यत = व्यर्थ हानि उठाना। वृषणम् = कामना-पूर्ति करने वाला। इत् = ही। स चा = साथ। उक्था = स्तोत्रों से।

(२) धर्मकृते = संस्कार करने वाले के लिए। विपश्चिते = विद्वान् के लिए। पनस्यवे = प्रशंसनीय के लिए।

(३) द्रावयित्नवो = द्रवणशील। मत्सरासः = आनन्ददायी। प्रसुपः = शत्रुओं का नाश करने वाला। आशवः = त्वराशील। सर्गासः = सृज्यमान सोम अथवा रश्मियाँ।

(४) न कि = नहीं है। त्वोतासः = तुम्हारे द्वारा रक्षित। गृणन्त = स्तुति करते हुए। बृहद्दिवस्य = तेजस्वी का। आकाय्यस्य = चारों ओर से स्तुत्य। रायो = धन का। दानवे = दाननिमित्त। भेजानासः = भाग लेने वाले बने। पुरुक्षोः = बहुअन्नयुक्त।

(५) रेणु वैश्वामित्र ने कहा-

इन्द्र द्युलोक का स्वामी है। इन्द्र पृथ्वी, जल और पर्वतों का भी स्वामी है। इन्द्र बुद्धि और बुद्धिमानों का स्वामी है। योग (अप्राप्त की प्राप्ति) और क्षेम (प्राप्त की रक्षा) के लिए इन्द्र की स्तुति करनी चाहिये॥ (१०/८९/१०)

(६) विश्वामित्र के मित्र पूरण ने इन्द्र को संबोधित करते हुए कहा-

हे इन्द्र! तेरे लिए ही यह सोमरस निचोड़ा हुआ है। इससे आगे भी तेरे लिए ही निचोड़ा जायेगा। सर्वदा सुखदायक, पवित्र स्तुति-रूप स्तोत्रवाणियाँ तुझे ही बुला रही हैं। आज इस प्रातःसवन को स्वीकार करके हे सर्वज्ञ! तू हमारे इस यज्ञ में सोमपान कर॥ (१०/१६०/२)

तत्पश्चात् वह अपने वर्ग को इन्द्र की प्रशंसा करते हुए कहते हैं-

जो धनवान् के समान इसके लिए ही सोमरस प्रदान करता है, वह इन्द्र उसको दृष्टिगोचर होता है। धनवान् इन्द्र बाहु से पकड़कर उसे भयमुक्त करता है। बिना याचना किये ही वह विद्वानों के द्वेषी शत्रुओं को नष्ट करता है॥ (१०/१६०/४)

(७) तदनन्तर गर्ग बोले

पूज्य पुरुष की उत्तम बुद्धि में हम रहें, हम कल्याणकारी और अच्छे मन से युक्त हों। उत्तम पालना करने वाला, धनवान् वह इन्द्र हम से दूर देश में भी छिपे हुए हमारे शत्रुओं को सदा के लिए हम से दूर कर दे॥ (६/४७/१३)

अच्छे प्रकार से रक्षा करने वाला, आत्मशक्ति से युक्त वह इन्द्र रक्षाकार्य से सुख देने वाला हो। निर्भयता प्रदान करें। हम उत्तम बल के स्वामी बनें ॥(६/४७/१२)

अभ्यर्थनाभिरुत्तेजितेन स्वयं देवेन्द्रेणासुरनिहननम्।

तत्र विवादावसरे गर्गाहूतः क्षणादुपस्थाय।
इन्द्रोऽनिन्द्रानेतान् क्षिपन्नुवाच स्वयं घृष्णवन्॥

---

(५) अपां = जलों का । पर्वतानां = कठिन पदार्थों का । वृधाम् = वृद्धों को। मेधिराणां = बुद्धिमानों का। क्षेमे = प्राप्त की रक्षा में। योगे = अप्राप्त की प्राप्ति में।

(६) सुताः = सोमरस निचोड़ा हुआ। सोत्वासः = स्तुति रूप स्तोत्र। श्वात्राः = शीघ्र होने वाली। आह्वयन्ति = बुला रही है। जुषाणः = स्वीकार करते हुए। पाहि= पीओ। अनुस्पष्ट = प्रत्यक्ष। रेवान् = धनवान्। अरत्नौ = मुक्त करता है। हन्ति = पकड़ता है। अनानुदिष्टः = अप्रार्थित। ब्रह्मद्विषः = ब्राह्मणों का शत्रु।

(७) स्ववान् = धनवान्, आत्मीयतावान्। अस्मे = हमारे। द्वैषः = शत्रुओं को। सनुतः = अन्तर्हितों को। आराच्चित् = दूर से। युयोतु = पृथक् करो। अवोभि: = रक्षा से। सुमृडीकः = सुखप्रद। विश्ववेदाः = सर्वधन।

(८) अभीदमेकमेको अस्मि निष्षाळभी द्वा किमु त्रयः करन्ति।
खले न पर्षान् प्रति हन्मि भूरि किं मा निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्राः ॥
(ऋ.सं.१० ।४८ ।७)

*

एवं क्रुध्यन्निन्द्रोऽभिव्लङ्गायाभिचक्रमे सद्यः ।
युद्धाभिशङ्कया प्राक् संनद्धामासुरीं सेनाम् ॥१ ॥
क्षुद्रे युद्धे तस्मिन्निन्द्रभटा एकविंशतिर्निहताः ।
निहतास्तु यातुमत्यां तिस्रः पञ्चाशतोऽरिसेनायाम् ॥२ ॥ (१५०)
येऽत्रानिन्द्रा आर्य्यास्तेषां दाहः प्रमीतानाम् ।
असुराणां मृतदेहा नादह्यन्त क्षितौ त्वधीयन्त ॥३ ॥
मृतदेहा असुराणां यत्र गृहे शेरते निहिताः ।
तद्गृहमर्मकमुक्तं वैलस्थानेऽर्मकाणि कल्प्यन्ते ॥४ ॥
आर्मीनियेति नाम्ना प्रथितं प्रान्तं तदर्मकं मन्ये ।
देवासुरसंग्रामे हतासुराणां श्मशानं तत् ॥५ ॥
असुरश्मशानभूमिं वैलस्थानाख्यया स्म ते ब्रुवते ।
राज्ञां महाश्मशानं तथैव कथितं महावैलम् ॥६ ॥
बहवोऽनिन्द्रा युद्धे निहता निहिताश्च ते महावैले ॥
एतच्च परुच्छेपो युद्धान्ते वर्णयामास ॥७ ॥

१६. प्रार्थना से उत्तेजित होकर स्वयं देवराज इन्द्र द्वारा असुरों का संहार

इस प्रकार विवाद के समय गर्ग के द्वारा बुलाये गये इन्द्र ने तत्काल उपस्थित होकर इन इन्द्रविरोधियों पर आक्षेप करते हुए तिरस्कार किया और स्वयं इन इन्द्रविरोधियों से कहने लगे ॥१ ॥

(८) अभी मैं अकेला ही एक शत्रु को पराजित कर सकता हूँ, शत्रुरहित मैं दो असह्य शत्रुओं को पराजित कर सकता हूँ। तीन को भी मैं पराजित कर सकता हूँ, वे मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते हैं। जैसे किसान धान के लिए सूखे पौधों को मसलता है वैसे ही मैं निन्दा करने वाले अनिन्द्रों को मसल डालता हूँ॥ (१०/४८/७)

---

(८) अभि अस्मि = अभिभवामि। निःषाट् = निःशेषं धर्षयिता। खले यथा निष्पावजीर्णब्रीह्यादिस्तम्बाननायासेन कर्षकः प्रतिहन्ति तद्वत् पर्षान् = परुषान् निष्ठुरान् बहूनपि शत्रून् प्रतिहन्मि।

* अभिब्लङ्ग = अभियानम् = अभ्याक्रमणम् = चढ़ाई, हमला॥

(८) अभि अस्मि = पराजित कर सकता हूँ। निःषाट् = नष्ट करने वाला। जैसे किसान सूखे गेहूँ को मसल देता है, वैसे ही निष्ठुर शत्रुओं को मैं मार डालता हूँ।

इस प्रकार नाराज होते हुए इन्द्र ने युद्ध की आशंका से पहले से ही तैयार आसुरी सेना पर शीघ्र ही आक्रमण के लिए उपक्रम किया ॥१ ॥ इस छोटे से युद्ध में इन्द्र के इक्कीस योद्धा मारे गये तथा युद्ध-तत्पर आसुरी सेना के तीन पचास अर्थात् (५०x३ = १५०) डेढ़ सौ योद्धा मारे गये ॥२ ॥

इस इन्द्र की सेना में इन्द्र की निन्दा करने वाले भी जो आर्य थे, उनको मरने के पश्चात् जलाया गया, परन्तु आसुरों के मृत शरीरों का दाहसंस्कार नहीं किया गया अपितु उनको भूमि में रख दिया गया ॥३ ॥

असुरों के मृत शरीर भूमि में जिस घर में रखे जाते है, उन्हें "अर्मक" कहा जाता है तथा जिस स्थान पर ये "अर्मक" बनाये जाते हैं, उस स्थान को "वैलस्थान" कहा जाता है ॥४ ॥

मैं मानता हूँ कि आर्मीनिया नाम का जो प्रान्त हैं, वह सम्भवतः अर्मक ही रहा होगा, जो देवासुर-संग्राम में मरे हुए असुरों का श्मशान था ॥५ ॥

असुरों की श्मशान-भूमि वैलस्थान के नाम से कही जाती थी तथा राजाओं के महाश्मशान को "महावैल" कहा गया ॥६ ॥

बहुत से असुर, जो युद्ध में मारे गये थे और उनको महावैल में स्थापित किया गया, ऐसी घटना का परुच्छेप ने युद्ध के अन्त में वर्णन किया है ॥७ ॥

असुरपराभवान्ते परुच्छेप इन्द्रं महयति ।

(९) उभे पुनामि रोदसी ऋतेन द्रुहो दहामि सं महीरनिन्द्राः ॥
*
अभिव्लग्य यत्र हता अमित्रा वैलस्थानं परि तृळहा अशेरन् ॥
(१ ।१३३ ।१)

(१०) अभिव्लग्या चिदद्रिवः शीर्षा यातुमतीनाम् ॥
छिन्धि वटूरिणा पदा महावटूरिणा पदा ॥ (१ ।१३३ ।२)

(११) अवासां मघवञ्जहि शर्धो यातुमतीनाम् ॥
वैलस्थानके अर्मके महावैलस्थे अर्मके ॥(१ ।१३३ ।३)

---

(९) ऋतेन = बलेन शत्रूणामपगमनेन। पुनामि = पावयामि लोकद्वयं शत्रुशून्यं भावयामि। अनिद्रा महीः संदहामि। परितृढा = हिंसिताः। अभिव्लग्य = युद्ध

(१०) अद्रिवः = वैरिभक्षकः। यद्वा अद्रेर्मेघस्य विदारक हे इन्द्र। यातुमतीनां = सेनानां शीर्षाणि अभिब्लङ्ग्याचित् = अभ्याक्रम्यैव छिन्धि चूर्णय। वटूरिणा वेष्टनशीलेन हस्तिसंबंधिना पादेन वटवेष्टने। ऊरच। (खर्जिपिज्यादिभ्य उरोलचौ) लंगर का हाथी वटूरे।महावटूरि = ऐरावत हाथी।

(११) यातुमतीनां = यातनासाधनशस्त्रवतीनाम् आसुरसेनानां बलं शर्धः अपजहि। वैलस्थानके = श्मशानदेशे। अर्मके = शवगृहे प्रक्षेपय।

÷
(१२) यासां तिस्रः पञ्चाशतोऽभिव्लङ्गैरपावपः ॥

x
तत् सु ते मनायति तकत्सु ते मनायति ॥(१मं०१३३सू०४)
() + *

(१३) इन्द्राय हि द्यौरसुरो अनम्नतेन्द्राय मही पृथिवी वरीमभिर्द्युम्नसाता वरीमभिः ।
इन्द्रं विश्वे सजोषसो देवासो दधिरे पुरः ॥
इन्द्राय विश्वा सवनानि मानुषा रातानि सन्त मानुषा ॥५ ॥
(१मं०१३१ सू०१)

१७. असुरों को परास्त करने के पश्चात् परुच्छेप द्वारा इन्द्र की महिमा का वर्णन

(९) मैं यज्ञ के बल से दोनों लोकों को पवित्र करता हूँ। इन्द्र के विरोधी समस्त बड़े बड़े शत्रुओं को जलाता हूँ। जहाँ शत्रु लड़ते हुए मारे गये तथा मरे हुए सब श्मशानस्थान पर सो गये ॥१/१३३/१)

(१०) हे वज्रधारी इन्द्र ! तू हिंसा करने वाले अपने शत्रुओं के सिर पर पहुँच कर अपने अत्यधिक विशाल पाँव से उन्हें नष्ट कर दे ॥ (१/१३३/२) ॥

(११) हे धनवान् इन्द्र ! तू कुत्सित मरे हुए लोगों के स्थान पर घृणित बड़े श्मशानों में इन हिंसा करने वाली सेनाओं का बल नष्ट कर दे ॥१/१३३/३)

÷ कुचल दिये गये। x शबासी, खूब, इतनी सी में क्या।

(१२) अभिब्लङ्गैः = रमलाकरकैः। अपावपः = व्यनाशयः। तत् ते कर्म सुमनायति सुष्ठु संभाव्यते अथवा तकत् अत्यल्पं ते कर्म भाव्यते।

(१३) द्यौरसुरः = दिविष्ठो सुरवर्गः। अनस्तत = स्वयमेव प्रह्वीभवति। वरीमभिः = वरणीयैः स्तोत्रैः हविभिर्वा। द्युम्नसातो = अन्नस्य यशसो वा लाभनिमित्ते प्रह्वा भवन्ति। सजोषसः = ऐकमत्यं गताः सर्वे देवाः इन्द्रमेव प्रमुखं चक्रुः। सर्वाणि च मनुष्यैर्देयानि पुरोडाशादीनि इन्द्रायैव कल्पयामासुः।
() शिर झुकाते रहते हैं। + नजराना। * इज्जत बखशिश के मौके पर।

(९) ऋतेन = यज्ञ के बल से। पुनासि = पवित्र करता हूँ।अनिन्द्रा महीः संदाहामि = अनिन्द्रों को मारता हूँ। परितृढाः = मरे हुए। अभिव्लंग्य = लड़ते हुए।

(१०) अद्रिवः = वज्रवाले इन्द्र। यातुमतीनाम् = हिंसावाले शत्रुओं को। वदूरिणा = विशाल महावदूरिणा = अत्यधिक विशाल।

(११) वैलस्थानके = श्मशान में। अर्मके = घृणित, कब्र में।

(१२) हे इन्द्र! जिन तीन पचास अर्थात् एक सौ पचास शुत्रओं की अपनी घेरने वाली नीति से तूने मार दिया, भक्तवर्ग तेरे उस कर्म की बड़ी प्रशंसा करते हैं॥ (१/१३३/४)

(१३) शक्तिशाली असुरसेना द्यौ इन्द्र के सामने नष्ट हो गई। बड़ी पृथ्वी अपनी श्रेष्ठ वस्तुओं के साथ इन्द्र के समक्ष नष्ट हो गई। अन्न की प्राप्ति के युद्ध में उत्तम साधनों से युक्त शत्रु भी नष्ट हो गये। समस्त समान उत्साह वाले देवों ने इन्द्र को सबसे आगे स्थापित किया। समस्त मनुष्यों से सम्बद्ध सवन और मनुष्यों द्वारा दिये हुए दान इन्द्र के लिए हैं। (१/१३१/१)

अथ पुरुहन्मा आह।

अत्यन्तं क्रुध्यन्तं तमिन्द्रमुपशान्तयंश्च पुरुहन्मा।
अस्येन्द्रस्यात्मानं महयत्यधिदैवतं चेन्द्रम्॥१॥

(१४) यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः।
न त्वा वज्रिन्सहस्नं सूर्य्या अनु न जातमष्ट रोदसी॥(८।७०।५)

१८. तदनन्तर पुरुहन्मा का कथन

अत्यन्त क्रोधित होते हुए उस इन्द्र को शान्त करते हुए इस इन्द्र की आत्मा की तथा इन्द्र के अधिदैवत की पुरुहन्मा ने प्रशंसा की॥१॥

हे इन्द्र! यदि यह द्युलोक सौ हो जावे अथवा सूर्य भी हजारों हो जावे, तब भी वे सब मिलकर भी तेरे बराबर नहीं हो सकते हैं। प्रकट हुई यह रोदसी भी तेरी बराबरी नहीं कर सकती है॥ (८/७०/५)

अथ श्रुतकक्ष आह-

श्रुतकक्षोपि ब्रूते न त्वामतिरिच्यते कश्चित्।
अर्हसि सोमं पातुं त्वमेव नैषोऽसुरोन्यो वा॥२॥

(१५) त्वे सुपुत्र शवसोऽवृत्रन् कामकातयः।
न त्वामिन्द्राति रिच्यते॥(८।९२।१४)

---

(१२) अभिब्लंगै = घेरने वाली चालों से। अपावपः = मार दिया। तत् ते कर्म सुमनायति = तेरे उस कर्म की प्रशंसा करते हैं।

(१३) द्यौरसुरः = द्यौ के शक्तिशाली असुर। अनम्नत = नम्र हो गई। वरीमभिः = उत्तम साधनों से युक्त।द्युम्नसाता = अन्न की प्राप्ति के युद्ध में। सजोषसः = समान उत्साह वाले।

द्युम्नसाता = अन्न की प्राप्ति के युद्ध में। सजोषसः = समान उत्साह वाले।

(१५) हे बलवत्पुत्र = वलजाता कामाभ्यर्थकाः कै शब्देक्तिन्.। त्वे = त्वयि। सु अवृवत्रन् = अवृण्वत।

(१६) आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः।
न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥(८ ।९२ ।२२)

(१७) पराकात्ताच्चिदद्रिवस्त्वां नक्षन्त नो गिरः।
अरं गमाम ते वयम्॥ (८ ।९२ ।२७)
एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः।
एवा ते राध्यं मनः ॥(८/९२/२८)
१ ३ २
त्वयेदिन्द्र युजा वयं प्रति ब्रुवीमहि स्पृधः।
त्वमस्माकं तव स्मसि ॥८ ।९२ ।३२)

१९. श्रुतकक्ष का कथन

श्रुतकक्ष भी बोले कि कोई भी तुमसे अधिक शक्तिशाली नहीं है। तुम ही एक मात्र सोम का पान करने के योग्य हो। यह असुर अथवा अन्य कोई असुर सोमपान नहीं कर सकता है ॥२ ॥

(१५) हे बल के पुत्र इन्द्र ! कामना करने वाले तेरे साथ उत्तमता का व्यवहार करते हैं। हे इन्द्र ! तुझ से बढ़कर और कोई नहीं है।८/९२/१४)

(१६) हे इन्द्र ! जिस प्रकार नदियाँ समुद्र में प्रवेश करती हैं उसी प्रकार सोमरस तुझ में प्रविष्टि हो। तुझसे बढ़कर और कोई पूज्य नहीं है ॥(८/९२/२२/)

(१७) हे वज्रधारी इन्द्र ! हमारी स्तुतियाँ दूर से भी तुझे प्राप्त हो जाती हैं। हे इन्द्र ! हम तेरे धन को अधिक मात्रा में प्राप्त करें ॥(८/९२/२७)

हे इन्द्र ! तू वीरों की कामना करने वाला है। तू शूरवीर है। हे इन्द्र ! तू युद्ध में स्थिर रहने वाला है। तेरा मन आराधना करने योग्य है॥ (८/९२/२८)

हे इन्द्र ! हम तेरी सहायता से ही शत्रुओं का सामना करते हैं। तू हमारा है और हम तेरे हैं॥ (८/९२/३२)

---

(१६) नद्यः समुद्रमिव सोमाः त्वाम् आविशन्तु। त्वत्तोऽधिकः सामर्थ्यवान्नास्ति।
(१७) हे अद्रिवः वज्रवन्। पराकात्ताव चित् अतिदूरतोऽपि नक्षन्त = व्याप्नुवन्तु। अरं पर्याप्तम्।
१–सहायकेन २–स्पर्धमानान्। ३–निराकुर्वीमहि।
(१५) हे बलवत्पुत्र = बल के पुत्र। त्वे = तेरे साथ। सुऽवृत्रन् = उत्तम व्यवहार करें।
(१६) नदियाँ जैसे समुद्र में प्रवेश करती हैं वैसे ही सोमरस तुझ में प्रवेश करें। तुझसे अधिक सामर्थ्यवान् कोई नहीं है।
(१७) हे अद्रिवः = हे वज्रधारी इन्द्र। पराकात्ताचित् = दूर से भी प्राप्त हो जाती है।
(२) १- सहायता से। २- स्पर्धा करने वालों का। ३- मुकाबला करें।

अथ हैमवर्चिः प्राह –

४
एतावद्रूपं यज्ञस्य यद्देवैर्ब्रह्मणा कृतम् ।
तदेतत् सर्वमाप्नोति यज्ञे सौत्रामणीसुते ।। (१९।३१ यजुःसं०)

७ ६ ५ ८
*सुरावन्तं वर्हिषदं सुवीरं यज्ञं हिन्वन्ति महिषा नमोभिः ।
दधानाः सोमं दिवि देवतासु मदेमेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः ।।
(१९।३२।यजु. सं०)

२०. हैमवर्चि का कथन

देवताओं और ब्रह्मा द्वारा यज्ञ के उत्तम स्वरूप का वर्णन किया गया है। सौत्रामणी यज्ञ में सोमरस निकालने पर वह (यजमान) यज्ञ के स्वरूप को पूर्णतया प्राप्त करता है ।।

अन्नों के साथ स्वर्ग में रहने वाले देवताओं के लिए सोम को धारण करने वाले महान् ऋत्विज् कुशासन पर स्थित देवताओं से युक्त उत्तम सोमरस को तैयार करने वाले उत्तम ऋत्विज् को बढ़ाते हैं ।। हम भी इस यज्ञ में उत्तम अन्न वाले इन्द्र का यज्ञ करते हुए हर्ष को प्राप्त करें ।। (यजु. १९/३१-३२)

वरुणनप्तुर्बृहद्दिवस्य कालेन ब्रह्मनप्तृत्वम् ।

वरुणतनूजोऽथर्वा बृहद्दिवोऽथर्वणः पुत्रः ।
सोऽथर्वा, स बृहद्दिव, एतौ पक्षं विनिन्यतुर्दैवम् ।।१ ।।
ब्रह्मण एषोऽथर्वा बभूव कालेन मानसः पुत्रः ।
पुत्रत्वेन स मनसाऽनुभावितः कृत्रिमः पुत्रः ।।२ ।।
अत एवैषोऽथर्वा तस्य च पुत्रो बृहद्दिवो नाम ।
बाल्हीके प्रागास्तां पश्चात् तौ पुष्करेऽस्थाताम् ।।३ ।।
ब्रह्मपुरं यत्पुष्करमद्य बुखारेति गद्यते यच्च ।
तत्रत्य इन्द्रमूचे बृहद्दिवोऽथर्वणः पुत्रः ।।

४- ब्रह्मा के द्वारा ५- महान् ऋषि लोग। ६- प्राप्त करते हैं। ७- सुन्दर ऋत्विज। ८- अन्न से। ९- अन्न, देव, मंत्र, भूत, वृक्ष। सुरायुक्त तथा सुन्दर परिणामों से युक्त यह सौत्रामणी यज्ञ है।

* सुरावान् वा एष वर्हिषद् यज्ञो यत् सौत्रामणी। इति श्रुतिः १२।८।१।२। बर्हिषि सीदन्ति देवा यत्र तम्।

२१. वरुण के पौत्र बृहद्दिव का समय आने पर ब्रह्म का पौत्र बन जाना

वरुण का पुत्र अथर्वा था, अथर्वा का पुत्र बृहद्दिव हुआ। ये दोनों ही (बृहद्दिव और अथर्वा) दैव-पक्ष के समर्थक बने ॥१ ॥

इस अथर्वा को ब्रह्मा ने समय आने पर अपना मानस पुत्र बना लिया। वे उस कृत्रिम पुत्र को अपने पुत्र के समान मानते हुए मन से स्नेह करने लगे ॥२ ॥

इसलिए यह अथर्वा तथा इसका पुत्र बृहद्दिव दोनों ही पहले बाल्हीक में रहते थे तथा बाद में पुष्कर आकर रहने लगे ॥३ ॥

इस ब्रह्मपुर पुष्कर को आजकल बुखारा कहा जाता है। वहाँ रहने वाले बृहद्दिव ने इन्द्र की स्तुति की ॥४ ॥

बृहद्दिव आथर्वण आह।

१ २
तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः।
३ ४ ६ ५
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ॥
(१० ।१२० ।१)

७ ८ ९ १० ११
वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति।
१२ १३ १४ १५ १६ १७
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥(१० ।१२० ।२)
१८ १९ २०
इति चिद्धि त्वा धना जयन्तं मदेमदे अनुमदन्ति विप्राः।
२१ २२ २३ २४ २५ २६
ओजीयो धृष्णो स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन्यातुधाना दुरेवाः ॥
(१० ।१२० ।४)

१—उद्गूर्णः। २—प्रदीप्तबलः। सूर्यात्मक इन्द्रः। ३—जायमानः। ४—मन्देहादीन् निहिनस्ति ।री गतिरेषणयोः। ष्वादीनां ह्रस्वः। ५—भूतानि वै विश्व ऊमाः। त एनमनुमदन्ति। ६—हृष्यन्ति। ७—वर्धमानः। ८—बलेन। ९—बहुप्रबलः।१०—अपक्षयकारिणे शत्रुःशातयिता।११—भयम्।१२—जडाःअचराः।१३—चेतनाःचराः।१४—इन्द्रेण स्नातं शोधितम्। १५—संगच्छन्ते समूहीभवन्ति। १६—प्रकर्षेण धृतानि पोषितानि सर्वाणि भूतजातानि। १७—हर्षेषु। १८—एवमेव खलु। १९—शत्रुधनानि जयन्तं जयेन प्राप्नुवन्तं त्वामनु। २०—हृष्यन्ति। २१—बलवत्तरम्। शत्रूणां धर्षयिता इन्द्रः।२३—धनमस्मदर्थे विस्तारय १४—मा हिंसन्तु। २५—राक्षसाः २६—दुर्गतयः।

२७ २८
त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि।
२९ ३० ३२ ३१
चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥
(१० ।१२० ।५)

३३ ३४ ३५ ३६
इमा ब्रह्म बृहद्दिवो विवक्तीन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः ।
३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजो दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः ॥
(१० ।१२० ।८)

४३ ४३
एवा महान्बृहद्दिवो अथर्वावोचत्स्वां तन्वमिन्द्रमेव।
४४ ४५ ४६ ४७ ४८
स्वसारो मातरिभ्वरीररिप्रा हिन्वन्ति च शवसा वर्धयन्ति च ॥
(१० ।१२० ।९)

२२ अथर्वा के पुत्र बृहद्दिव का कथन

समस्त लोकों में वह परब्रह्म ही सर्वश्रेष्ठ आदिभूत है, जिससे प्रचण्ड, उग्र और अत्यन्त तेजस्वी सूर्य उत्पन्न हुआ है। वह उत्पन्न होते ही शीघ्र ही शत्रुओं को नष्ट करता है। सब प्राणी जिसे देखकर आनन्दित होते हैं ॥(१०/१२०/१)[१]

बल से उत्साहित, महान् तेजस्वी और शत्रुओं का नाश करने वाला इन्द्र दासों के मन में भय उत्पन्न करता है। सभी व्यक्त, अव्यक्त, स्थावर तथा जंगम जिसकी कृपा से सुखी हैं। ऐसे हे इन्द्र! उस सुखस्वरूप परमेश्वर की हम सब असीम कृपा के लिए उपासना करें ॥ (१०/१२०/२)[२]

---

२७ शत्रून् शातयामः। २८—योधनार्हाणि९—शत्रून् प्रति प्रेरयामि। ३०—सम्यक् निश्यामि संस्करोमि। ३१—अन्नानि ३२—मन्त्रेण स्तुतिवाक्येन।३३—स्तुतिवाक्यानि। ३४—सुखं यथा स्यात्तथा। ३५—प्रमुखे स्थितः। ३६—स्वर्गसंभक्तः यद्वा इन्द्रसंभक्तः सेवकः ३७—महतः।३८—पर्वतस्य पाषाणस्य वावलासुरेण गोपिधानार्थे निहितस्य। ४०—स्वयं राजमानस्य। ३९—अपगमयति। ४१—विलद्वाराणि। ४२—स्वाश्च सर्वा गाः अपावृणोत्। अपगतावरणा अकरोत्। उद्घाटितवान्। ४३—वृहद्दिवोऽथर्वा अथर्वपुत्रः स्वां तन्वं विस्तृतां स्तुतिम्। इन्द्रं प्रत्येव अवोचत्। ४४—स्वयं सरन्त्वो नद्यः। ४५—भूमो भवन्त्यः। भवतेर्वनिप्। यनोरच्।४६—अपापाः। ४७—इन्द्रमुपगच्छन्ति ४८—बलेन च वर्धयन्ति।

१- (१) उग्र। (२) तेजस्वी। सूर्यात्मक इन्द्र। (३) उत्पन्न होता हुआ। (४) बढ़ते हुए। (५) भूत समस्त ऊम हैं। (६) आनन्दित होते है। २- (७) बढ़ता हुआ। (८) बल से। (९) अत्यधिक। (१०) हानिकारक शत्रुओं को मारने वाला। (११) भय। (१२) जड़, अचर। (१३) चेतन चर। (१४) जिसकी कृपा से व्याप्त हैं। (१५) एकत्रित होते हैं।(१६) परिपालित समस्त भूत तत्त्व। (१७) सुखस्वरूप।

इसी प्रकार सोम पान करने से हर्षित होकर हे इन्द्र! जब तू धन को जीतता है, तब मेधावी स्तोता तेरी ही स्तुति करते हैं। शत्रुओं को पराजित करने वाले हे इन्द्र! तू अत्यन्त बलवान् है। तू हमें स्थिर धन प्रदान कर। दुष्ट राक्षस तेरा नाश न करें।।(१०/१२०/४)[१]

हे इन्द्र! तेरी कृपा से हम युद्ध में शत्रुओं का नाश करते हैं। युद्ध करने योग्य उनके साधनों को हम पहचानें। तेरे अस्त्रों को, वज्रायुध को मैं स्तुति करके उत्साहित करूँ[२]। तेरे लिए स्तुतियुक्त मंत्रों से हवि इत्यादि अन्न को शुद्ध करता हूँ।।(१०/१२०/५)[२]

समस्त ऋषियों में श्रेष्ठ और स्वर्ग की इच्छा करने वाले बृहद्दिव ऋषि इन वेदमंत्रों को इन्द्र की प्रसन्नता के लिए बोलते हैं। वह तेजस्वी, सुन्दर और महान् गायों[३] का अधिपति बने। वह अपने आने के समस्त द्वारों को खोलता है।। (१०/१२०/८)[३]

इस प्रकार महान् अथर्वा-पुत्र बृहद्दिव ने इन्द्र के लिए ही अपनी स्तुति का पाठ किया। माता के समान भूमि पर उत्पन्न, पवित्र नदियाँ भगिनी के तुल्य होकर इन्द्र को प्रसन्न[४] करती हैं। पूर्ण जल से युक्त करती हैं, उसे बल से वर्धित करती हैं।। (१०/१२०/९)[४]

दीर्घतमा औतथ्य:, कुत्स आङ्गिरसश्च वरुणस्याग्नित्वमाहतु:।

***मैत्रमहस्तु निशीथान्मध्यदिनान्तं, ततो निशीथान्ता।**
रात्रिर्हि वारुणी सा मित्रावरुणौ तदादित्यौ।।१।।
ऐन्द्रमहश्चाग्नेयी रात्रि: प्रतिपद्यते तस्मात्।
इन्द्रो मित्रादित्यो वरुणस्त्वग्नि: स्थितोऽप्सु यो निहित:।।२।।
वरुणस्याग्नित्वाख्या तैत्तिरकब्राह्मणस्य के सेके।। (१।७।१)
अपि शतपथस्य मेखेलेख्ये (५।२।३।१२) दृष्टा च राजसूयविधौ।।३।।
इह राजसूययज्ञे इन्द्रतुरीय: प्रचर्यते याग:।
तत्राग्निवरुणारुद्रा इन्द्रात्पूर्व्यास्त्रयोऽग्निभागा: स्यु:।।४।।
पिण्डेऽग्निरग्निरुक्तो वरुणो नामाग्निरुच्यतेऽप्स्वन्त:।
अग्निर्वायौ रुद्रो भूमिरसत्वात्त्रयोऽग्नयस्तेऽमी।।५।।

१- (१८) इसी प्रकार। (१९) शत्रु-धन को जीतते हुए। (२०) आनन्दित होते हैं। (२१) बलवान्। (२२) शत्रुओं को मारने वाला। (२३) हमें धन प्रदान कर। (२४) नाश न करें। (२५) राक्षस (२६) दुर्गति।

२- (२७) शत्रुओं का नाश करते हैं। (२८) युद्ध करने योग्य। (२९) शत्रु के प्रति उत्साहित करता हूँ। (३०) पवित्र करता हूँ। (३१) अन्नो को। (३२) स्तुतिवाक्यों से।

३- (३३) स्तुतिवाक्य। (३४) सुख के लिए। (३५) अग्रिम। (३६) स्वर्गाभिलाषी। (३७) महान्। (३८) पर्वत का। (३९) दूर करता हूँ। (४०) स्वयं प्रकाशवान् (४१) आने के द्वार। (४२) अपने समस्त अंगों को अपावृत कर लिया।

४- (४३) बृहद्दिव (अथर्वा पुत्र) ने अपनी स्तुति का पाठ इन्द्र के लिए किया। (४४) नदियाँ। (४५) भूमि पर उत्पन्न।(४६) पवित्र। (४७) इन्द्र को प्राप्त होती है।(४८) बल से वर्धित करती है।

*अधिदैवं—दैवमह:- आसुरी रात्रि:। अध्यात्मं-ऐन्द्रमह: आग्नेयी रात्रि:। अधिभूतं-मैत्रमह: वारुणी रात्रि:।

निविडे तरले विरले ध्रुवे च धर्त्रे च धरुणे च।
अग्निर्वरुणो रुद्रः प्रथते त्रेधाऽयमग्निरेकोऽपि ॥६ ॥
सोग्निर्भूमेश्चापामथान्तरिक्षस्य चाधिपतिः ।
इन्द्रस्त्वेष दिवस्पतिरिन्द्राग्नी रोदसीनाथौ ॥७ ॥
तौ सत्तमौ वरिष्ठौ ओजिष्ठौ पारयिष्णुतमौ।
सममेनयोर्महत्त्वं न तयोरवरः परो वा स्यात् ॥८ ॥
अग्निः स्थानविभेदाद्धत्ते नामानि भिन्नानि।
सोऽस्ति सुपर्णः स यमः स मातरिश्वा स वरुणोऽयम् ॥९ ॥
इत्थं दीर्घतमा अपि कुत्सोऽप्याङ्गिरस ऊचतुस्तत्र।
इन्द्रावरुणौ मित्रावरुणौ तौ रोदसीविषयौ ॥१० ॥
"इन्द्रं मित्रं, वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति अग्नि यमं मातरिश्वानमाहुः" ॥
(१ ।१६४ ।४६)

"इन्द्रं मित्रं, वरुणमग्निमूतये मारुतं शर्द्धो अदितिं हवामहे।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन" ॥
(१ ।१०६ ।१)

२३ उतथ्य के पुत्र दीर्घतमा और अंगिरस के पुत्र कुत्स द्वारा वरुण का अग्नित्व-कथन

मध्य रात्रि से मध्य दिन तक का काल दिन ही माना जाता है और वह मित्र का दिन है। मध्य दिन से मध्य रात्रि तक का काल रात्रि है और वह वरुण का काल माना जाता है। अतः ये मित्र और वरुण दोनों आदित्य ही हैं ॥१ ॥*

दिन ऐन्द्र है, इन्द्र का काल है तथा रात्रि आग्नेयी मानी गई है। इसलिए मित्र और आदित्य ही इन्द्र हैं। वरुण ही अग्नि है जो अप्तत्त्व में व्याप्त होकर स्थित है ॥२ ॥

तैतरीय ब्राह्मण के प्रथम भाग के सातवें अध्याय में प्रथम मंत्र में वरुण का अग्नित्व रूप ही वर्णन किया गया है तथा शतपथ के भी (५/२/३/१२) में राजसूययज्ञविधि में ऐसा ही वर्णन मिलता है ॥३ ॥

इस राजसूय यज्ञ में इन्द्र का चौथा भाग माना जाता है। वहाँ अग्नि, वरुण तथा रुद्र, इन तीनों का अग्निभाग इन्द्र से पहले स्थापित किया गया है ॥४ ॥

प्रत्येक पिण्ड में स्थित अग्नि (ऊष्मा) तत्त्व को ही अग्नि कहा गया है। जल में जो अग्नि तत्त्व (ऊर्जा) है, उसे वरुण नाम से कहा जाता है। वायु में जो अग्नि तत्त्व है, उसे

* रात्रि के तीन भेद बताये गये है – (१) अधिदैवत-दैवमहः-आसुरी रात्रि। (२) अध्यात्म-ऐन्द्र दिन– आग्नेयी रात्रि। (३) अधिभूत-मित्र का दिन-वारुणी रात्रि। अपराह्ण से मध्यरात्रि तक का समय वरुण का काल माना जाता है। यह समय पितृकार्य तथा आसुर कार्यों के लिए श्रेष्ठ होता है। मध्यरात्रि पश्चात् मध्यदिन तक का समय ब्रह्म अथवा दैवकाल होता है जो बौद्धिक और दैव कार्यों के लिए श्रेष्ठ होता है।

रुद्र के नाम से कहा जाता है। इसलिए अग्नि, वायु और रुद्र ये तीनों ही भूमि के रस होने के कारण अग्नि ही हैं ॥५ ॥

समस्त निबिड़ तत्त्व (सघन), तरल (जल), तथा विरल तत्त्व (वायु), ध्रुव, धर्त्र और धरुण में भी यह एक अग्नि ही क्रमशः अग्नि, वरुण और रुद्र नामों से तीन प्रकार से कही गई है ॥६ ॥

यह अग्नि ही भूमि, अप्तत्व (जल) और अंतरिक्ष का अधिपति है तथा यह इन्द्र द्युलोक का अधिपति है। इस प्रकार इन्द्र और अग्नि ही इस रोदसी के स्वामी हैं ॥७ ॥

ये दोनों श्रेष्ठ हैं, वरिष्ठ हैं, ओजस्वी है तथा कार्य-सम्पादन की क्षमता रखने वाले (पार लगाने वाले) हैं। इन दोनों का महत्त्व समान है। इन दोनों में कोई छोटा अथवा बड़ा नहीं है ॥८ ॥

यह अग्नि ही स्थानभेद से अनेक नामों को धारण करता है। यह अग्नि ही सुपर्ण (सूर्य) है, यही यम है, यही मातरिश्वा है (वायु) है और यही वरुण है ॥९ ॥

इस प्रकार वहां विवाद के अवसर पर दीर्घतमा औतथ्य ने, कुत्स आंगिरस ने भी यही कहा कि इन्द्र और वरुण तथा मित्र और वरुण दोनों ही इस रोदसी के विषय हैं ॥१० ॥

ऋग्वेद में कहा है— एक ही सत् वस्तु को विद्वान् ज्ञानी लोक अनेक प्रकार से कहते हैं। उसी सत् को इन्द्र, मित्र, वरुण और अग्नि कहते हैं। वह दिव्य है, सुपर्ण है और गरुत्मान् है ॥ (१/१६४/४६)

हम सब अपनी सुरक्षा के लिए इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, मरुतों के संघ तथा अदिति को प्रार्थना करते हैं : — हे उत्तम दान दाता वसु गण! हमें सभी संकटों से उसी तरह पार कराओ जिस प्रकार कठिन मार्ग से रथ को संभालकर चलाते हो ॥(१/१०६/१)

अथ वरुणपक्ष्यैर्ब्राह्मणैरुद्घोषितं वरुणमहत्त्वम्। तत्र ब्राह्मणा ऋग्भिर्वरुणमहिमानं श्रावयन्ति स्म।

इत्थं बहुभिरपीन्द्रः परमाराध्यस्तदा विनिर्णीतः।
किन्तु तदानीमपरे व्याचख्युर्वरुणमाराध्यम् ॥११ ॥
यावादित्यौ मित्रावरुणौ तत एष भिद्यते वरुणः।
एष समुद्रस्येशो यद्गर्भेऽयं दिवस्पतिस्त्विन्द्रः ॥१२ ॥
अत्रिस्तावद् वरुणं व्याचष्टे ब्राह्मणो देवम्।
पञ्चममण्डलसूक्ते पञ्चाशीते त्वृचस्ताहि ॥१३ ॥ (५।८५)

प्र सम्राजे[१] बृहदर्चा[२] गभीरं ब्रह्म प्रियं वरुणाय श्रुताय।
वि यो जघान शमितेव[३] चर्मोपस्तिरे पृथिवीं[४] सूर्य्याय[५] ॥ (५।८५।१)

१–प्रयुंक्ष्व। २–प्रतिपादनं निरूपणम्। ३–पशुविशसनकर्त्ता। ४–त्रिलोकीम्। ५–प्रवर्ग्याय।

६ ७ ८ ९ १० ११
वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु, पय उस्त्रियासु।
१२ १३ १४
हृत्सु क्रतुं वरुणो अप्स्वग्निं दिवि सूर्यमदधात्सोममद्रौ। (५।८५।२)
१५ १६
नवीनवारं वरुणः कबन्धं प्र ससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम्।
१८ १७
तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यवं न दृष्टिर्व्युनत्ति भूम॥(५।८५।३)
१९ २० २१ २२
उनत्ति भूमिं पृथिवीमुत द्यां यदा दुग्धं वरुणो वष्ट्यादित्।
२३ २४ २५ २६
समभ्रेण वसत पर्वतासस्तविषीयन्तः श्रथयन्त वीराः॥ (५।८५।४)
२७ २८ २९
इमामू ष्वासुरस्य श्रुतस्य महीं मायां वरुणस्य प्र वोचम्।
३० ३१ ३२
मानेनेव तस्थिवाँ अन्तरिक्षे वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण॥
(५।८५।५)

३३ ३४ ३५ ३६
इमामू नु कवितमस्य मायां महीं देवस्य न किरा दधर्ष।
३७ ३८ २९ ४० ४१
एकं यदुद्ना न पृणन्त्येनीरासिञ्चन्तीरवनयः समुद्रम्॥ (५।८५।६)
४२ ४३ ४४
अर्यम्यं वरुण मित्र्यं वा सखायं वा सदमिद् भ्रातरं वा।

४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५०
वेशं वा नित्यं वरुणारणं वा यत्सीमागश्चकृमा शिश्रथस्तत्॥
(५।८५।७)

६–काष्ठेषु इष्टकासु अपूवेषुः रञ्जनीयपटेषु। ७–अवकाशम्। ८–उत्साहबलम्। ९–अश्वेषु। १०–क्षीरम्। ११–गोषु। १२–कर्मसंकल्पम्। १३–वैद्युतम्। १४–पाषाणे धनद्रव्ये।१५–अधोमुखम्। १६–मेघमुदकं च। १७–प्रभूतम्। १८–सिञ्चति वपति वाकर्षकः।१९–अन्तरिक्षम्। २०–सहस्रमितासु गोषु रसं धुरादिकम्। २१–इच्छति। २२–अनन्तरमेव। २३–आच्छादिता भवन्ति। २४–बलमिच्छन्ति बलं लभन्ते। २५–श्लथान् कुर्वन्ति। २६–मरुतः शूरा वा! २७–असुरपतेर्देवस्य। २८–महतीम्। २९–प्रभावम्। ३०–मानदण्डेन। ३१–तिष्ठन्। ३२–द्यावापृथिव्यन्तरम्। ३३–प्रकृष्टप्रज्ञस्य। ३४–प्रज्ञाम्। ३५–नैव। ३६–हिनस्ति। ३७–केवलम्। ३८–उदकेन। ३९–पूरयन्ति। ४०–पूरयन्त्यः वहन्त्यः शुक्लाः। ४१–नद्यः। ४२–प्रदातारं गुरुं वा। ४३–अनुरक्तम्। ४४–सर्वदैव। ४५–निकटनिकेतनम्। ४६–अनात्मीयम्। ४७–यदेतत्। ४८–अपराधम्। ४९–अकुर्म.। ५०–श्लथीकुरु।

५१ ५२ ५३ ५४ ५५
कितवासो यद्रिरिपुर्न दीवि यद्वा घा सत्यमुतयन्न विद्म।
५६ ५७ ५८
सर्वा ता विष्य शिथिरेव देवाधा ते स्याम वरुण प्रियासः ॥(५।८५।८)

२४. वरुणपक्ष के ब्राह्मणों द्वारा वरुण का महत्त्व उद्घोषित किया जाना व ब्राह्मणों द्वारा ऋग्मंत्रों से वरुण की महिमा का श्रावण

इस प्रकार बहुत से ब्राह्मणों द्वारा इन्द्र को श्रेष्ठ आराध्य माना गया, किन्तु अन्य ब्राह्मणों ने वरुण को परमाराध्य माना॥११॥

जो ये आदित्य, मित्रावरुण हैं उनसे वह वरुण भिन्न है। यह समुद्र का स्वामी है, जिसके गर्भ में द्युलोक-पति इन्द्र स्थित है॥१२॥

अत्रि नाम के ब्राह्मण ने वरुण को ही देव (स्तुति-योग्य) कहा। वे ऋचाएँ ऋग्वेद के पंचम मण्डल के पिच्वासीवें सूक्त में कही गई हैं॥१३॥

जैसे कोई व्याध चर्म के लिए पशुओं को मारता है, उसी प्रकार जिसने सूर्य के विचरण करने के लिए विस्तृत द्युलोक को और अधिक विस्तृत किया है, उसी तरह अत्यन्त तेजस्वी प्रसिद्ध वरुण के लिए विस्तृत, गम्भीर और प्रिय लगने वाली स्तुति कर॥ (५/८५/१)[१]

वरुण ने वनों में काष्ठादि अथवा वृक्षादि में अन्तरिक्ष का समुद्र भरा है। (यहाँ वनों से तात्पर्य मेघ भी लिया गया है, जिसके अनुसार वरुण ने मेघों में अन्तरिक्ष का समुद्र भरा है।) घोड़ों में बल की स्थापना की है, गायों में दूध भरा है, हृदय को कर्म करने की शक्ति प्रदान की है, जलों में अग्नि की स्थापना की है, द्युलोक में सूर्य की स्थापना की है तथा पर्वत पर सोम को उगाया है॥ (५/८५/२)

वरुण ने द्यावापृथिवी और अन्तरिक्ष के हित के लिए मेघों का मुख नीचा करके उन्हें मुक्त कर दिया है। उस वृष्टि से सभी भुवनों का स्वामी वरुण भूमि को उसी तरह उपजाऊ बनाता है जिस तरह वर्षा से धान्य पुष्ट होता है॥ (५/८५/३)[२]

५१–द्यूतकृतः। ५२–पापमारोपयन्ति। ५३–द्यूते। ५४–सत्यं वा मिथ्या वा। ५५–अज्ञातं वा। ५६–शिथिलानीव।५७–विमोचय। ५८–अथ।

(१) (५/८५/१-२) – १. विस्तृत स्तुति कर। २. गंभीर और प्रिय। ३. व्याध। ४. त्रिलोकी को। ५. सूर्य के लिए। ६. वन में अथवा मेघ में। ७. आकाश। ८. शक्तिसम्पन्न। ९. घोड़ों में। १०. दूध। ११. गायों में। १२. कार्य करने की शक्ति। १३. विद्युज्जन्य को। १४. घन द्रव्य पत्थर में।

(२) (५/८५/३) –१५. नीचा मुख। १६. मेघों को। १७. भूमि को उपजाऊ बनाता है। १८. कृषक सींचता है अथवा बोता है।

जब वरुण जल बरसाना चाहता है, उसके बाद ही वह भूमि, अन्तरिक्ष और द्युलोक को जल से सींचता है। तभी पर्वत मेघ से आच्छादित हो जाते हैं और तब बलवान्, वीर मरुद्गण मेघों को शिथिल कर देते हैं॥ (५/८५/४)[१]

जिस वरुण ने अन्तरिक्ष में रहकर ही दण्ड के समान सूर्य के द्वारा पृथ्वी को मापा, उस प्राणदाता वरुण की महान् बुद्धि की मैं प्रशंसा करता हूँ॥ (५/८५/५)[२]

अत्यन्त ज्ञानी वरुण देव की इस बड़ी माया को आज तक कोई नष्ट नहीं कर सकता है, जिसके कारण प्रवाह वाली, पृथ्वी को सींचने वाली नदियां अपने जल से एक समुद्र को भी नहीं भर पाती॥(५/८५/६)[३]

हे वरणीय वरुण देव! श्रेष्ठ सज्जन पुरुष के प्रति, मित्र के प्रति अथवा अपने सहायक के प्रति सदा भाई के समान व्यवहार करने वाले, सदा समीप में रहने वाले अथवा अपने नेता के प्रति यदि हमने कोई अपराध किया हो तो उस अपराध से हमें मुक्त कर दो॥५/८५/७)[४]

जिस तरह जुआरी जुए में एक दूसरे के प्रति दोषारोपण करते हैं, उसी प्रकार हम पर भी लोगों ने जो मिथ्या आरोप लगाये हैं। अथवा हमने जो सचमुच अपराध किया हो, जिसको हम नहीं जानते हैं, उन सारे अपराधों से हमें मुक्त कर दो। हे वरुण देव! हमारे बंधन शिथिल कर दो, हमें मुक्त कर दो, जिससे हम तुम्हारे प्रिय बने रहें॥ (५/८५/८)[५]

अपरे ब्राह्मणा उभयोर्महिमानमभ्युपगच्छन्ति स्म।

अत्र विवादे पश्चान्मध्यस्थाः केचिदासाद्य।
उभयोरेव महत्त्वं समानमास्थापयामासुः॥१॥
तपसो लोकाज्जाते ऋतसत्ये द्वे इमे नेत्रे।
सा क्रन्दसी ऋतेन तु सत्येन तु रोदसी विधृता॥२॥
ऋतमित्यपां त्रयं स्यादापो वायुश्च सोमश्च।
अग्नित्रयं तु सत्यं स्यादग्निर्वायुरादित्यः॥३॥

---

(१) (५/८५/४) –१९. अन्तरिक्ष। २०. जल की वृष्टि। २१. चाहता है। २२. उसके बाद ही। २३. आच्छादित होते हैं। २४. बल प्राप्त करते हैं। २५. शिथिल करते हैं। २६. वीर मरुद्गण।

(२) (५/८५/५) –२७. असुरपति वरुण। २८. विशाल। २९. प्रभाव को। ३०. मानदण्ड से। ३१. रहते हुए। ३२. द्यावापृथ्वी के बीच।

(३) (५/८५/६) ३३. अत्यन्त ज्ञानी का। ३४. माया को। ३५. न तो। ३६. मारता है। ३७. केवल।

(४) (५/८५/७) ३८. जल को। ३९. भरता है। ४०. प्रवाह वाली। सींचने वाली। ४१. नदियाँ। ४२. श्रेष्ठ पुरुष को। ४३. मित्र के प्रति। ४४. सदा ही। ४५. समीप रहने वाले।

(५) ५६. शत्रु को। ४७. जो यह। ४८. अपराध। ४९. किया। ५०. शिथिल करो। ५१. द्युतकर्म करने वाले। ५२. मिथ्या आरोपण करता है। ५३. धूतकार्य में। ५४. सत्य या असत्य। ५५. अथवा अज्ञात। ५६. शिथिल करने के समान। ५७. मुक्त करो। ५८. ताकि।

ऋतमधिकुरुते वरुणः सोऽपां नाथः समुद्रनाथश्च।
इन्द्रस्तु सत्यमीष्टे स वासवो वायुरादित्यः ॥४॥
न ऋताद् ऋतेऽग्नयस्ते सत्येनापश्च गर्भिण्यः।
नैकस्तयोर्विनाऽन्यं कदापि वा रूपमादध्यात् ॥५॥
उभयोरनयोरेकः कः प्रवरः कोऽवरः कल्प्यः।
इन्द्रात्प्रवरो वरुणो वरुणात्प्रवरः स इन्द्रोऽस्ति ॥६॥
काण्वः सुपर्ण एव स भरद्वाजश्च वामदेवश्च।
इन्द्रावरुणौ स्वाराट् सम्राजौ तुल्यमस्तौषुः ॥७॥

२५. दूसरे ब्राह्मणों ने दोनों की महिमा को स्वीकार किया

तत्पश्चात् इस विवाद में कुछ मध्यस्थ लोगों ने उपस्थित होकर दोनों (इन्द्र और वरुण) का ही समान रूप से महत्त्व स्थापित किया ॥१॥

तपोलोक से ऋत और सत्य की उत्पत्ति हुई, ये दोनों इस तपोलोक के दो नेत्र हैं। वह क्रन्दसी ऋत से तथा यह रोदसी सत्य के द्वारा धारण की गई है ॥२॥

ऋत से तात्पर्य तीनों प्रकार के जल से है, वह है —आपः, वायु और सोम। इसी प्रकार तीन प्रकार का अग्नि ही सत्य है। वह है — अग्नि, वायु और आदित्य ॥३॥

ऋतका अधिष्ठाता वरुण है, वह जलों का स्वामी है, वह समुद्र का स्वामी है। इन्द्र सत्य का अधिष्ठाता है, वही वासव है (इन्द्र का एक नाम), वही वायु और आदित्य है ॥४॥

ऋत के बिना ये अग्नियाँ स्थिति धारण नहीं कर सकती हैं तथा आपः (जल तत्त्व) भी सत्य से गर्भित है। दोनों ही परस्पर एक के बिना दूसरी कभी स्वरूप धारण नहीं कर सकती है ॥५॥

इन दोनों में से कौन अवर (छोटा) और कौन प्रवर (बड़ा) है, ऐसा निर्धारण करने पर देखते हैं कि इन्द्र (रोदसीस्थित इन्द्र) से बड़ा वरुण है तथा वरुण से बड़ा वह इन्द्र (संयती-स्थित इन्द्र) है ॥६॥

इस प्रकार कण्व के पुत्र सुपर्ण, भारद्वाज, वामदेव ने स्वाराट् तथा सम्राट् इन्द्र और वरुण की समान रूप से स्तुति की ॥७॥

सुपर्णः काण्वः।

अवोचाम महते सौभगाय (१) सत्यं त्वेषाभ्यां (२) महिमानमिन्द्रियम्।
अस्मान्त्स्विन्द्रावरुणा घृतश्चुतस्त्रिभिः (३) साप्तेभिरवतं (४) शुभस्पती ।(८।५९।५)

सुपर्णः काण्वः –१. सौभाग्यं यस्य कारणम्। २. ज्योतिर्भ्यां दिव्यान्तरीक्षाभ्याम् ३–४ रसवाहिन्या नाड्या एकविंशत्या।

इन्द्रावरुणा यदृषिभ्यो मनीषां वाचो मतिं श्रुमदत्तमग्रे।
यानि स्थानान्यसृजन्त धीरा यज्ञं तन्वानास्तपसाभ्यपश्यम्। (८।५९।६)
इन्द्रावरुणा सौमनसमदृप्तं रायस्पोषं यजमानेषु धत्तम्।
प्रजां पुष्टिम्भूतिमस्मासु धत्तं दीर्घायुत्वाय प्रतिरतं न आयुः ॥(८।५९।७)

कण्व के पुत्र सुपर्ण

हे शुभ का पालन करने वाले इन्द्र और वरुण! हम अपने महान् सौभाग्य के लिए तुम दोनों की शक्ति को बढ़ाने वाली महिमा का वर्णन करते हैं। तुम घृत प्रदान करने वाले हमारी इक्कीस बार रक्षा करो॥ (८/५९/५)[१]

हे इन्द्र और वरुण, प्राचीनकाल में ऋषियों को तुमने जो बुद्धि, विचारशक्ति, वाक्-शक्ति, तथा ज्ञान दिया था और यज्ञों को करते हुए धीर लोगों ने जिन स्थानों का निर्माण किया, उनको मैंने तप के द्वारा अच्छी तरह जान लिया है॥(८/५९/६)

हे इन्द्र और वरुण! तुम दोनों यजमानों को नम्रता, उदारता और पुष्टिकारक ऐश्वर्य प्रदान करो तथा प्रजा, पोषण, दीर्घ आयु भोगने के लिए हमारी आयु बढाओ ॥८/५९/७)

भरद्वाजः ।

१ २
ता हि श्रेष्ठा देवताता तुजा शूराणां शविष्ठा ता हि भूतम्॥
३ ४ ५ ६ ७ ८
मघोनां मंहिष्ठा तुविशुष्म ऋतेन वृत्रतुरा सर्वसेना॥ (६।६८।२)
९ ११ १० १२ १३
ग्नाश्च यन्नरश्च वावृधन्त विश्वे देवासो नरां स्वगूर्त्ताः॥
१४ १५ १६ १७
प्रैभ्य इन्द्रावरुणा महित्वा द्यौश्च पृथिवि भूतमुर्वी॥ (६।६८।४)
२३ १९ २० १८ २३ २४ २१ २२
यं युवं दाशवध्वराय देवा रयिं धत्थो वसुमन्तं पुरुक्षुम्॥

---

१. सुपर्ण– (१) सौभाग्य का कारण अथवा शक्तिवर्धक। (२) अत्यन्त तेजस्वी। (३–४) रसवाहिनी नाड़ी के द्वारा अथवा घृत प्रदान करने वाले।

भरद्वाजः- १. देवतातौ देवविभागे तुजौ धन-प्रयोक्तारौ। २- बलवत्तरौ। ३-पूज्यानां। ४-दातृतमौ। ५-बहुबलौ। ६-सत्येन। ७-शत्रुनाशकौ। ८-सेनाध्यक्षौ।९-स्त्रियः। १०-पुमांसः। ११-यत् = यदा। १२- वर्धयन्ते। १३-मनुष्याणां स्वयमुद्यताःप्रवर्त्तकाः। १४-वर्धकेभ्यःस्तोतृभ्यः। १५-महत्त्वयुक्तौ। १६-प्रभूतं प्रभवतम्। १७-विस्तीर्णे। १८-देवौ इन्द्रावरुणौ। १९-युवाम्। २०-दत्तहविष्काय। २१-धनयुक्तम्। २२-बह्वन्नपूर्णं शक्तं वा।२३-यादृशं धनम्। २४-प्रयच्छथः।

२८ २९ २७ २५ २६
अस्मे स इन्द्रावरुणावपि ष्यात् प्र यो भनक्ति वनुषामशस्तीः।
(६।६८।६)
३० ३२ ३३ ३१
प्र सम्राजे बृहते मन्म नु प्रियमर्च देवाय वरुणाय सप्रथः॥
३४ ३५ ३६ ३८ ३७
अयं य उर्वी महिना महिव्रतः क्रत्वा विभात्यजरो न शोचिषा॥
(६।६८।९)
३९ ४०
इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रता॥
४१ ४५ ४२ ४४ ४३
युवो रथो अध्वरं देववीतये प्रति स्वसरमुपयाति पीतये॥(५।६८।१०)

भरद्वाज

वे दोनों देवताओं में श्रेष्ठ हैं, धनवान् हैं, वे दोनों शूरवीरों में अधिक बलशाली, पूज्यों में बड़े हैं और अनेक बलों से युक्त हैं तथा सत्यव्यवहार से शत्रु को मारने वाले तथा समस्त प्रकार की सेना से युक्त हैं॥ (६/६८/२)[१]

स्त्रियाँ और पुरुष चाहे कितने भी बढ़ जायें, सभी ज्ञानी अपने परिश्रम से कितने भी बढ़ गये हों, द्यावापृथिवी कितनी भी विस्तृत हो जाएँ, तब भी इन्द्र और वरुण अपने महत्त्व के कारण सबसे बड़े हैं॥ (६/६८/४)[२]

हे इन्द्र और वरुण! आप दोनों दान और अहिंसा करने वाले पुरुष को ऐश्वर्ययुक्त और धन युद्ध समृद्धि प्रदान करते हो। वह धन हमें भी मिले, जिससे हम निन्दकों की निन्दा को नष्ट कर सकें॥ (६/६८/६)[३]

२५-शत्रूणाम्। २६-अकीर्तीः। २७-प्ररुजति-जलन पैदा करता है। २८-अस्मभ्यम्। २९-अपि स्यात्।३०-वरुणाय।३१-सर्वतः पृथुः।३२-स्तोत्रम्। ३३- प्रोच्चारय।३४-महिम्ना। ३५-महाकर्मा। ३६-प्रज्ञया। ३७-तेजसा। ३८-प्रौढः। ३९-सोमपातारौ। ४०-धृतकर्माणौ। ४१-युवयोः। ४२-देवानां पानार्थम्। ४३-युवयोरपि पानार्थम्। ४४-मार्गं प्रति। ४५-यज्ञमुद्दिश्य।

भरद्वाज- (१). १-देवताओं में धनवान्। २-बलशाली। ३-पूज्यों में। ४- बलशाली। ५-महान् बलशाली ६-सत्य से। ७-शत्रु का नाश करने वाले। ८- सेना से युक्त।

(२) ९-स्त्रियाँ। १०-पुरुष। ११-जो। १२-बढ़ जाएँ। १३-अपने परिश्रम से बढ़ने वाले। १४-इन सबसे । १५-अपने महत्त्व से। १६-विपुल प्रभाव से। १७-विस्तृत।

(३) १८-इन्द्र और वरुण। १९-आप दोनों। २०-दानी और अहिंसक के लिये। २१-ऐश्वर्ययुक्त। २२-अन्नयुक्त। २३-जैसा धन। २४-देते हो। २५-निन्दकों की। २६-निन्दा। २७-जलन पैदा करता है। २८-हमें भी। २९-में भी प्राप्त होवे।

हे मनुष्यों! बड़े सम्राट् वरुण देव के लिए यशस्वी तथा प्रिय स्तोत्र का मान करो, जो बड़े बड़े कार्य करने वाला है, जरारहित अपनी महान् सामर्थ्य से इस विशाल पृथ्वी को कर्त्तव्य और अपने तेज से प्रकाशित करता है ॥(६/६८/९)[१]

हे सोम पीने वाले इन्द्र और वरुण! हे व्रत को पालन करने वाले ! तुम दोनों निचोड़े हुए, आनन्दकारी इस सोमरस को पीओ। तुम्हारा रथ सोमपान और देवत्व की प्राप्ति के लिए अहिंसक यज्ञ में रस-पान करने के लिए प्रत्येक यज्ञ स्थान के पास जाता है ॥ (६/६८/१०)[२]

पक्षत्रयवतां ब्राह्मणानां विज्ञानविरोधे विचारसमितिः ।

१—इन्द्रस्य पक्षे कतिचिद्बभूवुर्बभूवुरन्ये वरुणस्य पक्षे।
परे बभूवुर्द्विसमत्वपक्षे मिथस्त्रिपक्ष्या ऋषयः समूदुः ॥१ ॥

२६. तीनों पक्षों के ब्राह्मणों में विरोध होने पर विचारसमिति

कुछ ब्राह्मण इन्द्र के पक्ष में हुए और कुछ वरुण के पक्ष में हो गये। अन्य कुछ ब्राह्मण दोनों की समानता के पक्ष में हो गये। इस प्रकार तीनों पक्ष के ऋषियों ने परस्पर बातचीत की ॥१ ॥

तत इन्द्रपक्ष्याणां ब्राह्मणानां विचारसमितौ इन्द्राय पुनःसोमाभिषवार्थं हिरण्यगर्भनियोगः ।

अथेन्द्रपक्ष्या ऋषयोऽत्र सर्वे पुनर्विचाराय पृथक् समीयुः ।
विशिष्य कण्वा अपरेऽपि केचिद् बृहद्दिवाद्या व्यदधुर्विमर्शम् ॥२ ॥
सोमं सुरेन्द्र एवार्हति पातुं नासुरेन्द्रोऽपि।
हन्तेन्द्राय सुतोऽयं सोमः पीतोऽनयाद् वृषाकपिना ॥३ ॥
तस्मादिह पुनरन्यः सोमः सोतव्य इन्द्राय।
इति निर्धार्य्य विधातुं हविषा प्रोचुर्हिरण्यगर्भमृषिम् ॥४ ॥

---

(१) ३०-वरुण के लिए। ३१-महान् यशस्वी अथवा विशाल। ३२.स्तोत्र। ३३.स्तुति करो। ३४. महिमा से। ३५-महान् कर्तृत्ववान्। ३६-बुद्धि से। ३७-तेज से। ३८-जरा रहित।

(२) ३९-सोम पीने वाले। ४०-व्रत का पालन करने वाले। ४१-आप दोनों। ४२-देवत्व की प्राप्ति। ४३-आप दोनों रस पीने के लिये। ४४-मार्ग की ओर। ४५-यज्ञस्थान के पास।

२७. इन्द्रपक्ष के ब्राह्मणों की विचार-समिति में इन्द्र के लिए सोम का सवन करने के लिए हिरण्यगर्भ की नियुक्ति

तब इन्द्रपक्ष के ऋषि पुनर्विचार करने के लिए अलग से एकत्रित हुए, इनमें विशेष रूप से कण्व थे तथा अन्य भी बृहद्दिव इत्यादि ऋषियों ने विचार-विमर्श किया ॥२ ।।

देवराज इन्द्र ही सोम का पान करने के अधिकारी हैं, असुरेन्द्र वृषाकपि सोम-पान के योग्य नहीं है। दुःख है कि इन्द्र के लिए सवन किया गया वह सोम वृषाकपि द्वारा अनीतिपूर्वक पी लिया गया ॥३ ॥

इसलिए हवि के द्वारा इन्द्र के लिए पुनः अन्य सोम का सवन किया जाना चाहिये, ऐसा निर्धारित करके हिरण्यगर्भ ऋषि को हवि का विधान करने के लिए कहा गया ॥४ ॥

हिरण्यगर्भेणेन्द्राय हविर्विधानप्रत्याख्यानम्।

एष तु हिरण्यगर्भो मार्गं वैज्ञानिकं परं जगृहे।
इन्द्राद्वा वरुणाद्वा हिरण्यगर्भं निरूपयन् प्रवरम् ॥५ ॥
वज्री च पाशी च परश्च देवो हिरण्यगर्भस्य वशेऽस्ति सर्वः।
हिरण्यगर्भं प्रथमं विदन्तः कस्मै देवायं हविषा विधेम ॥६ ॥
यदेतदण्डं समन्तात् समुद्रस्तावान् स इन्द्रोऽपि हिरण्मयत्वात्।
आपोमयत्वाद्वरुणश्च तावानेतौ हि नाण्डं तदतिक्रमेते ॥७ ॥
हिरण्मयं त्वण्डमिदं समस्तं यस्यास्ति गर्भे परमस्य पुंसः।
हिरण्यगर्भं तमनुव्रजन्तः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥८ ॥
अपां पतिः स वरुणस्त्रीन् भृगूनधितिष्ठति।
असुराणां पतिर्लोकं चतुर्थं चाधितिष्ठति ॥९ ॥
मरुतां पतिरिन्द्रोऽधितिष्ठत्यङ्गिरसां त्रयम्।
देवानां स पतिर्लोकं चाधितिष्ठत्यमूं दिवम् ॥१० ॥
देवो हीन्द्रः शास्ति सुरान् देवः स वरुणोऽसुरान्।
नैवावरो न प्रवरोऽनयोरेकोऽपि कल्पते ॥११ ॥
हिरण्यगर्भस्तु परः सर्वतः प्रवरो मतः।
य एष चतुरो लोकानेक एवाधितिष्ठति ॥१२ ॥
अप्सु वीर्य्यं क्षिपन्नग्निरमृतोऽद्भिः स संभवन् ॥
हिरण्यं जनयत्येष सोऽमृतोऽग्निर्हिरण्मयः ॥१३ ॥
त्रिषु लोकेषु पर्य्याप्तश्चतुर्थेऽप्युपपद्यते ॥
प्रजापतिस्त्रिलोकीस्थापः परिचरन्ति तम् ॥१४ ॥

इत्थं हिण्यगर्भेण कल्पितात्मा महानृषिः ॥
हिरण्यगर्भ उत्थाय स्वं विज्ञानमदर्शयत् ॥१५ ॥

२८. हिरण्यगर्भ द्वारा इन्द्र के लिए हविर्विधान का निषेध

इन्द्र से अथवा वरुण से हिरण्यगर्भ को श्रेष्ठ मानते हुए इस हिरण्यगर्भ ऋषि ने हिरण्यगर्भ तत्त्व के मार्ग को ही श्रेष्ठ और वैज्ञानिक माना ॥५ ॥

वज्रधारी इन्द्र, पाश को धारण करनेवाले वरुण अन्य भी कोई देव, सभी हिरण्यगर्भ के वश में है। हिरण्यगर्भ को प्रथम (सर्वश्रेष्ठ) जानते हुए कहा गया है "किस देव के लिए हवि का विधान करें।" (यहाँ "कस्मै" शब्द में प्रश्न और समाधान दोनों है। इसे वाकोवाक्य प्रणाली कहते हैं। यहाँ कः पद कौन और ब्रह्म दोनों का वाचक है।) अर्थात् ब्रह्म के लिए हवि का विधान करें ॥६ ॥

जितना इस अण्ड के चारों ओर समुद्र है, उतना भाग हिरण्यगर्भ होने के कारण इन्द्र है। आपोमय होने के कारण वरुण भी उतना ही व्याप्त है। अतः ये दोनों ही इस संपूर्ण अण्ड का अतिक्रमण नहीं करते हैं ॥७ ॥

यह सम्पूर्ण हिरण्यगर्भ अण्ड जिस परम पुरुष (ब्रह्म) के गर्भ में स्थित है, उस हिरण्यगर्भ का अनुमान करते हुए हम किस देव को हवि प्रदान करें? अर्थात् उसी प्रजापति के लिए हविर्विधान करें ॥८ ॥

जलों का स्वामी वह वरुण तीन भृगुओं (आपः, वायु और सोम) पर अधिष्ठित है। यह असुरों का स्वामी है, तथा चौथे लोक पर विराजमान है ॥९ ॥

मरुद्गण का स्वामी इन्द्र तीनों अंगिराओं (अग्नि, वायु और आदित्य) पर अधिष्ठित है। वह देवों का स्वामी है और इस द्युलोक पर विराजमान है ॥१० ॥

यह इन्द्रदेव देवों पर शासन करता है। और वह वरुण भी देव है, जो असुरों पर शासन करता है। इन दोनों में से किसी एक को छोटा अथवा बड़ा नहीं कहा जा सकता है ॥११ ॥

परन्तु हिरण्यगर्भ तो सबसे परे हैं तथा सबसे वरिष्ठ है, श्रेष्ठ है। यह हिरण्यगर्भ इन चारों लोकों (अग्नि, वायु, आदित्य और आपः) पर अकेला ही शासन करता है ॥१२ ॥

जलों में (अप्तत्त्व में) अपने वीर्य को फेंकता हुआ यह अमृताग्नि जल में ही उत्पन्न होता हुआ हिरण्य को उत्पन्न करता है। इसलिए यह अमृताग्नि ही हिरण्मय है ।१३ ॥

तीनों लोकों (अग्नि, वायु, सोम) में व्याप्त होता हुआ यह चौथे लोक में भी प्रजापति के रूप में उत्पन्न होता है। त्रिलोकी में रहने वाले ये आपः (सोम तत्त्व) ही उस प्रजापति की परिचर्या करते हैं ॥१४ ॥

इस प्रकार हिरण्यगर्भ से कल्पित आत्मा वाले महान् ऋषि ने उठकर अपने अर्थात् हिरण्यगर्भ के विज्ञान को दिखाया ॥१५ ॥

हिरण्यगर्भः प्राजापत्यो विश्वामित्रपौत्रः ।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ॥
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
(१० ।१२१ ।१)

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ॥
यस्यच्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
(१० ।१२१ ।२)

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ॥
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
(१० ।१२१ ।३)

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ॥
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
(१० ।१२१ ।४)

येन द्यौरुग्राः पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ॥
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
(१० ।१२१ ।५)

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ॥
यत्राधिसूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
(१० ।१२१ ।६)

आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ॥
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
(१० ।१२१ ।७)

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम् ॥
यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
(१० ।१२१ ।८)

मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान ॥
यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
(१० ।१२१ ।९)

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव ॥
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥
(१० ।१२१ ।१०)

प्रजापति का पुत्र हिरण्यगर्भ विश्वामित्र का पौत्र

सृष्टि का निर्माण होने से पूर्व भी यह हिरण्यगर्भ (परमात्मा) विद्यमान था। वही उत्पन्न समस्त प्राणिमात्र का एक ही अद्वितीय स्वामी था। वह पृथ्वी, द्यौ और अन्तरिक्ष को धारण करता है। उसी प्रजापति की हम हवि प्रदान करके उपासना करते हैं॥(१०/१२१/१)

जो आत्मज्ञान देने वाला है, बल प्रदान करने वाला है, जिसकी आज्ञा का सभी लोग तथा देव पालन करते हैं, जिसकी छाया (शरण) अमृत के समान है तथा जिसकी शरण न लेना मृत्यु के समान है, उस सुख-स्वरूप परमात्मा की हम हवि प्रदान करते हुए उपासना करते हैं॥(१०/१२१/२)

जो श्वास लेने वाले तथा पलक झपकने वाले समस्त चराचर जगत् का अपने महान् सामर्थ्य से तथा अपनी महिमा से एक ही अद्वितीय स्वामी है, उस सुखस्वरूप परमात्मा की हम हवि प्रदान करते हुए उपासना करते हैं॥(१०/१२१/३)

ये समस्त हिमाच्छादित पर्वत जिसकी महिमा से उत्पन्न हुए हैं , ये पर्वत जिसके महान् सामर्थ्य को प्रकट करते हैं, जिसके महान् सामर्थ्य को ये जलयुक्त नदियाँ, पृथ्वी और समुद्र बतला रहे हैं, जिसका सामर्थ्य बाहु के समान होकर ये दिशाऐं बतला रही हैं, ऐसे उस परमात्मा का हवि प्रदान करके आह्वान करते हैं॥(१०/१२/४)

जिंससे यह आकाश और अन्तरिक्ष सामर्थ्यसम्पन्न हुए, जिससे यह पृथ्वी दृढ हुई, जिसने स्वर्ग को स्थिर किया, जिसने सूर्य को अन्तरिक्ष में स्थापित किया, जिसने आकाश में जल का निर्माण किया, ऐसे उस सुखस्वरूप परमात्मा की हवि द्वारा स्तुति करते हैं॥(१०/१२१/५)

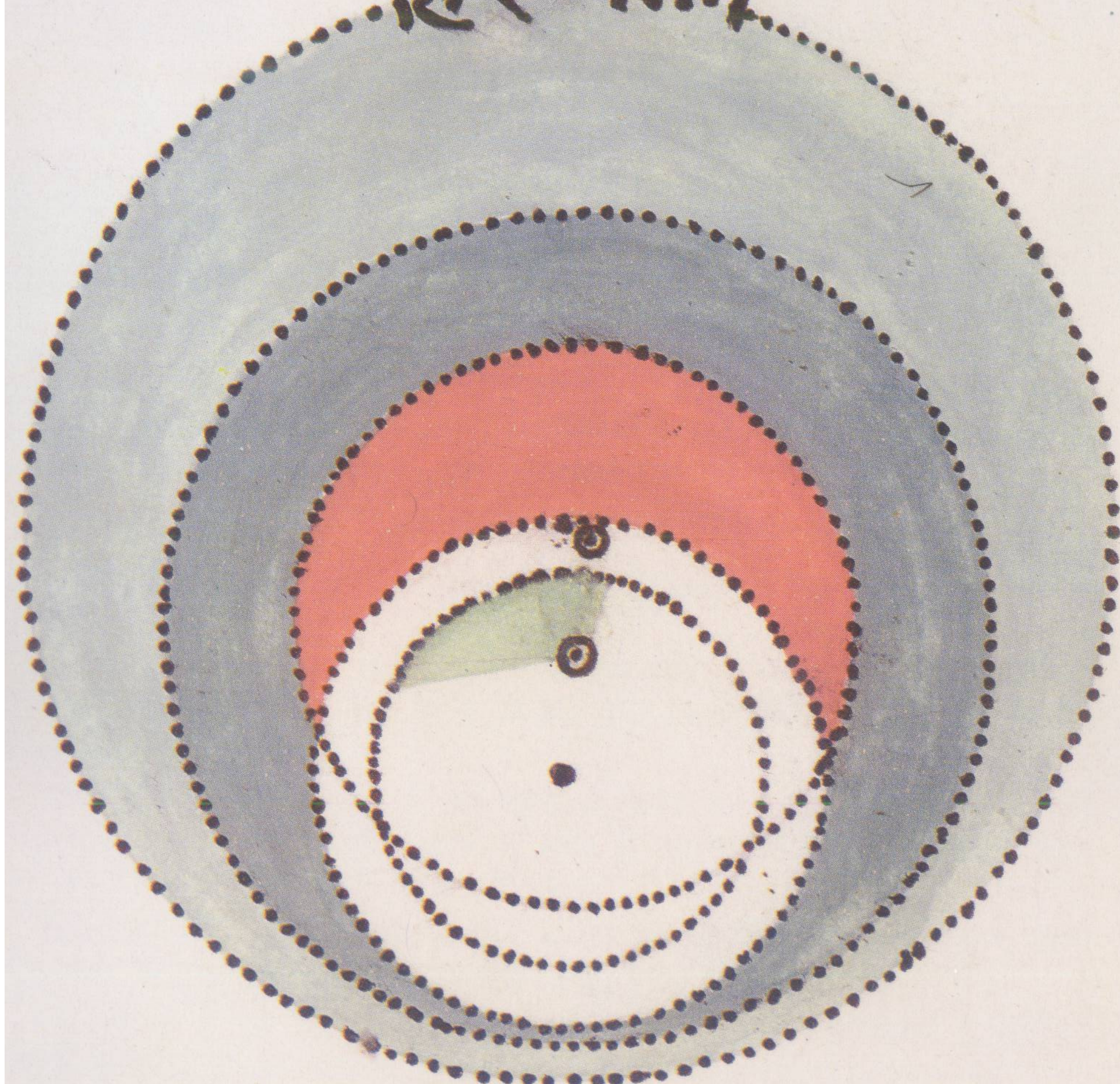
यह क्रन्दसी (द्वितीय द्यावापृथ्वी) शब्दायमान होकर तथा अत्यन्त प्रकाशित होकर मन से जिसको प्रत्यक्ष देखती है, जिसका आश्रय प्राप्त करने सूर्य आकाश में चमकता है, उस प्रकाशवान् परमात्मा की हम हवि करके प्रदान स्तुति करते हैं। (१०/१२१/६)

महान् अग्नि इत्यादि समस्त जगत् को उत्पन्न करता हुआ तथा हिरण्मय महान् अण्ड को अपने गर्भ में धारण करने वाला जल ही समस्त विश्व में व्याप्त है, जिससे उस कारण स्वरूप, तथा समस्त प्राणियों के प्राण-स्वरूप एक अद्वितीय प्रजापित का निर्माण हुआ है। उस सुखस्वरूप परमात्मा की हम हवि द्वारा उपासना करते हैं॥ (१०/१२१/७)॥

जिसने यज्ञ को उत्पन्न करने वाले, प्रजापति को धारण करने वाले, प्रलयकालीन जल को उत्पन्न किया है, जिसने अपनी महिमा से उस जल के चारों ओर निरीक्षण किया है, जो देवों का भी अधिदेव है, ऐसे उस सुखस्वरूप परमात्मा की हम हवि प्रदान करते हुए उपासना करते हैं॥१०/१२१/८)

वह हमें पीड़ित न करे, जो पृथ्वी को उत्पन्न करने वाला है, सृष्टि का रचयिता है, जो सत्य धर्म और जगत् को धारण करता है, जो स्वर्ग का रचयिता है, जिसने आनन्दस्वरूप अपार जल का निर्माण किया है, उस सुखस्वरूप परमात्मा की हम उत्तम रीति से उपासना करते हैं॥(१०/१२१/९)

हे प्रजापति ! तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई भी ऐसा नहीं है, जो इस समस्त भूत, वर्तमान और भविष्य में उत्पन्न वस्तुओं को अधिगृहीत कर सकता हो, जिसकी अभिलाषा करके हम तुम्हें हवि प्रदान करते हैं, वह हमें प्राप्त हो। हम समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी बनें ॥१०/१२१/१०)


हिरण्यगर्भ

हिरण्यगर्भतात्पर्यविषये विज्ञानम्।

हिरण्यगर्भो वरुणेन्द्रपृथ्वीचन्द्रैकवल्शामधितिष्ठतीति।
प्रजापतिं तं परम विदन्तः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥१॥
प्रजापतेः प्राण उदेति भूतान्यद्भ्यः समुद्राद्वरुणाद् भवन्ति।
प्रज्ञेन्द्र इत्याहुरथाग्निसीमारब्धास्त्रिमात्रा इदमस्ति विश्वम्॥२॥
प्रजा प्राणो भूतान्येषां मात्राभिराचितं विश्वम्।
ज्ञानं क्रियाऽर्थ एतद्व्यतिरिक्तं न क्वचित् किञ्चित्॥३॥
इन्द्रः प्रज्ञा तस्मात् प्रज्ञामात्राभिराचितं ज्ञानम्।
प्राणो हिरण्यगर्भः क्रिया इमाः प्राणमात्राभि॥४॥
भूतान्यापो वरुणः सर्वेऽर्था भूतमात्राभिः।
त्रिभिरेवैभिर्देवैरारब्धं विश्वमस्तीदम्॥५॥
अधिदेवास्त्रय एते तानितरे नातितिष्ठन्ति।
एषां हिरण्यगर्भोऽधिदेव एकः क्रियाहेतुः॥६॥
सर्वक्रियैकमलं न विना क्रिययाऽर्थ उद्भवति।
न विना क्रियया ज्ञाने सोऽर्थः प्रविशेन्न चेष्टेत॥७॥
तस्माद्धिरण्यगर्भं प्रवरं मन्ये क्रियाहेतुम्।
तमुपेक्ष्य सकमलं कस्मै देवाय हविषा विधेम॥८॥

हिरण्यगर्भ के तात्पर्य के संबंध में विज्ञान

यह हिरण्यगर्भ वरुण, इन्द्र, पृथ्वी और चन्द्र की एक शाखा पर अधिष्ठित है।उस हिरण्यगर्भ को परम प्रजापति जानते हुए किस देवता की हवि द्वारा उपासना करें? अर्थात् परम प्रजापति का आह्वान करें॥१॥

प्रजापति से प्राण उत्पन्न होते हैं, भूत आपः से, समुद्र से अथवा वरुण से उत्पन्न होते हैं। प्रजा को केन्द्र कहते हैं और अग्नि की सीमा से प्रारम्भ होने वाला यह सम्पूर्ण विश्व तीन मात्राओं (प्राण, भूत, प्रज्ञा) से युक्त है॥२॥

प्रज्ञा, प्राण और भूत—इन्हीं तीन मात्राओं से यह सम्पूर्ण विश्व व्याप्त है। ज्ञान, क्रिया और अर्थ के अतिरिक्त कहीं कुछ भी नहीं है॥३॥

इन्द्र की प्रज्ञा है, इस प्रज्ञा मात्रा से समस्त ज्ञान समन्वित है। प्राण हिरण्यगर्भ है, इसीलिए समस्त क्रियाएँ इन्हीं प्राणमात्राओं से समन्वित हैं॥४॥

भूत, आपः, वरुण इत्यादि जो अर्थ हैं वे समस्त भूतमात्राओं से उत्पन्न होते हैं। इन्हीं तीनों देवों से यह समस्त विश्व आरम्भ किया गया है॥५॥

ये तीनों अधिदेव हैं, इनसे अधिक कुछ भी नहीं है। इनमें हिरण्यगर्भ अधिदेव है, जो एकमात्र क्रिया का कारण है ॥६ ॥

समस्त क्रियाओं के एकमात्र मूल कारण हिरण्यगर्भ के बिना केवल क्रिया से अर्थ की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। ज्ञान और क्रिया दोनों से मिलकर अर्थ की उत्पत्ति होती है। क्रिया के बिना ज्ञान में किसी अर्थ का प्रवेश भी नहीं हो सकता है और न ही क्रियाशीलता हो सकती है ॥७ ॥

अतः क्रिया के कारणभूत हिरण्यगर्भ को ही श्रेष्ठ मानता हूँ। उस समस्त क्रियाओं के मूलं आधार की उपेक्षा करके हम किस देवता के लिए हवि का विधान कर सकते हैं ॥८ ॥

इन्द्राय सोमाभिषवार्थं वसिष्ठविनियोगः ।

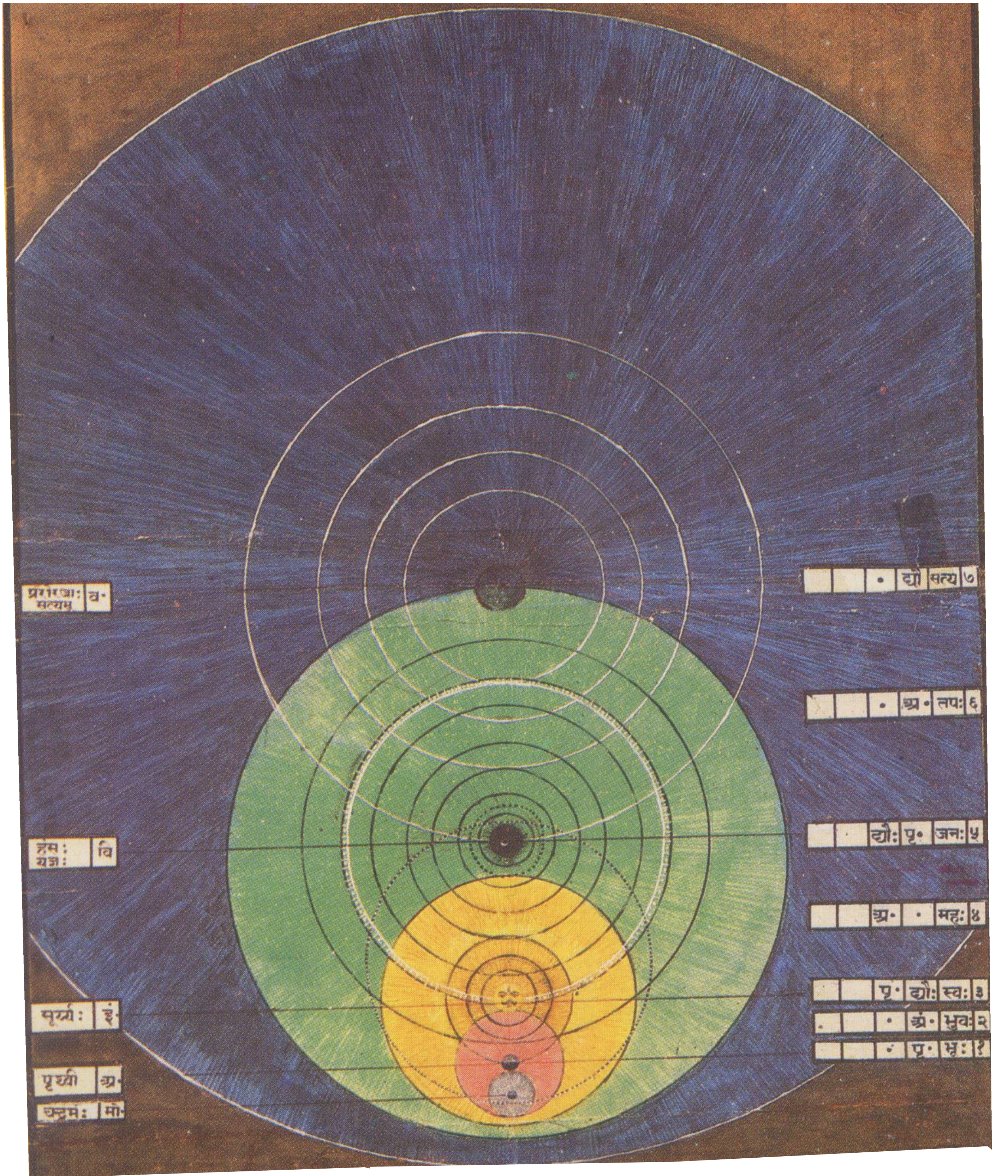
इन्द्रायेत्थं सोतं हिरण्यगर्भे प्रजापतेः पुत्रे।
अस्वीकुर्वति विप्रा वसिष्ठमृषिमार्थयां चक्रुः ॥१ ॥

वसिष्ठेनेन्द्रपरितोषार्थं सोमयज्ञकरणम् ।

वसिष्ठ आसीद् वरुणस्य मित्रं बहूपचक्रे वरुणः पुराऽस्मै।
किन्त्वेष वैज्ञानिकविग्रहेऽस्मिन् इन्द्रस्य पक्षे जगृहे विशिष्य ॥२ ॥
दृष्ट्वा तत्र स सोमं धाष्ट्र्यात् पीतं वृषाकपिना।
अनयात्क्रुद्धः सद्यः स्वगृहे सोमं सुषाव चेन्द्राय ॥३ ॥

वसिष्ठः (७।३२) इन्द्राय स्तौति।

पराणुदस्व मघवन्नमित्रान्त्सुवेदा नो वसू कृधि।
अस्मगकं बोध्यविता महाधने भवा वृधः सखीनाम् ॥(७।३२।२५)
इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षाणो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥(७/३२/२६)
रायस्कामो वज्रहस्तं सुदक्षिणं पुत्रो न पितरं हुवे (७।३२।३)
इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ॥
ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ। (७।३२।४)
न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ॥
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥(७।३२।२३)
अथ च वसिष्ठः स्वगृहे सोमं सुत्व समानयन्निन्द्रम् ॥
सम्मानयंस्तमस्तौन्निपीतसोमं स्वराजमभ्यर्हम् ॥४ ॥
इन्द्रोस्ति राजा जगतो जनानां यच्चास्ति पृथ्व्यामखिलस्य तस्य ॥
पितेव बन्धुः सममेति मन्ये तस्योपकारं न च विस्मरेयम् ॥५ ॥



पञ्चपुण्डीर–परिलेख

एभिर्दिनैरिन्द्र सभाजयाऽस्मान् दुर्म्मित्रलोका हि परिक्रमन्ते॥
कुर्यादनिष्टं वरुणोऽर्थवद्वा निर्हेतु वा तद् द्वयमप्यपैतु॥६॥

इन्द्र के लिए सोम का सवन करने के लिए वशिष्ठ की नियुक्ति

इस प्रकार प्रजापति के पुत्र हिरण्यगर्भ के द्वारा इन्द्र के लिए सोम का सवन करना अस्वीकार किये जाने पर ब्राह्मणों ने वशिष्ठ को आमंत्रित किया॥१॥

इन्द्र की प्रसन्नता के लिए वशिष्ठ ऋषि द्वारा सोम-याग का अनुष्ठान

वशिष्ठ वरुण के मित्र थे, इसीलिए वरुण ने पूर्वकाल में इनके लिए अनेक उपकार किये थे, किन्तु इस वैज्ञानिक कलह में वशिष्ठ ने विशेष रूप से इन्द्र का पक्ष लिया॥२॥

वशिष्ठ ने इस कलह में यह देखकर कि वृषाकपि द्वारा धृष्टतापूर्वक सोम पीया गया है, इस अनीति से क्रुद्ध होकर वसिष्ठ ने शीघ्र ही अपने घर में इन्द्र के लिए सोम का सवन किया॥३॥

वसिष्ठ इन्द्र की स्तुति करते हैं

हे इन्द्र! हमारे शत्रुओं को दूर करो। हमें सुखपूर्वक धन की प्राप्ति कराओ। युद्ध के समय हमारे मित्रों की रक्षा करने वाले बनो। हमारे धन की वृद्धि करने वाले बनो॥(७/३२/२५)

हे इन्द्र! हमें बुद्धि प्रदान करो। हमें उसी प्रकार शिक्षा और धन प्रदान करो जैसे पिता अपने पुत्रों को देता है। हे इन्द्र! इस यज्ञ में हम जीवित रहकर तेज को प्राप्त करें॥(७/३२/२६)

पुत्र पिता को पूछता है उसी तरह धन की कामना करने वाला मैं वज्रधारी उत्तम दाता इन्द्र की प्रार्थना करता हूँ। (७)/३२/३)

हे वज्रधारी इन्द्र! दही से मिश्रित यह सोमरस इन्द्र के लिए (तुम्हारे लिए) ही तैयार हो रहा है। इस सोमरस को आनन्द हेतु पीने के लिए इस यज्ञ-स्थान पर अपने घोड़ों द्वारा आओ॥(७/३२/४)

हे इन्द्र! द्युलोक में तुम्हारे सदृश दूसरा कोई भी नहीं है। पृथ्वी पर भी तुम्हारे समान न कोई हुआ है और न ही कोई होगा। हम घोड़े, गायें और अन्न को चाहने वाले तुम्हारी प्रार्थना करते हैं॥(७/३२/२३)

इस प्रकार वसिष्ठ ने सोम का सवन करके अपने घर में इन्द्र का सम्मान करते हुए, सवन किये गये सोम को पी लेने पर पूजनीय स्वराट्-स्वरूप सम्माननीय इन्द्र की स्तुति की॥४॥

इन्द्र मनुष्यों का राजा है, समस्त जगत् का स्वामी है, इस पृथ्वी पर सब कुछ उसी का है। पिता के समान (पालक) बन्धु के समान (हितचिन्तक) आता है। मैं मानता हूँ कि उसके द्वारा किये गये उपकार को छोड़ना नहीं चाहिये॥५॥

हे इन्द्र ! हमारी सभा की शोभा बढाओ। इन दिनों में दुर्मित्र (राक्षस के समान) हमारे चारों ओर घूम रहे हैं। वरुण हमारा किसी उद्देश्य से अथवा निरुद्देश्य भी अनिष्ट कर सकता है। अत: इन दोनों बाधाओं को हमसे दूर करो ॥६ ॥

पुनर्वसिष्ठः(७।२७।२९) इन्द्रं स्तौति।

१ २ ३ ४
I. इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ॥
५ ६ ७ ८ ९
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥(७।२७।३)
१० ११ १२
II उतो घा ते पुरुष्या इदासन्येषां पूर्वेषामश्रृणोर्ऋषीणाम् ॥
१३ १४ १५
अधाहं त्वा मधवञ्जोहवीमि त्वं न इन्द्रासि प्रमतिः पितेव ॥(७।२९।४)
१६ १७ १८ १९ २०
III एभिर्न इन्द्राहभिर्दशस्य दुर्मित्रासो हि क्षितयः पवन्ते ॥
२१ २२ २३ २४ २५ २६ २४
प्रति यच्चष्टे अनृतमनेना अव द्विता वरुणो मायी नः सात् ॥(७।२८॥४)
२७ २८ २८ २८ २९
IV वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्दन्नः ॥
३० ३१ ३२
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥(७।२८।५)

वसिष्ठ पुनः इन्द्र की स्तुति करते हैं

संसार में जितने भी मानव और स्थावर-जंगम हैं, उन सबका इन्द्र ही एक मात्र स्वामी है। इस पृथ्वी पर अनेक प्रकार के रूप वाले जो भी पदार्थ हैं, उनका भी स्वामी वही

(I) १.जङ्गमस्य। २. मनुष्याणाम्। ३. भूमौ। ४. बहुविधम्। ५. सोमदात्रे। ६. आज्ञापयतु। ७. सम्पत्तिम्। ८. प्रार्थितः। ९. मामभि।

(II) १० अपि च। ११. पुरुषेभ्यो हिताः। विशिष्टाः। लोकमान्याः। १२ एवासन्। १३ अथ। १४. स्तुवन् प्रार्थयामि। १५. बन्धुः।

(III) १६. दिनैः। १७. देहि। १८. अन्तर्द्रोहिबन्धवः। १९. लोकाः। २०. अभिचरन्ति। २१ विरुणद्धि २२. मिथ्यादोषं। २३. पापनिष्कर्त्ता। २४. विमोचयतु। २५ द्वेधा-दोषापवादखण्डनेन दोषक्षमाकरणैन च। २६. प्रभावशाली।

(IV) २७ वक्षाम्येव। २८ महान्तं समृद्धं विभवम्। २९. अस्मभ्यं ददद् अस्ति। ३०. स्तुवतः। ३१. क्रियमाणां स्तुतिं। ३२ रक्षति।

इन्द्र है। इसलिए वह सोम प्रदान करने वाले को धन देता है वह स्तुति करने पर सम्पत्तियों को हमारे समीप आने के लिए प्रेरित करता है ॥(७/२३/३)[१]

हे धनपते! और जिन प्राचीन ऋषियों की स्तुतियाँ तुमने सुनी थीं, वे ऋषि मनुष्यों का हित करने वाले थे। अतः मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ। हे इन्द्र! तुम हमारे पिता के समान उत्तम बुद्धि प्रदान करने वाले हो ॥(७/२९/४)[२]

हे इन्द्र! जो दुष्ट मनुष्य हम लोगों पर हमला करते हैं, उनको इन अच्छे दिनों के साथ हमारे अधीन करो। निष्पाप, कुशल वरुण जो असत्य हमारे अन्दर देखेगा वह दो प्रकार का होकर (दोषापवाद खंडन से, दोष क्षमा करने से) हमसे दूर हो जाये॥ (७/२८/४)[३]

जो बड़ी बड़ी सिद्धियाँ प्रदान करने वाले धन का हमें दान करता है, जो स्तुति करने वाले के स्तोत्र रूप काव्यों की सुरक्षा करता है उस धनवान् इन्द्र की हम प्रशंसा करते हैं। हे इन्द्र! तुम सदा उत्तम कल्याणों के साथ हमारी रक्षा करो ॥(७/२८/५)[४]

वरुणेन क्रुद्धेन वसिष्ठनिग्रहः।

वरुणसखे तु वसिष्ठे तथेन्द्रपक्षं तदा गृहीतवति॥
वरुणः क्रुद्धः काले तं स वसिष्ठं निजग्राह॥७॥
निगृहीतः स वसिष्ठः क्षमापयन् वरुणमर्थयामास॥
सुरया कृतमपराधं क्षमस्व तेऽहं वशंवदः स्वजनः॥८॥

वसिष्ठो वरुणमभ्यर्थयते॥७।८६॥

पृच्छे[१] तदेनो[२] वरुण दिदृक्षूपो[३] एमि चिकितुषो[४] विपृच्छम्[५]॥

---

१. १. जंगम का। २. मनुष्यों का। ३. भूमि पर। ४. अनेक प्रकार के। ५. सोम प्रदान करने वाले के लिए। ६. प्रेरित करें। ७. सम्पत्ति को। ८. प्रार्थना। ९. मेरे प्रति। १०. और भी। ११. मनुष्यों का हित करने वाले। विशिष्ट। लोकमान्य।

२. (२) १२. थे। १३. अतः। १४. स्तुति करता हूँ। १५. बन्धु।

३. (३) १६. दिनों के साथ। १७. प्रदान करो। १८. दुष्ट मनुष्य। १९. लोग। २०. हमला करते हैं। २१. हमारे अन्दर देखेगा, उसे हमसे दूर करो। २२. मिथ्या दोष। २३. निष्पापी। २४. हमसे दूर कर दो। २५. दो प्रकार का—दोषापवाद-खंडन से और दोष क्षमा करने से। २६. प्रभावशाली।

(४) २७. प्रशंसा करते हैं। २८. महान् सिद्धिदायक। २९. हमें दान देता है। ३०. स्तुति करने वाले के। ३१. स्तोत्र। ३२. रक्षा करता है।

१. पृच्छामि। २. अपराधम्। ३. दोषं ज्ञातुमिच्छुः। ४. विदुषो जनान् उपागाम्। ५. विशिष्य प्रष्टुम्।

६ ५ ७
समानमिन्मे कवयश्चिदाहुरयं ह तुभ्यं वरुणो हृणीते ॥(७।८६।३)
८ ९
किमाग आस वरुण ज्येष्ठं यत्स्तोतारं जिघांससि सखायम् ॥
१० ११ १२ १५ १३ १६ १४ १५
प्र तन्मे वोचो दूळभ स्वधावोऽव त्वानेना नमसा तुर इयाम् ॥
(७।८६।४)

१७ १८ १९ २० २१
(द) न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः ॥
२२ २३
अस्ति ज्यायान्कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता ॥(७।८६।६)

२६ २४ २७ २५
(क) अरं दासो न मीळहुषे कराण्यहं देवाय भूर्णयेऽनागाः ॥
२८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४
अचेतयदचितो देवो अर्यो गृत्सं राये कवितरो जुनाति ॥(७।८६।७)

३५ ३६
(ख) अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो हृदि स्तोम उपश्रितश्चिदस्तु ॥
शं नः क्षेमे शमु योगे नो अस्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥
(७।८६।८)

---

५. क्रान्तदर्शिनः। ६. एकरूपमेवाहुः।७ क्रुद्धोऽस्तीति।८ अपराधः।९. अधिकम्।१०. प्रब्रूहि। ११. दुर्दभः अन्यैर्बाधितुमशक्यः। १२. तेजस्विन्।१३. निर्दोषः।१४. त्वरमाणः। १५. आगच्छेयम्।१६. नमस्कारेण।

(द) १७. ज्ञानपूर्वकृतं प्रयोगबलम्। १८. जन्मसिद्धं दैवनिर्मितं स्वभावकृतम्।१९. सुरा-क्रोधः।२०. द्यूतम्। २१. अज्ञानमविवेकः साधारणमनुष्यस्य पापप्रवृत्तौ। समीपस्थः श्रेष्ठपुरुषः कारणम्। २३. मिश्रयिता। अध्यवसायमूलकमौत्साहिकं कर्तव्यार्थसाधनापेक्षं तत्कालजं बलं दक्षः। (क्रतूदक्षाविति) आगन्तुकौत्पातिकदोषमूलकं परवशोद्भूतं तत्कालजं बलं श्रुतिः, तत्र पञ्चोदाहरणानि (परवशतायां सुरामदः। मन्युः प्रबलक्रोधविशेषः विभीदको द्यूतकालिको विद्वेषावेशः। अचितिः अज्ञानता। अवरजनसमीपस्थितस्य प्रभावशालिनः श्रेष्ठजनस्य बलवदिच्छाविशेषानुरोधः। स्वप्नदोषः प्रमादः, अनवधानता।

(क) २४ कामानां वर्षित्रे। २५ जगतो भर्त्रे। २६. पर्याप्तम्। २७. परिचर्य्यां करवाणि। २८. प्राज्ञापयत्। २९. देवः अज्ञान्। ३०. स्वामी। ३१. स्तोतारं। ३२. धनप्राप्त्यर्थे। ३३. प्रज्ञतरः ३४. प्रेरयति।

(ख) ३५. अन्नवन्। ३६. स्तोत्रं, प्रार्थना च तव हृदि उपगमताः अस्तु, अप्राप्तस्य प्रापणं योगः प्राप्तस्य रक्षणं क्षेमः।

निगडमुक्तेन वसिष्ठेन मेधातिथिवामदेवसहायेन इन्द्रावरुणयोः साम्योद्घोषः।

अथ मुक्तः स वसिष्ठः समत्वपक्षानुमोदकः समभूत्।
अपि वामदेवमेधातिथी व्यधातां तयोः सख्यम्॥९॥
इन्द्रस्य च वरुणस्य च परस्परं सख्यतासिद्धौ।
सह तुष्टुवुर्वसिष्ठो मेधातिथि-वामदेवौ च ॥१०॥

क्रुद्ध वरुण के द्वारा वसिष्ठ का निग्रह

वरुण के मित्र के इस प्रकार इन्द्र का पक्ष ग्रहण किये जाने पर वरुण ने क्रुद्ध होकर समय आने पर वसिष्ठ का निग्रह कर लिया॥७॥

निग्रह (कैद) किये जाने पर वसिष्ठ ने क्षमायाचना करते हुए वरुण की प्रार्थना की और कहा —हे वरुण! मेरा सुरा द्वारा किया गया अपराध क्षमा करो। मैं तुम्हारे वश में हूँ और तुम्हारा ही हूँ॥८॥

वसिष्ठ द्वारा वरुण की प्रार्थना

(अ) हे वरुण! मैं अपने पाप के विषय में जानने की इच्छा से तुम्हारे पास आया हूँ। मैं तुमसे पूछता हूँ। मैं पूछने की इच्छा से विद्वानों के पास भी गया हूँ परन्तु उन ज्ञानियों ने मुझे एक ही उत्तर दिया कि निश्चय ही यह वरुण तुम्हारे ऊपर क्रोधित हुआ है॥(७/८६/३)

(ब) हे वरुण! क्या मेरा ऐसा कोई बड़ा भारी अपराध हुआ है? जो तू अपने मित्र स्तुति करने वाले मुझे मारता है। हे तेजस्वी, न दबने वाले वरुण! यदि वह मेरा पाप है तो मुझे कह दो, जिससे मैं निष्पाप बन कर शीघ्र ही नम्रतापूर्वक तुम्हारे पास आ जाऊँ॥ (७/८६/४)

(द) हे वरुण! वह अपना ज्ञान द्वारा किया गया प्रयोगबल पाप का कारण नहीं होता। प्रगति में रुकावट होने से पाप में प्रवृत्ति होती है, सुरा, क्रोध, जुआ, अज्ञान, पाप में प्रवृत्त करने वाली प्रवृत्तियाँ हैं। साधारण पुरुष को श्रेष्ठ पुरुष पास में रखकर पाप में प्रवृत्त करता है तथा निद्रा या आलस्य भी पाप के प्रर्वतक हैं॥ (७/८६/६)

(अ) १. पूछता हूँ। २. अपराध को। ३. दोष जानने का इच्छुक। ४. विद्वानों के पास गया। ५. विशिष्ट रूप से पूछने के लिए। ५. ज्ञानी। ६. एक ही उत्तर। ७. क्रोधित है।

(ब) ८. अपराध ९. निर्दोष। १४. शीघ्र। १५. प्राप्त हो जाऊँ। १६. नमस्कार से।

(द) १७. ज्ञानपूर्वक किया गया प्रयोगबल। १८. जन्मसिद्ध दैवनिर्मित अथवा स्वाभाविक। १९. मद्य एवं क्रोध। २०. जुआ। २१. अज्ञान साधारण मनुष्य की पापप्रवृत्ति में। २२. समीप में स्थित श्रेष्ठ पुरुष जिसमें कारण। २३. प्रवृत्त करने वाली।

प्रयत्न और उत्साह के साथ-साथ कर्तव्यार्थ के साधन की उपेक्षा करने वाला जो तात्कालिक बल है, उसको दक्ष कहते हैं। आगन्तुक और उत्पात उत्पन्न करने वाले दोष से युक्त, जो पराधीनता से उत्पन्न तात्कालिक बल को क्रतु कहते हैं। इस संबंध में पांच उदाहरण हैं-पराधीनता में सुरामद। मन्यु-प्रबल क्रोधविशेष। द्यूतकालिक विद्वेष -आवेश कहलाता है।अचिति-अज्ञानता। प्रभावशाली प्रबल व्यक्ति की प्रबल इच्छा भी विशेषानुरोध से उत्पन्न अपराध है।स्वप्नदोष-जागरूकता का अभाव है।

(क) समस्त इच्छाओं को पूर्ण करने वाले और भरण-पोषण करने वाले वरुण देव की मैं निष्पाप होकर सेवा करता हूँ। मैं उनके सेवक के समान हूँ। वह श्रेष्ठ देव हम अज्ञानियों को प्रेरित करता है, वह श्रेष्ठ ज्ञानी वरुण देव स्तुति करने वाले को धन-प्राप्ति की ओर प्रेरित करता है ॥ (७/८६/७)

(ख) अन्न पास में रखने वाले हे वरुण! यह स्तोत्र तुम्हारे लिए हृदयंगम बने। यह स्तोत्र तुम्हारे हृदय में निवास करे। अप्राप्त वस्तुओं की प्राप्ति के लिए तथा प्राप्त की रक्षा के लिए हमारा कल्याण हो। तुम सदा कल्याण के साधनों से हमारी रक्षा करो ॥(७/८६/८)

निग्रह से छूटने पर वसिष्ठ द्वारा मेधातिथि और वामदेव की सहायता से इन्द्र और वरुण की समानता का उद्घोष

इस प्रकार मुक्त हुए वसिष्ठ इन्द्र और वरुण की समानता के पक्ष के अनुमोदक बने। वामदेव और मेधातिथि ने भी दोनों में मित्रता स्थापित करा दी ॥९ ॥

इन्द्र और वरुण की परस्पर मित्रता सिद्ध होने पर वसिष्ठ, मेधातिथि और वामदेव सभी प्रसन्न हुए ॥१० ॥

वामदेव इन्द्रावरुणौ सह स्तौति।

इन्द्रा को वां वरुणा सुम्नमाप स्तोमो हविष्माँ अमृतो न होता।
यो वां हृदि क्रतुमाँ अस्मदुक्तः पस्पर्शदिन्द्रावरुणा नमस्वान् ॥(४।४१।१)
इन्द्रा ह यो वरुणा चक्र आपी देवौ मर्तः सख्याय प्रयस्वान्।
स हन्ति वृत्रा समिथेषु शत्रूनवोभिर्वा महद्भिः स प्र श्रृण्वे ॥(४।४१।२)
इन्द्रा ह रत्नं वरुणा धेष्ठेत्था नृभ्यः शशमानेभ्यस्ता।
यदी सखाया सख्याय सोमैः सुतेभिः सुप्रयसा मादयैते ॥(४।४१।३)
युवामिद्ध्यवसे पूर्व्याय परि प्रभूती गविषः स्वापी।
वृणीमहे सख्याय प्रियाय शूरा मंहिष्ठा पितरेव शंभू ॥(४।४१।७)
ता वां धियोऽवसे वाजयन्तीराजिं न जग्मुर्युवयूः सुदानू।
श्रिये न गाव उपसोममस्थुरिन्द्रं गिरो वरुणं मे मनीषाः ॥(४।४१।८)
इमा इन्द्रं वरुणं मे मनीषा अग्मन्नुप द्रविणमिच्छमानाः।
उपेमस्थुर्जोष्टार इव वस्वो रघ्वीरिव श्रवसो भिक्षमाणाः ॥(४।४१।९)

(क) २४. इच्छाओं को पूर्ण करने वाले। २५. जगत् के पोषक २६. पर्याप्त। २७. सेवा करूँ। २८. प्रेरित करता है। २९. देव। ३०. स्वामी। ३१. स्तोता को। ३२. धनप्राप्ति के लिए। ३३. विद्वान्। ३४. प्रेरित करता है।

(ख) ३५. अन्न से युक्त। ३६. स्तोत्र तुम्हारे हृदयंगम हो। अप्राप्त की प्राप्ति योग है और प्राप्त की रक्षा क्षेम।

वामदेव द्वारा इन्द्र और वरुण की साथ-साथ स्तुति

हे इन्द्रावरुण! हमारे द्वारा बुद्धिपूर्वक, नम्रता से किया गया जो स्तोत्र है, वह आप दोनों के हृदय का स्पर्श करे। हे इन्द्र और वरुण! अमृत और हवि से युक्त, तेजस्वी ऐसा कौन सा स्तोत्र है, जो आपको सुख प्रदान कर सके। (४/४१/१)

जो मनुष्य हवि से युक्त होकर मित्रताप्राप्ति के लिए इन्द्र और वरुण दोनों को अपना मित्र (भाई) बनाता है, वह अपने समस्त पापों को नष्ट करता है। युद्ध में शत्रुओं को मारता है और इन्द्र और वरुण द्वारा सुरक्षित होकर महान् यश को प्राप्त करता है॥(४/४१/२)

यदि मित्र बने हुए इन्द्र और वरुण मित्रता के लिए निचोड़े गये सोमरसों से और उत्तम अन्नों से आनन्दित हों, तो ये इन्द्र और वरुण स्तुति करने वाले मनुष्यों को इस प्रकार रत्न और धन प्रदान करते हैं॥ (४/४१/३)

हे इन्द्र और वरुण! गायों की इच्छा करने वाले हम प्रभावशाली और उत्तम बन्धु के समान व्यवहार करने वाले आप दोनों की ही प्राचीन शरण को चाहते हैं। माता-पिता के समान सुखदायक, शूरवीर और पूज्य तुम दोनों को प्रेमपूर्वक मित्रता के लिए बुलाते हैं॥ (४/४१/७)

हे उत्तम फलदायक इन्द्रावरुण! जिस तरह तुम्हारे भक्त संग्राम में संरक्षण के लिए तुम्हारे पास आते हैं, उसी प्रकार ऐश्वर्य की कामना करने वाली हमारी बुद्धियाँ तुम्हारे पास जाती हैं। जिस तरह गायें सोम का तेज बढ़ाने के लिए सोम के पास जाती हैं उसी प्रकार बुद्धिपूर्वक की गई स्तुतियाँ इन्द्र और वरुण से जाकर मिलें॥ (४/४१/८)

धन की अभिलाषा करने वाली मेरी बुद्धि इन्द्र और वरुण के पास उसी तरह जाती है, जिस तरह धन के अभिलाषी व्यक्ति धनी के पास जाते हैं, जिस तरह अन्न की भीख मांगने वाले भिखारी दानियों के पास जाते हैं, उसी प्रकार मेरी स्तुतियाँ इन्द्र और वरुण के पास जाती हैं॥ (४/४१/९)

मेधातिथिः काण्व इन्द्रावरुणौ सह स्तौति।१।१७॥

इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजोरव आ वृणे॥ ता नो मृळात ईदृशे॥१॥
गन्तारा हि स्थोऽवसे हवं विप्रस्य मावतः॥ धर्त्तारा चर्षणीनाम्॥२॥
अनुकामं तर्पयेथामिन्द्रावरुण राय आ॥ ता वां नेदिष्ठमीमहे॥३॥
युवाकु हि शचीनां युवाकु सुमतीनाम्॥ भूयाम वाजदाव्नाम्॥४॥
इन्द्रः सहस्रदाव्नां वरुणः शंस्यानाम्॥ क्रतुर्भवत्युक्थ्यः॥५॥
तयोरिदवसा वयं सनेम नि च धीमहि॥ स्यादुत प्ररेचनम्॥६॥
इन्द्रावरुण वामहं हुवे चित्राय राधसे॥ अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृतम्॥७॥
इन्द्रावरुण नू नु वां सिषासन्तीषु धीष्वा॥ अस्मभ्यं शर्म्म यच्छतम्॥८॥
प्र वामश्नोतु सुष्टुतिरिन्द्रावरुण यां हुवे॥ यामृधाथे सधस्तुतिम्॥९॥

काण्व मेधातिथि द्वारा इन्द्र और वरुण की साथ-साथ स्तुति (ऋग्वेद १/१७/१ से ९ तक)

मैं इन्द्र और वरुण दोनों सम्राटों से अपनी सुरक्षा करने की शक्ति प्रदान करना चाहता हूँ। ऐसी स्थिति में वे दोनों हमें सुखी रखें ॥१॥

वे दोनों सम्राट् मनुष्यों का भरण-पोषण करने वाले हैं। ऐसे वे दोनों मुझ जैसे ब्राह्मण की सुरक्षा करने के लिए स्तुति करने के स्थान पर शीघ्र आवें ॥२॥

हे इन्द्र और वरुण! हमें हमारी इच्छा के अनुसार धन प्रदान करो। हमें तृप्त करो। हम तुम दोनों के सामीप्य की कामना करते हैं ॥३॥

उत्तम शक्तियों से एकत्रित हुए हैं, सुमतियों की भी एकता हुई है। हम अन्न और दान देने वालों में श्रेष्ठ बनें ॥४॥

हे इन्द्र! तुम सहस्रों दान-दाताओं में प्रमुख कार्य करने वाले हो। हे वरुण! तुम सहस्रों प्रशंसायोग्य देवों में सर्वाधिक प्रशंसनीय हो ॥५॥

इन्द्र और वरुण की सुरक्षा से सुरक्षित हुए हम इतना धन प्राप्त करना और सुरक्षित करना चाहते हैं, चाहे हमारे पास उससे भी अधिक धन पहले से विद्यमान हो ॥६॥

हे इन्द्र और वरुण ! मैं आप दोनों की सच्चे मन से प्रार्थना करता हूँ। आप मुझे उत्तम सिद्धि प्रदान करो। तुम दोनों मुझे श्रेष्ठ और विजयी बनाओ ॥७॥

हे इन्द्र और वरुण! हमारी बुद्धियाँ तुम्हारे अनुकूल आचरण कर रही हैं। इसलिए हमें सुख प्रदान करो ॥८॥

हे इन्द्र और वरुण! सम्मिलित होकर जो स्तुति हम करते हैं, जिस स्तुति को तुम बढ़ाते हो वह उत्तम स्तुति तुम्हें प्राप्त हो ॥९॥

वसिष्ठ इन्द्रावरुणौ सह स्तौति।

सम्राडन्यः स्वराडन्य उच्यते वां महान्ताविन्द्रावरुणा महावसू ॥
विश्वे देवासः परमे व्योमनि सं वामोजो वृषणा सं बलं दधुः ॥७।८२।२)
अन्वपां खान्यतृन्तमोजसा सूर्यमैरयतं दिवि प्रभुम् ॥
इन्द्रावरुणा मदे अस्य मायिनोऽपिन्वतमपितः पिन्वतं धियः ॥(७।८२।३)
युवामिद्युत्सु पृतनासु बह्नयो युवां क्षेमस्य प्रसवे मितज्ञवः ॥
ईशाना वस्व उभयस्य कारव इन्द्रावरुणा सुहवा हवामहे ॥ (७।८२।४)
अर्वाङ्नरा दैव्येनावसा गतं श्रृणुतं हवं यदि मे जुजोषथः ॥
युवार्हि सख्यमुत वा यदाप्यं मार्डीकमिन्द्रावरुणा नि यच्छतम् ॥(७।८२।८)

वसिष्ठ द्वारा वरुण और इन्द्र की साथ-साथ स्तुति

हे इन्द्र और वरुण! आप दोनों में से एक सम्राट् है और दूसरा स्वराट् है, ऐसा कहा जाता है। परन्तु आप दोनों महान् है, महान् वैभवशाली है। हे शक्ति सम्पन्न इन्द्रावरुण!

आप दोनों के लिए ही समस्त देवों ने उच्चाकाश में बल और तेज को धारण किया है॥ (८/८२/२)

हे इन्द्रावरुण! तुमने अपने बल से जलों के मार्ग खोल दिये हैं अर्थात् जलों को प्रवाहित किया है। तुमने सूर्य को द्युलोक का प्रभु बनाकर प्रेरित किया है। इस शक्तिशाली सोम का पान करके, आनन्दित होकर जलरहित इन नदियों को जल से पूर्ण किया है और बुद्धिपूर्वक किये गये कर्मों को पूर्ण किया है॥ (७/८२/३)

हे इन्द्रावरुण! अग्नि के समान तेजस्वी वीर युद्ध-क्षेत्र में शत्रुओं से घिरने पर तुम्हें ही बुलाते हैं। घुटने टेक कर रक्षा के लए तुम्हारी ही प्रार्थना करते हैं। हम कला को जानने वाले कारीगर लोग भी सहायता के लिए हे भूलोक और द्युलोक के स्वामी! तुम्हारी ही प्रार्थना करते हैं॥ (७/८२/४)

हे नेता इन्द्रावरुण! तुम दोनों सुरक्षा के दिव्य साधनों के साथ हमारे पास आओ। हमारी प्रार्थना सुनो। हे इन्द्रावरुण। यदि मुझ पर तुम्हारी प्रीति है, जो तुम्हारी मित्रता है, जो बन्धुता है, जो तुम्हारा सुख देने का साधन है, वह सब हमें प्राप्त होवे॥ (७/८२/८)

इन्द्रावरुणयोः समत्वोपपादकं विज्ञानम्

वैज्ञानिकास्ते कतिचिन्महर्षयः समत्वविज्ञानमिहान्वमोदयन्॥
देवेश्वरो योऽस्त्यसुरेश्वरोऽस्ति यस्तयोः परः कोन्ववरश्च को नु वा॥१॥
तेजोविभागं स यथैक ईष्टे तथाऽपरः स्नेहविभागमीष्टे॥
सर्वं यथेदं व्यतिरिच्य नाग्निं नापस्तथेदं व्यतिरिच्य किञ्चित्॥२॥
देहे च नापः क्व ममास्ति जीवनं देहे च नाग्निः क्व ममास्ति जीवनम्॥
अग्नेरिहापोऽग्निरपां तु गर्भजो विज्ञानमिन्द्राद्वरुणाद्बलं भवेत्॥३॥
एकस्तयोः सत्यहितो यथाऽयं परस्तथाऽसावृतसत्प्रतीतः॥
यथाऽङ्गिरा एष ऋषिः सुरस्यासुरस्य निर्भाति भृगुस्तथर्षिः॥४॥
अर्वाक् च सूर्य्याद्वरुणोऽस्ति रोदसीगतः स देवेन्द्रमनुव्रजन् स्थितः।
यः क्रन्दसीस्थः परतोऽस्ति सूर्य्यतः स पञ्चविंशे वरुणं श्रयत्ययम्॥५॥
समुद्रगर्भे भुवनं हिरणमयं तदण्डमद्भिः परितः समाप्लुतम्।
समुद्र आकाशगतः स वाङ्मयो वागिन्द्र आकाश इयं हि संयती॥६॥
सा क्रन्दसीतो ह्यवरास्ति रोदसी सा क्रन्दसीतोऽपि परास्ति संयती।
द्यावापृथिव्यौ विविधे इमे स्थिते अश्वत्थबल्शामनु ते निरीक्षयेत्॥७॥
इत्थं स इन्द्रो वरुणं समाश्रितस्तथा तमिन्द्रं वरुणः समाश्रितः।
नान्योन्यतोऽन्योन्यमिह प्रहीयते तेनायमिन्द्रो वरुणश्च तुल्यवत्॥८॥

इन्द्र और वरुण दोनों की समानता का समर्थन करने वाला विज्ञान

कुछ वैज्ञानिक महर्षियों ने इन्द्र और वरुण में वैज्ञानिक समानता का अनुमोदन करते हुए कहा कि जो देवेश्वर इन्द्र है तथा जो असुरेश्वर वरुण है, इन दोनों में कौन बड़ा है अथवा कौन छोटा? अर्थात् दोनों ही समान हैं ॥१॥

यह इन्द्र तेजोमय विभाग का स्वामी है, उसी प्रकार दूसरा(वरुण) स्नेह-विभाग (सोम-विभाग) का स्वामी है। जिस प्रकार अग्नि के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, उसी प्रकार आप के बिना भी कुछ भी नहीं है ॥२॥

यदि मेरे शरीर में जल नहीं हो तो यह जीवन कहाँ से होगा? इसी प्रकार यदि मेरे शरीर में अग्नि (ऊष्मा तत्त्व) नहीं है तो जीवन कैसे संभव है? इसलिए अग्नि जल के गर्भ से उत्पन्न हुआ है। अतः इन्द्र से विज्ञान तथा वरुण से बल की प्राप्ति होती है।।३॥

दोनों में से एक सत्य रूप है, वैसे ही दूसरा ऋत रूप प्रतीत होता है। जिस प्रकार अंगिरा देवताओं के ऋषि हैं, उसी प्रकार ऋषि भृगु असुरों के ऋषि प्रतीत होते हैं ॥४॥

रोदसी में सूर्य से नीचे वरुण है और वरुण उस देवेन्द्र (संयतीमें स्थिति इन्द्र) का अनुगमन करते हुए स्थित है और जो क्रन्दसी में स्थित वरुण है, वह सूर्य से परे है और यह इन्द्र पच्चीसवें स्तोम पर उस वरुण का आश्रम लेता है ॥५॥

समुद्र के गर्भ में जो भुवन है, वह हिरण्मय अण्ड है, वह अण्ड चारों ओर से जल से घिरा हुआ है। समुद्र आकाश में स्थित है और वह आकाश वाङ्मय है तथा वाग् ही इन्द्र है। इसलिए वह परम आकाश ही संयती है ॥६॥

यह रोदसी क्रन्दसी से नीचे है और क्रन्दसी से भी ऊपर संयती है। इस तरह ये द्यावापृथिवियाँ स्थित हैं, जिन्हें अश्वत्थबल्शा में देखा जा सकता है ॥७॥

इस प्रकार यह इन्द्र वरुण के आश्रित है तथा वरुण उस (संयती-स्थित) इन्द्र के आश्रित है। इसलिए दोनों ही परस्पर एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं। अतः इन्द्र और वरुण समान ही है ॥८॥

उभयोः परितोषार्थमैन्द्रवारुणभारतयोर्मध्ये वंसिष्ठनिवासः।

सुरेश्वरस्यैष ततः स्वराजः सम्राज एवं त्वसुरेश्वरस्य।
सखा वसिष्ठः समभूत् तयोश्च द्वयोः प्रियं वर्तयति स्म नित्यम् ॥९॥
द्वयोस्तदा सोऽनुमते वसिष्ठश्चक्रे स्थितिं भारतवर्षमध्ये।
ऐन्द्रं तथा वारुणमन्तराऽर्द्धं सरस्वतीं नाम पुरं व्यधत्त ॥१०॥
तत्रैष सूर्य्यसदनं चकार विज्ञानभवनं तत्।
वैज्ञानिकीं परीक्षां कुर्वाणस्तत्र वसति स्म ॥११॥

दोनों के सन्तोष के लिए ऐन्द्र-भारत और वारुण भारत के बीच वसिष्ठ का निवास

तब वसिष्ठ स्वराट् सुरेश्वर इन्द्र और सम्राट् असुरेश्वर वरुण दोनों के ही प्रिय मित्र बन गये। इस प्रकार दोनों के ही कार्यों को प्रतिदिन सम्पन्न करने लगे ॥९ ॥

तब दोनों की ही अनुमति से वसिष्ठ ने भारतवर्ष के मध्य अपना निवास-स्थान बनाया। इस प्रकार ऐन्द्र और वारुण भारत के मध्य भाग में सरस्वती नाम का नगर बनाया ॥१० ॥

तब वहाँ वसिष्ठ ने सूर्यसदन नाम का स्थान बनाया, जो कि विज्ञान-भवन था। वहाँ वैज्ञानिक तथ्यों का परीक्षण करते हुए वसिष्ठ ऋषि निवास करते थे ॥११ ॥

इतिहासोपसंहारे जरथुस्त्राभिज्ञानम्।

आख्यानमेतदुक्तं जरथुस्त्रमतानुगामिनां ग्रन्थे।
अपि च भविष्यपुराणे कथंचिदुक्तस्तदाभासः ॥१ ॥
जरथुस्त्रा इह बहवः प्रागभवन् किन्तु सर्वतः प्रथमः।
दौहित्रः स ऋजिश्वन आसीत् स मगः स इन्द्रद्विट् ॥२ ॥
अस्ति भविष्यपुराणे नभयाध्याये च (१४०) धूलिकाध्याये (१३९) ।
मंत्रद्रष्टुर्ऋजिश्वन उल्लेखः प्राक्तनः सततः ॥३ ॥
वैदिकमंत्रकृदासीदृषिर्भरद्वाजवंशधरः।
स ऋजिश्वा तस्यायं दौहित्रोऽन्यस्य वेति संदेहः ॥४ ॥
ऋज्राश्वो वा कश्चित् तस्य भवेदेष दौहित्रः।
किन्तु पुरातन आसीदेष मगो नाम देवद्विट् ॥५ ॥
मैत्रो धर्म्मः पूर्वं प्रचरित आसीच्छकेष्वेषु।
ब्राह्मं व्रतं च गोत्रं मिहिरं जरथुस्त्रपूर्वेषाम् ॥६ ॥
उत्पद्य तु जरथुस्त्रो विदविस्परदविदाद आङ्गिरसः।
इति वेदान् रचयित्वा मैत्रं धर्म्मं निपातयामास ॥७ ॥
जरथुस्त्रवंशजाताः सर्वे जरथुस्त्रनामानः।
धर्म्माचार्य्या एते शकगुरुवर्य्या महामान्याः ॥८ ॥
काले कालेऽन्योऽन्यो जरथुस्त्रोऽभूत् प्रभावशाली सः।
शाकद्वीपनिवासिषु मगेषु धर्मं स्वमप्रथयत् ॥९ ॥
जरथुस्त्रधिष्ण्यगा अपि जरथुस्त्रा एव कथ्यन्ते।
तेषामेव तु कश्चिल्लिपिं खरोष्ठीं प्रवर्तयांचक्रे ॥१० ॥
अद्यत्वे त्वितिहासग्रन्था वैदेशिकानां ये।
तेषु तु चतुःसहस्रादर्वाचां सन्ति वृत्तानि ॥११ ॥
अत एव तु जरथुस्त्रो यो राजा बाबिलोननगरस्य।

आहुश्चतुःसहस्रप्राये काले तमुत्पन्नम् ॥१२ ॥
किन्त्वसुरो जरथुस्त्रः सोऽर्वाचीनो भवेत्कश्चित् ।
तस्मात्त्विह बहुपूर्वः देवयुगेऽन्यो बभूव जरथुस्त्रः ॥१३ ॥
देवयुगीयः सोऽयं जरथुस्त्रो निवसति स्म बाह्लीके ।
ब्राह्मण एषोऽनिन्द्रानसुरांस्तान् वर्द्धयांचक्रे ॥१४ ॥

इतिहास-प्रसंग के उपसंहार में जरथुस्त्र की पहचान

जरथुस्त्र के मतानुयायियों के ग्रन्थ में यह आख्यान वर्णित है, तथा इसी आख्यान का भविष्य पुराण में भी कुछ आभास मिलता है ॥१ ॥

प्राचीनकाल में अनेक जरथुस्त्र नाम के व्यक्ति हुए हैं, परन्तु सब से पहला जरथुस्त्र ऋजिश्वा का दौहित्र हुआ है, जो मग जाति का था तथा वह इन्द्र का निन्दक था ॥२ ॥

भविष्य पुराण के १४०-१३९ अध्याय में किसी मंत्रद्रष्टा ऋजिश्वा का प्राचीन एवं बराबर उल्लेख मिलता है ॥३ ॥

ऋषि भरद्वाज के वंश में उत्पन्न, वैदिक मंत्रों के द्रष्टा यह ऋजिश्वा ऋषि थे। उन्हीं ऋजिश्वा का दौहित्र यह जरथुस्त्र था अथवा कोई अन्य था, इसमें सन्देह ही है ॥४ ॥

अथवा ऋजिश्वा कोई भी रहा हो, जिसका दौहित्र यह जरथुस्त्र था, परन्तु यह प्राचीन व्यक्ति था, जो मग जाति का था तथा देव-निन्दक था ॥५ ॥

पूर्व काल में शक जाति के लोगों में मैत्र धर्म का ही प्रचार था। जरथुस्त्र के पूर्वज ब्राह्मण जाति के तथा इनका मिहिर नाम का गोत्र था ॥६ ॥

जरथुस्त्र नाम के विद्वान् ने उत्पन्न होकर विद-विस्परद-विदाद और आङ्गिरस नाम के चार वेदों की रचना करके मैत्र धर्म का खण्डन किया ॥७ ॥

जरथुस्त्र के वंश में उत्पन्न हुए सभी लोग जरथुस्त्र के नाम से जाने जाते थे। ये सभी धर्माचार्य थे, शकों के श्रेष्ठ गुरु थे तथा परम सम्माननीय थे ॥८ ॥

समय- समय पर अन्य भी अनेक प्रभावशाली जरथुस्त्र हुए हैं, जिन्होंने शाकद्वीप के निवासी मगजाति के लोगों में अपने धर्म का प्रचार किया ॥९ ॥

जरथुस्त्र की बुद्धि का अनुगमन करने वाले भी जरथुस्त्र के नाम से ही कहे जाते थे। उन्हीं में से किसी ने खरोष्ठी नाम की लिपि की रचना की ॥१० ॥

आज तक विदेशियों के जो भी इतिहासग्रन्थ मिलते हैं, उनमें चार हजार तक के वर्षों में ही उनके वृत्तान्त मिलते हैं ॥११ ॥

अतः बाबिलोन नगर का राजा जो जरथुस्त्र था, वह चार हंजार वर्ष के समय में ही उत्पन्न हुआ था, ऐसा मानना है ॥१२ ।

परन्तु जरथुस्त्र नाम का जो असुर हुआ है, वह कोई अर्वाचीन काल का ही व्यक्ति होगा और उससे भी अत्यन्त प्राचीनकाल में देवयुग में अन्य ही कोई जरथुस्त्र हुआ है ॥१३ ॥ अतः वह जरथुस्त्र जो देवयुग में उत्पन्न हुआ था, वह बाह्लीक देश में निवास करता था और वह ब्राह्मण जाति का था और इन्द्र के विरोधी असुरों को बढ़ावा देता था। ॥१४ ॥

अरणानां मूजवतां महावृषाणां बाह्लिकानां च जरथुस्त्रमतानुयायित्वम्।

ये तेऽनिन्द्रा इन्द्रं निन्दन्तश्चेन्द्रभक्तानाम्।
ऐन्द्राणामार्य्याणां विद्वेषिण आसुरा आसन्॥१५॥
अरणास्त एव कथितास्तेषामीरानदेशोऽयम्।
अप्योरियंसवासिषु भूयांसश्चाभवन्नरणाः॥१६॥
आथर्वणे तु पञ्चमकाण्डे द्वाविंशकेऽरणाः सूक्ते
(अथर्वसं. ५ का. २२ सू.)
अपि मूजवन्त उक्ता महावृषा बाह्लिकाश्चैते॥१७॥
"तक्मन् भ्रात्रा बलासेन स्वस्रा कासिकया सह।
पाप्मा भ्रातृव्येण सह गच्छामुमरणं जनम्॥(१२)
ओको अस्य मूजवन्त ओको अस्य महावृषाः।
यावज्जातस्तक्मंस्तावानसि बह्लिकेषु न्योचरः॥(४)
तक्मन् मूजवतो गच्छ बह्लिकान् वा परस्तराम्।
शूद्रामिच्छ प्रफर्व्यं तां तक्मन् वीव धूनुहि॥
अन्यक्षेत्रे न रमसे वशी सन् मृडयासि नः।
अभूदु प्रार्थस्तक्मा स गमिष्यति बाह्लिकान्॥"(अथर्व.५।२२)
विद्वेषाग्निर्ज्वलितः प्रतीयतेऽनेन वाक्येन।
गन्धारादिस्थानां बाह्लीकादिस्थितैर्विरोधः सः॥१८॥
ब्राह्मणराजन्यानामन्योन्यं यो विरोधोऽयम्।
तत्र च देवा ऐन्द्रानन्वसुरा वारुणानभवन्॥१९॥
"देवानामिदवो महत् तदा वृणीमहे वयम्॥
वृष्णामस्मभ्यमूतये॥"

अरण, मूजवान्, महावृष तथा बाह्लीक लोगों का जरथुस्त्र का मतानुयायी होना

ये जो अनिन्द्र (इन्द्रविरोधी) थे, वे इन्द्र की निन्दा करते हुए, इन्द्र-भक्त, ऐन्द्र आर्यों से द्वेष करने वाले असुर हो गये॥१५॥

इन्हीं असुरों को अरण कहा गया, जिनका देश ईरान था।"ओरियन्स"देश के निवासियों में से बहुत से लोग अरण बन गये॥१६॥

अथर्ववेद के पांचवें काण्ड के बाईसवें अरण-सूक्त में इनको मूजवान्, बाह्लीक तथा महावृष नाम से भी कहा गया है॥१७॥

अथर्ववेद में लिखा है- हे तक्मन् ज्वर! तू अपने भाई कफ के साथ, बहिन खाँसी के साथ, पापी भतीजे क्षय के साथ उस मलिन मनुष्य के पास चला जा॥(तक्मन् रोग प्रायः

अतिवृष्टि -मूँज-घास-कीचड़ वाले क्षेत्रों में रहने वाले मलिन लोगों में देखा जाता है। बाह्लीक देश में अतिवृष्टि होती है, इसलिए वहाँ मूँज नामक घास भी अधिक पैदा होती है। यहीं प्राय: तक्मन् नाम का ज्वर होता है)॥

इस वाक्य से प्रतीत होता है कि इनमें परस्पर द्वेष की अग्नि प्रज्वलित हो गई थी तथा गान्धार इत्यादि स्थान पर रहने वालों का बाह्लीकादि स्थान के निवासियों के साथ परस्पर विरोध था। ब्राह्मण राजाओं में यह जो परस्पर विरोध हुआ, उसमें निश्चय ही देव लोग इन्द्रसमर्थकों के पक्ष में हो गये तथा असुर लोग वरुण के समर्थकों के पक्ष में हो गये ॥१८-१९ ॥

"यह अग्नि देवताओं में निश्चय ही महान् है। इसलिए देवों में से हम उसी का चयन करते हैं। सबल व्यक्ति के समान यह अग्नि हमारी रक्षा के लिए उद्यत रहता है॥"

विरोधपरिहाराय ब्रह्मणा कृतः पूर्वपश्चिमभेदेन भारतवर्षस्य द्वेधा विभागः।

देवा इत्थं देवानेवाराध्यानपश्यंस्ते ॥
बलदानसुरान्मेध्यान् पश्यन्तस्त्वासुरा अभवन् ॥२० ॥
उभयेषां तु विरोधे भूयसि देशो विभक्तोऽभूत् ॥
ब्रह्मा गुरुर्विरोधं जहार भारतविभागेन ॥२१ ॥
प्राच्यं भारतमैन्द्रं सिन्धुस्थानं तदेतदाख्यातम् ॥
पश्चिमभारतमुक्तं पारस्थानं तु वारुणं तदभूत् ॥२२ ॥
वारुणपारस्थानं सिन्धोरालोहिताम्भोधेः ॥
तत्रान्ये तु विभागाः शासनभेदात् पुनर्जाताः ॥२३ ॥
कालेन राजशासनभेदात् सीमा हि देशानाम् ॥
संज्ञा च तत्र प्रभिद्यते हीति तच्चिन्त्यम् ॥२४ ॥

इति बाह्लीके ब्राह्मणानां वैज्ञानिको विवादस्तृतीयं प्रमाणम् ॥३ ॥

विरोध को समाप्त करने के लिए पूर्व और पश्चिम भेद से भारतवर्ष का दो भागों में विभाजन

उन देवों ने इस प्रकार देवों को ही आराध्य माना तथा बलदायक असुरों को ही पवित्र मानते हुए आसुर लोग असुर बन गये ॥२० ॥

दोनों में (देव और असुर) अनेक बार विरोध होने पर देश दो भागों में विभक्त हो गया। गुरु ब्रह्मा ने इस प्रकार देश का विभाजन करके विरोध का निराकरण कर दिया ॥१२ ॥

पूर्वी ऐन्द्र भारत था जो सिन्धुस्थान नाम से प्रसिद्ध हुआ। पश्चिमी भारत पारस्थान कहलाया और यह "वारुण भारत" हुआ ॥२२ ॥

पारस्थान नाम का वारुण भारत सिन्धु नदी से लाल समुद्र पर्यन्त का भाग था, जिसके बाद में शासकभेद से अनेक अवान्तर भेद हो गये ॥२३ ॥

समय-समय पर शासनभेद से देशों की सीमा तथा नाम में जो परिवर्तन हो जाते हैं, वह विचार करने योग्य नहीं है। अतः उपेक्षणीय है ॥२४ ॥

इस प्रकार बाह्लीक में हुए ब्राह्मणों के वैज्ञानिक विवाद नाम का तृतीय प्रमाण समाप्त हुआ ॥३ ॥

अथ भारतवर्षस्य भूवृत्तचतुर्थांशत्वाख्यानं चतुर्थं प्रमाणम् ॥४ ॥

पृथिवीमण्डलस्य पद्मत्वाभ्युपगमः ।

पद्मपुराणमत्स्यपुराणादिषु तावदिदं पृथ्वीमण्डलं पद्मत्वेन व्याख्यातम्। तथाहि—

"पद्मं नाभ्युद्भवं चैकं समुत्पादितवाँस्ततः ॥
सहस्रवर्णं विरजं भास्कराभं हिरण्मयम् ॥
पद्मे हिरण्मये तस्मिन्नसृजद् भूरि वर्चसम् ॥
स्रष्टारं सर्वलोकानां ब्रह्माणं सर्वतोमुखम् ॥
तच्च पद्मं पुराभूतं पृथिवीरूपमुत्तमम् ॥
यत्पद्मं सा रसादेवी पृथिवी परिकथ्यते ॥
एवं नारायणस्यार्थे मही पुष्करसंभवा ॥
प्रादुर्भावोप्ययं तस्मान्नाम्ना पुष्करसंज्ञितः ॥"

(पद्म.पु. सृ.अ.४०) (मत्स्य पु. अ. १६९)

भारतवर्ष के भूमण्डल के चतुर्थांश (९०°) भाग का आख्यान रूप चतुर्थ प्रमाण ॥४ ॥

पृथ्वीमण्डल की पद्मरूपात्मकता

पद्मपुराण, मत्स्यपुराणादि में इस पृथ्वीमण्डल का कमल रूप में वर्णन किया गया है। जैसा कि वर्णन मिलता है—

भगवान् नारायण ने अपनी नाभि से एक कमल उत्पन्न किया, जो अनेक वर्णों से युक्त, निर्मल, सूर्य के समान देदीप्यमान और स्वर्ण के समान कान्तिमान् था ॥१ ॥

उस स्वर्णमय कमल में भगवान् नारायण ने महान् ओजस्वी सृष्टिलोकों के कर्ता, चतुर्मुख ब्रह्मा को उत्पन्न किया ॥२ ॥

इस प्रकार सर्वप्रथम उत्पन्न यह श्रेष्ठ कमल पृथ्वी रूप था। यह जो कमल था वही रसादेवी और पृथ्वी कही गई है ॥३ ॥

इस प्रकार नारायण के कारण ही यह पृथ्वी पुष्करसम्भवा (कमल से उत्पन्न) है। इस प्रकार कमल से उत्पन्न होने के कारण यह पृथ्वी "पृथ्वी" नाम से भी कही गई है ॥४ ॥

(पद्म पु.सृ.अ.४०) (मत्स्य पु. अ. १६९)

भूपद्मस्य चतुःपत्रत्वप्रतिपत्तिः ।

चतुष्पत्रं चेदं पद्म पुराणेषु निरूपितम्। यथा मार्कण्डेये—
"तदेतत्पार्थिवं पद्मं चतुष्पत्रं मयोदितम्॥
भद्राश्वभारताद्यानि पत्राण्यस्य चतुर्दिशम्" ॥इति॥
"भारताः केतुमालाश्च भद्राश्वाः कुरवस्तथा॥
पत्राणि लोकपद्मस्य मर्य्यादा शैलबाह्यतः"(इति ब्राह्मे)

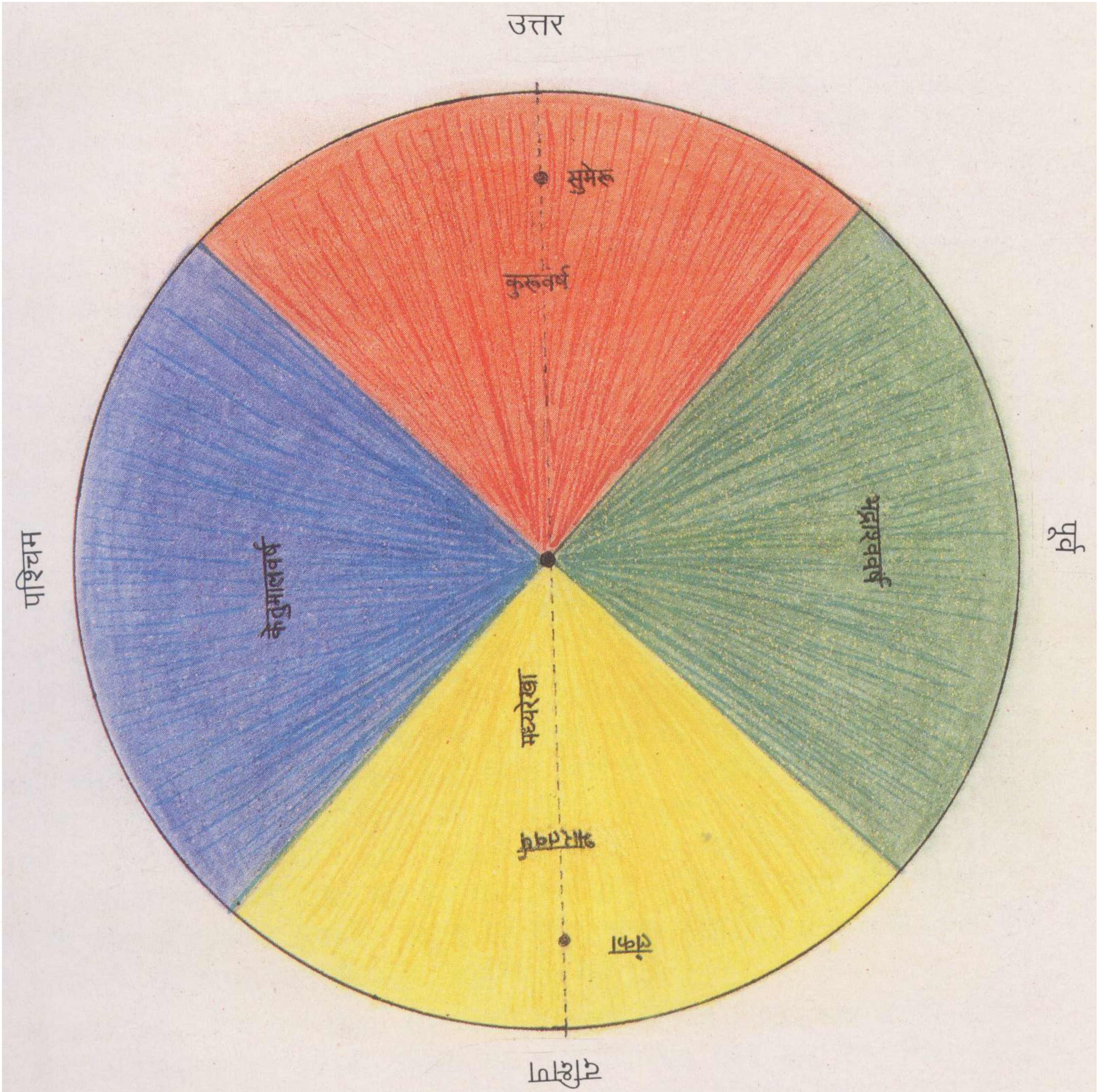
इत्थं चास्य पृथिवीमण्डलस्य चतुष्पत्रत्वे भद्राश्वभारतकेतुमालोत्तरकुरूणां पत्र-भूतानां समानैरंशैर्विभक्तानां एकैकस्य नवत्यंशावच्छिन्नत्वमुपपद्यते।तथा चोक्तं सूर्य्यसिद्धान्ते भूगोलाध्याये—

भूवृत्तपादे पूर्वस्यां यमकोटीति विश्रुता॥
भद्राश्ववर्षे नगरी स्वर्णप्रकारतोरणा॥
याम्यायां भारते वर्षे लङ्का तद्वन्महापुरी॥
पश्चिमे केतुमालाख्ये रोमकाख्या प्रकीर्तिता॥
उदक् सिद्धपुरी नाम कुरुवर्षे प्रकीर्तिता॥
भूवृत्तपादविवरास्ताश्चान्योन्यं प्रतिष्ठिता॥
तासामुपरिगो याति विषुवस्थो दिवाकरः॥
न तासु विषुवच्छाया नाक्षस्योन्नतिरिष्यते" ॥इति॥

तत्र च लङ्कासुमेरुप्रोतरेखाया भारतवर्षीयमध्यरेखात्वव्यवस्थानात् ततः प्राच्यां पञ्चचत्वारिंशदंशैः प्रतीच्यां च तावदंशैरवच्छिन्नस्य भूभागस्य भारतवर्षत्वं सिद्ध्यति॥भारतवर्षात्प्राच्यां नवत्यंशं भद्राश्वं वर्षम् तत उत्तरतस्तावदंशं कुरुवर्षम्, ततः पश्चात्तावदंशं केतुमालवर्षमिति। एतानि भूपद्मस्य चतुर्दिक्षु चत्वारि पत्राणि॥ भारतवर्षीयमध्यरेखा चोज्जयिनीस्था निगद्यते। "यल्लङ्कोज्जयिनीपुरोपरि कुरुक्षेत्रादिदेशान् स्पृशत्सूत्रं मेरुगतं बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुवः" इत्युक्तेः। उज्जयिनी चेयं नगरी नवकलाधिकत्रयोविंशे (२३।९) उत्तरेऽक्षांशे स्थिता। ग्रीनवीचमध्येरेखापेक्षया त्रिचत्वारिंशत्कलाधिकपञ्चसप्ततिपरिमितात् पूर्वीयदेशान्तरांशादारभ्यते॥ (७५।४३ पू. देशान्तरे) तेन ग्रीनवीचमध्यरेखाभारतीयमध्यरेखयोः षट्सप्ततिरन्तरांशाः सिध्यन्ति। अन्तरांशेषु पञ्चचत्वारिंशदंशैर्हीनेषु ग्रीनवीचतः एकत्रिंशे पूर्वीयदेशान्तरांशे नीलनदीसागरसंगमप्रदेशोपलक्षिते भारतवर्षस्य पश्चिमा सीमेति प्रतीमः। एवं भारतीयमध्यरेखातः प्राच्यां पञ्चचत्वारिंशदंशाः फारमूसाद्वीपोपलक्षिते प्रशान्तसागरे पर्य्याप्नुवन्तीत्येष प्रशान्तसागरः पूर्वा सीमा संपद्यते।

इति चतुर्थं प्रमाणम्॥४॥

भूपद्म – चतुष्पत्रत्व



पृथ्वी के चार पत्र होने का निर्णय

पुराणों में चार पत्तों से युक्त इस कमल का वर्णन किया गया है, जैसा कि मार्कण्डेय पुराण में वर्णित है-

'यह पार्थिव्र कमल मेरे द्वारा चार पत्तों से युक्त बताया गया है। चारों दिशाओं में भद्राश्ववर्ष तथा भारतवर्ष इत्यादि इसके चार पत्ते हैं।

इस लोकपद्म के भारत, केतुमाल, भद्राश्व तथा कुरुवर्ष नामक चार पत्ते हैं, जो पर्वतों से मर्यादित हैं॥ (ब्रह्म पु.)

इस प्रकार इस पृथ्वीमण्डल के चारों पत्तों के रूप में भद्राश्व, भारत, केतुमाल और उत्तरकुरु का चार पत्तों के रूप में होना और प्रत्येक का समान रूप से ९०° अंश से विभक्त होना स्पष्ट होता है

जैसा कि सूर्यसिद्धान्त के भूगोलाध्याय में उल्लिखित है - "इस भूमण्डल के पूर्वी चतुर्थांश पर यमकोटि नाम की नगरी प्रसिद्ध है। यह नगरी "स्वर्ण प्रकार तोरणा' के नाम से भ्रदाश्ववर्ष में स्थित है॥

इसी प्रकार भारतवर्ष की दक्षिण दिशा में लंका नाम की महान् नगरी है। पश्चिम दिशा के चतुर्थांश पर केतुमाल वर्ष में रोमक नाम की नगरी प्रसिद्ध है।

उत्तरी चतुर्थांश पर कुरुवर्ष में सिद्धपुरी नाम की नगरी है। इस प्रकार इस पृथ्वीमण्डल के चारों चतुर्थांश (चरण) परस्पर एक दूसरे पर प्रतिष्ठित हैं अर्थात् सभी एक ही बिन्दु के चारों ओर ९०° अंश के कोण बनाते हुए चारों दिशाओं तक व्याप्त हैं॥

इनके ऊपर - ऊपर विपुवत् रेखा पर स्थित होकर सूर्य विचरण करता है, परन्तु विषुवत् रेखा इन चारों कोणों का स्पर्श नहीं करती है और न ही अक्षांश की वृद्धि होती है॥ (सूर्य.सि./भूगोलाध्याय)

यहाँ लंका से सुमेरु तक की सीधी रेखा है, वही भारतवर्ष की मध्य रेखा निर्धारित की गई है। यहाँ से ४५ डिग्री पूर्व में तथा ४५ डिग्री पश्चिम तक फैला हुआ जो भू-भाग है उस सम्पूर्ण भू-भाग का भारतवर्ष होना सिद्ध होता है। भारतवर्ष से ९०° अंश पूर्व में भद्राश्व वर्ष है, उत्तर में ९०° अंश पर कुरुवर्ष है, पश्चिम में ९०° अंश पर केतुमाल वर्ष है। ये इस भू-मण्डल की चारों दिशाओं में स्थित चार पत्ते हैं। भारतवर्ष की मध्य रेखा उज्जयिनी पर स्थित बताई गई है। कहा गया है —"जो सूत्र लंका और उज्जयिनी नगरी के ऊपर से कुरुक्षेत्र इत्यादि स्थानों पर स्पर्श करता हुआ मेरु पर्वत तक जाता है, वही भारतवर्ष की मध्य रेखा है, ऐसा विद्वानों ने कहा है।"

यह उज्जयिनी नगरी २३ डिग्री अंश तथा ९ कला (२३/९) उत्तर अक्षांश पर स्थित है। ग्रीनवीच स्थित मध्य रेखा की अपेक्षा यह उज्जयिनीस्थित मध्य रेखा ७५ डिग्री अंश तथा ४३ कला पूर्वी देशान्तर से प्रारम्भ होती है। इस प्रकार ग्रीनवीच-स्थित मध्य रेखा तथा भारतीय मध्य रेखा का परस्पर ७६ डिग्री अंश का स्पष्ट अन्तर है। अंशों के इस अन्तराल में ४५ डिग्री अंश कम अर्थात् ग्रीनविच से ३१ डिग्री अंश पूर्वी देशान्तर पर नील नदी के मुहाने पर (भू-मध्य-सागर) जो देश उपलक्षित है, वही भारतवर्ष की पश्चिमी सीमा प्रतीत होती है इसी प्रकार भारतवर्ष की मध्य रेखा से पूर्व में ४५ अंश प्रशान्त महासागर

में फ़ारमोसा नाम से उपलक्षित प्रदेश तक व्याप्त है। यही प्रशान्त महासागर भारतवर्ष की पूर्वी सीमा सिद्ध होती है ॥

चौथा प्रमाण समाप्त हुआ ॥४॥

अपि च भारतवर्षाद् बहुपूर्वस्थानामुपद्वीपानां भारतीयत्वाख्यानं भारतवर्षस्य बहुविस्तृतप्रदेशत्वे पञ्चमं प्रमाणम् ॥५॥

तथा हि ब्राह्मसप्तदशे, मार्कण्डेयचतुःपञ्चाशे, मात्स्ये तु चतुर्दशाधिकशततमे भारतवर्षस्यैतस्य नवोपद्वीपाः पौराणिकैराख्यायन्ते ॥

"उत्तरेण समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणे ॥
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र संततिः ॥१॥
भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान्निशामय ॥
इन्द्रद्वीपः कशेरुमाँस्ताम्रपर्णो गभस्तिमान् ॥२॥
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गान्धर्वस्त्वथ वारुणः ॥
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ॥३॥" इति ॥
स्कान्देऽप्याह माहेश्वरखण्डस्योनचत्वारिंशे (३९) ॥
"इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्रद्वीपो गभस्तिमान् ॥
नागः सौम्यश्च गान्धर्वो वरुणश्च कुमारिका ॥" इति ॥
एषां चाद्यत्वे प्रचलितभाषायां नामानि यथा—

सं. नामानि	पर्य्यायाः	भाषानामानि	इंग्लिशनामानि
१ इन्द्रद्वीपः	इन्द्रद्युम्नः	इन्द्रमन	= एंडमन
२. नागद्वीपः		निकोबार	= निकोबार
३. सौम्यः	सोमत्रा	सुमात्रा	= यवद्वीप-बलिद्वीप
४. गान्धर्वः		फोलीपायिन द्वीपसंघः ।	लुम्बक सुम्बापलोरीन प्रभृतिजावाद्वीपसंघोप्यत्रैव संनिविशते ।
५. वारुणः		बोर्नियो	= ब्रूनाई = ब्रूणी
६. कशेरुमान्	कसेरुः	सेलेवीस	
७. गभस्तिमान्		मलूक्का	
८. ताम्रपर्णः-सिंहलः	ताम्रपर्णी	टापूरोवेनसीलोन	—सीलोन् सरन्
९. कुमारिका	कुमारी	भारतखण्डः	

इसी प्रकार भारतवर्ष के सुदूर-पूर्व में स्थित उपद्वीपों को भी भारतीय उपद्वीप कहने से भारतवर्ष का विस्तृत क्षेत्र में व्याप्त होना पाँचवां प्रमाण ॥५॥

इसी प्रकार ब्रह्म पुराण के सत्रहवें, मार्कण्डेय के चौवनवें, मत्स्य के एक सौ चौदहवें अध्यायों में पौराणिकों द्वारा भारतवर्ष के नौ उपद्वीपों का वर्णन किया गया है ॥

लिखा है - समुद्र के उत्तर में, हिमालय के दक्षिण में जो देश है वह भारतवर्ष है, वहाँ के निवासी भारतीय हैं ॥१॥

भारतवर्ष के नौ उपद्वीप हैं, उनको सुनो । इन्द्रद्वीप, कशेरुमान्, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गान्धर्व, वरुण तथा यह द्वीप (जिसमें हम निवास करते हैं, कुमारिका) नवाँ द्वीप है, जो चारों ओर से समुद्र से घिरा हुआ हैं ॥ ॥१-३॥

स्कन्द पुराण के भी माहेश्वर खण्ड के ३९ वें अध्याय में लिखा है-इन्द्रद्वीप, कशेरुमान्, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान, नाग, सौम्य, गान्धर्व, वारुण और कुमारिका द्वीप है ॥

इनके आज की प्रचलित भाषा में नाम इस प्रकार हैं :-

सं. नाम	पर्याय	प्रचलित भाषा के नाम	अंग्रेजी नाम
१. इन्द्रद्वीप	इन्द्रद्युम्न	इन्द्रमन	एंडमन
२. नागद्वीप	—	निकोबार	निकोवर
३. सौम्य	सोमत्रा	सुमात्रा	यवद्वीप बलिद्वीप
४. गान्धर्व	—	फिलिपायिन द्वीप-समूह	लुम्बक, सुम्बाफ्लोरीन इत्यादि जावाद्वीपसमूह भी इसी में है।
५. वारुण	—	बोर्नियो	बूनाई-बूणी
६. कशेरुमान्	कसेरु	सेलेवीस	—
७. गभस्तिमान्	—	मलूक्का	—
८. ताम्रपर्ण	ताम्रपर्णी	टापूरोवेन/सीलोन	सीलोन सरन
९. कुमारिका	कुमारी	भारत खण्ड	—

इन्द्रद्वीपः ।

१- पुरात्वे कदाचिदोड्रदेशीयपुरुषोत्तमक्षेत्रे इन्द्रद्युम्नो नाम राजाऽऽसीत्।
"पुराकृतयुगे कश्चिन्मालवेऽवन्तिकापुरे ॥
बभूव नृपतिः श्रीमानिन्द्रद्युम्न इति श्रुतः।
स गत्वा नृपतिः क्षेत्रं मुक्तिदं पुरुषोत्तमम्॥
तत्र संकर्षणं कृष्णं सुभद्रां चान्वसादयत्।
मार्कण्डेयं वटं कृष्णं दृष्ट्वा रामं च सुव्रतः ॥

सागरे चेन्द्रद्युम्नाख्ये स्नात्वा मोक्षं लभेद् ध्रुवम्।
एवं गत्वा स नृपतिर्दक्षिणास्योदधेस्तटम्॥
निवासमकरोत् तत्र वेलामासाद्य सागरीम्॥"

इति ब्राह्मे ४१।४२ अध्याये तथोक्तेः।

तेनाधिकृतत्वादस्योपद्वीपस्य ऐन्द्रद्युम्नसंज्ञा जाता। तदपभ्रंशादयम् "ऐन्द्रमन" शब्दः प्रवृत्त इति प्रतीयते। चत्वारिंशदधिकदशोत्तराक्षांशात् पञ्चदशाधिकत्रयोदशाक्षांश-पर्य्यन्ते प्रदेशे(१०॥४०-१३॥१५) तथा षट्त्रिंशदधिकद्वानवत्यंशात् त्रिणवत्यं-शपर्य्यन्ते पूर्वदेशान्तरे संनिविष्टोऽयमिन्द्रद्युम्नः (९२।३६-९३।०) ॥१॥

इन्द्रद्वीप (एंडमन)

प्राचीन काल में किसी समय ओड्र (उड़ीसा) देश के पुरुषोत्तम क्षेत्र में इन्द्रद्युम्न नाम का राजा हुआ था। ब्रह्म पुराण में लिखा है—

प्राचीन काल में मालवा प्रदेश की अवंतिकापुरी में कोई इन्द्रद्युम्न नाम का राजा हुआ है, जो अत्यन्त वैभवशाली था, ऐसा सुना जाता है।

उस राजा ने पुरुषोत्तम नाम के मुक्तिदायक स्थान पर जाकर वहाँ बलराम, कृष्ण और सुभद्रा को प्राप्त किया॥

मार्कण्डेय नाम के वट वृक्ष को, कृष्ण और बलराम को देखने वाला इन्द्द्युम्न नाम के सागर में स्नान करने वाला पुण्यात्मा व्यक्ति अवश्य ही मोक्ष को प्राप्त करता है॥

वह राजा दक्षिण समुद्र के किनारे पर जाकर समुद्र के तट को प्राप्त करके वहीं निवास करने लगा॥(ब्राह्म ४१/८२)॥

इस राजा के अधिकार में होने के कारण इस द्वीप का नाम "इन्द्रद्युम्न" पड़ा। इसी के अपभ्रंश से "ऐन्द्रमन" शब्द बना है, ऐसा प्रतीत होता है। यह इन्द्रद्युम्न द्वीप १० डिग्री अंश तथा ४०' कला उत्तर अक्षांश से १३ अंश १५ कला अक्षांश पर्यन्त प्रदेश पर (१०॥४०।१३॥५) तथा ९२' डिग्री अंश और ३६' कला से ९३ डिग्री अंश पर्यन्त पूर्व देशान्तर तक स्थित है। (९२॥३६-९३।०) ॥१॥

नागद्वीपः

२- अथ पुरायुगे नागवंश्याः केचन क्षत्रियाः स्वर्गे भूमौ 'तासकन्द' प्रदेशादौ राज्यमकुर्वन्। ते च काश्मीरप्रदेशं पश्चादधितिष्ठन्तोऽस्मिन् भारतवर्षे यत्र तत्रो-पनिविष्टा बभूवुः। तेषामेवाधिकारे यो द्वीप आसीत् स नागेश्वर इति प्रसिद्धो म्लेच्छभाषायामपभ्रंशात् "नीकोवर" इति संभवति। सपञ्चाशषष्ठांशादष्टमांशं याव-दुत्तरेऽक्षांशे (६।५०।८।०) त्रिनवत्यंशात् सपञ्चाशत्रिनवत्यंशं यावत्पूर्वदेशान्तरे (९३।०।-९३।५०) नागेश्वराख्यो नीकोबरः॥२॥

नागद्वीप (निकोबार)

प्राचीनकाल में नागवंश के कुछ क्षत्रिय भौम स्वर्ग में स्थित तासकन्द प्रदेश आदि पर राज्य करते थे। कालान्तर में वे कश्मीर प्रदेश में अधिकार करते हुए भारतवर्ष में अनेक स्थानों पर निवास करने लगे। उनके अधिकार में जो द्वीप था, वह नागेश्वर नाम से प्रसिद्ध था, जो म्लेच्छ भाषा में अपभ्रंश रूप से निकोबार बन गया, ऐसी संभावना है। यह ६ डिग्री अंश और ५० डिग्री कला से ८ डिग्री अंश उत्तर अक्षांश तक तथा ९३ डिग्री अंश और ५० डिग्री कला से ९३ डिग्री अंश पूर्व देशान्तर तक नागेश्वर नाम का निकोबार द्वीप है ॥२॥

सौम्यः।

३-अथ सोमो राजा गन्धर्वेष्वासीद् गन्धर्वाणामधिपतिर्लोकपाल इति वेदे महाभारते पुराणादौ च प्रसिद्धम्। गन्धर्वदेशो गान्धारदेशः संप्रति "अफगानिस्तान"-इति प्रसिद्धः। तस्याधिपत्येनायं द्वीपः सौम्य उच्यते। अधीने च त्राप्रत्ययो वेदभाषायामनुशिष्यते। तेनैतस्य पुरात्वे सोमत्रा इति नाम संभाव्यते। तदपभ्रंशादयं "सुमात्रा" शब्दः प्रवर्तते। निरक्षवृत्ते द्वियुतशततमे पूर्वदेशान्तरे सोमत्रा द्वीपः। यवद्वीप-बलिद्वीप-लुम्बक-सुम्वावा-सुम्बा-फ्लोरीनप्रभृतिर्जावाद्वीपसंघोऽपि सुमात्रासांनिध्यात् सौम्यशब्देनैव संगृह्यते॥ अत एव जावाद्वीपसंघस्य दक्षिणाष्टमाद्यक्षांशवृत्तित्वेऽपि भारतीयत्वं नोपहन्यते। षडधिकशतांशाद्दशाधिकशतांशपर्य्यन्ते पूर्वदेशान्तरेऽयं जावाद्वीपसंघः ॥३॥

सौम्यद्वीप (सुमात्रा)

वेद, महाभारत और पुराण इत्यादि में प्रसिद्ध है कि गंधर्वों में सोम नाम का राजा हुआ है जो गंधर्वों का अधिपति और लोकपाल था। गंधर्व देश ही गंधार देश है, जो वर्तमान काल में अफगानिस्तान के नाम से जाना जाता है। इस सोम राजा के आधिपत्य में होने के कारण यह द्वीप सौम्य द्वीप कहा जाता है। वेदभाषा में अधीन अर्थ में त्रा प्रत्यय का विधान किया गया है। इसी से यह द्वीप कालान्तर में सोमत्रा नाम से कहा जाने लगा, ऐसा संभव है। इसी के अपभ्रंश से सुमात्रा शब्द बना है। यह सुमात्रा द्वीप ०° अंश पर तथा १०२° अंश पूर्व देशान्तर तक व्याप्त है। यवद्वीप-वलिद्वीप-लुम्बक-सुम्वावा-सुम्वा-फ्लोरीन इत्यादि जावाद्वीपसमूह भी सुमात्रा के समीप होने के कारण सौम्य शब्द से ही सम्मिलित किये गये हैं। अत एव जावाद्वीपसंघ का ८° अंश दक्षिण अक्षांश पर स्थित होते हुए भी भारतीयत्व असंगत नहीं होता है। यह जावाद्वीप संघ १०६° अंश से ११०° अंश पर्यन्त पूर्व देशान्तर तक स्थित है ॥३॥

गान्धर्वः।

(४) अस्यैव सोमस्य सामन्तप्राया विश्वावसुप्रभृतयो गन्धर्वराजाः प्रसिद्धाः। तदधीनो द्वीपो गान्धर्वः। स चायं गान्धर्वद्वीपसंघः फीलीपायिनशब्देनाख्यायते। तत्र मनिल्लादयः प्रदेशा अन्तर्भवन्ति। द्वादशे उत्तराक्षांशे (१२।०) त्रयोविंशशते पूर्व-देशान्तरे (१२३) ऽयं द्वीपः स्थितः ॥४॥

गान्धर्व (फिलीपायिन द्वीपसमूह)

इसी सोम राजा के सामन्तगण विश्वावसु इत्यादि गन्धर्व राजा प्रसिद्ध थे। इनके अधिकार में जो द्वीप था, वह गांधर्व द्वीप कहलाया। आज यही गान्धर्व द्वीपसमूह फिलीपायिन द्वीप के नाम से जाना जाता है। इन्हीं में मनिल्ल (मनीला) इत्यादि प्रदेश भी समाविष्ट हैं। यह द्वीप १२° अंश उत्तर अक्षांश तथा १२३° अंश पूर्व देशान्तर तक स्थित है ॥४॥

वारुणः ।

(५) अथ वरुणोऽसुराणां राजासील्लोकपालः। तदधिकृतो द्वीपो वारुणः। तदपभ्रंशादयं बोर्नियो शब्द उच्यते। द्व्यधिकपञ्चमे उत्तराक्षांशे (५।२।उ.) द्वापञ्चाशत्कलोपेते चतुर्दशशते देशान्तरेऽयं वारुणद्वीपः (१४४।५२ पू.) ॥५॥

वारुण द्वीप (बोर्नियो)

असुरों का राजा वरुण लोकपाल था। उसके अधिकार में जो द्वीप था, वह वारुण द्वीप था। इसी वारुण के अपभ्रंश से बोर्नियो शब्द बना है। यह द्वीप ५° अंश, २' कला उत्तर अक्षांश तथा ११४° अंश तथा ५२' कला पूर्व देशान्तर तक स्थित है ॥५॥

कशेरुमान् ।

(६) अथ कशेरुः कन्दविशेषः। तस्याधिक्येन कदाचिदत्रोत्पत्तिर्भवेदिति कशेरुमानित्ययमाख्यातः स्यात्। ककारलोपे सेलुवाशब्दोपपत्तिक्रमेणायं द्वीपः सेलेवीस इत्युक्त इत्यनुमीयते॥ बोर्नियो द्वीपादयं प्राच्यां संनिविशते। चतुर्थे दक्षिणाक्षांशे (४।०) एकविंशशते पूर्वदेशान्तरे (१२१) कसेरुमान् ॥६॥

कशेरुमान् (सेलेवीस)

कशेरु नाम की एक कन्द विशेष होती है। इसी कन्द विशेष की किसी समय यहाँ अधिक उत्पत्ति होती होगी, इसीलिये इस द्वीप का नाम कशेरुमान् पड़ा। ककार का लोप होने पर "सेलुवा" शब्द की व्युत्पत्ति के क्रम से ही यह द्वीप सेलेवीस कहा जाने लगा, ऐसा अनुमान किया जाता है। यह द्वीप बोर्नियो द्वीप से पूर्व की ओर स्थित है। यह कशेरूमान् द्वीप ४° अंश दक्षिण अक्षांश और १२१° अंश पूर्व देशान्तर तक स्थित है ॥६॥

गभस्तिमान् ।

(७) सेलवीसात् प्राच्यां निरक्षवृत्ते मलक्कोपद्वीपो गभस्तिमान्॥ केचित्तु मलुक्वातोऽग्निकोणस्थमासन्नप्रायं पपुवाद्वीपं गभस्तिमच्छब्देनेच्छन्ति। अद्यतनास्तु पपुवोपद्वीपमाष्ट्रेलियाद्वीपानुबन्धिनमाहुः॥ अत एवेदानीं भारतीयोपद्वीपत्वाभावात् तत्परित्यागः। वस्तुतस्तु संभाव्यते पुरा युगे तस्यापि भारतीयत्वमिति मलुक्कामारभ्य पपुवापर्यन्तस्य द्वीपसंघस्य गभस्तिमच्छब्देन शक्यते व्यवहारः कर्तुं निरक्षवृत्ते सार्द्धे सप्तविंशशते (१२७।३०) देशान्तरे गभस्तिमानस्ति॥७॥

गभस्तिमान् (मलूका)

सेलेवीस द्वीप से पूर्व की ओर ०° अंश पर मलक्का नाम का उपद्वीप ही गभस्तिमान् कहलाता था। कुछ लोग मलुक्का के समीप अग्निकोण में जो पपुवा द्वीप है, उसी को गभस्तिमान् कहना पसन्द करते हैं। आजकल लोग पपुवा द्वीप को ऑस्ट्रेलिया का प्रमुख उपद्वीप मानते हैं। अतएव गभस्तिमान् को भारत का उपद्वीप न होने के कारण छोड़ दिया गया है। वास्तव में प्राचीनकाल में गभस्तिमान् भी भारतीय उपद्वीप ही था और मलुक्का से लेकर पपुवा तक के द्वीपसंघ गभस्तिमान् शब्द से कहे जा सकते हैं। यह द्वीप ०° अंश उ.अ. तथा १२७१/२ अंश देशान्तर तक स्थित है ॥७॥

ताम्रपर्णः।

(८) अथ सिंहलद्वीप एव ताम्रपर्णीद्वीपः। बौद्धग्रन्थे भारतवर्षीयदेशविभाग-प्रकरणे ताम्रपर्णीशब्देन सिंहलद्वीपस्योपदिष्टत्वात्। यूनानदेशीयग्रन्थे चायं सिंहलद्वीपः "टापरोवेन" शब्देनाख्यायते॥ तावताऽप्यस्य ताम्रपर्णसंज्ञोपपद्यते। टापरोवेनश-ब्दस्य ताम्रपर्णशब्दापभ्रंशतया संभाव्यमानत्वात्॥ यत्तु टापूरावणशब्दापभ्रंशतया टापरोवेनशब्दं केचित् संभवायन्ति तदयुक्तम्॥ टापूशब्दस्य भारतीयग्राम्यशब्दतया यूनानदेशे तदपभ्रंशस्य प्रयोगायोगात्। सिंहलस्य रावणटापूत्वाभावाच्च॥ चत्वा-रिंशदधिकसप्तमे उत्तराक्षांशे (७।४०) पञ्चाशदधिकाशीतिदेशान्तरे (८०।५०) चायं सिहलद्वीपः॥८॥

ताम्रपर्ण(टोपरोवेन अथवा सीलोन)

सिंहल द्वीप ही ताम्रपर्ण द्वीप है, क्योंकि बौद्ध ग्रन्थ में भारतवर्ष के विभागप्रकरण में ताम्रपर्णी शब्द से सिंहलद्वीप को ही बताया गया है। यूनानी ग्रन्थ में यह सिंहल द्वीप "टापरोवेन"शब्द से कहा जाता है। इस टापरोवेन शब्द का ताम्रपर्ण नाम भी उचित प्रतीत होता है। क्योंकि टापरोवेन शब्द ताम्रपर्ण शब्द का अपभ्रंश हो सकता है। कुछ लोग टापरोवेन शब्द को टापू रावण शब्द का अपभ्रंश मानते हैं, यह अनुचित है। क्योंकि टापू शब्द भारतीय ग्राम्य भाषा का शब्द होने के कारण यूनान देश में अपभ्रंश के रूप में प्रयुक्त होना असंभव है, तथा सिंहल द्वीप रावण का टापू हो ही नहीं सकता है। यह सिंहल द्वीप ७° अंश तथा ४०' कला उत्तर अक्षांश और ८०° तथा ५०' कला देशान्तर तक स्थित है ॥८॥

कुमारिका

(९) सर्वोप्ययं भारतीयोपद्वीपसंघः संप्रति म्लेच्छभाषायामेकेन शब्देन "इंडियन आर्किपैलैगो" –इत्याख्यायते॥ यस्तु कुमारिकाक्षेत्रादारभ्य काश्मीरपर्य्यन्तः प्रविततो महाद्वीपः सोऽत्र प्रधानो नवमो द्वीपः। एते चेन्द्रद्वीपादयः सिंहलातिरिक्ताः सर्वेऽप्यु-पद्वीपाः प्रचलितभाषायां वर्म्माशब्देन प्रसिद्धात् कृतवर्म्मणो राज्ञो राष्ट्राद् दक्षि-णपूर्वस्यां दिश्येव संनिविष्टा दृश्यन्ते॥ तत्र वारुणकसेरुगान्धर्वादीनामुपद्वीपानां भारतीयोद्वीपत्वाख्यानं नत्वेवोपपद्यते, यावता फारमोसाप्रदेशोपलक्षितप्रशान्तसाग-

रस्य भारतवर्षसीमान्तर्भुक्तत्वं नाभ्युपगम्येत । तस्माद् भारतीयमध्यरेखातः प्राच्यां पञ्च-चत्वारिंशदंशा भारतस्यास्य पूर्वा सीमेति सिद्धम् ।।९ ।। अपि च शक्तिसंगमतन्त्रादौ चीनप्रदेशनामपि केषांचिद् भारतीयत्वेनाख्यानात् चीनसंबंधिफारमूसोपद्वीपपर्य्यन्तं भारतवर्षमासीदिति विज्ञायते। तथा चेदं भारतवर्षस्य नवत्त्यंशपरिमितत्त्वे पञ्चमं प्रमाणम् ।। हिन्दुस्तानशब्देन प्रसिद्धस्य कुमारीद्वीपस्य भारतीयत्वाख्यानं भारतवर्षस्य बहुविस्तृतप्रदेशत्वं गमयति ।।५ ।।

कुमारिका (भारत खण्ड)

यह समस्त भारतीय उपद्वीप संघ वर्तमान समय में अंग्रेजी भाषा के एक शब्द "इंडियन आर्किपैलैगो"से कहा जाता है। जो द्वीप कन्याकुमारी क्षेत्र से कश्मीर तक फैला हुआ है, वही महाद्वीप प्रधान तथा नवां द्वीप है। सिंहल द्वीप को छोड़कर इन्द्रद्वीप इत्यादि समस्त उपद्वीप वर्तमान प्रचलित भाषा में वर्मा (बर्मा) शब्द से प्रसिद्ध कृतवर्मा राजा के राष्ट्र से दक्षिण पूर्व दिशा में फैले हुए दिखाई देते हैं। वारुण, कसेरू, गांधर्व इत्यादि उपद्वीपों को भारतीय उपद्वीप कहना तब तक संगत नहीं हो सकता, जब तक फारमोसा प्रदेश से लक्षित प्रशान्त सागर को भारतवर्ष की सीमा के अन्तर्गत स्वीकार न कर लिया जावे। इसलिये भारतीय मध्य रेखा से पूर्व की ओर ४५° अंश तक भारतवर्ष की पूर्व सीमा सिद्ध होती है ।।९.।

और भी, शक्तिसंगमतंत्र इत्यादि में चीन के कुछ प्रदेशों को भी भारतीय ही कहे जाने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि चीन से संबद्ध फारमोसा उपद्वीप तक भारतवर्ष फैला हुआ था और इस प्रकार ९०° अंश तक भारतवर्ष की सीमा है, यह पांचवा प्रमाण है। हिन्दुस्तान शब्द से प्रसिद्ध कुमारी द्वीप को भारतीय कहा जाना भारतवर्ष का बहुत विस्तृत प्रदेश होना सिद्ध करता है ।।५ ।।

अपि च सिन्धोः पश्चिमस्थानां देशानां भारतीयदेशत्वाख्यानं षष्ठं प्रमाणम् ।।

तथाहि— पौराणिके भुवनकोशे भारतवर्षीयावान्तरदेशपरिगणनासूदीच्य-

१ २ ३ ४ ५ ६ ७

देशतया गान्धार-मद्र-पारद-पह्लव-कम्बोज-शक-यवनादि-देशानामुल्लेखादेषां देशानां पुरायुगे भारतीयत्वमासीदित्युपगम्यते। बृहत्संहितायां च "भारतवर्षे मध्यात् प्रागादिविभाजिता देशाः ।। (१४ ।१) इति प्रतिज्ञाय पश्चिमायां हैहय-पारद-शकदेशानां पश्चिमोत्तरस्यां च तुखारमद्रादिदेशानामाख्यानात् तत्कालेप्येषां भारतवर्षीयत्वं सुप्रसिद्धमिति गम्यते।

सिन्धु नदी के पश्चिमी भाग में स्थित देशों का भी भारतीयत्व-कथन—छठा प्रमाण

पौराणिक भुवन कोश में भारतवर्ष के अवान्तर देशों की गणनाओं में उत्तरी देशों के रूप में गांधारमद्र- पारद-पह्लव-कम्बोज-शक-यवन इत्यादि देशों का उल्लेख करने से प्राचीन काल में इन देशों का भारतीय होना सिद्ध होता है। और बृहत्संहिता में लिखा है- "भारतवर्ष में मध्य से पूर्व आदि दिशाओं में विभाजित देश" यह शीर्षक देकर पश्चिम में हैहय-पारद-शक इत्यादि देशों का तथा पश्चिमोत्तर दिशा में तुखार-मद्र इत्यादि देशों का उल्लेख करने से उस काल में भी इनका भारतीय होना प्रसिद्ध था, ऐसा स्पष्ट होता है।

गान्धारमद्रौ।

तत्रायमफगानस्ताननाम्ना संप्रति प्रसिद्धः संपूर्णो देशः पुरात्वे गान्धारशब्देन, संपूर्णश्चामीरानदेशः पुरात्वे मद्रशब्देन व्यवहृतावास्ताम्। इत्थमेतत् पश्चिमं भारतवर्षं गान्धारमद्राभ्यां द्वेधा विभक्तं द्रष्टव्यम्। गान्धारमद्रौ चैतौ प्रत्येकं द्वेधा विभक्तावास्ताम्॥ तत्रैते गान्धाराः कन्दहारनगरोपलक्षितास्तावत्सिन्धोः पूर्वतः पश्चिमतश्च प्रसिद्धाः। रामभ्रातृभरतपुत्राभ्यां तक्षकपुष्कराभ्यां तक्षशिलां पुष्करावतीं च राजधानीं पृथगधितिष्ठद्भ्यां स्व-स्वराष्ट्रतयैषां गान्धाराणां द्वेधा विभज्यमानत्वात्। तथा च भारतीयराजशासनाधीनतयैषामुभयेषां भारतीयत्वं सुनिश्चितम्॥

काबुलतोऽनतिदूरे वायव्ये वामियानाख्याः॥
प्रान्तोऽस्ति तत्र पूर्वं राजा लोकाश्च वैदिका अभवन्॥१॥
ईरानेऽपि तथासीत्पुरा युगे पार्सिपोलिसेत्याख्या॥
पारस्यपुरीयायां विदुरद्यत्वे त्विस्तखरनाम्ना॥२॥
प्राक्तनपारस्यलिपिप्रोल्लिखितास्तत्र ये शिलालेखाः॥
तेभ्यस्तत्रत्यानां भारतवर्षार्य्यसंस्रवोऽधिगतः॥३॥

अथौत्तरमद्रा दक्षिणमद्रा इत्येव मद्रदेशस्यापि द्वैविध्यं प्रसिद्धम्॥ तथा च द्विधा गान्धारा द्विधा मद्रा इत्येवमेते चत्वारो विभागा, भौगोलिका नित्या भवन्ति।

गान्धार तथा मद्र

आज जो देश अफगानिस्तान नाम से प्रसिद्ध है, प्राचीन काल में वह सम्पूर्ण देश गान्धार शब्द से तथा यह सम्पूर्ण प्राचीन ईरान देश प्राचीन काल में मद्र शब्द से व्यवहृत किया जाता था। इस प्रकार यह पश्चिमी भारतवर्ष गान्धार और मद्र देशों के रूप में दो भागों में विभक्त था, ऐसा प्रतीत होता है। गान्धार और मद्र देश भी प्रत्येक दो-दो भागों में विभक्त थे। वहां ये गान्धार लोग कन्दहार नगर से लक्षित सिन्धु नदी के पूर्व और पश्चिम भाग में स्थित थे। राम के भाई भरत के पुत्र तक्षक और पुष्कर ने तक्षशिला और पुष्करावती नगरियों को अपनी राजधानी बनाकर गान्धार देशवासियों को अपने राष्ट्र के अनुसार दो

भागों में विभाजित कर दिया था और भारतीय राजाओं के राज्य शासन के अधीन होने के कारण इन दोनों का भारतीयत्व होना सुनिश्चित है।

काबुल के समीप ही वायव्य कोण में वामियाना नाम का एक प्रान्त है। प्राचीन काल में वहाँ के राजा और प्रजा दोनों ही वैदिक थे ॥१ ॥

प्राचीनकाल में ईरान में भी पारस्यपुरी में पार्सिपोलिस नाम की नगरी थी, जो आजकल "त्विस्तखर" नाम से जानी जाती है ॥२ ॥

प्राचीनकाल की पारसी लिपि में उल्लिखित जो शिलालेख प्राप्त होते हैं, उनसे भी वहाँ के निवासियों का भारतवर्ष के आर्यमूल का होना स्पष्ट होता है ॥३ ॥

मद्र देश का उत्तर मद्र और दक्षिण मद्र दो भागों मं विभक्त होना प्रसिद्ध है। और इसी प्रकार भौगोलिक दृष्टि से दो भाग गान्धार तथा दो भाग मद्र के मिलाकर सदा से ही कुल चार भाग हैं।

सगरनिर्वासिताः धर्मभ्रष्टाः पञ्चगणाः ।

अथैतयोरेव गान्धारमद्रयोर्जनताविभागनिबन्धनाः पुनरन्ये पारदपह्लवकाम्बोजादयः पञ्चधावान्तरविभागा इष्यन्ते। तथा हि यदुवंशीयहैहयसाम्राज्यकाले तन्मित्रराष्ट्रत्वेन

१ २ ३ ४ ५

तदधीनराष्ट्रत्वेन चैते पारदाः-पह्लवाः-कम्बोजाः-शकाः-यवना इति पञ्चगणाः सिन्धोः पश्चिमतो राज्यं कुर्वन्ति स्म। ते चाणुवंश्या द्रुह्यवंश्या वा चन्द्रवंशीयाः क्षत्रियापसदाः सम्राजमेतं हैहयमनुवर्तन्ते स्म। हैहयकुलशत्रुः सूर्यवंशीयो महाराजः सगरः स्वपितृविद्वेषिणं हैहयराजं विनिर्जित्य चक्रवर्तित्वं लेभे। स एषां हैहयानुगामिनां पह्लवादीनां पराजयचिह्नतया वैकृतं चक्रे। तदुक्तं ब्राह्मादिषु-

रुरुकस्य वृकः पुत्रो वृकाद् बाहुस्तु जज्ञिवान्।
हैहयास्तालजंघाश्च निरस्यन्ति स्म तं नृपाः ॥१ ॥
बाहोर्व्यसनिनः सर्वं हृतं राज्यमभूत्किल ॥
हैहयैस्तालजंघैश्च शकैः सार्द्धं द्विजोत्तमाः ॥२ ॥
यवनाः पारदाश्चैव काम्बोजाः पह्लवास्तथा ॥
एते ह्यपि गणाः पञ्च हैहयार्थे पराक्रमन् ॥३ ॥
सगरस्तु सुतो बाहोर्जज्ञे सह गरेण वै ॥
और्वस्याश्रममासाद्य भार्गवेणाभिरक्षितः ॥४ ॥
आग्नेयमस्त्रं लब्ध्वा च भार्गवात्सगरो नृपः ॥
हैहयान् विजघानापशु क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ॥५ ॥
ततः शकाँश्च यवनान् काम्बोजान् पारदाँस्तथा ॥
पह्लवाँश्चैव निःशेषान् कर्तुं व्यवसितोऽभवत् ॥६ ॥
ते बध्यमाना वीरेण सगरेण महात्मना ॥

वशिष्ठं शरणं गत्वा प्रणिपेतुर्मनीषिणम् ॥७॥
वसिष्ठस्त्वथ तान् दृष्ट्वा समयेन महाद्युतिः ॥
सगरं वारयामास तेषां दत्वाऽभयं तदा ॥८॥
सगरस्तां प्रतिज्ञां च गुरोर्वाक्यं निशम्य च ॥
धर्मं जघान तेषां च वेषानन्यांश्चकार ह ॥९॥
अर्द्धं शकानां शिरसो मुण्डयित्वा व्यसर्जयत् ॥
यवनानां शिरः सर्वं काम्बोजानां तथैव च ॥१०॥
पारदा मुक्तकेशाश्च पह्लवाः श्मश्रुधारिणः ॥
सर्वे ते क्षत्रिया विप्रा धर्मस्तेषां निराकृतः ॥११॥

॥इत्यादि॥

सगर द्वारा निर्वासित धर्मभ्रष्ट पंचगण

इस प्रकार गान्धार और मद्र की जनता का विभाजन करने के पश्चात् फिर उनके पारद-पह्लव-काम्बोज इत्यादि पांच अवान्तर विभाग बताये गये हैं। इसी प्रकार यदुवंशीय हैहय साम्राज्य के समय उसके मित्र राष्ट्र के रूप में तथा उसके अधीन राष्ट्र के रूप में पारद, पह्लव, कम्बोज, शक, यवन, ये पांच गण सिंधु नदी के पश्चिम में राज्य करते थे। वे अणुवंशी, द्रुह्युवंशी अथवा चन्द्रवंशी निम्न क्षत्रिय इस हैहयसाम्राज्य का अनुगमन करते थे। हैहयसाम्राज्य के वंश के शत्रु सूर्यवंशीय महाराजा सगर अपने पिता से द्वेष करने वाले हैहयराज को जीत कर चक्रवर्ती बने। ब्रह्म पुराण में यह कहा भी गया है—

रुरुक का पुत्र वृक हुआ और वृक के बाहु पैदा हुआ। हैहय और तालजङ्घ राजाओं ने उस बाहु नाम के राजा को पराजित (बहिष्कृत) कर दिया ॥१॥

बाहुराजा व्यसनी था अतः श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने हैहय, तालजङ्घ और शकों के साथ मिलकर उसका राज्य और सर्वस्व छीन लिया।२॥

यवन, पारद, काम्बोज, पह्लव इत्यादि पांच गणों ने भी हैहयवंश के लोगों के पक्ष में पराक्रम किये अथवा आक्रमण किये ॥३॥

बाहु का पुत्र सगर हुआ जो कि विष के साथ ही पैदा हुआ था। उसने और्व ऋषि के आश्रम में जाकर भार्गव ऋषि द्वारा रक्षा प्राप्त की ॥४॥

इस सगर राजा ने भार्गव ऋषि से आग्नेय नाम का अस्त्र प्राप्त करके हैहयों को शीघ्र ही उसी प्रकार मार दिया जिस प्रकार क्रुद्ध रुद्र पशुओं (प्राणियों) को मारता है।।५॥

तब वह राजा सगर शकों, यवनों, पारदों, काम्बोजों और पह्लवों को पूर्ण रूप से नष्ट करने के कार्य में प्रयत्नशील हो गया ॥६॥

महात्मा, वीर राजा सगर के द्वारा पीड़ित किये जाते हुए तथा बांधे जाते हुए वे लोग महान् विद्वान् महर्षि वसिष्ठ की शरण में जाकर गिर गये ॥७॥

तब महान् तेजस्वी महर्षि वसिष्ठ ने उन्हें देखकर प्रतिज्ञापूर्वक राजा सगर को रोक दिया और उन लोगों को अभयदान दिया ॥८॥

और राजा सगर ने प्रतिज्ञा को तथा मुनि वसिष्ठ के वचनों को सुनकर उन पंचगणों के धर्म को नष्ट कर दिया तथा उनकी वेषभूषा में परिवर्तन कर दिया ॥९॥

शकों के आधे सिर को मूंड कर उन्हें छोड़ दिया, यवनों तथा काम्बोजों के सिर को पूरी तरह से मूँड दिया ॥१०॥

पारदों को केश मुक्त कर दिया गया तथा पह्लवों को केवल दाढ़ीधारी बना दिया। ये सभी क्षत्रिय और ब्राह्मण थे, जिनके धर्म को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया ॥११॥

इत्यादि।

पारदाः।

पञ्चाप्येते क्षत्रियापसदा भारतीयार्यधर्माद्विच्च्याविताः कालेन कैलडियादेशनिवासिकालकेयासुरधर्मे दीक्षिता भूत्वा क्रमेणाऽसुरवेषभूषां तद्भाषां चागृह्णन्। अहंमन्येषु पूर्णाभिमानिषु तेषु केचिदात्मनो धनुर्धरवीरत्वं प्रख्यापयन्तः पारदा इत्यात्मनो राजोपाधिं जगृहुः॥ तच्छब्दस्यासुरभाषायां धनुर्धरार्थत्वात्। ते चैते पारदाः उत्तरकाले म्लेच्छभाषया पार्थिया इत्युक्ताः। एषां च निवासप्रदेशः काश्यपीयसागराद्दक्षिणपूर्वदिश्युत्तरमद्रोभवत्। तमिदानीं युगे खुरासानदेशमाहुः।

पारद

इन पाँचों नीच क्षत्रियों ने भारतीय आर्यधर्म से च्युत किये जाने पर समय आने पर कैलडिया देश के निवासी कालकेय जाति के असुरों के धर्म में दीक्षित होकर धीरे-धीरे असुरों की वेशभूषा तथा उनकी भाषा को ग्रहण कर लिया। इन लोगों ने अहंकारी तथा पूर्ण रूप से अभिमानी होकर स्वयं को धनुर्धारी वीर घोषित करते हुए अपने आप "पारद" नाम की राजोपाधि धारण कर ली। क्योंकि असुर भाषा में पारद शब्द का अर्थ धनुर्धर होता है। और ये पारद उत्तरवर्ती काल में म्लेच्छ भाषा में पार्थिया कहे जाने लगे। इनका निवास स्थान कैस्पीयन सागर के दक्षिण पूर्व में उत्तरमद्र प्रदेश था। उसी को आजकल खुरासान देश कहा जाता है॥

पह्लवाः।

अथान्ये केचिन्महाबलिष्ठार्थकमासुरभाषया पह्लवान् शब्दं स्वोपाधिं जगृहुः। ते पह्लवाः इति आख्यायन्त।

पह्लवास्तु पार्थवाः पार्थिवा इति कालेनाख्याताः शासनीनाम्ना पश्चात् प्रसिद्धा अभवन्। इस्पहाननगरोपलक्षितो दक्षिणमद्रप्रान्तस्तेषां निवासभूमिः॥ यत्तु केचित् पाश्चात्यविद्वांसोऽद्यत्वे पारदानामेव पह्लवत्वमुपतर्कयन्ति पार्थिवा एव त्वपभ्रंशात् पार्थिया उच्यन्ते इति चाहुः। तन्न युक्तम्। पौराणिकेऽतिप्राचीने भुवनकोशे पारदानां पह्लवानां च भेदेन सर्वत्राख्याततत्वात् ॥ यथा मार्कण्डेयो॥ ५४ अ.)

"बाह्लीका वाटधानाश्च पह्लवाश्चर्मखण्डिकाः ॥
गान्धारा यवनाश्चैव पारदा हारभूषिकाः ॥१ ॥
कम्बोजा दरदाश्चैव काश्मीरानुगुणास्तथा" ॥इति. ॥

जेन्दावस्ताग्रन्थोऽप्यादितः पह्लवीभाषायामासीत्। तेनैते तद्ग्रन्थानुयायिनामग्निपूजकानां पारसीकानां पुरात्वे चन्द्रवंशीयक्षत्रियत्वानुमानेऽपि कालेन पह्लवसंज्ञाप्रसिद्धजातिमुक्तत्वमनुमीयते। जेन्दावस्ताग्रन्थनिर्म्माता जरथुस्त्रो यद्यपि मगजातीयतया शक आसीत्। तथापि जेन्दावस्ताग्रन्थस्य पह्लवीभाषायां निर्म्माणात् पह्लवशकयोः परस्परतः संस्त्रवाधिक्यमासीदित्यवगम्यते ॥

पह्लव

अन्य कुछ लोगों ने असुरभाषा के अतिबलिष्ठ अर्थ को प्रकट करने वाले "पहलवान्" शब्द को अपनी उपाधि के रूप में धारण कर लिया। ऐसे वे लोग पह्लव कहलाये। ये पह्लव ही समय समय पर पार्थव और पार्थिव कहलाये और बाद में ये ही शासनी के नाम से प्रसिद्ध हुए। इस्पहान नाम से पहचाना जाने वाला दक्षिण मद्र प्रान्त इन लोगों की निवासस्थली थी। जो कुछ पाश्चात्य विद्वान् आज तक पारदों को ही पह्लव मानते हैं, वे यह भी कहते हैं कि पार्थिव ही अपभ्रंश रूप में पार्थिया कहे जाते हैं। यह उचित नहीं है, क्योंकि अति प्राचीन पौराणिक भुवनकोश में पारदों और पह्लवों का अलग-अलग वर्णन किया गया है। जैसा कि मार्कण्डेय पुराण में लिखा है-

बाह्लीक, वाटधान, पहलव, चर्मखण्डिक, गान्धार, यवन, पारद, हारभूषिक, कम्बोज और दरद काश्मीर के लोगों के समान गुण वाले थे॥

"जेन्दावस्ता" ग्रन्थ भी मूल रूप से पहलवी भाषा में ही था। ऐसा अनुमान है कि इस ग्रन्थ का अनुकरण करने वाले, अग्निपूजक पारसियों को प्राचीन चन्द्रवंशीय क्षत्रिय मान लेने पर भी परवर्ती काल में ये पह्लव नाम की प्रसिद्ध जाति के कहे जाने लगे। जेन्दावस्ता ग्रन्थ का निर्माता जरथुस्त्र यद्यपि मग जाति का होने के कारण शक था तथापि जेन्दावस्ता ग्रन्थ का निर्माण पह्लवी भाषा में होने से प्रतीत होता है कि पह्लव और शक जाति के लोगों में परस्पर अत्यन्त घनिष्ठता थी।

कम्बोजाः।

कामभोजाः यथेच्छभोगप्रवणाः सर्वस्वतंत्रा वयमित्यात्मानं प्रथयन्तोऽपरे कालेन काम्भोजाः काम्बोजा उच्यन्ते स्म। त एव कम्बोडिया इत्याख्याताः। ते चैते काम्बोजा निषधपर्वताद्दक्षिणस्था अपि भारतीया एवासन् ॥"शवतिर्गतिकर्मा कम्बोजेष्वेव भाष्यते"— इति व्याकरणमहाभाष्योक्त्या तत्रत्यानामपि संस्कृतभाषाभाषित्वेनार्यत्वोपगमात् ॥ ये त्विदानीं भारतवर्षस्य पूर्वप्रान्तेऽपि नूनं वर्म्माख्यप्रदेशपूर्वभागस्थात् स्यामदेशात् प्राच्यां, कोचीनतः प्रतीच्यां तयोर्देशयोर्मध्येऽष्टमाक्षांशात् पञ्चदशाक्षांशपर्य्यन्तं केचित् कम्बोजाः प्रसिद्ध्यन्ति। यॉश्च कम्बोडियाशब्देनैवेदानींन्तनाः पाश्चात्याः व्यपदिशन्ति ते खल्वेभ्यो भारतपश्चिमप्रान्तवासिभ्यः काम्बो-

जेभ्यो भिन्नाः स्युः ।। पुरा युगे भारतीयसर्वग्रन्थे कम्बोजानां भारतपश्चिमत्वेनैवाख्यानात्तेषां पारस्तानप्रान्तवासित्वं नापलपितुं शक्यते ।।

कम्बोज

"काम-भोज" अर्थात् इच्छानुसार भोगविलास में प्रवृत्त, "हम सब स्वतंत्र है", ऐसा मानने वाले काम्भोज ही परवर्ती काल में काम्बोज कहलाये। वे इस प्रकार कम्बोडिया कहे जाने लगे। ये काम्बोज निषध पर्वत के दक्षिण भाग में रहते हुए भी भारतीय ही थे। "गत्यर्थक शवति धातु" का प्रयोग काम्बोजों में ही किया जाता है, व्याकरणभाष्य की इस उक्ति के अनुसार वहां के निवासी भी संस्कृत भाषा बोलने के कारण आर्य ही थे। जो लोग आज भारत वर्ष के पूर्वी प्रान्त में वर्मा, उससे पूर्व में स्याम देश से पूर्व तथा कोचीन से पश्चिम, इन दोनों देशों के मध्य ८ अक्षांश से १५ अक्षांश तक के लोग काम्बोज कहलाते हैं और जिनको पाश्चात्य लोग कम्बोडिया शब्द से संबोधित करते हैं, वे भारत के इन पश्चिम प्रान्तनिवासी काम्बोजों से भिन्न हैं। प्राचीन काल में भारतीय ग्रन्थों में काम्बोजों को भारत के पश्चिमी भाग में रहने वाले बताये जाने पर उनका पारस्थान प्रान्त के निवासी होने का निषेध करना संभव नहीं है।

शकाः ।

अथ शक्ताः समर्था वयमित्यावेदयन्तः केचन शका अभवन्। ते चैते शका उत्तरयुगे स्कीथीया नाम्नोच्यन्ते स्म ।। समर्था एते पूर्वभारतेऽपि चिरमागत्य राज्यं कुर्वाणा विक्रमादित्येनोज्जयिनीमहाराजेन पराजिता अभवन्निति वदन्त्यैहासिकाः शकानामेषां निवासप्रान्तविशेष एव शाकद्वीपः। शकजातीयानां ये ब्राह्मणविद्यावृत्तयस्ते मगा आख्याताः ।।

"एभिर्यजन्ति भूयिष्ठं तस्मिन् (शाक) द्वीपे मगाधिपाः ।।
विद्यावन्तं कुलश्रेष्ठाः शौचाचारसमन्विताः ।।१ ।।

।।इति भविष्यपुराणोक्तेः अ. १४ ।।

पारसीकानां मतप्रवर्तको बाह्लीकजन्मा ऋजिश्वर्षिकन्यागर्भजो जरथुस्त्रोऽपि भगजातीय एवासीत्।

वेदोक्तं विधिमुत्सृज्य यतोऽहं लङ्घितस्त्वया ।।
तस्मान्मगः समुत्पन्नस्तव पुत्रो भविष्यति ।।१ ।।
जरथुस्त्र इति ख्यातो वंशकीर्तिविवर्द्धनः ।
अग्निजात्या मगाः प्रोक्ताः सोमजात्या द्विजातयः ।।२ ।।

(१३९ ।४३ ।४५) (इति भविष्योक्तेः)

एते च जरथुस्त्रमतावलम्बिनो वैदिकधर्मविरोधाद्विपरीतमतानुगामिनो बभूवुः। लिपिरपि जरथुस्त्रेण दक्षिणतो वामानुगा नवीना प्राकल्प्यत। देवाराधनावैपरीत्येनासुराराधना चानने प्रकल्पितेत्याहुः ।

विपर्य्यस्तेन वेदेन मगा गायन्त्यतो मगाः।
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदस्त्वथर्वणः ॥१ ॥
ब्राह्मणोक्तास्तथा वेदा मगानामपि सुव्रत।
त एव विपरीतास्तु तेषां वेदाः प्रकीर्त्तिताः ॥२ ॥

इति भविष्यपुराणे (अ. १४) तेषां वैदिकब्राह्मणविरोधिताया उक्तत्वात्। मगानामेषां चत्वारो वेदाः क्रमेण विद विस्परद (विश्वरद) विदाद, आङ्गिरस इत्युच्यन्ते। शाकद्वीपिनोऽप्येते भारतवर्षं पूर्वमागत्य मगधप्रान्तं स्वनाम्ना वासयामासुः।

शक

हम शक्तिशाली और समर्थ हैं, ऐसा मानने वाले कुछ लोग शक बन गये। परवर्ती काल में शक लोग स्कीथिया कहे जाने लगे। ऐतिहासिकों का कहना है कि ये समर्थ (शक) लोग प्राचीन भारत में भी आकर चिरकाल तक राज्य करते हुए उज्जयिनी के महाराजा विक्रमादित्य से पराजित हुए। शकों का निवास प्रान्त ही शाकद्वीप कहलाया। शक जाति के जो ब्राह्मण लोग विद्या द्वारा जीविकोपार्जन करते थे वे मग कहलाये। भविष्य पुराण में लिखा है- "इसलिए विद्यावान्, श्रेष्ठकुल के, शुद्ध आचरणों से युक्त मग जाति के ये राजा लोग वहाँ शाकद्वीप में इन शकजातीय ब्राह्मणों के साथ यज्ञ करते थे॥ (भवि.पु. १४)

बाह्लीक देश में जन्मे, पारसीमत के प्रवर्तक ऋजिश्व ऋषि की कन्या से उत्पन्न जरथुस्त्र भी मगजातीय ही था। भविष्य पुराण में लिखा है -

"तुमने वेदोक्त विधि का उल्लंघन करके मेरा अतिक्रमण किया है, अतः तेरा पुत्र मग होगा, जरथुस्त्र उसका नाम होगा, वह वंश की कीर्ति बढ़ाने वाला होगा। अग्नि से उत्पन्न होने वाले मग तथा सोम से उत्पन्न होने वाले द्विज कहलाते हैं। (१-२) (भवि.पु. ।३९/४३/४५)

ये जरथुस्त्र के मतानुयायी वैदिक मत एवं वैदिक धर्म का विरोध करने के कारण विपरीत मत का अनुगमन करने वाले बन गए। जरथुस्त्र द्वारा दाहिनी ओर से बाँई ओर लिखी जाने वाली नवीन लिपि की भी रचना की गई। इसके द्वारा देवताओं की आराधना के विपरीत असुरों की आराधना का विधान किया गया, ऐसा कहा जाता है। जैसा कि भवि.पु. में लिखा है—

"वेदों को उल्टा करके गाते हैं, अतः वे मग कहलाए। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद इत्यादि ब्राह्मणों द्वारा कहे गए वेद मग लोगों द्वारा इसी प्रकार ये ही चारों वेद उल्टे करके बनाए गए, ऐसा प्रसिद्ध है ॥१-२ ॥ (भवि.पु.अ. १४)

इस प्रकार भविष्य पुराण में उन मगों का वैदिक ब्राह्मणों से हुए विरोध का उल्लेख किया जाना स्पष्ट होता है। इन मगों के चार वेद क्रमशः बताये गये हैं — विद, विस्परद (विश्वरद), विदाद, आङ्गिरस। प्राचीन काल में शाकद्वीप के निवासियों ने भी भारत में आकर अपने नाम (मग) से कहे जाने वाले "मगध" प्रान्त को बसाया।

यवनदेशाभिज्ञानम् ।

अथ ये खल्वोतेषां सर्वधर्माणां मिश्रणामिश्रणाभ्यां प्रतीतास्ते यवनाः । ते चैते संप्रति यहूदिया इत्याख्यायन्ते । यहूदियनायामेषां प्रधानभूता काचिन्नगरी यहूदियाशब्देनैवाख्यायते स्म । तां पाश्चात्या अपभ्रंशाद् यूडियाशब्देनाहुः । तुरुष्कास्त्वेतां नगरीं "वै तूलहम" इत्याहुः । तत्रैव च सन्निधाने वैतूलमुकद्दसनामा नगरी वर्त्तते । ताभ्यामुपलक्षितः फिलिस्तानप्रान्त एव चैषां यवनानां प्रधानभूतो देशोऽवगन्तव्यः । यद्यप्यत्र देवयुगे पणयो नामासुरा वसन्ति स्म ॥ पणिस्थानस्यैव चापभ्रंशेनाऽयं फिलिस्तानशब्दः पश्चात्प्रसिद्धोऽभूत् । किन्तु नैतावता पणीनां यवनत्वमास्थेयम् । पणीनां वाणिज्यप्रधानासुरतया यवनानां तु यहूदियानां पश्चादसुराणां भारतीयक्षत्रियापसदतया भेदस्य भारतीयप्रामाणिकशास्त्रसिद्धत्वात् ॥ पणीनां कालेन विनाशे यवनानां तत्रोपनिवेशस्य कालप्राप्तत्वाच्च ॥ यत्तु यवनशब्दो ग्रीकजातिपरो न तु यहूदियावचनः यूनानियानगर्य्यां यवनानी शब्दापभ्रंशत्वोपपत्तेरित्याहुः । तत्र विप्रतिपद्यामहे । द्विधा हि यवनाः स्युः । किलातत्रैतन - शैलाभ -यवनाख्यया संस्कृतशास्त्रोक्तानां कैल्ट-ट्यूटन-स्लाव-ग्रीकनामभिर्म्लेच्छभाषाशब्दैः सांप्रतं प्रसिद्धानां स्वर्णरजातिविशेषाणामन्यतमभेदा एके यवना ग्रीकनाम्ना प्रसिद्ध्यन्ति । अपरे पुनः पह्लवपारदादिक्षत्रियापसदानां भारतीयानामन्यतमभेदा यहूदियाः संभवन्ति । तथा च नास्ति विरोधः इत्यवगन्तव्यम् ।

यवन देश की पहचान

जो इन सभी धर्मों के मिश्रण और अमिश्रण से पहचाने जाते थे, वे यवन कहलाए। ये यवन ही वर्तमान में यहूदिया कहलाते हैं। इन यहूदियों की प्रधान नगरी किसी यहूदी शब्द से कही जाती थी, जिसको पाश्चात्य लोग अपभ्रंश रूप से "यूडिया" शब्द से कहते हैं। तुरुष्क लोग इस नगरी को "वैतूलहम" कहते हैं। इस नगरी के समीप में ही "वेतूलमुकद्दस" नाम की नगरी है। इन दोनों नगरियों के नाम से उपलक्षित फिलिस्तान प्रान्त ही इन यवनों का प्रधान देश जानना चाहिये। यद्यपि यहां देवयुग में पणि नाम के असुर निवास करते थे। परवर्ती काल में यह पाणिस्तान शब्द ही अपभ्रंश के रूप में फिलीस्तान नाम से प्रसिद्ध हुआ। परन्तु इतने मात्र से हीं पणियों का यवनत्व नहीं मानना चाहिये, क्योंकि पणि वाणिज्य-प्रधान असुर थे और यवन यहूदिया नाम के असुर थे और ये बाद में असुर बने थे, यह भारतीय क्षत्रियों की निम्न जाति का ही एक भेद था, ऐसा भारतीय प्रामाणिक शास्त्र से सिद्ध होता है। पणियों का समय आने पर विनाश हो जाने के पश्चात् वहाँ यवनों का उपनिवेशकाल प्रारम्भ हो गया था जैसाकि कुछ लोगों ने कहा है कि यवन शब्द ग्रीक जातिपरक है न कि यहूदिया शब्द का वाचक, क्योंकि यूनानिया नगरं यवनानी शब्द का ही अपभ्रंश है। परन्तु ऐसा ठीक नहीं है, क्योंकि यवन दो प्रकार के थे। वर्तमान युग की प्रसिद्ध स्वर्णर जाति विशेष के ही अन्यतम भेद के यवन लोग ग्रीक नाम से प्रसिद्ध हैं, संस्कृत शास्त्र में उक्त किलात-त्रैनत-शैलाभ नाम के यवनों के लिये म्लेच्छों की ग्रीक भाषा के कैल्ट-ट्यूटन-स्लाव शब्दों का प्रयोग प्रसिद्ध है। और दूसरे फिर पह्लव-पारद इत्यादि

भारतीय क्षत्रियों की ही पतित जाति का एक भेद यहूदिया हो सकता है और इसमें कोई विरोध नहीं हो सकता है।

यूनानादेशीयेषु यवनशब्दप्रचारस्यार्वाचीनत्वम्।

अथवा विपर्य्यस्तमिदमुच्यते -यवनशब्दो ग्रीकजातिवचनो न तु यहूदियावचन इति। वस्तुतस्तु यहूदियावचन एवायं शब्दः पुरात्वे व्यवह्रियमाण आसीन्न तु ग्रीकजातिवचन इति निभृतं प्रत्येतव्यम्। भारतीयेतिहासप्रचारकाले ग्रीसदेशेतिहासस्यान्धकारमयत्वात् तदभिप्रायेण भारतीयार्यशास्त्रे यवनशब्दप्रयोगयोगात्। उक्तं पूर्वम्। दक्षिणभारतस्थहैहयसाम्राज्यकाले तद्बन्धवः पश्चिमभारतवासिनः पञ्चगणाः सगरसाम्राज्यकाले पूर्वभारतादस्मान्निर्वासिता धर्मभ्रष्टा असुरा अभवन्निति। तेष्वेके यवना एव क्रोधादार्य्यैर्नित्यं विद्विषन्तः सर्वदा योधितुमुद्यताः सन्तो युद्धधीत्वात् कालेन युद्धधीशब्देनैवाख्याता अभवन्। युद्धधिय एवैते वीरा अपभ्रंशान्म्लेच्छैर्भूयसा युहदीशब्देन व्यपदिष्टा व्यवहारप्राचुर्येण यहूदीसंज्ञया प्रसिद्धा अभवन्। पारस्थानाख्ये पश्चिमभारते पृथक्-पृथक् संनिविष्टानामेषां पञ्चगणानामन्यतमा ह्येते यवनास्तदात्त्वे लोहितसागरीयपूर्वदक्षिणकूलस्थानाद्-अदनप्रदेशादारभ्य आसीरिया प्रदेशान्तान् लोहितसागरपूर्वकूलप्रांतदेशानधिवसन्ति स्म। अत एव भारतसीमाचतुष्टयीं निर्दिशन्तो भारतीयार्य्याः 'पश्चिमे यवनाः स्थिताः' इत्याहुः। अद्यत्त्वे तु यवनशब्दापभ्रंशेन यवनशब्दः केवलमर्वदेशस्य दक्षिणपश्चिमप्रान्तमात्रे संकुचितोऽवशिष्यते। अन्यप्रान्तेभ्यः क्रमेण यवनानामाधिपत्यविच्छेदाद्वा हेत्वन्तराद्वा यवनशब्दप्रयोगस्योच्छिन्नत्वात् यहूदीशब्दव्यवहारप्राचुर्येण च तेष्वयं यवनशब्दप्रयोगः सर्वतो विलुप्त एवाभूदिति नेदानीं वैदेशिकास्तेष्वमुं शब्दं प्रयुञ्जाना दृश्यन्ते। तदित्थमेतेषु यहूदीषु विलुप्तप्रयोगोयं यवनशब्दः कालगतेरद्भुतसामर्थ्यादतिदूरं गिरीशदेशमभ्याक्रान्तो भूयसा व्यवह्रियमाणो दृश्यते। सोयमर्वाचीनयुगे खल्वभवद् ग्रीसदेशे यवनशब्दप्रचारो न पुरात्वे तत्रासीत् ग्रीसदेशेतिहासस्य खीष्टजन्मनः प्रागष्टादशशतवत्सरेभ्य एव प्रवर्तमानतया तदभिप्रायेण यवनशब्दप्रयोगस्यापि तदवान्तरकालिकत्त्वेनार्वाचीनत्त्वापेपत्तेः।

यूनान देश के लोगों में यवन शब्द के प्रचार की अर्वाचीनता

अथवा इसके विपरीत यह कहा जा सकता है कि यवन शब्द ग्रीक जाति का वाचक है न कि यहूदिया जाति का वाचक। वास्तव में प्राचीन काल में यवन शब्द का यहूदिया जाति के वाचक के रूप में ही व्यवहार होता था न कि ग्रीक जाति के वाचक के रूप में ऐसा गूढ रूप से समझना चाहिये। क्योंकि भारतीय इतिहास के प्रचार के समय में ग्रीक जाति का इतिहास अंधकारपूर्ण था और यवन शब्द का प्रयोग भारतीय आर्यों के शास्त्र में यहूदिया के अभिप्राय में ही प्रयुक्त हुआ है। ऐसा पहले भी कहा जा चुका है कि दक्षिण भारत स्थित हैहयसाम्राज्य के समय उनके बन्धु लोग जो कि पश्चिमी भारत के निवासी थे वे पंचगण बाद में सगरसाम्राज्य के समय पूर्वी भारत से निकाले जाने पर आर्य

धर्म से पतित होकर असुर बन गये। उनमें से कुछ यवन जाति के लोग ही क्रोध के वशीभूत होकर आर्यों से नित्य-प्रति द्वेष करते हुए सदैव युद्ध के लिये तत्पर रहते हुए युद्धधी (युद्ध में बुद्धि रखने वाले) होने के कारण समय आने पर युद्धधी शब्द से ही कहे जाने लगे। ये युद्धधी वीर ही म्लेच्छ भाषा बोलने वालों के द्वारा अनेक बार यहूदी शब्द से संबोधित किये जाते हुए व्यवहाराधिक्य के कारण यहूदी नाम से प्रसिद्ध हुए। पारस्तान नाम से कहे जाने वाले पश्चिम भारत में अलग-अलग स्थानों पर निवास करने वाले इन पांच गणों की ही एक अन्यतम जाति ही यवन जाति थी। उसी समय से ये लोग लाल सागर के दक्षिणपूर्वी तटप्रदेश अदन से लेकर असीरिया प्रान्त तक लाल सागर के पूर्वी तट प्रदेश में निवास करते थे। अतएव भारत की चारों ओर की सीमा का निर्देश करते हुए भारतीय आर्य कहते हैं कि भारत की पश्चिमी सीमा पर यवन लोग निवास करते थे। आज तो यवन शब्द का अपभ्रंश रूप यवन शब्द संकुचित होकर केवल अरब देश के दक्षिण-पश्चिम प्रान्त मात्र में शेष रह गया है। धीरे-धीरे अन्य प्रान्तों से यवनों का आधिपत्य समाप्त होने के कारण अथवा अन्य किसी कारण से यवन शब्द के प्रयोग का ह्रास होने के कारण अथवा यहूदी शब्द के व्यवहाराधिक्य के कारण आज यहूदियों के लिये यवन शब्द का प्रयोग पूर्ण रूप से समाप्त हो गया है। अब तो विदेशी लोग भी इस शब्द का प्रयोग करते हुए दिखाई नहीं देते हैं। इस प्रकार यहूदियों के लिए जिसका प्रयोग समाप्त हो गया है, ऐसा यह यवन शब्द समयचक्र की गति के अद्भुत सामर्थ्य से गिरीश (पर्वतराज हिमालय) के प्रदेश को भी पार करके अनेक बार प्रयुक्त हुआ दिखाई देता है। अतः आधुनिक काल में ही ग्रीस देश में इस यवन शब्द का प्रचार हुआ है न कि प्राचीनकाल में ग्रीस देश में इस शब्द का प्रचार था। ग्रीस देश के इतिहास के ईसा से १८०० वर्ष पूर्व ही प्रारम्भ होने के कारण यह अभिप्राय है कि यवन शब्द का प्रयोग भी इस काल के अवान्तर काल का होने के कारण अर्वाचीन ही है, ऐसा मानना उचित है।

हैलेयासुरजातीनां ग्रीकायिनाम्ना पुराप्रसिद्धानां निवासाभिजनदेशविशेषे ग्रीसशब्दयवनशब्दोपचारारम्भकालविचारः ।

ग्रीसेदशे चायं यवनशब्दोपचारः कस्मात् कालादारब्ध इति जिज्ञासायामुच्यते एष तावद् ग्रीसदेशः प्राचीनतमकाले पेलासगीनाम्ना प्रसिद्धैः वन्यैरसभ्यजातिविशेषैः पर्वतगुहानिवासिभिरेवाक्रान्त आसीत्। तत्र काले स्याम-सीरिया-केल्डिया-यमनादिप्रान्तवासिनो युद्धवीरा हैलेया आक्रममाणाः पेलासगीजातिविशेषान् पराभाव्य तत्र देशे स्वयं समुपनिवेशं चक्रुः। मध्यैशियाप्रदेशात्त्वेते हैलेया ग्रीसप्रदेशमागत्य वन्यान् पराजिग्यिरे इति पाश्चात्या आहुः तद् भ्रान्तम्। मध्यैशियाप्रदेशस्य देवलोकतया तदात्वे व्यवस्थितत्वे तत्र देशे हैलेयनामासुरविशेषाणां कदाप्यवस्थातुमशक्यत्वात्॥"हेलयो हेलय इति कुर्वन्तः पराबभूवुः-" इति श्रुतेर्हैलिरयं पुरायुगे सीरियाप्रान्तवासी युद्धप्रियः कश्चिदसुराणां संघविशेष आसीत्। तद्वंशधराः सर्वे हैलेयाः स्युः। तेषां विजयिनामावासप्रभावादयं ग्रीसदेशः पुरात्वे हैलेयावासः सन् कालक्रमेण व्यवहारविशेषानुरोधाद् "हेलास" इत्याख्यायते स्म॥ वर्त्तमानग्रीस-

देशापेक्षया बहुविस्तृतोऽयं हेलासप्रदेश आसीत्। तत्र वसन्तः पुनरिमे हैलेया निशि युद्धप्रवणतया निश्याः सन्तः क्रमेण हैलेनिसनाम्ना प्रसिद्धा अभवन्। हैलेयनिश्य-शब्दापभ्रंशेन हैलेनिशा शब्दोपपत्तेः संभवात्॥ पेलासगीजातीयमनुष्याणामप्येषु सह-योगसंस्त्रवाधिक्यप्रभावमिश्रणे तन्मिश्रितहैलेया एवोत्तरकाले हैलेनिसशब्देनाख्याताः पुरायुगे ग्रीसदेशवासिनः प्राधान्येनाभूवन्। अत्रैते श्लोका रच्यन्ते-

हैलेयवासः क्रमतोऽपशब्दो हेलास इत्येष बभूव काले॥
तत्र स्म हेलेनिसजात्यलोका वसन्ति नीवृत्यसुरप्रवीराः॥१॥
निश्याक्रमन्ते स्म विशिष्य युद्धे ध्नन्ति स्म सुप्तानिति कारणात्ते॥
हैलेयनिश्या अभवन् प्रसिद्धा हैलेनिसा इत्यपशब्दतः स्युः॥२॥
हैलेनिसानां प्रथमस्तु देशः स्वः सामदेशः सहि सीरियाख्यः॥
जिगीषया पश्चिमदिग्गतास्ते यूनानदेशानधिचक्र रुग्राः॥३॥
हैलेयलोका गिरिकायवत्त्वात् ख्याता बभूवुर्गिरिकायिनोऽपि॥
ग्रीकायिनामान इमेऽपशब्दादासन्नरस्तूवचनात् प्रतीमः॥४॥
ग्रीकायिलोकोपनिवेशहेतोर्ग्रीसः स देशः कथितः पुरात्वे॥
तच्चेटलीवासिभिरस्य नाम ग्रीसेति क्लृप्तं खलु रोमकाख्यैः॥५॥

कालेनास्मिन् ग्रीसदेशे 'आर्थेंस' - राजधानीपतेः कोद्रसनामकस्य महाराजस्य कश्चित् पुत्रस्ततो ग्रीसदेशाद् एशियामाइनरप्रदेशमागत्य तत्र द्वादशनगरीः प्रति-ष्ठापयामास। द्वादशनगरोपलक्षितस्य च तस्य प्रदेशस्य 'आइयोन'- इति नामकरणं कृतम्। अयमेव खल्वाइयोनशब्दो यवनशब्दयूनानशब्दयोः प्रत्युत्पत्तिहेतुरवगम्यते। न ततः प्रागेतद्देशपरतया यवनशब्दः प्रयुक्त आसीदित्यतस्त्रायं यवन-शब्दोऽर्वाचीनोऽस्तीति ब्रूमः। तस्य चैतस्य ग्रीसयूनानदिनामकरणस्याद्यप्रभृति प्राक्तन-चतुःसहस्त्रवर्षपूर्वावधिकालावान्तरकालविषयकतया ततः प्राचीनेषु भारतवर्षी-यशास्त्रग्रंथेषु पुराणेतिहासभुवनकोशेषु प्रयुक्तस्य यवनशब्दस्य तत्परतया प्रयोगा-संभवादवश्यं युहूदीपरत्वमेवास्तीति सिद्धम्। युहूदीनां चोपनिवेशोयं भारतपश्चि-मसमुद्रकूलस्थो यूडियाप्रदेश एवास्तीति युक्तं यवनदेशस्य भारतीयप्रत्यन्तदेशत्वम्॥ इत्थं चैते क्षत्रिया भारतीयार्य्यधर्मात्परिभ्रंशिताः पंचगणा असुरधर्माणोऽयोध्याधि-पति-सगरमहाराजसमयादूर्ध्वं प्रसिद्धा अभवन्। तेषां गान्धारकम्बोजादीनां भारतीय-भुवनकोशे भारतीयत्वेनाख्यानादवश्यमेषां निवासभूमयो भारतवर्षस्य प्रांतविशेषा आसन्नित्यवगच्छामः॥

इति षष्ठं प्रमाणम्॥६॥

ग्रीकायिनाम से प्रसिद्ध हैलेयासुर जातियों के निवास-स्थान में ग्रीक और यवन शब्दों के प्रयोगारम्भ के समय पर विचार

ग्रीस देश में इस यवन शब्द का प्रचार कब से प्रारम्भ हुआ इस जिज्ञासा में कहा जाता है कि अत्यन्त प्राचीनकाल में यह ग्रीस देश पर्वत की गुफाओं में निवास करने वाली असभ्य तथा जंगली "पेलासगी" नाम की जाति विशेष से घिरा हुआ था। उस समय स्याम-सीरिया-केल्डिया और यमन इत्यादि प्रान्तों में निवास करने वाले हैलेय नामक वीर योद्धाओं ने आक्रामक पेलासगी जाति के लोगों को पराजित करके उस देश में अपना उपनिवेश स्थापित कर लिया। पाश्चात्य लोगों का कहना है कि हैलेया जाति के लोगों ने मध्य एशिया प्रदेश से ग्रीस देश में आकर जंगली जातियों को पराजित किया था। परन्तु यह भ्रांत धारणा है, क्योंकि मध्य एशिया में उस काल में देव जाति का निवास होने के कारण वह प्रदेश व्यवस्थित था और यहां हैलेय नाम की असुर जाति विशेष का निवास होना किसी भी प्रकार से संभव नहीं हो सकता है। "हेलय हेलय कहते हुए पराजित हो गये" इस श्रुति के अनुसार यह हेलि नामक जाति का प्राचीनकाल में सीरिया प्रान्त में निवास करने वाले कुछ युद्ध-प्रिय असुरों का संघविशेष था। उनके वंशज सभी हैलय हो सकते हैं। उन विजयी लोगों के निवास के प्रभाव से यह ग्रीस देश प्राचीनकाल में हैलेयावास होता हुआ धीरे-धीरे लोक-व्यवहार से हेलास शब्द से कहा जाने लगा। यह हेलास प्रदेश वर्तमान ग्रीस देश की अपेक्षा बहुत बड़ा था। फिर इसी हैलेय जाति के लोग रात्रि के समय युद्ध करने में प्रवीण होने के कारण "निश्य" होते हुए धीरे धीरे हैलेनिस नाम से प्रसिद्ध हुए। क्योंकि हैलेय और निश्य शब्दों के अपभ्रंश रूप से ही हैलेनिश शब्द का बनना संभव है। पैलासगी जाति के मनुष्यों का भी इनसे पारस्परिक मेल-जोल अधिक होने के कारण उनमें मिश्रित हैलेय लोग ही उत्तर काल में हैलेनिस शब्द से प्रसिद्ध हुए और प्राचीन काल में ये लोग ही प्रमुख रूप से ग्रीस देश के निवासी हुए। इस संबंध में ये श्लोक रचे गये हैं—

हैलेयवास यह शब्द ही कालक्रम से हेलास बन गया वहां हैलेनिस जाति के नेता और वीर असुर निवास करते थे ॥१॥

युद्ध में वे लोग रात्रि के समय आक्रमण करते थे और सोते हुए लोगों को मारते थे, इसलिये ये लोग हैलेयनिश्य कहलाये, जिसका अपभ्रंश शब्द हैलेनिस हो गया ॥२॥

पहले तो हैलेनिस लोगों का अपना देश साम देश ही था, जो वर्तमान में सीरिया नाम से कहा जाता है। परन्तु बाद में विजय की इच्छा से ये लोग पश्चिम की ओर गये और यूनान देश तक इन उग्र लोगों ने अपना अधिकार स्थापित कर लिया ॥३॥

हैलेय लोग गिरिकाय (विशालकाय) होने के कारण गिरीकायी नाम से भी प्रसिद्ध हुए। और ये ही अपभ्रंश के रूप में "ग्रीकायि" शब्द से प्रसिद्ध हो गये, ऐसा अरस्तु के वचनों से प्रतीत होता है ॥४॥

अतः प्राचीनकाल में ग्रीकायि लोगों का उपनिवेश होने के कारण यह देश ग्रीस देश कहा जाने लगा। रोमक नाम से कहे जाने वाले इटलीनिवासियों द्वारा इस देश का नाम ग्रीस देश रखा गया ॥५॥

उस समय ग्रीस देश में आथेंस (ऐंथेंस) के राजा "महाराज कोद्रस" के किसी पुत्र ने ग्रीस देश से एशिया माइनर प्रदेश में आकर बारह नगरों को स्थापित किया। बारह नगरों से उपलक्षित उस प्रदेश का नाम "आइयोन" रखा गया। अतः यही आइयोन शब्द यवन और यूनान शब्दों की प्रत्युत्पत्ति का कारण प्रतीत होता है। इससे पहले इस देश के लिये यवन शब्द का प्रयोग नहीं हुआ था, अतः हम कहते हैं कि यह यवन शब्द अर्वाचीन शब्द है न कि प्राचीन और इसी का ग्रीस, यूनान आदि नामकरण का आज से चार हजार वर्ष तक की समयावधि का विषय होने से और उस समय से भी प्राचीन भारतीय पुराण-इतिहास ग्रन्थों में प्रयुक्त यवन शब्द का तत्परक प्रयोग संभव न होने से अवश्य ही यह शब्द यहूदीपरक ही है, ऐसा सिद्ध होता है। इस प्रकार ये क्षत्रिय भारतीय आर्यधर्म से पतित असुरधर्मी पंचगण अयोध्यापति महाराज सगर के बाद में प्रसिद्ध हुए। इन गान्धार-काम्बोजादि का भारतीय भुवनकोश में भारतीयत्व के रूप में कहे जाने से अवश्य ही इनका निवास-स्थान भारतवर्ष का प्रान्त विशेष था ऐसा प्रतीत होता है।

अपि च गान्धारतः पश्चिमोत्तरेषु मद्रेषु यज्ञवेदाध्यापकस्य काप्यमहर्षेर्निवासः सप्तमं प्रमाणम्।

वाजसनेयश्रुतौ काप्यमहर्षेर्मद्रदेशवासित्वाख्यानम्।

तथाहि- वाजसनेयश्रुतौ उद्दालक आरुणिर्याज्ञवल्क्यं प्रति सूत्रात्मानमन्तर्यामिणं च पृच्छन्नाह-

"मद्रेष्ववसाम पतञ्जलस्य काप्यस्य गृहेषु यज्ञमधीयानाः" ॥इति॥ ते हीमे यज्ञ-वेदाध्यापकस्य काप्यस्यर्षेर्निवासप्रदेशा मद्राः पञ्चत्रिंशे (३५) खलूत्तरेऽक्षांशेऽष्टाचत्वारिंशे (४८) तु ग्रीनवीचमध्यरेखातः पूर्वदेशान्तरे उज्जयिनी मध्यरेखातस्तु अष्टाविंशे(२८) पश्चिमदेशान्तरे सन्निविष्टा अध्यवसीयन्ते यथा हि दक्षिणोत्तरा विहाराः। दक्षिणोत्तराः कोशलाः। पूर्वोत्तराः पञ्चालाः। दक्षिणोत्तराः कुरव। इत्येवमेते सिन्धोः प्राच्यदेशा द्वेधा विभक्ता आसन् एवमेवैते सिन्धोः पश्चिमभागस्था मद्रा अपि दक्षिणोत्तराभ्यां विभक्ताः स्मर्यन्ते। तांश्चैतान् मद्रान् पूर्वकाले (Media) मेडियाशब्देन म्लेच्छा व्यवहरन्ति स्म। किन्त्विदानीमुत्तरमद्राः खुरासानशब्देन दक्षिणमद्रास्तु परसियाशब्देन व्यवह्रियन्ते। कालेन देशविशेषाणां सीमाभेदस्य संज्ञाभेदस्य च प्रकृतिनियमसिद्धत्वात्।

और भी गान्धार से पश्चिम-उत्तर मद्रप्रदेश में यज्ञ-वेदाध्यापक काप्य महर्षि का निवासस्थान सातवाँ प्रमाण

(१) वाजसनेय श्रुति में काप्य महर्षि को मद्र देश का निवासी होना कहा जाना

जैसे कि वाजसनेय संहिता में उद्दालक आरुणि ने याज्ञवल्क्य के प्रति सूत्रात्मा और अन्तर्यामी को पूछते हुए कहा था—

"हम मद्र देश में यज्ञ का अध्ययन करते हुए काप्य पतंजल के घर में निवास करते थे।" यज्ञवेद के अध्यापक इन्हीं काप्य महर्षि का निवासस्थान मद्र देश था, जो ३५ डिग्री उत्तर अक्षांश में ग्रीनविच मध्य-रेखा से ४८ डिग्री पूर्व देशान्तर तथा उज्जयिनी से २८ डिग्री पश्चिम देशान्तर में स्थित था, ऐसा प्रतीत होता है। तथा दक्षिण-उत्तर बिहार, दक्षिण-उत्तर कोशल, पूर्वोत्तर पांचाल और दक्षिणोत्तर कुरु। इस प्रकार सिन्धु के पूर्वी प्रदेश दो-दो भागों में विभक्त थे। इसी प्रकार ही सिन्धु के ये पश्चिमी भाग में स्थित मद्र भी दक्षिण और उत्तर दो भागों में विभक्त कहे जाते हैं। इन्हीं मद्र प्रदेशों को प्राचीन काल में म्लेच्छ लोग मेडिया शब्द से कहते थे। किन्तु वर्तमान में उत्तर मद्र खुरासान शब्द से तथा दक्षिण मद्र परसिया शब्द से कहे जाते हैं, क्योंकि काल के प्रभाव से देशविशेष की सीमा तथा नाम में परिवर्तन होना प्रकृतिं का नियम ही है॥

मद्रदेशाभिज्ञाने नवीनमतप्रत्याख्यानाम्।

केचित्तु पाश्चात्या नयपालचीनान्तरालस्थं भूटानदेशं मद्रदेशत्वेन कल्पयन्ति। तेषां नितान्तमनभिज्ञानां कल्पनायाः निःसारत्वादुपेक्षामात्रं सत्कारः। यच्च पुनरद्यत्वे केचिदन्ये पाश्चात्यानुगामिनः पण्डिता इरावतीचन्द्रभागाप्रान्ते मद्रदेशं मन्यन्ते तद्वि-भ्रान्तम्। सिन्धुनदस्य भारतीयपश्चिमसीमात्वभ्रमेणोपकल्पितानामीदृशप्रवादानामना-देयत्वात्। भारतीयोदीच्यदेशगणनासु गान्धार-बाह्लीक-पह्लव-शक-यवन-पारद-कम्बोजादिसहकारेण मद्राणामप्युक्ततया तेषामिवैषां मद्राणामपि सिन्धोः पश्चि-मप्रान्तीयत्वेनोपगम्यत्वाच्च। दृश्यते च सिन्धुनदात् पश्चिमतो विंशत्यंशान्तरेण मेदियाशब्दप्रसिद्धो देशः। तस्योत्तरमद्रत्वेऽध्यवसिते ततो दक्षिणपूर्वस्यां गान्धार-संलग्नतया दक्षिणमद्रत्वमुपक्लृप्तं भवति। तथा हि सर्वोप्यद्यतनोफगानदेशः पुरात्वे गान्धारदेश आसीत्। सर्वश्चायमद्यतनः पर्सियादेशः पुरा मद्रदेश आसीदार्य्याणाम्॥ विस्तृतौ हीमौ देशौ गान्धारो मद्रश्च पुराणभारतादिभ्योऽवगम्येते॥ तत्रैते मद्रा गान्धारतः संलग्नप्रायाः पश्चिमोत्तरदेशाः स्युः। तथा चैतस्य मद्रस्याद्यतनयोरि-स्पहान-तिहरानयोर्नगरयोः प्रदेशे पुरात्वे सन्निविष्टितया तावत्प्रदेशपर्य्यन्तं भारत-वर्षमासीदिति विज्ञायते। तत्र च काप्यस्य यज्ञवेदाध्यापकस्य निवासस्तेषां देशानामार्यनिवासभूमित्वं चोपपद्यते॥

इति सप्तमं प्रमाणम् ॥७॥

(२) मद्र देश के नाम में नवीन मत की स्थापना

कुछ पाश्चात्य लोग नेपाल तथा चीन के मध्य स्थित भूटान देश को मद्र देश बतलाते हैं। ऐसे सर्वथा अनभिज्ञ लोगों की सारहीन कल्पना की मात्र उपेक्षा ही हुई। और फिर आज भी कुछ अन्य विद्वान् जो पाश्चात्य लोगों का अनुसरण करते हैं, वे भी इरावती और चन्द्रभागा नदियों के प्रदेश को मद्र प्रदेश कहते हैं, यह भी भ्रममात्र है। सिन्धु नदी को भारत की पश्चिमी सीमा मानने के भ्रम से ही इस प्रकार के कल्पित प्रवाद उत्पन्न हुए हैं, जो अग्राह्य हैं। क्योंकि भारत के उत्तर में स्थित देशों की गणना में गान्धार-बाह्लीक-पह्लव-शक-

-यवन-पारद और कम्बोज इत्यादि देशों के साथ ही मद्र देशों को भी कहा जाने से उन देशों के समान ही मद्र देशों का भी सिन्धु के पश्चिम प्रान्त में होना उचित सिद्ध होता है। तथा सिन्धु नदी के पश्चिमी भाग में २० अंश पर मेदिया नाम से प्रसिद्ध देश दिखाई देता है, वही उत्तर-मद्र देश निर्धारित होता है। और उसी के दक्षिण-पूर्व में गान्धार देश से संलग्न दक्षिण मद्र देश माना जाता है तथा आज सम्पूर्ण अफगान देश प्राचीन काल में गान्धार देश था और आज का सम्पूर्ण पर्सिया देश प्राचीन आर्यों का मद्र देश था। ये दोनों ही विशाल मद्र तथा गान्धार देश प्राचीन भारतीयों द्वारा जाने जाते थे। इसी गान्धार से उत्तर-पश्चिम में लगभग संलग्न देश ही मद्र देश थे तथा प्राचीन काल में इस मद्र का आज के 'ओरिस्पहान' और 'तिरहान' नगरों के प्रदेश में सन्निविष्ट होने के कारण उस देश तक प्राचीन भारत की सीमा थी, ऐसा स्पष्ट होता है और वहाँ यज्ञवेद के अध्यापक काप्य महर्षि का निवास होने से उन देशों का आर्य-भूमि होना सिद्ध होता है ॥७॥

सातवां प्रमाण समाप्त हुआ ॥७॥

अपि च यवनदेशस्य भारतवर्षीयपश्चिमसीमात्वाख्यानमष्टमं प्रमाणम्।

(१) अद्यत्वे यवनशब्दस्य अर्वदेशप्रान्तविशेषे-यमनदेशे संकोचः।

किरातानां पूर्वसीमात्वं, यवनानां पश्चिमसीमात्वं भारतवर्षस्य पुराणेष्वाख्यायते। यथा मात्स्ये (१४४)

योजनानां सहस्रं वै द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः॥
आयतस्तु कुमारीतो, गङ्गायाः प्रवहावधिः ॥१॥
द्वीपो ह्युपनिविष्टोऽयं म्लेच्छैरन्तेषु सर्वशः॥
यवनाश्च किराताश्च तस्यान्ते पूर्वपश्चिमे ॥२॥

मार्कण्डेयेपि (५४)

योजनानां सहस्रं वै द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरम्॥
पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनास्तथा ॥३॥इति॥

(८) यवन देश को भारत की पश्चिमी सीमा कहना आठवां प्रमाण

(१) आजकल यवन शब्द का अरब देश के एक प्रान्त विशेष यमन देश मात्र में संकुचित होना

भारतवर्ष के पुराणों में किरातों का पूर्वी सीमा में और यवनों का पश्चिमी सीमा में होना कहा जाता है। जैसा कि मत्स्य पुराण के एक सौ चौहदवें (११४ वें) अध्याय में लिखा है:-

यह द्वीप दक्षिण से उत्तर एक हजार योजन तक कन्या कुमारी से गंगा के प्रवाह पर्यन्त फैला हुआ है ॥१॥

यह द्वीप अन्तिम छोर पर पूर्ण रूप से म्लेच्छों के द्वारा उपनिवेश बनाया गया, जिसके पूर्व में किरात और पश्चिम में यवन निवास करते थे॥२॥

मार्कण्डेय पुराण के चौवनवें अध्याय में भी—

यह द्वीप दक्षिण से उत्तर एक हजार योजन तक फैला हुआ है, जिसके अन्तिम छोर पर पूर्व में किरात और पश्चिम में यवन निवास करते हैं॥३॥

यमन, हेजाज, तिहामा, नेजद और ऐमामा इस प्रकार पांच भागों में विभक्त अरब देश का लाल सागर के किनारे स्थित जितना भाग यमन शब्द से जाना जाता हैं, वही प्रदेश भारतीयों द्वारा यवन शब्द से कहा जाता है। एक ही सीमा होने के कारण भूमध्य सागर के किनारे स्थित प्रदेश भी इसी नाम से जाने जाते हैं। अथवा यह यवन शब्द न केवल यूनान देशवासी-परक ग्रीस देश का ही दूसरा नाम है अपितु जरूसलीम के पर्यायवाची जूडिया नगर से उपलक्षित यहूदिया प्रान्त में निवास करने वाले यहूदी जाती के वाचक के रूप में भी प्रायः आर्यग्रन्थों में प्रयुक्त किया जाता है।

(२) यवनशब्दस्य मुसलमानजातिपरत्वप्रत्याख्यानम्।

यत्तु यवनशब्दोयं मुसलमानजातिपरः। सन्ति हि सिन्धोरत्यासन्ने काबुलादिप्रदेशे पठानजातीयानां भूयांसः सन्निप्रवेशाः। तदभिप्रायेणैव च "पश्चिमे यवनाः स्थिताः" — इत्यादि वचनोपपत्तिरिति सिन्धुनद एवैतस्य भारतवर्षस्य पश्चिमसीमा निष्कृष्यत इति केचिदाहुः—तत्तुच्छम्। मुसलमानानां चतुर्दशशताब्द्या अर्वाचीनतया पुराण-निर्माणकालस्य च चतुःसहस्राब्द्या अप्यधिकप्राचीनतया पौराणिकभुवनकोशे मुस-लमानाभिप्रायेण यवनशब्दप्रयोगासंभवात्॥ पुराणनिर्माणकाले च गान्धारमद्रादिदिशे आर्य्याध्युषिता एवासन्निति महाभारतादिप्राचीनग्रन्थेऽवसीयते। तस्मात्सिन्धुनदोप-लक्षितप्रान्तस्य भारतसीमात्वं नोपपद्यते।

(२) यवन शब्द के मुसलमान जातिपरक होने का निषेध

जैसा कि यह यवन शब्द मुसलमान जाति का वाचक माना जाता है। सिन्धु नदी के निकट काबुल इत्यादि प्रदेश में पठान जाति के लोगों के निवासस्थान थे। और इसी अभिप्राय से ही "पश्चिम में यवन लोग स्थित हैं" इत्यादि वचनों की संगति होती है। अतः कुछ लोग कहते हैं कि सिन्धु नदी ही भारत की पश्चिमी सीमा निर्धारित होती है परन्तु यह विचार तुच्छ है, क्योंकि मुसलमानों के चौदह शताब्दी से अर्वाचीन होने और पुराणों के निर्माणकाल का चार हजार वर्ष से भी अधिक प्राचीन होने के कारण पौराणिक भुवनकोश में मुसलमानों के लिए यवन शब्द का प्रयोग किया जाना असम्भव है। पुराणों के निर्माण के समय गांधार और मद्र इत्यादि देश आर्यों के ही निवासस्थल थे, ऐसा महाभारत इत्यादि प्राचीन ग्रंथों से सिद्ध होता है। इसलिए सिन्धु नदी से उपलक्षित प्रदेश का भारत की सीमा होना संभव नहीं है।

(३) पुरायुगे यवनशब्दस्य कैलडियापश्चिमतो युहूदियाप्रान्ते निरूढिः।

अवश्यं चास्मिन् पश्चिमे भारते इराकदेशापरपर्य्यायः कैलडियाप्रदेशः कालकेयासुरगणाध्युषितः पुराकालादेवैतन्मद्रदेशात् पश्चिमतोऽनार्य्यगणाध्युषित आसीदति प्राचीनग्रन्थेभ्योऽवगच्छामः। लङ्कावासिरावणकुंभकर्णसोदरभगिन्याः शूर्पणखाया अस्मिन्नेव कैलडियाप्रदेशे कालकेयासुरतो विवाहसंबंधस्य रामायणे व्याख्यायतत्वात्। ततोऽपि पश्चिमतोऽयं यहूदियाप्रदेशः प्रतिपद्यते। त ऐवैते यहूदीसंज्ञयाऽघत्वे प्रसिद्धा जातिविशेषा आर्य्यग्रन्थेषु यवना इत्युच्यन्ते स्म। यत्तु-

"म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्।
ऋषिवत् तेऽपि पूज्यन्ते किम्पुनर्दैववविद् द्विजः" ॥१॥

इति गर्गोक्तेर्ग्रीसापरपर्य्यायपूनानदेशवासिवचनोयं यवनशब्द इति केचिदाहुः, तत्रोच्यते। संभवति हि ग्रीकजातीयानामिवैतेषां यहूदीजातीयानामपि ज्योतिर्विद्यायां नैपुण्यमिति नैतावता यवनशब्दस्य यहूदीवचनत्वं शक्यमपवदितुम। वराहमिहिरस्याप्यत्रैव देशे ज्योतिर्विद्यालाभस्यानुमानात्। अथवा सिकन्दरराज्यकाले तत्कर्म्मचारितया बहवो यवना इह निवसन्ति स्म। तेभ्य एवास्य वराहमिहिरस्य ज्योतिर्विद्यालाभः संभाव्यते। कालनेमिनामा यवनोऽपि कृष्णद्वेषी मथुरावरोधको न ग्रीसदेशीयो यवनः। किन्तु यहूदीय एवायं स्यादिति संभाव्यते। अस्या एवं जातेः परिवर्तेन मोहम्मदजन्मोत्तरकाले मोहम्मदमतग्रहणनिबन्धनो मुसलमानकुलप्रादुर्भाव इति प्रतीयते। त इमे यवना लोहितसागरभूमध्यसागरयोः प्राक्कूलोपलक्षितप्रान्ते प्रायेण पुरात्वे वसन्ति स्मेति यवनानां भारतवर्षीयपश्चिमसीमास्थत्वं साधूपपद्यते। यत्तु- अद्यत्वे अर्वदेशस्य दक्षिणपश्चिमप्रान्तमात्रे कनीयसि प्रदेशे यमनशब्दो व्यवहतो दृश्यते तदिदमन्यान्यजातीयपरराजक्रान्तिनिबन्धनादेषां यवनानां पराभवादस्य यवनदेशस्य संकोचमात्रं प्रतिपद्यते ॥७॥

इत्यष्टमं प्रमाणम् ॥८॥

(३) प्राचीन युग में कैलडिया के पश्चिम की ओर यहूदिया प्रान्त में यवन शब्द का रूढ होना

प्राचीन ग्रन्थों से प्रतीत होता है कि अवश्य ही पश्चिमी भारत में ईराक देश का पर्यायवाची कैलडिया प्रदेश कालकेय जाति के सुरों का निवासस्थल था। अतः प्राचीनकाल से ही मद्र देश से पश्चिम की ओर अनार्यो का निवासस्थान था। क्योंकि लंकावासी रावण, कुम्भकर्ण की सगी बहिन शूर्पणखा का इसी कैलडिया प्रदेश की कालकेय जाति के असुर से विवाहसंबंध का रामायण में उल्लेख किया गया है। उससे भी पश्चिम में यहूदिया प्रदेश सिद्ध होता है। ये आजकल यहूदिया नाम से प्रसिद्ध जातिविशेष के लोग ही आर्यग्रन्थों में यवन कहे गये हैं। जैसा कि गर्ग-संहिता में उल्लिखित है - "म्लेच्छ ही यवन हैं और उनमें यह शास्त्र (ज्योतिष) सम्यक् रूप से प्रचलित है। इसलिए यदि वे लोग ही ऋषियों के समान सम्मान को प्राप्त होते हैं तो ज्योतिष के ज्ञाता ब्राह्मणों की तो बात ही क्या है ॥१॥

इस प्रकार गर्ग की इस उक्ति के आधार पर कुछ लोगों का कहना है कि यवन शब्द ग्रीस देश के पर्यायवाची यूनान देश के निवासियों का वाचक है, इस विषय में कहा जा रहा है :—

सम्भव है कि ग्रीक जाति के लोगों के समान ही यहूदी जाति के लोगों की भी ज्योतिष विद्या में निपुणता हो सकती है, परन्तु इतने मात्र से ही यवन शब्द के यहूदीवाचक होने का अपवाद नहीं किया जा सकता है। ऐसा अनुमान है कि वराहमिहिर ने भी इसी देश में ज्योतिष विद्या का लाभ प्राप्त किया था, ऐसा हो सकता है। अथवा सिकन्दर के राज्यकाल में बहुत से यवन कर्मचारी के रूप में यहाँ निवास करते थे। उन्हीं से वराहमिहिर ने यह ज्योतिष विद्या का लाभ प्राप्त किया होगा। मथुरा को रोकने वाला कृष्णद्वेषी कालनेमि नाम का यवन भी ग्रीस देश का निवासी यवन नहीं था, किन्तु ऐसी सम्भावना है कि वह यहूदी ही था। इसी जाति के परिवर्तन से मोहम्मद के जन्म के बाद मोहम्मद के मत के अनुयायी मुसलमान जाति का प्रादुर्भाव हुआ, ऐसा प्रतीत होता है। ये जो यवन हैं, वे प्राचीन काल में लाल समुद्र और भूमध्य सागर के पूर्वी तट से उपलक्षित प्रदेश में प्रायः निवास करते थे। इससे यवनों का भारतवर्ष की पश्चिमी सीमा में निवास करना स्पष्ट प्रतीत होता है। आजकल अरब देश की दक्षिण पश्चिम सीमा प्रान्त मात्र में जो छोटा सा यमन शब्द से कहा जाने वाला देश दिखाई देता है, वह तो विभिन्न जाति के दूसरे राजओं के आक्रमण के कारण यवन शब्द का संकोच मात्र प्रतीत होता है॥८॥

आठवा प्रमाण समाप्त हुआ॥८॥

व्याकरणभाष्ये तूरसपर्वताभिप्रायेणादर्शपर्वतस्य भारतीयपश्चिमसीमात्वाख्यानं

नवमं प्रमाणम्॥९॥

अपि चार्य्यावर्तस्य चतुःसीमनिर्देशं कुर्वता भगवता व्याकरणमहाभाष्यकरेण "प्रागादर्शात्, प्रत्यक् कालकवनात्, दक्षिणेन हिमवन्तमुत्तरेण पारियात्रम्"- इत्युक्तम्। तत्रायमार्य्यावर्तशब्द उपलक्षणमार्य्यायणस्यापि। आर्य्योपनिवेशस्याभिप्रेतत्वेन दाक्षिणात्यभागरहितयोः पौरस्त्यपाश्चात्ययोर्भारतविभागयोः सहैवात्र विवक्षितत्वात्। तथा च-तत्रादर्शशब्दस्य भूमध्यसागरोत्तरप्रान्तस्थतारसपर्वतवाचितया, सिनाइपर्वतापरपर्य्याय-तूरसपर्वताभिप्रायतया वा प्रतिपत्तिः कार्य्या॥ समुद्रेण यहूदियाख्ययवनदेशेन च तस्यादर्शस्य तुल्यदेशत्वात्। यत्तु आदर्शशब्देन सिन्धुनददक्षिणकूलस्थं सुलेमानपर्वतं केचित्कल्पयन्ति तन्न युक्तम्। पश्चिमसीमात्वेनोपदिष्टयोः समुद्रयवनदेशयोस्तत्रोपसत्त्यभावात्। अक्षरसाम्येन तारसस्य तूरसस्य वा सिनायिपर्वतस्यऽऽदर्शत्वेन प्रतिपत्तुं युक्तत्वाच्चेति दिक्॥

इति नवमं प्रमाणम्॥९॥

(९) व्याकरणभाष्य में तूरस पर्वत के अभिप्राय से आदर्श पर्वत को भारत की पश्चिमी सीमा कहना
नवां प्रमाण

महाभाष्यकार भगवान् पतंजलि के द्वारा कहा गया है :-

"आदर्श पर्वत से पूर्व, कालक वन से पश्चिम, हिमालय पर्वत से दक्षिण तथा पारियात्र से उत्तर से आर्यावर्त की चारों सीमाओं का निर्देश करते हुए कहा गया है। यहाँ यह आर्यावर्त शब्द आर्यायण शब्द का भी उपलक्षण है, क्योंकि आर्यों के उपनिवेश के रूप में अभिप्रेत होने से दाक्षिणात्य भाग को छोड़कर केवल पूर्वी और पश्चिमी भारत को एक साथ ही कह दिया गया है। और आदर्श शब्द का भूमध्य सागर के उत्तर प्रान्त में तारस पर्वत का वाचक होने से तथा सिनायि पर्वत का दूसरा नाम तूरस नाम के अभिप्राय से समझना चाहिये, क्योंकि समुद्र से और यहूदिया नाम के यवन देश से वह आदर्श पर्वत समान दूरी पर है । जो कुछ लोग सिन्धु नदी के दक्षिणी किनारे पर स्थित सुलेमान पर्वत को आदर्श शब्द से मानते हैं, यह उचित नहीं है। क्योंकि पश्चिमी सीमा के रूप में बताये गये समुद्र और यवन देश पास-पास नहीं है, अपितु तारस और तूरस पर्वत अक्षर की समानता के कारण सिनायि पर्वत का आदर्श पर्वत के रूप में प्रतिपादन करना युक्तियुक्त है।

नवाँ प्रमाण समाप्त ॥९ ॥

(१०) त्रिपुरासुरवधाख्याने लौहपुरस्य पृथ्वीलोकस्थत्वाख्यानं दशमं प्रमाणम्।
त्रिपुराशीतिकाव्यम्।

१— श्रौतग्रन्थे ब्राह्मणाख्ये पुराणे, मत्स्यादौ वा त्रैपुराख्यानमुक्तम् ॥
तत्रैकस्याः सामदेशस्थपुर्याः पृथ्वीत्वोक्तिर्विद्यतेऽन्यत्प्रमाणम् ॥१ ॥

(१०) त्रिपुरासुर वध की कथा में लौहपुर का पृथ्वीलोक में स्थिति कहना—दसवाँ प्रमाण
(१) त्रिपुराशीति काव्य

श्रौत ग्रन्थ में, ब्राह्मण पुराण में और मत्स्य इत्यादि पुराणों में त्रिपुर आख्यान का वर्णन किया गया है, जिसमें सामदेश स्थित एक नगरी का पृथ्वी रूप में कथन किया गया है, यह भी एक प्रमाण है ॥१ ॥

असुरविभागविशेषस्य मयसंज्ञा।

२— अनेकधा प्रागसुरा बभूवुर्वर्गैर्विभक्ता भुवि तेषु कश्चित् ॥
वर्गो मयो नाम गतः प्रसिद्धिं मायाव्ययं भूरि चकार मायाम् ॥२ ॥
बहूनि वीर्य्याणि कलाश्च बह्व्यो, बह्व्योऽत्र विद्याश्च विभूतयश्च ॥
आसीन्मयानामिह संनिवेशः समुद्रकूले यवनप्रदेशे ॥३ ॥

मयसोपोटेमीति प्रसिद्ध एषोऽस्ति वो देशः।
तत्र मयानामेषां वसतिः संभाव्यते पूर्वम्॥
मयेषु कश्चित् त्रिपुरासुरोऽभूत् पुरत्रयं तेन विनिर्मितं प्राक्।
त्रिष्वेषु लोकेषु पुरैस्त्रिभिस्तैर्देवानबाधन्त पुराऽसुरास्ते॥४॥

(२) असुरों के वर्गविशेष की मय संज्ञा

प्राचीकाल में पृथ्वी पर असुर लोग अनेक वर्गों में विभक्त थे, जिनमें से कोई मय नाम का वर्गविशेष प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ है, वह मायावी था और उसने अनेक प्रकार के मायापूर्ण कार्य किये थे॥२॥

मय जाति के लोगों के अनेक प्रकार के शौर्य, अनेक कलाएँ, बहुत सी विद्याएँ और चमत्कारपूर्ण विशेषताएँ थीं। इनका निवासस्थान समुद्र के किनारे यवन प्रदेश था॥३॥

ऐसी सम्भावना है कि मयसोपोटेमिया (मेसोपोटेमिया) नाम के प्रदेश में पूर्व काल में मय जाति के असुरों का निवास स्थान था। इस मय जाति के असुरों में कोई त्रिपुर नाम का असुर था, जिसने सबसे पहले त्रिपुर (तीन नगर) की रचना की। प्राचीन समय में इन तीनों पुरों से असुर लोग देवताओं को पीड़ित किया करते थे॥४॥

मयसंबन्धित्रिपुरनिर्म्माणोत्तरं देवासुरेषु त्रिपुरनिर्माणप्रचारः।

३— आसीत्सुराणां च पुरत्रयं पुरा यथासुराणां त्रिपुरं व्यधीयत्।
कुतः स एकस्त्रिपुरासुरोऽभवत् प्रसिद्ध इत्यत्र न वेद्मि कारणम्॥५॥
मन्येऽसुराः सीम्नि सुरत्रिलोक्या दुर्गस्वरूपाणि पुराण्यमूनि।
व्यधुः सुरैर्योद्धुममीषु वीरा आसन्निति ख्यातिविशेषहेतुः॥६॥
यतोऽथवा सर्वत्र एवं पूर्वं मयासुरेण त्रिपुरं प्रणीतम्।
ख्यातस्ततोऽभूत् त्रिपुरासुरोऽसौ पश्चात्परे त्रीणि पुराणि चक्रुः॥७॥
राज्ञां तिस्रस्तित्र आसंस्तदात्वे स्वर्गस्थानां चासुराणां च पुर्य्यः।
तासामेकं धाम तन्मुख्यमन्यद्वैहारं स्यादत्रोपसत्स्यात्॥८॥
किन्तु त्रेधा पूर्विधानप्रचारो यावन्नास्ति स्मासुराणां सुराणाम्।
तस्मिन्पूर्वे काल एव प्रणीता दुर्गास्तिस्रः पुर्य्य एता मयेन॥९॥

(३) मय से सम्बद्ध त्रिपुरनिर्माण के पश्चात् देवों और असुरों में त्रिपुरनिर्माण की परम्परा का प्रचार

प्राचीन समय में जैसा असुरों का पुरत्रय था, देवों का भी वैसा ही पुरत्रय बनाया गया था। एक जो प्रसिद्ध त्रिपुरासुर हुआ था, वह कहाँ से प्रसिद्ध हुआ इस संबंध में हम कोई आधार नहीं जानते हैं॥५॥

मैं मानता हूँ कि देवत्रिलोकी की सीमा में ही देवों से युद्ध करने के लिये दुर्गों के रूप में इन नगरों का निर्माण किया गया था, इनमें वीर सैनिक रहते थे, यही विशेष रूप से प्रसिद्धि का कारण था॥६॥

अथवा सर्व प्रथम मय नाम के असुर ने त्रिपुर की रचना की और इसी त्रिपुरनिर्माण के कारण ही वह त्रिपुरासुर के नाम से प्रसिद्ध हो गया और तत्पश्चात् अन्य लोगों ने भी त्रिपुरों की रचना की ॥७॥

उस समय देव राजाओं और असुर राजाओं की तीन-तीन नगरियाँ थीं, उनमें से एक प्रमुख निवासस्थान था, दूसरा विहार-स्थल था और तीसरा सभास्थल था ॥८॥

उस काल में मय नाम के असुर द्वारा ही ये तीन अगम्य नगरियाँ बनाई गई थीं किन्तु तब तक देवताओं और असुरों में त्रिपुरनिर्माण का प्रचार नहीं था ॥९॥

तारपुत्रस्य तारकस्य विद्युन्मालिकमलाक्षतारकाक्षास्त्रयः पुत्राः ।

४— वज्राङ्गोऽभूद् वर्गपालो मयानां तारेत्याख्यां सोदधात् स्वान्वयस्य ।
युद्धे जित्वा दैवतेन्द्रं स तारस्तारस्याद्रौ स्वर्गसीम्नि न्युवास ॥१०॥
तारो यस्मिन्पर्वते स्वं निवासं कर्तुं राजा निर्म्ममे राजधानीम् ।
तारस्येति ख्यातिमागात्स शैलः शार्वे तीर्थेऽसौ महीसागरोदक् ॥११॥
वज्राङ्गस्यैतस्य तारस्य पुत्रो जज्ञे ख्यातस्तारकाख्यो वराङ्ग्याम् ।
पुत्रास्तस्याप्युद्बभूवुस्त्रयोऽग्र्या विद्युन्माली तारकाक्षोऽम्बुजाक्षः ॥१२॥
संप्रत्यैश्यामायिनर्नामतो यो देशस्तस्मिन् शार्विकं नाम तीर्थम् ।
आसीत्कूले यन्महीसागरस्य क्षेत्रं प्राहुस्तत्पुरा तारकस्य ॥१३॥
स्कान्दमहेश्वरखण्डे द्वाविंशे यः कुमारिकाध्याये ॥(२२) ॥
उक्तो महीसमुद्रस्तमिमं भूमध्यसागरं विद्यात् ॥१४॥

(४) तार नामक असुर के पुत्र तारक के विद्युन्माली, कमलाक्ष और तारकाक्ष नाम के तीन पुत्र

मय जाति के असुरों का वर्गपाल वज्रांग नाम का असुर हुआ, जिसने अपने वंश का नाम तार रखा, वह तार असुर युद्ध में देवेन्द्र को जीतकर स्वर्ग की सीमा में तार के पर्वत (तारस) पर निवास करने लगा ॥१०॥

उस राजा तार ने जिस पर्वत पर निवास करने के लिए अपनी राजधानी बनायी, वह पर्वत तारस्य पर्वत (तारस) के नाम से प्रसिद्ध हुआ, जो महीसागर (भूमध्य सागर) के उत्तर में शार्व नाम के तीर्थ पर स्थित है ॥११॥

इस वज्रांग तार के वराङ्गी नाम की (शोभनीय अंगों वाली) स्त्री से विद्युन्माली, तारकाक्ष और अम्बुजाक्ष नाम के तीन श्रेष्ठ वीर पुत्र उत्पन्न हुए ॥१२॥

आजकल एशिया माइनर नाम का जा देश है वहाँ शार्विक नाम का तीर्थ है। पुराकाल में महीसागर के किनारे का यह क्षेत्र तारक का क्षेत्र कहा जाता था ॥१३॥

स्कन्दपुराण के माहेश्वर खण्ड में बाईसवें कुमारिका अध्याय में जिस महीसमुद्र का उल्लेख किया गया है, वह इस भूमध्य सागर को ही जानना चाहिये ॥१४॥

सामनाम्ना मयेन दैवत्रैलोक्ये त्रिपुरनिर्म्माणम्।

५— तारः स्वर्गं जेतुकामोऽन्यमेकं शिल्पिश्रेष्ठं स व्यनैषीन्मयं प्राक्।
वज्राङ्गेणाभ्यर्थितो निर्म्ममेऽसौ त्रैलोक्यान्ते त्रीणि मायापुराणि ॥१५॥
नास्य त्रिपुरविधातुः स्मरन्ति नामेतिहासविदः।
मन्ये सामेत्याख्यां देशस्यैतस्य सामत्वात् ॥१६॥
पृथ्व्यामासीदायसी पूरथासीन्मध्ये लोके राजतीपूरमीषाम्।
सौवर्णी पूः स्वर्गलोके कृतोऽऽसीन्मायादुर्गास्ते त्रयोऽन्यैरजय्याः ॥१७॥
तूरस्याद्रेर्द्रक्षिणोपत्यकायां पृथ्व्यामासीदायसी पूरभेद्या।
सौवर्णी पूस्तारसे तारश्रृङ्गे दैवस्वर्गप्रातिकृत्येन क्लृप्ता ॥१८॥

(५) साम नामक मय द्वारा देवत्रिलोकी में त्रिपुर का निर्माण

स्वर्ग को जीतने की इच्छा से तार ने श्रेष्ठ शिल्पी मय को बुलाया। वज्रांग द्वारा प्रार्थना किये जाने पर इस मय ने त्रैलोक्य के अंत में तीन माया-नगरियों की रचना की ॥१५॥

इतिहासकार इस त्रिपुर का निर्माण करने वाले के संबंध में नहीं जानते हैं, परन्तु मैं मानता हूँ कि इसका नाम साम था और इसी के नाम से साम देश का नाम पड़ा है ॥१६॥

इस पृथ्वी पर आयसी (लोहे की) नगरी थी, मध्य में इनकी राजती (चांदी की) नगरी थी और स्वर्ग लोक में सौवर्णी (सोने की) नगरी बनायी गई। ये नगरियाँ माया के कारण अगम्य थीं और किसी के द्वारा जीती नहीं जा सकती थीं ॥१७॥*

पृथ्वी पर तूरस नाम के पर्वत की दक्षिणी तलहटी में यह अभेद्य लोहे की नगरी थी, तारस पर्वत की ऊंची चोटी पर स्वर्ण की नगरी थी, जो दैव-स्वर्ग की स्पर्धा में निर्मित की गई थी ॥१८॥

महीसागरकूले मध्यमा राजती पुरी।

६— तासामासीन्मध्यमा त्रैपुरीयं यामद्यत्वे प्राहुरेके त्रिपूलीम्।
भूमध्याब्धेः पूर्वकुलेऽन्तरिक्षे द्यावाभूमिस्पृक्पुरी राजती सा ॥१९॥
चतुस्त्रिंशोदगक्षांशे चतुर्विंशतिसाधिके। (३४-२८-उ.)
त्रिपुरी द्वादशोनेंऽशे षट्त्रिंशे ग्रीनवीचतः ॥२०॥ (३५-४८ उमू)
देशान्तरांशके चत्वारिंशे पञ्चकलोनके। (उज्जैनतः पश्चिमे।३९।५५॥)
उज्जयिन्याः पश्चिमतोऽस्त्यासुरी त्रिपुरी पुरी ॥२१॥

* पूर्व में जिस भौम त्रिलोकी का वर्णन किया गया है, उसी भौम त्रिलोकी के पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्गलोक में क्रमशः इन मायानगरियों की रचना की गई।

(६) भूमध्य सागर के किनारे राजती (चाँदी की) नाम की मध्यमा नगरी

इन दोनों नगरियों के बीच की यह (राजती) नगरी थी, जिसे आजकल त्रिपूली के नाम से कहा जाता है। द्युलोक और पृथ्वी लोक का स्पर्श करने वाली यह चाँदी की नगरी भूमध्य सागर के पूर्वी किनारे पर अंतरिक्ष में स्थित थी ॥१९ ॥

यह त्रिपुरी उज्जयिनी से ३४ अंश २४ कला उत्तर अक्षांश तथा ग्रीनवीच से छत्तीस अंश में बारह कला कम (३५ अंश ४८ कला) उत्तर अक्षांश तक स्थित है ॥२० ॥

यह आसुरी त्रिपुरी नाम की नगरी उज्जयिनी से पश्चिम में पाँच कला कम चालीस अंश (३९ अंश -५५ कला) देशान्तर पर स्थित है ॥२१ ॥

प्रतिपुष्यं मध्यमपुरे पञ्चत्रिंशेऽक्षांशे त्रिपुरसमागमः

७— पुर्य्यस्तिस्रोऽप्यन्तरिक्षेन्तरिक्षे पुष्ये पुष्येऽन्योन्यसंयोगमाप्ताः ।
एकीभूताः संभवन्ति स्म तस्मादेकाप्येषा त्रैपुरीति प्रसिद्धा ॥२२ ॥
चित्रं मध्या राजती सान्तरिक्षेऽप्यन्तर्भूम्यां लीयते गुह्यलक्ष्म्या ।
स्वैरं सद्यः सा निराधारमूर्ध्वं स्थातुं शक्याऽऽश्चर्य्यशिल्पप्रणीता ॥२३ ॥
तस्या एवोपह्वरे दक्षिणस्यामायस्यन्या संनिधत्ते क्वचित्पूः ॥
अन्या हैमी चोत्तरस्यामुपैतीत्याश्चर्य्यं तास्तिस्र एका पुरी स्यात् ॥२४ ॥
यस्मात्ताभिः पूर्भिरेका पुरीयं पुष्ये पुष्ये जायते तेन सैका ।
मध्यस्थैव स्यात् त्रिपुर्य्याख्ययोक्ता देवैरस्यां युद्धमासीत् त्रिपुर्य्याम् ॥२५ ॥
सेयं मुख्या त्रैपुरी नाम या पूस्तस्यामासीदम्बेजाक्षो मयः प्राक् ।
विद्युन्माली तारकाक्षोऽस्य दक्षे वामे पार्श्वे चोपपन्नौ सहायौ ॥२६ ॥

(७) प्रत्येक पुष्य नक्षत्र में ३५ अक्षांश पर बीच की पुरी में तीनों नगरियों का समागम

अन्तरिक्ष-अन्तरिक्ष में प्रत्येक पुष्य नक्षत्र के समय परस्पर एक दूसरे के साथ संयुक्त होकर ये तीनों नगरियाँ एक जगह एकत्रित होकर एक नगरी बन जाती थीं, इसलिये समूह के रूप में ये त्रिपुरी के नाम से प्रसिद्ध थीं ॥२२ ॥

आश्चर्य की बात थी कि मध्य में स्थित यह चाँदी की नगरी अंतरिक्ष में रहते हुए भी अपनी गुह्य लक्ष्मी विद्या (छिपने की विद्या) से पृथ्वी के अन्दर भी छिप जाती थी। यह नगरी आश्चर्यजनक कला से निर्मित थी कि शीघ्र ही स्वतंत्र रूप से निराधार रूप से आकाश में भी स्थित रह सकती थी ॥२३ ॥

उसी के समीप दक्षिण दिशा में कोई अन्य आयसी नगरी स्थित थी और उत्तर में स्वर्ण की नगरी थी। यह आश्चर्य की बात है कि ये तीनों नगरियाँ ही एक नगरी बन जाती थीं ॥२४ ॥

प्रत्येक पुष्य नक्षत्र में उन तीनों पुरियों से जो एक नगरी बनती थी, वही त्रिपुरी नाम से कही गई थी और यह मध्य में स्थित थी, देवताओं के साथ इसी त्रिपुरी में युद्ध हुआ था ॥२५ ॥

यह त्रैपुरी नाम की मुख्य नगरी थी, जिसमें अम्बुजाक्ष नाम का मय हुआ था, विद्युन्माली और तारकाक्ष इसके दायें और बायें सहायक के रूप में रहते थे ॥२६ ॥

तारसाद्रिश्रृङ्गे उत्तमा काञ्चनी पुरी

अस्यास्तूदक् पश्चिमे तारसाख्यो योऽद्रिस्तस्मिंस्तारकाख्यो मयोभूत् ।
कूटे हैमी तारकस्याभवत् पूः पामीराद्रेः पश्चिमे स्वर्गरूपा ॥२७ ॥
सप्तत्रिंशोत्तराऽक्षांशे तारसाख्योस्ति पर्वतः । (३९ ।२ ।उ.)
त्रयस्त्रिंशे पूर्वदेशान्तरांशे ग्रीनवीचतः ॥२८ ॥ (३३ ।० ।उ.)
त्रिचत्वारिंशदधिके द्वाचत्वारिंशभागके । (४२ ।४३)
उज्जयिन्याः पश्चिमतस्तारसस्तत्र सा पुरी ॥२९ ॥

(८) तारस पर्वत की चोटी पर काञ्चनी (स्वर्ण की) नाम की उत्तमा नगरी

इस (त्रिपुरी) के उत्तर पश्चिम में तारस नाम का जो पर्वत है, उसमें तारक नाम का मय हुआ है। पामीर पर्वत के पश्चिम में हैम-कूट पर्वत पर स्वर्ग के समान तारक की नगरी थी ॥२७ ॥

यह तारस नाम का पर्वत ३७ अंश उत्तर अक्षांश पर और ग्रीनवीच से ३३ अंश पूर्व देशान्तर पर स्थित है ॥२८ ॥

यह तारस नाम की पुरी उज्जयिनी से ४२ अंश ४३ कला पश्चिम की ओर स्थित है ॥२९ ॥

तूराद्रिदक्षिणोपत्यकायां प्रथमा आयसी पुरी।

मध्या येयं त्रैपुरी पूरसुर्य्या दिश्येतस्या दक्षिणस्यामदूरे।
पश्यामोऽन्यं पर्वतं तूरसंज्ञं लोका आहुर्यं सिनायीति नाम्ना ॥३० ॥
अष्टाविंशोदगक्षांशे सार्द्धेऽयं तूरपर्वतः । (२८ ।३० ।उ.)
चतुस्त्रिंशे दशोपेते पूर्व्यांशे ग्रीनवीचतः ॥३१ ॥ (३४ ।१० ।पू.)
त्रयस्त्रिंशत्कलाढ्यैकचत्वारिंशांशके स्थितः । (उज्जयिनीपश्चिमे) ४१ ।३३)
उज्जयिन्याः पश्चिमतः सिनायी तूरपर्वतः ॥३२ ॥

(९) तूर पर्वत की दक्षिणी तलहटी में आयसी (लौहे की) प्रथमा नगरी

मध्य में असुरों की जो यह त्रिपुरी नगरी थी, इसके निकट ही दक्षिण दिशा में तूर नाम का एक अन्य पर्वत दिखायी देता है, जिसे लोग सिनायि नाम से कहते हैं। ।३० ॥

यह तूर पर्वत साढ़े अट्ठाईस (२८-३०) उत्तर अक्षांश, तथा ग्रीनवीच से ३४ अंश और १० कला पूर्व देशान्तर पर स्थित है ॥३१ ॥

सिनायि तूरपर्वत उज्जयिनी से पश्चिम में ४१ अंश और ३३ कला पर स्थित है ॥३२ ॥

पुरत्रयाध्यक्षास्त्रयस्त्रिपुरासुराः ।

१०— विद्युन्माली तूरशैलेयपुर्य्यामेकोऽध्यक्षो वीर आसीत्पृथिव्याम् ।
मध्ये सिन्धूपह्वरे त्वम्बुजाक्षः सर्वाध्यक्षोऽन्यश्च सामो मयोऽस्मिन् ॥३३ ॥
स्वर्गे त्वासंस्तारसाद्रिस्थपुर्य्यां धीरास्तारस्तारकस्तारकाक्षः ।
मुख्याध्यक्षास्तासु पूःषु त्रयोऽमी विद्युन्माली तारकाक्षोऽम्बुजाक्षः ॥३४ ॥
काञ्चनं तारकाक्षस्य चित्रमासीन्महात्मनः ।
राजतं कमलाक्षस्य विद्युन्मालिन आयसम् ॥३५ ॥

इति भारते कर्णपर्वणि त्रयस्त्रिंशाध्यायोक्तेः ।

मात्स्ये सूक्तं तारकाक्षोऽधिराजः कार्ष्णायस्यां रौप्यमय्यामधीशः ।
विद्युन्माली, हैमपुर्य्यां मयोऽस्थाद् यद्वा सर्वाधीश्वराः सर्व एते ॥३५ ॥

(१०) तीनों त्रिपुरासुर तीनों पुरियों के अध्यक्ष

पृथ्वी पर तूर शैल की नगरी का एकमात्र अध्यक्ष विद्युन्माली था, जो अत्यन्त वीर था। मध्य में सिंधु नदी के समीप अन्तरिक्ष में अम्बुजाक्ष सर्वाध्यक्ष था और साम नाम का अन्य मय भी इसी में रहता था ॥३३ ॥

स्वर्ग में तारस पर्वत पर स्थित नगरी में तारस, तारक और तारकाक्ष नाम के वीर थे। इसी प्रकार इन तीनों नगरियों के ये विद्युन्माली, तारकाक्ष व अम्बुजाक्ष तीनों ही मुख्य अध्यक्ष थे ॥३४ ॥

श्रेष्ठ वीर तारकाक्ष की स्वर्णमयी विचित्र नगरी थी। कमलाक्ष की चाँदी की नगरी और विद्युन्माली की लौह नगरी थी ॥३५ ॥

इस प्रकार महाभारत के कर्ण पर्व में तेतीसवें अध्याय में उपर्युक्त प्रकार से वर्णन किया गया है।

मत्स्य पुराण में स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है कि काले लोहे की नगरी में मुख्य अध्यक्ष तारकाक्ष था, चांदी की नगरी का अधीश्वर विद्युन्माली और स्वर्ण नगरी का स्वामी मय नाम का असुर था। अथवा ये सभी सब नगरियों के अधीश्वर थे ॥३५ ॥

पुरत्रयस्य देशान्तरसंचारित्वम् ।

११— अन्तर्भूम्योऽन्तश्छदिभित्तयो वा शालाः सर्वा आयसैर्लोहपुर्य्याम् ।
हैम्यां हैमै राजतै रौप्यमय्यां पट्टैः क्लृप्ता आशुयोज्यैर्वियोज्यैः ॥३६ ॥
सर्वैरेतैरुद्धतैर्धातुपट्टैरेताः पुर्य्यो यत्र तत्रोपनेतुम् ।
शक्यन्ते स्मानेकधात्वं च नेतुं युद्धे वीरैरप्रधृष्या अभेद्याः ॥३७ ॥
पुष्ये पुष्ये चान्तरीक्षे त्रिपुर्य्यां विद्युन्माली स्वां पुरीं भूमिलोकात् ।
स्वर्गाल्लोकात् तारकाक्षः पुरीं स्वां नीत्वैकस्यां पुर्य्यवस्थानामेताम् ॥३८ ॥

ये वा भौमा आन्तरिक्ष्याश्च दिव्याः सर्वे वीराः संघशो ध्वंसयेयुः ।
सर्वैर्वीर्य्यैरेकहेलाप्रवृत्ताः न स्यादासामण्वपि क्वापि वृक्णम् ॥३९ ॥

(११) पुरत्रय का अन्य स्थान पर विचरण करना

आयसी नगरी में सभी कक्षा अथवा प्रकोष्ठ की अन्दर की भूमि (आँगन), अन्दर की छत और दीवारें सभी लोहनिर्मित थीं। स्वर्णपुरी में ये सभी स्वर्णनिर्मित पट्टों से और राजतीपुरी में चाँदी से निर्मित पट्टों से बनाये गये थे जो कि तुरन्त जोड़े और अलग किये जा सकते थे ॥३६ ॥

इन सभी उखाड़े जाने वाले पट्टों से निर्मित ये नगरियाँ अनेक प्रकार से इधर उधर लायी व ले जायी जा सकती थीं और युद्ध में वीरों के द्वारा अभेद्य थीं और नष्ट नहीं की जा सकती थी ॥३७ ॥

प्रत्येक पुष्य नक्षत्र में अन्तरिक्ष में स्थित इस एक त्रिपुरी में विद्युन्माली अपनी नगरी को भूलोक से, तारकाक्ष अपनी नगरी को स्वर्ग लोक से लाकर स्थापित कर देते थे ॥३८ ॥

अथवा जो भी कोई पार्थिव, आन्तरिक्ष अथवा दिव्य वीर थे, वे सभी एक साथ अपने सम्पूर्ण पराक्रम से चेष्टा करते हुए भी इन नगरियों का ध्वंस करें तब भी इनकी अणुमात्र भी क्षति नहीं होती थी ॥३९ ॥

त्रिपुरस्य त्रिदुर्गतया तत्प्रजानामवीरत्वाभावः ।

१२— आसन्नासु प्रायशो ये युवानो ये वा वृद्धा बालकाः याः स्त्रियो वा ।
योद्धारस्ते सर्वदा योद्धुकामा वाणिज्यार्थे शौर्यमेवात्र पण्यम् ॥४० ॥
नार्हन्त्येषामन्यदेशीयलोकाः पूर्दुर्गाणां गोपुरान्तः प्रवेशम् ।
अन्तस्तेषां राजमार्गे प्रतोल्यां बेत्याखड्गस्येव धारावगाहः ॥४१ ॥

(१२) त्रिपुर के तीन दुर्गों के कारण उसकी प्रजा में कायरता का अभाव

इन त्रिपुरों में प्रायः जो युवक, जो वृद्ध, बालक अथवा स्त्रियाँ थीं वे सभी युद्धप्रवीण थे, सदैव वाणिज्य के लिये युद्ध करने वाले थे और शौर्य ही इनकी विक्रयसामग्री थी ॥४० ॥

इन नगरदुर्गों के प्रवेशद्वार में अन्य देश के लोग प्रवेश नहीं कर सकते थे। इनके राजमार्ग अथवा गलियों में प्रवेश करना तलवार की धार पर चलने के समान था ॥४१ ॥

पुरत्रयभङ्गहेतुश्छिद्रम् ।

१३— आसीत् त्वासां छित्तये छिद्रमेकं यस्मिन्काले जायते पुष्ययोगः ।
तस्मिन्काले तिस्र एतास्तु पुर्य्यः संयुक्ताः स्युस्तत्र चैकापुरी स्यात् ॥४२ ॥
तस्मिन्पुष्ये वीर एकः पुरीस्तास्तिस्रोऽप्येकेनेषुणाऽवारपारम् ।
भेत्तुं सद्यः शकनुयाच्चेत् ततस्ता विध्वस्ताः स्युर्नान्यथा ध्वंस आसाम् ॥४३ ॥

देवा एतद् ध्वंसनोद्योगिनोऽपि च्छिद्राज्ञानान्नात्र शक्ता बभूवुः।
इन्द्रं तारस्तारकस्त्वेष विष्णुं युद्धे सार्द्धं सर्वदेवैर्न्यगृह्णात् ॥४४॥

(१३) तीनों नगरियों के नष्ट करने का कारणभूत उपाय

इन नगरियों को नष्ट करने का एक उपाय था। जिस समय पुष्ययोग बनता था, उस समय ये तीनों नगरियाँ एकत्रित होकर एक नगरी बन जाती थीं ॥४२॥

यदि उस पुष्यकाल में एक वीर उन तीनों नगरियों को एक ही बाण से आर-पार भेद सके तो वे नष्ट हो सकती थीं अन्यथा इनका विनाश नहीं हो सकता था ॥४३॥

देवगण इनका विनाश करने में प्रयत्नशील होते हुए भी छिद्रज्ञान (उपाय) के अभाव में समर्थ नहीं हुए। युद्ध में तार असुर ने इन्द्र को और तारक ने विष्णु को समस्त देवताओं के साथ बंदी बना लिया ॥४४॥

त्रिपुरस्याजेयत्वादसुराणां स्वर्गविजये ब्रह्मविष्टपस्य तातार-तूरानादिनामभिर्व्यपदेशः

१४— तारास्तूरैः साकमेकीभवन्तो देवान् जित्वा संनिवेशं स्वमापुः।
ते तं देशं तारतूरेति नाम्ना ख्यातं चक्रुश्चोभयेषां स देशः ॥४५॥
तारतुरस्तारतरस्तातारः सः क्रमात् प्रसिद्धोऽभूत्।
तूरास्तत्र तुरुष्कास्तुर्कीतूरांश्च तत्प्रान्ताः ॥४६॥
स्वर्गे त्रिविष्टिपेऽस्मिन् यावदिव ब्रह्मविष्टपं प्रथितम्।
तत्तूरानिति कथितं संप्रति तातारदेशश्च ॥४७॥
तारोऽत्युच्चः पृथ्व्यां यो देशः सर्वथोच्चतर आसीत्।
तारतरः स प्रथितस्तातारं तं विदुर्म्लेच्छाः ॥४८॥
तातारोऽयं दिव्यलोकः पुरासीद् देवान् जित्वा तत्र चोषुस्तुरुष्काः।
चीनात् प्रत्यक् प्राग् महीसागरान्तात् तारैस्तूरैर्देश आक्रान्त एषः ॥४९॥
तारासुरवंशधरैस्तारातम्बोलनाम्नेयम्।
नगरी विनिर्म्मिता प्राक् साद्यापि तु राजधान्यस्ति ॥५०॥
प्राग्मेरुर्यो ब्राह्मो देशः पामीर उच्यतेऽद्यत्वे।
तत्रेदानीं म्लेच्छा वसन्ति देवानितो विनिष्कास्य ॥५१॥
यः प्राक् सुमेरुखण्डः स समरकन्दोऽथ तक्षखण्डो यः।
यश्चार्य्यखण्ड आसीत् स तासकन्दश्च यारकन्दश्च ॥५२॥
मन्दरगिरिर्य आसीद् विलूरतागः स कथ्यतेऽद्यत्वे।
यः श्रृङ्गवान् गिरिः प्रागलतायीत्युच्यते सोऽद्य ॥५३॥
इनशान् खिनधान् शैलः शैलोऽन्यो यावलोनोई।
विरखोईयनस्कोई, स्तानोवोईति माल्यवच्छाखाः ॥
यो गन्धमादनाद्रिः पश्चिमसीमैशियाभूमेः।

अद्यत्वे तं शैलं लोका यूरालनाम्नाऽऽहुः ॥
इत्थं तारास्तूरा अप्रथयन्नत्र तातारे।
शेषाणां तु मयानां मयसोपोटेमियादेशः ॥
आसुरवर्ग उपोत्तमनाम्ना संभाव्यते पुरा कश्चित्।
तत्सहवासादुक्तो मयसोपोत्तम इति ब्रूमः ॥

(१४) त्रिपुर के अजेय होने के कारण असुरों की स्वर्ग पर विजय होने पर ब्रह्म-विष्टप का तातार-तूरान आदि नामों में परिवर्तन

तार जाति के असुर. तूरों के साथ मिलकर देवों को जीतकर अपने निवास स्थान पर आ गये। वह देश इन दोनों का देश था, इसलिये उन्होंने उसको तार तूर नाम से प्रसिद्ध कर दिया ॥४५ ॥

यह देश तार तूर, तारतर और तातार नाम से क्रमशः प्रसिद्ध हुआ। वे लोग तूर और तुरूष्क थे, उनके प्रान्त क्रमशः तूरान और तुर्की थे ॥४६ ॥

इस स्वर्ग त्रिविष्टप में जितना भाग ब्रह्मविष्टप के नाम से प्रसिद्ध था, वह तूरान नाम से कहा गया जो आजकल तातार देश कहा जाता है ॥४७ ॥

जो स्थान पृथ्वी पर अत्यन्त ऊँचा था वह तार है, और जो उससे भी ऊँचा (सर्वोच्च) प्रदेश था, वह तारतार के नाम से प्रसिद्ध हुआ, जिसे म्लेच्छ लोग तातार के नाम से जानते हैं ॥४८ ॥

प्राचीनकाल में यह तातार नाम का दिव्य लोक था, जहाँ तुरुष्क लोग देवताओं को जीतकर निवास करने लगे। चीन से पश्चिम, भूमध्य सागर से पूर्व तक का यह देश तार और तूर लोगों के द्वारा अधिकार में ले लिया गया ॥४९ ॥

प्राचीन समय में तारासुर के वंशजों द्वारा तारा तम्बोल नाम की यह नगरी बनायी गई, जो आज भी राजधानी है ॥५० ॥

प्राग्मेरु नाम का जो ब्राह्म देश है वह आजकल पामीर कहा जाता है, जहाँ से देवताओं को निकालकर आजकल म्लेच्छ लोग निवास करते हैं ॥५१ ॥

जो पहले सुमेरुखण्ड था, वह समरकन्द है और जो तक्षखण्ड था वह ताशकन्द तथा आर्यखण्ड आजकल यारकन्द कहा जाता है ॥५२ ॥

पहले जो मन्दर नाम का पर्वत था वह आजकल विलूरताग कहा जाता है, और जो श्रृंगवान् गिरि था, वह वर्तमान में अलताघि नाम से कहा जाता है ॥५३ ॥

इनशान्, खिनघान पर्वत और दूसरे यावलोनोई, विरखोई, यनस्कोई और स्तानोबोई पर्वत माल्यवान् पर्वत की शाखायें हैं। एशिया भूमि की पश्चिमी सीमा पर जो गन्धमादन नाम का पर्वत था उसे आजकल लोग यूराल नाम से कहते हैं।

इस प्रकार तातार देश में तार और तूर प्रसिद्ध हुए। शेष मय असुरों का देश मय-सोपोटेमिया देश था।

सम्भवतः प्राचीन समय में कोई उपोत्तम नाम की असुरों की एक जातिविशेष थी। उसके सहवास के कारण मयसोपोत्तम नाम से कहते हैं।

पश्चिमभारतेऽप्यसुरप्रवेशः।

१५— कालकदौर्हृदमौर्य्याद्यसुरविभागास्तु यत्र देशेऽस्थुः।
सोऽसीरियाप्रदेशः कैलडिया कालकेयानाम्॥
अन्यान्यराजसमये मेशोपोटेमिया इराको वा।
प्रथितः स एव देशो मयराष्ट्रं सामदेशस्तु।

(१५) पश्चिम भारत में भी असुरों का प्रवेश

कालक, दौर्हद, मौर्य इत्यादि असुरों की जातियाँ जिस स्थान में निवास करती थीं, वह असीरिया प्रदेश था और कालकेय जाति के असुरों का देश कैलडिया प्रदेश था। अन्यान्य राजाओं के समय में मेसोपोटेमिया और ईराक देश प्रसिद्ध हुए और वही देश मयराष्ट्र अथवा साम देश कहलाता है॥५४॥

देवैरुपसन्नामकपुरत्रयनिर्म्माणम्।

१६— इत्थं स्वर्गे चान्तरिक्षे च पृथ्व्यां काँश्चिद्देशान् देवतादायभूतान्।
धृष्टैरुग्रैश्चासुरैः संगृहीतान् दृष्ट्वा देवा व्यग्रचित्ता बभूवुः॥५५॥
विद्युन्माली तारकाक्षोऽम्बुजाक्षः सामस्तारस्तारकः षड्भिरेतैः।
आर्तान्देवान् रक्षितुं देवमुख्या दुर्गांश्चक्रुश्चोपसन्नामकाँस्त्रीन्॥५६॥
पृथ्व्यामग्निः सोम एषोऽन्तरिक्षे विष्णुः स्वर्गे चोपसत्स्वध्यवात्सुः।
ताँस्त्रीन् देवाश्चासुराः षड्मयाँस्तानाश्रित्य प्राग् घोरमामर्द्दमापुः॥५७॥

(१६) देवताओं द्वारा उपसत् नाम के पुरत्रय का निर्माण

इस प्रकार स्वर्ग, अंतरिक्ष और पृथ्वी पर देवताओं के भागधेय कुछ देशों को अविनीत और दुस्साहसी असुरों के द्वारा अधिगृहीत देखकर देवता व्याकुल हो गये॥५५॥

विद्युन्माली, तारकाक्ष, अम्बुजाक्ष, साम, तार और तारक इन छः असुरों के द्वारा पीड़ित देवताओं की रक्षा के लिये प्रमुख देवों ने उपसत् नाम के तीन दुर्गों का निर्माण किया॥५६॥

पृथ्वी पर अग्नि, अंतरिक्ष में सोम और स्वर्ग में विष्णु उन उपसतों में निवास करने लगे। देवता लोगों ने उन तीनों देवों का और असुरों ने उन छः मय असुरों का आश्रय लेकर परस्पर घोर युद्ध किया॥५७॥

त्र्यम्बकेण त्रिपुरध्वंसः।

१७— पश्चाच्छंभुः किञ्चिदुग्रं विचित्रं ब्रह्माण्डाभं स्यन्दनं कारयित्वा।
तत्रारूढः खेचरे खेचरेऽहन् दैत्यानेतान् पूस्त्रये युध्यमानान्॥५८॥
घोरं युध्वा नन्दिना दैत्यराजो विद्युन्माली वज्रतो निर्हतोऽभूत्।

दृष्ट्वा घोरामापदं तां मयोऽसौ वापीमस्यां मायया निर्मिमाय ॥५९ ॥
मृतसंजीवनीं वापीं तारकाक्षसुतो हरिः ।
विनिर्ममेऽमृतमयीं यो मज्जति स जीवति ॥६० ॥
देवैर्युद्धे हन्यमानान् विपन्नान् वाप्यां स्नातान् जीवयामास भूयः ।
विद्युन्माली यो गतेऽह्नि प्रमीतः सोप्यन्येद्युर्योधयामास देवान् ॥६१ ॥
युद्धेऽमीषां निर्हतानां मृतानां वाप्यां स्नातान्नित्यमुत्थानमित्थम् ।
दृष्ट्वा देवाश्चिन्तया व्यग्रचित्ता विष्णुं वापीध्वंसहेतुं व्यजानन् ॥६२ ॥
विष्णुः कृत्वा वार्षभं रूपमुग्रं मायावापीं तां जगाम त्रिपुर्य्याम् ।
वापीबालाँश्चासुरान्मर्द्दयित्वा वापीं पीत्वा नर्द्दयन्नाजगाम ॥६३ ॥
वापीध्वंसाद् ध्वंसितोत्साहवीर्य्याः सर्वेभूवंस्त्रैपुरा दैत्यधीराः ।
मत्वा तत्रोपस्थितामापदं स्वां रक्षार्थं ते युद्धभूमेः परायन् ॥६४ ॥
तेऽपक्रान्ता निन्युरेतां पुरीं स्वामूर्ध्वाकाशे द्राग् महीसागरस्य ।
तत्रैवागाच्छाम्भवं पृष्ठलग्नं तूर्णं दिव्यं स्यन्दनं सैन्ययुक्तम् ॥६५ ॥
दिव्याश्चर्य्यं निर्म्मितं शिल्पिदेवैरारुह्योग्रोऽत्युग्रकर्म्मा रथाग्र्यम् ।
खस्थं शम्भुः खस्थितायां त्रिपुर्य्यां तांस्तान् वीरान् युध्यतो निर्जघान ॥६६ ॥
अत्याश्चर्य्यं खे चरन्तीः पुरीस्ता बाणेनैकेनाभिनत् पुष्ययोगे ।
पुर्य्योऽभूवँस्ता महीसागरेन्तर्मग्नाः भग्नाः पातिताः खण्डखण्डैः ॥६७ ॥
पश्चादग्निर्दाहयामास भूयो हर्म्याण्येषामासुराणां पुराणाम् ।
तत्प्राकारा दग्धदग्धैरंगारैः सार्धं सिन्धौ प्रस्फुटद्भिर्निपेतुः ॥६८ ॥
विद्युन्माली नन्दिना निर्हतोऽभून्निष्प्राणेऽस्मिंस्तेसुरा क्लैव्यमापुः ।
रक्षायास्तेऽन्यानुपायानदृष्ट्वा निस्तारार्थं तारमेवाभिजग्मुः ॥६९ ॥
तारो वीरः पुत्रपौत्रैः समेतो यावच्छक्यं युध्यमानः स पश्चाद् ।
दृष्टोत्साहभ्रंशमात्मीयसैन्ये भग्नाशः सन् युद्धतोऽस्माविरेमे ॥७० ॥

(१७) शिव द्वारा त्रिपुर-संहार

तत्पश्चात् भगवान् शिव ने कुछ ऊंचे, शक्तिशाली, विचित्र और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में देदीप्यमान, रथ का निर्माण करवाकर, उस पर आरूढ होकर त्रिपुर में युद्ध करते हुए इन दैत्यों को आकाश ही आकाश में (ऊपर-ऊपर ही) विचरण करते हुए मार दिया ॥५८ ॥

घोर युद्ध करके शिवगण नन्दी ने दैत्यराज विद्युन्माली का संहार किया। इस घोर आपत्ति को देखकर मय असुर ने माया से एक वापी का निर्माण किया ॥५९ ॥

तारकाक्ष के पुत्र हरि ने मृतसंजीवनी (मृत को पुनर्जीवित करने वाली), अमृतमयी वापी बनाई, इसमें जो व्यक्ति डुबकी लगाता है, वही पुनर्जीवित हो जाता है ॥६० ॥

युद्ध में देवताओं के द्वारा मरे गये घायल, वापी में स्नान किये हुए दैत्यों को पुनर्जीवित कर दिया। जो पिछले दिन मारा जाता, वह भी दूसरे दिन देवताओं से युद्ध करने लग जाता था ॥६१ ॥

युद्ध में मरे हुए इन असुरों को वापी में स्नान करके इस प्रकार पुनर्जीवित होते हुए देखकर चिन्ता से व्याकुल चित्त हुए और घबराते हुए देवों ने विष्णु को इस वापी का विध्वंस करने के लिये समर्थ जाना ॥६२ ॥

विष्णु ने अत्यन्त भयानक वृषभ का रूप बनाया और उस मायामयी बावड़ी के पास गये और उस वापी के रक्षक असुरों को मारकर बावड़ी के जल को पूर्णरूप से पीकर नृत्य करते हुए वापस आ गये ॥६३ ॥

वापी के नष्ट हो जाने से जिनका उत्साह और पराक्रम नष्ट हो गया, ऐसे त्रिपुर के समस्त दैत्य वीरों ने वहाँ आयी हुई आपत्ति को देखकर अपनी रक्षा के लिये युद्धभूमि से पलायन कर लिया ॥६४ ॥

भागते हुए वे दैत्य शीघ्रता से अपनी इस त्रिपुरी को महीसागर (मध्य सागर) के ऊपर आकाश में ले गये। और भगवान् शिव का वह द्रुतगामी दिव्य रथ भी अपनी सेना सहित उस त्रिपुरी के पीछ-पीछे चला गया ॥६५ ॥

भगवान् शिव ने शिल्प कला प्रवीण देवताओं के द्वारा निर्मित आश्चर्यपूर्ण और कठिन से कठिन कार्य को करने वाले आकाशस्थित इस श्रेष्ठ रथ पर आरूढ होकर अंतरिक्ष में स्थित त्रिपुरी में युद्ध करते हुए समस्त दैत्यों का संहार कर दिया ॥६६ ॥

अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि आकाश में विचरण करती हुई वह नगरी पुष्ययोग में एक ही बाण से भेद दी गई और वह नगरी नष्ट होकर खण्ड खण्ड में गिर गई और भूमध्य सागर में डूब गई ।६७ ॥

तत्पश्चात् अग्नि ने इन असुरों की नगरी के भवनों को जला दिया, और इस नगरी के परकोटे धधकते हुए अंगारों के साथ टूट टूट कर समुद्र में गिर गये ॥६८ ॥

विद्युन्माली शिवगण नन्दी द्वारा मारा गया और उसके निष्प्राण हो जाने पर वे सभी दैत्य विकल हो गए। रक्षा का अन्य कोई उपाय न देखकर उस आपत्ति के निराकरण के लिये वे असुर लोग तार के पास गये ॥६९ ॥

तब उस तार वीर ने अपने समस्त पुत्र पौत्रों के साथ जब तक शक्ति थी तब तक युद्ध किया। परन्तु बाद में अपनी सेना में उत्साह नष्ट होता हुआ देखखर निराश होकर इस युद्ध से दूर हट गया ॥७० ॥

महीसागरोपरिष्टात् त्रिपुरासुरपलायनम्।

१८— आदायैकं स्वं गृहं सोऽपसृप्तोपक्रान्तोऽभूत् क्वाप्यविज्ञातदेशे।
त्यक्त्वा पूर्वोदक् प्रदेशान् स दैवान्नैर्ऋत्येऽन्तेगान्महीसागरस्य ॥७१ ॥
मिश्रे देशे नीलनद्याः परस्तादन्याप्येका दृश्यते पूस्त्रिपूली।
मन्येऽनैषीद् भग्नशेषामिहैतां तत्स्मृत्यर्थं निर्ममेऽन्यां त्रिपूलीम् ॥७२ ॥
भूमध्यसागरस्य प्राक् तटवद्दक्षिणेऽपि तटे।
एकत्रिंशेऽक्षांशे त्रयोदशे ग्रीनवीचांशे ॥७३ ॥
नष्टा यैषाऽभूत् त्रिपूली पुरीयं तस्याः स्थाने निर्मिताऽन्या त्रिपूली।
इत्येकस्या अद्भुतायास्त्रिपूल्या ध्वंसात् पश्चाद् द्वे त्रिपूल्यावभूताम् ॥७४ ॥
इत्थं शर्वः सर्वमेषां मयानां राष्ट्रं जित्वा संन्यच्छत् सुरेभ्यः।
यः प्रागासीत् सामदेशः स पश्चाद्देवाक्रान्तः सीरियेति श्रुतोऽभूत् ॥

(१८) महीसागर से त्रिपुरासुर का पलायन

अपने एक घर को लेकर वह त्रिपुरासुर गुप्त रूप से किसी अज्ञात स्थान पर पलायन कर गया। वह पूर्वोत्तर प्रदेशों को छोड़कर दैवयोग से भूमध्य सागर की नैर्ऋत्यदिशा में चला गया ॥७१ ॥

मिश्र देश में नील नद्री के पार एक और भी त्रिपुली नाम की नगरी दिखायी देती है। मैं मानता हूँ कि वे लोग उस भग्नशेष त्रिपुरी को यहाँ लाये थे और उसकी स्मृति में उन्होंने एक दूसरी ही त्रिपुली का निर्माण कर लिया ॥७२ ॥

भूमध्य सागर के पूर्वी किनारे की तरह ही दक्षिणी किनारे पर भी ३१ अक्षांश तथा ग्रीनवीच से १३ अक्षांश पर जो यह त्रिपूली नाम की पुरी नष्ट हुई थी, उसके स्थान पर अन्य त्रिपूली बनादी गई। इस एक विचित्र त्रिपूली के नष्ट हो जाने के पश्चात् दो त्रिपूलियाँ बन गईं ॥७३-७४ ॥

इस प्रकार शिव ने इन समस्त मय दानवों के राष्ट्र को जीतकर देवताओं को सौंप दिया। जो पहले साम देश था वह बाद में पराजित होकर सीरिया के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

तारकासुरसंग्रामः।

१९— तस्मिन् पश्चात्तारकोऽभ्येत्य भूयो युद्धं चक्रे तत्र बालः कुमारः।
क्षात्रे वीर्य्ये पूर्णमात्रेऽभिषिक्तः पूर्णोत्साहोऽयोधयत् तारकं तम् ॥७५ ॥
१ २ ३ ४ ५ ६ ७
जम्भक, जम्भ, कुजम्भा, कुञ्जर, महिषौ, च मेघ, शुम्भौ, च।
८ ९ १०
निमि, कालनेमि, मथनास्तारकसेनासु नायकास्तु दश ॥७६ ॥

१ २ ३ ४ ५ ६
श्रृङ्गी, भृङ्गी, नन्दी, नन्दीशः, शङ्कु कर्ण, रिटी।
७ ८ ९ १०
तुण्डी, शाख, विशाखौ, स्कन्दः स्कन्दस्य नायकाः सैन्ये ॥७७॥
शिशुरप्येष कुमारः स्कन्दोऽभ्यस्कन्दयन्महाप्रबलम्।
तारकमेतं पश्चात् सर्वेऽप्यसुरा दिशो जग्मुः ॥७८॥

(१९) तारकासुर संग्राम

तत्पश्चात् तारकासुर ने आकर अनेक बार युद्ध किया और जिसको क्षात्र-वीर्य (सेनापतित्व) में पूर्ण रूप से अभिषिक्त किया गया था, ऐसे बालक कार्तिकेय ने अत्यन्त उत्साह से उस तारकासुर को युद्ध में हराया ॥७५॥

तारकासुर की सेना मे जम्भक, जम्भ, कुजम्भा, कुंजर, महिष, मेद्य, शुम्भ, निभि, कालनेमि और मथन नाम के सेनानायक थे ॥७६॥

इसी प्रकार स्कन्द की सेना में श्रृंगी, भृंगी, नन्दी, नन्दीश, शंकु कर्ण, रिटी, तुण्डी, शाख, विशाख और स्कन्द नाम के सेनानायक थे ॥७७॥

बालक होते हुए भी इस कुमार स्कन्द ने अत्यन्त बलशाली उस तारकासुर को उछाल दिया, फिर समस्त असुर भी दिशाओं के अन्त में चले गये ॥७८॥

असुरराजविध्वंसेऽप्यसुरप्रजाविध्वंसाभावः।

२०— देवा यद्यपि विजयं प्राप्तास्त्रिपुरासुरान् हत्वा।
न तथाप्यसुरविशस्ता इलावृतान्निर्हरन्ति स्म ॥७९॥
असुराक्रमणे देवानासुरधर्मेषु दीक्षयांचक्रुः।
तेन न संप्रति देवा दृश्यन्तेऽभ्रश्यत स्वर्गः ॥८०॥

(२०) असुरराज का विनाश होने पर भी असुरप्रजा के विनाश का अभाव

यद्यपि त्रिपुरासुरों को मार कर देवताओं ने विजय प्राप्त करली, तथापि अशिष्ट असुर लोगों का इलावृत से उन्मूलन नहीं हुआ ॥७९॥

असुरों के आक्रमण में देवताओं को आसुर धर्म में दीक्षित कर दिया गया, इसीलिये अब स्वर्ग नष्ट हो गया और देवता दिखाई नहीं देते हैं ॥८०॥

प्रकरणोपसंहारः

२१— इत्थं भूमावन्तरिक्षे दिवि प्राग् देवद्विड्भिः स्थापिता या नगर्य्यः।
तासां भूमावायसी पूरियं भूमध्याद्व्यन्तं भारतं सुव्यनक्ति ॥८१॥
भूमिः पृथ्वी मानुषो लोक उक्तो मर्त्यं लोकं भारतं वर्षमाहुः।

मर्त्ये लोके सा महीसागरप्राक्कूले भूमावायसी पूः प्रसिद्धा ॥८२ ॥
आद्वात्रिंशाक्षांशतोऽर्वाक् प्रदेशः पृथ्वीलोको मर्त्यलोको निरुक्तः ।
सप्तत्रिंशादुत्तरः स्वर्गलोको द्यावाभूम्योरन्तरे त्वन्तरिक्षम् ॥८३ ॥
पृथ्वीलोकं भारतं प्राहुरार्य्या लोकाध्यक्षत्वेन यत्राग्निरासीत् ।
तत्रैवासीदायसी पूस्ततो भूमध्याब्ध्यन्तं भारतं भावयामः ॥८४ ॥

इति भारतवर्षस्य महीसागरान्तत्वे दशमं प्रमाणम्

(२१) प्रकरण का उपसंहार

इस प्रकार भूमि, अंतरिक्ष और स्वर्ग में देवविरोधियों द्वारा पहले जो नगरियाँ स्थापित की गई थीं उनमें से पृथ्वी पर यह आयसीपुरी भारतवर्ष को भूमध्यसागर पर्यन्त सिद्ध करती है ॥८१ ॥

इस भारतवर्ष को भूमि, पृथ्वी, मनुष्य और मर्त्यलोक कहा गया है। इस मर्त्यलोक में वह आयसी नगरी भूमध्य सागर के पूर्वी तट पर प्रसिद्ध थी ॥८२ ॥

बत्तीस अक्षांश (३२ अंश) से पहले का प्रदेश पृथ्वीलोक है और वह मर्त्यलोक कहा गया है। सैंतीस डिग्री उत्तर अक्षांश पर स्वर्गलोक तथा द्युलोक और पृथ्वीलोक के बीच का भाग अन्तरिक्ष लोक है ॥८३ ॥

आर्यों ने भारत को पृथ्वीलोक कहा है, जहाँ का लोकाध्यक्ष अग्नि था और वहीं पर आयसी नगरी थी। इसलिये इस भूमध्य सागर के अंत तक के प्रदेश को भारतवर्ष के रूप में जानते हैं ॥८४ ॥

भारतवर्ष का भूमध्यसागर पर्यन्त होना दसवाँ प्रमाण समाप्त ॥१० ॥

नवानां भारतीयद्वीपानां मध्ये हिन्दुस्तानस्य नवमं कुमारिकाद्वीपत्वाख्यानं भारतवर्षस्य हिन्दुस्तानमात्रपर्य्यवसायित्वाभावे एकादशं प्रमाणम् ॥११ ॥

अस्य भारतवर्षस्य दक्षिणोत्तरतः सहस्रयोजनत्वं भुवनकोशे निर्दिश्यते यथा मात्स्ये (११४)

"योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः ।
आयतस्तु कुमारीतो गङ्गायाः प्रवहावधिः" ॥इति ॥

मार्कण्डेयेपि — "योजनानां सहस्रं वै द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरम्" ।इति। अत्र योजनशब्दः क्रोशपरतया नेयः। तथा हि कुमारीशब्दः सिहलद्वीपेऽपि वर्तते, स्कान्दे माहेश्वरखण्डीयकुमारिकाऽऽख्यानात्तथावगमात् सिंहलद्वीपश्चत्वारिंशदधिकसप्तमेंऽशे संनिविष्ट इति सोऽवधिर्दक्षिणो भाव्यः.। गङ्गाप्रवाहारम्भस्तु षट्त्रिंशेऽक्षांशे। तथा च तयोरन्तरं साधिका अष्टाविंशत्यंशाः स्युः। एकैकश्चाक्षांशो मीलतृतीयां- शो-

पेतैरूनसप्ततिमीलैः (६९ $\frac{1}{3}$) सम्पद्यते। तेषामष्टाविंशतिगुणत्वे मीलानां द्विसहस्रप्रायतया तावानस्य दक्षिणोत्तरायामो निष्कृष्यते। मीलशब्दश्चार्द्धक्रोशकल्पे पथि निरूढः। तेन सहस्रक्रो-शता सिद्धा। एतच्च मानं सिन्धोः पश्चिमतोऽपि लोहितसागर-पर्य्यन्तमुपनीयते। मेशापोटेमियाप्रदेशस्यापि षट्त्रिंशदक्षांशप्रायत्वात्। यत्तु ब्राह्मादिषु

"उत्तरेण समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणे।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र संततिः ॥१॥

(ब्राह्मे०१७अ० १ श्लो०)

यच्च मात्स्यादिषु—

"तिर्य्यगूर्ध्वं तु विस्तीर्णः सहस्राणि दशैव तु।"

इति निर्दिश्यते तत्र कालदोषाल्लेखप्रमादात् पाठभ्रमः संभाव्यते। दशसहस्रसंख्यायाः सर्वथा प्रत्यक्षविरुद्धत्वात् पूर्वापरस्वोक्तिविरोधाच्च। अथवा वर्गात्मकक्रोशानामयमुल्लेखः संभाव्यते। तथा च पूर्वपश्चिमतो नवत्यंशतया साधिकत्रिसहस्रक्रोशमितं दक्षिणोत्तरतस्तु साधिकाष्टाविंशत्यंशतया सहस्रक्रोशमितं चेदं भारतवर्षमिति स्थितम्। यदि तु निरक्षदेशाद् व्यवतिष्ठते। तदा षट्त्रिंशदंशतया ततोऽप्यधिकं दक्षिणोत्तरायामः सिध्यतीत्यूह्यम्।

इति एकादशं प्रमाणम् ॥११॥

(११) भारतवर्ष के जो नौ उपद्वीप बताये गये हैं, उनमें नवाँ द्वीप कुमारी द्वीप है, ऐसा कहने से हिन्दुस्तान मात्र को भारत का पर्याय मानने का खण्डन होना ग्यारहवाँ प्रमाण ॥११॥

भुवनकोश में यह भारतवर्ष दक्षिण से उत्तर एक हजार योजन का है, ऐसा निर्दिष्ट किया गया है। जैसा कि मत्स्य पुराण में लिखा है—

यह द्वीप दक्षिण से उत्तर कन्याकुमारी से गंगा के प्रवाह पर्यन्त एक हजार योजन तक विस्तृत है। (मत्स्य/११४)

इसी प्रकार मार्कण्डेय पुराण में भी वर्णित है-

"यह द्वीप दक्षिण के उत्तर एक हजार योजन तक विस्तृत है।" इस प्रकार यहाँ योजन शब्द कोसपरक (एक कोस बराबर) मानना चाहिये। इसीलिये कुमारी शब्द सिंहल द्वीप में भी उचित ठहरता है, ऐसा स्कन्द पुराण के माहेश्वर खण्ड के कुमारिका आख्यान से स्पष्ट होता है। यह सिंहलद्वीप ७ अंश तथा ४० कला पर स्थित है और यह सीमा दक्षिण दिशा में माननी चाहिये। गंगा के प्रवाह का उद्गम ३६ अंश पर है और इन दोनों के बीच का भाग अट्ठाईस डिग्री अंश से कुछ अधिक है। एक अक्षांश का अन्तर ६९ १/३ मील से बनता है। इस तरह ६९ १/३ मील को २८ से गुणा करने पर प्रायः दो हजार मील उत्तर से दक्षिण की दूरी निर्धारित होती है। मील शब्द आधे कोस की दूरी में रूढ़ हो

गया है। इस प्रकार यह दूरी एक हजार कोस सिद्ध होती है। यह सिंधु के पश्चिम से लाल सागर पर्यन्त भी की जाती है। क्योंकि मेसोपोटिमिया प्रदेश भी लगभग छत्तीस डिग्री अंश पर स्थित है। जैसा कि ब्रह्म पुराण में लिखा है- "उत्तर में हिमालय पर्वत से दक्षिण में समुद्र पर्यन्त जो महाद्वीप है वह भारतवर्ष है, यहाँ के निवासी भारतीय कहलाते हैं।"

और मत्स्य पुराण में - "तिरछा ऊपर की ओर दस हजार (कोस) तक विस्तृत है।" इस प्रकार निर्दिष्ट है, यहाँ कालदोष अथवा लेखन के प्रमाद से पाठभेद हो सकता है। क्योंकि स्वयं की ही पहले और बाद की उक्ति में विरोध होने के कारण दस हजार की संख्या का सर्वथा प्रत्यक्ष रूप से विरोध हो जाता है अथवा यह उल्लेख संभवत: वर्गात्मक कोस के रूप में हो सकता है और इसी प्रकार पूर्व से पश्चिम तक ९० अंश होने के कारण तीन हजार कोस से कुछ अधिक तथा दक्षिण से उत्तर २८ अंश से कुछ अधिक होने के कारण यह भारतवर्ष एक हजार कोस तक स्थित है। यदि निरक्ष देश (० अंश) से निश्चित किया जाता है तो ३६ अंश और उससे भी अधिक दक्षिण से उत्तर तक की दूरी सिद्ध होती है, ऐसा समझना चाहिये।

ग्यारहवाँ प्रमाण समाप्त ॥११॥

तुरुष्कदेशस्य भारतवर्षीयोत्तरसीमात्वाख्यानं द्वादशं प्रमाणम् ॥१२॥

तथाहि—वायव्यादिषु भुवनकोशेष्विदं भारतवर्षं चतु:सीमतयाऽऽख्यातम्।

"पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवना: स्थिता:।
आन्ध्रा दक्षिणतो धीरतुरुष्कास्त्वपि चोत्तरे ॥१॥(वायु१३।४।इति)

तुरुष्कस्थानं चेदानीं म्लेच्छभाषायां "तुर्किस्तान—" इति तूरान इति तातार इति तारतार इति टारटरी इति चाख्यायते। तद् राजशासनद्वैविध्यादिदानीं द्विधा विभक्तं भवति। पौरस्त्यं पाश्चात्यं च। तत्र पश्चिमं तुरुष्कं राजशासनाधीनं पौरस्त्यं तु चीनराज्यान्तर्गतमिति भेद:। तयो: पौरस्त्यं पौरस्त्यभारतस्य पाश्चात्यं पाश्चात्यभारतस्योत्तरसीमा भवति। सिन्धुस्थानपारस्थानाभ्यां (हिन्दुस्थान ईरान) द्विधा विभक्तस्य भारतवर्षस्य साम्येनोत्तरतस्तुरुष्कस्थानोपगमात् तस्योत्तरसीमात्वं साधूपपद्यते। तथा च तुर्किस्तानस्य भारतोत्तरसीमात्वाख्यानात् सिन्धुनदपश्चिमानाम् अफगानिस्तान, ईराक, साम इत्यादीनामपि देशानां भारतसीमान्तर्भुक्तत्वमुपपद्यते। तथा चात्र श्लोका:—

स्वर्गोन्तरिक्षं पृथिवीतिभेदाद् द्वीपस्त्रिधासीदिह यो विभक्त:।
स एष संप्रत्यपि दैवयोगात् म्लेच्छैर्विभक्तोऽस्ति पुनस्त्रिधैव ॥१॥
उदक्समुद्रानुगतोऽस्ति रूस: पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य।
तद्दक्षिणे भाति तुरुष्कदेश: पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य ॥२॥
तद्दक्षिणे दक्षिणसागरेणानु भाषितं भारतवर्षमेतत्।

पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य ध्रुवं भवेदन्यविभागसाम्यात् ।।३ ।।
रूसो द्विधास्ति द्विविधं तुरुष्कस्थानं तथा भारतवर्षमेतत् ।
सिन्धुस्थपारस्थविभागतोऽस्तु द्विधा तथाऽप्यस्ति तदेकवर्षम् ।।४ ।।

इति द्वादशं प्रमाणम् ।।१२ ।।

(१२) तुरुष्क देश को भारतवर्ष की उत्तरी सीमा कहना बारहवाँ प्रमाण

जैसा कि वायुपुराण इत्यादि में वर्णित भुवनकोशों में भारतवर्ष की चारों सीमाओं का वर्णन किया गया है—

जिसकी सीमा में पूर्व में किरात, पश्चिम में यवन, दक्षिण में आंध्र और उत्तर में वीर तुरुष्क निवास करते हैं ।।१ ।।(वायु. १३/४)

तुरुष्क शब्द से आजकल म्लेच्छ भाषा में तुर्किस्तान, तूरान, तातार, तारतर, टारटरी के नाम से भी कहा जाता है। यह आजकल राज्यशासन के भेद से पूर्व और पश्चिम दो भागों में विभक्त है। इनमें पश्चिम में तुरुष्क राजशासन के अधीन और पूर्वी तुरुष्क चीन राज्य के अंतर्गत हैं, इस प्रकार भेद किया गया है। इनमें से पूर्वी तुरुष्क पूर्वी भारत की तथा पश्चिमी तुरुष्क पश्चिमी भारत की उत्तरी सीमा है। सिंधुस्थान और पारस्थान (हिन्दुस्तान और ईरान) पूर्वोक्त रूप से दो भागों में विभक्त भारतवर्ष की समानता से पूर्वी और पाश्चात्य तुर्किस्तान भारतवर्ष की उत्तरी सीमा सिद्ध होती है और तुर्किस्तान को भारत की उत्तरी सीमा कहने से सिंधु नदी के पश्चिम में स्थित अफगानिस्तान, ईराक, साम इत्यादि देशों को भी भारतवर्ष की सीमा के अन्तर्गत मानना उचित है। इस संबंध में यहाँ कुछ श्लोक प्रस्तुत हैं:—

"जो यह द्वीप स्वर्ग, अन्तरिक्ष और पृथ्वी (पूर्वोक्त भौम- त्रिलोकीप्रसंग के अनुसार) भेद से तीन भागों में विभक्त था, वही वर्तमान में भी संयोगवश म्लेच्छों के द्वारा पुनः तीन भागों में विभक्त कर दिया गया है ।।१ ।।

पूर्व और पश्चिम में समुद्र की सीमा का स्पर्श करता हुआ उत्तर समुद्र के किनारे पर रूस देश है और इसके दक्षिण में पूर्व और पश्चिम समुद्र का स्पर्श करता हुआ तुरुष्क देश है ।।२ ।।

और इस तुरुष्क देश के दक्षिण में दक्षिण समुद्र के किनारे पर स्थित पूर्वोक्त प्रकार से वर्णित यह भारत देश है, जो अन्य प्रकार से वर्णित यह भारत देश है, जो अन्य प्रकार से विभाजन की समानता के कारण निश्चय ही पूर्व और पश्चिम समुद्र को स्पर्श करता है ।।३ ।।

जिस प्रकार रूस दो भागों में विभक्त है और तुरुष्क देश भी दो भागों में विभक्त है, उसी प्रकार यह भारतवर्ष भी सिन्धुस्थान और पारस्थान रूप से दो भागों में विभक्त है, फिर भी यह सम्पूर्ण द्वीप एक ही भारतवर्ष है ।।४ ।।

बारहवाँ प्रमाण समाप्त ।।१२ ।।

अपि च पश्चिमसमुद्रस्य भारतवर्षीयपश्चिमसीमात्वाख्यानं त्रयोदशं प्रमाणम् ॥१३॥

तथा हि इदं भारतवर्षं मार्कण्डेयादिभुवनकोशेषु दिक्त्रये समुद्रैः संवृतमाख्यायते।

"एतत्तु भारतं वर्षं चतुःसंस्थानसंस्थितम्।
दक्षिणापरतो ह्यस्य पूर्वेण च महोदधिः ॥१॥
हिमवानुत्तरेणास्य कार्मुकस्य यथागुणः।"

(मार्क.५४.अ.) इति ॥

तत्र नायं नर्म्मदासंगमनीयः सह्याद्रिपश्चिमस्थः समुद्रो भारतवर्षस्य पश्चिमसीमा भवितुमर्हति। तस्य दक्षिणापथपश्चिमत्वेऽपि आर्य्यावर्तसाधारणभारतापेक्षया पश्चिमत्वाभावात् ॥ मनुस्मृत्यादिषु त्वार्याणां प्रामाणिकशास्त्रेषु पूर्वतः पश्चिमतश्चार्य्यावर्तस्य समुद्रः सीमात्वेनाख्यायते—

"आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्राच्च पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्य्योरार्य्यावर्तं विदुर्बुधाः ॥१॥(मनु.२।२२।) इति ॥

एतेन विन्ध्यपर्वतादुत्तरवर्तिनोऽस्यार्यावर्तस्य पश्चिमतोऽवश्यं समुद्रेण भवितव्यम्। तस्मात् पारस्याखातसमुद्रो लोहितसमुद्रो भूमध्यसमुद्रश्चास्य पश्चिमेऽवधिः साधीयान् संभाव्यते ॥

इति त्रयोदशं प्रमाणम् ॥१३॥

(१३) पश्चिमी समुद्र को भारतवर्ष की पश्चिमी सीमा कहना तेरहवाँ प्रमाण

जैसा कि मार्कण्डेय इत्यादि पुराणों में उक्त भुवनकोशों में यह भारतवर्ष तीनों दिशाओं में समुद्र से घिरा हुआ कहा गया है।

यह भारतवर्ष चारों सीमाओं से युक्त हैं, इसके दक्षिण पश्चिम और पूर्व में महासागर है तथा उत्तर में धनुष की प्रत्यंचा के समान हिमालय पर्वत स्थित है। (मार्क.५४ अ.)

नर्मदा नदी का संगमस्थल और सह्याद्रि पर्वत के पश्चिम में स्थित समुद्र भारत वर्ष की पश्चिमी सीमा नहीं हो सकती है। क्योंकि यह समुद्र दक्षिणापथ (दक्षिण भारत) के पश्चिम में स्थित होते हुए भी आर्यावर्त की दृष्टि से पश्चिम में नहीं है। आर्यो के प्रामाणिक शास्त्र मनुस्मृति इत्यादि ग्रन्थों में आर्यावर्त के पूर्व और पश्चिम में समुद्र को सीमा के रूप में बताया गया है —

"विद्वानों ने पूर्व समुद्र से लेकर पश्चिम समुद्र पर्यन्त और इन दोनों पर्वतों के मध्य भाग को आर्यावर्त कहा है ॥१॥ (मनु. २/२२)

इस कथन से विंध्याचल पर्वत के उत्तर में स्थित आर्यावर्त के पश्चिम की ओर भी अवश्य ही समुद्र होना चाहिये। इससे मानना चाहिये कि पारस की खाड़ी का समुद्र, लालसागर और भूमध्य सागर तक भारतवर्ष की पश्चिमी सीमा होना संभव है।

तेरहवाँ प्रमाण समाप्त ॥१३॥

चतुर्दशं प्रमाणम् ॥१४॥

ईरान–विलोचिस्तानाफगानस्तानादिशब्दानां शासनक्रांतिभेदमूलकत्वेनाव्यवस्थित्वात् तेषां गणितव्यवस्थितभारतवर्षशब्दप्रयोगप्रतिरोधकत्वासंभवश्चतुर्दशं प्रमाणम् ॥१४॥

इह हि भुवनकोशे देशविभागाः द्विविधा निरूप्यन्ते—राज्यशासनव्यवस्थिताः भौगोलिकगणितव्यवस्थिताश्च। तत्र शासनकृतविभागा अनित्या अव्यवस्थिताः काले काले विभिद्यन्ते। ये देशा येन राज्ञा जीयन्ते, ते तदायत्तनामरूपाः पूर्वापेक्षया क्वचिदन्येन नाम्ना निर्दिश्यन्ते। अत एव तु भारतीयानामिमे गान्धारदेशा अफगानिस्तानशब्देन, हिङ्गला देशाः प्रथमं सुगदियानाम्ना, पश्चाद्‌बिलोचिस्ताननाम्ना व्यवह्रियन्ते स्म। पारस्थानमेव पर्सियाशब्देन, ईरानब्देन कैलडियाशब्देन असीरियाशब्देन ईराकशब्देन मेसोपाटेमियाशब्देन च काले कालेऽन्यान्यप्रान्तविभागैर्व्यवह्रियते स्म। वर्म्मात्र देशः पुरायुगे भारतवर्षीयदेशो मध्ययुगे हिन्दुस्तानात् पृथक् परिगणित आसीत्। स एव पुनरिदानी युगे हिन्दुस्तानान्तर्गतो व्यवतिष्ठते। एतन्नियमानुरोधेनैवेदं पश्चिमभारतवर्षमिदानीं युगे भिन्नशासनहेतो राजपुरुषीयव्यवहारविशेषानुरोधाद् भारतवर्षनामतो विहीनमभूत्। हिन्दुस्तानमात्रे चेदानीं भारतवर्षशब्दः संकुचितोऽभूत्। किन्तु वस्तुगत्या नैतौ भारतवर्षशब्दहिन्दुस्तानशब्दो पर्य्यायवाचिनौ वर्तते। भारतवर्षीयप्राचीनभुवनकोशानुसारेण राजशासनव्यवस्थामनपेक्ष्य स्वातन्त्र्येण भौगोलिकगणितव्यवस्थया प्रशान्तसमुद्रमारभ्य लोहितसमुद्रभूमध्यसमुद्रपर्य्यन्तप्रदेशे भारतवर्षशब्दस्य नियतत्वात्। अथैतस्य सिन्धुस्थानपारस्थानाभ्यां द्वेधा विभक्तस्या सिन्धुस्थानस्य हिन्दुस्तानशब्देन व्यवह्रियमाणतया तस्य भारतवर्षीयप्रान्तविशेषत्वाच्च। नित्यं व्यवस्थितं चेदं संज्ञाकरणं राजशासनानामन्यान्यत्वेऽपि न कदाचिद्विचलितं भवति। अत एव पश्चिमभारतस्य अफगानिस्तान, खुरासान ईरान—इत्यादेर्हिन्दुस्तानत्वाभावेऽपि भारतवर्षत्वं नोपहन्यते। भारतवर्षस्य भूवृत्तपादरूपतया प्राचीनार्य्यशास्त्रे सिद्धान्तितत्वादिति सर्वं सुस्थम्॥

इति चतुर्दशं प्रमाणम्॥१४॥

इत्थं चामीभिश्चतुर्दशभिः प्रमाणैः पूर्वस्यां दिशि चीनसमुद्रमारभ्य पश्चिमतो लोहितसमुद्रपर्य्यन्तं भारतवर्षस्य सीमा भवतीति सिद्धम्॥

इति भारतपरिचये सीमाप्रसङ्गः समाप्ताः ॥३॥

(१४) चौदहवाँ प्रमाण

ईरान, बिलूचिस्तान, अफगानिस्तान इत्यादि शब्द शासनक्रांति के परिवर्तन के आधार पर होने के कारण अव्यवस्थित हैं। अतः ये शब्द गणित से व्यवस्थित भारतवर्ष शब्द के प्रयोग का खंडन नहीं कर सकते हैं।

भारतवर्ष के भुवनकोश में दो प्रकार से देश का विभाजन होना निरूपित किया गया है — एक तो राज्यशासन की व्यवस्था के आधार पर, और दूसरा भौगोलिक गणित की व्यवस्था के आधार पर। इनमें से शासन के आधार पर किये गये विभाजन अनित्य, अव्यवस्थित और समय समय पर बदलते रहते हैं। जो देश जिस राजा के द्वारा जीत लिये जाते हैं, वे देश उसी राजा के अनुरूप और पहले की अपेक्षा कुछ अन्य ही नाम से निर्दिष्ट किये जाते हैं। अत एव भारत के ही ये गान्धार देश अफगानिस्तान शब्द से, हिंगला देश पहले सुगदिया नाम से तथा बाद में बिलूचिस्तान नाम से कहे जाते थे।

समय समय पर पारस्थान को ही उसके प्रान्तों के नाम पर्सिया, ईरान, कैलडिया, असीरिया, ईराक और मेसोपोटेमिया शब्दों से भी कहा जाता था। बर्मा देश प्राचीनकाल में भारतवर्ष का ही एक प्रदेश था, जो बाद में मध्ययुग में हिन्दुस्तान से अलग माना जाने लगा, फिर वही बर्मा देश वर्तमान युग में सम्मिलित हो गया (पुस्तकरचना के समय)। इसी व्यवस्था के अनुसार ही यह पश्चिमी भारतवर्ष शासनपरिवर्तन के कारण राज्यशासकों के व्यवहार विशेष के आग्रह से वर्तमान में भारतवर्ष नाम से रहित हो गया है। आज हिन्दुस्तान मात्र में ही भारतवर्ष शब्द संकुचित हो गया है। किन्तु वस्तुतः भारतवर्ष और हिन्दुस्तान शब्द दोनों परस्पर पर्यायवाची नहीं है, अपितु भारतीय भुवनकोश के अनुसार राज्यशासन-व्यवस्था की अपेक्षा न करके स्वतंत्रतापूर्वक भौगोलिक गणित व्यवस्था के आधार पर प्रशान्त महासागर से लेकर लाल सागर और भूमध्य सागर पर्यन्त प्रदेश का भारतवर्ष शब्द से प्रयुक्त होना निश्चित होता है। अतः भारत का सिन्धुस्थान और पारस्थान रूप से दो भागों में विभक्त होने के आधार पर सिन्धुस्थान को ही हिन्दुस्तान शब्द से व्यवहार किये जाने के कारण सिद्ध होता है कि (हिन्दुस्तान) भारतवर्ष का एक प्रान्त विशेष है। भारतवर्ष नामकरण नित्य और व्यवस्थित है, जो राज्यशासनों के समय समय पर बदलते रहने पर भी कभी बदला नहीं गया है। अतएव पश्चिमी भारत के अफगानिस्तान, खुरासान, ईरान, इत्यादि का हिन्दुस्तान न होने पर भी भारतवर्ष होना समाप्त नहीं होता है। प्राचीन आर्यशास्त्रों में सिद्धान्त रूप से भारतवर्ष का पृथ्वीमण्डल के चतुर्थांश भाग में होना पूर्ण रूप से सिद्ध होता है।

चौदहवाँ प्रमाण समाप्त ॥१४॥

इस प्रकार इन चौदह प्रमाणों से भारतवर्ष की सीमा पूर्व दिशा में चीन समुद्र से लेकर पश्चिम में लाल समुद्र पर्यन्त सिद्ध होती है।

भारतपरिचयखण्ड में सीमा-प्रसंग समाप्त

उपद्वीपप्रसङ्गः ॥४॥

जम्बूद्वीपस्याष्टोपद्वीपभेदाः ।

ननु ब्राह्म—मार्कण्डेय—मात्स्य—स्कान्दादिषु भुवनकोशेष्विन्द्रद्वीपादयो नवोपद्वीपा निरूप्यन्ते। भागवतादिषु तु केषुचिद् भुवनकोशेषु ततोऽन्ये स्वर्णप्रस्थादयोऽष्टोपद्वीपा उच्यन्ते। तथा च विरोधः प्राप्नोति—इति चेन्न। इन्द्रद्वीपादीनां भारतीयोपद्वीपत्वेन, स्वर्णप्रस्थादीनां तु जम्बूद्वीपोपद्वीपत्वेनाख्यानाद् विरोधाप्रसक्तेः। तथा चोक्तं भागवते—"जम्बूद्वीपस्य च राजन्नुपद्वीपानष्टौ हैक उपदिशन्ति। तद्यथा—स्वर्णप्रस्थश्चन्द्रशुक्ल आवर्तनो नारमणको मन्दरहरिणः पाञ्चजन्यः सिंहलो लङ्केति ॥, (५/१९) एषां प्रचलितदेशभाषायां नामानि यथा।

(१) आवर्तनः —वर्तानिया–(इंगलैण्ड–स्काटलैण्ड–आयर्लेण्डादयः)

(अक्षांश उ० ५१-५८—उज्जयिन्याः पश्चिमदेशान्तरे७५—८५)

(२) नारमणक=नारवे।स्वेदन।(उ०अक्षांशे ५९–७०, उज्ज०देशा.पश्चि.४५–७०)

१ २

(३) मन्दर =हरिणो-नोविया-जेमूल्या (उ०अ०७१-७८, उ०प०दे० ६।२३)

१ २ ३ ४ ५

(४) पाञ्चजन्यः–जापान-द्वीपसंघः ॥ (सांघालियन-जेसो-नीफन-सिकोक-क्यूसू)

(उ०अ०५५-३०, -उ०पू०दे०४०)

इति पञ्चभिर्जनैस्तस्योपपन्नत्वात् पाञ्चजन्यत्वम् ॥

(५) चन्द्रशुक्लः =फीलीपायिन-द्वीपसंघः। चन्द्राय गन्धर्वराजाय पणिभिरुपायनीकृतत्वात् पण्युपायनस्य तस्य चन्द्रशुक्लत्वम् ॥

(उ०अ०१०-१८, -उ०पू०दे०३०)

१ २ ३ ४ ५

(६) स्वर्णप्रस्थः =वोर्नियो-जावाद्वीपसंघः-सुमात्रा, सिंगापुर, पीनाङ्ग,

(द०अ०१०-उ०अ०१६उ०पू०दे०१०-२५)

६ ७

निकोवर, ऐन्दमन। इत्येतेषां भारतीयोपद्वीपसंघानां स्वर्णप्राचुर्योपलब्ध्या स्वर्णप्रस्थत्वम् ॥

(७) सिंहलद्वीपः =सीलोन, इति नाम्ना प्रसिद्धः ॥
उ॰अ॰६-८, -उ॰पू॰दे॰५

(८) लङ्काद्वीपः =लक्केदीब, मालदीब-इतिद्वेधा विभक्तो नष्टप्रायः ॥
उ॰अ॰१-१२, -उ॰प॰दे॰५

इदं तावद् भूगोलं पूर्वीयपश्चिमीयगोलार्द्धाभ्यां द्वेधा विभज्यते। तत्र पूर्वीयगोलार्द्धस्य जम्बूद्वीप इति संज्ञा क्रियते। अस्ति हि पूर्वगोलार्द्धस्य मध्यप्रदेशे हिरण्यश्रृङ्गपर्वतान्निर्गत्य पश्चिमदिशि प्रवहन्ती अरालसमुद्रे प्रविशन्ती काचिन्नदी या वेदे यक्षुरित्याम्नाता। तदपभ्रंशेन च म्लेच्छभाषयाम्। 'अक्सस्'—इति साख्यायते ॥ सैव पश्चात् संस्कृतभाषायां 'जम्बू'—इत्याख्यायत। तदपभ्रंशेन च म्लेच्छभाषायाम्—'अमू'—इत्याख्यायते। तादृशजम्बूनद्युपलक्षितः पामीरप्रदेश एवासीत् पुरात्वे पूर्वीयगोलार्द्धे प्रधानरूपः समृद्धतमः केन्द्रभूतः प्रदेशः। तत्रत्यानां देवयुगीयानामिह गोलार्द्धे एकतन्त्रं स्वाराज्यमासीदिति कृत्वा पूर्वीयगोलार्द्धं जम्बूद्वीपशब्देन प्रसिद्धमासीत् ॥ वर्तमानयुगप्रसिद्धौ एशिया-यूरोप-देशौ सोपद्वीपौ तस्मिन् पूर्वीयगोलार्द्धे संनिविशेते। अफरीकाराष्ट्रेलिययोरप्यत्रैव संनिवेशं केचिदिच्छन्ति। तदसत्। सकोत्रा—मदगास्कार—प्रभृतीनामफरीकोपद्वीपानां पापुआप्रभृतीनामाष्ट्रेलियोपद्वीपानां च जम्बूद्वीपोपद्वीपतया भागवतादिष्वपरिगणितत्वात्। तस्मादफरीकाष्ट्रेलिययोर्जम्बूद्वीपाद्बहिष्ट्वमासुरद्वीपत्वं च प्रत्येतव्यम्। जम्बूद्वीपस्त्वयं दैवतो द्वीपः ॥ तस्यैतस्य महाद्वीपस्यैते आवर्तनादयोऽष्टावुपद्वीपा भवन्तीत्यन्यदेतत्। भारतवर्षस्य तु प्रातिस्विकतया पूर्वोक्ता इन्द्रद्युम्नादयो नवैवोपद्वीपा इष्यन्ते ॥ तेषां भारतसागरान्तर्वर्तित्वात्। अत एवैतद् भारतीयोपद्वीपसंघो वर्तमानयुगेऽपि म्लेच्छभाषायाम्—'इण्डियनआर्किपैलैगो—' इत्याख्यायते ॥. . . ॥

इति भारतपरिचये उपद्वीपप्रसङ्गः समाप्तः ॥४॥

उपद्वीप-प्रसंग ॥४॥

जम्बूद्वीप के आठ उपद्वीप

ब्रह्म, मार्कण्डेय, मत्स्य और स्कन्द इत्यादि पुराणों में सम्पूर्ण भुवनकोश में इन्द्र-द्वीपादि नौ उपद्वीपों का वर्णन किया गया है। परन्तु भागवतादि महापुराणों में भुवनकोश के वर्णनों में उनसे भिन्न ही स्वर्ण-प्रस्थादि आठ उपद्वीप बताये गये हैं। इस प्रकार यदि विरोध प्रतीत होता है, तो ऐसी बात नहीं है। क्योंकि इन्द्रद्वीपादि को भारतीय उपद्वीप तथा स्वर्णप्रस्थादि को जम्बूद्वीप के उपद्वीप मानने पर विरोध का निराकारण हो जाता है। भागवत महापुराण में कहा गया है — हे राजन्! जम्बूद्वीप के आठ उपद्वीप कहे गये हैं। वे उपद्वीप हैं — स्वर्ण-प्रस्थ, चन्द्रशुक्ल, आवर्तन, नारमणक, मन्दरहरिण, पांचजन्य, सिंहल और लंका।"(५/१९)

इनके प्रचलित देशभाषाओं में नाम इस प्रकार हैं—

(१) **आवर्तन** : वर्तानिया (इंगलैण्ड—स्कॉटलैण्ड—आर्यलैण्ड इत्यादि उपद्वीपसमूह)

(अक्षांश उत्तर ५१-५८ उज्जयिनी से पश्चिमी देशान्तर पर ७५-८५)

(२) **नारमणक** : नार्वे। स्वेदन अथवा स्वीडन।

(उत्तर अक्षांश ५९-७० उज्जयिनी से, देशान्तर पश्चिमी में ४५-७०)

(३) **मन्दर-हरिण** : नोविया-जेम्ल्या (उ.अ. ७१-७८, उत्तर प. दे. - ६/२३)

(४) **पांचजन्य** : जापान द्वीपसमूह। (सांघालिया—जेसो—नीफन—सिकोक—क्यूसू)

(उ.अ. ५५-३०, - उ.पू. दे. -४०) पांच व्यक्तियों द्वारा खोजे जाने के कारण यह द्वीप पांचजन्य कहलाया।

(५) **चन्द्रशुक्ल** : फिलीपायिन द्वीपसमूह। गन्धर्वराज चन्द्र को पणियों द्वारा भेट दिये जाने के कारण, पणियों के द्वारा प्रदत्त उपहार के कारण उसका नाम चन्द्रशुक्ल रखा गया। (उ.अ.१०-१८, - उ.पू.दे. ३०)

(६) **स्वर्णप्रस्थ** : वोर्नियो-जावाद्वीप-समूह-सुमात्रा, सिंगापुर, पीनाङ्ग।

(द.अ. १०-उ.अ. १६, उ.पू.दे. १०-२५)। निकोवर (निकोबार), ऐन्द्रामन (अण्डमान)। इन भारतीय उपद्वीपसमूहों में स्वर्ण की प्रचुर मात्रा में उपलब्धि होने के कारण इनका नाम स्वर्ण-प्रस्थ रखा गया॥

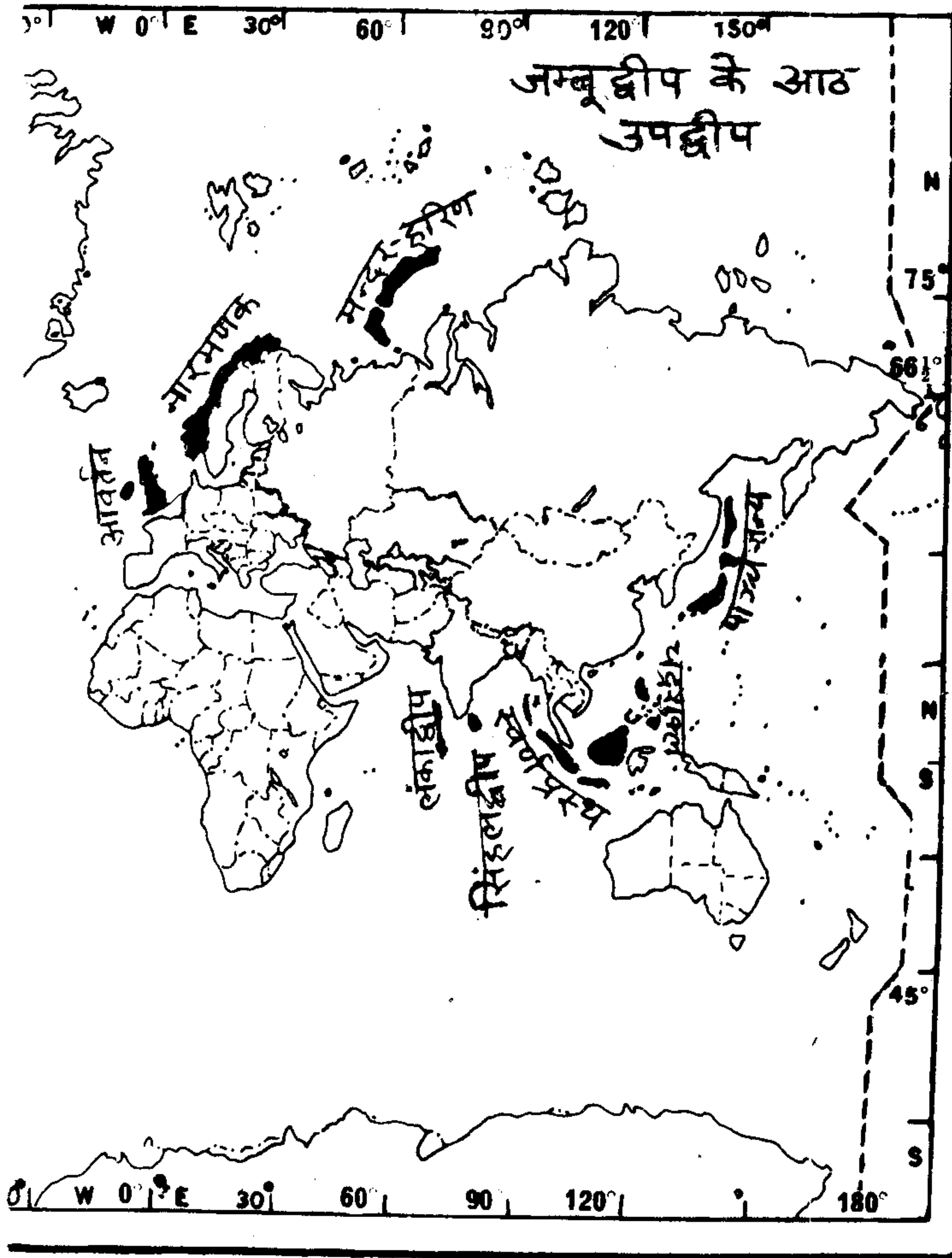
(७) **सिंहल द्वीप** : सीलोन नाम से प्रसिद्ध है। (उ.अ.६-८, उ.पू.दे. -५)

(८) **लंकाद्वीप** : लक्केदीव (लक्षद्वीप), मालदीव दो भागो में विभक्त होकर लगभग नष्ट से हो गये हैं। (उ.अ. १-१२, उ.प.दे. ५)

यह भूगोल (पृथ्वी का मानचित्र) पूर्वीय और पश्चिमी गोलार्द्ध रूप से दो भागों में विभक्त है, इसी पूर्वी गोलार्द्ध को जम्बूद्वीप कहा गया है। पूर्वी गोलार्द्ध के मध्यभाग में हिरण्य-श्रृंग पर्वत से निकल कर पश्चिम दिशा की ओर बहती हुई अराल समुद्र में प्रवेश करने वाली किसी नदी को वेद में "यक्ष" नाम से कहा गया है। इसी "यक्ष" नाम की नदी को अनार्य भाषा में इसके अपभ्रंश रूप "अकसस्" नाम से कहा गया है। वही "अकसस्" नदी संस्कृत भाषा में "जम्बू" नाम से कही गई है। यह जम्बू शब्द अपभ्रंश रूप से अनार्य भाषा में "अमू" कहा जाता है। ऐसा यह जम्बू नदी के नाम से पहचाना जाने वाला पामीर प्रदेश प्राचीन पूर्वी गोलार्द्ध में सर्वश्रेष्ठ समृद्ध तथा महत्त्वपूर्ण प्रदेश था। वहाँ पर निवास करने वाले देवयुगीय पुरुषों का इस गोलार्द्ध में पूर्ण स्वराज था। इसीलिए पूर्वी गोलार्द्ध "जम्बूद्वीप" नाम से प्रसिद्ध था। वर्तमान युग में एशिया और यूरोप से प्रसिद्ध देश भी अपने उपद्वीपों सहित उसी पूर्वीय गोलार्द्ध में समाविष्ट हैं। कुछ लोग अफ्रीका और आस्ट्रेलिया का भी इसी में समावेश करना चाहते हैं। परन्तु यह अनुचित है। क्योंकि भागवत इत्यादि महापुराणों में सकोत्रा और मदगास्कर इत्यादि अफ्रीका के उपद्वीपों की तथा पपुआ इत्यादि

ऑस्ट्रेलिया के उपद्वीपों की जम्बूद्वीप के उपद्वीपों में गणना नहीं की गई है। इसलिए अफरीका (अफ्रीका) और ऑस्ट्रेलिया को जम्बूद्वीप से अलग आसुरद्वीपों के रूप में मानना चाहिये। क्योंकि यह जम्बूद्वीप तो दैवीयद्वीप है। इस जम्बूद्वीप महाद्वीप के आवर्तन इत्यादि जो आठ उपद्वीप कहे गये हैं, वे अन्य ही हैं। भारतवर्ष के तो स्वयं के विशिष्ट होने के कारण पूर्वोक्त इन्द्रद्युम्न इत्यादि नौ उपद्वीप ही कहे गये हैं। क्योंकि ये सभी उपद्वीप भारत समुद्र (हिन्द-महासागर) के अन्तर्गत ही हैं। इसलिए ये भारतीय उपद्वीप समूह वर्तमान समय में भी अनार्य भाषा (अंग्रेजी) में "इण्डियन आर्किपैलैगो" नाम से कहे जाते हैं॥

भारतपरिचयखण्ड में उपद्वीप-प्रसंग समाप्त हुआ॥४॥


जम्बूद्वीप के आठ उपद्वीप
W 0° E 30° 60° 90° 120° 150°
N
75°
66½°
N
S
45°
S
W 0° E 30 60 90 120° 180°
मन्दर-हरिण
नारमणक
आवर्तन
पाञ्चजन्य
चन्द्रशुक्ल
स्वर्णप्रस्थ
लंकाद्वीप
सिंहलद्वीप

लङ्काप्रसङ्गः ॥५ ॥

द्वादशविप्रतिपत्तिभिः सिंहलद्वीपस्य लङ्कात्वभ्रमखण्डनम्।

(१) अत्रेदमपरं बोध्यम्। अद्यत्वे केचन विद्वांसः सिंहलमेव द्वीपं लङ्कामाचक्षते, तन्नितान्तं भ्रान्तमिति ब्रूमः ॥ लङ्कादयो हि शब्दा भारतवर्षीयग्रन्थोपलब्धसंज्ञाः सन्तीत्येषां भारतवर्षीयग्रन्थाधारेणैव व्यवस्थावकल्पते न तु स्वकपोलकल्पनया यथेच्छं प्रतिपत्तिः ॥ अन्यथा प्रमादप्रलपितत्वापत्तेः ॥ भारतवर्षीयग्रन्थेषु च सिंहलादन्या लङ्कोपदिश्यते ॥ "अथ दक्षिणेन लङ्का-कालाजिन-सौरिकीर्ण-तालिकटाः ॥ काञ्ची मरुचीपट्टनचेर्य्यार्य्यक-सिंहला ऋषभा"—इति बृहत्संहितायां (१४) कूर्मविभागे तयोः पृथकृत्वेन निर्देशात्। यदि सिंहलद्वीप एव लङ्काऽभविष्यत्, तदा भागवतादिषु सिंहलस्य सप्तमत्वमाख्याय लङ्काया अष्टमत्वं नोपदिष्टमभविष्यत् ॥ तस्मादन्या लङ्का अन्यश्चायं सिंहलद्वीप इति सिद्धं भवति ॥

इति प्रथमा विप्रतिपत्तिः ॥१ ॥

लङ्का-प्रसंग ॥५ ॥

सिंहलद्वीप को लङ्काद्वीप मानने की भ्रान्त धारणा का बारह आपत्तियों द्वारा खण्डन किया जाता है—

(१) इस विषय में इस प्रकार समझना चाहिये—

आजकल कुछ विद्वान् सिंहलद्वीप को ही लंकाद्वीप मानते हैं, परन्तु हम कहते हैं कि यह पूर्णतः एक भ्रान्त धारणा है। लंका इत्यादि शब्द भारतीय ग्रन्थों में प्राप्त संज्ञा शब्द हैं, जिनका समाधान भी भारतीय ग्रन्थों के आधार पर ही संभव है, अपनी इच्छा से कपोल-कल्पना के आधार पर किया गया समाधान स्वीकार करने योग्य नहीं हो सकता है। अन्यथा प्रमादवश किया गया प्रलाप ही माना जायेगा। भारतवर्षीय ग्रन्थों में लंका को सिंहलद्वीप से भिन्न बताया गया है। "बृहत्संहिता" के कूर्मविभाग में लिखा है — "दक्षिण दिशा में लंका, कालाजिन, सौरिकर्ण, तालिकटा, कांची, मरुची, पट्टनचैरी, आर्यक, सिंहल और ऋषभा।" इस प्रकार लंका और सिंहल को अलग अलग बताया गया है। यदि सिंहलद्वीप ही लंका द्वीप रहा होता तो भागवतादि महापुराणों में सिंहलद्वीप को सातवाँ द्वीप बताकर लंका को आठवां द्वीप नहीं बताया जाता। इसलिए सिंहलद्वीप तथा लंकाद्वीप भिन्न भिन्न ही हैं, ऐसा सिद्ध होता है।

यह पहली असंगति समाप्त हुई ॥१ ॥

(२) अपि च भारतवर्षीयार्य्यग्रन्थेषु लङ्केति निरक्षदेशस्य संज्ञा क्रियते। सिंहलद्वीपस्तूत्तरतश्चत्वारिंशत्कलोपेते सप्तमेऽक्षांशे (७।४०) संनिविष्ट इति साक्षदेशत्वान्न कदाचिदपि लङ्का भवितुमर्हतीति॥

इति द्वितीया विप्रतिपत्तिः॥२॥

(२) भारतीय आर्यग्रन्थों में लंका को निरक्ष (अक्षांश-रहित अर्थात् ० डिग्री अंश) देश नाम से कहा गया है। परन्तु सिंहलद्वीप सात अंश (७ डिग्री) और चालीस कला (४०[१]) उत्तर अक्षांश पर स्थित है। इस प्रकार सिंहल द्वीप साक्ष्य (अक्षांश सहित) देश होने के कारण किसी भी प्रकार से निरक्ष देश लंका नहीं माना जा सकता है।

दूसरी असंगति समाप्त हुई॥२॥

(३) अपि च यथेदानीं युगे पाश्चात्यैः स्वदेशे ग्रीनवीचनगरे भूमेर्मध्यरेखा प्राकल्प्यत, तथैवेह पुरायुगे भारतवर्षे उज्जयिन्यां नगर्यां सा मध्यरेखा प्रकल्पितासीत्॥सा च लङ्कोज्जयिनीमेरुस्पर्शिनी व्याख्यायते॥

"यल्लङ्कोज्जयिनीपुरोपरि कुरुक्षेत्रादिदेशान् स्पृशत्॥

सूत्रं मेरुगतं बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुवः"—

इत्यभियुक्तोक्तेः। सेयमुज्जयिनी ग्रीनवीचतः त्रिचत्वारिंशत्कलोपेतपञ्चसप्ततिमिते (७५।४३) पूर्वदेशान्तरे प्रारभ्यते, तेन तयोर्मध्यरेखयोः षट्सप्ततिरन्तरांशाः (७६) सिध्यन्ति॥ सीलोननाम्ना प्रसिद्धः सिंहलद्वीपस्तु ग्रीनवीचतः पञ्चाशत्कलोपेताशीत्यंशमिते (८०।५०) पूर्वदेशान्तरे संनिविष्ट इत्येकाशीतिरन्तरांशा भवन्ति॥ तथा च पञ्चभिरंशैरयं सिंहलद्वीपो भवत्युज्जयिन्यपेक्षया पूर्वदिक्स्थ इति सिंहलारब्धरेखाया उज्जयिनीस्पर्शो नतरां कदापि संभाव्यते। लङ्का तूज्जयिन्याः साम्येन दक्षिणतः षट्सप्ततिमिते ग्रीनवीचतः पूर्वदेशान्तरे विवक्ष्यते। तस्मात् सिंहलद्वीपो लङ्का नास्तीति लङ्काशब्देन सिंहलव्यपदेशः केषांचित् साहसमात्रम्॥

इति तृतीया विप्रतिपत्तिः॥३॥

(३) इसी प्रकार जैसे आज के युग में विदेशियों द्वारा ब्रिटेन स्थित ग्रीनवीच नगर में भू-मध्य रेखा मानी जाती है, वैसे ही प्राचीनकाल में भारतवर्ष में उजयिनी नगरी से वह भूमध्य रेखा मानी जाती थी। यह भूमध्य रेखा से उज्जयिनी होती हुई मेरु पर्वत तक बताई जाती है। विद्वानों का कहना है कि—

"लंका और उज्जयिनी जाती हुई, कुरुक्षेत्रादि सम्भाग का स्पर्श करती हुई मेरु पर्वत तक जाने वाली रेखा को विद्वानों ने पृथ्वी की मध्य रेखा कहा है॥"

यही उज्जयिनी नगरी ग्रीनवीच से ७५ डिग्री और ४३[१] मिनट पूर्व देशान्तर पर प्रारम्भ होती है। इन दोनों मध्य रेखाओं (भारतीय और पाश्चात्य) में परस्पर ७६ डिग्री (अंश) का अन्तर सिद्ध होता है।

परन्तु सीलोन नाम से प्रसिद्ध सिंहलद्वीप ग्रीनवीच से ८० डिग्री (अंश) और ५०[१] (कला (८०/५०) पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। इस प्रकार ८१ डिग्री अंश होते हैं। तात्पर्य है कि सिंहलद्वीप उज्जयिनी की अपेक्षा ५ डिग्री अक्षांश पूर्व की ओर स्थित है। अतः सिंहलद्वीप से कोई भी रेखा उज्जयिनी का स्पर्श करती हुई किसी भी तरह से नहीं जा सकती है। परन्तु लंकाद्वीप तो उज्जयिनी के साम्य से दक्षिण में ग्रीनवीच से ७६ डिग्री (अंश) पूर्व देशान्तर में बताई गई है। अतः सिंहलद्वीप लंका नहीं हो सकता है। सिंहलद्वीप को लंका शब्द से व्यवहार करना कुछ लोगों का दुस्साहस मात्र है।

तीसरी असंगति समाप्त हुई ॥३॥

(४) अपिच—"निरक्षदेशात् क्षितिषोडशांशे भवेदवन्ती गणितेन यस्मात्"— इति सिद्धान्तशिरोमणिप्रदर्शितज्योतिर्वित्समयानुसारेणोज्जयिन्या लङ्कापेक्षया सार्द्धद्वाविंशेऽक्षांशे स्थितिरुपपद्यते। सा च विषुवस्पर्शिमालदीवाभिप्रायेण कथंचित्संभवति, सिंहलस्य लङ्कात्वोपगमे तु तस्य निरक्षस्पर्शित्वाभावान्मुख्यैनिरक्षस्यवापादानत्वे स्थिते सार्द्धद्वाविंशेऽवन्तीस्थितिर्नोपपद्येत। दशकलाधिकत्रयोविंशेंऽशे (२३।१०) उज्ज-यिन्या अवस्थितत्वात्। तस्मात् सिंहलोऽयं लङ्का नास्तीति सिद्धम्॥

इति चतुर्थी विप्रतिपत्तिः ॥४॥

(४) और भी लिखा है — "गणित के अनुसार अवन्ती नगरी जिस निरक्ष देश से पृथ्वी के सोलहवें अंश पर स्थित है।" इस प्रकार सिद्धान्तशिरोमणिकार ज्योतिर्विद की समय-गणना के अनुसार उज्जयिनी नगरी का लंका की अपेक्षा साढ़े बाईस अक्षांश पर स्थित होना सिद्ध किया गया हैं। (सम्पूर्ण पृथ्वी की परिधि ३६० डिग्री अंश होने के कारण उसका सोलहवाँ अंश ३६०/१६ = २२$\frac{१}{२}$ डिग्री उत्तर अक्षांश पर उज्जयिनी होनी चाहिये। निरक्ष देश से तात्पर्य यदि विषुवत् रेखा का स्पर्श करने वाले मालदीव से लिया जावे तो कुछ उचित सा प्रतीत होता है। यदि सिंहल को ही लंका मान लिया जावे तो उसके शून्य अक्षांश के स्पर्श के अभाव से लंका के प्रमुख उपलक्षण निरक्ष बिन्दु से दूर हटकर स्थित होने पर अवन्ती की २२$\frac{१}{२}$ डिग्री अंश पर स्थिति प्रतिपादित नहीं होती है। क्योंकि उज्जयिनी तो २३ डिग्री अंश और १०[१] कला पर स्थित है। इसलिए यह सिंहलद्वीप किसी प्रकार भी लंका नहीं हो सकता है, यह सिद्ध होता है।

चौथी विसंगति समाप्त हुई ॥४॥

(५) अपि च वाल्मीकीये सुन्दरकाण्डे—
योजनानां शतं चापि कपिरेष खमाप्लुतः ॥११६॥
योजनानां शतस्यान्ते वनराजिं ददर्श सः ॥२०५॥
शतान्यहं योजनानां क्रमेयं सुबहून्यपि॥

किं पुनः सागरस्यान्तं संख्यातं शतयोजनम् ॥२१४॥
योजनानां शतं श्रीमाँस्तीर्त्वाऽप्युत्तमविक्रमः ॥२१३॥
शतयोजनविस्तीर्णं पुप्लुवे लवणार्णवम्।

इत्येवमभ्यासेन महेन्द्रगिरित्रिकूटगिर्य्योः शतयोजनात्मकमन्तरमाख्यायते॥ तेन चतुःशतक्रोशान्तरे लङ्कायाः संनिवेशोऽध्यवसीयते॥ स चावश्यं विषुवद्रेखाया-मुपपद्यते॥ महेन्द्राचलस्य विषुवतो दशाऽक्षांशान्तरितत्वादेकैकांशस्य साधिकोन-सप्ततिमीलात्मकतया सार्द्धत्रिशतीक्रोशान्तरितत्वोपपत्तेः। सिंहलस्य त्वस्य शतार्द्धक्रो-शमात्रमप्यन्तरं नास्ति तस्मादन्या लङ्का, अन्यश्चायं सिंहलद्वीप इत्यवसितं भवति॥

इति पंचमी विप्रतिपत्तिः ॥५॥

(५) वाल्मीकि रामायण के सुन्दर काण्ड में लिखा है—

यह वानर सौ योजन की दूरी पर आकाश में उछल गया ॥११६॥

उसने सौ योजन की दूरी पर वनपंक्ति देखी।२०५॥

मैं सैंकड़ों योजन की दूरियाँ पार कर सकता हूँ, फिर समुद्र के पार की यह सौ योजन संख्या की दूरी क्या महत्त्व रखी है ॥(२/४)

उत्तम, पराक्रमी और श्रेष्ठ वानर वीर सौ योजन की दूरी पार करके भी थके नहीं ॥(२/३)

इस प्रकार की उक्तियों से स्पष्ट है कि महेन्द्र पर्वत से त्रिकूट पर्वत के बीच सौ योजन अन्तराल की दूरी का उल्लेख किया गया है। (चार कोस अथवा आठ मील की दूरी एक योजन होती है।) इस आधार पर लंका का चार सौ कोस अथवा आठ सौ मील की दूरी पर स्थित होना सिद्ध होता है। और लंका अवश्य ही विषुवत् रेखा पर स्थित हो सकती है। महेन्द्र पर्वत विषुवत् रेखा से १० डिग्री अक्षांश पर स्थित होने के कारण प्रत्येक अंश (डिग्री) साढ़े उनहत्तर मील के हिसाब से होने के कारण ३५० कोस की दूरी होती है। परन्तु सिंहल द्वीप तो मात्र ५० कोस की दूरी पर भी नहीं है। इसलिए लंका द्वीप अलग द्वीप है और सिंहल द्वीप अलग द्वीप है। यह निश्चित होता है ॥५॥

पाचवीं विसंगति समाप्त हुई ॥५॥

(६) अपि च एष खलु सिंहलद्वीपः पञ्चत्रिंशदधिकशत (१३५) क्रोशदीर्घः सार्द्धद्वाविंशत्यधिकशत (१२२) क्रोशविस्तीर्ण उपलभ्यते, लङ्काद्वीपस्त्वयं चतुःशत-क्रोशदीर्घो (४००) विंशत्यधिकशत (१२०) क्रोशविस्तीर्णो रामायणे स्मर्यते। "त्रिंशद्योजनविस्तीर्णा शतयोजनमायता" इति। तत्र विस्तारसाम्येऽपि दीर्घत्वे भूयान् भेदोऽस्तीति नायं सिंहलो लङ्का भवितुमर्हति॥

इति षष्ठी विप्रतिपत्तिः ॥६॥

(६) और भी— यह सिंहलद्वीप एक सौ पैंतीस कोस लम्बा और एक सौ साढ़े बाईस कोस चौड़ा है, जबकि लंका द्वीप चार सौ कोस लम्बा और एक सौ बीस कोस चौड़ा था, ऐसा रामायण में स्मरण किया गया है। लिखा है — "लंका तीस योजन (१२० कोस)

चौड़ी और सौ योजन (४०० कोस) लम्बी थी। अतः चौड़ाई में लगभग समानता होते हुए भी लम्बाई में बहुत अधिक अन्तर है अतः सिंहलद्वीप लंका नहीं हो सकता है ॥६ ॥

छठी विसंगति समाप्त हुई ॥६ ॥

(७) अपि चेह सिंहले बहवः पर्वता महाबलिनाम्नी गङ्गा च प्रसिद्ध्यन्ति। लङ्कायां तु त्रिकूटसुवेलौ द्वौ पर्वतौ बहुधा स्मर्य्येते। यदि तत्र महाबलिगङ्गाऽप्यभविष्यत्, तत्तर्हि नूनं तस्या अपि रामायणे चरित्रप्रसङ्गे क्वच्चिदुपयोगोऽभविष्यत्। तस्मात् सिंहलस्य लङ्कात्वाख्यानं प्रमादः ॥

इति सप्तमी विप्रत्तिपत्तिः ॥७ ॥

(७) तथा वर्तमान सिंहलद्वीप में अनेक पर्वत और महाबलि नाम की गंगा नदी प्रसिद्ध है। परन्तु लंकावर्णन में त्रिकूट और सुवेल नाम के दो पर्वतों का बार बार उल्लेख मिलता है। यदि वहाँ महाबलि नाम की गंगा होती तो अवश्य ही रामायण में चरित्रप्रसंग के समय उनका उल्लेख किया गया होता। इसलिए सिंहल को लंका कहना एक भूल ही है। ॥७ ॥

सातवीं विसंगति समाप्त हुई ॥७ ॥

(८) यत्तु—अस्ति खल्वपि सिंहलद्वीपे त्रिकूटाचलो रावणविहारस्थानमशोकवाटिका चेत्येतेषां तत्र सुप्रसिद्ध्यैवास्य सिंहलस्य लङ्कात्वं संभाव्यत इति केचिदालपन्ति तन्न युक्तं प्रतीमः। प्रमाणविरोधे प्रसिद्धिमात्रस्यार्थोपपादकत्वायोगात्। अथवा सन्तु तादृशान्यपि तत्र संस्थानानि। पुष्पकविमानेन लङ्कातो भारतवर्षं प्रत्यासीदतो रावणस्य मध्येमार्गं तत्र सिंहलद्वीपेपि विश्रमार्थमवस्थानविहारादेः संभाव्यमानतया तदर्थं रावणाज्ञया तत्र तादृशसंस्थानादेर्निर्माणसंभवात्। किन्तु नैतावता शक्योऽयमपदार्थः कल्पयितुं यदुच्यते सिंहलोऽयं लङ्कास्तीति। तस्मात् सिंहलस्य लङ्कात्वं भ्रान्तिवादः ॥

इति अष्टमी विप्रतिप्रत्तिः ॥८ ॥

(८) कुछ लोग कहते हैं कि वर्तमान सिंहलद्वीप में त्रिकूट पर्वत पर रावणविहार और अशोक- वाटिका नाम के स्थानों की प्रसिद्धि से ही सिंहल द्वीप में लंका की संभावना की जाती है, परन्तु यह उचित प्रतीत नहीं होता है। क्योंकि प्रमाण के अभाव में प्रसिद्धि मात्र से ही किसी तथ्य को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। अथवा वहाँ और भी ऐसे अनेक लंका के जैसे स्थान होंगे। इनका समाधान इस प्रकार है कि लंका से पुष्पक विमान द्वारा रावण के भारतवर्ष आते हुए मार्ग में आये सिंहलद्वीप में भी विश्राम-स्थल और विहार की संभावना से अथवा रावण की आज्ञा से यहाँ भी लंका के सदृश स्थानों का निर्माण किया जाना संभव हो सकता है। अतः इतनी ही कल्पना मात्र से सिंहल को लंका द्वीप कहना उचित नहीं है ॥ इसलिए सिंहल द्वीप को लंका समझना एक भ्रान्ति मात्र है ॥८ ॥

आठवीं विसंगति समाप्त हुई ॥८ ॥

(९) यद्यपि यूनानीयग्रन्थेऽस्य सिंहलद्वीपस्य 'टापरोवेन' इति संज्ञा दृश्यते तस्य च शब्दस्य 'टापू रावण' शब्दापभ्रंशत्वप्रतिपत्त्या सिंहलस्य लङ्कात्ववमध्यवसीयते इति केचिदाहुः। तदपि भ्रान्तम्। टापूशब्दस्य भारतीयग्राम्यशब्दतया यूनानदेशे तत्प्रचारायोगात्। अस्तु वा तस्यापि रावणाधिकृतवाद् रावणटापूत्वं किन्तु नैतावता तस्य लङ्कात्वमुपपद्यते। लङ्कावदेव द्वीपान्तराणामपि महाप्रतापिरावणाधिकृतत्वसंभवात्। वस्तुतस्तु बौद्धग्रन्थे सिंहलस्य ताम्रपर्णसंज्ञोपलभ्यते, तस्यैवापभ्रंशेनायं, 'टापूरोवेन' शब्दः संभाव्यत इति रावणटापूत्वमप्यस्य सिंहलस्य दूरापास्तम्। तस्मादस्य सिंहलस्य लङ्कात्वाख्यानमसङ्गतम्॥

इति नवमी विप्रतिप्रत्ति॥९॥

(९) यद्यपि यूनानी ग्रन्थों में सिंहल द्वीप का नाम "टापरोवेन" लिखा मिलता है। उसी टापरोवेन शब्द को "टापू रावण" शब्द का अपभ्रंश मानकर कुछ लोग सिंहलद्वीप को ही लंका मानते हैं। यह भी मात्र एक भ्रान्ति है। क्योंकि "टापू" शब्द भारतीय ग्राम्य भाषा का शब्द है, जो यूनानी भाषा में प्रचलित नहीं हो सकता है। अथवा इसका भी रावण के अधिकार में होने के कारण "रावण टापू" नाम रखा जा सकता है, परन्तु इतने ही आधार पर इस द्वीप को लंका नहीं माना जा सकता है। अथवा लंका के समान ही अन्य द्वीप भी महाप्रतापी रावण के अधिकार में रहे होंगे। (उन्हीं में सिंहलद्वीप भी एक हो सकता है)। वस्तुतः बौद्ध ग्रन्थों में सिंहलद्वीप का नाम "ताम्रपर्ण" मिलता है, उसी ताम्रपर्ण का अपभ्रंश शब्द टोपरोवेन हो सकता है। अतः इस आधार पर सिंहलद्वीप को टापू रावण मानने का खंडन हो जाता है। इसलिए सिंहलद्वीप को लंका कहना सर्वथा असंगत लगता है॥९।।

नवीं विसंगति समाप्त हुई॥९॥

(१०) यदपि च सेतुबन्धरामेश्वरात् सिंहलद्वीपपर्य्यन्तं मध्येसमुद्रमस्ति किञ्चित्किञ्चिदन्तरेण पर्वतानां सन्निवेशः। तदवश्यं रामचन्द्रकृतसेतोर्भग्नावशेषं लक्षणं संभाव्यते। तदेव चैतस्य सिंहलद्वीपस्य लङ्कात्वे जागरूकं प्रमाणं भवितुमर्हतीति केचिदाक्षिपन्ति। तदुपहासास्पदं तुच्छप्रायम्। नहि सेतुं बध्नता रामेण मध्यसमुद्रं पर्वता अवरोपिताः, येनैतेषां सेतुचिह्नत्वं संभाव्येत। अपि तु समुद्रोपरि तीर्य्यमाणाभिः शिलाभिरयं सेतुः प्रक्लृप्त आसीत्। ताश्चावश्यं सेतुभङ्गे यतस्ततो विप्लुता विनष्टा एवाभविष्यन्। रामेश्वरसिंहलयोरन्तराले तु पर्वताः पृथ्वीनिर्म्माणकालादेव प्रकृत्या सिद्धाः संभाव्यन्ते न त्वेते रामेण संस्थापिताः। तस्मादेतान् पर्वतानालोक्य सिंहलस्य लङ्कात्वव्यवस्थापनप्रयासो बालक्रीडामात्रमित्युपेक्ष्यते॥

इति दशमी विप्रतिप्रत्तिः॥१०॥

(१०) सेतुबन्ध रामेश्वर से सिंहलद्वीप तक समुद्र में कुछ कुछ दूरी पर पर्वतों का समूह है, अतः कुछ लोगों का कहना है कि अवश्य ही वे पर्वत श्री रामचन्द्र द्वारा बनाये गये सेतु के भग्नावशेष के रूप में प्रतीत होते हैं और यही प्रमाण सिंहल का लंका मानने में एक पुष्ट प्रमाण हो सकता है। परन्तु यह तर्क लगभग तुच्छ सा है और उपहास करने

योग्य है। क्योंकि भगवान् राम ने सेतुबन्ध के समय पर्वतों को समुद्र के अन्दर स्थापित नहीं किया था, जो इन पर्वतों को सेतु के अवशेष मान लिये जावें, अपितु श्री राम द्वारा बांधा गया सेतु समुद्र के ऊपर तैरती हुई शिलाओं द्वारा तैयार किया गया था। वे शिलाएँ अवश्य ही सेतु के टूटने पर इधर उधर बिखर कर नष्ट हो गई होंगी। रामेश्वर और सिंहलद्वीप के मध्य की पर्वतश्रृंखलाएँ तो पृथ्वीनिर्माण-काल से ही हैं, ऐसा प्राकृतिक अनुसन्धानों से सिद्ध है। ये पर्वतखण्ड श्री राम द्वारा स्थापित पर्वतशिखर कदापि नहीं हो सकते हैं। इसलिए इन पर्वतों को देखकर सिंहलद्वीप को लंका बताने का प्रयास मात्र बालक्रीड़ा (चपलता) समझकर उपेक्षा करने योग्य है।

दसवीं विसंगति समाप्त हुई ॥१०॥

(११) यच्च भारतवर्षाद्दक्षिणतो निरक्षस्थाने कश्चिदपि स्थलप्रदेशो नोपलभ्यते। तस्मात् सिंहल एवायं लङ्काद्वीपः स्यात्। भारतवर्षीयार्य्याणां सिंहले निरक्षत्वभ्रमसंभवादिति केचिदुत्प्रेक्षन्ते। तदेतदेषामुक्तमुपहासास्पदं बालचापल्यमात्रमतिधाष्ट्र्यं वा। सर्वजगद्गुरूणामार्य्यमहामहर्षीणां विद्यासंबन्धे भ्रमकल्पनायाः साहसिकत्वात्। को हि नाम सभ्यो विद्वानखिलजगत्कर्तृणां महामहिमभाजामुपदेशे तावदित्थं भ्रमकल्पनां कुर्याद् ऋते संकीर्णहृदयादसभ्यात् पण्डितंमन्यात्। मेसोपोटेमियादेशे निमरूदप्रतिष्ठापितं बाबिलन्नगरं सम्प्रति नोपलभ्यत इत्येतावता बगदादनगरमेवासीद् बाबिलन्नगरमिति चेत् कश्चिदभ्युपगच्छेत् को नाम तस्य श्रद्दध्यात्। संभवति हि बहुभिः कालैः केषांचिन्नगराणां विध्वंसो यथा वेदप्रसिद्धानां यव्यावती वसोर्धाराप्रभृतीनाम्। यथा वा पुराणप्रसिद्धानां वस्वोकसारामहोदयपुष्कलावतीप्रतिष्ठानादीनामद्योपलब्धिर्नास्ति। भवति च बहूनां द्वीपानामपि कालेन समुद्रगर्भे प्रवेशः। उक्तं च तथा स्कान्दे प्रभासखण्डे द्वासप्ततिशततमाध्याये(१७२) ॥

भरतो नाम राजाभूदाग्नीध्रः प्रथितः क्षितौ॥
यस्येदं भारतं वर्षं नाम्ना लोकेषु गीयते॥१॥
भारतं नवधा कृत्वा पुत्रेभ्यः प्रददौ पृथक्॥
तेषां नामाङ्कितान्येव ततो द्वीपानि जज्ञिरे॥२॥
इन्द्रद्वीपः कसेरूश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान्॥
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गान्धर्वस्त्वथ वारुणः॥३॥
अयं तु नवमो द्वीपः कुमार्य्यासंज्ञितः प्रिये॥
अष्टौ द्वीपाः समुद्रेण प्लाविताश्च तथापरे॥४॥
ग्रामादिदेशसंयुक्ताः स्थिताः सागरमध्यगाः।
एक एव स्थितस्तेषां कुमार्य्याख्यस्तु सांप्रतम्॥५॥—इति।

एतेन पुत्रेभ्यः समानविभागात् तदात्वे, नवानामपि भारतवर्षभागानां विस्तारसाम्यं प्रतीयते। कालेन तु तेष्वष्टद्वीपानां बहुभिर्भागैः समुद्रगर्भे प्रवेशादतितुच्छभागैरद्या-

वशेषः स्मर्य्यते। तथा च तद्रीत्या लङ्काद्वीपस्यापि सर्वात्मना संभाव्यते समुद्रगर्भे प्रवेशाद्विलोप इति नैतावता स्थानान्तरस्य स्थानान्तरसंज्ञया व्यपदेशो विद्विद्भिः कर्तुं युज्यते तस्मात्सिंहले लङ्काशब्दप्रयोगो नितान्तमज्ञानाद् इति बोध्यम् ॥

इत्येकादशी विप्रतिप्रत्तिः ॥११ ॥

(११) कुछ लोगों की मान्यता है कि भारतवर्ष के दक्षिण भाग में कोई भी स्थल प्रदेश निरक्ष (० डिग्री) स्थान पर स्थित नहीं है। अतः सिंहलद्वीप में ही निरक्ष स्थान का भ्रम हो गया होगा। परन्तु ऐसे लोगों द्वारा कही गई बातें मात्र उपहास के योग्य हैं, बालचपलता (अनभिज्ञता) अथवा धृष्टता मात्र है। क्योंकि समस्त संसार के गुरु, महान् ज्ञानी आर्य महर्षियों की विद्या के सम्बन्ध में जो भ्रामक कल्पना जैसे शब्द का प्रयोग करने का दुस्साहस करते हैं। केवल तुच्छ हृदय, असभ्य और स्वयं को पण्डित मानने वाले अज्ञानियों को छोडकर कौन सभ्य और विद्वान् इस प्रकार समस्त संसार के ज्ञान को प्रत्यक्ष करने वाले महान् एवं अत्यन्त उच्चकोटि के विद्वानों के उपदेशवाक्यों में इस प्रकार की भ्रामक कल्पनाएँ करने का प्रयास कर सकता है? इसी संबंध में कहते हैं कि मेसोपोटेमिया देश में निमरूद द्वारा स्थापित बाबिलन् नगर आज उपलब्ध नहीं है और इसके लिए कोई बगदाद को ही बाबिलन् बतलाने लग जाता है तो इस बात पर कौन विश्वास करेगा। यह सम्भव है कि लम्बा समय व्यतीत हो जाने से कुछ नगरों का विध्वंस हो जाता है यथा वेदों में वर्णित "यव्यावती" और "वसोर्धारा" नाम के नगर आज उपलब्ध नहीं है अथवा जैसे पुराणों में प्रसिद्ध "वस्वोकसारा", "महोदय","पुष्कलावती" इत्यादि स्थल आज उपलब्ध नहीं हैं। बहुत से द्वीप समय के दीर्घ अन्तराल के पश्चात् समुद्र में डूब गये हैं, जैसा कि स्कन्द पुराण के प्रभासखण्ड में कहा भी गया है —

"यज्ञाग्नि में हवन करने वाला, सम्पूर्ण पृथ्वी पर प्रसिद्ध भरत नाम का राजा हुआ है, जिसके नाम से निर्धारित भारतवर्ष तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ॥१ ॥

भरत ने इस भारतवर्ष को नौ भागों में विभक्त करके अपने पुत्रों को अलग अलग दे दिया था, उन्हीं के नाम से इन नौ द्वीपों का नाम निर्धारित किया गया ॥२ ॥

वे द्वीप हैं इन्द्रद्वीप, कसेरूद्वीप, ताम्रपर्ण, नाग, गभस्तिमान्, सौम्य, गन्धर्व और वारुणद्वीप ॥३ ॥

"हे प्रिये! यह नवाँ द्वीप कुमारी द्वीप के नाम से जाना गया है। अन्य आठ द्वीप तो समुद्र में जलमग्न हो गये, जो नगर और गांवों सहित समुद्र के बीच में स्थित थे, परन्तु उनमें से आज कन्या कुमारी नाम का एक द्वीप उपलब्ध है ॥४-५ ॥ (स्क.पु.प्र.सं. १७२)

इस प्रकार पुत्रों को समान भाग वितरित करने से भारतवर्ष का नौ भागों में विस्तार उचित प्रतीत होता है। दीर्घकाल के व्यतीत हो जाने पर उन आठ द्वीपों के बहुत से भागों के समुद्र के गर्त में प्रविष्ट हो जाने पर अवशिष्ट भाग से ही उनके अवशेषों की कल्पना की जाती है। इसी प्रकार लंका द्वीप के भी समुद्र के गर्भ में प्रविष्ट होने की सम्भावना हो सकती है अतः इतने मात्र से ही विद्वानों द्वारा एक स्थान का नाम दूसरे स्थान के नाम के आधार पर ही निर्धारित कर देना, उचित नहीं है। अतः सिंहल द्वीप को मात्र अज्ञानतावश लंका शब्द से अभिहित किया जाता है, ऐसा स्पष्ट है ॥११ ॥

ग्यारहवीं विसंगति समाप्त हुई ॥११ ॥

(१२) अपि वा अस्त्येव खल्वस्या लङ्काया भग्नावशेषचिह्नमद्यापि॥ तथा हि यस्तावदुपलभ्यतेऽद्यत्वे सिंहलद्वीपात् पश्चिमतो नातिदूरे लक्के दीव (Lakkadiv = Laccadive) इत्युपद्वीपः स एव तु पुरा लङ्काद्वीप आसीदित्यध्यवस्यामः सन्ति हि तस्य लङ्काद्वीपत्वे षडुपष्टम्भकानि॥६॥

(१) तत्र तावन्नामसादृश्यं पश्यामः लक्केदीव (Lakkadiv = Lacca) इत्यवश्य लङ्काद्वीपशब्दस्य रक्षोद्वीपशब्दस्य वापभ्रंशो भवितुमर्हतीत्येकम्॥१॥

(२) यच्च लक्केदीवप्रदेशात् दक्षिणतो निरक्षदेशोपह्वरे मालदीवनाम (Maldvi) स्थानमुपलभामहे तन्नूनं मालेयद्वीप इति वा मालिद्वीप इति वा संभाव्यते। मालिसंज्ञस्य राक्षसविशेषस्य निवासोपलक्षितं स्थानं मालिद्वीपः। मालिनः पुत्राणां वा अनलानिलहरसंपातीनां मालेयसंज्ञा स्मर्य्यते। ते चैते विभीषणमातुला विभीषणामात्याश्चासान्।

"अनलश्चानिलश्चैव हरः संपातिरेव च।
एते विभीषणामात्या मालेयास्ते निशाचराः।" (उ.कां. ५।४३)

इति रामायणोक्तेः। तन्निवासोपलक्षितं स्थानं मालेयद्वीपः। स चायं मालदीवाख्यो मालिद्वीपोऽद्यत्वे लक्कद्वीपात् पृथक्त्वेनोपलभ्यमानोऽपि पुरात्वे नूनमासीदयं लङ्काया एवैको दक्षिणः प्रान्तः। लङ्काधिपतेर्माल्यवतः कनिष्ठभ्रातृत्वेन तत्सेनापतित्वेन च श्रुतस्य मालेर्लङ्कातोऽतिदूरे द्वीपान्तरे स्थातुमनवक्लृप्तत्वात्। तथा च लङ्कावासित्वेन प्रसिद्धस्य मालिनो राक्षसस्य निवासस्थानरूपमालिद्वीपसांनिध्योपपत्या ध्रुवमस्य लक्कदीवस्य लङ्काद्वीपत्वमुपपन्नं भवतीति द्वितीयम्॥२॥

(३) पूर्वं तावदयमेक एवार्थ आसील्लङ्काद्वीपश्च मालिद्वीपश्च अद्यतनोपलब्धलक्केदीवादारभ्यनिरक्षवृत्तादपि दक्षिणतः कियद्दूरपर्य्यन्तं लङ्कायाः सन्निविष्टत्वादद्य पृथक्त्वेनोपलब्धयोरपि लक्केदीवमालदीवयोः पुराकाले एकस्या एव लङ्कायाः प्रान्तविशेषत्वेनोपगन्तव्यत्वात्। तथा हि लङ्कायामस्यां सर्वतः पूर्वं साल कटंकटवंश्या राक्षसा वसन्ति स्म। तेषां च तद्वंश्य एव माल्यवन्नाम राजासीत्। माल्यवतोऽवरजः सुमाली प्रधानमंत्री सर्वकनिष्ठस्तु माली प्रधानसेनापतिरित्येवं त्रयोप्येते भ्रातरः सुकेशपुत्रा विद्युत्केशपौत्राः प्रहेतिप्रपौत्राः अस्या लङ्कायाः प्राधान्येन शासका आसन्। बलदुर्मदान्धैरेतैर्भूयो भूयः प्रपीडितानां प्रजानां रक्षार्थमेते त्रयोपि विष्णुना हतराज्याधिकारा लङ्कातो निष्कासिता अधस्तात्पातालं गत्वा सपरिवारास्तत्र न्यूषुः। उक्तं चैतत्सर्वमुत्तररामायणे—

"ततः काले सुकेशस्तु जनयामास राघव॥
माल्यवन्तं सुमालिं च मालिं च बलिनां वरम्"॥१॥(५।५)
"ऊचुस्ते विश्वकर्म्माणं शिल्पिनां वरमव्ययम्॥

अस्माकमपि तावत् त्वं गृहं कुरु महामते" ॥२ ॥ (५ ।२०)
"विश्वकर्मा ततस्तेषां निवासं निर्दिदेश ह ॥
दक्षिणस्योदधेस्तीरे त्रिकूटो नाम पर्वतः ॥३
सुवेल इति चाप्यन्यो द्वितीयो राक्षसेश्वर ॥
शिखरे तस्य शैलस्य मध्यमेऽम्बुदसंनिभे ॥४ ॥
त्रिंशद्योजनविस्तीर्णा शतयोजनमायता ॥
मया लङ्केति नगरी शक्राज्ञप्तेन निर्मिता ॥५ ॥
तस्यां वसत दुर्धर्षा यूयं राक्षसपुङ्गवाः ।
विश्वकर्मवचः श्रुत्वा गत्वा तामवसन् पुरीम्" ॥६ ॥(५ ।२८)
"लङ्कानामपुरी दुर्गा त्रिकूटशिखरे स्थिता ।
तत्र स्थिताः स्म बाधन्ते सर्वान् देवान्निशाचराः" ॥७ ॥(६ ।१५)
"इति माली सुमाली च माल्यवांश्चैव राक्षसाः ॥
बाधन्ते समरोद्धर्षा ये च तेषां पुरःसराः" ॥८ ॥(६ ।७)
'ये त्वया निहतास्ते तु पौलस्त्या नाम राक्षसाः ।
सुमाली माल्यवान् माली ये च तेषां पुरःसराः ॥९ ॥
सर्व एते महाभागा रावणाद् बलवत्तराः" ।(८ ।२४)
अशक्नुवन्तस्ते विष्णुं प्रतियोद्धुं बलार्दिताः ।
त्यक्त्वा लङ्कां गता वस्तुं पातालं सहपत्नयः ॥१० ॥(८ ।२२)
सुमालिनं समासाद्य राक्षसं रघुसत्तम ॥
स्थिताः प्रख्यातवीर्य्यास्ते वंशे सालकटंकटे ॥११ ॥(८ ।२३) इत्यादि ॥

अथ माल्यवत्प्रभृतिषु सालकटङ्कटाख्येषु पातालं गतेषु सत्सु लङ्कामेतां कुबेरः समागत्य शशास। कालेन तु केनचित् माल्यवद्भ्रातुः सुमालिनः कन्यायां कैकस्यां पुलस्त्यान्महर्षे रावणकुम्भकर्णशूर्पणखाविभीषणा उदपद्यन्त। तद्बलदर्पितः सुमाली स्वदौहित्राय रावणाय लङ्कां कुबेराद् ग्रहीतुं प्रेरयामास। स रावणो विनैव युद्धं कुबेराल्लङ्कां गृहीत्वा तत्र राजाऽभवत्॥ तदवधि पौलस्त्या राक्षसाः प्राधान्येन लङ्कामधिष्ठाय सालकटङ्कटानपि राक्षसान् स्वायत्तान् पालयामासुः। तथा चैतस्या लङ्कानगर्य्यास्त्रेधा कक्षाविभाग आसीत्। तत्र मध्यमे लङ्कार्धे पौलस्त्यानां रावणकुम्भकर्णविभीषणप्रमुखानामधिपतीनां राजप्रासादास्त्रिकूटाचले सन्निविष्टा अभूवन्। उत्तरे तु लङ्कार्धे रावणजातीयाः पौलस्त्या नाम राक्षसा वसन्ति स्म। अथ दक्षिणे लङ्कार्धे सालकटङ्कटा माल्यवत्सुमालिसुमालिप्रमुखा राक्षसा न्यूषुः। सेयमेकैव लङ्का त्रिधा विभक्तासीत्। तत्र मध्यमो भागो लङ्कायाः समुद्रगर्भे निमग्नः कालेनोच्छिन्नोऽभूदिति नेदानीमुपलभ्यते। उत्तरप्रान्तस्तु भग्नावशिष्टः कश्चिद्भागो रक्षोद्वीपनामा तदपभ्रंशेन लक्केदीव इत्युच्यते। एवमस्या दक्षिणः कश्चन

मालेयाध्युषितो भागो भग्नावशेषो मालिद्वीपस्तदपभ्रंशेन मालवदीवनाम्नाभिधीयते ॥ इति तृतीयम् ॥३ ॥

(४) अपि चास्मिन् लक्कदीवादिमालदीवान्तोपद्वीपे निरक्षगर्भत्वमप्युपपद्यते। तथा हि पुरायुगे तावदियं लङ्कानगरी निरक्षोपह्वरस्थे कस्मिंश्चित् सुवेलपर्वतत्रिकूटपर्वताभ्यामुपसंपन्ने द्वीपे त्रिकूटाद्रिमध्यमशिखरोपरि सन्निविष्टाऽऽसीत्। सा च पूर्वापरतो विंशत्यधिकशतक्रोशैर्विस्तीर्णा दक्षिणोत्तरतस्तु चतुश्शतक्रोशदीर्घासीदिति रामायणवचनादवगम्यते।

त्रिंशद्योजनविस्तीर्णा शतयोजनमायतेति तत्रोक्तेः। तेन त्रिकूटैकशिखरस्थाया नगरय्यर्याश्चतुःशतक्रोशमितत्वे तदुपलक्षितैतद्द्वीपस्य ततोप्यधिकदीर्घत्वं संभाव्यते। त्रिकूटादुत्तरतः सुवेलशैलाभिव्याप्त्या चतुर्दिक्षु समुद्रकूलेषूपत्यकाप्रदेशाभिव्याप्त्या चैतस्या नगर्य्या बहिर्द्धा परिसरस्थलानमाधिक्यात्। तथा चावश्यं मालदीवादप्यस्माद्दक्षिणतो निरक्षपर्य्याप्ता लङ्काद्वीपस्य दक्षिणपरिसरप्रदेशाः पुरात्वे आसन्निति गम्यते। तथा च नगरीविशेषवाचिनो लङ्काशब्दस्य तदुपलक्षित राष्ट्रेपि मिथिलादिशब्दवल्लोकव्यवहारसिद्धतया द्वीपाभिप्रायेणापि प्रयुज्यमानत्वाल्लङ्काया निरक्षत्वोपपत्तिः ॥इति चतुर्थम् ॥४ ॥

(५) अथेयमुज्जयिनी नगरी ग्रीनवीचमध्यरेखातः साधिकपञ्चसप्तति- (७५ ।४३) मिते पूर्वदेशान्तरे सन्निविशते। लङ्कापीयं पुरात्वे तावत्येव पूर्वदेशान्तरे संनिविष्टासीदिति लङ्काया उज्जयिन्याश्च दक्षिणोत्तरतः समसूत्रत्वमापतति। समसूत्रत्वाच्च भारतवर्षीयार्य्यनिदर्शिता भूमध्यरेखा तदुभयस्पर्शिन्युपपद्यते। तेन देशान्तरतोऽपि लक्कदीवमालदीवयोरेव लङ्कात्वं सिध्यतीति पञ्चमम् ॥५ ॥

(६) अपि च सिंहलद्वीपे सोमानाम्न्या रजक्या निवासस्थानमासीदिति सोमवत्यमावास्योपाख्यानादवगम्यते। पुराकालादेव तु दक्षिणापथस्थानां द्रविडादीनां सिंहलद्वीपे भूयांसो वाणिज्यव्यापाराः प्रचलन्ति स्म। बहूनां च दाक्षिणात्यानां राज्ञां सिंहलद्वीपे युद्धानि भवन्ति स्मेति प्रचलितकतिपयेतिहासपिटकाद्विज्ञायते। विजयश्रीविक्रमराजादयो बहवः सूर्य्यवंश्या राजानस्तत्र राज्यं कुर्वन्ति स्म। कुमारदासश्चात्र प्रसिद्धो राजसीत्। तदित्थं मनुष्याणामेवात्र सिंहलद्वीपे पुराकालादारभ्येदानीं यावत् संनिवेशो यातायातं चाख्यायते। न तु राक्षसानामुपनिवेशः पुराकालादिदानीं यावदिह कुत्रापि स्मर्य्यते। लङ्काद्वीपे तु राक्षसानामेवाऽसीत् पुरात्वे निवासस्थानमिति भेदाः। तस्मान्नायं सिंहलद्वीपः कदापि लङ्कासीदिति निश्चिनुमः। अथैतयोस्तु लक्कदीवमालदीवयोरद्यापि मनुष्यमांसभक्षकत्वं बहुषु दृश्यते इति राक्षसवृत्तिप्राणिनामिहोपनिवेशादनयोर्लङ्कात्वं संभाव्यते इति षष्ठम् ॥६ ॥

तथा च सिध्यत्यन्यः सिंहलद्वीपोऽन्यश्च लङ्काद्वीप इति युक्तं भागवतादिषु सिंहल-लङ्कयोः पार्थक्येनाभिधानम्। अयुक्तं च सिंहलस्य लङ्काभिधानम्।

इति द्वादशी विप्रतिपत्तिः ॥१२॥

इति भारतपरिचये लङ्काप्रसङ्गः समाप्तः ॥५॥

(१२) तथा लंका के भग्नावशेष के जो चिह्न आज भी उपलब्ध हैं, वे हैं — सिंहलद्वीप से पश्चिम की ओर कुछ ही दूरी पर लक्केदीव नाम का उपद्वीप है, वही प्राचीन काल में लंका द्वीप था, ऐसा हम दृढ़ निश्चयपूर्वक कहते हैं। यह लक्केदीव ही लंकाद्वीप है, इस सम्बन्ध में छः ठोस प्रमाण प्रस्तुत हैं:—

(१) इस सम्बन्ध में पहला प्रमाण है कि हम लक्केदीव अथवा लक्का तथा लंका शब्दों में परस्पर नाम का सादृश्य देखते हैं। अतः अवश्य ही लंकाद्वीप अथवा रक्षोद्वीप शब्द का अपभ्रंश रूप (लक्कादीव) हो सकता है ॥१॥

(२) और जो लक्केदीव प्रदेश से दक्षिण की ओर निरक्ष देश के समीप मालदीव नाम का स्थान है, वह अवश्य ही मालेयद्वीप अथवा मालिद्वीप प्रतीत होता है। मालि नाम के राक्षस विशेष का निवासस्थान 'मालिद्वीप' प्रतीत होता है। मालि राक्षस के चार पुत्र अनल, अनिल, हर और संपाति नाम के थे, वे ही मालेय कहे जाते थे। वे विभीषण के मामा तथा मंत्री भी थे। रामायण में लिखा है—

"अनल, अनिल, हर और संपाति नाम के विभीषण के आमात्य तथा मालेय नाम के राक्षस थे॥" (वा.रामा.उ. ५/४३)

उनके निवासस्थान मालिद्वीप कहे गये हैं। वर्तमान में वही यह मालदीव नाम का मालिद्वीप आज भी लंकाद्वीप से अलग होते हुए भी प्राचीनकाल में निश्चित रूप से लंका का ही एक दक्षिण प्रान्त था। लंकाधिपति माल्यवान् का छोटा भाई तथा सेनापति, जो मालि नाम से प्रसिद्ध हुआ है, उसका निवासस्थान लंका से अधिक दूर नहीं हो सकता है तथा लंकावासी होने के कारण प्रसिद्ध मालि राक्षस का निवासस्थान मालिद्वीप हुआ तथा इसी कारण इसके समीप स्थित लक्केदीव को ही लंका मानना उचित प्रतीत होता है। यह द्वितीय प्रमाण है ॥२॥

(३) प्राचीनकाल में लंकाद्वीप और मालिद्वीप एक ही थे, क्योंकि आज उपलब्ध लक्केदीव जो निरक्ष बिन्दु पर स्थित है, उसके दक्षिण की ओर कुछ ही दूरी पर लंकाद्वीप स्थित था, अतः आज लक्केदीव और मालिदीव के पृथक् रूप से उपलब्ध होने पर भी प्राचीन काल में लंका के ही प्रान्त विशेष के रूप में माने जा सकते हैं। इसी प्रकार इस लंकाद्वीप में प्राचीनकाल में सालकटंकट वंश के राक्षस निवास करते थे। उन्हीं का वंशज माल्यवान् राक्षस राजा था। माल्यवान् का छोटा भाई सुमाली जो प्रधानमंत्री था तथा सबसे छोटा भाई माली प्रधान सेनापति था। इस प्रकार से ये तीनों ही भाई सुकेश के पुत्र, विद्युत्केश के पौत्र तथा प्रहेति के प्रपौत्र थे, जो इस लंका के प्रमुख शासक थे। ये तीनों ही अपने शौर्य के अहंकार में दुर्मदान्ध थे, जिसके कारण पीड़ित प्रजा की रक्षा करने के लिए भगवान् विष्णु ने इन तीनों को ही राज्यच्युत करके लंका से निष्कासित कर दिया था। लंका से निकाले जाने के पश्चात् ये तीनों नीचे पाताल में जाकर सपरिवार वहीं निवास करने लगे। यह सम्पूर्ण आख्यान उत्तर रामायण में कहा गया है।:—

"हे रघुनन्दन ! तदनन्तर समय आने पर सुकेश ने माल्यवान्, सुमाली और माली नाम के तीन पुत्रों को जन्म दिया, जिनमें माली बलवानों में श्रेष्ठ था ॥१ ॥

वे शिल्पियों में सर्वश्रेष्ठ विश्वकर्मा से बोले- हे महामते ! आप हमारे लिए भी एक विशाल भवन का निर्माण कीजिए ॥२ ॥

यह सुनकर विश्वकर्मा ने एक ऐसे ही निवासस्थान का पता बताया और कहा कि राक्षसेश्वर ! दक्षिण समुद्र के तट पर एक त्रिकूट नाम का और दूसरा सुवेल नाम का पर्वत विख्यात है ॥ उस त्रिकूट पर्वत के मंझले शिखर पर जो हरा-भरा होने के कारण मेघ के समान नीला दिखाई देता है, वहाँ मैंने इन्द्र की आज्ञा से तीन सौ योजन चौड़ी और सौ योजन लम्बी लंका नाम की नगरी का निर्माण किया है ॥३-४-५ ॥

हे दुर्घर्ष राक्षसश्रेष्ठों ! तुम उस लंका नगरी में जाकर निवास करो। विश्वकर्मा के वचनों को सुनकर ये श्रेष्ठ राक्षस उस पुरी में निवास करने लगे ॥६ ॥

त्रिकूट नाम के पर्वत पर जो लंका नाम की नगरी है, उस दुर्गम नगरी में रहकर वे राक्षस समस्त देवताओं को क्लेश पहुंचाते रहते थे ॥७ ॥

माली, सुमाली और माल्यवान् ये तीनों ही युद्ध में अग्रणी राक्षस और उनके अग्रगामी सैनिक हमें बड़ा कष्ट दे रहे हैं ॥८ ॥

हे राम ! आपने पुलस्त्य वंश के जिन जिन राक्षसों को मारा है, जिनमें सुमाली, माल्यवान्, और माली अधिक बलशाली थे, ये सभी महाभाग रावण से अधिक बलशाली थे ॥९ ॥

वे किसी प्रकार भी भगवान् विष्णु का सामना नहीं कर सके और सदा ही उनके बल से पीड़ित होते रहे। अतः समस्त निशाचर लंका छोड़कर अपनी पत्नियों के साथ पाताल में चले गये ॥१० ॥

हे रघुश्रेष्ठ ! वे विख्यात, पराक्रमी निशाचर सालकटंकट वंश में विद्यमान राक्षस सुमाली का आश्रय लेकर रहने लगे ॥११ ॥

तदनन्तर सालकटंकट नाम से प्रसिद्ध माल्यवान् आदि राक्षसों के पाताल में चले जाने के पश्चात् लंका पर कुबेर ने आकर शासन किया। कुछ समय व्यतीत हो जाने के पश्चात माल्यवान् के भाई सुमाली की पुत्री कैकशी का पुलस्त्य महर्षि से विवाह होने पर रावण, कुम्भकर्ण, शूर्पणखा और विभीषण उत्पन्न हुए। उनके पराक्रम से गर्वित होते हुए सुमाली ने अपने दौहित्र रावण को कुबेर से लंका वापस लेने के लिए प्रेरित किया। तब रावण ने बिना युद्ध किये ही कुबेर से लंका छीन ली और वहाँ का राजा बन गया।तभी से लंका में पुलस्त्यवंशीय राक्षसों ने शासन करके सालकटंकट आदि राक्षसों की भी अपने राज्य के अन्तर्गत पालना की। तब इस लंका नगरी को तीन भागों में विभक्त किया गया, उनमें बीच में लंका के अर्द्धभाग में त्रिकूट पर्वत पर रावण, कुम्भकर्ण, शूर्पणखा और विभीषण के राजमहल बने हुए थे। उत्तर में लंका के अर्ध भाग में रावण की जाति के ही पुलस्त्यवंशीय राक्षस निवास करते थे तथा लंका के दक्षिणार्धभाग में सालकटंकट जाति के राक्षस जिनमें माल्यवान्, माली और सुमाली इत्यादि प्रमुख थे, ऐसे राक्षस निवास करने लगे। इस प्रकार यह एक लंका ही तीन भागों में विभक्त हो गई। उनमें से मध्य भाग समय व्यतीत हो जाने पर समुद्र में डूब कर छिन्न-भिन्न हो गया, जो इस समय उपलब्ध नहीं है। इसी लंका का उत्तरी भाग नष्ट-भ्रष्ट होकर अवशेष के रूप में रक्षोद्वीप नाम से कहा जाने लगा, जिसका

अपभ्रंश लक्केदीव कहा जाता है। इसी प्रकार मालेय नाम के राजा का निवास स्थान लंका के दक्षिण भाग का भग्नावशेष भाग मालिद्वीप कहा जाने लगा, जिसका अपभ्रंश रूप मालदीव कहा जाता है ॥३ ॥

तीसरा प्रमाण समाप्त हुआ ॥३ ॥

(४) तथा इन्हीं लक्केदीव और मालदीव नामक उपद्वीपों में ही निरक्ष भाग (० डिग्री) उचित बैठता है, तथा प्राचीन काल में यह लंका नगरी अक्षांशरहित स्थान के समीप में किसी सुवेल और त्रिकूट पर्वतों से बने द्वीप में त्रिकूट पर्वत के मध्य शिखर पर स्थित थी। वाल्मीकि रामायण से स्पष्ट होता है कि वह लंका नगरी पूर्व से पश्चिम तक १२० कोस चौड़ी और दक्षिण से उत्तर तक ४०० कोस लम्बी विस्तारयुक्त थी।

वहाँ कहा गया है कि यह लंका तीस योजन चौड़ी और सौ योजन लम्बी थी। इससे प्रतीत होता है कि त्रिकूट पर्वत के एक शिखर पर स्थित यह लंका नगरी ही चार सौ कोस की बताई गई है। इससे स्पष्ट होता है कि यह द्वीप तो इससे भी अधिक बड़ा हो सकता है, क्योंकि त्रिकूट पर्वत से उत्तर की ओर सुवेल पर्वत की चारों दिशाओं में समुद्रतट पर घाटियों से घिरी हुई इस नगरी के बाहर की ओर बहुत बड़ा मैदान था। अतः प्राचीनकाल में अवश्य ही मालदीव से भी दक्षिण की ओर सम्पूर्ण निरक्ष पर्याप्त लंकाद्वीप के आस पास के दक्षिण की ओर फैले हुए प्रदेश थे, ऐसा प्रतीत होता है। जैसे मिथिला इत्यादि नगरी के नाम से सम्पूर्ण राष्ट्र (जनपद) प्रसिद्ध हो गया वैसे ही लंका नाम की नगरी के नाम से उपलक्षित सम्पूर्ण द्वीप को ही लंका शब्द से व्यवहृत किया जाने लगा और इसीलिए सम्पूर्ण लंकाद्वीप को ही निरक्ष देश कहा जाना उचित ही है॥

चतुर्थ प्रमाण समाप्त हुआ ॥४ ॥

(५) यह उज्जयिनी नगरी ग्रीनवीच भूमध्य रेखा से पचहत्तर डिग्री अंश से अधिक पूर्व देशान्तर पर स्थित थी। पुराकाल में लंका भी इतने ही पूर्व देशान्तर पर स्थित थी। इस प्रकार लंका और उज्जयिनी की देशान्तर रेखाएँ दक्षिण और उत्तर में समान सूत्र पर ही स्थित हैं। अतः समान सूत्ररेखा पर स्थित होने के कारण भारतीय आर्यों द्वारा निर्दिष्ट भू-मध्य रेखा इन नगरियों (लंका और उज्जयिनी) का स्पर्श करती हुई विद्यमान है। इस प्रकार देशान्तर रेखा के अनुसार भी लक्केदीव और मालदीव दोनों ही लंकाद्वीप थे, ऐसा सिद्ध होता है ॥५ ॥

पाँचवां प्रमाण समाप्त हुआ ॥५ ॥

(६) सोमवती अमावस्या के उपाख्यान से स्पष्ट होता है कि सिंहलद्वीप में सोमा नाम की धोबिन का निवासस्थान था। प्राचीन काल से ही दक्षिण प्रान्त में स्थित द्रविड़ों का सिंहल द्वीप में निरन्तर व्यापार-व्यवहार होता था। कुछ इतिहासग्रन्थों से प्रतीत होता है कि बहुत से दक्षिण के राजाओं के सिंहलद्वीप में युद्ध भी हुए थे। विजय श्री विक्रम नामक प्रसिद्ध राजा थे राज इत्यादि सूर्यवंशीय राजा वहाँ राज्य करते थे। यहाँ एक कुमार अनेक दास इस सिंहलद्वीप में मनुष्यों का ही निरन्तर यातायात रहा है, ऐसा बताया गया है। प्राचीन काल से लेकर अब तक कहीं भी इस सिंहलद्वीप में राक्षसों के निवास-स्थान होने का वर्णन नहीं मिलता है। परन्तु सिंहल और लंका में यही अन्तर है कि लंका में तो प्राचीनकाल से ही राक्षसों का निवास रहा है। अतः निश्चयपूर्वक कहते हैं कि यह सिंहलद्वीप कभी

लंका नहीं था तथा लक्केदीव और मालदीव में आज भी मनुष्य के मांस का भक्षण करने वाले लोग अनेक स्थानों पर तथा अनेक बार देखे जाते हैं। अतः राक्षसों की जैसी प्रवृत्ति के लोगों का निवासस्थान होने के कारण ये दोनों द्वीप ही लंकाद्वीप प्रतीत होते हैं ॥६ ॥

छठा प्रमाण समाप्त हुआ ॥६ ॥

और भी सिद्ध होता है कि भागवतादि महापुराणों में सिंहल और लंका को अलग-अलग नामों से कहा गया है। इसलिए सिंहल को लंका नाम से कहना सर्वथा अनुचित है ॥

इस प्रकार बारहवीं विसंगति समाप्त हुई ॥१२ ॥

भारतपरिचयखण्ड में लंका-प्रसंग समाप्त हुआ ॥५ ॥

भारतीयभाषाप्रसङ्गः ॥६ ॥

दैवीब्राह्मीभेदाद् भारत्या भाषाया द्वैविध्यम्

१— छन्दोभाषा संस्कृतभाषाऽथ च नागरी भाषा।
इत्थं भारतवर्षे कालक्रमतस्त्रिधा भाषा ॥१ ॥

छन्दोभाषा।

२— भारतवर्षे द्विविधा भाषाऽऽसीत् पाणिनेः समये।
छन्दोभाषा दैवी ब्राह्मीनाम्नी तु भारती भाषा ॥२ ॥
दैवीभाषा स्वर्ग्या देवेषु प्रचलिताऽभवत् स्वर्गे।
देवानामुच्छेदादुच्छिन्नाऽप्यस्ति शास्त्रमात्रस्था ॥३ ॥

छन्दोभाषायाः सर्वभाषामूलत्वम्।

छन्दोभाषा त्वेषा जननी प्रतिभाति विश्वभाषाणाम्।
संस्कृतभाषा चासुरभाषा द्वे ज्येष्ठकन्ये स्तः ॥४ ॥
संप्रति भाषा बह्व्यः संस्कृतभाषाविकारतो जाताः।
यूरोपसर्वभाषा आसुरभाषाप्रसूताः स्युः ॥५ ॥
जेन्दावस्ताभाषा त्वासुरभाषा प्रदृश्यते प्रथमा।
लेटिनभाषा त्वपरा संभाव्यन्ते ततोऽप्यन्याः ॥६ ॥

छन्दोभाषाया एव इण्डोयूरोपियन्भाषात्वम्।

यत्त्विह वदन्ति लोका इण्डोयूरोपियन्नाम्ना।
आसीद् काचिद् भाषा सा जननी विश्वभाषाणाम् ॥७ ॥
मन्ये सा हि च्छन्दोभाषैव तु मूलभाषाद्या।
जेन्दावस्ता छन्दोऽभ्यस्ता सच्छन्द आम्नायः ॥८ ॥

भारती भाषा।

३— *अमरस्य कोशकर्तुः समये सा भारती भाषा।
ब्राह्मी नाम्ना लोके प्रथिताऽऽसीत् स हि तथैवाह ॥९ ॥
भारतवर्षमनुष्याः संस्कारैः संस्कृता अभवन्।
भाषा च भारतीयं पाणिनिना संस्कृताऽक्रियत ॥१० ॥

---

* ब्राह्मी तु भारती भाषा—इति। यत्त्वमरटीकाकारैर्ब्राह्मीभारतीभाषाशब्दानां सामान्येन वाक्पर्य्यायवाचित्वं प्रदर्श्यते तदज्ञानात्। भाषाशब्दस्य वाक्पर्य्यायत्वानौचित्यात्।

प्राच्योदीच्यभेदाद् ब्राह्मीभाषाद्वैविध्यम्।

ब्राह्मी तु भारतीयं भाषाऽऽसीत् प्रचरिता तदा लोके।
पृथगिव सोदीच्यानां प्राच्यानां चाल्पशो भिन्ना ॥११॥
सा भारती तु भाषा संस्कारभ्रंशतो विकारेण।
रूपान्तरतामागाद् द्विजातिधर्मा इवेह कालेन ॥१२॥
दैवी छन्दोभाषा यथाऽभवद् ग्रन्थमात्रस्था।
तद्वद् ब्राह्मी भाषाऽप्येषाऽभूद् ग्रन्थमात्रस्था ॥१३॥

नागरी भाषा

४— संप्रति भारतभाषा प्रवर्तते नागरीनाम्ना।
वैदेशिकसचिवास्त्विह तामाहुर्हैन्दवीं हिन्दीम् ॥१४॥

इति भारतीयभाषाप्रसङ्गः समाप्तः ॥६॥

भारतीयभाषा-प्रसंग

दैवी और ब्राह्मी भेद से भारतीय भाषा का दो प्रकार का होना

भारतवर्ष में काल-क्रम के अनुसार तीन प्रकार की भाषायें रही हैं। वे हैं — छन्दोभाषा (वैदिक भाषा), लौकिक भाषा (संस्कृत) और देवनागरी भाषा ॥१॥

छन्दोभाषा

पाणिनि के समय भारतवर्ष में दो प्रकार की भाषायें रही हैं, जिनमें वैदिक भाषा दिव्य भाषा थी तथा भारत की प्रचलित भाषा ब्राह्मी थी ॥२॥

स्वर्ग की भाषा स्वर्ग के देवताओं में प्रचलित थी। देवताओं के उच्छेद को प्राप्त हो जाने पर वह भाषा अधःपतन को प्राप्त होने पर भी शास्त्रों के आधार पर स्थित है ॥३॥

छन्दोभाषा का समस्त भाषाओं का मूल आधार होना

यह छन्दोभाषा ही समस्त विश्व की भाषाओं की जन्मदात्री है, जिसकी संस्कृत भाषा और असुर भाषा दो बड़ी पुत्रियाँ है ॥४॥

वर्तमान समय में तो संस्कृत से निकल कर अनेक भाषायें बन गई हैं और यूरोप की समस्त भाषायें आसुर भाषा से उत्पन्न हुई हैं ॥५॥

"जेन्दावास्ता" भाषा आसुर भाषाओं में सबसे प्रथम भाषा प्रतीत होती है तथा दूसरी आसुर भाषा हो सकती है और उससे अन्य अनेक भाषायें उत्पन्न हुईं ॥६॥

छन्दोभाषा का ही इण्डोयूरोपियन भाषा होना

जिस भाषा को लोग इण्डोयूरोपियन भाषा के नाम से कहते हैं, वही कोई सी भाषा विश्व-भाषाओं की जननी है ॥७ ॥

मैं जानता हूँ कि वह मूल और आदि भाषा छन्दोभाषा ही थी। छन्दोभ्यस्ता और इसी प्रकार जेन्दावस्ता भाषा में परम्परागत छन्दोमयी रचना हुई है ॥८ ॥

भारती भाषा

*अमरकोशकार के समय भारती भाषा ही ब्राह्मी भाषा के नाम से लोक में प्रसिद्ध थी। इसीलिए उन्होंने ऐसा कहा है ॥९ ॥

भारतवर्ष के लोग संस्कारों से संस्कृत (शुद्ध) हुए हैं और यह भारती भाषा मुनि पाणिनि द्वारा संस्कारित की गई है ॥१० ॥

पूर्वी और उत्तरी भेद से ब्राह्मी भाषा का दो प्रकार का होना

उस काल में यह भारती ब्राह्मी भाषा लोकव्यवहार में प्रचलित थी। परन्तु उत्तर और पूर्व के लोगों में यह आंशिक रूप से भिन्न थी ॥११ ॥

यह भारती भाषा संस्कारों से भ्रष्ट होने पर विकारयुक्त होने के कारण उसी प्रकार रूपान्तर को प्राप्त हो गई जिस प्रकार ब्राह्मणधर्म का स्वरूप परिवर्तित हो गया है ॥१२ ॥

जिस प्रकार दैवी भाषा (छन्दोभाषा) मात्र ग्रन्थों में ही सीमित रह गई है उसी प्रकार ब्राह्मी भाषा भी अब मात्र ग्रन्थों में ही प्रयुक्त होकर स्थित है ॥१३ ॥

नागरी भाषा

वर्तमान में भारतीय भाषा नागरी नाम से प्रचलित है। विदेशी महानुभाव तो इस हिन्दी भाषा को हिन्दुओं की भाषा कहते हैं ॥१४ ॥

इस प्रकार भारतीयभाषा-प्रसंग समाप्त हुआ ॥६ ॥

---

* "ब्राह्मी तु भारती भाषा" अमरकोश के टीकाकारों ने इस उक्ति के आधार पर ब्राह्मी, भारती और भाषा इन तीनों को सामान्य रूप से वाणी का पर्याय बताया है। यह अज्ञानता है, क्योंकि भाषा शब्द को वाणी का पर्याय मानना अनुचित है ॥

मातृकाप्रसङ्गः ॥७॥ लिपिप्रसङ्गः ॥८॥

(वर्णमातृका)

१— पथ्यास्वस्तिरिहासीद् देवयुगेऽक्षरसमाम्नायः।
सप्तनवतिरिह वर्णाश्छन्दोभाषानुगा उक्ताः ॥१॥
यो ब्रह्मराशिरुक्तो वर्णसमाम्नाय उत्तरे तु युगे।
स चतुःषष्ट्या वर्णैः संस्कृतभाषां प्रवर्तयति ॥२॥
"त्रिषष्टिर्वा चतुःषष्टिर्वर्णाः संभवतो मताः।"
प्राकृते संस्कृते वापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयंभुवा॥
इत्थं पाणिनिरवदद् बहुपूर्वं त्वेष भारते जज्ञे।
पथ्यास्वस्तिरिति प्राग् वेदयुगे वर्णमातृकासंज्ञा ॥३॥
मन्ये ततः स्वयंभूरक्षरमालामिमां ब्राह्मीम्।
वेदाभिज्ञानार्थं विनिर्ममे सर्वतः पूर्वम्॥
या वर्णमातृकेयं पञ्चाशद्वर्णतः कृताऽद्यास्ति।
कातंत्रकल्पिता सा वर्तयते नागरीं भाषाम् ॥४॥

इति भारतपरिचये वर्णमातृकाप्रसङ्गः ॥७॥

मातृका-प्रसंग ॥७॥ लिपिप्रसङ्ग ॥८॥

वर्णमातृका (वर्णमाला)

देवकाल में परम्परागत अक्षरों के संग्रह के लिए "पथ्यास्वस्ति" नामक वर्णमाला थी, जिसमें छन्दोभाषा के विद्वानों के अनुसार सत्तानवें (९७) वर्ण थे ॥१॥ वेदोत्तर काल में जो ब्रह्मराशि नामका वर्णों का संग्रह कहा गया है, उसमें चौसठ वर्णों से संस्कृत भाषा को उत्पन्न किया है ॥२॥

मुनि पाणिनि कहते हैं कि इस प्राकृत भाषा अथवा संस्कृत भाषा में तरेसठ अथवा चौसठ वर्ण हैं, जो स्वयं ब्रह्मा के मुख से निःसृत हैं।

इस प्रकार भारतवर्ष में उत्पन्न पाणिनि ने बहुत पहले ही कह दिया था कि वेदयुग में "पथ्यास्वस्ति" नाम की वर्णमाला थी ॥३॥

हमारा मानना है कि उसी "पथ्यास्वस्ति" वर्णमाला से ही स्वयंभू ब्रह्मा ने वेदार्थज्ञान के लिए सर्वप्रथम ब्राह्मी वर्णमाला की रचना की तथा आज जो पचास वर्णों की देवनागरी वर्णमाला है वह "मुनि कातन्त्र" द्वारा बनाई हुई है ॥४॥

भारतपरिचय में वर्णमातृका-प्रसंग समाप्त ॥७॥

भारतीयब्राह्मीलिपेरद्य प्रचारलोपः।

लिपिरपि खल्वार्याणां ब्राह्मी लिपिरेव सर्वतः पूर्वम्।
उदभूद् ब्राह्मी भाषा चेत्युक्तं भारते शान्तौ ॥५॥
"इत्येते चतुरो वर्णा येषां ब्राह्मी सरस्वती।
विहिता ब्रह्मणा पूर्वं लोभात् त्वज्ञानतां गताः ॥"(महाभा.शान्ति.१८८।१५)
ब्राह्मी भाषा संस्कृतभाषेयं ब्राह्मणैरल्पैः।
विज्ञायते न सर्वैर्ब्राह्मी तु लिपिर्न लिख्यते ह्यधुना ॥६॥

(१) आजकल भारतीय ब्राह्मी लिपि के प्रचार का लोप हो जाना

महाभारत के शान्ति पर्व में लिखा है कि आर्यों की सर्वप्रथम लिपि ब्राह्मी लिपि ही थी, जिससे ब्राह्मी भाषा उत्पन्न हुई ॥५॥

इस प्रकार ये चारों वर्ण, जिनकी भाषा ब्राह्मी भाषा थी, जो ब्रह्मा द्वारा सर्वप्रथम बनाई गई थी, किन्तु वह लोभ के कारण अज्ञानता को प्राप्त हो गई अथवा लुप्त हो गई ॥(महा.भा.शांति. १८८/१५)

यह ब्राह्मी भाषा संस्कृत भाषा है, इसे कुछ थोड़े से ब्राह्मण लोग ही जानते हैं, सभी लोग नहीं जानते, तथा ब्राह्मी लिपि तो आजकल लिखी ही नहीं जाती है ॥६॥

वेदमन्त्रनिर्माणकाले लिपिसामान्याभावमतखण्डनाय श्रुतिशब्द-व्यपदेशस्य मौलिकरहस्योपपादनम्।

२— ऋग्वेदश्रुतिनिर्मितिकाले काचिल्लिपिर्नासीत्।
अत एव कण्ठपाठश्रवणाच्छ्रुतयः श्रुता वेदाः ॥७॥
इत्थं ब्रुवते केचित् पाश्चात्याः कल्पनारसिकाः।
अनभिज्ञास्ते नूनं भारतवैदिकरहस्यविज्ञाने ॥८॥
विबुधैस्तु भारतीयैः संकेतित एष यत्रार्थे।
श्रुतिशब्दः प्राक् कालात् तं संकेतं प्रवक्ष्यामि ॥९॥
सत्यानां धर्माणां ज्ञाने हेतुः प्रमाणमित्युक्तः।
प्रत्यक्षं ह्यनुमानं शास्त्रं चेति त्रिधा तत्स्यात् ॥१०॥
दृष्टिः श्रुतिः स्मृतिर्वा निबन्ध इति हेतवो ज्ञाने।
दृष्टेः प्रत्यक्षत्वं शास्त्रत्वं तु श्रुतिस्मृत्योः ॥११॥
चक्षुषि सत्यं निहितं चक्षुर्गृहणात्यदोषमनुपाधि।
एकं तदेव मुख्यं प्रमाणमन्यत्तु तदपेक्षम् ॥१२॥
वाक्यानपेक्षवाक्यं श्रुतिरिति मीमांसया सिद्धम्।
दृष्टिः श्रुतिरेकोर्थो वेदाः प्रत्यक्षमित्याहुः ॥१३॥
द्रष्टुर्वाक्यं श्रुतिरिति संकेतो दृष्टिमूला सा।

दृष्टा दृष्टं ब्रूते श्रृणुते श्रोता च दृष्टमेवार्थम् ॥१४॥
द्रष्टिः स्वतःप्रमाणं द्रष्टुर्वाक्यं स्वतःप्रमाणं स्यात्।
प्राथमिकं तज्ज्ञानं न ज्ञानाज्ज्ञानमवतीर्णम् ॥१५॥
श्रोतुर्वाक्यं स्मृतिरिति संकेतो नात्र वक्ताऽयम्।
स्वीयां दृष्टिं ब्रूते परानुभूतं गिराऽभिनयेत् ॥१६॥
स्मृतिरिति मतमनुमानं तल्लिङ्गज्ञानतो ज्ञानम्।
नाप्तः स्वयं स वक्ता श्रुतवानाप्तात् स्मृतः सोऽर्थः ॥१७॥
परपुरुषीयप्रत्ययने योऽस्य प्रत्ययस्तस्मात्।
परतःप्रमाणमेतद्वाक्यं वाक्यान्तरापेक्षम् ॥१८॥
द्रष्टुवाक्यं यावन्नोपष्टम्भकतयाऽयमाश्रयते।
न च तावत्स्वं वाक्यं शक्नोत्येष प्रमाणयितुम् ॥१९॥
इत्थं शास्त्रं द्विविधं स्वतःप्रमाणं परप्रमाणं च।
नातः परं तृतीयं शास्त्रं संभाव्यते किमपि ॥२०॥
परतःप्रमाणशास्त्रे यत्र द्वैविध्यमापतति।
विप्रतिपत्तावन्योऽनुमानमत्र प्रवर्तयति ॥२१॥
अनुमानाद् यद्युभयोर्विरुद्धवाचोः स तात्पर्यम्।
पृथगिव नीत्वा सत्यं गृहणीयात्स हि निबन्धः स्यात् ॥२२॥
अपि च निबन्धं शास्त्रं मन्यन्ते तस्य शास्त्रत्वम्।
शास्त्रानुबन्धतः स्यादुपचारात् सोस्ति तर्कस्तु ॥२३॥
सर्वमपीदं वाङ्मयमित्थं त्रेधा प्रमाणं स्यात्।
यत् पुनरेभ्यो भिन्नं तदप्रमाणं प्रलापः सः ॥२४॥
न तु केवलमिदमित्थं भारत एव प्रमाणमुपपाद्यम्।
देशेषु किन्त्वशेषेष्वशेषभाषास्विदं तुल्यम् ॥२५॥
किन्त्विह भारतवर्षे तदिदं मीमांसितं तस्मात्।
संकेताय नियुक्ताः श्रुतिस्मृतिप्रभृतयः शब्दाः ॥२६॥
इति पूर्वेषां विदुषां संकेतं ये न जानन्ति।
भ्रान्तं श्रुतिशब्दार्थं प्रकल्प्य ते भ्रामयन्त्यन्यान् ॥२७॥
इह भारतीयविद्यारहस्यशिक्षामनासाद्य।
भारतशास्त्रपदानां विक्षेपणमित्थमन्याय्यम् ॥२८॥
न ह्येष श्रुतिशब्दो मन्त्रार्थे मन्त्रसंहितासूक्तः।
लिपिकाले त्वविशेषान्मन्त्रे च ब्राह्मणे चोक्तः ॥२९॥
श्रवणाच्छ्रुतिरभविष्यच्छ्रुतिशब्दस्तर्ह्यवश्यमभविष्यत्।
ऋग्वेदेऽप्युल्लिखितः किंतु न लिपिशब्दवत्स तत्रास्ति ॥३०॥

श्रवणाद्यदि श्रुतिः स्याच्छ्रुतिशब्दस्तर्हि न प्रयुक्तः स्यात्।
लिपिकालोत्पन्नेषु ग्रन्थेषु ब्राह्मणाख्येषु ॥३१ ॥

(२) वैदिक मंत्रों के निर्माणकाल में लिपि का सामान्यतः अभाव था, इस मत के खण्डन के लिए श्रुति शब्द के व्यवहार के मौलिक अर्थ का प्रस्तुतिकरण

ऋग्वेदश्रुति-निर्माण के समय कोई लिपि नहीं थी, इसलिए मात्र कण्ठ से उच्चारण किये हुये को कानों से सुने हुए होने के कारण ही वेदों को श्रुति कहा जाता है। ।७ ॥

इस प्रकार कुछ पाश्चात्य विद्वान् कहते हैं, जो मात्र कल्पना-प्रिय हैं और भारतीय वैदिक ज्ञान के रहस्य से पूर्णतः अनभिज्ञ हैं ॥८ ॥

प्राचीनकाल से ही भारतीय विद्वानों द्वारा यह "श्रुति" शब्द जिस अर्थ में निर्धारित किया गया है, मैं उस संकेत के संबंध में कहता हूँ ॥९ ॥

सत्य धर्मों के ज्ञान में जो हेतु हैं वह प्रमाण है और ये प्रमाण प्रत्यक्ष, अनुमान और शास्त्र तीन प्रकार के हैं ॥१० ॥

ज्ञान के विषय में तीन कारण प्रमुख माने गये हैं। वे हैं-दृष्टि, श्रुति और स्मृति अथवा निबन्ध। नेत्रों से देखा गया तथ्य प्रत्यक्ष प्रमाण है और श्रुति तथा स्मृति प्रमाण शास्त्र ज्ञान है ॥११ ॥

नेत्रों में केवल सत्य ही धारणा किया जा सकता है, क्योंकि नेत्र केवल प्रत्यक्ष, दोष-रहित और आडम्बर-रहित तथ्य को ही स्वीकार करते हैं। इसलिए यह प्रत्यक्ष प्रमाण ही एक मात्र प्रमुख प्रमाण है, अन्य प्रमाणों को भी इसी प्रमाण की आवश्यकता होती है ॥१२ ॥

मीमांसा से सिद्ध होता है कि "प्रत्यक्षद्रष्टा के वचन में किसी अन्य प्रामाणिक वचन की आवश्यकता नहीं होती है।" द्रष्टा का वचन भी श्रुति है। वेद प्रत्यक्ष शास्त्र है अर्थात् प्रत्यक्ष मंत्रद्रष्टा के वचन हैं ॥१३ ॥

द्रष्टा के वाक्य ही श्रुति (श्रवण योग्य) हैं। इस आधार पर श्रुति के मूल में दृष्टि ही प्रमुख है द्रष्टा जो कुछ प्रत्यक्ष देखता है, श्रोता उसी प्रत्यक्ष-द्रष्टा के मुख से श्रवण करता है। अतः वह श्रुति-ज्ञान भी मूलतः दृष्ट-ज्ञान ही है ॥१४ ॥

दृष्टि स्वतः प्रमाण है (वह वस्तुस्थिति को प्रत्यक्ष देखती है), अतः द्रष्टा के वाक्य भी स्वतः प्रमाण हैं, जिसे अन्य किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। द्रष्टा का ज्ञान सर्वप्रथम अथवा मूल ज्ञान होता है न कि किसी अन्य ज्ञान के आधार पर प्राप्त किया गया ज्ञान होता है ॥१५ ॥

श्रोता का वाक्य "स्मृति" है, इस नियम के आधार पर स्मृति में वक्ता अपने द्वारा दृष्ट ज्ञान को नहीं कहता अपितु दूसरे के द्वारा कथित वाक्य का अपनी वाणी के द्वारा अनुगमन करता है ॥१६ ॥

स्मृति केवल अनुमान मात्र है, जिसमें लिङ्ग ज्ञान से ज्ञान प्राप्त होता है, (यथा-धुआँ से पर्वत पर अग्नि का अनुमान होता है) यहाँ, वक्ता स्वयं दृष्ट-ज्ञान से युक्त नहीं है, अपितु आप्त पुरुषों के वचन का श्रवण करने वाला है ॥१७॥

दृष्टि ज्ञान रखने वाले पुरुष के विश्वास पर जो हमारा विश्वास होता है, वह वाक्य परतः प्रमाण है और वाक्यान्तर की अपेक्षा रखता है॥ ऐसा व्यक्ति द्रष्टा के वाक्य को प्रधानता से ग्रहण नहीं करता है तब तक वह अपने वाक्य को प्रमाणित नहीं कर सकता है ॥१८-१९॥

इस प्रकार शास्त्र दो प्रकार के हैं —स्वतः प्रमाण और परतः प्रमाण। इन दोनों के अतिरिक्त अन्य कोई तीसरा शास्त्र नहीं है ॥२०॥

परतः प्रमाण शास्त्र में जहाँ कोई द्वैविध्य आ जाता है, ऐसे विवाद-ग्रस्त स्थान पर तीसरे अनुमान प्रमाण की प्रवृत्ति होती है ॥२१॥

अनुमान प्रमाण से दोनों विरुद्ध वाणियों से पृथक् तात्पर्य निकालता हो तो उसमें सत्य का ग्रहण किया जाता है वही निबन्ध समझना चाहिये ॥२२॥

यदि निबन्ध को शास्त्र मानते हैं तो उसका शास्त्रत्व अनुमान के द्वारा शास्त्र के अनुबन्ध से जाना जाता है। और वह उपचार से (अनुमान) तर्क ज्ञान है ॥२३॥

इस प्रकार सम्पूर्ण वाङ्मय अथवा शास्त्र इन्हीं तीन प्रमाणों के आधार पर स्थित है। इन तीनों प्रमाणों के अतिरिक्त यदि कोई प्रमाण है, तो वह अनर्गल प्रलाप (तथ्यहीन बातचीत) ही होगा ॥२४॥

न केवल भारतवर्ष में ही ये तीन प्रमाण उचित माने गये हैं अपितु अन्य समस्त देशों में और समस्त भाषाओं में इनको उचित माना गया है ॥२५॥

किन्तु भारतवर्ष में ही इस संबंध में गहन विचार हुआ है, अनुसन्धान हुआ है इसलिए मात्र प्रतीक रूप से इनके लिए श्रुति, स्मृति इत्यादि शब्द निर्धारित कर दिये गये हैं ॥२६॥

इस प्रकार प्राचीन विद्वानों के इन संकेत अथवा प्रतीकात्मक शब्दों के संबंध में कुछ नहीं जानते हैं, वे श्रुति शब्द के भ्रामक अर्थ की कल्पना करके दूसरों को भी भ्रम में डालते हैं ॥२७॥

इस भारतीय विद्या के वास्तविक रहस्यज्ञान को बिना समझे भारतीय शास्त्र में प्रयुक्त शब्दों का विक्षेपण इनके प्रति घोर अन्याय करना है ॥२८॥

यह श्रुति शब्द मंत्रसंहिताओं में मंत्र के अर्थ में नहीं बताया गया है अपितु लिपिकाल में मंत्र और ब्राह्मण दोनों के लिए श्रुति शब्द समान रूप से प्रयुक्त हुआ है ॥२९॥

श्रवण से यदि श्रुति शब्द निष्पन्न होता है तो ऋग्वेद में भी अवश्य श्रुति शब्द का उल्लेख किया गया होता परन्तु वहाँ लिपि शब्द के समान इसका उल्लेख नहीं है।।३०॥

यदि श्रवणपरम्परा से ही श्रुति शब्द निष्पन्न हुआ है तो लिपिकाल में विरचित ब्राह्मण ग्रन्थों में तो श्रुति शब्द का प्रयोग नहीं हुआ होता ॥३१॥

मंत्रनिर्माणकाले लिपिसत्त्वे वैदिकं प्रथमं प्रमाणम् ॥१ ॥

३— अपि च ब्रुवते केचिद् लिपिरभविष्यत्तु वेदसमये चेद्।
लिपिलेखनीमसीनामप्यभविष्यत् क्वचनोल्लेखः ॥३२ ॥
तत्र ब्रूमो लिप्युल्लेखार्थो न प्रसङ्ग आयातः।
तेन स तत्र न दृष्टो न तु हेतुर्लिप्यभावे सः ॥३३ ॥
श्रुतिशब्दोऽपि तु मंत्रे मंत्रपरत्वेन न क्वचिद्दृष्टः।
अथ मन्यसे तु मंत्रे श्रुतिशब्दं तद्वदिह विद्यात् ॥३४ ॥
अथवा दृश्यत एव तु वेदे लिखनार्थशब्दोऽपि।
लेखन्याश्च लिपेरपि सत्त्वं शक्यं ततो ज्ञातुम् ॥३५ ॥
यजुषश्च संहितायाः पञ्चदशेऽध्याय आम्नातम्।
छन्दः क्षुरोभ्रज इति क्षुरधातुर्विलिखने दृष्टः ॥३६ ॥
"अक्षरपंक्तिश्छन्दः, पदपंक्तिश्छन्दो विष्टारपंक्तिश्छन्दः।
क्षुरोभ्रजश्छन्दः ॥३७ ॥ (इति यजुःसंहिता १५ ।४)
कस्याञ्चिच्छाखायां तु—'क्षुरश्छन्दः, भ्रजश्छन्दः—" इति
पृथक्त्वेनाम्नायते ॥

तत्राप्यक्षरपदयोः साहचर्य्यादिह लोहनिर्मिता पूर्वयुगीया लेखन्येव क्षुरः संभाव्यते। पुरायुगे सूक्ष्मखनित्रेणैव सूच्याकारेणाक्षरलिपेः क्रियायाः संभाव्यमानत्वात्। भ्रज इति पत्रोल्लिखिता प्रकाशमाना वागेव स्यात्।

अक्षरपंक्तिर्वर्णैः पदपङ्क्तिः स्यात् पदैर्यथा वाक्यैः।
विष्टारपंक्तिरेवं क्षुरोभ्रजो लिपिकृतं मन्ये ॥३८ ॥
क्षुरसा लेखन्या या लिखनाद् भ्राजेत दृश्येत।
लिपिरेव सा तु वाक् स्याच्छन्दस्तच्च क्षुरोभ्रजो नाम ॥३९ ॥
छन्दः सर्वं वाङ्मयमक्षरपदवाक्यसाहचर्य्याच्च।
अक्षरलिखनादन्यद् विलिखनमिह नोपपद्येत ॥४० ॥

(३) मंत्रनिर्माणकाल में लिपि की विद्यमानता के लिए पहला वैदिक प्रमाण

कुछ लोगों का कहना है कि यदि वैदिक काल में लिपि रही होती तो अवश्य ही वेदों में कहीं न कहीं लेखनसामग्री यथा लेखनी, स्याही इत्यादि का भी उल्लेख किया गया होता ॥३२ ॥

इस संबंध में हमारा कहना है कि वेदों में कहीं लिपि का कोई प्रसंग नहीं आया, इसलिए इस सामग्री का वहाँ कोई उल्लेख नहीं हुआ। इससे यह तात्पर्य नहीं है कि लेखनसामग्री के उल्लेख के कारण ही वहाँ लिपि का अभाव था ॥३३ ॥

ऐसा कहीं भी दिखाई नहीं देता है कि श्रुति शब्द का किसी मंत्र में मंत्रपरक उल्लेख हुआ हो, और यदि मंत्र में श्रुति शब्द को मंत्रपरक मानते हैं तो यहाँ भी मानना चाहिये ॥३४ ॥

अथवा वेदों में लेखन के अर्थ को प्रकट करने वाले शब्दों की विद्यमानता देखी भी गई है तथा लेखनी शब्द से लिपि की सत्ता का ज्ञान भी स्वतः हो सकता है ॥३५ ॥

यजुर्वेद संहिता के पन्द्रहवें अध्याय में स्पष्ट लिखा है कि "क्षुर" अर्थात् लोहनिर्मित लेखनी से प्रकाशमान (पत्रोल्लिखित) छन्द है। (इस प्रकार क्षुर शब्द धातु की लेखनी के लिए प्रयुक्त हुआ है) अतः धातु की लेखनी से लिखना स्पष्ट प्रतीत होता है ॥३६ ॥

यजुर्वेद में लिखा है—"अक्षरों का संग्रह वेद है, शब्दसमूह वेद है, वाक्यसमूह वेद है, क्योंकि यजुर्वेद में लिखा है—क्षुर से प्रकाशमान ही छन्द है ॥३७ ॥ (यजु. १५/४)

यजुर्वेद की ही किसी अन्य शाखा में तो इस प्रकार लिखा है — क्षुर (लेखनी) वेद है, भ्रज ही छन्द है। इस प्रकार लेखनी और पत्र के संबंध में पृथक् रूप से लिखा है। यहाँ भी अक्षर और पद के साहचर्यवर्णन से स्पष्ट होता है कि प्राचीनकाल में लोह-निर्मित लेखनी को ही "क्षुर" कहा जाता होगा। इस प्रकार लोह-निर्मित लेखनी से प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में सूक्ष्म खुदाई की विधि से सुई की नोंक के समान सूक्ष्म आकृति के अक्षरों की लिपि की सत्ता की संभावना हो सकती है। "भ्रज" शब्द से तात्पर्य पत्र पर लिखी हुई प्रकाशमान वाणी ही है।

जिस प्रकार वर्णों से अक्षरपंक्ति होती है, पदों से पदपंक्ति और वाक्यों का समूह विष्टारपंक्ति है उसी प्रकार क्षुर से प्रकाशमान तो लिपिकृत ही हो सकता है ॥३८ ॥

सारा वाङ्मय छन्द है। अक्षर, पद और वाक्य के साहचर्य से सम्पूर्ण वाङ्मय ही छन्द है। अक्षर से तात्पर्य लिखने से ही है और कोई लेखन संगत नहीं होता है ॥४० ॥

मन्त्रनिर्माणकाले लिपिसत्त्वे वैदिकं द्वितीयं प्रमाणम् ॥२ ॥

४— अन्यच्च तत्र काले लिपिसत्त्वेऽस्ति प्रमाणमत्रैव।
विद्यासूक्ते वक्ति हि वृहस्पतिर्दर्शनं वाचाम् ॥४१ ॥
"उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः श्रृण्वन्न श्रृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः" ॥४२ ॥
(ऋ.सं. १० ।७१ ।४)

वाचामुच्चरितानां श्रवणं नु यथा तथैव लिखितानाम्।
वाचां ग्रन्थमयीनां दर्शनमुपपद्यतेऽर्थबोधाय ॥४३ ॥
मूर्तिं विना च वाचं दर्शनमुपपद्यते क्वापि।
तस्माल्लिपिरिह वाचं मूर्तिरवश्यं तदाप्यासीत् ॥४४ ।
लिपिसंकेताविज्ञः पश्यन्न च तां ददर्श वाक्त्वेन।
श्रृण्वन्न श्रृणोत्येतां वेत्ति न यस्त्वर्थसंकेतम् ॥४५ ॥

वैदिकं द्वितीयं प्रमाणम् ॥इति ॥

(४) मंत्रनिर्माण-काल में लिपि की सत्ता में द्वितीय वैदिक प्रमाण

वैदिक काल में भी लिपि थी इसके लिए वेद में ही प्रमाण मिलता है। जैसा कि विद्यासूक्त में बृहस्पति ने वाणी का दर्शन किया है, ऐसा उल्लेख मिलता है ॥४१ ॥

जैसा कि ऋग्वेद संहिता में लिखा है "एक तो वाणी को देखता हुआ भी अज्ञानतावश नहीं देखता है और दूसरा इस वाणी को सुनकर भी नहीं सुनता है। वह वाणी अपने ज्ञान रूप को स्वयं किसी के पास इस प्रकार प्रकट करती है, जैसे पति के सुख के लिए सुन्दर स्त्री अपना सुन्दर रूप पति के सामने स्वयं प्रकट करती है ॥४२(१०/७१) ॥

उच्चारित वाणी का जिस प्रकार श्रवण होता है उसी प्रकार ग्रन्थलिखित वाणी का अर्थज्ञान के लिए दर्शन होता है ॥४३ ॥

आकृति के बिना वाणी का कहीं दर्शन ही नहीं हो सकता है। अतः उस काल में वाणी की मूर्ति रूपी लिपि अवश्य ही विद्यमान थी ॥४४ ॥

लिपि-संकेत को न जानने वाला उसको देखकर भी उसे वाणी के संकेत के रूप में नहीं देख सकता और अर्थसंकेत को न जानने वाला सुनकर भी नहीं सुनता है। ।४५ ॥

द्वितीय वैदिक प्रमाण समाप्त

वैदिकं तृतीयं प्रमाण ॥३ ॥

५— अपि च पुरा देवयुगे सत्त्वे कस्याश्चिदेव देवलिपेः।
मन्त्रकृतामाचारं वीक्षे नूनं प्रमाणतया ॥४६ ॥
कुत्सनृपो गन्धर्वो हतराज्यो दस्युभिः पुराकाले।
विकलश्चिन्तामापत् तं प्रति घोरः प्रगाथ इत्याहुः ।४७ ॥
*मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत।
इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥४८ ॥(८.।१ ।१)
प्रास्मै गायत्रमर्चत वावातुर्यः पुरन्दरः ॥४९ ॥(८ ।१ ।८)
याभिः काण्वस्योप बर्हिरासदं यासद्वज्री भिनत् पुरः।
इत्यादिष्टः कुत्सः शक्रमुपेत्येन्द्रसखकाण्वः।
गीतान्याह्वानार्थं न्यवेदयद् भद्रसूक्तानि ॥५० ॥
आ याहि कृणवाम त इन्द्र ब्रह्माणि वर्द्धना।
येभिः शविष्ठ चाकनो भद्रमिह श्रवस्यते ॥
भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥५१ ॥(८ ।६२ ।४)

---

* प्रगाथः काण्व आह—हे सखायः (कुत्सप्रभृतयः) अन्यत् किञ्चिदपि मा प्रस्तावयत। मा चानेन राज्यहरणादिदुःखेनातितरां चिन्ताविह्वलितान्तरा भवत। स चासह संघीभूय सर्वे सोमोऽभिषुते सर्वकामप्रवर्षकं भगवन्तमिन्द्रमेवाश्रयत। उक्था = उक्थैर्वाक्यैश्च तमेवैकं मुहुः प्रार्थयत ॥(८ ।१ ।१) अपि च — अस्मै इन्द्राय गायत्रं प्राणत्राणहेतुभूतं प्रार्थनापत्रं प्रार्चत विशिष्यार्पयत।

यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये।
अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेऽहा विश्वा च वर्द्धनम्॥५२॥(८।१।३)
एन्द्र याहि मत्स्व चित्रेण देव राधसा॥
सरो न प्रास्युदरं सपीतिभिरा सोमेभिरुरु स्फिरम्॥५३॥(८।१।२३)
एन्द्र याहि हरिभरुप कण्वस्य सुष्टुतिम्।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो॥५४॥(८।३४।१)
कण्वानां तु न चैषां स्वर्गे गमनं श्रुतं तदा काले।
लिखितं विना नु भारतभूस्थैः शक्यं स आहवः कर्तुम्॥५५॥
तस्मादवश्यमेते विलिख्य कण्वा इमानि सूक्तानि।
इन्द्रस्यागमनार्थं कुत्सकरात् प्रेषयामासुः॥५६॥
मन्यामहे ततः प्राग् वैदिकमन्त्रावतारकालेपि।
आसील्लिपिप्रचारो विबुधैरुद्भावितः कुशलैः॥५७॥

(५) तृतीय वैदिक प्रमाण

और प्राचीन देवकाल में किसी भी दैवी लिपि की विद्यमानता होने से ही मंत्र निर्माण करने वालों के आचरण का हमें ज्ञान होता है॥४६॥

प्राचीन काल में कुत्सनरेश गन्धर्व एक बार दैत्यों द्वारा राज्य छीन जाने पर अत्यन्त विकल हो गया। तब चिन्ताग्रस्त गन्धर्व राजा को घोर प्रगाथ ने इस प्रकार कहा ॥४७॥

*घोर प्रगाथ कहते हैं— हे मित्रो! तुम किसी अन्य देव की स्तुति मत करो। किसी दूसरे देव की स्तुति करके दुःखी मत होओ। सोम रस के सवन-याग में बलशाली इन्द्र की एक साथ मिलकर स्तुति करो। इन्द्र के स्तोत्रों को बार-बार बोलो॥४८॥(८/१/१)

जो शत्रुओं की नगरी के दुर्गों का विध्वंसक इन्द्र है, उसके लिए गायत्री छन्द में बनी हुई स्तुति गाओ। जिन स्तुतियों से प्रेरित होकर इन्द्र कण्व पुत्रों के यज्ञ के आसन के पास जावे तथा हाथ में वज्रधारण करके शत्रु के नगरो को तोड़े॥४९॥(८।१।८)

इस प्रकार आदेश प्राप्त कुत्स ने इन्द्र के पास जाकर इन्द्र के मित्र कण्वपुत्रों द्वारा भेजे गये आह्वानार्थ भद्र सूक्त निवेदित कर दिये॥५०॥

हे इन्द्र !आओ, हम तुम्हारे उत्साहवर्धक स्तोत्रों का गान करेंगे। हे बलवान् इन्द्र! जिनके द्वारा यहाँ यश की इच्छा करने वाले का कल्याण करना चाहता है। इन्द्र के धन कल्याणकारी हैं॥५१॥ (८/६२/४)

---

* कण्व के पुत्र प्रगाथ बोले — कुत्सादि हे मित्रो! और कुछ मत कहो। राज्यहरणादि दुःखों से अधिक प्रभावित मत होओ। सभी लोग एक साथ एकत्रित होकर सोम का सवन करने के लिए, सभी कामनाओं को देने वाले भगवान् इन्द्र का ही आश्रय ग्रहण करो। उक्था वाक्यों से उसी की प्रार्थना करो। इस इन्द्र के लिए प्राण-रक्षा के हेतुभूत गायत्र नाम के प्रार्थनापत्र को विशेष रूप से अर्पित करो।

हे इन्द्र ! ये प्रजायें स्तुति करती हैं। अपनी रक्षा के लिए तुझे अनेक प्रकार से बुलाती हैं तब भी प्रतिदिन हमारी स्तुति ही तुम्हारी महिमा को बढ़ाने वाली हो ॥५२ ॥(८/१/३)

हे इन्द्र ! तुम आओ और हमें इच्छित धन देकर आनन्दित करो। सुनहरे रंग के सोम रस से तुम विशाल और सुनहरे रंग के विशाल सोमरस के तालाब को पूर्ण कर दो ॥५३ ॥(८/१/२३)

हे इन्द्र ! तुम अपने घोड़ों से कण्व की स्तुति के पास आओ। हे द्युलोकवासी इन्द्र इस द्युलोक का शासन करने वाले तुम फिर द्युलोक को जाओ ॥५४ ॥ (८/३४/१)

उस काल में इन कण्वों का स्वर्ग गमन नहीं सुना गया। भारत-भूमि पर रहने वाले इन कण्वों द्वारा बिना लिखे यह आह्वान किया जाना सम्भव नहीं था ॥५५ ॥

इसी कारण इन कण्वों ने अवश्य ही इन सूक्तों को लिखखर कुत्सराज: के हाथों इन्द्रागमन के लिए भेजा ॥५६ ॥

इसलिए हम मानते हैं कि वैदिक मंत्रों के निर्माण-काल से भी पूर्वकाल में कुशल विद्वानों द्वारा उद्भावित लिपि का प्रचार था ॥५७ ॥

मन्त्रनिर्माणकाले लिपिसत्त्वे चतुर्थं प्रमाणम् ॥४ ॥

६— ऋज्राश्वो नामासीत् पश्चिमभारत ऋषिः कश्चित्।
जरदस्त्रस्तस्याभूद्दौहित्रो ब्राह्मणद्वेषी ॥५८ ॥
ब्राह्मणविद्वेषात् स हि तेषां ब्राह्मीं लिपिं त्यक्त्वा।
विपरीतां तु खरोष्ठीं लिपिमन्यां कल्पयामास ॥५९ ॥
ब्राह्मी वामाद्दक्षिणमेति खरोष्ठी तु दक्षिणाद्वामम्।
शाकद्वीपेऽन्यत्र च लिपिः खरोष्ठी प्रचलिताभूत् ॥६० ॥
अस्याः पुनः खरोष्ठ्या विकारतोऽनेकलिपयः स्युः।
विपरीताचरणादथ जरदस्त्रमतानुगा मगाः ख्याताः ॥६१ ॥
शाकद्वीपिमगा इह पणिभिः सह भारतेऽभ्येत्य ॥
कीकटदेशे न्यूषुस्तं देशं मगधमाचख्युः ॥६२ ॥
तेषां प्रसङ्गतस्त्विह लिपिः खरोष्ठी समागता मगधे ॥
ब्राह्मी लिपिरासीत् प्राक् तेन द्विविधा लिपिः प्रचरिताऽत्र ॥६३ ॥
ब्राह्म्या बह्वयो विकृतय आसन् खरोष्ठ्याश्च।
ता अपि वामाद्दक्षिणमथ वामं दक्षिणादायन् ॥६४ ॥
मगधे पाटलिपुत्रे बभूव सम्राडशोकः प्राक्।
स लिपी उभयविधे अपि निजराष्ट्रे वर्तयमास ॥६५ ॥
इत्थं द्विविधो लेखो वामावर्ती च दक्षिणावर्ती।
अद्यावधि प्रचरितो लोके सर्वत्र दृश्यते प्रायः ॥६६ ॥
वामावर्तिन्यास्त्विह जरदस्त्रो जन्मदो लिप्याः।

ब्राह्मीलिपेर्विरोधादेष च भिन्नक्रमं लिपौ चक्रे ॥६७॥
तेन स्पष्टं सिध्यति जरदस्त्रस्यास्य जन्मतः पूर्वम्।
ब्राह्मी लिपिः प्रचरिता सर्वत्रासीत् पुराकालात् ॥६८॥

(६) मंत्रनिर्माण-काल में लिपि की विद्यमानता में चतुर्थ प्रमाण

पश्चिम भारत में ऋज्राश्व नाम का कोई ऋषि था। जरदस्त्र नाम का जिसका दौहित्र था, वह ब्राह्मणों से द्वेष रखता था ॥५८॥

ब्राह्मणों से द्वेष रखने के कारण उसने ब्राह्मणों से सम्बद्ध ब्राह्मी लिपि को छोड़कर, विपरीत (उल्टे) क्रम से लिखी जाने वाली खरोष्ठी नाम की लिपि कल्पित की ॥५९॥

ब्राह्मी लिपि बाँई ओर से दाहिनी ओर लिखी जाती है, जबकि खरोष्ठी लिपि दाहिनी ओर से बांई ओर लिखी गई। यह लिपि शाकद्वीप तथा अन्य देशों में प्रचलित हुई ॥६०॥

इस खरोष्ठी लिपि के विकार से अनेक लिपियाँ उत्पन्न हुईं। जरदस्त्र के अनुयायी लोगों का आचरण लिपि के समान ही विपरीत था। अतः विपरीत आचरण के कारण वे लोग "मग" कहलाये ॥६१॥

शाकद्वीप के रहने वाले मग जाति के लोग यहाँ के पणियों के साथ भारतवर्ष आये और "कीकट देश" में निवास करने लगे। इसीलिए वह स्थान "मगध" कहलाया ॥६२॥

उन्हीं मग जाति के लोगों के साहचर्य्य से मगध में भी खरोष्ठी लिपि व्यवहार में आने लगी। वहाँ पहले से ब्राह्मी लिपि चलती थी। इस प्रकार वहाँ दोनों प्रकार की लिपियों का प्रचार हुआ ॥६३॥

ब्राह्मी लिपि तथा खरोष्ठी दोनों ही लिपियों में अनेक प्रकार की परस्पर विकृतियाँ आ गईं। ब्राह्मी लिपि भी विकार स्वरूप दाहिनी ओर से बांई ओर तथा खरोष्ठी, भी बांई ओर से दाहिनी ओर लिखी जाने लगी ॥६४॥

प्राचीनकाल में मगध के पाटलिपुत्र नगर में अशोक सम्राट् हुए, जिन्होंने ब्राह्मी और खरोष्ठी दोनों ही लिपियों का अपने राज्य में प्रचलन कराया ॥६५॥

इस प्रकार बाँई ओर से चलने वाली तथा दाहिनी ओर से चलने वाली दोनों ही लिपियाँ लोगों में आज तक प्रायः समस्त स्थानों पर देखी जाती हैं ॥६६॥

बाँई ओर चलने वाली लिपि का जन्मदाता जरदस्त्र था, ब्राह्मी लिपि के विरोध से इसने इस लिपि में विपरीत क्रम प्रारम्भ किया ॥६७॥

इस प्रकार स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि जरदस्त्र के जन्म से पूर्व प्राचीनकाल से ही सर्वत्र ब्राह्मी लिपि प्रचलित थी ॥६८॥

पञ्चमं प्रामाणम् ॥५॥

७— परिपूर्णसभ्यतायां वृत्तायां निर्म्मिता इमाः श्रुतयः।
वैज्ञानिकता ह्येषां दृश्यत इह सभ्यतामूलम् ॥६९॥
राजप्रजाविभागः सामाजिकता च धर्मनीतिश्च।

कार्य्याकार्य्यविभागो दृश्यत इह सभ्यताचिह्नम् ॥७० ॥
कालेऽनादौ लक्षाधिकेषु वर्षेष्वतीतेषु।
वेदा इमेऽवतीर्णा बहुषु च शास्त्रेष्वतीतेषु ॥७१ ॥
पूर्वे साध्या देवाः पूर्व्या धर्माश्च पूर्वजा गाथाः।
पूर्वाण्याख्यानान्यपि बहुधोल्लिख्यन्त इह वेदे ॥७२ ॥
तस्मादेभ्यो वेदग्रन्थेभ्योऽपि च पुरातने काले।
उन्नत्यवनतिपर्य्यायधारा लोकेऽवगम्यन्ते ॥७३ ॥
एतद्वेदात् प्रागपि बह्व्यो विद्या अनेकधा भाषाः।
नाना लिपयो जाताः संभाव्यन्ते विलुप्ताश्च ॥७४ ॥
प्रकृतिक्रमानभिज्ञाः सहस्रषट्कान्तरार्थमात्रदृशः।
कालविलुप्तानर्थान्नाभ्युपगच्छन्त्यदर्शनाद्धेतोः ॥७५ ॥
अद्यत्वे त्विह वाङ्मयमुपलब्धं यावदेवास्ति।
सर्वस्मादपि तस्माद्वेदः प्राचीन इति सत्यम् ॥७६ ॥
वेदात्प्रागपि विद्या भाषा लिपयोऽनुवृत्ताश्चेत्।
ध्रुवमत्र वेदकालेऽप्येता आसन्निति ब्रूमः ॥७७ ॥

(७) पाँचवा प्रमाण

इन वेदों की रचना सभ्यता से परिपूर्ण एवं परिपक्वावस्था में हुई थी। वेदों की वैज्ञानिकता से वेदों के काल की सभ्यता के मूल का स्पष्टीकरण होता है ॥६९ ॥

वेदों में वर्णित राजा और प्रजा के विभाग, सामाजिकता, धर्म, नीति तथा कार्य-अकार्य विभाग से उस काल की सभ्यता के चिह्न स्पष्ट दिखाई देते हैं ॥७० ॥

लाखों वर्ष पहले अनादिकाल में अनेक शास्त्रों के निर्माण के पश्चात् ही इन वेदों का अवतरण हुआ ॥७१ ॥

इन वेदों में अनेक बार वेदों से पूर्व काल के साध्य देव, पूर्व वैदिक कालीन धर्म, पूर्वजों की गाथाएं, पूर्व वैदिककाल के आख्यान इत्यादि का वर्णन मिलता है ॥७२ ॥

इसलिए इन वेदग्रन्थों से भी प्राचीनकाल में हुई उन्नति और अवनति के पर्याय विचार की धारा लोक में जानी जाती है ॥७३ ॥

इससे स्पष्ट है कि वेदों के पहले भी अनेक प्रकार की विधायें तथा अनेक प्रकार की भाषायें थीं, जो अनेक लिपियों से उत्पन्न हुई होगीं और लुप्त हो गईं, ऐसा सम्भव है ॥७४ ॥

प्रकृतिक्रम को न जानने वाले, और छः हजार वर्ष मात्र के समय को देखने वाले वे लोग काल-क्रम से विलुप्त हुए अर्थों को उपलब्ध न होने से जानते नहीं हैं ॥७५ ॥

यह नितान्त सत्य है कि जितना भी वाङ्मय आज उपलब्ध है, उनमें से सर्वाधिक प्राचीन साहित्य वेद ही है ॥७६ ॥

इसलिए हम कहते हैं कि यदि वैदिक काल से पूर्व भी भाषा, लिपि और विद्या प्रचलित थी तो अवश्य ही वेदों के समय में भी यह विद्यमान थी ॥७७ ॥

षष्ठं प्रमाणम् ॥६ ॥

८— यास्कोऽप्याह निरुक्ते (१ ।६ ।५) धर्मान् दृष्ट्वर्षयः पुराऽनूचुः ।
श्रुत्वा मन्त्रग्रहणाक्षमा इमं ग्रन्थमामम्नुः ॥७८ ॥
विल्मो विभिन्नखण्डो विल्मग्रहणाय कल्पितो ग्रन्थः ।
लिपिमन्तरेण भिन्नो भिन्नः खण्डो न शक्यमभिनेतुम् ॥७९ ॥

छठा प्रमाण

निरुक्त में महर्षि यास्क ने भी कहा है — "प्राचीन धर्मों को देखकर ही ऋषियों ने प्रवचन किया है। मंत्रग्रहण में समर्थ उन ऋषियों ने सुनकर ही इस ग्रन्थ की रचना की है ॥७८ ॥

विल्म विभिन्न खण्ड का होता है। इस विल्म को ग्रहण करने के लिए इस ग्रन्थ की रचना की गई है। अतः लिपि के बिना विल्म के विभिन्न खण्डों को समझना संभव नहीं है ॥७९ ॥

सप्तमं प्रमाणम् ॥७ ॥

९— द्वैपायनश्च कृष्णो हिमवति बदरीवने निवसन् ।
वेदं व्यस्यन् मन्त्रान्संगृह्य तु संहिताश्चक्रे ॥८० ॥
मन्त्राणां संकलनं तेषां चानेकसंहितारचनम् ।
लिपिमन्तरेण कर्तुं न शक्यमेकेन पुरुषेण ॥८१ ॥

सातवाँ प्रमाण

कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ने हिमालय के बदरीवन में निवास करते हुए मंत्रों का संग्रह करके वेदों का विभाजन करते हुए संहिताओं की रचना की ॥८० ॥

लिपि के बिना एक ही व्यक्ति के द्वारा उन मंत्रों का संकलन और अनेक संहिताओं की रचना करना संभव नहीं हो सकता ॥८१ ॥

अष्टमं प्रमाणम् ॥८ ॥

१०— साहसिकः पुनरन्यस्त्वदूरदर्शीत्यदीर्घदर्शीति ।
मागधराजाशोकात् प्राग् लिपिसत्त्वं न भावयति ॥८२ ॥
हन्ताशोकस्य द्वाविंशतिशतकल्पवर्षाणि ॥(२२५०)
प्रययुः किन्त्विह रामः पञ्चसहस्राब्दतोऽभवत्पूर्वम् ॥८३ ॥
रामस्यापि च समये लिपिरासीदिति पुरा हनुमान् ।
नामाङ्किताङ्गुलीयकमदर्शयत् तत्र जानक्यै ॥८४ ॥
"वानरोऽहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः ।
रामनामाङ्कितं चेदं पश्य देव्यङ्गुलीयकम्" ॥८५ ॥ (वाल्मी.सु.३६ ।२)

चीनपरिव्राडासीदित्यङ्गस्तद्वचः प्रमाणं ये।
भारतविद्वच्छास्त्रं तु न प्रमाणं वदन्ति ते धन्याः ॥८६ ॥

आठवाँ प्रमाण

दुस्साहसी, अदूरदर्शी तथा विचार-शक्ति से हीन लोग मागधराज अशोक के काल से पहले लिपि की सत्ता ही नहीं मानते हैं ॥८२ ॥

कष्ट की बात है कि मगधराज अशोक मात्र बाईस सौ वर्ष पूर्व हुए जबकि भगवान् राम पांच हजार वर्ष से भी पहले हुए थे ॥॥८३ ॥

भगवान् राम के समय भी लिपि थी, क्योंकि उस काल में भी भक्त हनुमान् ने जानकी को रामनामांकित अंगूठी दिखाई थी ॥८४ ॥

वाल्मीकि रामायण में लिखा है —"हे महाभागे ! मैं श्रीमान् भगवान् श्री राम का दूत वानर हूँ। हे देवी ! यह राम का नाम लिखी अंगूठी देखो ॥८५ ॥ (वाल्मी.सु. ३६/२)

ये अदूरदर्शी लोग धन्य हैं, जो चीनी परिव्राजक इत्सिंग के वचनों को प्रामाणिक मानते हैं, परन्तु भारतीय विद्वान् और भारतीय शास्त्रों को प्रमाण नहीं कहते हैं ॥८६ ॥

मन्त्रनिर्माणकाले विद्यमानाया लिपेर्ब्राह्मीसंज्ञा।

११— इत्थं च वेदकाले लिपिसत्त्वे सन्ति हेतवः कतिचित्।
सा च लिपिर्ब्राह्मी वा दैवी वा नामतोन्या वा ॥८७ ॥

इति भारतपरिचये लिपिप्रसङ्गः समाप्तः ॥८ ॥

मंत्रनिर्माण-काल में विद्यमान लिपि का ब्राह्मी लिपि ही होना

इस प्रकार इन अनेक कारणों से स्पष्ट है कि वेदकाल में लिपि विद्यमान थी। वह लिपि ब्राह्मी, दैवी अथवा किसी अन्य नाम से थी। परन्तु कोई लिपि अवश्य ही थी ॥८७ ॥

भारतपरिचय-खण्ड में लिपिप्रसंग समाप्त हुआ ॥८ ॥

सभ्यताप्रसङ्गः ॥९ ॥

देवयुगे भारतवर्षस्य परमोन्नतिः ।

अपि पूर्वस्मिन् काले परमोन्नतिशिखरमायाताः ।
एते तु भारतीया विश्वेषां शिक्षका अभवन् ॥१ ॥
एष गुरुः सर्वेषां देशानामुत्तमो देशः ।
अत एवास्य मनुः प्रागवर्णयद् गौरवं पूर्णम् ॥२ ॥
"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः" (मनुः)
न तदात्वे यवनानां न रोमकाणां न चीनानाम् ।
ज्ञानं बलं च लक्ष्मीस्तथा यथा भारतीयानाम् ॥३ ॥
ज्ञानं तेषामधिकं तत इह विद्याश्चतुःषष्टिः ।
भारतवर्षे प्रथमं प्रादुर्भूता असामान्याः ॥४ ॥
बलमपि तेषामधिकं बहवस्त्विह चक्रवर्त्तिनोऽभूवन् ।
सप्तसमुद्रां पृथ्वीं मांधातैकः शशास तच्चोक्तम् ॥५ ॥
"यावत्सूर्य उदेति स्म यावच्च प्रतिष्ठति ।
सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते" ।(विष्णुपु.अ.२१श्लो.६५)
अमरीकाख्यो देशो देशो यो वाऽफरीकाख्यः ।
यूरोप एशिया तान् सर्वान् शास्ति स्म मान्धाता ॥६ ॥
पाताले गन्धर्वैर्वीरा नागाः प्रपीडिताः सन्तः ।
शरणमगुर्मान्धातुः स हि तेषां रक्षणं चक्रे ॥७ ॥
इक्ष्वाकुश्च ययातिः शशबिन्दुर्हैहयः सगरः ।
एवं क्व च रविवंश्यः क्व च शशिवंश्योऽभवत् सम्राड् ॥८ ॥
एषा सुवर्णभूमिर्गौरिषा दोग्धि भूयसीर्लक्ष्मीः ।
अन्नधनैः स्वान् बिभ्रत्यन्यान् देशान् बिभर्ति साऽद्यापि ॥९ ॥

इति भारतपरिचये सभ्यताप्रसङ्गः समाप्तः ॥९ ॥

सभ्यता-प्रसंग ॥९ ॥

देवयुग में भारतवर्ष की परमोन्नति

प्राचीन समय में ये भारतीय ज्ञान के अत्यन्त उन्नत शिखर पर पहुंच गये थे और सम्पूर्ण विश्व को ज्ञान देने वाले शिक्षक हो गये थे ॥१ ॥

यह देश अत्यन्त उत्तम देश था, जो समस्त देशों का गुरु था। इसलिए मनु ने इस देश के सम्पूर्ण गौरव का पहले ही वर्णन किया है ॥२ ॥

इस देश में उत्पन्न अग्रजन्मा ब्राह्मणों के पास इस पृथ्वी पर समस्त लोग अपने अपने चरित्र (व्यवहार-व्यवसाय-कार्य) की शिक्षा ग्रहण करें ॥३ ॥

उस काल में भारतीयों के पास जितना ज्ञान, बल और धन था, उतना यवनों, रोमवासियों और चीनवासियों में से किसी के पास भी नहीं था ॥३ ॥

इन भारतीयों का ज्ञान अधिक था इसी से यहाँ असामान्य चौसठ विद्यायें सर्वप्रथम प्रादुर्भूत हुईं ॥४ ॥

ये भारतीय अत्यधिक बलशाली थे, इनमें बहुत से राजा तो चक्रवर्ती हुये हैं और कहा गया है कि मान्धाता नाम के पराक्रमी राजा ने अकेले ही इस सात समुद्रों से घिरी हुई सम्पूर्ण पृथ्वी पर अकेले ही शासन किया था ॥५ ॥

विष्णु पुराण में लिखा है — जहाँ तक सूर्य उदय होता है और जहाँ तक अस्त होता है वहाँ तक का सारा क्षेत्र युवनाश्व के पुत्र मान्धाता का क्षेत्र कहा जाता है ॥६ ॥

अमरीका, अफ्रीका इत्यादि जो देश हैं तथा जो यूरोप और एशिया है, उन सब पर वह मान्धाता अकेला ही शासन करता था ॥६ ॥

पाताल लोक में गन्धर्वों द्वारा पीड़ित वीर नाग जाति के लोग मान्धाता की शरण में आये और उस मान्धाता ने ही उनकी रक्षा की ॥७ ॥

प्राचीन भारत में इक्ष्वाकु, हैहय, ययाति, शशबिन्दु और सगर नाम के सम्राट् हुए हैं। इनमें से कोई सूर्यवंशी और कोई चंद्रवंशी सम्राट् थे ॥८ ॥

यह भारत भूमि स्वर्ण-भूमि है, जो गोस्वरूप है जो पर्याप्त लक्ष्मी का दोहन करती है तथा आज भी अन्न-धन से अपना और अन्य देशों का पालन करती है ॥९ ॥

भारत का परिचय-प्रकरण में सभ्यताखण्ड समाप्त हुआ

धर्मप्रसङ्गः ॥१० ॥

भारतीयधर्माणां वैज्ञानिकत्वम् ।

अन्नाचारविचाराः वैज्ञानिकनियतिभावनाक्लृप्ताः ।
तेनेह लौकिका अपि धर्मा इह पारलौकिकाः सर्वे ॥१ ॥
सर्वेभ्योऽपि च देशान्तरीयधर्मेभ्य उत्कर्षः ।
धर्म्मेऽत्र भारतीये यदयं लोकद्वयौपयिकः ॥२ ॥
मतभेदा बहवोऽस्मिन्नैको मार्गोऽत्र सुस्थिरः कश्चित् ।
इति दोषं ब्रुवतेऽन्ये भारतवर्षीयधर्मेऽस्मिन् ॥३ ॥
अनभिज्ञास्ते भारतधर्म्मरहस्यादसूक्ष्मदृशः ।
नैषा नीतिर्नायं भारतधर्म्मो यदृच्छया क्लृप्तः ॥४ ॥
वैज्ञानिकस्तु धर्म्मः सर्वेषां नैकरूपः स्यात् ।
अपि देशकालपात्रप्रभेदतो भिन्नतौचित्यात् ॥५ ॥
नरकल्पितस्तु धर्म्मो नीतित्वात् संभवयत्येकः ।
वैज्ञानिको मनुष्यो न च स्वतन्त्रोऽभिनेतुमेकतया ॥६ ॥
वैज्ञानिको हि सूक्ष्मोपपत्तिको भारते धर्म्मः ।
तस्य तदेव महत्त्वं यदनेकत्वं रवीन्दुनियतत्वात् ॥७ ॥

धर्म-प्रसंग ॥१० ॥

(१) भारतीय धर्मों की वैज्ञानिकता

भारतीय धर्म के जितने भी आचार-व्यवहार हैं, वे वैज्ञानिक प्रकृति की भावना से युक्त हैं। अतः यहाँ के जो लौकिक धर्म हैं, वे भी पारलौकिक धर्म की प्रकृति के अनुसार ही हैं ॥१ ॥

इस भारतीय धर्म में अन्य समस्त देशान्तरीय धर्मों से यही उत्कृष्टता है कि यह धर्म दोनों लोकों के लिए उपयोगी धर्म है ॥२ ॥

अन्य कुछ लोग इसकी निन्दा करते हैं कि इस भारतीय धर्म में अनेक मतभेद हैं तथा कोई निश्चित मार्ग नहीं है ॥३ ॥

वे लोग भारतीय धर्म के रहस्य से अपरिचित हैं, उनकी दृष्टि अथवा रहस्यज्ञान-क्षमता मन्द है, क्योंकि यह भारतीय धर्म स्वेच्छा से बनाया हुआ धर्म नहीं है, और न ही यह कोई नीति मात्र ही है ॥४ ॥

जो धर्म वैज्ञानिक होता है वह देश, काल और पात्र के भेद से भिन्न भिन्न होता है। इसिलिए सँभी धर्मों के लोग एक समान व्यवहार के नहीं होते हैं ॥५ ॥

मनुष्य द्वारा कल्पित धर्म तो एक नियम मात्र होता है अत: उसको जैसा चाहो बनाया जा सकता है परन्तु वैज्ञानिक धर्माचरण करने वाला मनुष्य एक जैसा अनुकरण करने में समर्थ नहीं हो सकता है ॥६ ॥

यह भारतीय वैज्ञानिक धर्म सूर्य और चन्द्रमा द्वारा नियंत्रित होने के कारण सूक्ष्म रूप से निश्चित धर्म है। इसीलिए अनेकता ही इस धर्म की विशेषता है ॥७ ॥

भारतीयधर्मस्वरूपम्।

यो धृतः सन् धारयते स धर्म्मः। स्वरूपसंपादको गुणो धर्म्मः। प्रजासंरक्षणे दीक्षितो राजा भवति। दीक्षितोऽधिकारं प्राप्तः। यावता प्रजां स्वदीक्षानुसारेण पालयेत् तावता स राजा स्यात्। दुष्टनिग्रहानुग्रहाभ्यां शान्तिसंरक्षणं पालनम्। स यद्येतन्न कुर्य्यात् न स तर्हि राजेत्युक्तः स्यात् स स्वरूपाद् विच्यवेत। मनुष्यत्वमस्यावशिष्यते न राजत्वम्। तस्माद्राजस्वरूपसंपादकमिदं कर्म्म धृतं सद् राजानं धारयति तेनायं राज्ञो धर्म्मः। अत एवाहुः—"धर्म्म एव हतो हन्ति धर्म्मो रक्षति रक्षितः।"

धर्म्मो द्विविधः— प्राकृतः संस्कृतश्च। यत्र मनुष्याणां हेयत्वोपादेयत्वयोः स्वायत्तत्वं नास्ति स प्रकृत्या सिद्धः सर्वो गुणः प्राकृतो धर्म्मः। यथा मनुष्यत्वादिः मैथिलत्व-सारस्वतत्वादिः। यावांस्तु गुणो मनुष्यैः स्वायत्ततयोपपाद्यते मनुष्येषु मनुष्यैराधीयते स संस्कारजन्यत्वात् संस्कृतो धर्म्मः। यथा राजत्वं प्राड्विवाकत्वं गुरुत्वं भृत्यत्वम्। एवमादयो गुणा अधिकारयोगादुत्पद्यन्ते। तस्मात्ते संस्कृता धर्माः।

अष्टधा व्याक्रियन्ते हीमे धर्म्माः—

१. दीक्षाव्रतम्।	५. पुष्टिः।
२. संस्कारः।	६. शान्तिः।
३. आचारव्रतम्।	७. स्वस्त्ययनम्।
४. शुद्धिः।	८. आनृशंस्यम्।

ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां जन्मना लब्धोऽधिकारो दीक्षा। कुलक्रमागतं कर्म्म वृत्तिः। अधिकारवृत्तिर्दीक्षाव्रतम्। तत्र ब्राह्मणं व्याख्यास्यामः।

१. स्वयं विज्ञानान्युपार्जयेत्। परेभ्यो विज्ञानान्युपदिशेत्। तत् तपः।

२. स्वयं यज्ञैर्यज्ञपुरुषं याजयेत्। परेभ्यो यज्ञैर्यज्ञपुरुषं याजयेत्।स यज्ञः।

३. राजभ्यो धनाढ्येभ्यश्च कररूपेण प्रतिगृहणीयात्। दीनेभ्यो जीवनं दद्यात्। तद्दानम् ॥

यथाऽयं क्षत्रियो राजा आधिभौतिकेभ्यो दुःखेभ्यो ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यान् प्रजाः संरक्षति। संरक्षणशुल्कतया करं प्रतिगृहणाति। सत्यामावश्यकतायामधिकमपि

समये समये प्रतिगृह्णाति। दीनदरिद्रेभ्यस्तज्जीवनार्थं ददाति च। तथायं ब्राह्मणो ब्रह्मा आधिदैविकेभ्यो दुःखेभ्यो ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यान् प्रजाः संरक्षति। संरक्षणशुल्कतया राजभ्योऽपि करं प्रतिगृह्णाति। सत्यामावश्यकतायामधिकमपि समये समये प्रतिगृह्णाति। यथा राज्ञः शासनसभामण्डलाधीनानि धिष्ण्यभवनानि भवन्ति तथामुष्य ब्रह्मणो देवयजनमण्डलाधीनाः पाकादियज्ञशालाः स्थापिता भवन्ति॥

भोजमहाभोजौ राजानौ। चक्रवर्तिसार्वभौमो सम्राजौ। इन्द्रमहेन्द्रौ स्वराजौ ब्रह्मविष्णू विराजाविति चतुःकक्षं क्षत्रं भवति। तथा द्विजो विप्रो देवो ब्रह्मेति चतुःकक्षं ब्रह्म भवति। ताविमौ ब्रह्मा मूर्धाभिषिक्तश्च लोकानां दीक्षापालौ भवतः। एतावेव सर्वाः प्रजा अनुशिष्टः॥ अनयोरपि क्षत्रमनुशास्ति। तस्माद् ब्राह्मणो राजभ्यः करं प्रतिगृह्णाति॥ यथा कर्षकाणां सर्वा भूमी राज्ञः। नगरे सर्वमापणं सर्वा वीथ्यो राजमार्गा राज्ञ एव। राजानुग्रेहण च सर्वाः प्रजाः स्वत्वमनुवर्तयन्ति एवमेवैतेषां राज्ञामपि तत्र तत्राधिकारो ब्राह्मणानुग्रहेण प्रतिपत्तव्यः। सर्वो ब्रह्मस्वं भुंक्ते। ब्रह्मा राज्ञोऽधिपतिः। राजा वैश्यवर्गस्याधिपतिः। यदि प्रजाः सर्वाः प्रतिपन्थिन्यो विरुद्धाः स्युः स्वतन्त्राः स्युः राजाज्ञां नानुपालयेयुः स तर्हि राजा क्षत्रवीर्य्याच्चयुतोऽनधिकारो भवति न स्वधर्मं परिपालयितुं शक्नोति। एवं यदि राजानः सर्वे विप्रतिपन्थिनः स्युः स्वतन्त्राः स्युः ब्राह्मणाज्ञां नानुपालयेयुः स तर्हि ब्रह्मा ब्रह्मवीर्य्याच्चयुतोऽधिकारो भवति न स्वधर्म्मं परिपालयितुं शक्नोति। यथा शरीरे आग्नेयमुदरमण्डलं — वायव्यमुरोमण्डलं — ऐन्द्रं शिरोमण्डलं परसरानुगृहीतं वीर्य्यवद् भवति। पृथक्कृतं चैतदेकैकं स्वतन्त्रं सन्निर्वीर्य्यं मृतं भवति। तथेदं विण्मण्डलं क्षत्रमण्डलं ब्रह्ममण्डलं च पृथक्कृतं सदेकैकं स्वतन्त्रं भूत्वा निर्वीर्य्य मृतं भवति। स्वतंत्रा वैश्या न राजाज्ञामनुपालयन्ति स्वतन्त्राश्च राजानो न ब्राह्मणाज्ञामनुपालयन्ति। तेनैते त्रयोऽपि निर्वीर्य्या मृता इव संप्रति दृश्यन्ते। परस्परानुगृहीतास्त्वेते स्वं स्वं धर्म्ममसंकीर्णमनुवर्तमाना वीर्य्यवन्तः स्युः। सर्वैश्चैतैः स्वस्वधर्म्मानसांकर्य्येणानुतिष्ठद्भिरेकः समाजात्मा जीवितो भवति तत्रायं ब्राह्मणः समाजात्मनः शिरःस्थानीयः॥ स एष व्याख्यातः।१।। एवमुरःस्थानीयः क्षत्रियः। उदरस्थानीयो वैश्यश्च व्याख्यातव्यः। अस्य हि समाजरूपस्यात्मनोऽयं ब्राह्मणस्तावदाधिदैविकव्यापत्तिनिवर्तकत्वाच्चर्म्मस्थानीयोन्तरङ्गोऽङ्गरक्षको भवतीति शर्म्मेत्युच्यते — "चर्मेति मानुषं शर्म्म देवत्रा"! (श.१।१।४।४) इति श्रुतेः। क्षत्रियस्तु आधिभौतिकव्यापत्तिनिवर्तकत्वाद् वर्मस्थानीयो बहिरङ्गोऽङ्गरक्षको भवतीति वर्म्मेत्युच्यते॥द्वाविमौ गोपयितारौ भवतः। यस्तु ताभ्यामुभाभ्यां संगुप्यते स गुप्तो वैश्यः। तेषामेषां त्रयाणां स्वस्वव्रतोपयोगिशक्तिप्रवर्धककर्मकरणं स्वस्वव्रतोप-योगिशक्तिव्यापादककर्म्मपरित्यागश्च प्रातिस्विको धर्म्मः सिद्धो भवतीति विज्ञेयम्।

(२) भारतीय धर्म का स्वरूप

जो धारण करने पर धारण करने वाले को धारण करता है वह धर्म है। किसी पदार्थ के स्वरूप को धारण करने वाला गुण ही धर्म है। जैसे प्रजा की रक्षा करने के लिए "राजत्व" नाम के धर्म की दीक्षा प्राप्त करने वाला राजा होता है। (यहाँ राजत्व नाम के धर्म को जब राजा धारण करता है अर्थात् यदि वह उस राजत्व धर्म की पालना करता है तो वह राजत्व धर्म राजा को धारण करता है अर्थात् राजा कहलाने का अधिकारी बनाये रखता है।) राज्याधिकार को प्राप्त करना ही दीक्षा है। वह राजा जब तक अपनी राजत्व दीक्षा के अनुसार प्रजा का पालन करता है तब तक ही वह राजा होता है। राजत्व की दीक्षा है-दुष्टों को नियंत्रित करना, सज्जनों पर कृपा करना, शान्ति बनाये रखना तथा प्रजा-पालन करना। यदि वह इस प्रकार नहीं करता है तो वह राजा नहीं कहलायेगा, वह राजत्व-स्वरूप से पतित हो जायेगा। इसमें मनुष्यत्व धर्म तो विद्यमान रहेगा परन्तु राजत्व धर्म नहीं। अतः राजस्वरूप-सम्पादक कर्म को धारण करने वाला धर्म राजा को धारण करता है। इस प्रकार यह राजत्व-दीक्षा ही राजा का धर्म हुआ। इसीलिए कहा है धर्म को नष्ट करने पर धर्म मनुष्य को नष्ट कर देता है। यदि हम धर्म की रक्षा करते हैं तो धर्म मनुष्य की रक्षा करता है।

धर्म दो प्रकार का होता है- प्राकृत और संस्कार-युक्त। जहाँ मनुष्य को त्याज्य अथवा ग्राह्य कर्मों में स्वतंत्रता नहीं है, जिसके कर्म और गुण प्रकृति से सिद्ध हैं, वह धर्म प्राकृत धर्म है। जिस प्रकार मनुष्यत्व, मैथिलत्व और सारस्वतादि धर्म, जिनका त्याग नहीं किया जा सकता है। जो गुण मनुष्यों द्वारा स्वतंत्रता से उत्पन्न किया जा सकता है, मनुष्यों द्वारा जिसका आरोपण किया जा सकता है, संस्कार-जन्य होने के कारण वह धर्म संस्कार-युक्त धर्म है। जिस प्रकार राजत्व धर्म, प्राड्विवाकत्व (व्यवस्थापकत्व अथवा निर्णायकत्व) धर्म, गुरुत्व-धर्म तथा सेवकत्व धर्म इत्यादि धर्म अथवा गुण अधिकार प्रदान करने पर ही उत्पन्न होते हैं, प्राकृतिक नहीं। इसलिए ये धर्म संस्कृत धर्म हैं।

धर्म आठ प्रकार के होते हैं :—

(१) दीक्षाव्रत, (२) संस्कार, (३) आचार व्रत, (४) शुद्धि, (५) पुष्टि, (६) शान्ति, (७) स्वस्त्ययन, (८) आनृशंस्यम्।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के जन्म से प्राप्त अधिकारों की दीक्षा अर्थात् धर्म संस्कार के लिए समर्पण करना। वंशानुगत कर्म ही उसकी वृत्ति है। उस कुलक्रमागत अधिकार को प्राप्त करना ही वृत्ति कहलाता है। अब ब्राह्मणधर्म की व्याख्या करते हैं —

(१) स्वयं ज्ञान की प्राप्ति करे। दूसरों को विज्ञान का उपदेश दे। यही उसका तप है।

(२) स्वयं यज्ञ के द्वारा यज्ञ-पुरुष अर्थात् परमात्मा का यजन करे। दूसरों के लिए भी यज्ञ से यज्ञपुरुष का यजन करावे। यही यज्ञ है।

(३) राजाओं तथा धनी लोगों से कर रूप में धन प्राप्त करे। दीनों अथवा अज्ञानियों को ज्ञान रूप जीवन प्रदान करे। यही उसका दान है। ("ब्राह्मण धर्म के छः लक्षण बताये गये हैं — "यजनं याजनं चैव पठनं पाठनं तथा दानं प्रतिग्रहश्चैव षड्विधं विप्रलक्षणम्॥")

जिस प्रकार राजा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य प्रजा की आधिभौतिक दुःखों से रक्षा करता है, संरक्षण-शुल्क के रूप में कर ग्रहण करता है। आवश्यकता पड़ने पर अधिक धन भी समय समय पर ग्रहण करता है। दीनों और दरिद्रों को उनके जीवन के लिए दान भी देता है। उसी प्रकार ब्राह्मण ब्रह्मा है और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य प्रजा की आधिदैविक दुःखों से रक्षा करता है। संरक्षण-शुल्क के रूप में राजाओं से दान रूप कर प्राप्त करता है, आवश्यकता पड़ने पर अधिक भी प्राप्त करता है। जिस प्रकार राजा के शासन, सभामण्डल के निमित्त भवन और आवास गृह होते हैं उसी प्रकार ब्रह्मा के देव-यजन-मण्डल के अधीन पाक-यज्ञ-शाला स्थापित की जाती है।

राजा दो प्रकार के होते हैं– भोज और महाभोज। चक्रवर्ती और सार्वभौम सम्राज होते हैं। इन्द्र और महेन्द्र स्वराज हैं, ब्रह्मा और विष्णु विराज हैं। इस प्रकार चार प्रकार क्षत्रियत्व का (राजा) होता है। इसी प्रकार ब्राह्मण भी चार प्रकार के होते हैं।द्विज, विप्र, देव और ब्रह्मा। ब्राह्मण और राज्याभिषिक्त क्षत्रिय ये दोनों ही लोगों के दीक्षापालक हैं अर्थात् नियमों की पालना में प्रेरक होते हैं। ये दोनों ही समस्त प्रजा का अनुशासन करते हैं। इसीलिए ब्राह्मण राजाओं से कर ग्रहण करता है। जिस प्रकार कृषकों की समस्त् भूमि राजा की होती है, जिस प्रकार नगर में समस्त दुकानें, सभी गलियां, बाजार राजा के होते हैं, उसी की कृपा से समस्त प्रजा अपने अपने अधिकार का पालन करती है। इसी प्रकार राजाओं के तत्तत् अधिकार भी ब्राह्मणों के अनुग्रह से ही राजाओं द्वारा उपयोग में लिए जा सकते हैं। सब लोग ब्राह्मण द्वारा दिये गये ऐश्वर्य का उपभोग करते हैं। ब्राह्मण राजा का अधिपति है। राजा वैश्य-वर्ग का अधिपति है। यदि सम्पूर्ण प्रजा विरुद्ध आचरण करने लगे, विरोधी हो जावे, राजा की आज्ञा का पालन नहीं करे तो वह राजा क्षत्रिय पराक्रम रूप अधिकार से विच्युत हो जाता है। अपने धर्म का पालन करने में समर्थ नहीं होता है। इसी प्रकार यदि सभी राजा विरुद्धाचारी हो जावें, स्वतंत्र हो जावें, ब्राह्मणों की आज्ञा का पालन नहीं करें तो वह ब्राह्मण ब्रह्म तेज के अधिकार से पतित हो जायेगा। जिस प्रकार शरीर में अग्नि का उदरमण्डल, वायु का उरोमण्डल और इन्द्र का शिरोमण्डल परस्पर अनुग्रह करते हुए शक्ति का आदान प्रदान करते हैं और पृथक् करने पर प्रत्येक अलग हो जाते हैं और स्वतंत्र होकर शक्तिहीन हो जाते हैं, मृत हो जाते हैं, उसी प्रकार यदि वैश्यमण्डल, क्षत्र-मण्डल, ब्रह्ममण्डल अलग-अलग रहकर प्रत्येक स्वतंत्र होकर रहते हैं तो शक्तिहीन होते हुए, मृत हो जायेंगे। वैश्य स्वतंत्र होकर राजा की आज्ञा का पालन नहीं करते हैं, स्वतंत्र राजा ब्राह्मणों की आज्ञा का पालन नहीं करते हैं तो ये तीनों ही शक्तिहीन होकर मरे हुए के समान दिखाई देते हैं। परस्पर सामंजस्यपूर्वक, एक दूसरे पर अनुग्रह करते हुए, अपने अपने धर्म में क्षुद्रतारहित होते हुए शक्तिशाली हो जायेंगे। ये सभी परस्पर अपने अपने धर्म का संकीर्णता रहित होकर पालन करते हुए एक समाजरूपी आत्मा के रूप में जीवित रहते हैं। यहाँ पर ब्राह्मण रूपी समाजात्मा शिरःस्थानीय है। इस प्रकार यह ब्राह्मण की व्याख्या हुई ॥११ ॥

इसी प्रकार वक्षस्थल का स्थान क्षत्रिय का है। उदरभाग वैश्य को दिया गया है, ऐसा मानना चाहिये। इस प्रकार समाज रूपी आत्मा का यह ब्राह्मण आधिदैविक आपत्तियों का निवर्त्तक होने के कारण शरीर के आन्तरिक भाग का रक्षक होकर चर्मस्थानीय है (जिस

प्रकार शरीर के मांस-मज्जा इत्यादि का रक्षक चर्म होता है उसी प्रकार मानव की आन्तरिक अर्थात् आधिदैविक आपत्तियों की रक्षा का कार्य ब्राह्मण का है) इसीलिये ब्राह्मण चर्मस्थानीय होने के कारण "शर्म" कहा जाता है। शपतथ के (१ ।१ ।४ ।४) के अनुसार- (लोकभाषा में) मनुष्य का जो चर्म है, वह देवों में (वेदभाषा में) शर्म्म कहा जाता है।"

क्षत्रिय तो आधिभौतिक आपत्तियों का निवारक होने के कारण कवचस्थानीय है। बाहरी आपत्तियों से रक्षा करने के कारण "वर्म" कहलाता है। इस प्रकार ये दोनों (ब्राह्मण और क्षत्रिय) रक्षा करने वाले हैं। जो इन दोनों के द्वारा रक्षा किया जाता है, वह वैश्य "गुप्त" कहलाता है। अपने अपने नियमों की उपयोगी शक्ति की वृद्धि करने योग्य कर्म का करना तथा अपने अपने नियम की उपयोगी शक्ति का नाश करने वाले कर्म का परित्यांग करना ही इन तीनों का स्वाभाविक धर्म है, ऐसा सिद्ध होता है, ऐसा मानना चाहिये ॥

वैज्ञानिकधर्मनिबन्धनं भारतवर्षमहत्त्वम्।

एतद् भारतवर्षप्रशंसनं यत्पुराणेषु।
वैज्ञानिकं तदुक्तं धर्म्मो न यदृच्छयाऽत्र क्लृप्तोऽस्ति ॥१ ॥
अस्मिन्वर्षे वेदविज्ञानधारादीक्षाशिक्षापूर्णपाकोदयेन।
दिव्या धर्म्मा यादृशाः सन्ति दृष्टा दृश्यन्ते ते नान्यदेशेषु तद्वत् ॥२ ॥
चातुर्वर्ण्यं चातुराश्रम्यमेवं चातुर्वर्ग्यं यज्ञदाने तपश्च।
इष्टापूर्त्ते दत्तमाराधना वा तीर्थाग्र्याणां देवतानां गुरूणाम् ॥३ ॥
इत्थं दृष्टा वेदविद्भिः पुराणैरस्मिन्वर्षे भारते धर्म्मभेदाः।
अत्रैवैषामस्ति सम्यग् विधानं देशेऽन्यस्मिन् सन्ति नैषामुदर्काः ॥४ ॥
एतत्सत्यं वर्णयन्ति स्म पूर्वे सूक्ष्मप्रेक्षादक्षपौराणिकाग्र्याः।
ब्राह्मेऽध्याये पञ्चविंशे पुराणे भूयो भूयोऽन्यत्र चान्यत्र चेति ॥५ ॥

(३) वैज्ञानिक धर्म की संरचना के कारण भारतवर्ष का महत्त्व

पुराणों में जो भारतवर्ष की प्रशंसा की गई है, वह धर्म यहाँ स्वेच्छा से निर्मित नहीं किया गया है अपितु यह एक वैज्ञानिक धर्म है ॥१ ॥

इस भारतवर्ष में वेद-विज्ञान की धारा की पूर्ण शिक्षा-दीक्षा के फलस्वरूप जिस प्रकार के दिव्य धर्म दिखाई देते हैं, वैसे अन्य देशों में कहीं भी दिखाई नहीं देते हैं ॥२ ॥

चार वर्णों से युक्त, चार आश्रम, चार वर्ग (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष), यज्ञ, दान, तप तथा इष्ट, आपूर्त, दत्त, श्रेष्ठ तीर्थों, देवताओं और गुरुओं की आराधना, इस प्रकार इस भारतवर्ष में पुराणों और वेदवेत्ताओं के द्वारा धर्म के भेद बताये गये हैं। इसी भारत देश में इस प्रकार भली प्रकार से धर्म-भेद का विधान किया गया है, यहाँ इसका कोई अन्त नहीं है ॥३-४ ॥

पुराणों में सूक्ष्म दृष्टि रखने में चतुर, श्रेष्ठ, प्राचीन विद्वानों ने ब्रह्मपुराण के पच्चीसवें अध्याय में बारंबार और अनेक स्थानों पर इस धर्म-विभाग का विस्तार से वर्णन किया गया है ॥५ ॥

पौराणिकं भारतवर्षमाहात्म्यम्।

न भारतसमं वर्षं पृथिव्यामस्ति किञ्चन।
यत्र विप्रादयो वर्णाः प्राप्नुवन्त्यभिवाञ्छितम्॥१॥
धन्यास्ते भारते वर्षे जायन्ते ये नरोत्तमाः।
धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्नुवन्ति महाफलम्॥२॥
प्राप्यते यत्र तपसः फलं परमदुर्लभम्।
सर्वदाफलं यत्र सर्वयज्ञफलं तथा॥३॥
तीर्थयज्ञफलं सम्यक् गुरुसेवाफलं तथा।
देवताराधनफलं गार्हस्थ्ये चैव यत्फलम्॥४॥
यत्र देवाः सदा हृष्टाः जन्म वाञ्छन्ति शोभनम्।
नाना व्रतफलं यत्र नाना शास्त्रफलं तथा॥५॥
अहिंसादिफलं सम्यक् फलं सर्वाभिवाञ्छितम्।
ब्रह्मचर्य्यफलं यत्र स्वाध्यायेन च यत्फलम्॥६॥
यत्फलं वनवासेन संन्यासेन च यत्फलम्।
इष्टापूर्त्तैः फलं चैव तथाऽन्यच्छुभकर्मणाम्॥७॥
प्राप्यते भारते वर्षे न चान्यत्र क्वचिद्भुवि।
कः शक्नोति गुणान्वक्तुं भारतस्याखिलानपि॥८॥(ब्रह्मपुराण, २५अध्याय)

(४) पुराणोक्त भारतवर्ष का माहात्म्य

सम्पूर्ण पृथ्वी पर भारतवर्ष के समान कोई देश नहीं है, जहाँ ब्राह्मण इत्यादि वर्ण धर्म द्वारा अपने अभीप्सित को प्राप्त करते हैं॥१॥

जो नरश्रेष्ठ भारत में उत्पन्न हुए हैं, वे धन्य है, वे लोग धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के महान् फल को प्राप्त करते हैं॥२॥

तपस्वी लोग जहाँ दुर्लभ तप का फल, समस्त प्रकार के दान का फल तथा यज्ञादि का फल प्राप्त करते हैं॥३॥

तीर्थयात्रा रूपी यज्ञ के फल तथा गुरुसेवा करने का फल, देवता की आराधना से प्राप्त होने वाला फल तथा गृहस्थजीवन में जो भी फल प्राप्त करने योग्य है, उनको प्राप्त करते हैं॥४॥

जहाँ देवता भी प्रसन्न होकर शोभनीय जन्म को प्राप्त करना चाहते हैं, जहाँ अनेक व्रतों का फल मिलता है और शास्त्र के ज्ञान का फल प्राप्त होता है॥५॥

जिस भारतवर्ष में अहिंसा का फल भली प्रकार प्राप्त होता है, समस्त अभीष्ट कामनाओं को प्राप्त करने रूप फल की प्राप्ति होती है, जहाँ स्वाध्याय का फल और ब्रह्मचर्य का फल प्राप्त होता है॥६॥

वनवास से जो फल प्राप्त होता है, सन्यास-ग्रहण से जिस फल की प्राप्ति होती है, इष्ट और आपूर्ति से प्राप्य फल तथा अन्य भी शुभ कर्मों को करने से जिस फल की प्राप्ति हो सकती है, वे सभी इस भारतवर्ष में प्राप्त किये जा सकते हैं। अन्यत्र कहीं नहीं किये जा सकते। इस प्रकार इस भारत के समस्त गुणों को कहने में कौन समर्थ हो सकता है ? ॥७-८ ॥ (ब्रह्मपु. २५)

भारतीयमहर्षीणां वैज्ञानिकतया दूरदर्शित्वम्।

अत्रत्या विद्वांसो मान्या ब्रह्मर्षयः पूर्वे।
विज्ञानं तदपश्यन् येनापश्यन् परत्र कर्म्मफलम् ॥१ ॥
मरणोत्तरमयमात्मा विलुप्यते सर्वथेति नावेयात्।
जीवन्निव स तदानीमपि सुखदुःखे तनुं गतो भुंक्ते ॥२ ॥
इह यत्कर्म कृतं स्याच्छुभमशुभं वा फलं ध्रुवं तस्य।
लभते परत्र जीवः स्वर्गसुखं यातनां यामीम् ॥३ ॥
यज्ञस्तपश्च दानानीष्टापूर्ते च दत्तं च।
कर्म्म स्वर्गप्राप्त्यै दुःखप्राप्त्यै विकर्म्म चाकर्म्म ॥४ ॥
इत्थं यज्ञं कुर्य्यादित्थं कुर्य्यात् तपश्च दानं च।
परपीडनं न कुर्य्याद् वपुषा वचसा च मनसा च ॥५ ॥
पारत्रिकमिदमित्थं धर्म्मश्चार्थश्च कामश्च।
मोक्षश्च भारतीयैः पूर्वैर्विज्ञानतो दृष्टाः ॥६ ॥
कुर्वन्ति भारतीया एव परलोकसाधनं कर्म्म।
उत्तरजन्मन्युत्तमयोनिनिदानं त एव जानन्ति ॥७ ॥
इतरजनाः श्रद्दधते परलोके नैवमज्ञानात्।
तेषां सर्वमपीदं कर्म्मैहिकभोगसाधनं नियतम् ॥८ ॥
अद्येतरवर्षीयप्रोन्नतिकालोऽस्ति किन्तु तत्रापि।
नैषां तद्विज्ञानं मस्तिष्केऽद्यापि संरूढम् ॥९ ॥
धन्यं भारतवर्षं यत्रैतद्बहुपुरातने काले।
विज्ञानं प्रतिबुद्धं सर्वा पृथ्वी यतोऽनभिज्ञास्ति ॥१० ॥

(५) भारतीय महर्षियों की वैज्ञानिकता-पूर्ण दूरदर्शिता

प्राचीन सर्वमान्य महर्षियों ने जिस विज्ञान के द्वारा कर्मफल को देखा, ऐसे उस विज्ञान का रहस्य भली भाँति समझा ॥१ ॥

मृत्यु के उपरान्त यह आत्मा पूर्णतः समाप्त नहीं होती है, अपितु उस अवस्था में भी शरीरस्थ जीवित आत्मा के समान सुख-दुःख प्राप्त करती है ॥२ ॥

यह जीवात्मा इस लोक में किये गये शुभ अथवा अशुभ कर्मों के फल को निश्चय ही पारलौकिक स्वर्ग-सुख अथवा यमलोक की यातना को प्राप्त करता है ॥३ ॥

स्वर्गसुख की प्राप्ति के लिए यज्ञ, तप, दान, इष्ट और आपूर्ति इत्यादि कर्म करने चाहिये तथा अकर्म अथवा कर्म-हीनता और विरुद्ध कर्म दुःख की प्राप्ति कराते हैं ॥४ ॥

इस प्रकार यज्ञ करना चाहिये, इस विधि से तप और दान करने चाहिये। मन से, वचन से और कर्म से कभी दूसरे को पीड़ा नहीं पहुंचानी चाहिये ॥५ ॥

प्राचीन भारतीय विद्वानों ने अपनी वैज्ञानिक दृष्टि से इस प्रकार ये धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष से सम्बद्ध धर्म को देखा है ॥६ ॥

परलोक की प्राप्ति योग्य कर्म भारतीय लोग ही करते हैं। ये भारतीय ही मृत्यु के पश्चात् पुनर्जन्म और उसमें भी उत्तम योनि में जन्म तथा उसके लिए उपाय करना जानते हैं ॥७ ॥

भारतीयेतर लोग अज्ञानता से इस प्रकार परलोक में श्रद्धा नहीं रखते हैं, उनके समस्त कर्म इहलौकिक भोम-साधन के लिए ही निश्चित माने गये हैं ॥८ ॥

आज अन्य देशों के लिए उन्नति का समय है, परन्तु वहाँ के लोगों के मस्तिष्क में आज तक भी यह पारलौकिक ज्ञान स्थापित नहीं हुआ है ॥९ ॥

धन्य है यह भारतवर्ष जहाँ अत्यन्त प्राचीनकाल में ही यह वैज्ञानिक उन्नति हो गई थी, जिससे सम्पूर्ण पृथ्वी आज तक अनभिज्ञ है ॥१० ॥

उन्नत्यवनतिविचारे भारतीयानां प्राचां विदुषां सिद्धान्तः।
क्षीणभारतोपहासानौचित्यम्।

१— भारतवर्षस्यास्य प्राचीनं गौरवं श्रुत्वा ॥
अद्यत्वेऽवनतं तद् दृष्ट्वोपहसन्ति वैदेश्याः ॥१ ॥
धाष्ट्र्यं तदेतदेषामनभिज्ञत्वं बालकत्वं च ॥
अपमानयन्ति ये तु क्षीणं दैवापराधेन ॥२ ॥
अपि युद्ध्यतोर्द्वयोरिह जयति क्व च दुर्बलो दैवात्।
दैवापराधतश्च क्वापि पराजीयते प्रबलः ॥३ ॥

(६) उन्नति और अवनति के संबंध में प्राचीन भारतीय विद्वानों का सिद्धान्त
क्षीण भारत के उपहास का अनौचित्य

विदेशी लोग आज भी अवनति को देखते हुए जब प्राचीन गौरव को सुनते हैं तो उसका उपहास करते हैं ॥१ ॥

यह उनकी धृष्टता है, अज्ञानता है तथा बाल-चपलता है, जो इस प्रकार तुच्छ दैवापराध से इस भारतवर्ष की वैज्ञानिकता का अपमान करते हैं ॥२ ॥

युद्ध करते हुए दो व्यक्तियों में कहीं तो भाग्यवश दुर्बल व्यक्ति भी जीत जाता है और कभी दैवापराध से प्रबल भी पराजित हो जाता है ॥३ ॥

धर्म्मरक्षोपेक्षाया भारतावनतिहेतुत्वम्।

२— भारतवर्षाधिपतिर्भारतधर्म्मं न हन्त पालयति॥
संप्रति भारतवर्षे शास्तुरुपेक्षैव हेतुरवनत्याः ॥४॥
भारतवर्षाधिपतिर्यमिदानीमुन्नतेरस्य।
हेतुं पश्यति स ध्रुवमवनतिहेतुस्ततोऽवनतिः ॥५॥

(७) धर्म की रक्षा में उपेक्षा ही भारत की अवनति का कारण

कष्ट है कि भारतवर्ष के शासक भारतीय धर्म की पालना नहीं करते हैं। इस समय इस धर्म की अवनति में शासकों की उपेक्षा ही प्रमुख कारण है॥४॥

इस समय भारतवर्ष का शासक जिसको उन्नति का कारण मानता है, वह निश्चय ही अवनति का कारण है और इसीलिए यह अवनति हो रही है॥५॥

चातुर्वर्ण्यव्यवस्थाया अवनतिहेतुत्वाभावः।

३— अप्यनभिज्ञाः केचिच्चातुर्वर्ण्यव्यवस्थानम्।
अवनतिहेतुं प्राहुर्न त्वेते दूरदर्शिनः सन्ति॥६॥
भारतवर्षे यावच्चातुर्वर्ण्यव्यवस्थानम्।
आसीत् सुदृढं तावत् परमोन्नतिरस्य देशस्य॥७॥
यदवधि राज्ञोऽसत्त्वाच्चातुर्वर्ण्यव्यवस्थानम्।
अभवच्छिथिलं लोके तत आरम्भो निपातस्य॥८॥

(८) चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था को अवनति का कारण मानने का निषेध

कुछ अनभिज्ञ लोग चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था को अवनति का कारण मानते हैं। वास्तव में वे दूरदर्शी नहीं है॥६॥

भारतवर्ष में जब तक चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था सुदृढ़ थी तब तक इस देश की सर्वाधिक उन्नति हुई॥७॥

जब से राजाओं के न रहने के कारण चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था शिथिल हुई है, तभी से संसार में पतन का प्रारम्भ हुआ है॥८॥

चातुर्वर्ण्यव्यवस्थाया एव भारतीयोन्नतिहेतुत्वम्।

४— यत्तु ब्रूयुः केचिच्चातुर्वर्ण्यव्यवस्थायाः।
देशान्तरेष्वसत्त्वेऽप्युन्नतिरस्तीत्यहेतुः सा॥९॥
तत्र ब्रूमः सोन्नतिरेतद्देशोन्नतेस्तुलनाम्।
नार्हति भारतवर्षोन्नतिरासीदुन्नतिः परमा॥१०॥

भारतवर्षस्योन्नतिरथ चोन्नतिरन्यदेशानाम्।
भिद्यत इतरेतरतः परमं त्वेवान्तरं हि तयोः ॥११॥
आत्मोन्नतिरिह परमा भौतिक्युन्नतिरथान्यदेशेषु।
भौती परसापेक्षा निरपेक्षा त्वात्मनः सिद्धिः ॥१२॥

(९) चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था ही भारत की उन्नति का कारण

जो कुछ लोग कहते हैं कि अन्य देशों में चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था के न होने पर भी उन्नति है। अतः वह यह चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था इस उन्नति में कारण नहीं है॥९॥

इस संबंध में हम कहते हैं कि वह उन्नति (अन्य देशों की उन्नति) इस की उन्नति से तुलना करने योग्य नहीं है। भारतवर्ष की उन्नति श्रेष्ठ है॥१०॥

भारत वर्ष की उन्नति और अन्य देशों की उन्नति परस्पर भिन्न है। इन दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है॥११॥

इस देश में आत्मोन्नति ही श्रेष्ठ मानी जाती है, जबकि अन्य देशों में भौतिकोन्नति श्रेष्ठ है। भौतिक उन्नति दूसरे की अपेक्षा रखती है और आत्मसिद्धि परनिरपेक्ष है, जो स्वयं के अधिकार में है॥१२॥

विज्ञानतेजसोः संपत्त्यै प्रथमतः शिल्पद्वारा धनापेक्षा।

५— आत्मोन्नतिरिह यद्यपि परमोन्नतिरस्ति किन्तु सोदेति।
न विना धनसंपत्त्या न च राजानुग्रहेण विना॥१३॥
अन्योन्याव्यतिरेकात् सिद्धिरिहान्योन्यसापेक्षा।
उदरस्य च हृदयस्य च शिरसश्च यथा घनिष्ठसम्बन्धः॥१४॥
धनतः प्राणोत्साहो धनतो विज्ञानमुपयाति।
प्राणोत्साहादपि वा धनमपि विज्ञानमायाति॥१५॥
विज्ञानतो धनं च प्राणोत्साहश्च जायेते।
सिद्धेनैकेनान्यद् द्वयमपि सिद्धं ध्रुवं भवति॥१६॥
यावद् भारतवर्षे नोत्साहो नास्ति विज्ञानम्।
तावद् धनमधिकाधिकमपेक्ष्यतेऽन्यस्य संसिद्ध्यै॥१७॥
विज्ञानतेजसोरिह यावदभावोऽस्ति भारते वर्षे।
शिल्पैरेव तु तावद्धनानि तैः साधनीयानि॥१८॥
सिद्धे प्राणोत्साहे विज्ञाने वा पुनर्धनापेक्षा।
न स्यात् सर्वेऽप्यर्था विज्ञानेनैव साध्येरन्॥१९॥
विज्ञानं हि महार्थं तद्धनं भवति।
यद्यद्धनैरसाध्यं तद्विज्ञानेन साध्यते न चिरात्॥२०॥

(१०) विज्ञान और ज्योति रूप सम्पत्ति के लिए पहले शिल्पकला के द्वारा धन की अपेक्षा का वर्णन

आत्मोन्नति यद्यपि श्रेष्ठ उन्नति है किन्तु वह धनसम्पत्ति के बिना तथा राजा के अनुग्रह के बिना प्राप्त नहीं हो सकती है ॥१३॥

जिस प्रकार हृदय, उदर और मस्तिष्क का परस्पर घनिष्ठ संबंध है उसी प्रकार आत्मोन्नति भी धन-सम्पत्ति और राजानुग्रह से परस्पर अभेद होने के कारण अन्योन्यसापेक्ष है ॥१४॥

धन से प्राणोत्साह उत्पन्न होता है और धन से ही विज्ञान की प्राप्ति होती है। अथवा प्राणोत्साह से ही धन और विज्ञान की प्राप्ति होती है ॥१५॥

विज्ञान से ही धन और प्राणोत्साह उत्पन्न होता है। एक की सिद्धि होने पर अन्य दोनों की सिद्धि स्वयमेव हो जाती है ॥१६॥

जब तक भारतवर्ष में उत्साह नहीं है और विज्ञान नहीं है तब तक अन्य की उत्पत्ति के लिए अधिकाधिक धन की अपेक्षा रहती है ॥१७॥

इस भारतवर्ष में विज्ञान और तेज का जो अभाव है, तो उन शिल्पकलाओं के माध्यम से ही धन की साधना की जानी चाहिये ॥१८॥

विज्ञान और प्राणोत्साह के सिद्ध हो जाने के पश्चात् धन की अपेक्षा नहीं रहेगी। समस्त साध्य विज्ञान से सिद्ध किये जाने चाहिये ॥१९॥

विज्ञान ही सर्वोपरि प्रयोजन है और धनप्राप्ति सामान्य प्रयोजन हैं। जो जो प्रयोजन धन के द्वारा सिद्ध नहीं हो सकते हैं वे सभी विज्ञान से शीघ्र ही प्राप्त किये जा सकते हैं ॥२०॥

शिल्पविज्ञानस्य आत्मोन्नतिहेतुविज्ञानत्वाभावः।

वपुर्बलाभ्युन्नतितो धनोन्नतिः परा ततोऽपि प्रवरा प्रतीयते।
प्राणोन्नतिः किन्तु ततोऽपि शस्यते ज्ञानोन्नतिर्नास्ति ततः परोन्नतिः ॥१॥
ज्ञानोन्नतिर्यद्यपि शिल्पगाधुनाप्यस्त्येव देशेष्वखिलेषु भूयसा।
तथापि सा भूतबलव्यपेक्षया पराश्रिताऽस्तीति न सातिशंस्यते ॥२॥
यदस्ति शिल्पोन्नतिकारिशिल्पिनां विज्ञानमेतत्तु कथंचिदिष्यते।
लोकोपकारीह धनाप्तिकारणं तथापि नात्मोन्नतिहेतुरस्ति तत् ॥३॥

(११) शिल्पविज्ञान आत्मोन्नति में कारण नहीं होना

शारीरिक बल की उन्नति से धन की उन्नति श्रेष्ठ है, धनोन्नति से भी प्राणोन्नति श्रेष्ठ है परन्तु प्राणोन्नति से भी उत्कृष्ट ज्ञानोन्नति है और वही सर्वश्रेष्ठ है। उससे बढ़कर कोई उन्नति नहीं है ॥१॥

यद्यपि आज यांत्रिक उन्नति से युक्त ज्ञानोन्नति समस्त देशों में पर्याप्त रूप से विद्यमान है, तथापि वह उन्नति भौतिक बल की अपेक्षा रखने के कारण पराश्रित है और इसीलिए प्रशंसा के योग्य नहीं है ॥२॥

यद्यपि यांत्रिक उन्नति करने वाले शिल्पियों का विज्ञान किसी प्रकार प्रशंसा करने के लिए स्वीकार किया जा सकता है तथापि यह लोकोपकारी धनप्राप्ति का कारण है परन्तु यह आत्मोन्नति का कारण नहीं है ॥३ ॥

आत्मोन्नत्यपेक्षया धनोन्नतेरत्यन्तनिकृष्टत्वम्

यथेच्छलब्धिं सुखसाधनानां तत्साधनानामपि साधनानाम्।
स्वर्णादिकानामुपलब्धिमद्य त्वभ्युन्नतिं प्राहुरिहान्यदेश्याः ॥१ ॥
धनं सुखायास्तु तदेव दुःखस्याप्यस्ति हेतुः क्वचनातिशय्य।
अमर्षणेर्ष्यादिविरोधमूला उपद्रवा अप्यत उद्भवन्ति ॥२ ॥
तेनर्षिजाता इह भारतीयाः धनोन्नतिं नोन्नतिमाहुरार्याः।
आत्मोन्नतिस्तून्नतिरिष्यते तैराध्यात्मिकीमुन्नतिमास्थुरेते ॥३ ॥

(१२) आत्मोन्नति की अपेक्षा धनोन्नति की अत्यन्त निकृष्टता

अन्य देशों के लोग सुख-साधनों की इच्छानुसार उपलब्धि तथा उन सुख-साधनों के भी पूरक साधन स्वर्ण इत्यादि की उपलब्धि को ही आज उपलब्धि बतलाते हैं ॥१ ॥

धन सुख के लिए होता है और वही दुःख का भी कारण होता है, इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है। इसी धन से असहिष्णुता और ईर्ष्या इत्यादि विरोधमूलक उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं ॥२ ॥

इसलिए ऋषियों की सन्तान भारतीय-आर्य इस धनोन्नति को उन्नति नहीं कहते हैं। उनके लोगों के द्वारा आत्मोन्नति को ही उन्नति कहा गया है, जिसको वे आध्यात्मिक उन्नति कहते हैं ॥३ ॥

तेजोविज्ञानाभ्यामिव धनेन स्वावलम्बनस्वातन्त्र्याभावः।

प्राणादपि विज्ञानात् सिध्यत्यात्मावलम्बनं लोके।
न तथा धनेन शक्यं न धनं सर्वत्र सह भवति ॥१ ॥
धनिकानामिह गर्वो यत्र धने तस्य ते स्ववशात्।
रक्षां कर्तुमशक्ता यदि राजा नानुगृह्णीयात् ॥२ ॥

(१३) तेज और विज्ञान के समान धनप्राप्ति से स्वावलम्बन और स्वातन्त्र्य की प्राप्ति का अभाव

प्राणों तथा विज्ञान दोनों से ही स्वावलम्बन की प्राप्ति हो सकती है परन्तु ऐसे स्वावलम्बन की प्राप्ति धन से नहीं की जा सकती है, क्योंकि धन सभी जगह समार्थ्यवान् नहीं होता है ॥१ ॥

धनवानों को अपने धन का गर्व है, उस धन के संबंध में भी यदि राजा की कृपा अथवा रक्षा में सहयोग नहीं हो, तो वे उस धन की रक्षा करने में समर्थ नहीं हो सकते हैं ॥२ ॥

धनोन्नतेर्निकृष्टत्वे त्रिदोषोत्पादकत्वहेतुः ।

धनैरुन्नतिस्तावदेवोन्नतिः स्यान्न यावन्मनःप्राणयोरुन्नतिः स्यात् ।
मनः प्राण आत्मेयमात्मोन्नतिश्चेत् परेषां श्रियोऽप्यस्य सर्वा वशे स्युः ॥१ ॥
धनोन्नतिर्भूतपरिग्रहोन्नतिर्नाभ्युन्नतिर्वास्तविकी प्रतीयते ।
दोषाकुलत्वात् सहसा भवन्ति हि त्रयोऽत्र दोषाः सुखबाधनक्षमाः ॥२ ॥
आराममार्गौ तरवोऽयनस्था राजेच्छया सर्वजनोपभोग्याः ।
तथा धनं सर्वविधं तु बाह्यं राजेच्छयैवैकजनो भुनक्ति ॥३ ॥
तस्माद्धनं सर्वविधं हि राज्ञो न तु स्वकीयं धनमस्ति किञ्चित् ।
ममेदमस्तीति वृथाभिमानो यथा प्रगृह्यस्य शुकस्य भोग्ये ॥४ ॥
पित्रा भृतः क्लृप्तसमृद्धभावः शिशुः स्वभाग्योपचयात् सुखोऽस्तु ।
भोग्ये न तस्यात्मबलप्रभावस्तस्मान्न सात्मोन्नतिरिष्यतेऽस्य ॥५ ॥
तथा नृपानुग्रहलब्धवित्तः सुखानि भुङ्क्तां किमनेन जातम् ।
राज्ञः कृपा सास्ति, नृपानपेक्षं तद्रक्षणेऽप्यस्ति जनो न शक्तः ॥६ ॥
दुखं क्षये दुःखत एव लाभो मिथो विरोधाश्च कृते धनानाम् ।
दुःखानुविद्धं धनतः सुखं स्याद्धनं क्वचिज्जीवननाशहेतुः ॥७ ॥
शस्त्रास्त्रयोगेन तु विक्रमो यस्तद्विक्रमस्योपधिरस्ति शस्त्रम् ।
क्लैव्यं स वैक्लव्यमुपैत्यशस्त्रो न त्वात्मना किञ्चिदलं स कर्तुम् ॥८ ॥
धनानि भाराय भवन्त्यशक्तेर्धनानि भाराय भवन्त्यबुद्धेः ।
धनैर्वणिक्त्वं न धनैर्नृपः स्यादुत्साहतः शास्ति नृपो धनाढ्यान् ॥९ ॥

(१४) निकृष्ट होने के कारण धनोन्नति तीनों दोषों को उत्पन्न करने का कारण

धन से प्राप्त की गई उन्नति तब तक ही उन्नति मानी जा सकती है, जब तक कि मन और प्राण की उन्नति नहीं हो जाती है अर्थात् मन और प्राण की उन्नति के पश्चात् धनोन्नति निकृष्ट हो जाती है। यदि मन और प्राण से आत्मोन्नति हो जाती है तो दूसरों की समस्त लक्ष्मी मनुष्य की आत्मा के वश में हो जाती है ॥१ ॥

धनोन्नति तथा भौतिक साधनों के संग्रह की प्रवृत्ति रूप उन्नति वास्तविक उन्नति प्रतीत नहीं होती है। दोषयुक्त होने के कारण सुख में बाधा पहुंचाने वाले तीन दोष (अमर्षण, ईर्ष्या और उपद्रव) इस उन्नति से सहसा ही उत्पन्न हो जाते हैं ॥२ ॥

बाग-बगीचे, मार्ग-सड़क, राज-भवन में स्थित वृक्ष इत्यादि समस्त उपभोग के योग्य संसाधन राजा की इच्छा से ही संभव हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त समस्त बाह्य धन का पूर्णतः राजा की इच्छा से ही मनुष्य उपभोग कर सकता है ॥३ ॥

इसलिए धन सभीं तरह से शासक का है। मनुष्य का स्वयं का कुछ भी नहीं है।

पकड़े हुए तोते के समान भोग्य पदार्थों में "यह मेरा है" इस प्रकार का विचार रखना मिथ्याभिमान है ॥४ ॥

समस्त सुख-समृद्धि से युक्त किया गया बालक अपने भाग्य के संग्रह के कारण ही पिता द्वारा पालित होकर सुखों का उपभोग करता है। इस सुखोपभोग में उनके आत्मबल का प्रभाव नहीं है। इसलिए उस सुखोपभोग को आत्मोन्नति नहीं मानी जा सकती है ॥५ ॥

इसी प्रकार राजा के अनुग्रह से प्राप्त धन के सुखों का उपभोग करने से क्या लाभ? वह तो राजा की कृपा है। राजा की कृपा के बिना मनुष्य इसकी रक्षा करने में भी समर्थ नहीं हो सकता है ॥६ ॥

धन का नाश होने पर दुःख होता है और दुःख से ही इसकी प्राप्ति होती है तथा धन के लिए ही परस्पर विरोध उत्पन्न होता है। धन से प्राप्त किया गया सुख दुःख से सम्पृक्त होता है और कभी-कभी धन जीवन के नाश का भी कारण बन जाता है ॥७ ॥

शस्त्रास्त्र के आधार पर जो बल प्राप्त किया जाता है, उस पराक्रम का मूल कारण तो शस्त्र है। ऐसा व्यक्ति दुर्बल होता है। शस्त्र-हीन रहने पर वह पुरूषार्थहीनता को प्राप्त करता है। वह स्वयं किसी कार्य को करने में समर्थ नहीं होता है ॥८ ॥

शक्तिहीन मनुष्य के लिए धन भार-स्वरूप होता है, बुद्धि-हीन मनुष्य के लिए भी धन भारस्वरूप होता है। धन से वणिक्त्व की प्राप्ति हो सकती है परन्तु धन से वह राजा नहीं बन सकता है अपितु उत्साह से राजा धनिकों पर शासन करता है ॥९ ॥

नैसर्गिकोत्साहतेजसोर्मध्यमकक्षाकात्मोन्नतित्वम्।

उत्साह आत्मोन्नतिरस्ति शक्तिस्तेजश्च तत् क्षत्रमनेन सद्यः।
उपैति भूयांसि धनानि लक्ष्मीरुत्साहवन्तं स्वयमावृणोति ॥१ ॥
उत्साह आत्मोन्नतिरस्ति तस्माद् विशालमात्मायतनं विकासि।
संपद्यते तेन परानन्ल्पानपीक्षतेऽल्पानिव बाधनीयान् ॥२ ॥
आत्मा प्राणः प्राण उत्साह एतन्मात्रासाम्याद् वित्तमात्रोपलब्धिः।
नो दारिद्र्यं वित्ततो यो दरिद्रो यस्योत्साहो नास्ति सोऽयं दरिद्रः ॥३ ॥
वित्तादस्योत्साह उत्साहतो वा वित्तं लोके दृश्यते किन्तु मन्ये।
यस्तूत्साहो वित्तजन्मा स मन्दो मुख्योत्साहस्त्वात्मनोऽन्यानपेक्षः ॥४ ॥

(१५) स्वाभाविक उत्साह और तेज को मध्यम श्रेणी की आत्मोन्नति मानना

उत्साह ही आत्मोन्नति है, शक्ति और तेज क्षत्रियत्व है, इससे क्षत्रिय शीघ्र ही विपुल धन को प्राप्त कर लता है, क्योंकि उत्साही लोगों का लक्ष्मी स्वयं ही वरण कर लेती है ॥१ ॥

उत्साह ही आत्मोन्नति है, इसलिए उत्साहयुक्त आत्मा का स्थान भी विकसित होकर विशाल हो जाता है। इसलिए उत्साही मनुष्य बाधा पहुंचाने वाले बहुत से शत्रुओं को भी तुच्छ समझता है ॥२ ॥

आत्मा, प्राण और उत्साह की मात्रा जब समान होती है तब वित्त की मात्रा की उपलब्धि होती है। धनाभाव से दारिद्र्य नहीं होता है अपितु उत्साहहीन मनुष्य दरिद्री होता है ॥३॥

लोक में देखा जाता है कि धन से उत्साह उत्पन्न होता है और उत्साह से धन की प्राप्ति होती है। परन्तु हम मानते हैं कि जो उत्साह धन से उत्पन्न होता है वह मन्द (अवर) श्रेणी का होता है। वास्तव में मुख्य उत्साह तो आत्मा से उत्पन्न होता है। वह अन्य किसी की अपेक्षा नहीं रखता है ॥४॥

बाह्यसंपत्त्यपेक्षया प्राणसंपत्तेरन्तरङ्गत्वादुत्कृष्टत्वम्।

यावत्यो वा लोके दृश्यंते शक्तयः काश्चित्।
प्राणस्तासां कोशः प्राणविधा एव ताः सर्वाः ॥१॥
योऽल्पप्राणः सोसावकिञ्चनोऽत्यल्पशक्तित्वात्।
यावानधिकः प्राणो यत्र स तावान् विशिष्यते लोके ॥२॥
तस्मादिह बहिरङ्गो न भूतभारस्तथोन्नतेर्मूलम्।
प्राणोऽयमन्तरङ्गो यथात्मनोऽभ्युन्नतिं कुरुते ॥३॥

(१६) अन्तरंग होने के कारण प्राणसम्पत्ति को बाह्य सम्पत्ति की अपेक्षा उत्कृष्ट मानना

संसार में जितनी भी शक्तियाँ दिखाई देती हैं उन सबका कोश (उत्पत्तिस्थान) प्राण ही है। वे समस्त शक्तियाँ प्राण के ही अनेक भेद हैं ॥१॥

जो अल्पप्राण हैं अर्थात् जिनमें शक्ति का अभाव है, वह मन्दशक्ति होने के कारण अकिंचन हैं। जिसके पास जितनी अधिक शक्ति है वह लोक में उतना ही अधिक श्रेयस्कर समझा जाता है ॥२॥

इसलिए जो भौतिक उन्नति का बाहरी भार है वह उन्नति का मूल आधार है। प्राण ही अन्तरंग हैं अतः यही आत्मोन्नति करता है ॥३॥

प्राणसंपत्त्यपेक्षया विज्ञानसंपत्तेरात्यन्तिकोन्नतिहेतुत्वम्।

प्राणाभिवृद्धिहेतुर्विज्ञानं साधितं धर्मैः।
यद्विषये विज्ञानं पूर्णं तत्रैष सिद्धः स्यात् ॥१॥
देशान्तरवदिदानी भारतवर्षेऽपि जनतायाः।
वैज्ञानिको न मूर्द्धा प्रदृश्यते हन्त दुर्योगात् ॥२॥

(१७) प्राणसम्पत्ति की अपेक्षा विज्ञानसम्पत्ति ही सम्पूर्ण उन्नति का कारण

धर्माचरण के द्वारा सिद्ध विज्ञान ही प्राणों के विकास का कारण है। जिस विषय में मनुष्य का विज्ञान पूर्ण हो जाता है अर्थात् जब किसी विषय में पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति कर लेता है उसी विषय में वह सिद्धि प्राप्त कर लेता है ॥१॥

दुःख है कि दुर्योग वश अन्य लोगों के समान भारतवर्ष में भी इस समय कोई वैज्ञानिक अत्यन्त उच्च कोटि का दिखाई नहीं देता है ॥२ ॥

अपस्वार्थिनां धनहेतुकसुखभोगप्रवणानां मोघजीवत्वम्।

सुखभोगोन्नतिरित्याहुर्भोगलिप्सवो लोकाः ।
ते त्विह पशुसामान्याः पशवोऽपि हि भोगमीप्सन्ते ॥१ ॥
एषा ह्यासुरबुद्धिर्यात्यन्तं स्वार्थपरता स्यात्।
स सुखप्रवणः पशुवज्जीवत्युदरंभरिर्मोघम् ॥२ ॥
मोघाशास्ते मोघकर्माण एते मोघं तेषां जीवितं जन्म मोघम्।
येषां पाकः कर्म्म वा जीवितं वा स्वार्थान्धानां सर्वमेवात्महेतोः ॥३ ॥
किमनेन यत् स जीवति का हानिर्वा न जीवेच्चेत्।
विज्ञानवीर्य्याविकलस्य जननिः श्रेयसी धनिनः ॥४ ॥
विज्ञानं वीर्य्यं वा जीवनसारस्ततो जगतः ।
क्रियतेऽभ्युन्नतिरेतेनेदं जगदुपकृतं भवति ॥५ ॥
विज्ञानं वीर्य्यं वा भवति मनुष्ये मनुष्यत्वम्।
विज्ञानवीर्य्यरहितः सुखभुक् स्याद् राजकृपयैव ॥६ ॥

(१८) निम्न स्तर के स्वार्थी, धन के आधार पर सुख-साधनों का उपभोग करने में तत्पर लोगों का जीवन व्यर्थ होना

सुखोपभोग के इच्छुक लोग भौतिक सुखों का उपभोग करना ही उन्नति बतलाते हैं। ऐसे लोग पशु के समान होते हैं, क्योंकि पशु भी भोग की इच्छा करते हैं ॥१ ।।

पूर्ण रूप से स्वार्थसिद्धि में लगे रहना आसुरी बुद्धि है। सुखोपभोग में लगा रहने वाला, व्यर्थ ही उदरपूर्ति करने वाला पशु के समान जीवन यापन करता है ॥२ ॥

ऐसे लोगों की आशा व्यर्थ है, इनका कर्म व्यर्थ है, उन लोगों का जीवन व्यर्थ है और उनका जन्म भी व्यर्थ ही है। ऐसे स्वार्थपरायण लोगों के कर्म अथवा जीवन का फल पूर्णतः स्वयं के लिए ही होता है ॥३ ॥

ऐसे लोगों के जीवन से क्या लाभ? अथवा ऐसे स्वार्थी मनुष्य यदि नहीं जीवें तब भी हानि नहीं होगी। धनी होते हुए भी विज्ञान वीर्य से अविकल मनुष्य की माता धन्य है ॥४ ॥

विज्ञान अथवा शक्ति ही वस्तुतः जीवन का सार है। इसलिए संसार में इसी से उन्नति हो सकती है। यही संसार का उपकार करने वाला है ॥५ ॥

जिस मनुष्य में विज्ञान है अथवा शक्ति है, उसी मनुष्य में मनुष्यत्व है। विज्ञान अथवा शक्ति से रहित मनुष्य केवल शासक की कृपा से ही सुख का उपभोग कर सकता है ॥६ ॥

विज्ञानतेजसोर्ब्रह्मक्षत्रवीर्य्ययोरुत्पत्तौ चातुर्वर्ण्यधर्म्मानुपालनं हेतुः।

क्षत्रं वीर्य्यं ब्रह्म तु विज्ञानं या तदुन्नतिः क्रियते।
सैवोन्नतिरिह वाच्या न धनोन्नतिरुन्नतिः कल्प्या॥१॥
आत्मनि मनसि प्राणे यावन्न बलं प्रवर्त्ततेऽतिशयात्।
विज्ञानं वीर्य्यं वा तावत्पुरुषेषु नोदेति॥२॥
क्वचिदिह मनसि प्राणे तद्बलमुदितं स्वतो भवति।
अपि वा साधनतस्तत्पुरुषेऽवश्यं समुद्भवति॥३॥
चातुर्वर्ण्यं धर्म्मं व्यवस्थया यदि तु साधयति।
पुरुषे बलं तदेदं ब्रह्मक्षत्रं समुद्भवति॥४॥

(१९) विज्ञान और तेजः स्वरूप क्रमशः ब्राह्मबल और क्षत्रबल की उत्पत्ति में चातुर्वर्ण्य धर्म का पालन करना ही एकमात्र कारण

क्षत्रिय जिस शक्ति की उन्नति करता है, ब्राह्मण जिस ज्ञान की उन्नति करता है, वस्तुतः वही उन्नति कही जानी चाहिये न कि धनोन्नति को उन्नति मानी जावे॥१॥

आत्मा, मन और प्राणों में जब तक विशिष्ट रूप से बल उत्पन्न नहीं होता है तब तक मनुष्यों में विज्ञान और शक्ति का उदय नहीं हो सकता है॥२॥

कभी-कभी मन में और प्राणों में वह शक्ति स्वतः ही उत्पन्न हो जाती है अन्यथा साधनों के द्वारा वह मनुष्य में अवश्य ही उत्पन्न होती है॥३॥

यदि वह चातुर्वर्ण्य धर्म का विधिवत् पालन करता है तो पुरुष में वह ब्रह्मबल (विज्ञान) और क्षत्रियबल (वीर्य्य) प्रादुर्भूत हो जाता है॥४॥

अयथाकृतस्य चातुर्वर्ण्यधर्म्मस्य वीर्य्योत्पत्तौ हेतुत्वाभावः।

विज्ञानं तु ब्रह्मवीर्य्यं निरुक्तं यस्तूत्साहः क्षात्रवीर्य्यं तदाहुः।
विड्वीर्य्यं तद् यानि शिल्पानि लोके पूर्वं पूर्वं श्रेष्ठमेषां त्रयाणाम्॥१॥
बलमबले तु शरीरे व्यायामादिभिरुपायतस्तु यथा।
जनयति तद्वज्जनयति चातुर्वर्ण्यं व्यवस्थया वीर्य्यम्॥२॥
नियतोपायविरुद्धो व्यायामो हानिकृद् वृथा भवति।
अयथाकृतं तथेदं चातुर्वर्ण्यं वृथा धर्म्मम्॥३॥
तदिदं चातुर्वर्ण्यं वैदिकज्ञानतः सम्यग्।
ज्ञातं सम्यक् चरितं ब्रह्मक्षत्रादिवीर्य्यजनकं स्यात्॥४॥
तस्मात् प्रथमं वैदिकविज्ञानं साधु जानीयात्।
तेनाधिदैविकार्था अध्यात्मं साधु नीताः स्युः॥५॥
चातुर्वर्ण्यस्येदं शैथिल्यं तु व्यवस्थायाः।

दुःख है कि दुर्योग वश अन्य लोगों के समान भारतवर्ष में भी इस समय कोई वैज्ञानिक अत्यन्त उच्च कोटि का दिखाई नहीं देता है ॥२ ॥

अपस्वार्थिनां धनहेतुकसुखभोगप्रवणानां मोघजीवत्वम् ।

सुखभोगोन्नतिरित्याहुर्भोगलिप्सवो लोकाः ।
ते त्विह पशुसामान्याः पशवोऽपि हि भोगमीप्सन्ते ॥१ ॥
एषा ह्यासुरबुद्धिर्यात्यन्तं स्वार्थपरता स्यात् ।
स सुखप्रवणः पशुवज्जीवत्युदरंभरिर्मोघम् ॥२ ॥
मोघाशास्ते मोघकर्माण एते मोघं तेषां जीवितं जन्म मोघम् ।
येषां पाकः कर्म्म वा जीवितं वा स्वार्थान्धानां सर्वमेवात्महेतोः ॥३ ॥
किमनेन यत् स जीवति का हानिर्वा न जीवेच्चेत् ।
विज्ञानवीर्य्याविकलस्य जननिः श्रेयसी धनिनः ॥४ ॥
विज्ञानं वीर्य्यं वा जीवनसारस्ततो जगतः ।
क्रियतेऽभ्युन्नतिरेतेनेदं जगदुपकृतं भवति ॥५ ॥
विज्ञानं वीर्य्यं वा भवति मनुष्ये मनुष्यत्वम् ।
विज्ञानवीर्य्यरहितः सुखभुक् स्याद् राजकृपयैव ॥६ ॥

(१८) निम्न स्तर के स्वार्थी, धन के आधार पर सुख-साधनों का उपभोग करने में तत्पर लोगों का जीवन व्यर्थ होना

सुखोपभोग के इच्छुक लोग भौतिक सुखों का उपभोग करना ही उन्नति बतलाते हैं। ऐसे लोग पशु के समान होते हैं, क्योंकि पशु भी भोग की इच्छा करते हैं ॥१ ॥

पूर्ण रूप से स्वार्थसिद्धि में लगे रहना आसुरी बुद्धि है। सुखोपभोग में लगा रहने वाला, व्यर्थ ही उदरपूर्ति करने वाला पशु के समान जीवन यापन करता है ॥२ ॥

ऐसे लोगों की आशा व्यर्थ है, इनका कर्म व्यर्थ है, उन लोगों का जीवन व्यर्थ है और उनका जन्म भी व्यर्थ ही है। ऐसे स्वार्थपरायण लोगों के कर्म अथवा जीवन का फल पूर्णतः स्वयं के लिए ही होता है ॥३ ॥

ऐसे लोगों के जीवन से क्या लाभ? अथवा ऐसे स्वार्थी मनुष्य यदि नहीं जीवें तब भी हानि नहीं होगी। धनी होते हुए भी विज्ञान वीर्य से अविकल मनुष्य की माता धन्य है ॥४ ॥

विज्ञान अथवा शक्ति ही वस्तुतः जीवन का सार है। इसलिए संसार में इसी से उन्नति हो सकती है। यही संसार का उपकार करने वाला है ॥५ ॥

जिस मनुष्य में विज्ञान है अथवा शक्ति है, उसी मनुष्य में मनुष्यत्व है। विज्ञान अथवा शक्ति से रहित मनुष्य केवल शासक की कृपा से ही सुख का उपभोग कर सकता है ॥६ ॥

चातुर्वर्ण्यधर्म्मप्रवृत्त्यर्थं वैदिकविज्ञानप्रचारबाहुल्यस्यावश्यकत्वम्।

भारतधर्म्मरहस्यं वैदिकविज्ञानतः प्रतीयेत्।
ज्ञानादुदियाच्छ्रद्धा ततः प्रवृत्तिः स्वतः प्रभवेत्॥१॥
वैदिकधर्म्माचरणात् प्रवर्द्धते वीर्य्यमुन्नतिश्च ततः।
आत्मोन्नत्या प्राणोन्नत्या वित्तानि सहजानि॥२॥

इत्युन्नत्यवनतिविचारः।

इति भारतपरिचये धर्म्मप्रसङ्गः समाप्तः॥१०॥

(२२) चातुर्वर्ण्य धर्म में प्रवृत्ति के लिए वैदिक-विज्ञान के प्रचुर प्रसार की आवश्यकता

भारतधर्म का रहस्यज्ञान वैदिक विज्ञान से ही प्राप्त किया जा सकता है। ज्ञान से श्रद्धा उत्पन्न होती है तथा श्रद्धा से धर्मज्ञान में प्रवृत्ति स्वयमेव उत्पन्न हो जाती है॥११॥

वैदिक धर्मानुसार आचरण से शक्ति उत्पन्न होती है, शक्ति से आत्मोन्नति होती है। तत्पश्चात् इसी आत्मोन्नति तथा प्राणोन्नति से सरलता से धन की प्राप्ति हो जाती है॥१२॥

इस प्रकार उन्नति और अवनति का विचार समाप्त हुआ।

भारतपरिचय खण्ड में धर्म-प्रसंग प्रकरण समाप्त

विद्याप्रसङ्गः ॥११॥

भारतवर्षीय-ब्रह्मवीर्य्याख्यानम्।
भारतवर्षमहत्त्वहेतवश्चतुःषष्टिविद्याः।

१— भारतवर्षगुरुत्वं पुरायुगे विश्वविख्यातम्।
आसीत् तत्र च हेतुर्विद्यैवासीद् विशेषेण ॥१॥
प्राकृतविद्या, लौकिकविज्ञानं पार्थिवार्थविषयं यत्।
दिव्या विद्या, वैदिकज्ञानं सूर्य्यरसविषयम् ॥२॥
तत्र प्राकृतविद्या निगमागमभेदतो द्विविधा।
इत्थं त्रिविधा विद्या भारतवर्षस्य गौरवे हेतुः ॥३॥
लौकिकसिद्धेरक्षतिमार्गः क्लृप्तस्तु नीतिः स्यात्।
वैदिकसिद्धेरक्षतिमार्गो दृष्टस्तु धर्मः स्यात् ॥४॥

विद्या-प्रसंग

भारतवर्ष के ब्रह्मवीर्य का विवेचन। भारतवर्ष के महत्त्व की कारणभूत चौंसठ विद्याएँ

प्राचीनकाल में भारतवर्ष का गुरुत्व सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध था। इस महत्त्व का कारण विशेष रूप से विद्या ही थी ॥१॥

ये विद्यायें हैं — प्राकृत विद्या, लौकिक-विज्ञान, पार्थिक वस्तुओं के सम्बन्ध में विद्या, दैवलोक से सम्बद्ध विद्या, वैदिक विज्ञान तथा सूर्य के सम्बन्ध में रहस्य ज्ञान ॥२॥

प्राकृत विद्या तथा निगम और आगम भेद से दो प्रकार की विद्यायें। इस प्रकार भारतवर्ष के गौरव में तीन प्रकार की विद्यायें प्रमुख कारण हैं ॥३॥

लौकिक सिद्धि का अक्षय मार्ग नीति को निर्धारित किया गया है तथा वैदिक सिद्धि का जो अक्षय मार्ग देखा गया है, वह धर्म है ॥४॥

निगमविद्याप्रभेदाः।

२— आसु च दिव्या विद्या भवति चतुःषष्टिभेदतो भिन्ना।(६४)
नैगमविद्यास्तत्र च मुख्यतयाऽष्टादश प्रथिताः ॥५॥
आगमविद्या विंशशतमित्थं सर्वविद्यानाम्।(१२०)
द्विशती द्व्यधिका संख्याऽवान्तरभेदास्तु बहवः स्युः ॥६॥(२०२)
४ ४ ६
वेदा सहोपवेदा अष्टावथ षट् तदङ्गानि।

१ १ १ १
इतिहासः सपुराणो योगो न्यायश्च मीमांसा ॥७ ॥
४ ४ ६ ४
वेदा अथोपवेदा वेदाङ्गानि च तथोत्तराङ्गानि।
चत्वारश्चत्वारः षट्चत्वारीति नैगमश्रेणी ॥८ ॥(१८)
१ २ ३
ज्योतिःशास्त्रं त्रिविधं गणितं फलितं च संहिताशतकम्।
ताराज्ञानं कुण्डक्षत्रमिति वृष्टिविज्ञानम् ॥९ ॥
विद्यागणिते प्रबला ऋतुपर्णनलौ यया तु वृक्षाणाम्।
पर्णानि दूरतः प्रागगणयतां नानृतं तत्र ॥१० ॥

निगम-विद्या के अठारह भेद

इन विद्याओं में दिव्या विद्या चौसठ भेदों में विभाजित है तथा निगम विद्या मुख्य रूप से अठारह प्रकार की बतलाई गई है ॥५ ॥

आगमविद्या एक सौ बीस प्रकार की है। इस प्रकार समस्त विद्याओं की संख्या दो सौ दो (२०२) हुई। इनके अनेक अवान्तर भेदों को मिलाकर यह अनेक प्रकार की है। ।६ ॥

चार वेद और उपवेद सहित कुल आठं वेदोपवेद, छः वेदांग, पुराण सहित इतिहास, योग, न्याय और मीमांसा। इस प्रकार वेद, उपवेद, वेदांग तथा उनके उत्तरांग (इतिहास-पुराण, योग, न्याय, मीमांसा) सहित कुल चार (वेद), चार (उपवेद), छः (वेदांग) और चार (उत्तरांग) मिलाकर कुल अठारह निगम विद्यायें हैं ॥७-८ ॥

ज्योतिष शास्त्र तीन प्रकार का है- गणित-ज्योतिष, फलित-ज्योतिष और संहिता शतक। इसी को क्रमशः ताराज्ञान, कुण्ड-क्षेत्र और दृष्टिविज्ञान के नाम से जानते हैं ॥९ ॥

ऋतुपर्ण और राजा नल गणित विद्या के श्रेष्ठ विद्वान् थे, जिन्होंने पूर्व काल में दूर से पेड़ के पत्तों को गिन दिया था और इसमें कोई असत्य (गिनने में गलत) नहीं था ॥१० ॥

आगमविद्याप्रभेदाः ।१२० ।

३— •आगमविद्या षोढा-सिद्धान्तः संहिताकल्पः।
यामलडामरतन्त्राण्येषां भेदाश्च बहवः स्युः ॥११ ॥
षट्कल्पाः सिद्धान्ताश्चतुर्दशाष्टादशेह सांहितिकाः।
तन्त्राणि चतुःषष्टिर्यामलदशकं च डामरा अष्टौ ॥१२ ॥
मणिमन्त्रौषधिभेदात् त्रिविधा विद्याः सहस्रशस्तन्त्रे।
ताभिः किं न हि सिध्येत् कः स्पर्द्धेतेह तद्विद्भ्यः ॥१३ ॥
सनिवर्तनाभिचारा डामरविद्याथ यामलेत्याख्या।
नैमित्तिकी हि विद्या वृष्ट्यादिर्ज्ञायते यत्र ॥१४ ॥
कल्पा औपासनिकास्तेषु षडाम्नायभेदाः स्युः।

ऊर्ध्वः पूर्वो दक्षिणपश्चिमवामाधरा इति हि ॥१५॥
ऊर्ध्वाम्नायो योगः पूर्वो वेदोदितो यज्ञः।
स्मार्तो दक्षिणमार्गः पश्चिमको यावनो म्लैच्छः ॥१६॥
वामः पञ्चमकारोऽघोरो मार्गोऽधराम्नायः।
विज्ञानादभुतविद्या रसायनाद्या तु सिद्धान्तः ॥१७॥
क्रीडाकौतुकविद्या रत्नपरीक्षा च पुंपरीक्षा च।
सामुद्रिकी च शकुनं पशुतन्त्रं मुकुटभूषादि ॥१८॥
विद्या दगार्गलाख्या नीतिः सर्वा पुराणमितिहासः।
एवंविधाः प्रकीर्णा बहुविषयाः संहितासूक्ताः ॥१९॥

निगमविद्याविभागाः ॥१८॥	आगमविद्याविभागाः ।१२०।
४ वेदाः = ऋग्यजुःसामाथर्वाणः श्रुतयः।	१८ संहिताः इतिहासादयो नानाप्रकीर्णविषयाः।
४ उपवेदाः = आयुर्वेदधनुर्वेदगन्धर्ववेदार्थवेदाः।	१४ सिद्धान्ताः रसायनादयो वैज्ञानिकविद्याः ६ कल्पाः अम्नायाः ऊ. पू. द. प. उ. अ.
६. वेदाङ्गानि = शिक्षाछन्दोव्याकरणनिरुक्तज्योतिःकल्पाः।	१० यामलानि वृष्टिविज्ञानादिनैमित्तिकविज्ञानानि।
४ उत्तराङ्गानि = इतिहासपुराणन्यायमीमांसायोगाः।	८ डामराः। अभिचाराः सनिवर्तनाः। ६४ तन्त्राणि-मणिमन्त्रौषधयः।
१८	१२९

आगम विद्या के एक सौ बीस भेद

आगम विद्या सोलह प्रकार की है- सिद्धान्त, संहिता, कल्प, यामल डामर तथा तन्त्र विद्यायें- आगम विद्यायें हैं तथा इनके प्रत्येक के अनेक भेद हैं ॥११॥

छः कल्प चौदह सिद्धान्त, अठारह संहितायें, चौसठ तन्त्र, दस यामल विद्या, आठ डामर विद्या। मणि- मन्त्रौषधि- भेद से ये तीन प्रकार की विद्यायें ही हजारों संख्याओं में विभक्त हैं, जिनसे कौनसी सिद्धि प्राप्त नहीं की जा सकती है, इस विद्या के विद्वानों से कौन स्पर्धा कर सकता है ॥(१२-१३)॥

अभिचार अर्थात् मारणप्रयोग तथा उनका निवारण करने वाली विद्या डामर और यामल विद्या कहलाती है। तथा जिस विद्या के द्वारा वृष्टि इत्यादि का ज्ञान होता है वह नैमित्तिकी के नाम से जानी जाती है ॥१४॥

छः उपासना सम्बन्धित कल्प हैं, जिनके ऊर्ध्व, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, वाम और अधर नाम से छः आम्नाय भेद हैं ॥१५ ॥

उर्ध्वाम्नाय योग है, पूर्वम्नाय वेदों में वर्णित यज्ञ-विद्या है, दक्षिणाम्नाय स्मार्त विद्या है, पश्चिमाम्नाय यवनों और म्लेच्छों की विद्या है ॥१६ ॥

पाँच मकार (मद्य, मत्स्य, मांस, मदिरा और मैथुन) वामाम्नाय है। अघोरियों का मार्ग अघोर मार्ग है। भौतिकी विद्या तथा रसायन विद्या से युक्त वैज्ञानिकी विद्या सिद्धान्त नामक आगम विद्या है ॥१७ ॥

विभिन्न प्रकार की क्रीड़ायें, विचित्र कृत्यों से युक्त कौतुक प्रदर्शन की विद्या, रत्नपरीक्षण विद्या, पुरुष-परीक्षा, सामुद्रिक (शारीरिक चिन्हों से शुभाशुभ विचार), शकुन-विचार, पशु-पक्षियों से सम्बद्ध ज्ञान, मुकुट तथा आभूषणों का शुभाशुभ विचार, दगार्गला नामक नीति, समस्त इतिहास और पुराण इत्यादि के रूप में अनेक विस्तृत विषय संहिताओं में कहे गये हैं ॥१८-१९ ॥

निगमविद्या के अठारह भेद	**आगमविद्या के एक सौ बीस भेद**
४ वेद =ऋग्, यजु, साम और अथर्व वेद।	१८. संहिता =इतिहासादि अनेक प्रकीर्ण विषय।
४ उपवेद =आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्व वेद और अर्थवेद।	१४. सिद्धान्त =रसायनादि वैज्ञानिकविद्यायें।
६ वेदाङ्ग =शिक्षा, छन्द, कल्प, निरुक्त, व्याकरण और ज्योतिष।	६. कल्प =उत्तर, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, अधर मार्ग।
	१०. यामल =वृष्टिविज्ञान इत्यादि नैमित्तिक विज्ञान।
४ उत्तराङ्ग =इतिहास पुराण, न्याय, मीमांसा और योग।	८. डामर =निवारणसहित अभिचार।
	६४. तन्त्र =मणि - मन्त्रौषधियाँ

४— **यद्यप्यासां काश्चित्संप्रति देशान्तरेऽपि दृश्यन्ते।**
किन्त्वद्यापि च कृत्स्ना सर्वा साऽत्रैव देशेऽस्ति ॥२० ॥
यज्ञाः सवेदविद्या आगमभेदाः पुराणयोगाश्च।
धर्म्मत्रयं निरुक्तं न्यायो मीमांसनं फलितम् ॥२१ ॥
अद्याप्येता विद्या दृश्यन्त इहैव भारते वर्षे।
देशान्तरस्थजनता नासां जानाति माहात्म्यम् ॥२२ ॥
अद्य तु यद्यपि विद्या भारतवर्षे श्लथा सर्वा।
किन्त्वार्य्याणां तत्र च परवशता विद्यते हेतुः ॥२३ ॥

४— यद्यपि इन विद्याओं में से कुछ विद्यायें विदेशों में भी देखो गई हैं, परन्तु आज ये सभी विद्यायें समग्र रूप से इसी देश में उपलब्ध हैं ॥२० ॥

वेदविद्या सहित यज्ञ, भेदों सहित आगम विद्यायें, पुराण और योग, निरुक्त, न्याय, मीमांसा इत्यादि धर्मत्रय सिद्ध हैं ॥ ये विद्यायें आज भी इस भारतवर्ष में ही देखी जाती हैं। विदेशी जनता इनके महत्व को नहीं जानती है ॥२१-२२ ॥

यद्यपि भारतवर्ष में आज ये विद्यायें शिथिल हो गई हैं परन्तु इसका मुख्य कारण आर्यों की पराधीनता हैं ॥२३ ॥

दिव्यविद्याप्रभेदाः(६४)

५— एताः प्राकृतविद्या अद्भुतविद्यास्तु सन्ति तद्भिन्नाः।
आत्मबलादुत्पन्नास्ताभ्यो भारतशिरोऽत्युच्चम् ॥२४ ॥
दिव्यं ज्ञानं योगजसिद्ध्याऽऽत्मबलं यदुद्भवति।
तस्य कला आलम्बनसंदीपनभेतश्चतस्त्रः स्युः ॥२५ ॥
१ २ ३
मानसकलाऽधिदैवतकला तथेन्द्रियकलाऽध्यात्मम् ॥
४
शिल्पकलेति विभेदादात्मबलं तच्चतुष्कलं भवति ॥२६ ॥
विज्ञानमेक आत्मा, तत्र चतुर्भ्यो निधीयते हि बलम् ॥
१ २ ३ ४
प्रज्ञामनसो, धीन्द्रियकर्मेन्द्रियभूतयोगेभ्यः ॥२७ ॥
आलम्बनं मनो यदि मन एवोद्दीपनं यदा भवति ॥

१
१— आत्मबलं तन्मानसमेतद्भेदा अनेकधा दृष्टाः ॥२८ ॥
शिरसो बलं यदर्जितमुद्दीपयतीह दैवतैर्यदि तत् ॥१६

१
२— आत्मबलं तद् दैविकमस्य च बहवः स्मृता भेदाः ॥२९ ॥
यज्ञजबलं यदात्मनि तद् यदि यज्ञात् प्रदीपितं भवति ॥३२

३
३— आत्मबलं तद् याज्ञिकमेतद् भेदाश्च बहवः स्युः ॥३० ॥
शिल्पकलाविज्ञानं शिक्षाप्राप्तं यदुद्यमातिशयात् ॥४८
४— व्यवसायाध्यवसायैर्दीपयते भौतिकं तत् स्यात् ॥३१ ॥
मानस-दैविक-याज्ञिक-भौतिक-भेदाच्चतुर्विधा विद्या ॥
प्रत्येकं षोडशधा तत इह विद्याश्चतुःषष्टिः ॥३२ ॥
भारतवर्षीयार्य्यैरेता विद्याश्चतुःषष्टिः ॥
प्रथमं दृष्टास्तस्माज्जगतो गुरवस्त एवासन् ॥३३ ॥

आत्मबल-प्रदर्शिनी-तालिका

१	मानसबलानि षोडश (१६)	२	धीन्द्रियबलानि षोडश (१६)
	मन:संयमाद् योगबलसिद्धयोऽष्टौ		हृदयसंयमात् तपोबलसिद्धयोऽष्टौ
१	अणिमा।	१	देवसाक्षात्कारच्छायापुरुषसिद्धिः।
२	महिमा।	२	वलगा (कृत्याभिधाना)
३	गरिमा।	३	आत्मोत्क्रमसाक्षात्कारः।
४	लघिमा।	४	मृतपुरुषसाक्षात्कारः।
५	प्राप्तिः।	५	विश्वरूपदर्शनम् (विराट्रूपदर्शनम्)।
६	प्राकाम्यम्।	६	मायाव्यामोहनम्।
७	ईशित्वम्।	७	उपश्रुतिविद्या।
८	वशित्वम्।	८	संस्कारोपधानी।
१	इन्द्रियसंयमाद् दिव्यदृष्टिसिद्धयोऽष्टौ	२	प्राणसंयमाद्—देवबलसिद्धयोऽष्टौ
९	अतीतानागतज्ञानजन्मान्तरज्ञानम्।	९	कायव्यूहः।
१०	दूरपरोक्षज्ञानम्।	१०	परकायप्रवेशः।
११	सर्वभूतरुतज्ञानम्।	११	प्राणहारिणी।
१२	मनोविज्ञानम्।	१२	मृतसंजीवनी दैवी शक्तिः।
१३	भूगर्भज्ञानम्।	१३	स्थाणुसंजीवनी।
१४	भुवनज्ञानम्।	१४	छायानिग्रहणी।
१५	ओषधिप्रभावज्ञानम्।	१५	आकृतिपरिवर्तिनी।
१६	ताराज्योतिःप्रभावज्ञानम्।	१६	लिंगपरिवर्तिनी।
३	याज्ञिकानि कर्मेन्द्रियबलानि षोडश (१६)	४	भूतबलानि षोडश (१६)
	नैगमीयमन्त्रबलसिद्धयोऽष्टौ		महौषधिबलसिद्धयोऽष्टौ
१	सर्पाकर्षिणी।	१	मृतसंजीवनीगुटिका
२	अग्निजलस्तम्भिनी।	२	संजीवनकरणी।
३	अक्षयकरणी।	३	विशल्यकरणी।
४	निग्रहानुग्रहणी।	४	सावर्ण्यकरणी।
५	पुत्रसंजननी पुत्रेष्टिः।	५	संधानकरणी।
६	प्रावृषेण्या जलवर्षिणी।	६	अरिष्टभैषज्या।
७	आपोनपत्रीयम्।	७	डिम्भप्रसविनी।
८	मधुविद्या।	८	बलातिबले।

३	आगमीयमन्त्रबलसिद्धयोऽष्टौ	४	यन्त्रबलसिद्धयोऽष्टौ
९	मारणम्।	९	दिव्यविमानं त्रिचक्रं रथाकारम्।
१०	मोहनम्।	१०	पुष्पकविमानं हंसरयो वर्द्धिष्णुः
११	उच्चाटनम्।	११	सोमविमानम् नगराकारम्।
१२	वशीकरणम्।	१२	सूतविमानम् नौकाकारम्।
१३	विद्वेषणम्।	१३	हर्य्यश्वविमानं हययुग्माकारम्।
१४	स्तम्भनम्।	१४	प्लवविमानं पक्ष्याकारम्।
१५	आकर्षणम्।	१५	अमृतगवी विश्वरूपा।
१६	संरक्षणम्।	१६	शिलासंतरणी संतरणशिला।

दिव्या विद्या के चौसठ भेद

ये प्राकृत विद्यायें विचित्र विद्यायें है और अद्‌भुत विद्यायें इनसे भिन्न हैं। ये विद्यायें आत्मबल से उत्पन्न होती हैं। इन्हीं विद्याओं से भारतवर्ष का मस्तक अन्य देशों की अपेक्षा ऊँचा है ॥२४॥

योग से उत्पन्न सिद्धि से जो आत्मबल उत्पन्न होता है वह दिव्य ज्ञान है। इस दिव्य ज्ञान की आलम्बन और संदीपन भेद से चार कलायें हैं ॥२५॥

मानसकला, अधिदैवतकला तथा इन्द्रिय कला आध्यात्मिक कलायें हैं। इसी प्रकार शिल्प-कला भेद से आत्मबल भी चार कलाओं से युक्त हैं ॥२६॥

विज्ञान एक आत्मा है, जिसमें चार प्रकार से बल का निधान होता है। प्रज्ञानमन से, ज्ञानेन्द्रिय से और भूत-योग से विज्ञान चार प्रकार का होता है ॥२७॥

आलम्बन मन है और जब मन ही उद्दीपन हो जाता है तो वह आत्मबल मानस आत्मबल होता है और उसके अनेक भेद हो जाते हैं ॥२८॥

जो मस्तक बल है, वह जिस अर्जित बल को उद्दीप्त करता है वह दैविक आत्मबल है। इसके बहुत से भेद बताये गये हैं ॥२९॥

आत्मा में यज्ञ से उत्पन्न जो बल है वह यज्ञ द्वारा प्राप्त होता है तो वह आत्मबल याज्ञिक होता है। इसके भी अनेक भेद हैं ॥३०॥

शिल्पकला (यंत्रविद्या) विज्ञान है, जो अधिक उद्यम करके प्राप्त किया जा सकता है। व्यवसाय और अध्यवसाय (प्रयत्न और दृढनिश्चय) से भौतिक ज्ञान की प्राप्ति होती है ॥३१॥

मानस, दैविक, याज्ञिक, भौतिक भेदों से विद्या चार प्रकार की हुई। प्रत्येक के सौलह भेद से यह आत्मबलप्रदर्शिनी (दिव्या) विद्या चौसठ प्रकार की है ॥३२॥

भारतवर्ष के आर्यों ने सर्वप्रथम इन चौसठ विद्याओं का दर्शन किया। इसीलिए यह सम्पूर्ण विश्व का गुरु माना गया है ॥३३॥

आत्मबल-प्रदर्शिनी तालिका

१	सोलह आत्मबल	२	सोलह इन्द्रिय बल
	मन के संयम से योगबल की आठ सिद्धियाँ		हृदय के संयम से तपोबल की आठ सिद्धियाँ
१	अणिमा	१	देवता का साक्षात्कार और छायापुरुष की सिद्धि।
२	महिमा	२	बलगा (कृत्या नाम की सिद्धि)
३	गरिमा	३	शरीर से निकलती आत्मा को देखना
४	लघिमा	४	मृत पुरुष से साक्षात्कार
५	प्राप्ति	५	विश्वरूप दर्शन (विराट् रूप दर्शन)
६	प्राकाम्य	६	माया-व्यामोह
७	ईशित्व	७	उपश्रुतिविद्या
८	वशित्व	८	संस्कारोपधानी विद्या
१	इन्द्रियसंयम से आठ दिव्यदृष्टि सिद्धियाँ	२	प्राणसंयम से आठ देव-बल सिद्धियाँ
९	अतीत, अनागत ज्ञान और जन्मान्तर ज्ञान	९	कायव्यूह
१०	दूर, परोक्ष ज्ञान	१०	परकाय-प्रवेश
११	समस्त प्राणियों के शब्द का ज्ञान	११	प्राणहारिणी विद्या
१२	मनोविज्ञान	१२	मृतसंजीवनी दैवी शक्ति
१३	भूगर्भविज्ञान	१३	स्थाणु संजीवनी विद्या
१४	भुवनज्ञान	१४	छाया-निग्रहणी
१५	ओषधि-प्रभाव-ज्ञान	१५	आकृति-परिवर्तिनी
१६	ताराज्योति-प्रभाव का ज्ञान	१६	लिंगपरिवर्तिनी विद्या
३	१६ याज्ञिक कर्मेन्द्रिय-बल	४	(१६) भूतबल
	आठ नैगम-बल-सिद्धियाँ		आठ महौषधि-बल-सिद्धियाँ
१	सर्पाकर्षिणी	१	मृतसंजीवनी गुटिका
२	अग्नि-जल-स्तम्भिनी विद्या	२	संजीवन-करणी
३	अक्षय करणी	३	विशल्य-करणी
४	निग्रहणी और अनुग्रहणी	४	सावर्ण्य-करणी
५	पुत्र-संजननी	५	संधान-करणी

६	जलवर्षिणी	६	अरिष्टभैषज्या
७	आपोनप्त्रीय	७	डिम्भप्रसविनी
८	मधुविद्या	८	बला और अतिबला

३	आठ आगमीय यन्त्र-बल-सिद्धियाँ	४	आठ यन्त्र-बल-सिद्धियाँ
९	मारणसिद्धि	९	दिव्यविमान, जो रथ की आकृति तथा तीन पहियों का हैं।
१०	मोहनसिद्धि	१०	हंसाकृति का पुष्पक विमान
११	उच्चाटनसिद्धि	११	सोमविमान (नगराकार)
१२	वशीकरणसिद्धि	१२	नौका की आकृति का सूतविमान
१३	विद्वेषणसिद्धि	१३	हर्य्यश्व विमान (दो घोड़ों की आकृति वाला)
१४	स्तम्भनसिद्धि	१४	प्लवविमान (पक्षी की आकृति वाला)
१५	आकर्षणसिद्धि	१५	अमृतगवी
१६	संरक्षणसिद्धि	१६	शिलासंतरणी विद्या

अप्सां विद्यानां प्रयोगोदाहरणानि कानिचित् प्रदर्श्यन्ते।
१— मनःसंयमाद् योगबलसिद्धयोऽष्टौ यथा—

(१) अणिमा अणुता ह्रस्वकायता। विशालकायस्य संकल्पमात्रेण तत्क्षणादेवावयवापचयेन मशकादिवत् क्षुद्रशरीरोपपादनम्। यथा हनुमान् समुद्रलङ्घनकाले विशालकायेन ग्रसन्त्याः सुरसाया मुखे मशकवत् क्षुद्रो भूत्वा प्रविश्य निर्गतः ॥१॥ रावणगृहे सीताशोधनाय प्रवृत्तो वृषदंशकवत् क्षुद्रशरीरो भूत्वा प्रच्छन्नो गृहान् परिशोधयामास॥२॥ लङ्कायामशोकवाटिकायां सीतारावणसंवादं श्रोतुमतिक्षुद्रशरीरो भूत्वा वृक्षान्तरे प्रच्छन्नस्तस्थौ॥३॥

(२) महिमा महत्ता कायवैपुल्यम्। क्षुद्रशरीरस्य सतो महाविशालशरीरसंपादनम्। यथा हनुमान् समुद्रलङ्घने सुरसामुखे प्रवेशाभावाय कायं महाविशालं चक्रे॥१॥ यथा वा चाक्षुषमन्वन्तरे मत्स्यस्य मनुहस्तपतितस्यातिक्षुद्रशरीरस्यापि क्षणेन महाविशालशरीरोपपत्तिः॥२॥

(३) गरिमा गुरुत्वं शरीरभारवर्द्धनम्। यथा निषधपर्वते संचरतो भीमस्य बलाभिमानं नाशयितुं मध्ये मार्गं पतितेन हनुमता शरीरगुरुत्वं प्रवर्द्धितमिति स जराग्रस्तः क्षुद्रकायोऽपि कपिरनेन भीमेनोत्थापयितुमशक्योभूत्॥१॥ अंगदो लंकायां

रावणसभायां पादमवरोप्य बलिष्ठैरपि सर्वै राक्षसैरनुत्थाप्यपादो विजिग्ये ॥२ ॥ बालकेन श्रीकृष्णेन महाकायमहाबलिष्ठचाणूरमल्लपरिमर्द्दनमक्रियत ॥३ ॥

(४) लघिमा गुरुतरशरीरस्यापीषीकातूलवत् शरीरलघूकरणाद् विमानादिसाधनं विनापि आकाशे संचारः। यथोक्तं योगसूत्रे — "कायाकाशयोः संबन्धसंयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चाकाशगमनम्" ॥३ ।४१ ॥इति ॥ यथा हनुमान् शरीरलघूकरणादाकाशमार्गेण पवनाधारेण समुद्रमुल्ललंघे ॥१ ॥ नारदश्चानेकवारमाकाशमार्गेण सञ्चरन् द्वारकायां श्रीकृष्णान्तिकमन्यत्रान्यत्र चाजगाम। विभीषणाश्चाकाशमार्गेणागत्य रामसेनायामाजगाम ॥

"उत्तरं तीरमासाद्य खस्थ एव व्यतिष्ठत ॥"

स उवाच महाप्राज्ञः खस्थ एवं विभीषणः—" (यु. १७) १९५ ॥

"खात् पपातावनिं हृष्टो भक्तैरनुचरैः सह" (यु.१९) इति रामायणे तथोक्तेः ॥१८६ ॥

(५) प्राप्तिः एकत्र स्थितवता बहुविप्रकृष्टार्थस्यानायासेनेन्द्रियैर्ग्रहणम्। यथा भूमिस्थ एवाङ्गुल्यग्रेण चन्द्रमसं स्पृशति। पर्वताग्रस्थितादुद्यानात् फलमवचिनोति।

(६) प्राकाम्यम् पृथिव्यादितत्तद्धर्मानभिघातान् मनोवृत्त्यप्रतिबन्धः भूमावपि मज्जति यथोदके मज्जति। शिलामप्यनुविशति। नापः स्निग्धाः क्लेदयन्ति। नाग्निरुष्णो दहति। न वायुः परिणामी वहति। अनावरणेऽप्याकाशेऽयमावृतकाय इव भूत्वा सिद्धानामप्यदृश्यो भवति। आतपस्थोऽप्यातपावरणाच्छायायामिव भवति। अप्रतिरुद्धगतित्वाद् बन्दीगृहतोऽपि बहिर्भावः। यथा द्वारकान्तिके रैवतकपर्वते जरासन्धसैनिकैः सर्वतः प्रतिरोधितस्यापि श्रीकृष्णस्य द्वारकायां प्रवेशः। मथुरायां जरासन्धसैनिकैः कालयवनसैनिकैश्चावरोधितस्यापि तस्यैकेनाह्ना द्वारकायां नवनिर्मितायामखिलबालवृद्धस्त्रीनिकायसंप्रापणं युद्धाय पुनरागमनं च ॥२ ॥ अद्भुतकर्म्मणोऽप्यत्रैव संनिवेशः। यथोक्तं भारते दमयन्तीं प्रति केशिन्या नलचरिते—

"ह्रस्वमासाद्य संचारं नासौ विनमते क्वचित्।
तं तु दृष्ट्वा यथा सङ्गमुत्सर्पति यथा सुखम् ॥१ ॥
संकटेऽन्यस्य तु महान् विवरो जायतेऽधिकः।
तस्य प्रक्षालनार्थाय कुम्भास्तत्रोपकल्पिताः ॥२ ॥
ते तेनावेक्षिताः कुम्भाः पूर्णा एवाभवंस्ततः।
तृणमुष्टिं समादाय सवितुस्तं समादधत् ॥३ ॥
अथ प्रज्वलितस्तत्र सहसा हव्यवाहनः।

तदद्भुततमं दृष्ट्वा विस्मिताहमिहागता ॥४॥
अन्यच्च तस्मिन् सुमहदाश्चर्य्यं लक्षितं मया।
यदग्निमपि संस्पृश्य नैवासौ दह्यते शुभे ॥५॥
छन्देन चोदकं तस्य वहत्यावर्जितं द्रुतम्।
अतीव चान्यत् सुमहादाश्चर्य्यं दृष्टवत्यहम् ॥६॥
यत् स पुष्पाण्युपादाय हस्ताभ्यां ममृदे शनैः।
मृद्यमानानि पाणिभ्यां तेन पुष्पाणि नान्यथा ॥७॥
भूय एव सुगन्धीनि हृषितानि भवन्ति हि।
एतान्यद्भुतलिङ्गानि दृष्ट्वाहं द्रुतमागता ॥८॥ "इति" (वन० ७५) ॥

(७) ईशित्वम् अलौकिककर्म्मकरणे सामर्थ्यलाभः। अणिमादीनां षण्णां योगविभूतीनां स्वस्मिन्निवापरस्मिन्नपि संपादनम्। यथा हनुमान् द्रोणाचलमुत्थापयितुं श्रीकृष्णो वा गोवर्धनमुत्थापयितुं तस्य तस्याचलस्य विग्रहे लघिमानं जनयामास। तेनैव हनुमान् हस्तेन द्रोणाचलमुद्धृत्य लङ्कामानयत् ॥१॥ विश्वामित्रस्त्रिशङ्कुराजानं जीवन्तमेव दिवि प्रतिष्ठापयामास ॥२॥ वसिष्ठश्च नन्दिनीखुरतः परःसहस्राणि सैनिकानि जनयामास ॥३॥ श्रीकृष्णो द्वारकास्थ एव हस्तिनापुरे द्रौपद्याश्चीरं परिवर्द्धयामास ॥४॥ अगस्त्येन समुद्रः परिशोषितः ॥५॥ मनुमत्स्यो जलप्रलयनौकां शृङ्गेन दधार ॥६॥ अन्तर्द्धानमप्यत्रैव संनिविशते। तच्चोक्तं योगसूत्रे—कायरूपसंयमात् तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुःप्रकाशासंप्रयोगेऽन्तर्द्धानम् ॥३।२०॥इति॥

(८) वशित्वम् प्रबलस्य वशीकारः। यथा श्रीकृष्णो नागं वशीचक्रे ॥१॥ ऋषीणामाश्रमेषु सिंहादयो हिंस्रजीवा वशीकृता अद्रोहिणस्तस्थुः ॥२॥ भूतवशीकारोऽप्यत्रैव संनिविशते।
इतोऽन्या अप्यनेकधा योगसिद्धयो योगपातञ्जले विभूतिपादे प्रदर्शिताः।
इत्यष्टौ संयमसिद्धयः ॥८॥

दिव्या विद्याओं के प्रयोग और उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं

(१) मन के संयम से आठ योगबल-सिद्धियाँ : जैसे —

अणिमा : शरीर को छोटा बनाकर सूक्ष्म रूप प्राप्त करना। विशाल शरीर को संकल्प मात्र से ही तत्काल अंगों का अपचय करके मच्छर इत्यादि के समान सूक्ष्म शरीर में परिवर्तन करना। जिस तरह हनुमान् ने समुद्र को लांघते समय विशाल शरीर से भक्षण करती हुई सुरसा के मुख में मच्छर के समान सूक्ष्म रूप धारण करके प्रवेश किया और वापस निकलकर आ गये ॥१॥ रावणगृह में सीता की खोज के लिए प्रवृत्त हुए हनुमान् ने बिलाव के समान क्षुद्र शरीर बनाकर छिपते हुए महलों

में सीता को ढूंढा ॥२ ॥ लंका में अशोक-वाटिका में सीता-रावण-संवाद को सुनने के लिए अत्यन्त सूक्ष्म शरीर से वृक्षों की ओट में छिपकर बैठ गये ॥३ ॥

महिमा : शरीर को विशाल रूप देना महिमा विद्या है। सूक्ष्म शरीर होते हुए भी अत्यन्त विशाल शरीर को धारण करना। जैसे हनुमान् ने समुद्र लङ्घन के समय सुरसा के मुख में प्रवेश न हो सके, इसलिए अपने शरीर को अत्यन्त विशाल बना लिया था ॥१ ॥ जिस प्रकार चाक्षुष मन्वन्तर में मनु के हाथ में गिरे हुये मत्स्य का अत्यन्त सूक्ष्म शरीर होते हुए भी क्षण भर में विशाल शरीर का संपादन कर लेना ॥२ ॥

गरिमा : शरीर के भार में वृद्धि करके भारीपन लाना गरिमा सिद्धि है। यथा निषध पर्वत पर विचरण करते हुए भीम के शौर्याभिमान का मर्दन करने हेतु मध्यमार्ग में बैठ हनुमान ने शरीर के भार में वर्धन कर लिया। वृद्धावस्था ग्रस्त होते हुये भी इस वानर ने अपने कृश शरीर को भी इतना भारी बना लिया, जो भीम के द्वारा उठाया नहीं जा सका ॥१ ॥ अंगद ने लंका में रावण की सभा में अपने पाँव को आरोपित करके समस्त बलिष्ठ राक्षसों से भी उठाये जाने में असमर्थ अपने विशाल पांव के सहयोग से विजय प्राप्त की ॥२ ॥ बालक श्री कृष्ण ने विशालकाय, अतिबलवान् चाणूरमल्ल नाम के राक्षस का मर्दन किया ॥३ ॥

लघिमा : विशाल और भारी शरीर के होते हुये भी छोटी सी रूई की तूलिका के समान शरीर को हल्का बनाकर विमानादि साधनों के बिना भी आकाश में विचरण करना लघिमा विद्या है। यथा योग-सूत्र में लिखा है - "शरीर और आकाश का सम्बन्ध संयत करने से छोटी सी रूई के समान आकाश में विचरण करना ॥" (३/४) ॥ जिस तरह हनुमान् ने शरीर को हल्का करके आकाश मार्ग से हवा के आधार पर ही समुद्र् को लांघ लिया था ॥१ ॥ तथा नारद अनेक बार आकाश मार्ग पर ही से विचरण करते हुए द्वारिका नगरी में श्रीकृष्ण के पास तथा अन्य भी अनेक स्थानों पर आये ॥ विभीषण भी राम की सेना में आकाश मार्ग से ही आये थे। युद्धकाण्ड में लिखा है - समुद्र की उत्तर दिशा के तट पर आकर विभीषण आकाश में खड़े हुये बोले - "(यु. कां-१७/१९५)" विभीषण प्रसन्न होते हुए आकाश से भक्त सेवकों के साथ पृथ्वी पर आ गये।" (यु. १९) ॥

प्राप्ति : एक जगह स्थित होते हुए भी बिना अधिक प्रयत्न के दूरस्थित वस्तुओं को इन्द्रिय द्वारा ग्रहण करना। यथा भूमि पर स्थित होते हुए भी अंगुली से चन्द्रमा का स्पर्श करना। पर्वत के उच्च शिखर पर स्थित उद्यान से फलों को चुन लेना।

प्राकाम्य : मनोवृत्ति के प्रतिबन्ध का त्याग करके पृथ्वी के विभिन्न पार्थिव आघातों को सहन कर लेना प्राकाम्य विद्या है। यथा जल में प्रवेश कर लेने के समान मनुष्य पृथ्वी पर ही स्नान कर लेता है। शिला में प्रवेश कर लेता है। स्निग्ध जल मनुष्य को गीला नहीं करता है। अग्नि की उष्णता जलाती नहीं है। वायुवेग से उड़ता नहीं है। आवरणरहित शून्य-स्थान पर भी ढंके हुए शरीर की भांति सिद्ध पुरुषों को भी अदृश्य हो जाता है। धूप में रहकर भी धूप का आवरण छाया में रहने के

समान हो जाता है। अवरोधरहित गति होने के कारण बन्दीगृह से भी बाहर आ जाना। जैसे द्वारिका के समीप रैवतक पर्वत पर जरासंध के सैनिकों से चारों ओर से घिरे हुए भी श्रीकृष्ण का द्वारिका में प्रवेश। मथुरा में जरासन्ध और कालयवन के सैनिकों द्वारा अवरुद्ध होते हुए भी एक ही दिन में नवनिर्मित द्वारिका में समस्त बालक, वृद्ध, स्त्री इत्यादि के समूह को पहुंचाकर श्रीकृष्ण का फिर से युद्ध के लिए लौट आना। अद्‌भुत कर्म भी इसी में समझने चाहिये॥ यथा महाभारत के नलचरित में दमयन्ती को केशिनी कहती है —

"वह राजा नल छोटे द्वार को देखकर झुकता नहीं है। उसे देखकर सुखपूर्वक द्वार से निकल जाता है॥१॥

संकीर्ण स्थान पर भी उसके लिए अतिविशाल द्वार बन जाता है। उसके स्नान के लिए रिक्त कुम्भ रखे गये थे, वे राजा के देखने पर जल से परिपूर्ण हो गये। उस राजा ने तिनकों के गुच्छे को लेकर सूर्य को दिखाया और तुरन्त ही उसमें अग्नि प्रज्वलित हो गई। इन अद्‌भुत कार्यों को देखकर, आश्चर्यचकित होकर मैं यहाँ आई हूँ॥२-४॥

मैंने उस राजा नल में और भी अनेक आश्चर्य देखे। हे शुभे। अग्नि का स्पर्श करने पर भी वह जलता नहीं है॥५॥

उसकी इच्छा से बहता हुआ जल शीघ्र ही रुक जाता है। मैंने और भी अनेक आश्चर्य उस राजा में देखे हैं। वे हैं - उसने फूलों को लेकर हाथ में मसल दिया, उसके हाथ से मर्दित पुष्पों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं देखा गया बल्कि वे फूल और भी अधिक सुगन्ध से परिपूर्ण हो जाते हैं और भी खिलने लग जाते हैं। इन विभिन्न आश्चर्ययुक्त चिह्नों को देखकर मैं यहाँ आई हूँ॥६-८॥ (महा.भा.वन./७५)

ईशित्व : अलौकिक कर्मों को करने के लिए सामर्थ्य प्राप्त करना। अणिमादि आठ योगसिद्धियों का स्वयं के समान दूसरों में भी सम्पादन करना। जैसे हनुमान् ने द्रोणाचल को उठाने के लिए अथवा श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को उठाने के लिए तत्तत् पर्वतों को हल्का बना दिया था। इसी सिद्धि से हनुमान् द्रोणाचल को अपने हाथ में उठाकर लंका में ले आये थे॥१॥ विश्वामित्र ने जीवित ही त्रिशंकु राजा को आकाश में प्रतिष्ठापित कर दिया था॥२॥ वशिष्ठ ऋषि ने नन्दिनी गाय के खुरों से हजारों सैनिकों को उत्पन्न कर दिया था॥३॥ श्री कृष्ण ने द्वारिका में रहते हुये ही हस्तिनापुर में द्रौपदी का चीर बढ़ा दिया था॥४॥ अगस्त्य ऋषि ने समुद्र को सुखा दिया था॥५॥ मत्स्यावतार ने जलप्लावन काल में मनु की नाव को अपने सींग से ही धारण कर लिया था॥६॥ अन्तर्द्धान-विद्या का भी इसी में समावेश किया जाता है। "योगसूत्र" में कहा गया है - "शरीर के स्वरूप का संयम करके उस रूप को ग्रहण करने वाली शक्ति का स्तम्भन हो जाने पर चक्षुःप्रकाश का संयोग न होने पर वह दिखाई नहीं देता है, इसी को अन्तर्द्धान-विद्या कहते हैं॥(३/२०।)

वशित्व : प्रबल को भी वश में कर लेना वशित्व सिद्धि है। जैसे श्रीकृष्ण ने नाग को वश में कर लिया था ॥१ ॥ ऋषियों के आश्रम में सिंहादि हिंसक प्राणी भी वश में रहकर, द्रोह रहित होकर निवास करते हैं ॥२ ॥ भूतवशीकरण विद्या भी इसी में सन्निविष्ट है ॥

पतंजलि के "योगसूत्र" में विभूतिपाद में इससे भी कुछ भिन्न अनेक योगसिद्धियाँ बताई गई हैं ॥

२— इंद्रियसंयमाद् दिव्यदृष्टिसिद्धयोऽष्टौ यथा—

(१) अतीतानागतज्ञानम् भूतभविष्यद्ज्ञानम्। तत्रातीतज्ञानं तावत् चिरकालातीतविषयाणां प्रत्यक्षविद्यमानवद्ग्रहणम्। यथा वसिष्ठो दिलीपराजाय दत्तं कामगवीशापं ददर्श। वाल्मीकिमुनिश्च परोक्षं रामचरितं सर्वं यथावद्ददर्श ॥२ ॥ पात्रञ्जले योगसूत्रे तु — "धर्म्मलक्षणावस्थापरिणामत्रसंयमादतीतानागतज्ञानम्।" (३ ।१६) इत्युक्तम् ॥ "संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम्" ॥३ ।१८ ॥ इति योगसूत्रोक्तं जन्मान्तरज्ञानमप्यतीतज्ञानमेव। यथा जैगीषव्यस्य दशसु महासर्गेषु जन्मपरिणामक्रममनुपश्यतो विवेकजं ज्ञानं प्रादुरभूत्। श्रीकृष्णश्चाह
"बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ॥
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप" ॥इति ॥

यथा महाभारतयुद्धे प्रवृत्तानां । कर्णदुर्य्योधनादीनां जन्मान्तरस्थासुरयोनित्वं वेदव्यासो दृष्ट्वा आदिपर्वणि वर्णयामास। शुकदेवस्य च पूर्वजन्मनि शुकपक्षित्वं शिवगौरीसंवादश्रोतृत्वं चाख्यातमार्य्यैः। अथ भविष्यज्ञानम् अनागतज्ञानम्। तद् यथा संभलग्रामे कल्की भविष्यतीति भारतीयाः पश्यन्ति ॥१ ॥ पुराणे भविष्यन्तो राजवंशाः प्रदर्शिताः ॥२ ॥ शूद्राश्च ब्राह्मणाचारा ब्राह्मणाः शूद्रवृत्तय इत्येवमादयः कलिधर्मो भविष्यन्तः पुराणे प्रदर्शिताः ॥३ ॥ सूर्य्यचन्द्रोपरागा भविष्यन्तः कथ्यन्ते ॥४ ॥ कालज्ञानमप्यत्रैव संनिविशते। अनया विद्ययात्मनः परस्य च मृत्युकालो विज्ञातो भवति। कालज्ञानोपायभेदे छायापुरुषसिद्धिरप्यस्ति ॥५ ॥

(२) दूरातिक्रान्तदर्शनश्रवणम्। तत्रादौ दूरपरोक्षदर्शनं यथा। संजयो हस्तिनापुरे स्थितो वेदव्यासदत्तदिव्यदृष्टिप्रभावेण दूरदेशे कुरुक्षेत्रे जायमानं युद्धं यथावत् पश्यन् धृतराष्ट्राय कथयति स्म ॥१ ॥ श्रीकृष्णो द्वारकास्थितो हस्तिनापुरस्थाया द्रौपद्याश्चीरहरणं दुःशासनकृतमपश्यत् तदुक्तं योगसूत्रे—"प्रवृत्त्या लोकन्यासात् सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम्" ।३ ।२४ ॥इति ॥अथ विदुरश्रुतिः। संजयो वेदव्यासप्रत्तविद्याप्रभावेण दूरे कुरुक्षेत्रे भवन्तं कृष्णार्जुनगीतासंवादं स्वदेशस्थो यथायथं शुश्राव ॥१ ॥"श्रोत्राकाशयोः संबन्धसंयमाद् दिव्यं श्रोत्रम्" ॥३ । ४० ॥इति योगसूत्रम् ॥

(३) सर्वभूतरुतज्ञानम् ॥तदुक्तं योगसूत्रे—"शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात् संकरस्तत् प्रविभागसंयमात्सर्वभूतरुतज्ञानम् ॥३ ।१७ ॥इति ॥
युधिष्ठिरविदुरादयः पक्षिरुतं जानन्ति स्म ॥ ब्रह्मदत्तश्च काम्पिल्यो राजा पिपीलिकारुतं जानाति स्म ॥

(४) मनोविज्ञानम् ॥ मनसः संकल्पनकाले शारीरः प्राणवायुः क्षोभितो विकृतिमापद्यते। विकुर्वाणेन च तेन रोमकूपेभ्यो बहिर्भवता विक्षिप्तः परिक्षुब्धोऽयं शरीरमभितो बाह्यवायुः पुरुषमनसोऽभिज्ञानाय प्रभवति ॥ यथोक्तं वेदमन्त्रे—
"मनसा संकल्पयति, तद्वातमभिगच्छति ॥
वातो देवेभ्य आचष्टे यथा पुरुष ते मनः"—इति ॥
ब्राह्मणेऽपि श्रूयते—
"मनो देवा मनुष्यस्य जानन्तीति।
मनसा संकल्पयति, तत् प्राणमपि पद्यते।
प्राणो वातम्, वातो देवेभ्य आचष्टे यथा पुरुषस्य मनः"—इति।

(५) भूगर्भज्ञानम्। महौषधसंस्कृतचक्षुषा अधोमुखजातेन भूतलाधस्ताद्दशहस्तपर्य्यन्तं स्थितानां भावानां साक्षात्कारः शक्यते कर्तुम्। तत्र दिव्याञ्जनप्राधान्येऽपि तेन दैवीदृष्टिरेवानुगृहीता भवतीत्यत्र समावेशः।

(६) भुवनज्ञानम्। अस्ति हि सप्तलोकसंग्रहश्लोकः। 'ब्राह्मस्त्रिभूमिको लोकः प्राजापत्यस्ततो महान्। माहेन्द्रश्च स्वरित्युक्तो दिवि तात भुवि प्रजाः"— इति। आवीचेः प्रभृति मेरुपृष्ठं यावद् भूलोकः ।१ ॥ मेरुपृष्ठादारभ्याध्रुवाद् ग्रहनक्षत्रतारा विचित्रोऽन्तरिक्षलोकः ॥२ ॥ तत्परः पञ्चविधो माहेन्द्रः स्वर्गलोकः ॥३ ॥ प्राजापत्यो महर्लोकः ॥४ ॥ जनलोकस्तपोलोकः सत्यलोक इति त्रयो ब्रह्मलोकाः ॥७ ॥ एषां साक्षादिव दर्शनं भुवनज्ञानम्। भुवनज्ञानं सूर्य्ये संयमादिति योगसूत्रम्।

(७) ओषधिप्रभावज्ञानम्। यथा सोमहरीतकीविभीतकजङ्गिडापामार्गादीनामोषधीनामतुलिताः प्रभावा आथर्वणसंहितायां मन्त्रैराम्नाताः तेषां प्रभावाणां यथावत्परिज्ञानमार्षं भवति नत्वनृषिश्चक्षुरयोग्यं प्रभावं ज्ञातुं शक्नोति। उक्तं चाभियुक्तैः—
"आविर्भूतप्रकाशानामनुपप्लुतचेतसाम्।
अतीतानागतज्ञानं प्रत्यक्षान्न विशिष्यते ॥१ ॥
अतीन्द्रियानसंवेद्यान् पश्यन्त्यार्षेण चक्षुषा।
ये भावान् वचनं तेषां नानुमानेन बाध्यते" ॥२ ॥ (वाक्यपदीयम् का.६ । ३ ।१०९)

(८) ताराज्योतिःप्रभावज्ञानम्। यावत्य इमा रोचन्ते रोचना दिवि तासामेकैकस्या ज्योतिषः प्रभावग्रहणमृषीणामेव शक्यम्। असंख्यातास्वपि तासु—एकता द्विता त्रिता—इत्येवं त्रेधा विभक्तासु त्रितानां प्रायेणाप्त्यानां प्रभावा वेदे श्रूयन्ते। यथा—

"जज्ञानः सप्तमातृभिर्मेधामाशासत श्रिये।
अयं ध्रुवो रयीणां चिकेतदा"

इत्यादिभिर्मन्त्रैर्ध्रुवादितारकाणां प्रभावा आम्नाताः। "चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम्" ।३। २६ इति योगसूत्रम्।

आठ संयमसिद्धियों का वर्णन समाप्त ॥८॥

२–इन्द्रियसंयम से प्राप्त आठ दिव्यदृष्टि सिद्धियाँ। यथा –

(१) भूत और भविष्य (अतीतानागत) का ज्ञान : भूत, भविष्य का ज्ञान अतीतानागत ज्ञान है। यहां अतीत ज्ञान से तात्पर्य है— अतिप्राचीन, विगत काल के विषयों को प्रत्यक्ष विद्यमान के समान देखना । जिस प्रकार दिलीप राजा को दिये गये कामधेनु के शाप को ऋषि वसिष्ठ ने देखा ॥१ ॥ पतंजलि के योग-सूत्र में लिखा है—"धर्म, लक्षण, अवस्था ज्ञानरूप तीन प्रकार के परिणामों में संयम से भविष्य और भूतकाल का ज्ञान हो जाता है।" (३/१६) "संस्कारसाक्षात्करण से पूर्वजन्म का ज्ञान होता है।" (३/१८) इस प्रकार योगसूत्र में जन्मान्तर-ज्ञान को भी अतीत-ज्ञान ही माना है। जैसे जैगीषव्य को दसों महासृष्टियों में हुये जन्म के परिणाम के क्रम को देखने से विवेकज्ञान की प्राप्ति हुई ॥श्री कृष्ण ने कहा है — हे अर्जुन! तेरे और मेरे अनेक जन्म हुये हैं। परन्तु हे परंतप। उन सबके विषय में मैं जानता हूं, तुम नहीं जानते हो।

जिस प्रकार वेदव्यास जी ने कर्ण और दुर्योधन का पूर्वजन्म में असुरयोनि में उत्पन्न होना देखकर महाभारत के आदिपर्व में वर्णन किया है॥ पूर्व जन्म में शुकदेव शुकपक्षी थे और उन्होंने शिव-गौरी संवाद को सुना था, ऐसा विद्वानों ने वर्णन किया है।

भविष्य-ज्ञान - अनागत-ज्ञान है। जिस प्रकार संभल नाम के ग्राम में कल्कि अवतार हो-गा, ऐसा भारतीय देखते हैं ॥१ ॥ पुराणों में भविष्यकाल में होने वाले राजाओं का वर्णन किया गया है ॥२ ॥"भविष्य पुराण" में उल्लेख किया गया है कि कलियुग के शूद्र लोग ब्राह्मणों के समान तथा ब्राह्मण शूद्रों के समान आचरण करेंगे ॥३ ॥ भविष्य में होने वाले सूर्य और चन्द्र ग्रहणों को बता दिया जाता है ॥४ ॥ कालज्ञान भी इसी में समावेशित माना जाता है। इस विद्या से अपनी और दूसरों की मृत्यु का समय भी ज्ञात हो जाता है। काल-ज्ञान के उपाय भेद से ही छाया-पुरुष की सिद्धि होती है ॥५ ॥

(२) दूर अथवा अप्रत्यक्ष का दर्शन अथवा श्रवण सर्वप्रथम अप्रत्यक्ष के दर्शन का वर्णन **करते हैं। यथा** हस्तिनापुर में स्थित होकर भी वेदव्यास द्वारा दी गई दिव्य दृष्टि के प्रभाव से संजय ने दूर कुरुक्षेत्र में हो रहे युद्ध को यथावत् देखते हुये धृतराष्ट्र को सुना दिया।

श्री कृष्ण ने द्वारिका में रहते हुये भी हस्तिनापुर में स्थित दु:शासन द्वारा किये द्रौपदी-चीर-हरण को देख लिया। योगसूत्र में लिखा है — चित्त की ज्योतिष्मती प्रवृत्ति का आलोक (सात्त्विक प्रकाश) का न्यास करने से सूक्ष्म, व्यवधान से व्यवहित और विप्रकृष्ट वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है ॥(३/२४)

वेदव्यास-प्रदत्त विद्या से संजय ने अपने स्थान पर बैठे हुए ही दूरस्थ कुरुक्षेत्र में हुये कृष्णार्जुन-गीता-संवाद को यथावत् सुन लिया ॥१ ॥ योगसूत्र में उल्लिखित है—श्रवणयन्त्र का आकाश के साथ सम्बन्ध संयम से दिव्य श्रवणशक्ति प्राप्त होती है ॥(३/४०)

(३) **समस्त प्राणियों के शब्द का ज्ञान** — योगसूत्र में लिखा है — "शब्द, अर्थ और प्रत्यय के ज्ञान का परस्पर आरोप करने से संकर-ज्ञान अर्थात् ध्वनि और अर्थ को एक साथ पहचान कर सूक्ष्म ज्ञान कर लेना सर्वभूतरूत-ज्ञान कहलाता है।" (३/१७/"युधिष्ठिर और विदुर पक्षियों की वाणी के अर्थ को पहचानते थे॥ काम्पिल्य देश का राजा ब्रह्मदत्त चींटियों के शब्द को पहचानता था।

(४) **मनोविज्ञान** : मन का संकल्प अर्थात् मानसिक दृढता के समय शरीर की प्राणवायु संकीर्णता को प्राप्त होकर विकृत हो जाती है। विकृत होने के पश्चात् वह प्राणवायु रोमछिद्रों के द्वारा बाहर की ओर आकर फैल जाता है। शरीर के चारों और फैला यह प्राणवायु पुरुष के मन को जानने में सफल हो जाता है जैसा कि वेदमन्त्र में लिखा है — "मनुष्य मन में जो विचार करता है वह विचार वायु में फैल जाता है, वायु देवों के लिए कह देता है । हे पुरुष ! जैसा तेरा मन है वैसा वायु देवों के लिए कह देता है।"

ब्राह्मणों में भी सुना जाता है — "देवता मनुष्य के मन को जानते हैं। मनुष्य जैसा मन में संकल्प करता है, वह प्राणों में भी पहुंच जाता है।" "प्राण वायु है, जैसा पुरुष का मन है, वह वायु देवों को कह देता है।" (शत.ब्रा.३/३/३) "प्रत्यय में संयम का अभ्यास करने पर दूसरे के चित्त का ज्ञान हो जाता है।" (यो.सू)

(५) **भूगर्भज्ञान** : विशिष्ट औषधि से संस्कारित नेत्रों से नीचा मुख करके पृथ्वीतल के अन्दर दस हाथ गहराई तक के तथ्यों को साक्षात् देखने में समर्थ होना भूगर्भज्ञान-सिद्धि कहलाती है। इसी सिद्धि में दिव्य नेत्रांजन, अदृश्यांजन विधि अथवा दैवीदृष्टि इत्यादि को भी समावेशित मानना चाहिये ॥

(६) **भुवनज्ञान** : सप्तलोकसंग्रह का श्लोक है —

"ब्रह्मलोक त्रिभूमिक (तीन भूमियों का) लोक है, प्राजापत्यलोक उससे बड़ा है। महेन्द्र लोक स्वर्ग है। द्युलोक में तारा है और पृथ्वी पर प्रजा है ॥१ ॥ दक्षिण से लेकर मेरुपृष्ठ पर्यन्त भूलोक है ॥१ ॥ मेरुपृष्ठ से लेकर उत्तरी ध्रुव तक ग्रह, नक्षत्र और ताराओं से युक्त विचित्र अन्तरिक्ष लोक है। ॥२ ॥ उसके पश्चात् पांच प्रकार का महेन्द्र का लोक है, वह स्वर्गलोक

है ॥३ ॥ तत्पश्चात् प्रजापति का महर्लोक है ॥४ ॥ ब्रह्मलोक तीन है - जनःलोक, तपोलोक और सत्यलोक। इनका साक्षात् दर्शन कर लेना भुवनज्ञान है।"योगसूत्र" में लिखा है — "सूर्य में संयम कर लेने से भुवनज्ञान प्राप्त होता है॥"

(७) **औषधिप्रभावज्ञान** : जैसे सोम, हरीतकी (हरड़ै), विभीतकी (बहेड़ा), जंगिड़ा, अपामार्ग इत्यादि औषधियों के विस्तृत प्रभाव अथर्वसंहिता में मन्त्रों द्वारा उल्लिखित हैं, जिनके विषय में वास्तविक प्रभावज्ञान को दिव्य चक्षु से रहित व्यक्ति जानने में कदापि सक्षम नहीं हो सकता है। विद्वानों ने कहा है —

"जिनको ज्ञानज्योति का प्रकाश दिखाई दे गया है। जिनका चित्त सांसारिक भावों से बाधित नहीं है, जिनको भूत और भविष्य का ज्ञान प्रत्यक्ष के समान स्पष्ट है। जो अतिन्द्रिय विषयों को अपने दिव्य-नेत्रों से देख लेता है, जिनके वचन अनुमान मात्र से बाधित नहीं होते हैं॥२ ॥ (वा.प.कै. ६/३/१०९)

(८) **तारामण्डल तथा ज्योतिष प्रभाव का ज्ञान** : द्युलोक में जितने भी प्रकाशपुंज, ग्रह, नक्षत्र, प्रकाशमान हैं उनका प्रत्येक का ज्योतिष की दृष्टि से प्रभाव जान लेना केवल ऋषियों के लिए ही संभव है। उन असंख्य तारामण्डल को भी एक, दो और तीन के मण्डल के रूप में तीन प्रकार से विभक्त किये हुये इन तीनों त्रिक अर्थात् तीन समूहों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण प्रभाव वेदों में बतलाये गये हैं। यथा — "सप्तर्षि नाम से प्रसिद्ध सात तारे, जो कि जगत् के उत्पादक होने के कारण माता का स्थान ले लेते हैं। इन मातृरूप सात नक्षत्रों के साथ ध्रुव सृष्टि के आदि में उत्पन्न हुआ है। यह ध्रुव कर्मकर्ता यजमान को धन से सम्पन्न करता है॥" इत्यादि मन्त्रों के द्वारा ध्रुव इत्यादि तारों का प्रभाव-वर्णन किया गया है। योगसूत्र में भी लिखा है— "चन्द्र में संयम करने से ताराओं का व्यूहज्ञान होता है॥" (३/२६)

३— हृदयसंयमात् तपोबलसिद्धयोऽष्टौ ॥८ ॥

(१) देवप्रत्यक्षीकरणम् कतिचिद् भावमालम्ब्य तत्र धारणाध्यानसमाधिसंयमे हृदयस्थमनस एवोपादानात् तत्तद्देवतारूपाविर्भावः एतच्च पुरायुगे तपश्चरताम‍ृषीणां मनुष्याणां वा भूयः श्रुतमितिहासपुराणेषु। भरद्वाजपुत्रो यवक्रीतो ब्राह्मणानामनधीता एव वेदाः प्रतिभान्त्विति कामनया घोरं तपस्तप्त्वेन्द्रं प्रत्यक्षीचकार। तमिन्द्र उवाच। अमार्ग एष विप्रर्षे येन त्वं यातुमिच्छसि। किं विधातेन ते विप्र गच्छाधीहि गुरोर्मुखादिति (भा.वन.१३५)। छायापुरुषसिद्धिरप्यत्रैव संनिविशते।

(२) बलगा कृत्या अभिचारविद्या। परविद्रोहाय पुरा क्रूराः कृत्यापुरुषाः स्त्रियो वा तपःप्रभावादुत्पाद्यन्ते स्म॥ राक्षसपुरुषाः स्त्रियो वा राक्षस्यस्तत्कालं जनिता निर्दिष्टपुरुषस्य प्राणानपहरन्ति विभीषयन्ति वा॥ यथा भरद्वाजरैभ्यौ

सखायावास्ताम्। भरद्वाजपुत्रो यवक्रीतो रैभ्याश्रमं गत्वा रैभ्यपुत्रस्यार्वावसोः पत्नीं बलादाक्रम्य मैथुनायोपचक्रमे। रुदन्त्यास्तस्या वृत्तमभिज्ञाय स रैभ्यो मन्युनाविष्टो जटामेकामवलुञ्च्ययाग्नौ जुहाव। ततो जटाकारा नारी समुत्तस्थौ। पुनरन्यां जटामालुञ्च्याग्नौ जुहाव। ततो घोराक्षं भीमदर्शनं रक्षोऽभवत्। यवक्रीतो वध्यतामिति तौ रैभ्योऽब्रवीत्। भुञ्जानस्य यवक्रीतस्यादौ कृत्या कमण्डलुं जहार। ततः शूलहस्तेन रक्षसा काल्यमानोऽयमुच्छिष्टमुखोऽन्यत्र शरणमपश्यन्नग्निहोत्रशालां गन्तुमैच्छत्। तत्रान्धेन गृहरक्षिणा निगृहीतः पपात। शूलेन रक्षसाऽऽहतः प्राणाँस्तत्याज। (महाभा० वन० १३६)

(३) आत्मप्रयाणदर्शनम् मुमूर्षोः शिरःप्रदेशादूर्ध्वमाकाशे सद्य उत्क्रममाणमात्मानं प्रत्यक्षमनुपश्यति। यथा वेदव्यासो द्रोणास्यात्मानमूर्ध्वं गच्छन्तं ददर्श।

(४) मृतपुरुषदर्शनम्। मृतानां पुरुषाणां प्रतिकृतयश्छायापुरुषाः प्रत्यक्षं दर्श्यन्ते। यथा वेदव्यासो भारतयुद्धे मृतानां पुरुषाणां छायापुरुषान् परिदर्शयामास॥

"एष राजा दशरथो विमानस्थः पिता तव॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा त्वमेनमभिवादय॥१॥
लक्ष्मणेन सह भ्राता ददर्श पितरं प्रभुः॥
विमानशिखरस्थस्य प्रणाममकरोत् पितुः"॥२॥

इति रामायणे युद्धकाण्डे १२१ रावणवधान्ते रामेण दशरथो दृष्टोऽनुभाषितश्च॥

एतस्मिन्नेव काले तु जरत्कारुर्महातपः।
वायुभक्षो निराहारः शुष्यन्नहरहर्मुनिः॥१॥
स ददर्श पितॄन् गर्ते लम्बमानानधोमुखान्।
निराहारान् कृशान् दीनान् गर्ते स्वत्राणमिच्छतः॥२॥"

इति भारतादिपर्वणि (४५) पितृदर्शनमुक्तम्।

(५) विराट्पुरुषदर्शनम्- यथा श्रीकृष्णेन भारतमहायुद्धोपक्रमेऽर्जुनाय भविष्यत्क्षणसंभावितस्य विश्वरूपस्य प्रागेव साक्षाकारः कारितः। यथा वा श्रीकृष्णेन दुर्य्योधनसभायां धृतराष्ट्राय दिव्यचक्षुः प्रदाय सर्वेभ्यः सभासद्भयो विश्वरूपं प्रदर्शितम्। यथा वा यशोदायै स्वमुखान्तरतो नानावैचित्र्यं परिदर्शितम्।

(६) मायाव्यामोहनी-यथा नारदाभिमानखण्डनार्थं कनखलप्रदेशे मायापुरी निर्म्माणं तत्र सुन्दरीस्वयंवरविधानं च। यमुनायां स्नानार्थमभिप्लुतस्य नारदस्याभिप्लवनोत्प्लवनयोरन्तरतः क्षणमात्रेऽवकाशे चत्वारिंशद्वर्षाणि माययातिवाहितानि। तत्र च नारदस्य स्त्रीभावं गमितस्य राज्ञा विवाहः पुत्रपौत्रादिसृष्टयः तेषां निःशेषाणां मृत्युः। ततो दुःखकातराया राजमहिष्यास्तस्याः शुद्धिस्नानार्थे यमुनायामागतायाः स्नात्वा जलादुत्प्लवन्त्याः पुनर्नारदस्वरूपेणाविर्भावः पुरा-

णेतिहासेषु स्मर्य्यते। मार्त्तिकावतनगराधीशः शाल्वः कृष्णेन सह युध्यन् द्वारकाधीशाह्वकपरिचारकरूपेण स्वमायापुरुषेण वसुदेवमृत्युसंवादं कृष्णाय श्रावयामास। क्षणेन पुनः शाल्वविमानाद्वसुदेवशिरश्छिद्यमानमधस्तात्कृष्णान्तिके निपातयामास। तद् दृष्ट्वा कृष्णः पूर्वं चिन्ताग्रस्तोऽभूत्। पश्चात्पुनः शाल्वकृतां मायां विज्ञाय निर्विषादः शाल्वं निपातयामास।

"तमेवमुक्त्वा रुदतीं सीतां मायामयीं च ताम्।
शितधारेण खड्गे निजघानेन्द्रिजत् स्वयम्।" ॥१॥ (इति यु. ८१)

रामायणे मेघनादेन मायासीतावध उक्तः॥

(७) उपश्रुतिविद्या खलु रात्रिनाम्नी सा विद्या यया गुप्तं विलीनमपह्नुतमज्ञातप्रदेशस्थमर्थं प्राणिनं वा परिमार्गमाणास्तमनायासेनोपलभन्ते। आकाशवाण्या वा शिशुवाचा वा कर्म्मान्तरव्यापृतमनुष्यवाचा प्रकारान्तरेण वा तत्स्थानमुपश्रुतं भवति यत्रैष परिमार्जितव्योऽर्थः स्थितो भवति। यथा देवराजे ब्रह्महत्यादोषेण क्वचित् प्रच्छन्ने नहुषे चैन्द्रं पदमध्यारूढे शची तयोपश्रुतिविद्यया तं देवराजं क्वचित्सरसि प्रच्छन्नं व्यजानात्।

तदुक्तं भारते –

"पुण्यां चेमामहं दिव्यां प्रवृत्तामुत्तरायणे॥
देवीं रात्रिं नमस्यामि सिध्यतां मे मनोरथः॥१॥
यत्रास्ते देवराजोऽसौ तं देशं दर्शयस्व मे।
इत्याहोपश्रुतिं देवीं सत्यं सत्येन दृश्यताम्॥२॥
प्रयतां च निशां देवीमुपातिष्ठत तत्र सा।
पतिव्रतात्वात् सत्येन सोपश्रुतिमथाकरोत्॥३॥
सरसस्तस्य मध्ये तु पद्मिनी महती शुभा।
बिसतन्तुप्रविष्टं च तत्रापश्यच्छतक्रतुम्॥४॥" (भार०उ०१३)

(८) संस्कारोपधानी -सा विद्या यया योगिराजः कस्यचिच्छिशोर्मूर्द्धनि हस्तं निधाय तस्मिन् सर्वविद्याप्रबोधान् संस्कारविशेषान् मन्त्रप्रभावेणाधत्ते। तदुक्तं मन्त्रमहोदधौ पञ्चमतरङ्गे –

(१) विद्वत्कुलसमुद्भूतमष्टवर्षं शिशुद्वयम्॥उपवेश्य तयोर्मूर्ध्नि करौ दत्वा जपेन्मनुम्॥८९॥ वेदान्तन्यायसंयुक्त्या विवदेते उभावपि। यः कौतुकी स आश्चर्यं विद्यायाः पश्यतु ध्रुवम्॥९०॥

(२) दूर्वोत्थया तु लेखन्या रोचनारसयुक्तया। बालस्याच्छिन्ननालस्य जिह्वायां विलिखेन्मनुम्॥८३॥ संप्राप्ते चाष्टमे वर्षे सर्वशास्त्रज्ञतामियात्।

मन्त्रेणायुतसंजप्तां वचां बालस्य कण्ठतः ॥८४॥ बध्नीयात् पूवसंप्रोक्तं बलिं दत्वा विधानतः। द्वादशे वत्सरे प्राप्ते भक्षिता सा कवित्वकृत्॥८५॥इति॥

३—हृदयसंयम से आठ तपोबल की सिद्धियाँ

(१) **देवप्रत्यक्षीकरण** : किसी भाव का आश्रय लेकर धारणा, ध्यान, समाधि द्वारा संयम में हृदयस्थित मन को ही कारण बनाकर तत् देवता के रूप को प्रकट कर लेना इत्यादि कथायें प्राचीनकाल में तपस्या में लीन रहने वाले ऋषियों और मनुष्यों के सम्बन्ध में इतिहास-पुराणादि में सुनी गई हैं। "यवक्रीत" नाम का भरद्वाज ऋषि का पुत्र था, जिसने ब्राह्मणो से बिना पढ़े ही वेदों का ज्ञान प्राप्त कर लिया। ऐसी कामना लेकर घोर तपस्या करके इन्द्र को साक्षात् प्रकट कर लिया था। इन्द्र ने उससे कहा —"हे विप्रर्षि" जो तुम कामना कर रहे हो, यह अमार्ग है। हे विप्र! अपना नाश करने से क्या लाभ? जाओ और गुरु से विद्या प्राप्त करो।" (म.भा.व.प. १३५)। छायापुरुष की सिद्धि भी इसी विद्या में माननी चाहिये।

(२) **बलगा** : कृत्या, अभिचारविद्या को बलगा कहते हैं। प्राचीन युग में क्रूर अर्थात् दुष्ट लोगों द्वारा दूसरों का विनाश करने के लिए तपस्या के प्रभाव से कृत्यापुरुष अथवा कृत्या-स्त्री को उत्पन्न कर लिया जाता था। दुष्ट पुरुषों द्वारा तत्काल उत्पन्न किये गये राक्षस पुरुष अथवा स्त्रियाँ निर्दिष्ट पुरुष के प्राणों का हरण कर लेते थे अथवा डरा देते थे। जैसे भरद्वाज और रैभ्य दोनों मित्र थे। भरद्वाज का पुत्र यवक्रीत रैभ्य के आश्रम में गया और रैभ्य के पुत्र अर्वावसु की पत्नी को बलपूर्वक खींचकर बलात्कार करने के लिए उद्यत हुआ। रोती हुई अपनी पुत्रवधू के वृत्तान्त को जानकर रैभ्य ने क्रोध से भरकर अपनी जटा में से एक बाल खींचकर उस बाल का अग्नि में हवन कर दिया। जब जटा के आकार की एक स्त्री उत्पन्न हुई। फिर रैभ्य ने दूसरी जटा को नोंचकर अग्नि में हवन किया तो एक घोर भयानक नेत्रों वाला, विशाल-विकराल दर्शन वाला एक राक्षस उत्पन्न हुआ। उन दोनों को रैभ्य ने कहा "यवक्रीत को मार डालो।" उस कृत्या ने भोजन करते हुए यवक्रीत का पहले तो कमण्डलु छीन लिया। तत्पश्चात् वह यवक्रीत शूलधारी राक्षस द्वारा आह्वान किया जाता हुआ जानकर उच्छिष्ट (जूठे) मुंह से ही अन्यत्र शरण न देखता हुआ यज्ञशाला में जाने के लिए तैयार हुआ। वहाँ यज्ञशाला के अन्धे रक्षक ने उसे पकड़ लिया और वह गिर गया। तब राक्षस के द्वारा शूल से मार दिया गया और उसने अपने प्राणों का त्याग कर दिया॥(भा. वन. १३६)

(३) **जाती हुई आत्मा के दर्शन** : ज्ञानी पुरुष मरणासन्न व्यक्ति के मस्तिष्क भाग से ऊपर की ओर आकाश में शीघ्रता से जाती हुई आत्मा को प्रत्यक्ष देख लेता है। जैसे वेदव्यास ने द्रोणाचार्य की आत्मा को ऊपर की ओर जाते हुए प्रत्यक्ष देखा॥

(४) मृत पुरुष के दर्शन : मरे हुए पुरुषों की आकृतियां छायापुरुष के रूप में प्रत्यक्ष दिखाई देती हैं। जैसे वेदव्यास ने महाभारत के युद्ध में मरे हुए पुरुषों की आकृति रूप छायापुरूषों को दिखा दिया था। वाल्मीकि-रामायण में लिखा है —

"यह विमान पर बैठे हुए तुम्हारे पिता राजा दशरथ ही हैं। आप अपने भाई लक्ष्मण के साथ इनको नमस्कार करो। तब विमान के शिखर पर बैठे हुए अपने पिता दशरथ को प्रभु ने प्रणाम किया॥१-२॥

इस प्रकार रामायण के युद्धकाण्ड के १२१वें सर्ग में रावणवध के पश्चात् भगवान् राम ने पिता दशरथ को देखा और उनसे वार्तालाप भी किया।

महाभारत में भी पिता के दर्शन के सम्बन्ध में कहा गया है —

"उस काल में महान् तपस्वी जरत्कारु ने तपस्या करते हुए केवल वायु मात्र का भक्षण करते हुए, निराहार रहकर दिन-प्रतिदिन कृशता को प्राप्त होकर अपने पिता को गड्डे में नीचा मुख किये लटकते हुये देखा, जो निराहार थे, कृशकाय थे और अत्यन्त दीनावस्था में गर्त में रहते हुए अपनी मुक्ति की इच्छा कर रहे थे॥१-२॥ (महा.भा.४५)

(५) विराट्पुरुष-दर्शन : जैसे महाभारत के युद्ध के प्रारम्भ में ही श्रीकृष्ण ने अर्जुन को तत्काल सम्भावित घटनाओं का तथा विराट् रूप का दर्शन पहले ही करा दिया था। श्रीकृष्ण ने ही जैसे दुर्योधन की सभा में धृतराष्ट्र को दिव्यनेत्र प्रदान करके समस्त सभा-सदों को विश्वरूप का दर्शन कराया। इसी प्रकार जैसे यशोदा को अपने मुख में विभिन्न प्रकार की विचित्रताओं से युक्त विश्व का दर्शन कराया॥

(६) मोहित करने वाली माया : जैसे ऋषि नारद के अभिमान को मर्दित करने के लिए कनखल प्रदेश में मायानगरी की रचना की गई। इतिहास-पुराणों में स्मरण किया गया है कि नारदमुनि ने स्नान के लिए यमुना नदी में जैसे ही डुबकी लगाई और बाहर निकले, इसी सूक्ष्मकाल में ही माया से चालीस वर्ष की अवधि व्यतीत हो गई। और उसी स्नान के अनन्तर नारद स्त्रीभाव को प्राप्त हो गये। इनका राजा से विवाह हुआ, पुत्र-पौत्रादि का जन्म हुआ और उन सभी की मृत्यु हो गई। तत्पश्चात् दुःख से विह्वल वह राजमहिषी शुद्धिस्नान के लिए यमुना नदी पर आई और स्नान करके जैसे ही बाहर आई वैसे ही नारद के रूप में प्रकट हो गई। मार्तिकावान् नगरी के राजा शाल्व ने कृष्ण के साथ युद्ध करते हुए द्वारकाधीश आहुक के सेवक के रूप में अपने माया-पुरुष के द्वारा श्रीकृष्ण को वसुदेव की मृत्यु का समाचार सुनवाया। क्षणभर में ही फिर शाल्व ने माया के द्वारा ही अपने विमान से वसुदेव का कटा हुआ सिर पृथ्वी पर श्रीकृष्ण के पास गिरा दिया। उस कटे हुए मस्तक को देखकर पहले तो श्रीकृष्ण चिन्तित हुए, परन्तु कुछ क्षण पश्चात् ही शाल्व द्वारा की गई माया को जानकर विषादरहित होकर शाल्व को मार गिराया।

रामायण के युद्धकाण्ड में लिखा है—

"इस प्रकार कह कर तीक्ष्णधार की तलवार से उस माया-मयी सीता का मस्तक स्वयं इन्द्रजित् ने काट दिया ॥ (रामा.यु.८१)

इस प्रकार रामायण में मेघनाद द्वारा मायासीता के वध का वर्णन किया गया है।

(७) उपश्रुतिविद्या : रात्रि नाम की यह विद्या है, जिसके द्वारा गुप्त, विलीन, छिपाया हुआ, अज्ञात प्रदेश में रखा हुआ धन अथवा मनुष्य को ढूंढने वाला बिना प्रयत्न के ही प्राप्त कर लेता है। आकाशवाणी से, शिशु की बोली से अथवा अन्य कार्य में संलग्न मनुष्य की वाणी से या अन्य किसी प्रकार से जहाँ यह खोजने योग्य धन रखा हो, वह स्थान उपश्रुत हो जाता है। जैसे देवराज इन्द्र ब्रह्महत्या के दोष से किसी गुप्त स्थान पर जाकर छिप गये और राजा नहुष ने इन्द्र का पद धारण कर लिया। तब शची ने इसी उपश्रुतिविद्या से देवराज इन्द्र को किसी तालाब में छिपा हुआ जान लिया ॥

महाभारत में कहा गया है —

"उत्तरायण के दिन जो यह पुण्य और दिव्यरात्रि आ रही है, उसकी अधिष्ठात्री देवी को मैं नमस्कार करती हूँ, वह मेरे मनोरथ की सिद्धि करे ॥१ ॥

"जहाँ देवराज इन्द्र हो वह स्थान मुझे दिखाइये।" ऐसा कहकर उसने उपश्रुति नामक देवी की उपासना की । क्योंकि सत्य का सत्य से ही दर्शन होता है ॥२ ॥

इस प्रकार शची ने मन और इन्द्रियों को वश में रखकर रात्रि देवी की उपासना की। पतिव्रता और सत्यपरायणा होने के कारण उसने उपश्रुति नाम की देवी का आह्वान किया ॥३ ॥

उस सरोवर के मध्य एक बहुत बड़ी कमलिनी थी। उसी कमलिनी के बिसतन्तु में प्रवेश करके वहाँ छिपे हुए शतक्रतु इन्द्र को देखा ॥(भा.उ..।३)

(८) संस्कारोपधानी विद्या : जिस विद्या के द्वारा कोई सिद्ध पुरुष किसी बालक के सिर पर हाथ रखकर उसमें समस्त विद्याओं के प्रबोध करने वाले संस्कार विशेषों को मन्त्र के प्रभाव से धारण करा देता है।"मन्त्रमहोदधि" ग्रन्थ के पांचवें तरंग में लिखा है—

विद्वत्कुल में उत्पन्न आठ वर्ष के दो बालकों को बैठा कर उनके मस्तक पर दोनों हाथ रखकर मन्त्र जाप करें तो वे दोनों वेदान्त और न्याय के ज्ञान से युक्त होकर शास्त्रार्थ करने लग जाते हैं। इस विचित्र कुतूहलयुक्त विद्या का आश्चर्य निश्चय ही देखें ॥९० ॥

दूर्वा से निर्मित लेखनी को गोरोचन के रस में डुबोकर नाल काटने से पूर्व बालक की जिह्वा पर मन्त्र लिखें। ऐसा बालक आठ वर्ष की आयु में ही समस्त शास्त्रों का ज्ञाता

हो जाता है दस हजार बार मन्त्र से अभिमन्त्रित "बचा" नाम की ओषधि को बालक के कण्ठ में बांध दी जाये और पूर्वोक्त बलिविधि से बलि-विधान किया जाये और बारहवें वर्ष में वह कण्ठ में बंधी हुई बचा नाम की ओषधि को खा ले तो वह बचा कवित्व-शक्तिप्रदायिका होती है ॥९४-८५ ॥

४—प्राणसंयमाद्दैवसिद्धयोऽष्टौ यथा—

(१) कायव्यूहः युगपदनेकशरीरधारणमनेकदेशे भिन्नशरीरेणावस्थानं च। यथा श्रीकृष्णो रासलीलायां प्रतिगोपीशरीरसहकारेणान्यान्यशरीरोपपन्नस्तस्थौ। यशोदासदेशं तिष्ठन् गोपीनां गृहेष्वपि तत्कालं तस्थौ ॥१ ॥

(२) परकायप्रवेशः—स्वशरीरं पृथक् संस्थाप्य शुद्धेनात्मना शरीरान्तरे प्रवेशः तदुक्तं योगसूत्रेबन्धकारणशैथिल्यात् प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः ।३ ।३७ ॥इति ॥ यथा शंकराचार्य्यो राज्ञः शरीरे विवेश। यथा वा किन्दमो नाम मुनिर्मृगशरीरे प्रविश्य मृग्या सह रेमे। (भा० आदि० १२३)

(३) प्राणसंहारिणी-यथा वेनस्य राज्ञ उन्मार्गं गच्छतः प्राणान् कुशाघातेन महर्षयोऽपजह्रुः ।

(४) मृतसंजीवनी दैवीशक्तिः—उत्क्रान्तप्राणे शरीरे पुनः प्राणसंधानम्। यथातिवेगेन धावमानानां रथाश्वानां प्रत्याघातान्मृतं ब्राह्मणशिशुं जानः पुरोहितः पुनरुज्जीवयामासेति बृहद्देवतायामुक्तम् ॥१ ॥ सांदीपनिना गुरुदक्षिणात्वेन मृतं मे पुत्रमानयेत्युक्तः कृष्णस्तत्पुत्रं स्वयमुज्जीव्य गुरवेऽर्पयामास ॥२ ॥ अथ रैभ्यभरद्वाजौ सखायावास्ताम्। रैभ्यः कृत्यामुत्पाद्य भरद्वाजसुतं यवक्रीतं मारयामास। पुत्रशोकपरितप्तो भरद्वाजः स्वयं प्राणांस्तत्याज। अथ रैभ्यपुत्रो ज्येष्ठः परावसुर्मृगभ्रमात् स्वपितरं घातयामास। रैभ्यस्य कनिष्ठपुत्रोऽर्वावसुः ज्येष्ठभ्रातुर्ब्रह्मवध्याप्रायश्चित्तमचरत्। सोऽर्वावसुरुग्रं तपः कृत्वा सूर्य्यस्य रहस्यवेदं चक्रे। तेन कर्मणावार्वसोरग्न्यादयो देवाः प्रीता अभवन्। अर्वावसुप्रार्थनया प्रसन्ना देवा रैभ्यं भरद्वाजं यवक्रीतं चेत्येतान्मृतान् पुनरुज्जीवयामासुः । सूर्य्यवेदस्य च प्रतिष्ठां चक्रुः ।

"अर्वावसुप्रार्थनया देवाः सेन्द्रपुरोगमाः ॥
संजीवयित्वा तान् सर्वान् पुनर्जग्मुस्त्रिविष्टपम्" ॥१ ॥

(इति भारते वन १३८ तथोक्तेः)

अथ हैहयकुमारोऽरिष्टनेमिस्ताक्ष्र्यस्य पुत्रं मृगभ्रमाज्जघान। स ब्रह्मवध्यानिर्विण्णस्तन्निष्कृत्यै ताक्ष्र्याश्रमं गत्वा निष्कृतिमर्थयामास ।ताक्ष्र्यस्तूचे। यस्त्वया ब्राह्मणो हतः सोऽयं ममैव पुत्र आसीत्। स मयोज्जीवितोऽयं तवाग्रे तिष्ठति। कथमयं जीवितोऽभूदिति विस्मयेन पृष्टस्ताक्ष्र्य उवाच—

"सत्यमेवाभिजानीमो नानृते कुर्म्महे मनः ॥
स्वधर्ममनुतिष्ठामस्तस्मान्मृत्युभयं न नः ॥१ ॥
यद् ब्राह्मणानां कुशलं तदेषां कथयामहे ॥
नैषां दुश्चरितं ब्रूमस्तस्मान्मृत्युभयं न नः ॥२ ॥
अतिथीनन्नपानेन भृत्यानत्यशनेन च ॥
संभोज्य शेषमश्नीमस्तस्मान्मृत्युभयं न नः ॥३ ॥
शान्ता दान्ता क्षमाशीलास्तीर्थदानपरायणाः ।
पुण्यदेशनिवासाश्च तस्मान्मृत्युभयं न नः ॥४ ॥

(इति भारते वन. १८४)

अकालमृत्युप्रतिघातः प्रदर्शितः ॥ स्वायुःप्रदानमप्यत्रैव संनिविशते । यथा सर्पदंशनेन मृतायाः प्रमद्वराया रुरुणा स्वार्धायुःप्रदानेन पुनरुज्जीवनम् । यथा वा रामचन्द्राय दशरथेन स्वजीवनशेषायुःप्रदानम् ॥ विषहरविद्याप्यत्रैव संनिविशते । यथा ब्रह्मणा कश्यपाय विषहरविद्यादानम् ।यथा वा हरिद्वारे नागेन भीमाय विषहरविद्यादानम् ॥

(५) स्थाणूज्जीवनी—शुष्कतरोः पुनरार्द्रीभावात् पर्णोद्गमनम् । गायत्रीमन्त्रप्रभावेणाभिमन्त्रिताभिरद्भिः परिषिक्तः शुष्कतरुस्तं रसमात्मानं गृहीत्वा पुनरुज्जीवितो भवति । अतस्तत्र सद्यः पर्णान्याविर्भवन्ति । यथोक्तं यजुर्ब्राह्मणे —"तं हैतमुद्दालक आरुणिर्वाजसनेयाय याज्ञवल्क्यायान्तेवासिने उक्त्वोवाच—य एतं शुष्के स्थाणौ निषिञ्चेत् जायेरन् शाखाः प्ररोहेयुः पलाशानीति ।"

(६) छायाग्रहणी—प्राणिनः शरीरच्छायां तच्छरीरगन्धपर्य्याप्तामाक्रम्य तद्द्वारा तत्प्राणि-शरीरानुकर्षणम् । यथाऽऽकाशमार्गेण समुद्रमुल्लङ्घयतो हनुमतश्छायां ग्रसित्वा सिंहिकया समुद्रस्थया हनुमानाकाशस्थोऽधस्तान्निपातितः ।

(७) आकृतिपरिवर्तिनी—शरीराकृतेरन्यजातीयाया अन्यजातीयतासम्पादनम् । यथा-मृग्यामैथुनं चरतो मृगरूपस्य किन्दमस्य मुनेः पाण्डुना मृगयां चरता हननम् । यथा वा मनुष्याकारो विष्णुर्वराहो मोहिनी वा समपद्यत । धर्मः शुनो रूपं दध्रे । शिविपरीक्षायामग्निः कपोतोऽभूदिन्द्रः श्येनः ।
"इन्द्रः श्येनः कपोतोऽग्निर्भूत्वा यज्ञेऽभिजग्मतुः ।
ऊरुं राज्ञः समासाद्य कपोतः श्येनजाद्भयात् ॥१ ॥
शरणार्थी तदा राजन्निलिल्ये भयपीडितः ।"

(वन०१३०) इति भारतोक्तेः ।

स तदा राक्षसेन्द्रेण संदिष्टो रजनीचरः ।
शुको विहङ्गमो भूत्वा तूर्णमाप्लुत्य चाम्बरम् ॥१ ॥
स गत्वा दूरमध्वानमुपर्य्युपरि सागरम् ।
संस्थितो ह्यम्बरे वाक्यं सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥२ ॥

(यु०२०) इति रामायणे राक्षसः शुकरूपधारणमुक्तम्। रूपान्तरीकरणमिदं पुरायुगे देवकुले भूयसाभ्यस्तमासीत् अद्भुतरूपकरणमप्यत्रैव संनिविशते। यथा नृसिंहो यथा वा शरभः।

(८) लिङ्गपरिवर्तिनी—लिङ्गयोर्निव्यत्यासः। अनया विद्यया पुंसां स्त्रीत्वं स्त्रीणां पुंस्त्वं च शक्यते कर्तुम्। यथा शिवः कदाचिदुमावने प्रविशतः सुद्युम्नस्य राज्ञः स्त्रीत्वमिलायाश्च पुंस्त्वं चक्रे। इति भारताख्याने पुराणेषु च सर्वेष्विलोपाख्याने सुप्रसिद्धम्।

४—प्राणों का संयम करने से आठ प्रकार की दैव-बल सिद्धियाँ

(१) काय-व्यूह-रचना : एक साथ अनेक शरीर धारण करना अथवा एक ही समय भिन्न-भिन्न शरीरों से अनेक स्थानों पर रहना। जैसे श्रीकृष्ण रासलीला के समय प्रत्येक गोपीशरीर के साथ रहते हुए विभिन्न शरीरों के रूप में विद्यमान थे। यशोदा के पास रहते हुए भी उसी समय गोपियों के घरों में विराजमान थे ॥१ ॥

(२) परकाया-प्रवेश : अपने शरीर को पृथक् रखते हुए शुद्ध आत्मा से दूसरे शरीर में प्रवेश करना। इस सम्बन्ध में योगसूत्र में लिखा है — "बन्धकार को शिथिल करके प्रचार का संवेदन करने से आत्मा का परकाया में प्रवेश किया जा सकता है। (३/३७)॥ जैसे शंकराचार्य ने राजा के शरीर में प्रवेश किया, तथा किन्दिम नाम के मुनि ने मृग के शरीर में प्रवेश करके मृगी के साथ रमण किया ॥(भा.आदि १२३)

(३) प्राणसंहारिणी विद्या : जैसे कुमार्ग पर जाते हुए वेन राजा के प्राणों को महर्षियों ने कुशा के आघात से ही नष्ट कर दिया था॥

(४) मृत-संजीवनी दैवी शक्ति : शरीर से प्राणों के निकल जाने पर शरीर में पुनः प्राणों का संधान कराना मृतसंजीवनी विद्या है। जैसे बृहद्देवता में लिखा है-अत्यन्त वेग से भागते हुए रथ के घोड़ों की चोट से मरे हुए ब्राह्मण के बालक को पुरोहित ने पुनः जीवित कर दिया ॥१ ॥ सान्दीपनि मुनि ने गुरुदक्षिणा के रूप में श्रीकृष्ण से कहा - "मेरा पुत्र वापस लाओ ॥" ऐसा कहने पर कृष्ण ने उसके पुत्र को स्वयं जीवित किया और गुरु को समर्पित कर दिया ॥२ ॥ रैभ्य और भरद्वाज दोनों मित्र थे। रैभ्य ने कृत्या को उत्पन्न करके भरद्वाज के पुत्र यवक्रीत को मार दिया था। पुत्रशोक से सन्तप्त भरद्वाज ने स्वयं प्राणों का त्याग कर दिया। तत्पश्चात् रैभ्य के ज्येष्ठ पुत्र परावसु ने मृग के भ्रम से अपने पिता को मार डाला। रैभ्य के कनिष्ठ पुत्र अर्वावसु ने अपने ज्येष्ठ भ्राता के ब्रह्महत्या के पाप का प्रायश्चित्त किया। उस अर्वावसु ने घोर तपस्या कर के सूर्य के रहस्य वेद को जान लिया। इस कर्म को करने से अर्वावसु पर अग्नि इत्यादि देवता प्रसन्न हो गये। अर्वावसु

की प्रार्थना से देवों ने मरे हुए रैभ्य, भरद्वाज और यवक्रीत को पुनर्जीवित कर दिया। इस प्रकार सूर्यदेव की प्रतिष्ठा की ॥महा.भा. में लिखा है—

"अर्वासु की प्रार्थना से इन्द्रादि देव प्रसन्न हुये और उन सबको पुनर्जीवित करके स्वर्ग को चले गये ॥"

हैहय के पुत्र अरिष्टनेमि ने ताक्ष्र्य के पुत्र को मृग के भ्रम से मार दिया था। तब उसने ब्रह्महत्या से खिन्न होकर उसके निराकरण के लिए ताक्ष्र्य से प्रार्थना की। तब ताक्ष्र्य बोले —"जो ब्राह्मण तुम्हारे द्वारा मारा गया है वह मेरा ही बेटा था। अब वह मेरे द्वारा पुनर्जीवित कर दिया गया है और यह तुम्हारे सामने ही बैठा है।" "यह कैसे पुनर्जीवित हुआ" इस प्रकार पूछे जाने पर ताक्ष्र्य बोले—

"हम केवल सत्य ही जानते हैं, तथा कभी असत्य में मन नहीं करते हैं। हम अपने ही सत्यक्रर्म रूप धर्म में ही स्थिर रहते हैं। इसलिए हमें मृत्यु का भय नहीं है ॥१ ॥

ब्राह्मणों का जो कुशल कर्म है, उसी का हम विवेचन करते हैं, इनके दुराचरणों को कभी नहीं देखतें हैं। इसलिए हमें मृत्यु का भय नहीं है ॥२ ॥

अतिथियों के अन्न पान से तथा सेवकवृन्द के भोजन करने से शेष बचे हुए अन्न का हम भोजन करते हैं। इसलिए हमें मृत्यु का भय नहीं है ॥३ ॥

हम शान्तस्वभाव हैं, इन्द्रियों का दमन करते हैं, परदोष को क्षमा करने वाले हैं, तीर्थस्थल पर दान देने में रुचि रखते हैं और पुण्यस्थान में निवास करते हैं। इसलिए हमें मृत्यु का भय नहीं है ॥४ ॥ (भारत.वन. १८४)

अकाल मृत्यु का प्रतिघात भी बताया गया है। अपनी आयु दूसरे को दे देना भी इसी में समझना चाहिये। जैसे सर्पदंश से मरी हुई प्रमद्वरा को रुरु ने अपनी आधी आयु प्रदान करके पुनर्जीवित कर दिया था। जैसे दशरथ के द्वारा श्रीरामचन्द्र को अपनी शेष आयु प्रदान करना! विष को खींच लेने की विद्या भी इसी में सन्निविष्ट है। जैसे ब्रह्मा के द्वारा कश्यप ऋषि को विषहर विद्या का दान करना और जैसे हरिद्वार में नाग ने भीम को विषहर विद्या का दान दिया था।

(५) **स्थाणूज्जीवनी** : शुष्क वृक्ष को पुनः गीला करके हरा भरा बनाकर पर्तों को उगा देना। गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित जल से सींचा हुआ सूखा वृक्ष भी पुनः अपने रस को ग्रहण करके पुनर्जीवित हो जाता है। इस मंत्र के प्रभाव से शीघ्र ही हरे पत्ते प्रकट हो जाते हैं। यजुर्वेद के ब्राह्मण में लिखा है — "उद्दालक आरुणि ने अपने शिष्य वाजसनेय याज्ञवल्क्य से कहा — " यदि गायत्री से अभिमन्त्रित इस जल को सूखे ठूंठ में सीचें तो इसकी शाखाओं में कोमल पत्ते उग जायेंगे।"

(६) छायाग्रहणी विद्या : प्राणियों की छाया को उसके शरीर की गन्ध का अधिग्रहण करते हुए खींच कर उसी छाया के द्वारा प्राणी को खींच लेना छायाग्रहणी विद्या है। जैसे आकाश-मार्ग से समुद्र को लांघते समय हनुमान् की छाया को खाकर समुद्र-स्थित सिंहिका नाम की राक्षसी के द्वारा आकाशस्थित हनुमान् को भी नीचे गिरा देना छायाग्रहणी विद्या ही है॥

आकृतिपरिवर्तिनी विद्या : शरीर की आकृति से अन्य जाति से किसी अन्य जाति में प्रवेश कर लेना। जैसे मृगी के साथ रमण करते हुए मृग रूपधारी किन्दिम ऋषि की पाण्डु द्वारा शिकार करते हुए मृत्यु होना अथवा जैसे मनुष्याकार भगवान् विष्णु ने वराह अथवा मोहिनी का रूप धारण कर लिया था। धर्म ने कुत्ते का रूप धारण कर लिया था। शिवि राजा की परीक्षा के लिए अग्नि कबूतर बना और इन्द्र ने बाज का रूप धारण किया॥ महाभारत में लिखा है —

"इन्द्र ने बाज पक्षी का रूप धारण किया तथा अग्नि ने कबूतर का रूप धारण किया तब कबूतर बाज के भय से पीड़ित शरण की इच्छा से राजा की गोद में जाकर छिप गया।" (म.भा.वन. १३०)

रामायण में लिखा है — "तब राक्षसराज रावण का संदेश लेकर आया वह राक्षस शुकपक्षी का रूप धारण करके शीघ्र ही आकाश में उड़कर दूर समुद्र के ऊपर आकाश में ही रहते हुए सुग्रीव को यह कहने लगा॥" (रामा.यु.२०) इस प्रकार रामायण में राक्षस का शुकरूप धारण करना कहा गया है।

प्राचीनकाल में देवकुल में बहुत से लोग इस रूपान्तरण की विद्या में अभ्यस्त थे। अद्भुत रूप धारण करना भी इसी विद्या में समाविष्ट मानना चाहिये। जैसे नृसिंह रूप धारण करना अथवा सिंहघाती "अष्ट-पद-शरभ" का रूप धारण करना॥

लिङ्गपरिवर्तिनी विद्या : मनुष्य की योनि को बदलकर लिङ्ग परिवर्तन करना। इस विद्या के द्वारा पुरुषों का स्त्रीत्व और स्त्रियों का पुंस्त्व में परिवर्तन करना संभव है। जैसे किसी समय शिव ने पार्वती के वन में प्रवेश करते हुए सुद्युम्न राजा को स्त्रीरूप तथा इला को पुरुष रूप में बदल दिया था। महाभारत और पुराणों में यह आख्यान प्रसिद्ध है॥

नैगमीयमन्त्रबलसिद्धयोऽष्टौ।

(१) सर्पाकर्षिणी—सर्पाकर्षिण्या विद्यया मन्त्रबलेन सर्पाः दूरस्था अपि अभीष्टदेशे आकृष्यन्ते निगृह्यन्ते निर्विषीक्रियन्ते यथा जनमेजयकृते सर्पसत्रे याजकाः समिद्धेऽग्नौ मन्त्रैः सर्पानाजुहुवुः।

"क्रोशयोजनमात्रा हि गोकर्णस्य प्रमाणतः।—
पतन्त्यजस्रं वेगेन प्रदीप्ते हव्यवाहने॥१॥
उच्चावचाश्च बहवो नानावर्णा विषोल्बणाः।

घोराश्च परिघप्रख्या दन्दशूका महाबलाः ॥२॥"

(इति भारते '५२)

(२) अग्निस्तम्भनीविद्या सा यया मन्त्रेणाग्निः शीतलीक्रियते। तेनाग्नौ प्रविष्टोऽपि पुरुषो न दह्यते। सोऽग्निस्तम्भस्त्रेधा सम्पद्यते। सत्येन मन्त्रेण मणिना च। सत्येन यथा धर्माधिकारिभिरपराधी पुरुषो दिव्यपरीक्षया हस्तनिहितेनाग्निना परीक्ष्यते। यथा वा सीता लङ्कायां सत्येनाग्नौ प्रवेशिता परीक्षिताऽऽसीत् ॥१॥ मन्त्रेण यथा नलो महाराजोऽग्निं स्तम्भयति स्म।

तदुक्तं भारते —

"अन्यच्च तस्मिन् सुमहदाश्चर्य्यं लक्षितं मया।
यदग्निमपि संस्पृश्य नैवासौ दह्यते शुभे॥" (वन० ७५)

अथ ग्रामदाहे तृणगृहान् प्रदहन्नग्निर्मन्त्रेण स्तम्भितो गृहान्तरं न दाहयति इति मंत्रशास्त्रे निरूप्यते ॥२॥ अथ मणिश्चन्द्रकान्तमणिः। स द्विविधः औषधिः, प्रस्तरश्च। तत्रैते श्लोका द्रष्टव्याः—

अमरलता वितता स्याद् यस्य तरोरुपरि तस्य चाधस्तात्। भूमावन्तर्निहितं तस्या मूलं तु कन्दमन्वेष्यम् ॥१॥ वृक्षाधस्तात् परितस्तृणान्युपस्तीर्य्य दाहयेच्छिखिना। यत्र तु न दह्यते तत् तत्रैवाधः स्थितं कन्दम् ॥२॥ अतिशीतं तत्कन्दं स उच्यते चन्द्रकान्तमणिः। तत्सानिध्यादग्निः शीतलतामेति नैष दाहयति ॥३॥ तद्रसलिप्ते हस्ते धारयितुं शक्यते वह्निः। तद्रसलिप्तशरीरः शक्नोत्यग्नौ प्रवेष्टुमक्लेशात् ॥४॥

एवं प्रस्तरोऽप्ययश्चन्द्रकान्तमणिः।सोऽतिशीतलः प्रस्तरः संनिधानमात्रेणाग्निं शीतलयति॥ तत्संनिहितोऽग्निः स्पृष्टोऽपि न दाहयति। चन्द्रकान्तसंनिहितोऽप्यग्निः सूर्य्यकान्तमणिसंनिधानात्पुनर्दाहयति। चन्द्रकान्तोपजनितशीतलतायाः सूर्य्यकान्तेन निरस्तत्वात्॥

(३) अक्षय्यकरणी—सा विद्या यया गृहभाण्डस्थमन्नं परःसहस्रैर्भुज्यमानमपि न क्षीयते। पूर्वं तावत् सूर्य्यमाराधयमानेन युधिष्ठिरेण सूर्य्यादेकं पिठरमुपलब्धं तत्प्रभावादन्नमक्षय्यमासीदित्युक्तं भारते —

गृहणीष्व पिठरं ताम्रं मया दत्तं नराधिप।
यावद् वर्त्स्यति पाञ्चाली पात्रेणानेन सुव्रत ॥१॥
फलमूलामिषं शाकं संस्कृतं यन्महानसे।
चतुर्विधं तदन्नाद्यमक्षय्यं ते भविष्यति ॥२॥
संस्कृतं प्रसवं याति स्वल्पमन्नं चतुर्विधम्।
अक्षय्यं वर्द्धते चान्नं तेन भोजयते द्विजान् ॥३॥

भुक्तवत्सु च विप्रेषु भोजयित्वाऽनुजानपि।
शेषं विघससंज्ञं तु पश्चाद् भुङ्क्ते युधिष्ठिरः ॥४॥
युधिष्ठिरं भोजयित्वा शेषमश्नाति पार्वती।
द्रौपद्यां भुज्यमानायां तदन्नं क्षयमेति च॥५॥
अथ यत्किञ्चिन्मात्रेणैकस्मिन्नव्ययात्मनि तर्पिते ततोऽन्येषामात्मनां तर्पणमप्यत्रैव संनिविशते। (वन०३)
ततः कदाचिद्दुर्वासाः सुखासीनाँस्तु पाण्डवान्।
भुक्त्वा चावस्थितां कृष्णां ज्ञात्वा तस्मिन् वने मुनिः॥१॥
अभ्यागच्छत् परिवृतः शिष्यैरयुतसंमितैः।
दृष्ट्वायान्तं तमतिथिं स च राजा युधिष्ठिरः॥२॥
विधिवत् पूजयित्वा तमातिथ्येन न्यमन्त्रयत्।
जगाम च मुनिः सोपि स्नातुं शिष्यैः सहानघः॥३॥
एतस्मिन्नन्तरे राजन् द्रौपदी योषितां वरा।
चिन्तामवाप परमामन्नहेतोः पतिव्रता॥४॥
सा चिन्तयन्ती च तदा नान्नहेतुमविन्दत।
मनसा चिन्तयामास कृष्णं कंसनिषूदनम्॥५॥
द्रौपद्याः संकटं ज्ञात्वा द्वारकास्थः स माधवः।
पार्श्वस्थां शयने त्यक्त्वा रुक्मिणीं केशवः प्रभुः॥६॥
तत्राजगाम त्वरितो ह्यचिन्त्यगतिरीश्वरः।
ततस्तामब्रवीत् कृष्णः क्षुधितोऽस्मि भृशातुरः॥७॥
शीघ्रं भोजय मां कृष्णे लज्जिता वाक्यमब्रवीत्॥८॥
स्थाल्यां भास्करदत्तायामन्नं मद्भोजनावधि।
भुक्तवत्यस्म्यहं देव तस्मादन्नं न विद्यते॥९॥
कृष्णे न नर्मकालोऽयं क्षुच्छ्रमेणातुरे मयि।
शीघ्रं गच्छ मम स्थालीमानयित्वा प्रदर्शय॥१०॥
स्थाल्याः कण्ठेऽथ संलग्नं शाकान्नं वीक्ष्य केशवः।
उपयुज्याब्रवीदेनामनेन हरिरीश्वरः॥११॥
विश्वात्मा प्रीयतां देवस्तुष्टश्चास्त्विति यज्ञभुक्।
आकारय मुनीन् शीघ्रं भोजनायेति चाब्रवीत्॥१२॥
ते चावतीर्णाः सलिले कृतवन्तोऽघमर्षणम्।
दृष्ट्वोद्गारान् सान्नरसान् तृप्त्या परमया युताः॥१३॥ (वन. २६१)

(४) निग्रहणी—ययायमगस्त्यऋषिर्विंध्यपर्वतं निजग्राह। यया श्रीकृष्णो जयद्रथवधे सायंकाले सूर्य्यं निजग्राह। यया कपिलमहर्षिः सगरपुत्रान् षष्टिसहस्रमितान्

सागरकूले निगृह्य भस्मसाच्चक्रे। यया नहुषो देवेन्द्रपदं प्राप्तोऽपि गौतमादिभिर्निगृहीतः सर्पोऽभूत्। नृगश्च राजा महर्षिशप्तः कृकलासोऽभूत्। राजा परीक्षिच्च शमीकपुत्रेण श्रृङ्गिणा शप्तस्तक्षकसर्पदंशात् प्राणाँस्तत्याज। च्यवनक्रोधाद्राज्ञः शर्य्यातेर्नगरे सर्वेषां मलमूत्रनिरोधोऽभूत्। विश्वामित्रक्रोधाद्हरिश्चन्द्रो राजा पीडितोऽभूत्॥

अनुग्रहणी—यया गौतमशापात् प्रस्तरभूताया अहल्यायाः शापोद्धारानुग्रहं स्वचरणस्पर्शेन चकार भगवान् रामचन्द्रः। यमलार्जुनवृक्षः कृष्णस्पर्शादनुगृहीतः। समुद्रे निमज्जतो भुज्युराजस्याश्विभ्यामुद्धरणमुक्तं वेदे॥

(५) पुत्रजननीयम्-या एता लोके बन्ध्याः स्त्रियः तासां पुत्रजननप्रतिबन्धका दोषाः शुक्रशोणितपितृनागग्रहादिभेदादष्टौ वैद्यैः स्मर्य्यन्ते। तेषामष्टानामपि दोषाणामेकेन यज्ञेनैव शक्यते निवृत्तिः कर्तुम्। यथा विभाण्डकसुत ऋष्यश्रृङ्गोऽयोध्यायां पुत्रेष्टियज्ञं संपाद्य चरुप्राशनेन दशरथपत्नीषु रामलक्ष्मणादींश्चतुरः पुत्रान् संभावयामास। ऋचीकमहर्षिकृतचरुभक्षणात् परशुरामविश्वामित्रयोरुत्पत्तिः द्रुपदस्य राज्ञो यज्ञाद् द्रौपदी जज्ञे धृष्टद्युम्नश्च। श्रद्धादेवस्य मनोर्यज्ञादिलाकन्या जज्ञे।

(६) प्रावृषेण्या-वृष्टिकरणीयं विद्या। अवग्रहकाले कारीरीष्ट्यादिभिर्वृष्टिः शक्यते कर्तुम्। यथा विभाण्डकपुत्र ऋष्यश्रृङ्गः समागत्यायोध्यायां जलं वर्षयामास।

(७) आपोनप्त्रीयम् अपां नानारूपाणि यत्र तत्र भिधन्ते अम्भो मरीचिर्मरः श्रद्धारस इत्यादीनि। सूर्य्यादूर्ध्वप्रदेशे प्रत्युत्पन्नं सर्वजगदव्यापकमुदकमदृश्यरूपमम्भः। सूर्य्यरश्मौ मरीचिः। मृत्तिकात्वे मरः। चन्द्ररश्मौ श्रद्धा। एवं वायौ रसः। तत्र या इमा रसात्मिका आपो वायौ नित्यं तारतम्येनाहिता भवन्ति। त इमे रसा अहरहः पृथिव्यां प्रत्यर्थमुपसीदन्ति। तेषां संग्रहणविज्ञानाद् यथेच्छं यत्र तत्र निर्जलेऽपि देशे वायुतः प्रतिमूर्च्छनया जलान्युपार्जयितुं शक्यन्ते। तत्प्रकारश्च वेदे आपोनप्त्रीयसूक्ते सुविशदं प्रदर्शितः। पुरात्वे खलु कवष ऐलूषः प्राचीसरस्वतीकूले सत्रमातिष्ठमानैर्ब्राह्मणैर्निराकृतो मरुधन्वप्रदेशं प्रापितः सन्नेतया विधया वायोर्भूयांसि जलान्याविष्कुर्वन् परिसारकनदीं जनयामास।

(८) मधुविधा-मधुमक्षिकायाः मधुकोशमिवैतत् सूर्य्यमण्डलं भावयित्वा तद्रश्मिसूत्रैरधः परिस्रुतानां मधुबिन्दूनां परिग्रहणं मधुविद्या। मधुशब्दोऽयमुपलक्षणं दधिघृतामृतानाम्। येन पृथिव्याः शरीरं संगठितं कठिनं वाऽन्यत् किञ्चिद् भवति। स सूर्य्यरसो दधि कथ्यते, येनान्तरिक्षस्वरूपं संपद्यते तद् घृतम्। येन दिव्यस्तन्मधु। येन दिव ऊर्ध्वं तदमृतम्। चत्वारोऽप्येते भावा अहरहः सूर्य्यात् पृथिव्यामस्यां परिवर्षन्ति तेषां परिवर्षणक्रमविज्ञानाद्बहवोऽर्था यथेच्छं

साधयितुं शक्यन्ते। दधन्युपादाने घृतमधुनोः संश्लेषणयोर्योगादनेकभावोत्पत्ति-संभवात्। तामिमां मधुविद्यां दध्यङ्ङाथर्वणो जानाति स्म। ततोऽश्विनौ च।

आठ मन्त्र-बल-सिद्धियां

(१) **सर्पाकर्षिणी** : सर्पाकर्षिणी विद्या द्वारा दूर-स्थित सर्पों को मन्त्रबल से इच्छित स्थान पर आकर्षित किया जाता है, पकड़ लिया जाता है और विषहीन कर दिया जाता है। जैसे जनमेजय के नागयज्ञ में याजकों ने प्रदीप्त अग्नि में सर्पों को हवन कर दिया। महाभारत में लिखा है—

"कुछ सर्प कोस भर अथवा योजन प्रमाण की लम्बाई के थे, कुछ गोकर्ण की आकृति वाले थे। ऐसे सर्प तीव्र गति से हवि प्रदीप्त अग्नि में आकर गिरने लगे॥१॥

बहुत से सर्प लम्बे थे और बहुत से छोटे, अनेक वर्णों से युक्त तथा घोर विषधारी, विशाल लोहे की छड़ अथवा अर्गला के समान मोटे और बलशाली सर्प जनमेजय के सर्पयोग में अग्नि में आकर गिरने लगे॥२॥ (भारत ५२)

(२) **अग्निस्तम्भिनी विद्या** : जिसमें प्रदीप्त अग्नि मन्त्रबल द्वारा ठंडी कर दी जाती है। इस मंत्र से शीतल की गई अग्नि में प्रवेश करने पर भी मनुष्य जलता नहीं है। यह अग्निस्तम्भ तीन प्रकार से होता है — सत्य से, मन्त्र से तथा मणि से। सत्य से—जैसे धर्माधिकारी द्वारा अपराधी पुरुष की दिव्य परीक्षा से हाथ में रखी हुई अग्नि से परीक्षा करता है। जैसे लंका में सत्य से अग्नि में प्रवेश करने पर सीता की परीक्षा की गई॥१॥

मन्त्र से — जैसे राजा नल मन्त्र से अग्नि को शीतल कर देते थे। महाभारत में लिखा है—केशिनी कहती है —हे शुभे! मैंने उस राजा नल में और भी अनेक बहुत से आश्चर्य देखे हैं। यह कि वह राजा अग्नि का स्पर्श करने पर जलता नहीं है॥(भा.व. ७५) मंत्र-शास्त्र में कहा गया है कि गांव में आग लग जाये और घास फूस के घरों को जलाती हुई अग्नि का यदि स्तम्भन कर दिया जाये तो वह अन्य घरों को नहीं जलाता है॥२॥ चन्द्रकान्त मणि दो प्रकार की होती है, एक ओषधि और दूसरा पत्थर। उस सम्बन्ध में ये श्लोक द्रष्टव्य हैं—

जिस पेड़ पर अमर बेल फैली हुई हो, उस वृक्ष के नीचे की भूमि के अन्दर छिपी हुई उस लता की मुख्य जड़ को खोजना चाहिये॥१॥ वृक्ष के नीचे चारों ओर फैले हुए पत्तों को इकट्ठा करके अग्नि जलावें। जिस स्थान पर वह नहीं जले, उसी स्थान पर उस लता की जड़ समझनी चाहिये। वह जड़ अत्यन्त शीतल होती है और इसी को चन्द्रकान्त मणि कहा जाता है। इस जड़ को साथ रखने से अग्नि ठंडी हो जाती है और फिर वह मनुष्य को जलाती नहीं है॥३॥ उस कन्द के रस से लेप किये गये हाथों में अग्नि रखी जा

सकती है। इसके रस का शरीर पर लेप कर लेने पर बिना कष्ट के मनुष्य अग्नि में प्रवेश कर सकता है ॥४ ॥

इसी प्रकार चन्द्रकान्त मणि पत्थर (हीरा) भी होता है। वह अत्यन्त शीतल पत्थर होता है, जो पास में रखने मात्र से ही अग्नि को ठंडा कर देता है। उसे पास में रखकर अग्नि का स्पर्श करने पर अग्नि जलाता नहीं है। चन्द्रकान्तमणि के पास में रहते हुए भी यदि सूर्यकान्तमणि को भी पास में रख दिया जाये तो वह अग्नि फिर से जलाने लग जाती है। सूर्यकान्तमणि की गर्मी चन्द्रकान्तमणि से उत्पन्न शीतलता को समाप्त कर देती है ॥२ ॥

(३) **अक्षय्यकरणी** : यह वह विद्या है, जिसके द्वारा घर के बरतनों में रखा हुआ अन्न हजारों लोगों के द्वारा भोजन किये जाने पर भी समाप्त नहीं होता है। प्राचीनकाल में सूर्य की आराधना करते हुए युधिष्ठिर द्वारा सूर्य से एक पात्र (बरतन) प्राप्त किया गया, जिसके प्रभाव से अन्न के अक्षय भण्डार हो गये थे। महाभारत में कहा गया है :—

हे राजन् ! मैं तुमको यह ताम्रपात्र देता हूँ। इसे स्वीकार करो। हे सुव्रत ! इस पात्र से द्रौपदी जब तक स्वयं बिना खाये परोसती रहेगी तब तक इस पात्र द्वारा कन्द, मूल, फल तथा भोजन योग्य अन्य पदार्थ और शाक तथा चार प्रकार की भोजनसामग्री पकायेगी, तब तक वह अक्षय बनी रहेगी ॥२ ॥

इस पात्र में तैयार की गई चार प्रकार की थोड़ी सी भी अन्नसामग्री बढ़ जाती है और अक्षय रहती है। उसी से पाण्डव ब्राह्मणों को भोजन कराने लगे ॥३ ॥

ब्राह्मणों के भोजन कर लेने पर अपने अनुजों को भोजन करा कर "विघस" संज्ञक अवशिष्ट अन्न को युधिष्ठिर सबसे बाद में भोजन करते थे ॥४ ॥

युधिष्ठिर को भोजन कराके अवशिष्ट अन्न को स्वयं पांचाली खाती थी। द्रौपदी के भोजन कर लेने पर उस पात्र का भोजन समाप्त हो जाता था ॥५ ॥ (वन. ३)

यत्किंचित मात्र अन्न से किसी एक आत्मा के तृप्त हो जाने पर समस्त प्राणी मात्र का तृप्त हो जाना भी इसी में सन्निविष्ट है। महाभारत में लिखा है —

हे राजन ! तदन्तर एक दिन महर्षि दुर्वासा इस बात का पता लगाकर कि पाण्डव का भोजन करके सुखपूर्वक बैठे हैं और द्रोपदी भी भोजन से निवृत्त होकर आराम कर रही है, अपने दस हजार शिष्यों से घिरे हुए वन में आये। तब युधिष्ठिर ने अतिथि को आते हुए देखकर, विधिवत् पूजा करके, अतिथिसत्कार के लिए निमंत्रित किया। तब से निष्पाप मुनि अपने शिष्यों के साथ स्नान करने के लिए चले गये ॥१-३ ॥

हे राजन् ! इस समय युवतियों में श्रेष्ठ, पतिव्रता द्रौपदी अन्न के लिए बड़ी चिन्तित हुई ॥४ ॥

जब बहुत सोचने विचारने परभी उसे अन्न मिलने का कोई उपाय नहीं मिला, तब वह मन ही मन कंसनिकन्दन भगवान् श्री कृष्ण का स्मरण करने लगी ॥५॥

उन भगवान् कृष्ण ने द्रौपदी पर आये संकट को जानकर, समीप में शय्या पर शयन करती हुई रुक्मिणी को छोड़कर तुरन्त वहाँ आ गये ॥६॥

अचिन्त्यगति परमेश्वर शीघ्र ही वहाँ आ गये और द्रौपदी से बोले - इस समय मुझे भूख लगी है, मैं भूख से पीड़ित हो रहा हूँ। श्रीकृष्ण बोले-हे द्रौपदी! मुझे पहले जल्दी से भोजन कराओ। अन्य कार्य बाद में करना। श्रीकृष्ण की यह बात सुनकर द्रौपदी बड़ी लज्जित हुई और बोली-हे भगवान् ! सूर्यनारायण के दिये हुये पात्र में तभी तक भोजन मिलता है, जब तक मैं भोजन नहीं कर लूँ। हे देव ! आज तो मैं भी भोजन कर चुकी हूँ। इसलिए उसमें अन्न नहीं है ॥७-९॥

तब कृष्ण बोले — हे द्रौपदी ! मैं तो भूख और थकान से आतुर हो रहा हूँ। यह हंसी करने का समय नहीं है। अत: शीघ्र जाओ और बटलोई (पात्र) लाकर मुझे दिखाओ ॥१०॥

इस प्रकार उस बटलोई को देखकर उसके गले में लगे हुए जरा से साग को देखकर श्रीकृष्ण ने उसे खा लिया और द्रौपदी से बोले - इस साग से सम्पूर्ण विश्व की आत्मा, यज्ञभोक्ता, सर्वेश्वर भगवान् श्री हरि तृप्त और सन्तुष्ट हों॥ इतना कहकर श्री कृष्ण बोले-शीघ्र जाकर मुनियों को भोजन के लिए बुला लाओ ॥११-१२॥

वे मुनि लोग उस समय जल में उतर कर "अघमर्षण" मन्त्र का जप कर रहे थे। तभी सहसा उन्हें पूर्ण तृप्ति का अनुभव हुआ, बार-बार अन्न रस से युक्त डकारें आने लगीं ॥१३॥(महा.भा.वन. २६२)

(४) **निग्रहणी विद्या** : जिस निग्रहण विद्या से अगस्त्य ऋषि ने विन्ध्याचल को रोक कर रखा था। जिससे श्री कृष्ण ने जयद्रथ वध के समय सायंकाल में सूर्य को रोक दिया था। जिससे कपिल मुनि ने समुद्र के किनारे राजा सगर के साठ हजार पुत्रों को निगृहीत करके भस्म कर दिया था। जिससे राजा नहुष देवराज इन्द्र के पद को प्राप्त करके भी गौतम इत्यादि ऋषियों के द्वारा दमन किये जाने पर सर्प बन गया था और राजा नृग महर्षि के शाप से गिरगिट बन गया था। राजा परीक्षित् शमीकपुत्र श्रृंगि के शाप वश तक्षक नाग द्वारा डसे जाने पर मृत्यु को प्राप्त हुआ। च्यवन ऋषि के क्रोध के कारण राजा शर्याति के नगर में समस्त नगरवासियों का मल-मूत्र रुक गया था। विश्वामित्र के क्रोध से राजा हरिश्चन्द्र पीड़ित हुआ।

(५) **अनुग्रहणी विद्या** —जिसके द्वारा गौतम ऋषि के शाप के कारण पाषाण रूपा अहिल्या को भगवान् ने अपने चरणों के स्पर्श से अनुगृहीत किया। यमलार्जुन नाम के दो वृक्ष

भगवान् कृष्ण के स्पर्श से अनुगृहीत हुये। समुद्र में डूबते हुए भुज्यु के राज्य का अश्वारोहियों द्वारा उद्धार हुआ, ऐसा वेद में उल्लेख किया गया है।

(५) **पुत्रजननी** : संसार में वन्ध्या स्त्रियाँ के आठ प्रकार के शुक्र, शोणित, पितृ और नाग इत्यादि पुत्रजनन-प्रतिबन्धक दोष वैद्यों के द्वारा बताये गये हैं। उन आठों दोषों का एक ही पुत्रेष्टियज्ञ के द्वारा निराकरण किया जा सकता है। जैसे विभाण्डक के पुत्र ऋष्यश्रृंग ने अयोध्या में पुत्रेष्टि करके चरुरूप प्रसाद के भोजन के द्वारा दशरथ की पत्नियों में राम लक्ष्मणादि पुत्रों को उत्पन्न करवाया। ऋचीक महर्षि कृत चरुभक्षण से विश्वामित्र और परशुराम की उत्पत्ति हुई। द्रुपद राजा के यज्ञ करने पर ही द्रौपदी और धृष्टद्युम्न पैदा हुए। श्रद्धादेव मनु के द्वारा किये गये यज्ञ से ही उनकी पुत्री इला की उत्पत्ति हुई।

(६) **प्रावृषेण्या** : यह वर्षा कराने वाली विद्या है। अकाल के समय करीरि नाम के यज्ञ से वर्षा करना सम्भव है। जैसे विभाण्डक के पुत्र ऋष्यश्रृंग ने अयोध्या में आकर जल की वर्षा की थी।

(७) **आपोनप्त्रीय विद्या** : जल के समय समय पर अनेक भेद किये गये हैं। यथा, अम्भः, मरीचिः मरः और श्रृद्धारसः इत्यादि। सूर्य से ऊपर के भाग में उत्पन्न अथवा व्याप्त जल अम्भः कहलाता है। सूर्य की किरणों में व्याप्त जल मरीचिः, मृत्तिका में व्याप्त जल मरः तथा चन्द्रमा की किरणों में श्रद्धा नाम का जल है तथा वायु में व्याप्त जल को रस कहा जाता है। ये जो रसात्मिका आपः है, वे वायु में न्यूनाधिक रूप से तारतम्य से नित्य रहती हैं। ये ही रस पृथ्वी पर प्रतिक्षण प्रत्येक व्यक्ति और वस्तु में प्राप्त होते रहते हैं। इन रसों के संग्रहण-विज्ञान से इच्छानुसार जलहीन प्रदेश में भी वायु को मूर्च्छित करने की विद्या से जल की पूर्ति की जा सकती है। इस विद्या की अनेक विधियां वेदों में आपोनप्त्रीय विद्या सूक्त में सविस्तार चित्रित की गई हैं। प्राचीनकाल में कवष-एलूष ने पूर्व सरस्वती के किनारे आयोजित यज्ञ में एकत्रित ब्राह्मणों द्वारा तिरस्कृत होने पर मरुधन्व प्रदेश में जाकर इसी प्रतिमूर्च्छना विद्या के द्वारा वायु से प्रचुर मात्रा में जल आविष्कृत करते हुए परिसारक नदी को उत्पन्न किया॥

(८) **मधुविद्या** : सूर्यमण्डल में मधुमक्खी के छते की भावना करके सूर्य की किरणों के नीचे टपकती हुई मधु की बूंदों को एकत्रित करना ही मधुविद्या है। यहां मधु शब्द तो एक उपलक्षण मात्र है। मधु शब्द से तात्पर्य घी, अमृत, दही इत्यादि से लेना चाहिये॥ जिस तत्त्व से पृथ्वी का शरीर (पृष्ठ भाग) कठोर होकर संगठित होता है, उसे दधि कहा जाता है। जिस तत्त्व से अन्तरिक्ष का स्वरूप बनता है, वह घृत तत्त्व है और जिससे द्युलोक की सृष्टि हुई है, वह मधु है। और जिससे द्युलोक के भी ऊर्ध्व भाग की सृष्टि हुई है, वह अमृत तत्त्व है। इन चारों ही भावों की प्रतिदिन सूर्यमण्डल से इस पृथ्वी लोक पर वर्षा होती है, उन तत्त्वों की वर्षा के क्रम को जान लेने पर अनेक तत्त्वों की इच्छानुसार

सिद्धि की जा सकती है। दधि का उपादान करके घी और मधु के संश्लेषण के योग से अनेक भावों की उत्पत्ति सम्भव हो सकती है। इस मधुविद्या को "दध्यङ्ङ्थर्वण ऋषि" जानते थे, उनसे अश्विनीकुमारों ने सीखी॥

आगमीयमन्त्रबलसिद्धयोऽष्टौ।

अथ मारणमोहनोच्चाटनवशीकरणविद्वेषणस्तम्भनाकर्षणादयो मन्त्रशास्त्रोक्ताः सिद्धयः पुरश्चरणानुष्ठानपूर्वकप्रयोगसाधिताः शारदातिलकमन्त्रमहोदधितन्त्र-सारादिग्रन्थेभ्यो विज्ञेयाः।

(६) मन्त्रबल से प्राप्त की जाने वाली आठ आगमीय सिद्धियाँ

मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण, विद्वेषण, स्तम्भन, आकर्षण, इत्यादि विद्याएँ मन्त्रशास्त्र में बताई गई सिद्धियाँ हैं, जिनको पहले तत्तत् मन्त्रों को पुरश्चरण अनुष्ठान के द्वारा सिद्ध किया जाये, तत्पश्चात् उनका प्रयोग सफल होता है। ये सिद्धियाँ तन्त्रशास्त्र यथा "शारदातिलक", "मन्त्रमहोदधि", और "तन्त्रसार" इत्यादि ग्रन्थों में लिखी हैं॥

महौषधिबलसिद्धयोऽष्टौ।

(१) मृतसंजीवनी—इयं महौषधिरभिमन्त्रिता सती स्वप्रभावेण मृतानामपि प्राणिनां शरीरं पुनः प्राणेन संयोज्य पुनरुज्जीवितं तदुत्थापयति। यथा शुक्रः पुरात्वे देवासुरसंग्रामेऽहरहर्मृतानामप्यसुराणां मृतसञ्जीवन्योषधिप्रभावेणाहरहर्जीव-यति स्म। यथा वा बृहस्पतिपुत्रः कचः शुक्रशिष्यैरसुरैर्भूयो भूयो व्यापादितोऽपि संजीवन्या विद्यया शुक्रेण पुनरुज्जीवितोऽभूत्॥१॥ वेनाङ्गुष्ठमथनेन पृथुः पुत्रो जनित इति सेयं विद्यापि मृतसंजीवन्यां विद्यायां संनिविशते।

(२) संजीवकरणी—इयमोषधिर्मूर्च्छया नष्टसंज्ञानां तत्क्षणात् पुनश्चैतन्योत्पादनायोप-युज्यते।

श्रुत्वा तद्वानरेन्द्रस्य सुषेणो वाक्यमब्रवीत्।
देवासुरमहायुद्धमनुभूतं पुरातनम्॥१॥
तदा स्म दानवा देवान् शरैर्जघ्नुर्मुहुर्मुहुः।
तानार्तान्नष्टसंज्ञांश्च गतासूंश्च बृहस्पतिः॥२॥
विद्याभिर्मन्त्रयुक्ताभिरोषधीभिश्चिकित्सति।
तान्यौषधान्यानयितुं क्षीरोदं यान्तु सागरम्॥३॥
हरयस्तु विजानन्ति पार्वती ते महौषधी।
संजीवकरणीं दिव्यां विशल्यां देवनिर्मिताम्॥४॥
चन्द्रश्च नाम द्रोणश्च क्षीरोदे सागरोत्तमे।
अमृतं यत्र मथितं तत्र ते परमौषधी॥५॥ (यु०५०)
समीपस्थमुवाचेदं हनुमन्तं महाकपिम्।

सौम्य शीघ्रमितो गत्वा पर्वतं हि महोदयम् ॥६ ॥
दक्षिणे शिखरे जातां महौषधिमिहानय।
विशल्यकरणीं नाम्ना सावर्ण्यकरणीं तथा ॥७ ॥
संजीवकरणीं वीरसंधानीं च महौषधिम्।
संजीवनार्थं वीरस्य लक्ष्मणस्य स्वमानय ॥८ ॥
ततः संक्षोदयित्वा तामोषधीं वानरोत्तमः।
लक्ष्मणाय ददौ नस्तः सुषेणः परमौषधिम् ॥९ ॥
स तस्य गंधमाघ्राय सशल्यो लक्ष्मणस्तदा।
विशल्यो विरुजः शीघ्रमुदतिष्ठन्महीतलात् ॥१० ॥

(वा०रामायणे यु० १०२)

(३-४) विशल्यकरणी-इयं महोषधिः सावर्ण्यकरणी च नियुद्धे शस्त्रास्त्रविहतानां तत्क्षणादेकरात्रेण नैरुज्योत्पादनेन पुनर्युद्धयोग्यतासंपादनार्थमुपयुज्यते। भीष्म-परशुरामयुद्धे त्रिसप्ताहकालिकेऽहरहर्विक्षतयोर्मूर्च्छामागतयोरपि तयोः पुनर्द्वितीयेऽहनि पूर्ववद् बलोत्साहौ सज्जता च स्मर्य्यन्ते ॥१ ॥ छिन्नांगोद्भावनमप्यत्रैव संनिविशते। तच्च विच्छिन्नानामसतामङ्गानां सूर्य्यरश्मिप्रभावेण पुनरुत्पादनम्। यथा सुद्युम्नेन राज्ञा स्तेयदण्डरूपेण लिखितस्य ऋषेर्हस्ते छिन्ने पुनः शंख ऋषिः सैतवाहिन्यां नद्यां संस्नाप्य पूर्ववत् तद्बाहुमुत्पादयामास।

(५) संधानकरणी-विच्छिन्नाङ्गसंधानायोपयुज्यते। यथा ग्रीवातिरिक्तानामङ्गानां शस्त्रच्छिन्नानां संश्लेषणद्रव्यसंयोगं विनैव देवराज इन्द्रः संधत्ते स्मेति ऋग्वेदसंहितायामाख्यातम्। "य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः। सन्धाता सन्धिं मघवा पुरूवसुरिष्कर्ता विह्रुतं पुनः"—(ऋ० ।१ ।१२)
मधुविद्यां ब्रुवतः शिरश्छेत्स्यामीति देवराजेनोक्ते तां शिक्षितुमादावेवाश्विनौ दधीचस्य शिरश्छेदं कृत्वा शिरः संयोज्य हयशिरसो दधीचीन्मधुविद्यामुपलेभाते। अथ देवेन्द्रेणाश्वशिरसि विच्छेदिते पुनराश्विभ्यां तदीयं पौर्विकं शिरो यथावत् संयोजितमिति प्रसिद्धमितिहासेषु।.

(६) अरिष्टभैषज्या नाम योगविद्यानुगृहीता महौषधिः। यया सौभरिणा राजकन्यानां शतमितानां कुब्जानां स्वहस्तास्फालनेन कुब्जत्वं निरस्तम् ॥२ ॥ लङ्कायां मेघनादेन युद्धे शरबन्धविक्षतयो रामलक्ष्मणयोर्गरुडोऽकस्मादाकाशादुपेत्य स्वाङ्गस्पर्शेन सर्वाङ्गव्रणशोधनं कृत्वा निर्व्रणत्वं नैरुज्यं च संपादयामास।
"ततः सुपर्णः काकुत्स्थौ स्पृष्ट्वा प्रत्यभिनन्द्य च।
विममर्श च पाणिभ्यां मुखे चन्द्रसमप्रभे ॥१ ॥
वैनतेयेन संस्पृष्टास्तयोः संरुरुहुर्व्रणाः।

सुवर्णे च तनू स्निग्धे तयोराशु बभूवतुः ॥२॥
तेजोवीर्य्यं बलं चौज उत्साहश्च महागुणाः।
प्रदर्शनं च बुद्धिश्च स्मृतिश्च द्विगुणा तयोः" ॥३॥

इति रामायणे (यु. ५०)

(७) डिम्भप्रसविनी-यथा सगरमहाराजस्य षष्टिसहस्राणि पुत्राणां, धृतराष्ट्रस्य च शतं पुत्राणामौषधिप्रभावादुदपद्यन्त। डिम्भमेकं खण्डशः कृत्वा तान् खण्डान् घृतकलशे महौषधिघृताढ्ये निक्षिप्य कैश्चिन्मासैः परिपक्वांस्तान् गर्भांस्ततः प्रादुर्भावयामासुर्महर्षयः।

"कनिष्ठा सुषुवे तुम्बीं बीजपूर्णामिति श्रुतिः।
तत्र षष्टिसहस्राणि गर्भास्ते तिलसंमिताः ॥१॥
घृतपूर्णेषु कुम्भेषु तान् गर्भान्निदधे ततः।
ततो दशसु मासेषु समुत्तस्थुर्यथाक्रमम् ॥२॥
कुमारास्ते यथाकालं सगरप्रीतिवर्द्धनाः।
संबभूवुर्यथाकालं ववृधुश्च यथासुखम्" ॥३॥ (ब्रह्म पु. अ. ६)

(८) बलातिबले—मन्त्रयुक्ते महौषधी एते। यथोक्तं रामायणे वाल्मीकीये(बाल.२२)

"गृहाण वत्स सलिलं माभूत् कालस्य पर्य्ययः।
मन्त्रग्रामं गृहाण त्वं बलामतिबलां तथा ॥१॥
बला चातिबला चैव सर्वज्ञानस्य मातरौ।
एतद्विद्याद्वये लब्धे न भवेत् सदृशस्तव ॥२॥
न श्रमो न ज्वरो वा ते न रूपस्य विपर्य्ययः।
न च सुप्तं प्रमत्तं वा धर्षयिष्यन्ति नैर्ऋताः ॥३॥
न बाह्वोः सदृशो वीर्य्ये पृथिव्यामस्ति कश्चन।
त्रिषु लोकेषु वा राम न भवेत् सदृशस्तव ॥४॥
न सौभाग्ये न दाक्षिण्ये न ज्ञाने बुद्धिनिश्चये।
नोत्तरे प्रतिवक्तव्ये समो लोके तवानघ ॥५॥
बलामतिबलां चैव पठतस्तात राघव।
क्षुत्पिपासे न ते राम भविष्येते नरोत्तम ॥६॥
विद्याद्वयमधीयाने यशश्चाथ भवेद् भुवि।
पितामहसुते ह्येते विद्ये तेजःसमन्विते ॥७॥
ततो रामो जलं स्पृष्ट्वा प्रहृष्टवदनः शुचिः।
प्रतिजग्राह ते विद्ये महर्षेर्भावितात्मनः" ॥८॥

आठ महौषधि-बल सिद्धियां

(१) मृतसंजीवनी : यह संजीवनी नाम की महौषधि है जो अभिमन्त्रित की जाने पर अपने प्रभाव से मरे हुए प्राणियों के शरीर को पुनः प्राणों से युक्त करके पुनर्जीवित करके खड़ा कर देती है। जैसे प्राचीनकाल में देवासुर संग्राम के समय प्रतिदिन मरे हुए असुरों को मृतसंजीवनी ओषधि के प्रभाव से असुरगुरु शुक्राचार्य प्रतिदिन जीवित कर देते थे। अथवा जैसे बृहस्पति के पुत्र कच शुक्राचार्य के शिष्य असुरों द्वारा पुनः पुनः मार दिये जाने पर भी संजीवनी विद्या से शुक्राचार्य ने पुनर्जीवित कर दिया। वेन राजा के अंगूठे को मथने से उसके पृथु नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। इस प्रकार की विद्या भी मृतसंजीवनी विद्या में ही समझनी चाहिये।

(२) संजीवनी विद्या : यह औषधि मूर्च्छा के कारण जिसकी चेतना नष्ट हो गई हो ऐसे व्यक्ति को तत्काल पुनः चेतना उत्पन्न करा देती है। "वाल्मीकिरामायण" में उल्लिखित है—

वानरराज सुग्रीव की बात सुनकर सुषेण ने कहा — पूर्व काल में जो देवासुर संग्राम हुआ था, उसे हमने देखा था ॥१ ॥

तब उन समस्त कुशल देवताओं को दानवों ने बारंबार बाणों से घायल कर दिया था। उस युद्ध में जो देवता शस्त्रास्त्र से पीड़ित, अचेत और प्राणशून्य हो जाते थे, उन सबकी रक्षा के लिए बृहस्पति ने मन्त्रयुक्त विद्याओं तथा दिव्य औषधियों से उन देवताओं की चिकित्सा की और बोले कि ओषधियों को लाने के लिए शीघ्र ही क्षीर सागर के तट पर जाओ ॥२-३ ॥

समस्त वानर वहाँ पर्वत पर प्रतिष्ठित दो प्रसिद्ध महौषधियों को जानते हैं, जो देवनिर्मित हैं। उनमें से एक का नाम संजीवकरणी और दूसरी का नाम विशल्यकरणी है ॥४ । ।

समस्त सागरों के मध्य क्षीर सागर के तट पर चन्द्र और द्रोण नामक दो पर्वत हैं, जहाँ पूर्वकाल में अमृतमंथन किया गया था। उन्हीं दोनों पर्वतों पर ये श्रेष्ठ औषधियाँ हैं ॥५ ॥(यु.५०)

सुषेण ने समीप में खड़े हुए हनुमान् जी से कहा, हे सौम्य ! तुम शीघ्र ही यहाँ महोदय शिखर पर जा कर उस दक्षिण शिखर पर उगी हुई विशल्यकरणी, सावर्ण्यकरणी, संजीवकरणी तथा संधानी नाम की प्रसिद्ध औषधियों को यहाँ ले आओ । हे वीर ! उन्हीं से वीरवर लक्ष्मण के जीवन की रक्षा होगी ॥६,७,८ ॥

महातेजस्वी कपिश्रेष्ठ सुषेण ने उस औषधि को कूट पीस कर लक्ष्मण जी की नाक में चढ़ा दिया ॥९ ॥

लक्ष्मण के सारे शरीर में बाण धंसे हुए थे। उस अवस्था में उस औषधि को सूंघते ही उनके शरीर से बाण निकल गये और वे रोगरहित होकर शीघ्र ही भूमितल से खड़े हो गये ॥१० ॥ (वा.रामा.यु.१०२)

(३-४) **विशल्यकरणी** : विशल्यकरणी तथा सावर्ण्यकरणी नामक ओषधियां युद्ध में शस्त्रास्त्र से घायल योद्धाओं को उसी समय अथवा एक रात्रि में रोगरहित करके पुनः युद्ध करने योग्य बनाने के लिए उपयोगी हैं। भीष्म और परशुराम के युद्ध में तीन सप्ताह तक प्रतिदिन घायल अथवा मूर्च्छावस्था को प्राप्त होने पर भी वे दोनों पुनः दूसरे दिन पूर्ववत् बल और उत्साह से युक्त हो जाते थे, ऐसा स्मरण किया जाता है ॥१ ॥ टूटे हुए अंगों के स्थान पर पुनः नये अंगों को उत्पन्न करना भी इसी में सन्निविष्ट है। इस विद्या में टूटे हुए अंगों को सूर्य की किरणों के प्रभाव से नया अंग उगा दिया जाता है। जैसे राजा सुद्युम्न के द्वारा चोरी के अपराध पर दण्ड के रूप में "लिखित" मुनि के हाथों के टूट जाने पर "शंख" मुनि से सौतवाहिनी नदी में स्नान करा कर पुनः पहले जैसा हाथ उत्पन्न करा दिया।

(५) **संधानकरणी** : टूटे हुए अंगों को जोड़ने में यह ओषधि उपयोग में लाई जाती है। जैसे ऋग्वेद में उल्लेख है कि इन्द्र ने बिना किसी चिपकाने वाले पदार्थ के ही शस्त्र से कटे हुए ग्रीवा के अतिरिक्त अंगों को जोड़ दिया था। ऋग्वेद में लिखा है-जिस इन्द्र ने पट्टी के बिना भी गर्दन से खून निकलने से पूर्व ही उस घाव की सन्धियों को जोड़ दिया था, वही ऐश्वर्यवान् तथा धन रखने वाला इन्द्र घाव को फिर सुधार देता है ॥१२ ॥ (८/१/१२)

मधुविद्या को बताते हुए शिरश्छेदन कर दूंगा, इस प्रकार देवराज इन्द्र के कहने पर अश्विनी कुमारों ने उस मधुविद्या को सीखने से पहले दधीचि ऋषि का मस्तक काट कर घोड़े का सिर लगाकर हयमुख दधीचि से मधुविद्या प्राप्त की। तत्पश्चात् इन्द्र के द्वारा घोडे व सिर काट दिये जाने पर पुनः अश्विनी कुमारों ने दधीचि का पहले का सिर पूर्ववत् जोड़ दिया, ऐसी कथा इतिहास पुराणों में प्रसिद्ध है।

अरिष्टभैषज्या नाम की योगविद्या द्वारा प्राप्त महौषधि है। जैसे सौभरि ऋषि ने सौ राजकन्याओं के कूबड़ अपना हाथ फेरने से दूर कर दिये ॥२ ॥ युद्ध के समय राम और लक्ष्मण मेघनाद के बाणों से जब क्षतविक्षत हो गये तो अचानक अकाशमार्ग से आकर गरुड ने अपने अंग के स्पर्श से समस्त अंगों के घावों को ठीक करके घाव रहित और स्वस्थ बना दिया॥ रामायण में लिखा है —

"तत्पश्चात् गरुड ने उन दोनों रघुवंशी बन्धुओं का स्पर्श करके अभिनन्दन किया और अपने हाथों से उनके चन्द्रमा के समान कान्तिमान् मुख को पोंछा ॥१ ॥

गरुड का स्पर्श प्राप्त होते ही श्रीराम और लक्ष्मण के सारे घाव भर गये और उनके शरीर तत्काल ही सुन्दर कान्ति से युक्त एवं स्निग्ध हो गये ॥२ ॥

उनमें तेज, वीर्य, बल, ओज और उत्साह, दृष्टिशक्ति, बुद्धि और स्मरण शक्ति आदि महान् गुण पहले से भी दुगने हो गये ॥३ ॥ (रामा.यु.५०)

डिम्भप्रसविनी : जैसे राजा सगर के साठ हजार पुत्र और राजा धृतराष्ट्र के सौ पुत्र औषधि के प्रभाव से उत्पन्न हुए। इस विद्या में महर्षियों ने एक डिम्भ को अनेक टुकड़ों में विभक्त करके उन टुकड़ों को घृतकलश में डिम्भप्रसविनी ओषधि के घी से परिपूर्ण कलश में रखकर कुछ महिनों में पके हुए उन डिम्भ खण्डों को महर्षियों ने उत्पन्न किया॥ ब्रह्म पुराण में लिखा है—

"छोटी रानी ने एक बीज युक्त तुम्बी को उत्पन्न किया, जिसके तिनके के समान साठ हजार गर्भ थे, उनको घृतकलशों में रखा गया । यथाक्रम, यथासमय, दस महिनों में वे राजा सगर की प्रीति बढ़ाने वाले पुत्र उत्पन्न हुये और सुखपूर्वक बढ़ने लगे॥३॥ (ब्र.पु.६)

बलातिबला ओषधि : बल और अतिबल नामकी ये ओषधियाँ मन्त्र युक्त हैं। जैसा कि वाल्मीकिरामायण में लिखा है :—

विश्वामित्र ऋषि श्री रामचन्द्र जी से कहते हैं — हे वत्स! आचमन ग्रहण करो। समय व्यर्थ मत करो। अब तुम बला तथा अतिबला ओषधियाँ और मन्त्रसमूह प्राप्त करो॥१॥

ये बला और अतिबला विद्यायें समस्त विद्याओं की मातायें हैं। इन दोनों विद्याओं को प्राप्त कर लेने पर आपके समान पराक्रमी कोई नहीं होगा॥२॥

इनके प्राप्त कर लेने पर न तुम्हें थकान का अनुभव होगा, न ज्वर पीड़ित करेगा और न ही तुम्हारा रूप बदलेगा और न ही राक्षसगण तुम्हें सोते हुए अथवा प्रमादावस्था में भी दबा सकेंगे॥३॥

इस सम्पूर्ण पृथ्वी पर तुम्हारी भुजाओं के समान शक्ति-सम्पन्न कोई नहीं होगा। तथा हे राम! तीनों लोकों में तुम्हारा जैसा कोई नहीं होगा॥४॥

हे निष्पाप! इस लोक में न कोई आपके समान सौभाग्यशाली होगा, न चातुर्य में, न ज्ञान में, न बुद्धि में, न निश्चय में न प्रत्युत्तर देने में आपके समान कोई होगा॥५॥
हे तात राघव ! बला और अतिबला ओषधियों को पढ़ते हुए हे राम ! हे नरोत्तम! आपको भूख और प्यास का अनुभव नहीं होगा॥६॥

इन दोनों विद्याओं को पढ़ते हुए लोक में आपके यश की वृद्धि होगी। ये दोनों विद्यायें ब्रह्मा की पुत्री हैं, जो तेज से युक्त है॥७॥

तब राम ने जल का स्पर्श करके पवित्र होकर, प्रसन्नमुख होकर दिव्यात्मा महर्षि विश्वामित्र से वे दोनों विद्यायें प्राप्त की॥८॥ (वा.रामा. बाल कां. २२)

यन्त्रबलसिद्धयोऽष्टौ।

(१) दिव्यविमानम्-ऋभुनिर्मितमुक्तमृग्वेदे चतुर्थमण्डले षट्त्रिंशसूक्ते भगवता वामदेवेन "अनश्वो जातो अनभीषुरुक्थ्यो रथस्त्रिचक्रः परिवर्तते रजः महत् तद्वो देवस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवी यच्च पुष्यथ॥"(४।३६।१)

(२) पुष्पकविमानं रामायणे निरूपितम्— (युद्धकां १२३-१२४)

एतत्पश्य यथा क्षिप्रं प्रतिगच्छाम तां पुरीम्।
अयोध्यां गच्छतो ह्येष पन्थाः परमदुर्गमः॥१॥
एवमुक्तस्तु काकुत्स्थं प्रत्युवाच विभीषणः।
अह्ना त्वां प्रापयिष्यामि तां पुरीं पार्थिवात्मज॥२॥
पुष्पकं नाम भद्रं ते विमानं सूर्य्यसंनिभम्।
मम भ्रातुः कुबेरस्य रावणेन बलीयसा॥३॥
हतं निर्जित्य संग्रामे कामगं दिव्यमुत्तमम्।
त्वदर्थं पालितं चेदं तिष्ठत्यतुलविक्रमम्॥४॥
तदिदं मेघसंकाशं विमानमिह तिष्ठति।
येन यास्यसि यानेन त्वमयोध्यां गतज्वरः॥५॥
ततः काञ्चनचित्राङ्गं वैदूर्य्यमणिवेदिकम्।
कूटागारैः परिक्षिप्तं सर्वतो रजतप्रभम्॥६॥
पाण्डुराभिः पताकाभिर्ध्वजैश्च समलंकृतम्।
काञ्चनं काञ्चनैर्हर्म्यैर्हैमपद्मविभूषितैः॥७॥
प्रकीर्णं किङ्किणीजालैर्मुक्तामणिगवाक्षकम्।
घण्टाजालैः परिक्षिप्तं सर्वतो मधुरस्वनम्॥८॥
तं मेरुशिखराकारं निर्मितं विश्वकर्मणा।
बृहद्भिर्भूषितं हर्म्यैर्मुक्तारजतशोभितैः॥९॥
तलैः स्फटिकचित्राङ्गैर्वैदूर्य्यैश्च वरासनैः।
महार्हास्तरणोपेतैरुपपन्नं महाधनः॥१०॥
तद्विमानं कामगमं पुष्पकं पुष्पभूषितम्।
निवेदयित्वा रामाय तस्थौ तत्र विभीषणः॥११॥
ततः स पुष्पकं दिव्यं सुग्रीवः सह वानरैः।
आरुरोह मुदा युक्तः सामात्यश्च विभीषणः॥१२॥
तेष्वारूढेषु सर्वेषु कौबेरं परमासनम्।
राघवेणाभ्यनुज्ञातमुत्पपात विहायसा॥१३॥

खगतेन विमानेन हंसयुक्तेन भास्वता।
प्रहृष्टश्च प्रतीतश्च बभौ रामः कुबेरवत् ॥१४॥
ते सर्वे वानरर्क्षाश्च राक्षसाश्च महाबलाः।
यथासुखमसंबाधं दिव्ये तस्मिन्नुपाविशन् ॥१५॥

(३) सौभविमानं-मार्तिकावतराजस्य शाल्वस्यासीत्। युद्धविमानमेतद्बहुविस्तृतमासीत्।
उक्तं च भारते वनपर्वणि कृष्णेन ॥(२२)
खे विषक्तं हि तत् सौभं क्रोशमात्र इवाभवत्।
शाल्वराजो युध्यमानो वियदभ्यगमत् पुनः ॥१॥
ततो नादृश्यत तदा सौभं कुरुकुलोद्वह।
अन्तर्हितं माययाऽभूत् ततोऽहं विस्मितोभवम् ॥२॥
ततः प्राग्ज्यौतिषं गत्वा पुनरेव व्यदृश्यत।
सौभं कामगमं वीरो मोहयन्मम चक्षुषी ॥३॥
आग्नेयमस्त्रमादाय युद्धे मतिमधारयम्।
वधाय शाल्वराजस्य सौभस्य च निपातने ॥४॥
रूपं सुदर्शनस्यासीदाकाशे पततस्तदा।
द्वितीयस्येव सूर्यस्य युगान्ते प्रतपिष्यतः ॥५॥
तत् समासाद्य नगरं सौभं व्यपगतत्विषम्।
मध्येन पाटयामास क्रकचो दार्विवोच्छ्रितम् ॥६॥
द्विधाकृतं ततः सौभं सुदर्शनबलाद्धृतम्।
तस्मिन्निपतिते सौभे चक्रमागात्करं मम ॥७॥
तन्मेरुशिखराकारं विध्वस्ताट्टालगोपुरम्।
दह्यमानमभिप्रेक्ष्य स्त्रियस्ताः संप्रदुद्रुवुः ॥८॥

(४) अथ सूतविमानं तु त्रिकक्षं पारदाभ्रकैः।
आस्थानयन्त्रभागाभ्यां द्विविभक्तं मनोजवम् ॥१॥
यन्त्रभागे निम्नकोष्ठे सुदीप्तेनाग्निनाचितम्।
तदूर्ध्वपादेनाढ्यं तदूर्ध्वं चाभ्रकाचितम् ॥२॥
तिर्य्यगूर्ध्वाधरान् देशान्नमितं तद्यथेच्छया।
आयसीभिर्भूयसीभिर्नलिकाभिः समाचितम् ॥३॥
गन्धकैरपि तद्युक्तं निपुणैर्निर्म्मितं पुरा।
गौरीशंकरवीर्य्याभ्यां विमानं कृतमद्भुतम् ॥४॥

(५) हर्य्यश्वविमानम्-इन्द्राय दारुविनिर्म्मितं संयुक्तं हयद्वयात्मकम्। यथोक्तं वेदे शच्याकर्त पितरा युवाना शच्याकर्त चमसं देवयानम्॥
शच्या हरी धनुतरावतष्टेन्द्रवाहावृभवो वाजरत्ना: ॥४।३५।५॥
ये हरी मेधयोक्था मदन्त इन्द्राय चक्रुः सुयुजा ये अश्वाः।
ते रायस्पोषं द्रविणान्यस्मे धत्त ऋभवः क्षेमयन्तो न मित्रम्॥४।३३।१०॥

(६) प्लवविमानं-समुद्रसंतरणसाधनदारुनिर्मितं पक्षिरूपमश्विकृते सुधन्वराजपुत्रैर्ऋभुभिर्विनिर्म्मितम्। नैतत्समुद्रे निमज्जति स्म। एतदारूढा अनायासेन समुद्रमत्यूर्म्मिमालाकुलमपि संतरन्ति स्म।

(७) अमृतगवी-रथं ये चक्रुः सुवृतं नरेष्ठां ये धेनुं विश्वजुवं दिश्वरूपाम्। त आतक्षन्त्वृभवो रयिं नः स्ववसः स्वपसः सुहस्ताः ॥४।३३।८॥
ऋभुभिर्गौरति भव्या कामगवी निर्म्मिता चित्रा।
एषा यदेव किञ्चित् प्राश्नोत्यमृतं ततो दुग्धे॥१॥

(८) शिलासंतरणी-"नलेन कपिवीरेण वायुवेशाल्लघूकृतैः शिलाखण्डैः संतरद्भिः सेतुरब्धौ प्रवर्तितः॥१॥" अद्यत्वे गङ्गायां पञ्चभिरब्दैर्भवेन्न वा सेतुः। पञ्चभिरहोभिरब्धौ रामः सेतुं शिलामयं व्यदधात्॥२॥ पूर्वयुगे यद्वीर्य्यं यच्चाद्भुतकर्म चक्रिरे वीराः। अनुकर्तुं तदशक्ता अनृतं मन्यन्त आत्मनस्तुष्ट्यै॥३॥ अद्यातिहीनवीर्या अल्पारम्भाः स्वमानरक्षार्थं। पूर्वेषामिह कीर्तिं न सहन्ते कूपमण्डूकाः॥४॥

आठ यन्त्रबल-सिद्धियाँ

(१) **दिव्य विमान** : ऋभुओं के लिए निर्मित ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल के छत्तीसवें सूक्त में भगवान् वामदेव ने कहा है — "हे ऋभुओं ! तुम्हारा रथ घोड़ों से रहित, लगाम रहित, तीन पहियों से युक्त तथा प्रशंसनीय है। वह अन्तरिक्ष में चारों ओर घूमता है। तुम जो द्युलोक और पृथ्वी लोक को पुष्ट करते हो, वह महान् कर्म तुम्हारे देवत्व का द्योतक है॥ (ऋ०४/३६/१)

(२) **पुष्पकविमान** : रामायण में पुष्पक विमान का वर्णन किया गया है—

"भगवान् राम बोले — अब तो तुम इस बात की ओर ध्यान दो कि हम किस तरह जल्दी से जल्दी अयोध्या नगरी लौट सकें, क्योंकि वहाँ तक पैदल यात्रा करने वाले के लिए यह मार्ग बहुत ही दुर्गम है॥१॥

उनके ऐसा कहने पर विभीषण ने श्रीराम को उत्तर दिया कि हे राजकुमारो! आप इसके लिए चिन्तित न हों, मैं आपको एक ही दिन में उस नगरी में पहुंचा दूंगा॥२॥

आपका कल्याण हो! मेरे यहाँ मेरे बड़े भाई कुबेर का सूर्य के समान पुष्पक विमान मौजूद है, जिसे महाबली रावण ने संग्राम में कुबेर को हराकर छीन लिया था। अतुल पराक्रमी

श्रीराम! वह इच्छानुसार चलने वाला, दिव्य और उत्तम विमान मैंने आप ही के लिए रख छोड़ा है ॥३-४ ॥

मेघ के समान दिखाई देने वाला यह दिव्य विमान यहाँ विद्यमान हैं, जिसके द्वारा निश्चित होकर आप अयोध्यानगरी जा सकेंगे ॥५ ॥

उस विमान का एक एक अंग सोने से जड़ा हुआ था, जिसके भीतर वैडूर्यमणि (नीलम) की वेदिकायें बनी थीं। जहाँ तहाँ गुप्त गृह बने हुए थे और चारों ओर से चांदी के समान चमकीला था, ऐसी इस विमान की शोभा थी ॥६ ॥

वह विमान श्वेत और पीतवर्ण की पताकाओं तथा ध्वजों से अलंकृत था। उसमें सोने के कमलों से सुसज्जित, स्वर्णमयी अट्टालिकायें थीं, जो इस विमान की शोभा बढ़ाती थी ॥७ ॥

सारा विमान छोटी-छोटी घण्टियों से युक्त झालरों से व्याप्त था। उसमें मोती और मणियों की खिड़कियां लगी थीं, सब ओर घंटे बंधे थे, जिनसे मधुर ध्वनि होती रहती थी ॥८ ॥

यह विश्वकर्मा का बनाया हुआ विमान सुमेरु पर्वत के समान ऊँचा तथा मोती और चांदी से सुसज्जित बड़े-बड़े कक्षों से विभूषित था ॥९ ॥

उसकी फर्श विचित्र स्फटिकमणियों से जड़ी हुई थी। उसमें नीलम के बहुमूल्य सिंहासन थे, जिन पर बहुमूल्य बिछौने बिछे हुए थे ॥१० ॥

वह पुष्पक विमान इच्छानुसार चलने वाला था और पुष्पों से विभूषित था। ऐसे विमान की श्रीराम को सूचना देकर विभीषण वहाँ खड़े हो गये ॥११ ॥

तब वानरों सहित सुग्रीव और मंत्रियों सहित विभीषण बड़ी प्रसन्नता के साथ उस दिव्य पुष्पक विमान पर चढ़ गये ॥१२ ॥

उन सबके चढ़ जाने पर कुबेर का वह पुष्पक दिव्य विमान श्री रघुनाथ की आज्ञा पाकर आकाश में उड़ चला। आकाश में पहुंचे हुए उस हंसयुक्त तेजस्वी विमान से यात्रा करते हुए पुलकित और प्रसन्नचित्त श्रीराम साक्षात् कुबेर के समान सुशोभित हो रहे थे ॥१३-१४ ॥

ये वानर, भालू और महाबली राक्षस इस दिव्य विमान में बड़े सुखपूर्वक फैलकर बैठे हुए थे। कोई किसी को बाधा नहीं पहुंचा रहा था ॥१५ ॥ (रामा.यु. १२१-२२)

(३) सौभ विमान : यह विमान मार्तिकावत के राजा शाल्व का था। युद्ध में काम आने वाला यह बहुत बड़ा विमान था। महाभारत के वन पर्व में श्रीकृष्ण ने कहा है —

"वह सौभ-विमान आकाश में इस प्रकार प्रवेश कर गया था, मानों एक कोस दूर चला गया हो, और वह शाल्वराज युद्ध करता हुआ फिर से आकाश में चला गया ॥१ ॥

हे कुरुकुलशिरोमणे! परन्तु उस समय सौभ-विमान माया से अदृश्य हो गया। अतः किसी प्रकार से दिखाई नहीं देता था। इससे मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ ॥२ ॥

तदनन्तर इच्छानुसार चलने वाला सौभ विमान् प्रागज्योतिषपुर के निकट जाकर मेरे नेत्रों को भ्रम में डालता हुआ फिर दिखाई देने लगा ॥३ ॥

आग्नेय नाम के अस्त्र को धारण करके मैंने शाल्वराज का वध करने और सौभ-विमान को मार गिराने के लिए युद्ध में मन लगाया ॥४॥

आकाश में जाते ही उस सुदर्शन चक्र का स्वरूप प्रलयकाल में उगने वाले सूर्य के समान प्रकाशित होने लगा ॥५॥

उस दिव्यास्त्र ने सौभनगर में पहुंच कर उसे शोभाहीन कर दिया और जैसे आरा ऊंचे काठ को छील देता है वैसे ही सौभ विमान को बीच में से काट दिया ॥६॥

तब सुदर्शन चक्र की शक्ति से वह सौभविमान दो टुकड़ों में बांट दिया गया। उस सौभविमान के गिरने से वह सुदर्शन चक्र फिर मेरे हाथ में आ गया ॥७॥

मेरु पर्वत के शिखर के समान आकृति वाले सौभनगर की अट्टालिकाएँ और गोपुर सभी नष्ट हो गये। उसे जलते हुए देखकर उसमें रहने वाली सभी स्त्रियाँ इधर-उधर भाग गईं ॥८॥

(४) सूत विमान : पारद और अभ्रक से निर्मित, तीन कक्ष से युक्त यह सूत विमान मन की गति से युक्त था। इस विमान के दो भाग थे— एक बैठने का स्थान और दूसरा यन्त्र (मशीनरी) भाग ॥१॥

यन्त्रभाग के नीचे के हिस्से में दैदीप्यमान अग्नि प्रदीप्त होती थी तथा ऊपर का भाग पारे से युक्त था तथा उससे भी ऊपर का भाग अभ्रक से ढका हुआ था ॥२॥

इस सूत विमान में इच्छानुसार तिरछे, ऊपर तथा नीचे झुकने के लिए अनेक लोहनिर्मित नलिकायें लगी थीं ॥३॥

प्राचीनकाल में निपुण, कुशल शिल्पियों द्वारा निर्मित यह विमान गन्धक से भी बनाया गया था। इस प्रकार यह विचित्र विमान गौरी (गन्धक) और शंकर (पारा) की शक्ति से निर्मित किया गया था ॥४॥

(५) हर्य्यश्वविमान : इन्द्र के लिए दो घोड़ों से युक्त यह विमान लकड़ी से बनाया गया था जैसा कि ऋग्वेद में लिखा है—

"तुमने अपनी कर्मकुशलता से माता-पिता को तरुण बनाया। तुमने अपनी कुशलता से चमस को देवों के लिए पीने योग्य बनाया। हे ऐश्वर्यवान् ऋभुवों। तुमने अपनी कुशलता से इन्द्र को ले जाने वाले घोड़ों को बाणों से भी अधिक वेगवान् बनाया ॥(४/३५/५)

जिन ऋभुवों ने स्तोत्रों से आनन्दित होकर अपनी बुद्धि से दो उत्तम घोड़ों को बनाया, जिन ऋभुवों ने इन्द्र के लिए आसानी से रथ में जुड़ जाने वाले रथ के घोड़ों को बनाया, हे ऋभुवों? ऐसे तुम कल्याण चाहने वाले मित्र के समान हमें धन, पुष्टि और अन्यान्य ऐश्वर्य भी प्रदान करो ॥(४/३३/१०)

(६) प्लवविमान : लकड़ी से बना यह विमान समुद्र को तैर कर पार करने के लिए साधन स्वरूप, पक्षी की आकृति वाला अश्विनी कुमारों के लिए सुद्यन्वराज के पुत्र ऋभुओं के द्वारा बनाया गया था। यह समुद्र में डूबता नहीं था। इस विमान में बैठा हुआ व्यक्ति अत्यन्त सरलता से ही भीषण तरंगों से युक्त समुद्र को पार कर लेता था।

(७) **अमृतगवी** : वेद में लिखा है—"जिन ऋभुओं ने अच्छी तरह बन्धनों से बंधे हुए और मनुष्यों के लिए बैठने योग्य रथ को तैयार किया, जिन्होंने सबको प्रेरणा देने वाली और अनेक रूपों वाली गाय को बनाया। वे उत्तम कर्म करने वाले, उत्तम रक्षा के साधनों से युक्त और उत्तम हाथों वाले ऋभु हमें ऐश्वर्य प्रदान करें॥(४/३३/८)

ऋभुओं के द्वारा अत्यन्त विचित्र कामगवी नाम की गौ निर्मित की गई। यह गाय जो कुछ भी खाती है उससे अमृत रूप दुग्ध ही उत्पन्न होता था॥१॥

(८) **शिलासंतरणी विद्या** : वीर बानर नल के द्वारा वायु के प्रवेश से हल्के बनाये हुये शिलाओं के खण्ड तैराते हुए समुद्र पर सेतु का निर्माण किया॥१॥ आज गंगा पर पांच वर्षों में ऐसा सेतु बने अथवा न बने परन्तु पांच ही दिनों में राम ने समुद्र पर शिलामय सेतु का निर्माण कर दिया॥२॥ प्राचीन युग में उन वीरों ने पराक्रमयुक्त विचित्र कार्य किये, उनका अनुकरण करने में अशक्त लोग अपनी आत्मसंतुष्टि के लिए इन कार्यों को झूठे और कपोल कल्पित मानते हैं॥३॥

ऐसे शक्तिहीन, साधारण कार्य करने की क्षमता रखने वाले, अपने स्वाभिमान की रक्षा करने के लिये कूपमण्डूक लोग आज अपने पूर्वजों की कीर्ति को सहन नहीं कर सकते हैं॥४॥

अथ स्वयंवहादयो यन्त्रविशेषाः।

१— आभ्यः सर्वाभ्यो विद्याभ्योऽप्यधिकचमत्कारवती नितान्तमुपयोगिनी स्वयंवह-यन्त्रविद्या भवति। तया दैनिकं षष्टिघटिकापलविपलादिज्ञानमतिसूक्ष्ममसंशयितं यथार्थरूपमुपसंपद्यते। तन्निर्माणप्रयोगादिप्रकाराः सूर्य्यसिद्धान्ते सिद्धान्तशिरोमणौ च विशिष्योल्लिखिता द्रष्टव्याः।*

स्वयंवह आदि यन्त्रविशेष

इन समस्त विद्याओं से अधिक चमत्कार पूर्ण, अत्यन्त उपयोगी "स्वयंवह" (स्वचालित) यन्त्रविशेष की विद्या है॥ इस विद्या से दिन की साठ घड़ियों के पल-विपल इत्यादि का

---

* अमृतस्रावयोगेन कालभ्रमणसाधनम्। तुङ्गबीजसमायुक्तं गोलयन्त्रं प्रसाधयेत्॥१॥ कालसंसाधनार्थाय तथा यन्त्राणि संग्रहेत्। एकाकी योजयेद्बीजं यन्त्रे विस्मयकारिणि॥२॥ (सूसि. उपनिषध्याये १७/१९) सिद्धान्तशिरोमणावपि लघुकाष्ठजसमचक्रे सममुषिरारा समान्तरा नेम्यां किंचिद्वक्रा योज्याः सुषिरस्यार्द्धे पृथकत्वासाम्॥१॥ रसपूर्णे तच्चक्रं द्व्याधाराक्षस्थितं स्वयं भ्रमति। उत्कीर्य्य नेमिमथवा परितो मदनेन संलग्नम्॥२॥ तदुपरि तालदलार्धं कृत्वा सुषिरे रसं क्षिपेत् तावत्। यावद्रसैकपार्श्वं क्षिप्तजलं नान्यतो याति॥३॥ पिहितश्छिद्र तदतश्चकं भ्रमति स्वयं जलाकृष्टम्। ताम्रादिमयस्यां कुशरुपनलस्याम्बुपूर्णस्य॥४॥ एवं कुण्डजलान्तर्द्वितीयमग्रं त्वधोमुखं च बहिः। युगपन्मुक्तं चेतकं नलेन कुण्डाद् बहः पतति॥५॥ नेम्यां बध्वा घटिकाचक्रं जलयन्त्रवत्तथा धार्य्यम्। नलकप्रच्युतसलिलं पतति तथा तद्घटीमध्ये॥६॥ भ्रमति ततस्तत्सततं पूर्णघटीभिः समाकृष्टम्। चक्रच्युतं स्वमुदकं कुण्डे याति प्रणालिकया॥७॥

अत्यन्त सूक्ष्म, संशयरहित और यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है। इसकी निर्माण तथा प्रयोग की विधियाँ "सूर्यसिद्धांत" तथा "सिद्धांतशिरोमणि" में विशेष रूप से उल्लिखित हैं, वहीं द्रष्टव्य हैं ॥*

ब्राह्मणानामष्टभ्यो वीर्य्येभ्यः सर्वासां विद्यानां प्रादुर्भावः।

२— एवं केचिद् विद्या विभजन्ते भारतीयास्ताः।
एता एव स्वपरे ब्रुवते पुनरन्यथा दृष्ट्वा ॥१॥
ब्राह्मणवीर्य्याण्यष्टौ दैवाद् योगेन यज्ञतस्तपसा।
मणिमन्त्रौषधियन्त्रैरेषां भेदाश्च बहवः स्युः ॥२॥
एकैकविद्ययापि च लभतेऽपूर्वं जनस्तु समामर्थ्यम्।
नातः परं तु किञ्चिद्बलमधिकं संभवत्यत्र ॥३॥
दैवबली योगबली यज्ञबली वा तपोबली निगमात्।
मणिमन्त्रतन्त्रयन्त्रैरागमतः स्याद्बली विप्रः ॥४॥
नास्ति पृथिव्यां सोऽर्थो वीर्य्यात् पूर्णात्र यः सिध्येत्।
दैवाद् योगाद् यज्ञात् तपसो मन्त्रान् महौषधितः ॥५॥

जलप्रवाह के द्वारा समयचक्र के निर्धारण स्वरूप पारद (पारा) युक्त गोलाकार यन्त्र का निर्माण किया जाना चाहिये ॥१॥ काल के संसाधन के लिए इस प्रकार के यन्त्रों का निर्माण किया जाना चाहिये, जिसमें चमत्कारिता हेतु पारद की स्थापना एकान्त में बैठकर करनी चाहिये ॥२॥ (सू.सि.) "सिद्धान्त-शिरोमणि" में भी एक घटीयन्त्र-निर्माण का उल्लेख मिलता है। जिसमें — किसी सरल (गन्थिरहित) काण्ड से एक रूप गोल-चक्र बनाया जाये। इस चक्र में प्रयुक्त अर समान छिद्रों से युक्त एवं समान अंतराल पर स्थित होते हैं। तथा ये अर पहिये की परिधि में कुछ वक्र रूप से जोड़े जावें। ये अर छिद्रों में अलग अलग करके जोड़े जावें ॥१॥ दो आधार पर टिके हुए अक्ष पर स्थित यह चक्र जल से पूर्ण होने पर स्वतः घूमता है। इस चक्र की परिधि को उत्कीर्ण (खुदाई) करके अथवा ऊपर चारों ओर मोम से चिपकाया जाकर उसके ताड़ के पत्ते को आधा करके उसका रस डाले, जब तक कि उसके एक ओर डाला गया रस दूसरी ओर न गिरे अर्थात् छिद्रों को पूर्णतः बन्द कर दिया जावे ॥२-३॥ छिद्रों के इस प्रकार बन्द होने पर यह चक्र जल के वेग से स्वतः घूमने लगता है। ताम्रादि धातु की पतली नलिका (नोजल) को जल से भरकर उसका एक सिरा कुण्ड के जल में तथा दूसरा बाहर नीचे झुका कर छोड़ने पर जल नल के द्वारा स्वतः बाहर आने लगता है (साइफन विधि से) ॥४-५॥ नेमि पर घटिका चक्र को जल यन्त्र की तरह इस प्रकार स्थापित किया जावे कि नल से गिरा हुआ जल घटी (छोटे जल-घड़े) में ही गिरे (उस घटी को भरने का समय एक घड़ी निर्धारित किया जाता है ॥१६॥ इस घटी के जल से पूर्ण हो जाने पर, जल के भार से चक्र से निकला हुआ घटिका का जल एक प्रणाली (नाली) के द्वारा कुण्ड में बह जाता है ॥७॥ (इस प्रकार एक के बाद एक घटी भरती है और चक्र सतत रूप से घूमता रहता है) ॥

ब्राह्मणों के आठ वीर्यों से सम्पूर्ण विद्याओं का प्रादुर्भाव हुआ

कुछ लोग इन्हीं भारतीय विद्याओं को विभाजित करके अलग प्रकार से कहते हैं। इन्हीं भारतीय विद्याओं को अन्य लोग अपने ढंग से समझकर कुछ अन्य प्रकार से कहते हैं ॥१॥

ये विद्यायें ब्राह्मणों के वीर्य से आठ प्रकार की बतायी गयी हैं। वे हैं — दैवी प्रभाव से, योगबल से, यज्ञ से, तपोबल से, मणि से, मन्त्र से, ओषधि से तथा यन्त्रबल से इनके अनेक भेद किये गये हैं।.२॥

इनमें से एक एक विद्या को प्राप्त करके ही मनुष्य अपूर्व सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। इन विद्याओं को प्राप्त करने रूप बल से अधिक और कोई शक्ति सम्भव ही नहीं हो सकती है ॥३॥

ब्राह्मण दैवी विद्या के बल से, योग से, यज्ञबल से, तपस्या के बल से, शास्त्रविद्या बल से, मणि से, यन्त्र से, तन्त्र इत्यादि के शास्त्रीय ज्ञान से शक्तिवान् हो सकता है ॥४॥

इस पृथ्वी पर ऐसा कोई अर्थ नहीं है, जो दैव, योग, यज्ञ तप, मन्त्र और औषधि की पूर्ण ज्ञानशक्ति से सिद्ध नहीं किया जा सकता है अर्थात् प्रत्येक साध्य की सिद्धि की जा सकती है ॥५॥

सर्वविद्यानां सर्वार्थसिद्धौ हेतुत्वं तुल्यम्।

३— इत्थं विद्याः कारणकार्य्यविभागेन दर्शिता एताः।
किन्त्वविशेषात् सर्वाः सिद्धय एभ्योऽष्टवीर्य्येभ्यः ॥१॥
दैवाद् योगाद् यज्ञात् तपसो मणिमन्त्रतन्त्रयन्त्रेभ्यः।
तुल्यवदेव समग्राः कामा निश्चित्य सिध्यन्ति ॥२॥

समस्त विद्याओं की सर्वार्थसिद्ध में कारण समान ही है।

कार्य और कारण विभाग से ये समस्त विद्यायें अलग अलग बताई गई हैं। विशेष रूप से ये परम सिद्धियाँ इन्हीं आठ ब्रह्मवीर्यों से सिद्धि होती हैं ॥१॥

ये आठ ब्रह्मवीर्य हैं — दैव, योग, यज्ञ, तप, मणि, मन्त्र, यन्त्र और तन्त्र। इन्हीं से समान रूप से सभी अभीप्सित कार्यों की निश्चय ही सिद्ध होती है ॥२॥

नवनिधयः।

एता हि सिद्धयोऽष्टौ बहुभिर्यत्नैः प्रसाधनात् सिद्धेः।
अथ नवनिधयस्त्वन्ये गृहे निधानं ह्यपेक्षते तेषाम् ॥३॥
"महापद्मश्च पद्मश्च शङ्खो मकरकच्छपौ।

मुकुन्दकुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयो नव" ॥४॥
एषामेकोऽपि गृहे निहितः परमां श्रियं तनुते।
सपरिच्छदान्नवस्त्रप्राचुर्य्यं भोगसौभाग्यम् ॥५॥
नापेक्ष्यतेऽत्र मन्त्रो न यन्त्रतन्त्रे म यज्ञयोगौ वा।
केवलनिधानमङ्गे गृहेऽपि लक्ष्मीं विवर्द्धयति ॥६॥

नौ निधियाँ

ये उपर्युक्त आठ सिद्धियां अत्यधिक प्रयत्नपूर्वक साधना करने पर ही सिद्ध होती हैं, परन्तु अन्य प्रकार की नौ निधियों को रखने मात्र से ही सिद्धि प्राप्त हो जाती हैं ॥३॥

ये नौ निधियाँ है — महापद्म, पद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द (मूल्यवान् रत्न अथवा पारा), कुन्द (चमेली अथवा मोती), नीलमणि तथा खर्व (खरड़) इत्यादि ॥४॥

इन निधियों में से एक को भी यदि घर में रखा जावे, तो परम सौभाग्य की वृद्धि होती है। वस्त्र, आभूषण, अन्न, पर्याप्त वस्त्र तथा समस्त प्रकार की सौभाग्यवृद्धि करती है ॥५॥

इन निधियों के लिए किसी प्रकार के मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र, यज्ञ और योगबल की सिद्धि की आवश्यकता नहीं हैं। इनको तो केवल अंग पर धारण करने मात्र से ही अथवा घर में रखने से ही ऐश्वर्य की वृद्धि हो जाती है ॥६॥

निधिविशेषा अष्टौ मणयः।

४— औषधयोऽपि च निधयो निधिप्रभावाः प्रसिद्ध्यन्ति।
कतिचित् तासामष्टौ मणिसंज्ञा अत्र कथ्यन्ते ॥१॥

अष्टमणयः	१	२	३	४	५	६	७	८
	इन्द्रमणिः	जङ्गिड-मणिः	प्रतिसर-मणिः	वरण-मणिः	दर्भ-मणिः	औदुम्बर-मणिः	शतवार-मणिः	अस्तृत-मणिः

शक्तिर्गुणश्च वीर्य्यं रसो विपाकः प्रभावश्च।
प्रत्योषधि भिद्यन्ते मणित्वमेषां प्रभाववैशेष्यात् ॥२॥
सन्त्योषधयः सर्वाः प्रभाववत्योऽथ तास्वष्टौ।
मणयः स्युरिन्द्रजंगिडप्रतिसरवरणादयः ख्याताः ॥३॥
हस्ते धृतेन्द्रमणिरिह महौषधिः स्वप्रभावेण।
दिव्यां दृष्टिं दत्ते तथोक्तमाथर्वणे वेदे ॥१॥ (४।२०।१।९)
आपश्यति प्रतिपश्यति परापश्यति पश्यति।
दिवमन्तरिक्षमाद् भूमिं सर्वं तद्देवि पश्यति ॥२॥(४।२०।२)
तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीः षट् चेमाः प्रदिशः पृथक्।
त्वयाऽहं सर्वा भूतानि पश्यानि देव्योषधे ॥३॥

ता मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आदधत्।
तयाऽहं सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्य्यः ॥४॥(४।२०।४)
दर्शय मा यातुधानान् दर्शय यातुधान्यः।
पिशाचान् सर्वान्दर्शयेति त्वारम्भ ओषधे॥५।(४।२०।६)
यो अन्तरिक्षेण पतति दिवं यश्चातिसर्पति।
भूमिं यो मन्यते नाथं तं पिशाचं प्रदर्शय॥६॥(४।२०।९)
अथ जङ्गिडमणिरन्यो धृतः शरीरे प्रवर्द्धयत्यायुः।
कृत्यादोषं हरति च तथोक्तमाथर्वणे वेदे॥१॥
दीर्घायुत्वाय बृहते रणायारिष्यन्तो दक्ष्यमाणाः सदैव।
मणिं विष्कन्ध दूषणं जङ्गिडं बिभृमो, वयम्॥२॥(२।४।१)
जङ्गिडो जम्भाद् विशराद् विष्कन्धादभिशोचनात्।
मणिः सहस्रवीर्य्यः परिशिरिणः पातु विश्वतः॥३॥(२।४।२)
अयं विष्कन्धं सहतेऽयं बाधते अत्रिणः॥
अयं नो विश्वभेषजो जङ्गिडः पात्वंहसः॥४॥(२।४।३)
दैवैर्दत्तेन मणिना जङ्गिडेन मयोभुवा।
विष्कन्धं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे॥५॥(२।४।४)
शरणश्च मा जङ्गिडश्च विष्कन्धादभिरक्षताम्।
अरण्यादन्य आभृतः कृष्या अन्यो रसेभ्यः॥६॥(२।४।५)
कृत्यादूषिरयं मणिरथो अरातिदूषिः।
अथो सहस्वान् जङ्गिडः प्रण आयूंषि तारिषत्॥७॥(२।४।६)
एकोनविंशकाण्डस्यायं सूक्ते चतुस्त्रिंशे॥(१९।३४।३५)
पञ्चत्रिंशे तद्वन्मणिरुक्तो जङ्गिडो भूयः॥१॥
एवं प्रतिसरमणिरयमष्टमकाण्डस्य पञ्चमे सूक्ते (८।५)
वरणो मणिरधिदशमं तृतीयसूक्ते विशिष्योक्तः॥२॥(१०।३।)
एकोनविंशकाण्डस्याष्टाविंशादिषट्सूक्तैः॥१९।२८।३३)
दर्भो मणिरौदुम्बरमणिविशेषादिहाख्यातौ॥३॥
एतत्काण्डे सूक्ते षट्त्रिंशे त्वस्ति शतवारः॥२९।३६)
अस्तृतमणिरिह गदितः षट्चत्वारिंशके सूक्ते।४॥(१९।४६)
इत्थमनेका ओषधिविद्या आर्य्यैः पुरातनैर्दृष्टाः॥
आथर्वणे तु वेदे प्रदर्शितास्तास्ततो ज्ञेयाः॥५॥

कुछ औषधियां भी निधि होती हैं। वे निधि के प्रभाव से प्रसिद्ध होती हैं। उन औषधि रूप निधियों में से कुछ आठ मणिसंज्ञक औषधियाँ यहां कही जाती हैं॥१॥

आठ मणियां	१	२	३	४	५	६	७	८
	इन्द्रमणि	जंगिड़-मणि	प्रतिसर-मणि	वरण-मणि	दर्भमणि	औदम्बर-मणि	शतवार-मणि	अस्तृत-मणि

शक्ति, गुण, वीर्य, रस, विपाक, और प्रभाव से प्रत्येक औषधि अलग अलग ढंग से प्रभावशाली हैं। अतः प्रभाव विशेष से इन ओषधियों को भी मणि रूप माना जाता है ॥२ ॥

समस्त औषधियां प्रभाववती होती हैं, उनमें से आठ मणि रूप होती है। वे हैं-इन्द्र, जंगिड़, प्रतिसर, वरण इत्यादि ॥३ ॥

अथर्ववेद में कहा गया है कि इन्द्रमणि नाम की ओषधि को यदि हाथ में धारण किया जाये तो वह अपने प्रभाव से दिव्यदृष्टि प्रदान करती है ॥१ ॥ (४/२०/१/९)

हे देवि। जंगिड मणि को धारण करके मनुष्य सब कुछ प्रत्यक्ष देखता है, प्रत्येक पदार्थ को देखता है, दूर और दूसरी ओर देखता है, द्युलोक, अन्तरिक्ष लोक और भूमि को देखता है ॥२ ॥ (४/२०/२)

हे दिव्यौषधे। मैं तुम्हारे प्रयोग से तीन द्युलोक, तीनों पृथ्वी लोक छः प्रदिशाओं (पूर्व. प.उ.द. ऊर्ध्वाधर) को अलग-अलग रूप से तथा समस्त प्राणी मात्र को तुम्हारी सामर्थ्य से देखूं ॥३ ॥

उन सहस्राक्ष सूर्य देव ने उस दिव्यौषधि को मेरे दाहिने हाथ पर बांध दी है। मैं उसके द्वारा शूद्र अथवा आर्य सभी को देख सकता हूँ ॥४ ॥(४/२०/४)

हे औषधे ! तुम्हें बांधे हुए मुझे समस्त राक्षसों को दिखाओ, समस्त राक्षसियों को दिखाओ, समस्त भूत-प्रेतादि को दिखाओ इसलिए तेरी सहायता लेता हूँ ॥५ ॥(४/२०/६)

हे ओषधे ! जो अन्तरिक्ष से चलता है और जो द्युलोक को भी लाँघता है और जो भूमि का भी नाथ है, उस पिशाच को मुझे दिखाओ ॥(४/२०/९)

जंगिड़ मणि नाम की ओषधि को जो धारण करता है, उसकी आयु में वृद्धि होती है। अथर्ववेद में कहा गया है कि जंगिड़ मणि ओषधि को धारण करने वाले व्यक्ति को जादू टोना इत्यादि का प्रभाव नहीं होता है ॥१ ॥

दीर्घायु की प्राप्ति के लिए तथा बड़े आनन्द के लिए, शोषक रोग को दूर करने वाले जंगिड़मणि को न सड़ने देने वाले परन्तु बल को बढ़ाने वाले हम सब धारण करते हैं ॥२ ॥(२/४/१)

यह जंगिड़मणि हजारों सामर्थ्यों से युक्त, जमुहाई बढ़ाने वाले रोग से क्षीणता करने वाले रोग से सब प्रकार से हम सबकी रक्षा करें ॥३ ॥ (२/४/२)

यह जंगिड़मणि शोषक रोग से बचाता है, यह मणि भक्षक भस्म (अधिक खाना और शरीर कृश रहना) रोग से बचाता है। यह जंगिड़मणि सर्वोषधि का रस ही है, वह हमें पाप से बचावे ॥४ ॥(२/४/३)

दिव्य मनुष्यों द्वारा दिये हुए, सुख देने वाले जंगिड़मणि से शोषक रोक को और सब बीजभूत रोग जन्तुओं को संघर्ष में दबा सकें ॥५ ॥ (२/४/४)

शण अथवा सण और जंगिड़ ये दोनों शोषक रोग से मेरा बचाव करे। इनमें एक वन से प्राप्त होती है और दूसरी खेती से उत्पन्न हुई ओषधियों के रसों से बनाया जाता है ॥६ ॥ (२/४/५)

यह मणि हिंसा से बचाने वाला है और शत्रुभूत रोगों से दूर करने वाला है। ऐसा यह बलवान् जंगिड़मणि हमारी आयु बढ़ावे ॥७ ॥(२/४/६)

अथर्ववेद के उन्नीसवें काण्ड के चौंतीसवें सूक्त के पैंतीसवें मन्त्र में इस जंगिड़-मणि का पर्याप्त उल्लेख हुआ है ॥१ ॥

इसी प्रकार अथर्ववेद के ही आठवें काण्ड के पांचवें सूक्त में प्रतिसर मणि तथा वरण मणि का दसवें काण्ड के तीसरे सूक्त में उल्लेख किया गया है ॥२ ॥

दर्भ-मणि तथा औदुम्बर मणियों का विशेष रूप से उन्नसीवें काण्ड के अट्ठाइसवें सूक्त से लेकर छः सूक्तों अर्थात् तेतीसवें सूक्त तक वर्णन किया गया है ॥३ ॥

इसी काण्ड के छत्तीसवें सूक्त में शतवार मणि तथा छियालीसवें सूक्त में अस्तृतमणि का वर्णन किया गया है ॥४ ॥

इस प्रकार प्राचीन आर्यों ने अनेक औषधि विद्याओं को देखा है, जिनका अथर्ववेद में उल्लेख है, वहीं से इनको देखना चाहिये ॥५ ॥

विद्याप्रकरणोपसंहारः ।

देवानामिह समये देवैः प्रोत्साहनात् सुयुक्त्वाच्च।
भारतवर्षीयार्य्यैरेता उद्भाविता विद्याः ॥१ ॥
एतासां विद्यानां कारव आसन् पृथक् पृथक् कतिचित्।
तत्प्रतिपत्तिग्रन्थाः कालविलुप्ता न लभ्यन्ते ॥२ ॥
इतिहासेषु प्रायः प्रसङ्गतश्चर्चिता एताः।
तेनास्तित्वं ह्यासां पूर्वयुगे भारते विद्यः ॥३ ॥

विद्याप्रकरण का उपसंहार

भारतवर्ष के आर्यों ने देवयुग में देवताओं के द्वारा दिये गये प्रोत्साहन तथा सहयोग से इन विद्याओं को उत्पन्न किया ॥१ ॥

इन विद्याओं के निर्माता अलग-अलग विद्वान् ऋषि थे। इनके मूल एवं प्राथमिक ग्रन्थ काल के दीर्घ अन्तरालवश विलुप्त हो गये और आज उपलब्ध नहीं है ॥२ ॥

प्रायः इन विद्याओं की चर्चा इतिहासग्रन्थों में प्रसंगवश होती रहती है। इन्हीं चर्चाओं के आधार पर हम जानते हैं कि भारतवर्ष में ही इन विद्याओं का अस्तित्व था ॥३ ॥

इति ब्राह्मवीर्यप्रसङ्गः ॥१ ॥

भारतवर्षे युद्धोपयोगिनी चतुःषष्टिदिव्यास्त्राणि ॥(६४)
ब्रह्मशिरो ब्रह्मास्त्रं पाशुपतं वैष्णवं च वरुणास्त्रम्।
नारायणास्त्रमैन्द्रं प्राजापत्यास्त्रमाग्नेयम् ॥१ ॥

वायव्यं कौबेरं पार्जन्य—त्वाष्ट्रकालयाम्यानि।
दानवमश्व च स्कान्दं प्रमथं वैनायकं च कूष्माण्डम् ।।२ ।।
गणगान्धर्वे राक्षसपैशाचे भौतवैताले।
शारभताक्ष्यर्शावरफैरवमातङ्गनागमकरास्त्रम् ।।३ ।।
सौपर्णं भारुण्डं चौलूकं गालणं चेति।
पाषाणकालकूटे चाक्रैषीके बलातिबले ।।४ ।।
औदुंबरं च राजसहैमनगुह्यानि शौरमुन्मादः।
स्तम्भनकम्पनजृम्भणजम्भकमूर्च्छानिमीलनोत्पाताः ।।५ ।।
प्रस्वापनं च मोहनमचेतनं भ्रामकं ज्वरास्त्रं च।
वैद्युततैमिरतामसभेदादासंश्चतुःषष्टिः ।।६ ।।
दिव्यास्त्राणि पुरात्वे देवयुगे भारते वर्षे।
मन्त्रैर्यन्त्रैस्तन्त्रैरद्भुतकर्माणि तान्यासन् ।।७ ।।
शरनाराचकृपाणप्रभृतीन्यष्टादशास्त्राणि।
लौहानि सर्वदेशे दिव्यास्त्रविधास्तु भारतेऽत्रैव ।।८ ।।

दिव्यास्त्रतालिका।

दैवास्त्राणि १६	यौनास्त्राणि १६	भौतस्त्राणि १६	कर्मास्त्राणि १६
१. ब्रह्मशिरोऽस्त्रम्	१७. स्कांदास्त्राणि	३३. मकरास्त्रम्	४९. उन्मादास्त्रम्
२. ब्रह्मास्त्रम्	१८. प्रमथास्त्रम्	३४. सापर्णास्त्रम्	५०. स्तम्भनास्त्रम्
३. पाशुपतास्त्रम्	१९. वैनायकास्त्रम्	३५. भारुण्डास्त्रम्	५१. कम्पनास्त्रम्
४. वैष्णवास्त्रम्	२०. कूष्माण्डास्त्रम्	३६. उलूकास्त्रम्	५२. जृम्भणस्त्रम्
५. वारुणास्त्रम्	२१. गणास्त्रम्	३७. गालणास्त्रम्	५३. जम्भकास्त्रम्
६. नारायणस्त्रम्	२२. गान्धर्वास्त्रम्	३८. पाषाणास्त्रम्	५४. मूर्च्छनास्त्रम्
७. ऐन्द्रास्त्रम्	२३. राक्षसास्त्रम्	३९. कालकूटास्त्रम्	५५. निमीलनास्त्रम्
८. प्राजापत्यास्त्रम्	२४. पैशाचास्त्रम्	४०. चाक्रास्त्रम्	५६. उत्पातास्त्रम्
९. आग्नेयास्त्रम्	२५. भौतास्त्रम्	४१. ऐषीकास्त्रम्	५७. प्रस्वापनास्त्रम्
१०. वायव्यास्त्रम्	२६. वेतालास्त्रम्	४२. वलास्त्रम्	५८. ज्वरास्त्रम्
११. कौवेरास्त्रम्	२७. शरभास्त्रम्	४३. अतिवलास्त्रम्	५९. भ्रामकास्त्रम्
१२. पार्जन्यास्त्रम्	२८. ताक्ष्यास्त्रम्	४४. औदुम्बरास्त्रम्	६०. अचेतनास्त्रम्
१३. त्वाष्टास्त्रम्	२९. शावरास्त्रम्	४५. राजसास्त्रम्	६१. मोहनास्त्रम्
१४. कालास्त्रम्	३०. फैरवास्त्रम्	४६. हेमनास्त्रम्	६२. वैद्युतास्त्रम्
१५. याम्यास्त्रम्	३१. मातङ्गास्त्रम्	४७. गुह्यास्त्रम्	६३. तिमिरास्त्रम्
१६. दानवास्त्रम्	३२. नागास्त्रम्	४८. शौरास्त्रम्	६४. तामसास्त्रम्

भारतवर्ष में युद्धोपयोगी चौसठ दिव्यास्त्र

इन दिव्यास्त्रों के नाम हैं — ब्रह्मशिर, ब्रह्मास्त्र, पाशुपतास्त्र, वैष्वणास्त्र, वरुणास्त्र, नारायणास्त्र, ऐन्द्रास्त्र, प्राजापत्यास्त्र, आग्नेयास्त्र, वायव्यास्त्र, कौवेरास्त्र, पार्जन्यास्त्र, त्वाष्ट्रास्त्र, कालास्त्र, याम्यास्त्र, दानवास्त्र, स्कान्दास्त्र, प्रमथास्त्र, वैनायकास्त्र, कूष्माण्डास्त्र, गणास्त्र, गान्धर्वास्त्र, राक्षसास्त्र, पैशाचास्त्र, भौतास्त्र, वैतालास्त्र, शरभास्त्र, तार्क्ष्यास्त्र, शावरास्त्र, फैरवास्त्र, मातङ्गास्त्र, नागास्त्र, मकरास्त्र, सापर्णास्त्र, भारुण्डास्त्र, उलूकास्त्र, गालणास्त्र, पाषाणास्त्र, कालकूटास्त्र, चाक्रास्त्र, ऐषीकास्त्र, बलास्त्र, अतिबलास्त्र, ओदुम्बरास्त्र, राजसास्त्र, हैमनास्त्र, गुह्यास्त्र, शौरास्त्र, उन्मादास्त्र, स्तम्भनास्त्र, कम्पनास्त्र, जृम्भणास्त्र, जम्मकास्त्र, मूर्च्छनास्त्र, निमीलनास्त्र, उत्पातास्त्र, प्रस्वापनास्त्र, ज्वरास्त्र, भ्रामकास्त्र, अचेतनास्त्र, मोहनास्त्र, वैद्युतास्त्र, तिमिरास्त्र, तामसास्त्र इत्यादि भेद से चौसठ प्रकार की अस्त्रविद्यायें थीं ॥१-६ ॥

प्राचीन भारत वर्ष में देवकाल में मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र विद्या से युक्त अद्‌भुत कार्यों से युक्त दिव्यास्त्र थे ॥७ ॥

यहाँ भारतवर्ष में बाण, आरी, तलवार इत्यादि अठारह प्रकार की लौहनिर्मित अस्त्र-विद्या सम्पूर्ण देश में व्याप्त थी ॥८ ॥

रामायणोक्तानि पञ्चाशद् (५०) दिव्यास्त्राणि।

रामायणे तु विश्वामित्रो रामाय पञ्चाशत्।(५०)
दिव्यास्त्राणि निरूप्य प्रददौ तान्यप्यतो विद्यात्॥१ ॥
चक्राणि पञ्च पाशत्रयमशनी द्वे गदे च द्वे।
शक्ती द्वे च महास्त्रं षोढा षोढैव तीव्रास्त्रम्॥२ ॥
साधारणास्त्रभेदाः सन्ति चतुर्विंशतिस्तत्र।
मन्त्राहितानि सर्वाण्यमोघवीर्य्याणि सिध्यन्ति॥३ ॥

रामायण में उल्लखित पचास दिव्यास्त्र।

वाल्मीकि रामायण में भी महर्षि विश्वामित्र ने श्रीराम को पचास दिव्यास्त्र बनाकर प्रदान किये। वे अस्त्र भी इन्हीं अस्त्रविद्याओं में वर्णित जानने चाहिये ॥१ ॥

पांच चक्र, तीन पाश, दो अशनि (फेंक कर मारने वाले अस्त्र), दो गदायें, दो शक्ति, छः महास्त्र, छः तीव्रास्त्र, चौबीस प्रकार के साधारण अस्त्र थे, जो सभी मन्त्रों द्वारा सिद्ध थे, वे सभी मन्त्रों से संयुक्त किये जाने पर अमोघवीर्य (निश्चित संहारक) हो जाते थे ॥३ ॥

पञ्चाशद्दिव्यास्त्रतालिका

१	१ दण्डचक्रम्	५	१ कंकाल	८	१विद्याधरास्त्रम्		१४ तामसम्
	२ धर्मचक्रम्		मुसलशक्तिः		नन्दमसिरत्नम्		१५ सौमनम्
	३ कालचक्रम्		२ कायालर्कि-		२ गान्धर्वास्त्रं		१६ संवर्तम्
	४ विष्णुचक्रम्		कणीशक्तिः		मोहनम्		१७ मौसलम्
	५ ऐन्द्रचक्रम्	६	१ वज्रास्त्रम्		३. प्रस्तावनम्		१८ सत्यास्त्रम्
२	१ धर्मपाशः		२ शैवास्त्रम्		४. प्रशमनम्		११ मायास्त्रम्
	२ कालपाशः		३ शूलवतास्त्रम्		५. सौम्यम्		२० सौरास्त्रं,
	३ वारुणपाशः		४ ब्रह्मशिरोस्त्रम्		६. वर्षणम्		तेजःप्रभं, परते-
							जोपकर्षणम्

३	१ शुष्का अशनिः		५ ऐषीकास्त्रम्		७. शोषणम्		२१ सौपास्त्रम्,
	२ आर्द्रा अशनिः		६ ब्राह्मास्त्रम्		८. संतापनम्		शिशिरम्
४	१ मोदकी गदा		१ पिनाकास्त्रम्		९. विलापनम्		२२ त्वाष्ट्रास्त्रम्
	२ शिखरी गदा		२ नारायणास्त्रम्		१०. मादनम्		दारुणम्
			३ आग्नेयास्त्रम्-		११. कन्दर्पास्त्रम्		मगास्त्रम्
			शिखरमग्निदयितम्		कन्दर्पदयितम्		दारुणम्
		७	४ वायव्यास्त्रम्		१२. गन्धर्वास्त्रम्		शीतेषु-मानदम्
			५ हयग्रीवास्त्रम्		गन्धर्वदयितम्		
			६ क्रौञ्चास्त्रम्		मानवम्		
					१३ पिशाचास्त्रम्		
					पिशाचदयितम्		
					मोहनम्		

पञ्चाशद् दिव्यास्त्रसंहाराः ॥ (५०)

अथ चैषामस्त्राणां संहारा रामभद्राय।
पञ्चाशदेव कथिता विश्वामित्रेण तान् ब्रूमः ॥४॥

१	सत्यवान्	१८	स्वनाभः	३५	पित्र्यः
२	सत्यकीर्तिः	१९	ज्यौतिषम्	३६	सौमनसः
३	धृष्टः	२०	शकुनम्	३७	विधूतः
४	रभसः प्रतीहार तरः	२१	नैरास्यः	३८	मकरः
५	अपराङ्मुखम्	२२	विमलः	३९	परवीरः
६	अवाङ्मुखम्	२३	योगधरः	४०	रतिः
७	लक्ष्यः	२४	विनिद्रः	४१	धनम्
८	अलक्ष्यः	२५	दैत्यः	४२	धान्यम्
९	दृढनाभः	२६	प्रथमतः	४३	कामरूपः
१०	सुनाभः	२७	शुचिबाहुः	४४	काकरूपाः
११	दशाक्षः	२८	महाबाहुः	४५	मोहः
१२	शतवक्त्रः	२९	निष्कलिः	४६	आवरणम्
१३	दशशीर्षः	३०	विरुचिः	४७	जृम्भकः
१४	शतोदरः	३१	सार्चिमाली	४८	सर्पनाथः
१५	पद्मनाभः	३२	धृतिमाली	४९	पन्थानः
१६	महानाभः	३३	वृत्तिमान्	५०	वरुणः
१७	दुंदुनाभः	३४	रुचिरः		

साधारणानि शस्त्राणि अष्टादश यथा—

१ २ ४३
सहचर्म्मखभेदाः सधनुर्बाणाश्च परिघश्च ॥
४ २ ६ ७ ८ ९ १० ११
पट्टिश-तोमर-कुन्ताः खेट-गदा-परशु-चक्र-शूलानि ॥१ ॥
१२ १३ १४ १५ १६ १७
शक्ति-र्मुद्गरपाशौ हलमुसलभिन्दिपालमसिपुत्री ॥
१८
सशतघ्ना च भुशुण्डीत्येते शस्त्रास्त्रभेदाः स्युः ॥२ ॥
एषामेकैकस्य च बहवो भेदाः पुरातनैः क्लृप्ताः ॥
प्राधान्यतस्त्वमन्त्राण्येतान्यष्टादशास्त्राणि ॥३ ॥

अष्टादशास्त्रभाषानामतालिका ।

सं.	संस्कृतम्	पर्यायाः	हिन्दी	विशेषः
१	खड्गः सचर्मा	कृपाणः ऋष्टिः असिः, करवालः	तरवार-खांडा	
२	धनुःसशरम्	चापः,. धन्वः	धनुष-कमान	
३	परिघः कालदडः	परिघातिनः	लाठी	लोहबद्धो हस्तप्रमाणो लगुडः
४	पट्टिशम्	००००	शेल	
५	तोमरः	सर्वला	गुग्गुज	
६	कुन्तः	प्रासः	भाला, बल्लम	
७	खेटः	ईलो करवाली १	कटारी-गुप्ती	
८	गदा	००००	गुर्ज	
९	परशुः	परश्वधः, स्वधितिः, कुठारः	फरसा कुठार, कुल्हाड़ी	
१०	चक्रम्	००००	चक्र	
११	शूलम्	००००	शूल	
१२	शक्तिः	कासः	बर्छी	
१३	मुद्गरः कूटमुद्गरः	घनः, द्रुघणः	मुगदर	सैतीतिय महाराष्ट्रभाषा
१४	पाशः	००००	फांस	
१५	हलमुसलम्	००००	हल मूसल	

१६	भिन्दिपालः	सृगः	गोपया-ढेलवांस	पत्थर फेंकने का रज्जुमय यन्त्र
१७	छुरिका	शस्त्री, असिपुत्री	छुरी-छूरी	
१८	शतघ्नी भुशुण्डी	००००	तोप-बन्दूक	

इति क्षात्रवीर्य्याख्यानम् ॥२ ॥

पचास दिव्यास्त्र संहार

विश्वामित्र मुनि ने इस पचास अस्त्रों के पचास ही उपसंहार बताये थे। अब उनको कहते हैं ॥४ ॥

अठारह साधारण अस्त्र हैं। यथा—

चर्मसहित खांडे के अठारह भेद, धनुषसहित बाण, लाठियाँ, पट्टिश (बरछी), लकड़ी का डंडा, भाला, कटार, गदा, फरसा, चक्र, शूल, बर्छी, मुद्गर, फांस, हलमूसल, गुलेल, छुरी, तोप-बन्दूक ये अठारह शस्त्रास्त्र के भेद हैं ॥१-२ ॥

इनके एक एक के अनेक भेद हैं, जो प्राचीन विद्याविदों ने बताये हैं।प्रधान रूप से तो ये अठारह अस्त्र अमन्त्रक थे, जिनका प्रयोग करने के लिए मन्त्र की आवश्यकता नहीं थी ॥३ ॥

भारतीयविड्वीर्य्याख्यानम्।

भारतीयानां भग्नावशिष्टानामपि शिल्पानामतुलनीयत्वम्।
वाणिज्यं च पुरासीदत्युत्कृष्टं हि भारतीयानाम् ॥
इतरे सर्वे देशा आयान्ति स्मात्र भूयसा क्रेतुम् ॥१ ॥
यद्यपि भारतवर्षे शिल्पिकलाः शिथिलतां क्रमादगमन् ॥
किन्तु न तत्रार्य्याणामलसत्वं मूढतापि वा हेतुः ॥२ ॥
राजास्त्यभारतीयो न स धर्म्माणामिहत्यशिल्पानाम् ॥
वृद्धिं रक्षां वैषां कुरुते तस्मादियं दसाऽवनता ॥३ ॥
अद्याप्यवनतिकाले हीनदशानामपि क्वाचार्य्याणाम् ॥
शिल्पं भारतवर्षे प्रदृश्यतेऽन्यैरतुलनीयम् ॥४ ॥
कश्मीरे शालपटश्चोर्णावस्त्रं च दिव्यमप्रतिमम्।
मलमलवस्त्रं ढाकानगरे सूक्ष्मातिसूक्ष्मतरम् ॥५ ॥
रूप्यकसहस्त्रसप्तकमूल्याः शाला विनिर्म्मिता हस्तैः।
सौष्ठवमौष्ण्यं मृदुतां हृद्यत्वं यादृशं धत्ते ॥६ ॥
ढाकामलमलवस्त्रं सूक्ष्मतमत्वेऽपि यादृशं धत्ते।
मसृणत्वं च दृढत्वं सौक्ष्म्यं चौष्ण्यं मनोहरताम् ॥७ ॥
न च तत्तुलनां कर्तुं शक्ता अद्यापि यत्नवन्तोऽपि।
सन्त्युत्तमयन्त्रकलायुक्ता अपि भिन्नदेशीयाः ॥८ ॥

अंशुकपट्टविशेषा दारुमृदश्मादिरम्यपात्राणि।
अद्याप्यवनतिसमये भारतवर्षे प्रशंसनीयानि ॥९ ॥
अद्याप्यत्र बहूनि श्लाघ्यानि भवन्ति दीनहतकानाम्।
कारूणामिह शिल्पान्येभिर्भारतशिरोऽत्युच्चम् ॥१० ॥

इति भारतवर्षीयविद्याप्रसङ्गे विड्वीर्य्याख्यानं तृतीयम् ॥३ ॥

इति भारतपरिचयः प्रथमः।

भारतीय वणिक् शक्ति का आख्यान्

भग्नावशिष्ट भी भारतीयों की शिल्पकला अतुलनीय है। प्राचीन भारतीयों की व्यापारकला अत्यन्त उत्कृष्ट थी। इसलिए अन्य देश के व्यापारी लोग यहाँ बहुत अधिक खरीददारी करने आते थे ॥१ ॥

यद्यपि भारतीयों की व्यापारकला धीरे धीरे शिथिलता को प्राप्त हो गई है, परन्तु इसका कारण भारतीयों का आलस्य अथवा अज्ञानता नहीं है ॥२ ॥

आज यहाँ का राजा भारतीय नहीं है। (अंग्रेजी राज्य के समय), वह यहाँ के धर्म और शिल्पकला की वृद्धि अथवा रक्षा नहीं करता। इसलिए इस शिल्प की अवनति हुई ॥३ ॥

आज इस अवनति के समय भी हीनावस्था को प्राप्त होने पर भी भारतीय आर्यों की शिल्पकला अन्य देशों की शिल्पकला से श्रेष्ठ दिखाई देती है, अतुलनीय है ॥४ ॥

कश्मीर में शाल-दुशाले, ऊन के वस्त्र, ढाका नगरी की मलमल, जो अत्यन्त पारदर्शी है, आज भी दिव्य और अतुलनीय हैं ॥५ ॥

हाथ से बने हुए दुशाले, जिनकी कीमत सात हजार रुपये थी (अंग्रेजी राज्य काल में), जिनकी सुन्दरता, गर्मी, चिकिनाई, मनोहरता जैसी यहाँ थी वैसी अन्यत्र नहीं ॥६ ॥

ढाका की मलमल अत्यन्त पारदर्शी होते हुए भी जितनी कोमलता, मजबूती, पतलापन, गर्मी और सुन्दरता को धारण करती है, वैसी अन्य देशों के वस्त्रों में कहीं नहीं मिलती ॥७ ॥

आज भी उन दुःशालों और मलमल की तुलना विदेशियों द्वारा मशीनी कला से युक्त होते हुए भी, प्रयत्न करने पर भी नहीं की जा सकती है ॥८ ॥

आज भी इस अवनति के काल में भी भारतवर्ष में बने विशिष्ट कला से युक्त रेशमी वस्त्र, लकड़ी, मिट्टी और पत्थर से बने बरतन अत्यन्त प्रशंसा के योग्य है ॥९ ॥

आज भी दीनहीन, करुणा के पात्र शिल्पियों की अनेक शिल्पकलाएँ प्रशंसनीय होती हैं, जिनसे भारतवर्ष का मस्तक सदैव ही ऊंचा रहा है ॥१० ॥

भारतवर्षीय विद्या-प्रसंग में वणिक्शक्ति आख्यान समाप्त हुआ।

अथार्यदासीयाख्यो द्वितीयः

प्रक्रम आरभ्यते

(१) भारतीयार्य्याणां मौलिकभारतीयत्वसिद्धान्ताद् वैदेशिकत्वमतखण्डनम् ।

ओंकार एष येषामविशेषान्मन्त्र आराध्यः ।
येषां भिन्नमतानामप्यत्रास्त्येकबन्धुत्वम् ॥१ ॥
येषां शास्त्रं वेदश्चातुर्वर्ण्ये विभाजितो धर्म्मः ।
धेनुर्गङ्गाऽऽराध्या तेषां देशोऽस्ति भारतं वर्षम् ॥२ ॥
आर्य्यास्तेऽमी उदिताश्चातुर्वर्ण्ये विभाजिता लोकाः ।
तेषां स्वोऽयं देशो न तु परदेशादिहागता एते ॥३ ॥
पूर्वसमुद्रारब्धो देशो यः पश्चिमाब्धिपर्य्यन्तः ।
पूर्वोऽस्यार्य्यावर्तः पश्चिम आर्य्यायणं भागः ॥४ ॥

आर्यदासीय नामक

द्वितीय प्रक्रम

(१) भारतीय आर्य मूलरूप से भारतीय थे, इस सिद्धान्त से विदेशी होने के मत का खण्डन

जिन भारतीय आर्यों का विशेष रूप से "ओंकार" ही आराध्य मन्त्र था तथा भिन्न-भिन्न मतावलम्बियों में भी एक भ्रातृत्वभाव था ॥१ ॥

जिनका शास्त्र वेद है, चार वर्णों में जिनका धर्म विभाजित है, गाय और गंगा जिनकी आराध्या हैं, ऐसे आर्यों का देश भारतवर्ष है ॥२ ॥

ये आर्य सभ्य थे, ये लोग चार वर्णों में विभाजित थे, उनका यह स्वयं का देश था, वे किसी अन्य देश से यहां आये हुए नहीं हैं ॥३ ॥

पूर्व-समुद्र (चीन सागर) से लेकर पश्चिम-समुद्र (लालसागर) तक का भाग भारतवर्ष था, जिसका पूर्वी भाग आर्यावर्त और पश्चिमी भाग आर्यायण कहलाता था ॥४ ॥

(२) एशियामध्यदेशादागतानामार्य्यवीराणां भारतवर्षीयमूलनिवास्यनार्य-जातिपरिभावकत्वं पञ्चभिर्हेतुभिरेके मन्यन्ते।

प्राहुः केचिद् भारते पूर्वमासन् वन्या जाल्मास्तैरनार्य्यैर्नियुध्य।
जित्वा चैतान्भारतेऽस्मिन् न्यवात्सुः पामीराद्रेरागता आर्यवीराः ॥१ ॥
योऽद्रिर्विलूरतागो मुस्तागो वा तयोश्च पश्चिमतः।
जम्बूनदीसदेशेऽत्युच्चे न्यूषुर्य आर्य्याः प्राक् ॥२ ॥
ते खलु भारतवर्षेऽभ्याक्रम्यैतत् प्रदेशसंभूतान्।
वासान्निहत्य जयिनो भारतवर्षनिवासिनोऽभूवन् ॥३ ॥
यद्वत् पूर्व्यान् स्काटलेण्डप्रसूतान् हत्वा तत्र न्यूषुरन्ये प्रवीराः।
एवं मन्ये भारते भारतीयान् वन्यान् जित्वा सभ्यवर्णा इहाऽस्थुः ॥४ ॥
ये हीदानीं भारते भारतीयाः सभ्या एते सन्ति वैदेशिकास्ते।
पञ्चैतस्मिन् हेतवः सन्ति वादे तात्पर्य्यस्य ग्राहकास्तान् वदामः ॥५ ॥
आर्य्याः सर्वे रोमका यावना वा पूर्वं पूर्वोदक्प्रदेशादुपेताः।
देशे देशे तत्र तत्र न्यवात्सुः सेत्थं ख्यातिः श्रूयते पूर्वकालात् ॥६ ॥
आदिस्थां पारसीकोपदेष्ट्राऽवेस्ताग्रन्थे ह्यैर्य्यनम्बीज उक्तम्।
मन्ये स स्यादेष पामीरदेशस्तत्रैवार्य्याः पूर्वमासन् वसन्तः ॥७ ॥
१।३०।९ अनुप्रत्नस्यौकसो हुवे तुवि—
प्रतिनरम्। यं ते पूर्वं पिताहुवे ॥८ ॥
अत्र प्रत्नस्यौकसो वर्णनेन प्राप्ता एते भारतीया विदेशात्।
प्रत्नं ह्येषां धाम पामीरमासीन्मन्ये नूत्नं भारतं वर्षमेतत् ॥९ ॥
ओघोत्थाने पूर्वकाले कदाचिद् यस्मान्नावोदग् गिरेः पारमायन्।
तस्मान्मन्येऽत्रागता उत्तरात् ते वेदग्रन्थे तच्छ्रुतं पारयानम् ॥१० ॥
"मनवे हवै प्रातरवनेग्यमुदकमाजह्रुः।
तस्य मत्स्यः पाणि आपेदे ॥स औघ
उत्थिते नावमापेदे। तं स मत्स्य उपन्या पुप्लुवे।
तस्य श्रृङ्गे नावः पाशं प्रति मुमोच।
तेनैतमुत्तरं गिरिमतिदुद्राव तदप्येतदुत्तरस्य
गिरेर्मनोरवसर्पणम्। ओघो हताः सर्वाः प्रजा
निरुवाह। अथेह मनुरेवैकः परिशिशिषे"।
वेदग्रन्थे वर्णितं यन्नियुद्धं तच्चात्रत्यैः प्रागसभ्यैः सहैषाम्।
सभ्यानां स्यादागतानां विदेशात् जित्वा चैतान् भारते ते न्यवात्सुः ॥

एतन्मतप्रत्याक्षेपः । तदुपोद्बलकहेतूनामप्रामाण्यात् ।
इत्थं केचिद् भारते भारतीयानेतान् सभ्यान् हन्त पामीरदेशात् ।
प्राप्तानाहुः किन्तु मन्ये तदेषां मिथ्याक्लृप्तं भ्रान्तमस्त्यप्रमाणम् ॥१ ॥
ख्यातिस्तावन्न प्रमाणं स्वतन्त्रा यावत्तस्मिन्नान्यदस्ति प्रमाणम् ।
ये त्वत्रान्ये हेतवः केचिदुक्ता हेत्वाभासास्तेऽखिला न प्रमाणम् ॥२ ॥
पारस्यानामैर्य्यनम्बीज उक्तो योऽयं देशः सोन्य आर्य्याणकः स्यात् ।
तत्राप्यासन् प्राक् तुषारप्रपाता येभ्यो लोका भूयसासन् विपन्नाः ॥३ ॥
तुषारवर्षैर्बहुलैस्तमकाण्डनिपातिभिः ।
आर्य्याणाकाभिधे देशे विपन्नं केचिदूचिरे ॥४ ॥
प्रत्नं त्वोकः स्वं शुनःशेप एतत् प्रीतिप्राप्त्यै स्मारयत्यागताय ।
इन्द्रायेन्द्रः प्रागजीगर्तयज्ञे हूतः प्रीतोऽनेकधाऽवाप हव्यम् ॥५ ॥
ओकः प्रत्नं स्वर्गरूपं यदत्र व्याचष्टेऽसौ सायणस्तावतापि ।
इन्द्रस्याजीगर्तयज्ञे गतस्य प्रत्नौकस्तद् भाव्यते न त्वमीषाम् ॥६ ॥
शौनःशेपो मन्त्र एष ह्यमीषां सर्वार्य्याणां प्रत्नमोकोऽविशेषाद् ।
पामीरं तल्लक्षयत्येवमुक्तिः पाश्चात्यानां साहसाद् भ्रान्तिमूलात् ॥७ ॥
पुराणमोकः सख्यं शिवं वां युवोर्नराद्रविणां जाह्नाव्याम् ।
पुनः कृण्वानाः सख्या शिवानि मध्वा मदेम सहनू समानाः ॥८ ॥"
(३ ।५९ ।६ ।)

विश्वामित्रो जाह्नवीप्रान्तक्लृप्तां राजस्थाने स्वे कृतां यज्ञशालाम् ।
त्यक्त्वाऽरण्ये स्वाश्रमं कल्पयित्वा यज्ञं धत्ते पूर्वसाम्येन क्लृप्तम् ॥९ ॥
सर्वेऽप्यार्य्यास्तावता प्रत्नमोकस्त्यक्त्वाऽत्रैता इत्यसाधुः प्रवादः ॥१० ॥
यद्वै नावोदगगिरेः पारयानान्मन्यन्ते ते पारयानं हिमाद्रेः ।
तच्च भ्रान्तं सा हि नावाभिपत्तिः पामीरादत्युत्तरे पश्चिमेऽभूत् ॥११ ॥
आर्मीन्याख्ये म्लेच्छदेशे गिरिर्य्योऽरारातो भात्यार्कनौस्तस्य पादे ।
दुद्रावाद्रौ तत्र नावा मनुः प्राग् म्लेच्छे देशेऽस्ति प्रसिद्धिस्तथैव ॥१२ ॥
नायं शैलो नापि देशोऽयमासीत् प्राचामेषां प्राक्तनी वासभूमिः ।
तस्मादेषौघश्रुतिः प्राक्तनानां पूर्वावासद्योतिका नोपपन्ना ॥१३ ॥
वेदग्रंथे वर्णितं यत् समीकं तच्चानार्य्यैर्भारते पूर्वजातैः ।
वीरार्य्याणां भारतेऽभ्यागतानामासीत् पूर्वं पाञ्चनद्यप्रदेशे ॥१४ ॥
इत्थं प्राहुः पण्डिता केऽपि तेषामुक्तं मन्ये भ्रान्तमेतन्नितान्तम् ।
नार्य्या वीरा भारतस्थाननार्य्यान् निर्वास्य प्राग् भारतेऽस्मिन् न्यवात्सुः ॥१५ ॥
सर्वाण्येवैतानि युद्धानि वेदाख्यातान्यासन् यैर्य्यथा यत्र येषाम् ।
स्वर्गख्यातावस्ति तेषां विशेषादुक्तिः किञ्चित् त्वत्र चोदाहरामः ॥१६ ॥

(२) आर्यवीरों द्वारा मध्य एशिया से आकर भारतवर्ष के मूल निवासी अनार्य जाति को पराजित करने के सम्बन्ध में कुछ लोगों द्वारा प्रस्तुत पाँच कारण

कुछ लोग कहते हैं कि प्राचीनकाल में भारतवर्ष में जंगली और जाल्म (दुष्ट-लुटेरे) लोग निवास करते थे। पामीर देश से आये हुए आर्य वीर इन जंगली लोगों को पराजित करके यहाँ निवास करने लगे ॥१॥

जम्बू नदी के समीप विलूरताग और मुस्ताग नाम के पर्वतों के पश्चिमी भाग की अत्यन्त ऊँचाई पर जो प्रदेश हैं वहाँ प्राचीन आर्य निवास करते थे ॥२॥

वे भारतवर्ष पर आक्रमण करके इस प्रदेश में जन्मे अनार्यों को जीत कर भारत में निवास करने लगे ॥३॥

जिस प्रकार प्राचीन काल में स्कॉटलैण्ड में उत्पन्न जाति के लोगों को मार कर अन्य वीर लोग वहाँ निवास करने लगे उसी प्रकार मैं मानता हूँ कि भारत में भी भारतीय जंगली जाति के लोगों को जीत कर सभ्य जाति के लोग यहां निवास करने लगे ॥४॥

वर्तमान समय में भारतवर्ष में जो सभ्य भारतीय रहते हैं, वे बाहर से आये हुए विदेशी हैं, इस वाद के पांच कारण हैं, इनको मानने वाले लोगों के मत को हम यहां कहते हैं ॥५॥

(१) प्राचीनकाल से ही यह ख्याति प्रचलित है कि समस्त आर्य लोग प्राचीन समय में, चाहे वे रोमक थे अथवा यवन, प्राचीन काल में पूर्वी जलप्रदेशों से अकर भिन्न भिन्न स्थानों पर निवास करने लगे ॥६॥

पारसियों के उपदेशग्रन्थ "जेन्द अवेस्ता" में पारसियों के आदि निवासस्थान का नाम "ऐर्य्यनबीज" बताया गया है। अतः मैं मानता हूँ कि यही पामीर देश था, जहाँ प्राचीन काल में आर्य लोग निवास करते थे ॥७॥

ऋग्वेद में लिखा है—"अपने पुराने स्थान से अनेक भक्तों के पास जाने वाले हे इन्द्र !मैं तुम्हें बुलाता हूँ , तुम्हें मेरे पिता भी मुझसे पहले बुला चुके हैं॥" (१/३०/९) ॥८॥

यहाँ प्राचीन निवासस्थान का वर्णन करने से स्पष्ट होता है कि भारतीय विदेशों से आये थे, अतः मैं मानता हूँ कि यह प्राचीन स्थान पामीर प्रदेश था और भारतवर्ष इनका नवीन निवासस्थान है ॥९॥

प्राचीनकाल में जलप्लावन के उत्पन्न होने पर मनु जिस **उत्तर गिरि** से पार नाव को ले गये थे, मैं मानता हूँ कि उसी उत्तर दिशा से आर्य यहाँ आये ऐसा वेदग्रन्थों में उनका पारगमन सुना (लिखा) गया है ॥१०॥

"प्रातःकाल मनु (मनु के लिए) सन्ध्योपासनार्थ जल लेने गये, उनके हाथ में मछली आ गई। जलप्लावन के उत्पन्न होने पर मनु नाव पर आरूढ़ हुए और मत्स्य उनके पास आ गया, जिसके सींग से मनु ने उस नाव को बांध दिया और उस नाव से मत्स्य मनु को उत्तर गिरि के पार ले गया। तभी से इस उत्तरगिरि को "मनु का अवसर्पण" कहा जाता

है। जलप्लावन से सम्पूर्ण प्रजा जलमग्न हो गई। उस जलप्लावन में अकेले मनु ही जीवित रहे॥" (ऐसा शतपथ. के मनूपाख्यान में लिखा है)।

विदेशों से आये सभ्य जाति के लोगों का यहाँ रहने वाले असभ्य लोगों के साथ युद्ध हुआ जिनको जीत कर विदेशी यहाँ आकर निवास करने लगे। यह युद्ध वेदग्रन्थों में द्वन्द्वयुद्ध के नाम से वर्णित हैं॥

इस मत के समर्थन में प्रस्तुत कारणों के अप्रामाणिक होने के कारण इस मत का खण्डन किया जाता है।

खेद की बात है कि कुछ लोग भारत में निवास कर रहे इन्हीं भारतीय सभ्य लोगों को पामीर देश से आये हुए मानते हैं, किन्तु मैं मानता हूँ कि इनकी यह मिथ्या कल्पना है, अप्रामाणिक भ्रान्त धारणा है॥१॥

इस मत के मिथ्या होने का कारण है - इसमें ख्याति अर्थात् लोकश्रुति को प्रमाण माना गया है, जो प्रमाण नहीं होती है। ख्याति स्वतंत्र होती है। इस विषय में जितने भी अन्य प्रमाण बताये गये हैं वे हेतु न होकर हेत्वाभास मात्र हैं। अत: वे सभी प्रमाण नहीं है॥२॥

पारसियों का जो "ऐर्य्यनबीज" नाम का देश बताया गया है वह कोई अन्य ही "आर्य्याणक" देश होगा। वहाँ भी प्राचीन समय में हिमपात हुए हैं, जिनमें बहुत से लोग मारे गये थे॥३॥

कुछ लोग कहते हैं कि इस प्रकार असमय में और अनेक बार हुए हिमपातों से आर्याणक नाम का देश नष्ट हो गया था॥४॥

प्राचीन समय में अजीगर्त के यज्ञ में बुलाये जाने पर आये हुए इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए शुन:शेप ने प्राचीन निवासस्थान का स्मरण कराते हुए इन्द्र को प्रसन्न किया और इन्द्र ने प्रसन्न होकर अनेक बार हवि पदार्थ प्राप्त किये॥५॥

यहाँ जिस प्राचीन निवासस्थान का वर्णन किया गया है, सायण ने इसे स्वर्ग रूप बताया है। फिर भी वह प्राचीन घर अजीगर्त के यज्ञ में गये हुए इन्द्र का प्राचीन घर था न कि इन आर्यों के प्राचीन घर का वर्णन है॥६॥

शुन:शेप से सम्बद्ध इस मन्त्र में सभी आर्यों के सामान्य रूप से प्राचीन निवास का वर्णन किया गया है। पाश्चात्यों ने दुस्साहसपूर्वक इस प्राचीन घर से पामीर देश को लक्षित किया है, यह उनकी भ्रान्त धारणा है॥७॥

ऋग्वेद में लिखा है — "हे नरो ! तुम्हारा प्राचीन स्थान और तुम्हारी पुरानी मित्रता कल्याणकारी है। तुम्हारा धन नदी (सिन्धु) के पास रखा है अत: तुम पुन: कल्याणकारी मित्रता करते हुए मित्रता के भाव से एक साथ मिलकर मधुर रस का पान करते हुए आनन्दित होओ॥ (३/५८/६) ॥८॥

विश्वामित्र ऋषि ने राजस्थान में जाह्नवी के किनारे बनाई गई अपनी यज्ञशाला को छोड़कर जंगल में अपना आश्रम बनाया तथा पूर्ववत् यज्ञ इत्यादि कार्य किये॥९॥

अतः यदि कोई विद्वान् अपने प्राचीन निवासस्थान को छोड़कर अन्यत्र जाकर रहने लग जाता है और वह अपने प्राचीन निवासस्थान का वर्णन करे तो इसका तात्पर्य यह लगाना कि सभी विद्वान् प्राचीन स्थान को छोड़कर यहाँ आये, यह अनुचित प्रलाप मात्र ही है ॥१० ॥

और जो नाव से उत्तरगिरि के पार जाते हुए को हिमालय पर्वत के पार जाना मानते हैं, यह भी उनकी एक भ्रान्त धारणामात्र ही है। यह जो नाव की घटना है वह पामीर से भी उत्तर-पश्चिमी भाग में घटी थी ॥११ ॥

आर्मीनिया नाम के म्लेच्छ देश में अरारात नाम का पर्वत है, उसकी तलहटी में "आर्कनौ" नाम का स्थान सुशोभित है। प्राचीन समय में मनु नाव द्वारा इसी पर्वत पर दौड़े थे, ऐसा म्लेच्छदेशों में प्रसिद्ध है ॥१२ ॥

परन्तु न तो यह पर्वत और न ही यह प्रदेश उन प्राचीनों की प्राचीन निवासभूमि है। इसलिए यह औधश्रुति प्राचीनों के पूर्व निवास की द्योतिका है ऐसा उचित नहीं है ॥१३ ॥

भारत में उत्पन्न आर्यों के साथ जिस समीक नाम के युद्ध का वर्णन वेद ग्रन्थ में मिलता है, वह पंचनद (पंजाब) प्रदेश में हुआ था, जो भारत में आये वीर आर्यों का युद्ध था, ऐसा कुछ विद्वान् कहते हैं। परन्तु उनकी उक्ति भ्रान्त धारणा मात्र है, क्योंकि आर्य वीरों ने भारत-स्थित अनार्यों को निकाल कर भारत में निवास नहीं किया था ॥१४-१५ ॥

वेद ग्रन्थों में वर्णित ये सभी युद्ध, जिनके साथ, जिस तरह, जहाँ और जिनके थे, उन सबका वर्णन "स्वर्गख्याति" में विशेष रूप से किया गया है, यहाँ तो उनमें से कुछ का उदाहरण मात्र दिया गया है ॥१६ ॥

(३) भारतीयानां विदेशादागतत्वे हेतुत्वेन परोपन्यस्तस्य वेदोक्त-संग्रामस्य हेत्वाभासत्वम्।

(३) भारतीयों का विदेश से आगमन हुआ, इस सम्बन्ध में वैदिक ग्रन्थों में उक्त देवासुरसंग्राम को कारण रूप बताया जाना हेतु नहीं, हेत्वाभास मात्र होना

(४) "तत्रादौ पुरायुगीयानां नाराणां संक्षेपतस्त्रैविध्यम्।"

अखिला नराः पुरात्वे त्रेधा भिन्नाः प्रधानतो ह्यभवन्।
(१) (२) (३)
देवा अथ च मनुष्या देवविरोधात् त्वदेवाश्च ॥१ ॥
(१)
अत्युन्नतविज्ञानाः प्रभाववन्तोऽभवन् देवाः।
(२)
विज्ञानदुर्बला अपि बहुलप्रज्ञा महाबला असुराः ॥२ ॥
(३)
साधारणी तु जनता मनुष्यनाम्ना प्रतीताऽऽसीत्।

१ २ ३ ४
तत्रादेवा आसन् दानवा दैत्याश्च दस्यवः पणयः ॥३॥
अफरीकाद्या देशा दैत्यानां दानवानां च।
फीनीशिया पणीनां दस्यूनां हेमकूटाद्याः ॥४॥
अथ देवानां यावान् देशः सा द्यौः स हि स्वर्गः।
यस्त्विह मनुष्यदेशः सा पृथ्वी भारतं वर्षम् ॥५॥
यद्यप्यासन् स्वर्गे स्वर्णरसंज्ञा अदेवदेवा अन्ये।
किंतु न तेषां देशो भारतवर्षं मनोः प्रजा नैताः ॥६॥

(४) इनमें सर्वप्रथम संक्षेप रूप में प्राचीन लोगों का त्रैविध्य-वर्णन

प्राचीनकाल में मनुष्य प्रधान रूप से तीन भागों में विभाजित थे। ये थे— देव, मनुष्य और देवों का विरोध करने वाले अदेव (राक्षस) ॥१॥

देवता अत्यन्त उन्नत विज्ञान से सम्पन्न और प्रभावशाली थे, जबकि असुर अत्यधिक बुद्धिमान्, महाबलशाली थे परन्तु विज्ञान के सम्बन्ध में अत्यन्त दुर्बल थे ॥२॥

साधारण जनता मनुष्य के नाम से पहचानी जाती थी। अदेवों में भी चार जातियाँ थीं — दानव, दैत्य, दस्यु और पणि ॥३॥

इनमें अफरीका इत्यादि देश दैत्यों का तथा दानवों का देश था, जबकि फिनीशिया पणियों का तथा हेमकूट इत्यादि देश दस्युओं का निवासस्थान था ॥४॥

देवताओं का जितना प्रदेश था, वह द्यौ था वही स्वर्ग कहा गया है। जो मनुष्यों का देश है, वही पृथ्वीलोक है और वह भारतवर्ष है। (यह प्रसंग त्रैलोक्यप्रसंग में स्पष्ट किया जा चुका है) ॥५॥

यद्यपि स्वर्ग में स्वर्ग के मानव नाम से पहचाने जाने वाले अदेवदेव (मनुष्य देव) निवास करते थे, परन्तु उनका देश यह भारतवर्ष नहीं है और वे मनु की सन्तान भी नहीं थे ॥६॥

वेदोक्तसंग्रामाणामारम्भकनिमित्तभेदात्— पाञ्चविध्यम्

वेदग्रन्थे कथिताः समराः सर्वेऽपि पञ्चभेदाः स्युः।
१ २ ३ ४ ५
देवानां तैः पणिभिर्दानवदैत्यैश्च दस्युभिश्चार्य्यैः ॥१॥
सूर्य्यश्चन्द्रः पृथिवी गावश्चेति हि चतुष्टयं तेषाम्।
देवानमसुरैः सह निमित्तमन्योन्यसंमर्द्दे ॥२॥
देवाः सूर्य्ये दासैः, पणिभिर्गोष्वद्रिसोमके दैत्यैः।
क्षित्यर्थे दानवकैरार्य्यैर्युयुधुः प्रकीर्णविषयेषु ॥३॥

आर्य्याणां सममार्य्यैं संघर्षो नातिबहुलोऽभूत्।
पण्यादिभिस्त्वनार्य्यैश्चिरहानिकरा हि संगरा घोराः ॥४॥
तेष्वपि विशेषतो द्वे युद्धे आस्तां महारम्भे।
भूम्यर्थे संग्रामाः सूर्य्यार्थे दस्युयुद्धानि ॥५॥
इत्थं पञ्चविधा ये संग्रामा यत्र तत्रासन्।
सर्वेषु तेषु देवा एकत आसन्नथान्यतोऽदेवाः ॥६॥

(५) वेदोक्त संग्रामों के आरम्भक निमित्त भेद से पांच प्रकार

वेदग्रन्थ में वर्णित समस्त युद्ध पांच प्रकार के बताये गये हैं। ये युद्ध देवों के पणियों के साथ, दानवों के साथ, दैत्यों के साथ, दस्युओं के साथ और आर्यों के साथ हुए ॥१॥

देवों और असुरों में परस्पर सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी और गायों को लेकर घोर युद्ध हुआ ॥२॥

देवों का दास जाति के साथ सूर्य के सम्बन्ध में युद्ध हुआ, पणियों के साथ गायों के निमित्त, दैत्यों के साथ सोम पर्वत को लेकर, दानवों के साथ भूमि के लिए और आर्यों के साथ विभिन्न विषयों को लेकर युद्ध हुए ॥३॥

आर्यों के साथ आर्यों का जो युद्ध हुआ, वह अधिक भयंकर नहीं हुआ, परन्तु आर्यों के पणियों के साथ तथा अनार्यों(असभ्यों) के साथ जो युद्ध हुए वे अत्यन्त भीषण और दीर्घकालीन हानि करने वाले थे ॥४॥

इन घोर युद्धों में भी दो महायुद्ध अधिक भीषण युद्ध थे। ये घोर संग्राम भूमि के लिए तथा सूर्य के निमित्त हुए जो दस्युओं के साथ हुए थे ॥५॥

इस प्रकार जहाँ तहाँ समय समय पर ये पांच प्रकार के युद्ध हुए, जिन सभी में देवता एक तरफ और अदेव एक तरफ रहते थे ॥६॥

(६) विप्रकीर्णोऽर्थे देवानामार्य्यैः संग्रामः।

आर्य्याणां क्वचिदार्य्यैः संग्रामाः केचिदासन् प्राक्।
सोमहता गुरुपत्नी यथेन्द्रवरुणाभिमर्दहेतुरभूत ॥१॥
गुर्वङ्गिरो द्वेषवशाद् भृगुस्तदा सोमस्य पक्षं जगृहे वृतोऽसुरैः।
भृगोः पितासौ वरुणो भृगुं गतो याज्यो गुरोरिन्द्र इमं गुरुं गतः ॥२॥
देवेश इन्द्रो वरुणोऽसुरेशस्ततश्च देवासुरयोः प्रमर्दः।
गन्धर्वराज्याश्रितमन्त्रिसभ्याः समेत्य तन्निर्णयमत्र चक्रुः ॥३॥
तेऽवदन् प्रथमा ब्रह्मकिल्विषेऽकूपारः सलिलो मातरिश्वा।
वीळूहरास्तप उग्रो मयोभूरापो देवीः प्रथमजा ऋते ॥४॥(१०/१०९)
"सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय" ॥५॥(१०।१०९२)
सोमान्तःपुरतोऽग्निर्मनुष्यपो ब्रह्मजायां ताम्।

तारां करे गृहीत्वा गुरवे प्रत्यर्पयामास ॥६ ॥
“हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेयमिति चेदवोचत।
न दूताय प्रह्ये तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य ॥७ ॥
देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्त ऋषयस्यपसे ये निषेदुः ।१ ।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ॥८ ॥
ब्रह्मचारी चरति वेविषद् विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम्।
तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः ॥९ ॥
पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या उत।
राजानः सत्यं कृण्वाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः ॥१० ॥
पुनर्दाय ब्रह्मजात्यां कृत्वा देवैर्निकिल्विषम्।
ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वा योरुगायमुपासते ॥११ ॥
आथर्वणे च पञ्चमकाण्डे सूक्ते तु सप्तदशे।
ताराहरणाख्याने मन्त्रा एकादशान्ततोऽधीताः ॥१२ ॥
तत्राकूपाराद्यैस्तदा, व्यवस्थापकैः सभ्यैः।
ब्रह्मस्त्रीसंबन्धे ध्रुवा व्यवस्थापिता नीतिः ॥१३ ॥
ब्राह्मणजायापहता राष्ट्रे जनयतितरां बहून् दोषान्।
ब्राह्मणजाया तस्मादत ऊर्ध्वं नापहरणीया ॥१४ ॥
“यामाहुस्तारकैषा विकेशीति दुच्छुनां ग्राममवपद्यमानाम्।
सा ब्रह्मजाया विदुनोति राष्ट्रं यत्र प्रापादिशश उल्कुषीमान् ॥१५ ॥
ये गर्भा अवपद्यन्ते जगद् यच्चापलुप्यते।
वीरा ये तृह्यन्ते मिथो ब्रह्मजाया हिनस्ति तान् ॥१६ ॥
उत यत् पतयो दश स्त्रियाः पूर्वे अब्राह्मणाः।
ब्रह्मा चेद्धस्तमग्रहीत् स एव पतिरेकधा ॥१७ ॥
ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्यो न वैश्यः।
तत् सूर्य्यः प्रब्रुवन्नेति पञ्चभ्यो मानवेभ्यः ॥१८ ॥
नास्य जाया शतवाही कल्याणी तल्पमाशये।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजाया चित्या ॥१९ ॥
न विकर्णः पृथुशिरास्तस्मिन् वेश्मनि जायते।
नास्य क्षता निष्कग्रीवः सूनानामेत्यग्रतः ॥२० ॥
नास्य श्वेतः कृष्णकणा धुरियुक्तो महीयते।
नास्य क्षेत्रे पुष्करिणी नाण्डीकं जायते विसम् ॥२१ ॥

नास्मै पृश्निं विदुहन्ति येऽस्या दोहमुपासते।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजाया चित्या॥२२॥
नास्य धेनुः कल्याणी नानड्वान् सहते धुरम्।
विजानिर्यत्र ब्राह्मणो रात्रिं वसति पापया॥२३॥

(६) विभिन्न विषयों को लेकर देवों का आर्यों के साथ संग्राम

पुराकाल में आर्यों के आर्यों के साथ भी युद्ध हुए हैं, जो चन्द्रमा द्वारा गुरु (बृहस्पति) की पत्नी का हरण करने तथा इन्द्र और वरुण के परस्पर मर्दन के कारण हुए॥१॥

गुरु बृहस्पति से महाद्वेष होने के कारण असुरों के साथ भृगु (शुक्र) ने उस युद्ध में चन्द्रमा का पक्ष लिया। भृगु के पिता वरुण ने भृगु का अनुसरण किया तथा बृहस्पति के यजमान इन्द्र बृहस्पति के अनुकूल हुए॥२॥

इस प्रकार देवाधिपति इन्द्र तथा दैत्याधिपति वरुण में घोर देवासुरसंग्राम हुआ। गन्धर्व राज्य में निवास करने वाले सभ्य मंत्रियों ने मिलकर इस युद्ध में आकर कुछ निर्णय किया॥३॥

ऋग्वेद में लिखा है — "वे प्रमुख देव बृहस्पति के पाप के विषय में बतलाते हैं। दूर स्थित सूर्य, जल देवता वरुण व्यापक वायु तेज से युक्त हैं। उग्ररूप सूर्य, सुखदायक सोम और दिव्य गुणयुक्त जल सत्य से ही सर्वप्रथम प्रकट हुए॥ (१०/१०९/१)॥४॥

मुख्य राजा सोम ने बृहस्पति की पतिव्रता पत्नी को प्रकट रूप में बृहस्पति को प्रदान कर दी। वरुण और मित्र ने इसका अनुमोदन किया। अनन्तर होता अग्नि हाथ से पकड़ कर पत्नी को ले गये॥ (१०/१०९/२)॥१५॥

मनुष्यों की रक्षा करने वाले अग्नि सोम के अन्तःपुर से गुरुपत्नी तारा को हाथ से पकड़कर ला कर गुरु को समर्पित कर दिया॥६॥

अथर्ववेद के पंचम मण्डल में "ताराहरणाख्यान" में कहा गया है :—

"इसका आदेश है कि यह हाथ (पाणिग्रहण-विधि) से ही ग्रहण की जावे। यदि यह ब्राह्मण की पत्नी है तो यह दूत के द्वारा ले जाने योग्य नहीं है। ऐसा करने पर ही राजा का राष्ट्र सुरक्षित हो सकता है॥७॥

पूर्वकाल में इस विषय में देवों ने कहा है तथा जो तप करने के लिए बैठते हैं, उन सप्त ऋषियों ने भी वैसा ही कहा है। ब्राह्मण की पत्नी अपहरण किए जाने पर भयंकर हो जाती है और परम धाम में भी कष्टकारिणी होती है॥८॥

ब्रह्मचारी प्रजाओं की सेवा करता हुआ जगत् में विचरण करता है। वह देवों का एक अंग होता है। उसी ब्रह्मचर्य से बृहस्पति ने भार्या को प्राप्त किया है, जिस प्रकार देव सोम द्वारा लाई गई आहुति को प्राप्त करते हैं॥९॥

(इस नियम के आधार पर) देवों ने (ब्राह्मणस्त्री को) पुनः दिया, मनुष्यों ने पुनः दिया। सत्य का पालन करने वाले राजालोग भी ब्राह्मणपत्नी को पुनः देते हैं॥१०॥

देवों द्वारा पापरहित कर के ब्राह्मण पत्नी पुनः दी जाकर पृथिवी की ऊर्जा का विभाग करके, बड़ी प्रशंसा करने योग्य देवता की (ब्राह्मण) उपासना करते हैं" ॥११ ॥

अथर्ववेद के पंचम काण्ड के सत्रहवें सूक्त में "ताराहरणाख्यान" के सम्बन्ध में ग्यारह मन्त्र पढ़े गए हैं ॥१२ ॥

तब वहाँ प्रमुख देवों ने, सभ्यों ने तथा व्यवस्थापकों ने स्त्री के सम्बन्ध में एक निश्चित नीति का निर्धारण किया ॥१३ ॥

उनकी नीति के अनुसार ब्राह्मण की पत्नी अपहरण किए जाने पर राष्ट्र में अनेक प्रकार की आपत्तियों को उत्पन्न करने वाली होती है (आपत्तिकारिणी हो जाती है) । इसलिए ब्राह्मण पत्नी का इसके पश्चात् अपहरण न किया जाये ॥१४ ॥

"जिसको ग्राम पर विपत्ति लाने वाली कहते हैं, ऐसी यह बन्धनों से मुक्त तारका है। ब्राह्मण की पत्नी राष्ट्र को विशेष रूप से उसी प्रकार हिला देती है (घोर आपत्ति में डाल देती है), जिस प्रकार उल्का-पतन से राष्ट्र (ग्राम) हिल जाता है (उल्का-पतन राष्ट्र के लिए एक दुश्चिह्न माना गया है) ॥१५ ॥

राष्ट्र में जो गर्भ गिरते हैं (बालकों की अकाल मृत्यु होती है), जो चलने वाले प्राणी नाश को प्राप्त होते हैं, जो वीर परस्पर लड़ते हैं, उनको ब्राह्मण की पत्नी ही मारती है ॥१६ ॥

ब्राह्मणभिन्न (अन्य वर्ण) की स्त्रियों के दस पति (अनेक) होते हैं, परन्तु यदि ब्राह्मण उसका (स्वयं की पत्नी का) हाथ पकड़ता है, तो वह उसका एक बार ही पति होता है। (ब्राह्मणभिन्न वर्ण में स्त्री के अनेक विवाह हो जाते हैं परन्तु ब्राह्मणी स्त्री का एक ही विवाह किया जाना नीति है) ॥१७ ॥

ब्राह्मण ही एक पति है, वैश्य और क्षत्रिय नहीं, ऐसा सूर्य पांचों मानवों (चार वर्ण और निषाद) को कहता हुआ चलता है। (ऐसा पंच मानवों के लिए शाश्वत नियम है)।।१८ ॥

जिस राष्ट्र में ब्राह्मण की पत्नी अज्ञान से प्रतिबन्धित की जाती है, उस राष्ट्र में सौ सन्तान उत्पन्न करने वाली, कल्याणकारिणी स्त्री भी तल्प (बिस्तर) पर शयन न करे ॥१९ ॥

(जिस राष्ट्र में अज्ञान से ब्राह्मण की स्त्री प्रतिबन्धित की जाती है) उस राष्ट्र में (घर में) विशिष्ट कानों वाला तथा भारी मस्तक वाला पुत्र नहीं होता है। उस राष्ट्र में लड़के सुवर्णालंकार धारण करके लड़कियों के सम्मुख नहीं जाते हैं ॥२० ॥

उस राष्ट्र में श्वेत-कर्ण और श्याम-कर्ण का घोड़ा धुरी में युक्त होकर महत्त्व को प्राप्त नहीं करता है, उस क्षेत्र में तालाब में कमल नहीं खिलते हैं और कमल में बिसतन्तु उत्पन्न नहीं होते हैं ॥२१ ॥

उस राष्ट्र में जो उन गायों का दोहन करने बैठते हैं, उनके लिए वे गायें दुहती नहीं हैं (दूध नहीं देती हैं), जिस राष्ट्र में ब्राह्मण की पत्नी अज्ञानवश प्रतिबन्धित की जाती है ॥२२ ॥

जिस राष्ट्र में ब्राह्मण स्त्री से विहीन रह कर पापबुद्धि से युक्त होकर रहता है, उस राष्ट्र में न ही कल्याणकारी गौ होती है तथा न ही बैल धुरा सहन कर सकता है। (बैल कार्य करने की क्षमता से रहित हो जाते हैं) ॥२३ ॥

(७) गवार्थे देवानां पणिभिः संग्रामः ॥२ ॥

गावो बृहस्पतेः प्राग् बलेन पश्चादिमाश्च देवानाम्।
पणिभिर्मुषितास्ताः पुनरादातुं घोरविग्रहः समभूत् ॥१ ॥
"यदा पणीं रराधसो निवाधस्व महाँ असि।
नहि त्वा कश्चन प्रति॥ (८।६४।२) ॥२ ॥
अयं ते मानुषे जने सोमः पुरुषु सूयते।
तस्ये हि प्रद्रवा पिव॥(८।६४।१०) ॥३ ॥
अयं ते शर्य्यणावति सुषो मातामधिप्रियः।
आर्जीकीये भदिन्त मः॥"(८।६४।११) ॥४ ॥
इत्थं पणिनिग्रहणे विपाड् विनिर्गमगिरौ कृतं सवनम्।
पणिसरमासंवादो दशमेऽष्टशते॥ (१०।१०८) प्रदर्शितः सूक्ते ॥५ ॥

(७) गायों के लिए देवों का पणियों के साथ संग्राम

पणियों द्वारा पहले बृहस्पति की गायों का और फिर देवों की गायों का बलपूर्वक हरण किया गया, जिन्हें वापस लाने के लिए घोर युद्ध हुआ ॥१ ॥

ऋग्वेद में लिखा है —"हे इन्द्र ! तुम महान् हो ! यज्ञ के लिए धन न देने वालों को पांवों से कुचल डालो। तुम्हारा कोई भी प्रतिद्वन्द्वी नहीं है॥" (८/६४/२) ॥२ ॥

"हे इन्द्र ! यह सोम तुम्हारे लिए मनुष्यों और श्रेष्ठ नागरिकों के बीच में निचोड़ा जाता है। तुम दौड़कर आओ और इसका पान करो॥" (८/६४/१०) ॥३ ॥

"यह सोम शर्यणावत प्रदेश में सुषोमा नदी पर होने वाला तथा पात्र में रखा हुआ, तुम्हारा प्रिय तथा उत्साहवर्धक है॥ (८/६४/११) ॥४ ॥

इस प्रकार पणियों का निग्रह करने पर विनिर्गम पर्वत पर सोमलता को कूट कर सोम का सवन किया गया। ऋग्वेद के दशम मण्डल के एक सौ आठवें सूक्त में "सरमापणि" संवाद का वर्णन किया गया है ॥५ ॥

(८) भूम्यर्थे देवानां दैत्यदानवैः संग्रामः ॥३ ॥

"तत्र प्राक् प्रक्रान्तयज्ञोपयुक्तभूमेर्देवदायत्वम्।"
देवा असुराः सर्वे प्राक् सयुजः सह वसन्त एवासन्।
देवाः शान्ता विबुधा असुरास्त्वासन् महोद्धता बलिनः ॥१ ॥
सर्वां पृथ्वीं प्रबला आक्राम्यन्तासुरा यर्हि।
देवास्तत्र विरोधं चक्रुस्तद्भागलाभाय ॥२ ॥
असुरा ऊचुर्यावद् भूमिर्यज्ञाय विष्णुविधृतास्ति।
देवेभ्यो दास्यामो वेदिमितां तावदेव भूमिमिमाम् ॥३ ॥

नाकविभागे कश्चिद् यज्ञविधानाय विष्णुना विधृतः ।
खर्वः प्रदेश आसीत्तावत् प्रतिजज्ञिरेऽसुरास्तेभ्यः ॥४ ॥
देवास्तदौषधीनां मूल्यान्युच्छिद्य पूर्वपश्चिमतः ।
महतीं वेदीं कृत्वाऽऽहवनीयं पूर्वतो न्युदधुः ॥५ ॥
यज्ञोपकरणभागैराच्छन्द्यैतां महावेदीम् ।
देवयजनमयभूमिं लब्ध्वा लोकैस्त्रिभिर्व्यभजन् ॥६ ॥
एतद्वाजसनेयब्राह्मणके श्रूयते चरितम् ।
काण्डस्य प्रथमस्य प्रपाठके तु द्वितीये हि ॥७ ॥(शत०१ ।२)

(८) भूमि के लिए देवों का दैत्यों और दानवों से संग्राम

"पुराकाल में यज्ञ के योग्य विशाल भूमि पर देवों का आधिपत्य था" पूर्व में देव और असुर एक साथ मिलकर रहते थे। देव शान्त परन्तु बुद्धिमान् थे और असुर उद्धत और बलवान् थे ॥१ ॥

जब प्रबल असुरों ने सम्पूर्ण पृथ्वी को घेर लिया तब देवों ने अपना भाग प्राप्त करने के लिए विरोध किया ॥२ ॥

असुरों ने कहा कि विष्णु ने जितनी भूमि यज्ञ के लिए धारण की है, उतनी वेदी मात्र माप की भूमि ही हम देवों को प्रदान करेंगे ॥३ ॥

स्वर्ग विभाग में विष्णु ने किसी यज्ञ का विधान करने के लिए किसी खर्व (दस अरब संख्या माप के अथवा छोटे से) प्रदेश को धारण किया था। असुरों ने उतनी ही भूमि देवों को प्रदान करने की प्रतिज्ञा की ॥४ ॥

तब देवों ने पूर्व और पश्चिम से औषधियों के मूल को काट कर बड़ी वेदी बनाकर वहाँ आहवनीय कुण्ड (वेदी) की स्थापना की ॥५ ॥

यज्ञ के उपकरण भागों से इस महावेदी को घेर कर, देवयजन-योग्य भूमि को प्राप्त करके तीनों लोकों में विभाजित कर दिया ॥६ ॥

यह चरित "वाजसनेय ब्राह्मण" के प्रथम काण्ड के द्वितीय प्रपाठक में सुना जाता है ॥७ ॥

(९) देवत्रैलोक्यादसुराणां बहिष्कारः ।

अररुरदेवो मानुषभूमौ न्युषितो निराकृतः सततः ।
ऐच्छद्दिवमुपगन्तुं किन्त्वग्निस्तं न्यषेधयत् तस्मात् ॥१ ॥
तदपाररुमिति मन्त्रव्याख्याने शतपथे कथितम् ।
काण्डस्य प्रथमस्य प्रपाठके तु द्वितीये च ॥२ ॥(शत. १ ।२)

(९) देवत्रिलोकी से असुरों का बहिष्कार

अररु नाम का जो अदेव था वह मनुष्यों की भूमि में निवास करता था। उसे वहाँ से हटा दिये जाने पर वह द्युलोक में जाने की इच्छा करने लगा, परन्तु वहाँ से अग्नि ने उसका निषेध कर दिया ॥१ ॥

यह चरित शतपथ के प्रथम काण्ड के द्वितीय प्रपाठक "अपाररु मन्त्र-व्याख्यान" में कहा गया है ॥२ ॥

(१०) देवयजनभूमेस्त्रैलोक्यविभक्ताया ऐश्या संज्ञा। (एशिया)

भारतवर्षं पृथिवी हैमवतं वर्षमन्तरिक्षं स्यात्।
उत्तरमब्धि यावत् कुरुवर्षान्तं त्रिविष्टपं तु द्यौः ॥१ ॥
ब्रह्मण एकं विष्टपमपरं विष्णोस्तृतीयमिन्द्रस्य।
एभिस्त्रिभिरधिपतिभिः स्वर्गो लोकस्त्रिविष्टपं भवति ॥२ ॥
अपि मैत्रिसंहितायां विष्णुमुखानामयं स्वर्गः।
असुरान् प्रणुद्य लब्धः प्रथमचतुर्थे निरुक्तोऽस्ति ॥३ ॥(मैत्रा०सं०१ ।४)
देवेभ्यस्त्रैलोक्यं यावद् व्यभजत् स्वयंभूः सः।
तदभूत् प्रसिद्धमासुरभाषायामैशिया नाम ॥४ ॥
ईशो मनुः स्वयंभूस्त्रैलोक्येऽस्मिन् स्वयं न्यवसत्।
तस्मादियं त्रिलोकी प्रथिताभूदैशिया नाम्ना ॥५ ॥

(१०) त्रैलोक्य में विभाजित देवयजन भूमि की ही एशिया संज्ञा

यह भारतवर्ष पृथ्वी है, हैमवतवर्ष अन्तरिक्ष है तथा उत्तरसमुद्र से कुरुवर्ष पर्यन्त त्रिविष्टप है, और यही द्यौ है ॥१ ॥

पहला ब्रह्मा का विष्टप है, दूसरा विष्णु का और तृतीय इन्द्र का विष्टप है। इन तीनों स्वामियों के कारण ही स्वर्गलोक त्रिविष्टप कहलाता है ॥२ ॥

मैत्रायणी संहिता के प्रथम काण्ड, चतुर्थाध्याय में लिखा है — "विष्णुमुख देवों के द्वारा यह स्वर्ग असुरों को हटा कर प्राप्त किया गया है ॥" (मैत्रा.सं० १/४) ॥३ ॥

उस स्वयंम्भू ने देवों के लिए जितने त्रैलोक्य का विभाजन किया वह त्रैलोक्य भाग आसुर भाषा में "एशिया" नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥४ ॥

इस त्रैलोक्य में स्वयंम्भू ईश मनु निवास करता था, इसलिए यह त्रिलोकी "एशिया" के नाम से प्रसिद्ध हुई ॥५ ॥

(११) "दहरैशिया स्वायंभुवी।"
(एशियामाइनर)

त्रैलोक्यमैशियाख्यं देवेभ्यो वसतयेऽभवन्नियतम्।
तस्यान्तरतः क्षुद्रैशियाख्यदेशः स्वयंभुवोस्य मनोः ॥१ ॥
सोयं प्रथमो देशस्तत्र प्रथमे नरा अभवन्।
अत्र जलप्लावननौ स्तब्धाऽद्रौ चाक्षुषेऽन्तरे हि मनोः ॥२ ॥
तारसशैलात् प्राच्यां योऽयं शैलोस्त्यरारातः।
मत्स्यस्तत्र हि चाक्षुषमनुनौकां श्रृङ्गतो दध्रे ॥३ ॥
निषधकुलाद्रेः शाखाशैलः पश्चादरारातः।
तत्पश्चादिह तारसशैलोऽस्ति च रोमके देशे ॥४ ॥
सप्तत्रिंशेऽक्षांशेऽथोज्जयनात् तारसः स पश्चिमतः।
एकत्रिंशादंशात् षट्चत्वारिंशदंशान्तः ॥५ ॥
पश्चिमसमुद्रकूलप्रान्ते स हि तारसः शैलः।
निषधकुलाद्रेः पश्चिमसीमा सेयं त्रिलोक्याश्च ॥६ ॥
आसीत् तारकनामा पुराऽसुरस्त्रिपुरनिर्म्माता।
तारकनिवासहेतोस्तारसशैलोयमाख्यातः ॥७ ॥
वज्राङ्गापरनामा तारो नामाऽसुरः पूर्वम्।
आसीत् तस्य च तारकनाम्ना पुत्रोऽभवत् प्रबलः ॥८ ॥
ब्रह्मकृपावशतः स हि शार्विकतीर्थे महीसमुद्रतटे।
स्वमुपनिवेशं चक्रे तारस्याख्ये महीधरप्रवरे ॥९ ॥
तारस्तस्य पितासीत् तस्मात् स्वावासपर्वतस्यास्य।
तारस्येत्यभिधानं चक्रेऽसौ तारको मन्ये ॥१० ॥
तारस्य पर्वतोऽयं यस्मिन् प्रान्तेऽस्ति तं पुरा प्राहुः।
शार्विकतीर्थनाम्ना स्कान्दकुमारे स्मृतं खरा(२२) ध्याये ॥११ ॥
तं च प्रान्तं व्यदधान्मेरुसमं मेरुसमसूत्रम्।
दैवं स्वर्गमिवासुरमेतं स्वर्गं स नामतश्चक्रे ॥१२ ॥
पृथ्व्यन्तरिक्षकं द्यौरित्थं देवस्त्रिलोकमातेनुः।
तत् प्रतिकृत्या त्वसुरास्त्रिपुरं व्यदधुर्महीसमुद्रतटे ॥१३ ॥
त्रिंशे तूरगिरौ भुवि लौही; त्रिपुरी तु राजती वियति।
पञ्चत्रिंशे सप्तत्रिंशे दिवि तारसे गिरौ हैमी ॥१४ ॥
देवस्वर्गं त्वैश्याशब्देनोचुः पुराऽसुरा यद्वत्।
ऐश्याशब्देनैव प्रोचुः स्वर्गं तमासुरं तद्वत् ॥१५ ॥

(११) स्वयंम्भू की दहरैशिया (एशिया माइनर) संज्ञा

एशिया नाम का यह त्रैलोक्य देवों के निवास के लिए नियत हुआ। इसके आगे का "क्षुद्रेशिया" (एशिया माइनर) नाम का स्थान स्वयंम्भू मनु का निवास स्थान था ॥१ ॥

यह वह पहला देश था, जहाँ पहले मनुष्य हुए थे। यहीं पर्वत पर चाक्षुष मनु की नौका जलप्लावन के पश्चात् ठहरी थी ॥२ ॥

तारस पर्वत के पूर्व में जो अरारात नाम का पर्वत है, वहीं चाक्षुष मनु की नाव को मत्स्य ने अपने सींग से धारण किया था ॥३ ॥

निषध पर्वत की पश्चिमी शाखा पर्वत अरारात पर्वत है, जिसके पश्चिम में रोम देश में यह तारस पर्वत हैं ॥४ ॥

यह तारस पर्वत उज्जयिनी से पश्चिम में ३७° अक्षांश पर है, जो कि देशान्तर रेखा के ३१°-४६[१] पर्यन्त स्थित है ॥५ ॥

पश्चिम समुद्र के किनारे पर यह तारस पर्वत स्थित है, जो निषध पर्वत की पश्चिमी सीमा है और यही त्रिलोकी की भी पश्चिमी सीमा है ॥६ ॥

पुराकाल में त्रिपुर का निर्माण करने वाला तारक नाम का असुर हुआ था। उस तारकासुर के निवास करने के कारण ही यह पर्वत तारस नाम से कहा गया ॥७ ॥

पहले वज्रांग जिसका अपर नाम था, ऐसा तार नाम का राक्षस हुआ था । उसके तारक नाम का एक अत्यन्त बलवान् पुत्र हुआ ॥८ ॥

ब्रह्मा की कृपा से महीसागर के किनारे पर शार्विक तीर्थ में तारस नाम के श्रेष्ठ पर्वत पर उसने अपना उपनिवेश बनाया ॥९ ॥

तार उस तारक का पिता था, उस तारक ने अपने इस निवास पर्वत का नाम तारस्य रखा, ऐसा मैं मानता हूँ ॥१० ॥

यह तारस्य पर्वत जिस प्रान्त में है, उसको पुराकाल में शार्विक तीर्थ कहा गया है। ऐसा स्कन्द पुराण के बाइसवें अध्याय में वर्णन किया गया है ॥११ ॥

उस मेरु के समान प्रान्त को मेरु के सम-सूत्र पर निर्मित किया गया और देवस्वर्ग के समान उसको आसुर स्वर्ग का नाम दिया गया ॥१२ ॥

देवों ने जिस प्रकार पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौ नाम से त्रिलोकी की स्थापना की थी उसकी प्रतिकृति रूप में असुरों ने महीसागर के किनारे पर त्रिपुर की कल्पना की ॥१३ ॥

पृथ्वी पर ३०° अक्षांश पर तूरगिरि पर लौह नगरी, ऊपर अन्तरिक्ष में ३५° अक्षांश पर राजती नगरी थी तथा ३७° अक्षांश पर द्युलोक में तारस पर्वत पर स्वर्ण नगरी थी, और असुरों की त्रिपुरी थी ॥१४ ॥

जैसे प्राचीन समय में असुरों ने देव-स्वर्ग को एशिया शब्द से कहा, वैसे ही उस आसुर-स्वर्ग को भी एशिया शब्द से कहा गया ॥१५ ॥

(१२) आसुरदेशास्त्रैलोक्यविभक्ताः।

दायविभागे ब्रह्मा देवेभ्यस्त्रीन् ददौ यथा लोकान्।
तद्वत् त्रीनसुरेभ्योऽप्यन्यान् देशान् ददौ बृहतः ॥१॥
विपुलास्त्रयः प्रदेशा असुरेभ्यो येऽर्पितास्ते तु।
अमरौकोऽप्यपरौको यवरूपश्चोदिता असुरैः ॥२॥

(१२) आसुर देश भी त्रिलोक्य में विभाजित

उत्तराधिकार रूप में ब्रह्मा ने जिस प्रकार देवों के लिए तीन लोक प्रदान किये थे, उसी प्रकार असुरों को भी अन्य तीन बड़े देश प्रदान किये ॥१॥

वे तीन प्रदेश जो असुरों को प्रदान किये गये थे उनको असुरों ने अमरौक (अमरीका), अपरौक (अफ्रीका) और यवरूप (यूरोप) नाम से कहा ॥२॥

(१३) "देवत्रिलोक्यामसुराक्रमणम्।"

असुरास्तत्र बलिष्ठाः स्वान् लोकान् सम्यगासाद्य।
दैव्यामपि त्रिलोक्यामाचक्रमिरे हठादनीतिस्था ॥१॥
स्वायंभुवं तु देशं प्रकल्प्य तीर्थं मनुप्रणाममिषात्।
असुरास्ते मनुसविधे यातायातं प्रचक्रिरे प्रायः ॥२॥
क्रमशो विरोधमाप्ता अफरीकातोऽप्युपागता असुराः।
स्वायंभुवमनुदेशानैश्यामायिनरसंज्ञकानजयन् ॥३॥
तस्मिन् देशे योऽभूद्देवासुरविग्रहस्तत्र।
असुरा व्यजयन्तामी तेन ततः प्रान्त आसुरः सोऽभूत् ॥४॥
पूर्वे काले केचिदासन्नदेवा देवेभ्यो यैस्ते जिताः सर्वदेशाः।
तेषां वंशे रोमकाद्या अभूवंस्तेऽर्वाक्कालेऽन्यान्यरूपैर्विभेजुः ॥५॥
असुरो रोमक आसीत् तन्नाम्ना रोमकोऽभवद्देशः।
तद्वंश्यैरिह पश्चात् प्रान्तविभागोऽसुरैः क्लृप्तः ॥६॥
आर्मीनिया च कुर्दिस्थानं वा शामदेशश्च।
अर्वः फीलिस्थानं मेशोपोटेमिया चेति ॥७॥
आर्मीनियाप्रदेशे योयं शैलोऽस्त्यरारातः।
जूदीपर्वत उक्तो म्लेच्छैः पूर्वं स युद्धहेतुत्वात् ॥८॥
जूदीशैलप्रभृतिर्देशो भूमध्यसागरान्तो यः।
देवासुरसंग्रामास्तत्रैवासन् सुविस्तृते प्रान्ते ॥९॥
देवासुरसंग्रामाः कुर्दिस्थाने बभूवुरधिकाः प्राक्।
कतिधा देवाः कतिधा त्वसुरा देशानिमान् जिग्युः ॥१०॥

असुराणां बलमधिकं मेशोपोटेमियादेशे।
तस्मादसीरियेति प्रख्यातेऽभूदयं देशः ॥११ ॥
ये कालकञ्जकालकदौर्हृदमौर्य्याश्च कालकेयास्ते।
कालदियाख्ये देशे (केलडिया) न्यूषुर्यमिराक इत्याहुः ॥१२ ॥
असुरागमनद्वारं यत आसीच्छामदेशोऽयम् ।
तेनारुध्यत स सुरैस्तस्मादुक्तः स सीरियानाम्ना ॥१३ ॥

(१३) देवत्रिलोकी पर असुरों का आक्रमण

उन बलवान् असुरों ने अपने असुरलोकों को भली प्रकार वश में कर के देवत्रिलोकी पर भी अनीति और हठपूर्वक आक्रमण कर दिया ॥१ ॥

असुरों ने मनु को प्रणाम करने के बहाने से स्वायम्भ नाम के देश को तीर्थ बनाव कर मनु के पास प्रायः आवागमन प्रारम्भ कर दिया ॥२ ॥

क्रमशः विरोध को प्राप्त भी अफ्रीका देश से आये असुरों ने एशिया माइनर नाम से प्रसिद्ध स्वायम्भुव मनु के देश को जीत लिया ॥३ ॥

उस स्वायम्भुव मनु के देश में जो देवासुरसंग्राम हुआ उसमें असुर लोग विजयी रहे और इसीलिए तब से ही वह प्रान्त आसुर प्रान्त हो गया ॥४ ॥

पूर्वकाल में जो कोई अदेव (असुर) थे, उन्होंने देवों से समस्त प्रदेश जीत लिये। उनके वंश में रोमक आदि उत्पन्न हुए, जो उत्तरकाल में विभिन्न नामों से बंट गये ॥५ ॥

रोमक नाम का एक असुर था, जिसके नाम से ही रोमक नाम का देश बना। बाद में उस रोमक नाम के राक्षस के वंशज राक्षसों द्वारा उस प्रान्त का विभाजन कर दिया गया ॥६ ॥

यह देश जिन देशों के रूप में विभाजित हुआ, वे हैं – आर्मीनिया, कुर्दिस्थान, शामदेश (सामदेश), अरब, फिलीस्थान और मेसोपोटेमिया ॥७ ॥

आर्मीनिया नाम के प्रदेश में जो अरारात नाम का पर्वत है, म्लेच्छों ने युद्ध के कारण जिसका नाम जूदी पर्वत रख दिया ॥८ ॥

भूमध्य सागर पर्यन्त जो जूदी पर्वत इत्यादि प्रान्त हैं, प्राचीनकाल में उसी विस्तृत प्रान्त में देवासुरसंग्राम हुए थे ॥९ ॥

प्राचीनकाल में सर्वाधिक देवासुरसंग्राम कुर्दिस्थान प्रान्त में हुए थे, जिनमें अनेक बार देवों ने और अनेक बार असुरों ने इन देशों को जीता ॥१० ॥

मेटोपोटेमिया देश में असुरों की सेना अधिक थी। इसीलिए यह देश असीरिया नाम से प्रसिद्ध हुआ।

जो कालकंज, कालक, दौर्हृद और मौर्य थे, वे कालकेय जाति के लोग थे। वे कालदिया (केलड़िया) नाम के देश में निवास करते थे, जिसे आज ईराक नाम से कहा जाता है ॥१२ ॥

असुरों के आने का जो मार्ग था यह सामदेश था और जिस देश में देवताओं के द्वारा असुरों को रोका गया वह देश सीरिया नाम से कहा गया ॥१३ ॥

(१४) इन्द्रविष्णुभ्यां वराहासुरप्रतीकारः।

सर्वत्र देवानसुराः पुरस्तान्न्यपीडयन् तत्प्रतिकारहेतोः।
देवा अपीमानसुरान्निजध्नुः स एष देवासुरसंप्रहारः ॥१॥
स्वर्गे सुराणामधिपः स इन्द्रः सर्वाः प्रजाः प्रत्यहभोजनेन।
तद्रक्षणेनापि सभाजयंस्ता न्ययोजयत् कर्म्मसु नित्यमासाम् ॥२॥
संवत्सरान्त्येऽह्नि सबालवृद्धाः प्रजा अगण्यन्त तदर्थमन्नम्।
संवत्सरोपक्रमदेयमासीत् तद्रामममारक्षति वामदेवः ॥३॥
धनं गृहं मार्गसरो वनादि वा सर्वं पृथक् रुद्रगणैररक्ष्यत।
रुद्रा अनन्ता अभवन् प्रभुस्त्वभूदीशान एको दिवि देवसंसदि ॥४॥
वामान्नरक्षाऽधिकृतो बभूव यः स वामदेवः खलु नामतोऽभवत्।
वामं तदन्नं परिरक्षितं वसोर्धारानगर्य्यांध्रियते स्म संकूचितम् ॥५॥
ज्येष्ठः सुतो ब्रह्मण औरसो वसोर्धारानगर्य्यां विनियुक्त आबभौ।
ओंकारनामैष तदाज्ञया प्रजास्वन्नं वितीर्णं भवति स्म तन्मुहुः ॥६॥
तदन्नमाहर्तुमनेकधा व्यधादुपद्रवं दानवसंघ आकुलम्।
ओंकार एषः प्रतिचक्र आक्रमं स वामदेवः प्रहरंस्तमासुरम् ॥७॥
एमूषसंज्ञस्त्वसुरो वराहोपाख्यस्तदासीद् गिरिसप्तकस्य।
स्थितः परस्तात् स हि वाममन्नं क्रमात्तदाक्रम्य जहार सर्वम् ॥८॥
यासीद् वराहस्य पुरी तथा वसोर्धारापुरी या पथि चान्तरे तयोः।
पुर्य्योऽश्ममय्यो बभुरेकविंशतिर्वामं स तासां परतो मुमोष ह ॥९॥
यो लोकपालोन्नकुलस्य विष्णुस्तस्थौ सुधर्म्मा सदसि प्रशास्ता।
श्रुत्वाऽसुराक्रान्तिमयं जगामाऽविज्ञात एमूषवराहदेशान् ॥१०॥
अन्वेषयन्विष्णुमियाय चेन्द्रस्तत्रैव कालेन वराहदेशे।
इन्द्रश्च विष्णुश्च विधाय मन्त्रं स्वं स्वं पृथक् कर्म्म तदाध्यवास्थत् ॥११॥
उरुक्रमो विष्णुरयं पुरस्तादाचक्रमे चानुमते मघोनः।
वराहमातुः सवनत्रयार्थं प्रक्लृप्तमन्नं स जहार सद्यः ॥१२॥
महानसे यत् पचतं गृहे वा चार्वन्नवर्गो निहितोऽस्य मात्रा।
तत्सर्वमेषोऽपजहार विष्णुः क्षीरौदनं वा महिषान् शतं च ॥१३॥
ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
इति विष्णोः क्रियानीतिः सोन्नमन्नमुषोऽहरत् ॥१४॥
इन्द्रः पुरीस्ता व्यधमद् गिरींस्तान्दुर्गान् परास्थन्निजघान योद्धृन्।
अविध्यदेमूषवराहवक्षः स्थलं गतप्राणममुं स चक्रे ॥१५॥
स वाममोषे निहते वराहे पुरीषु तस्याश्ममयीषु गुप्तम्।

वामं यदन्नं मुषितं तदासीत् तत् सर्वमप्याहरदेष विष्णुः ॥१६ ॥
ऋक्संहितायां प्रथमे तु मण्डले तदेकषष्टिप्रमितेऽस्ति सूक्तके।
सूक्तेऽष्टमस्यास्ति च सप्तसप्ततिप्राये तदाख्यानमिदं प्रदर्शितम् ॥१७ ॥
"अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना।
मुषा यद् विष्णुः पचतं स हीमान् विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥१८ ॥
विश्वेत् ता विष्णुराभरदुरुक्रमस्त्वेषितः।
शतं महिषन्क्षीरपाकमोदनं वराहमिन्द्र एमुषम्" ॥१९ ॥ (८ ।७७ ।१०)
व्याख्यातमेतद्ध्यपि तैत्तिरीयके षष्ठद्वितीयस्य तुरीयभागके।(तै०६ ।२ ।४)
निदर्शनं तावदिदं प्रदर्शितं तथाऽन्ययुद्धान्यपि कानिचिद् विदुः ॥२० ॥
"विष्णुर्यज्ञो देवेभ्य आत्मानमन्तरधात् तमन्यदेवता नाविदन्।
इन्द्रस्त्ववेत्। विष्णुरिन्द्रमब्रवीत्—को भवानिति। इन्द्रोऽब्रवीत्—
दुर्गाणामसुराणां हन्ताऽहम्। भवान् कः। विष्णुरब्रवीत्।
अहं दुर्गादाहर्ताऽस्मि। त्वं तु दुर्गहन्ताऽसीत्यतो वराहमसुरं जहि।
स हि वराहो वाममुष एकविंशत्या पुरां पारेऽश्ममयीनां वसति।
तस्मिन्नसुराणां वसुवाममस्ति। तत इन्द्रस्ताः पुरो भित्वा वराहस्य
हृदयमविध्यत्।
ततस्तत्र यदासीत्— तद्विष्णुराहरत्" ॥ २१ ॥
यज्ञोऽन्नमन्नस्य पतिः स विष्णुदेवाननुक्त्वैव वराहमागात्।
किं कर्तुकामोऽत्र भवानुपागादित्याह यत् प्राह भवान् क एवम् ॥२२ ॥
भूयोऽप्येवं देवतानां त्रिलोक्या ाक्रम्यन्तात्युग्रचेष्टा अदेवाः।
इन्द्रो विष्णुस्तत्प्रतीकारहेतोरास्तां नित्यप्रोद्यतौ धर्म्मधीरौ ॥२३ ॥

इन्द्रस्य कर्तव्यं कर्म्माख्यातं स्कान्दे कौमारखण्डे एकोनत्रिंशाध्याये

"इन्द्रो दिशति भूतानां बलं तेजः प्रजाः सुखम्।
प्रज्ञां प्रयच्छति तथा सर्वान् दायान् सुरेश्वरः ॥१ ॥
दुर्वृत्तानां स हरति वृत्तस्थानां प्रयच्छति।
अनुशास्ति च भूतानि कार्य्येषु बलवत्तरः ॥२ ॥
असूर्य्ये च भवेत् सूर्य्यस्तथाऽचन्द्रे च चन्द्रमाः।
भवत्यग्निश्च वायुश्च पृथिव्यां जीवकारणम् ॥३ ॥
एतदिन्द्रेण कर्तव्यमिन्द्रो हि विपुलं बलम्" ॥इति ॥

(१४) इन्द्र और विष्णु द्वारा वराह नाम के असुर का प्रतीकार

प्राचीन काल में सदैव सर्वत्र असुरों ने देवों को पीड़ित किया है। अत: इसके प्रतिकार के लिए देवों ने भी इन असुरों का वध किया और यही वह देवासुरसंग्राम था ॥१ ॥

स्वर्ग में देवाधिपति इन्द्र प्रतिदिन समस्त प्रजा को भोजन प्रदान कर के और उनकी रक्षा से भी सम्मान करता था (पालन करता था) और प्रजा को नित्य तत्तत्कार्यों में नियोजित करता था ॥२ ॥

संवत्सर के अन्तिम दिन में बाल-वृद्ध सहित समस्त प्रजाएँ इन्द्र के लिए अन्न की गणना करती थीं। वह अन्न जो संवत्सर के प्रारम्भ में इन्द्र के लिए अर्पण करने हेतु था, उस अन्न का रक्षण वामदेव करते थे ॥३ ॥

धन-सम्पत्ति, गृह-भूमि, सरोवर और वन इत्यादि सबकी अलग अलग रुद्रगणों द्वारा रक्षा की जाती थी। ये रुद्रगण अनेक थे, परन्तु उनका प्रभु द्युलोक की देवसभा में ईशान नाम का एक ही स्वामी था ॥४ ॥

जिसको वामान्न की रक्षा के कार्य के लिए अधिकृत किया गया था, वे वामदेव नाम से कहलाये। यह वामान्न वसोर्धारा नाम की नगरी में एकत्रित किया गया था, वहाँ इसकी रक्षा की जाती थी ॥५ ॥

यह वामदेव ब्रह्मा के ज्येष्ठ औरस पुत्र थे, जो वसोर्धारा नाम की नगरी का अधिकारी नियुक्त किया गया था। इसी का नाम ओंकार था, जिसकी आज्ञा से ही बार-बार प्रजा में अन्न का वितरण किया जाता था ॥६ ॥

उस वामान्न को छीनने के लिए दानवसमूह ने अनेक बार भयानक उपद्रव किये। इन्हीं ओंकार नाम के वामदेव ने आसुर बल पर प्रहार करके इन आक्रमणों का प्रतिकार किया ॥७ ॥

गिरिसप्तक के उस पार एक वराह नाम की उपाधि से युक्त एमूष नाम का असुर था, जिसने आक्रमण करके इस सम्पूर्ण वामान्न का हरण कर लिया ॥८ ॥

जो वराह की नगरी और वसोर्धारा नगरी थी, उन दोनों के मध्य भाग में इक्कीस पाषाणमयी नगरियाँ थीं। उन नगरियों में वह अन्न छीन कर रख लिया ॥९ ॥

विष्णु नाम का जो अन्नकुल का लोकपाल था, वह देवसभा में प्रशासक के रूप में रहता था, वह असुरों के आक्रमण को सुन कर अविज्ञात रूप से एमूष वराह नाम के देशों को चला गया ॥१० ॥

इसी समय इस वराह देश में गये हुए इस विष्णु को ढूंढते हुए इन्द्र वहाँ पहुँचे और इन्द्र और विष्णु परस्पर मन्त्रणा करके अपने अपने कर्म पर स्थित हुए (अपना अपना कर्म निश्चित किया) ॥११ ॥

उरुक्रम (अत्यन्त पराक्रमी) विष्णु ने पहले इन्द्र की अनुमति से आक्रमण किया और उसने वराह की माता के सवनत्रय (तीनों प्रकार के यज्ञ) के लिए एकत्रित सम्पूर्ण अन्न का शीघ्र ही हरण कर लिया ॥१२ ॥

वराह असुर के घर में अन्न था अथवा रसोईघर में जो अन्न-समूह रखा था, जो अन्न इस वराह की माता के पास रखा था, इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण दूध-भात, सैंकड़ों भैंसे, इन सबका विष्णु ने शीघ्र ही हरण कर लिया ॥१३॥

विष्णु की कार्य-नीति है कि "जो जैसे मुझे भजता है (मानता है), मैं भी उसकी उसी तरह से पालना करता हूँ (मानता हूँ) ।" अतः विष्णु ने उस अन्नचोर के सम्पूर्ण अन्न का हरण कर लिया ॥१४॥

इस प्रकार उस इन्द्र ने वराह की नगरी का नाश कर दिया, उस नगरी के पर्वत और दुर्गों को ध्वस्त कर दिया तथा योद्धाओं को मार दिया। एमूष वराह असुर के वक्षःस्थल को विदीर्ण करके उसे गतप्राण कर दिया (मार दिया) ॥१५॥

उस विष्णु ने उस वामान्न की चोरी करने वाले वराह के मारे जाने पर उसकी पाषाणमयी नगरियों में चुरा कर छिपाया हुआ जो अन्न था, उस सम्पूर्ण अन्न का हरण कर लिया ॥१६॥

ऋक्संहिता के प्रथम मण्डल के इकसठवें सूक्त में तथा आठवें मण्डल के सतत्तरवें सूक्त में इस आख्यान का वर्णन किया गया है ॥१७॥

ऋग्वेद के (१/१६) में लिखा है — जगत् का निर्माण करने वाले उस महान् इन्द्र ने यज्ञों के लिए रखे हवि और उत्तम सोम को शीघ्र ही पी लिया तथा सर्वव्यापक विष्णु ने शत्रुओं के पके हुए अन्न को चुराया और शत्रु को मारने वाले, वज्र को फेंकने वाले इन्द्र ने वक्र गति करके मेघ का संहार किया ॥(१/६१/७) ॥१८॥

और (८/७७) में लिखा है — " हे इन्द्र ! तुम से प्रेरित होकर महान् पराक्रमी विष्णु सौ बलवान् बैलों को, दूध में पके हुए भात तथा जल से भरे हुए मेघों को, उन सम्पूर्ण पदार्थों को ले आये ॥(८/७७/१०) ॥१९॥

यद्यपि तैत्तिरीय उपनिषद् के ६/२/४ में जितने युद्धों का वर्णन है वे उदाहरण रूप में प्रदर्शित किये गये हैं, तथा अन्य भी कुछ युद्ध हुए हैं, ऐसा बताया गया है ॥२०॥

यज्ञस्वरूप विष्णु ने देवताओं से स्वयं को छिपा लिया, जिसको अन्य देवता पहचान नहीं सके। परन्तु इन्द्र ने इसे पहचान लिया। विष्णु इस इन्द्र से बोले — "आप कौन हैं?" इन्द्र बोले — "मैं असुरों के दुर्गों का हरण करने वाला हूँ — "आप कौन हैं?" विष्णु ने कहा — "मैं दुर्गों से आहरण करने वाला हूँ।" तुम तो दुर्गों को नष्ट करने वाले हो, इसलिए वराह असुर का संहार करो। वह वराह वामभाग का हरण करने वाला है, पाषाणमयी इक्कीस नगरियों के उस पार निवास करता है। उसमें असुरों का धन और वामान्न है।" तब इन्द्र ने उन पुरों को नष्ट करके वराह असुर के हृदय को विदीर्ण कर दिया। तब वहाँ जो कुछ भी था उसका विष्णु ने आहरण कर लिया ॥२१॥

यज्ञ रूप जो अन्न है, उस अन्न के स्वामी वह विष्णु देवताओं को बताये बिना ही वराह के पास चले गये। जब विष्णु से पूछा गया कि आप क्या करने के लिए यहाँ आये है? तो विष्णु ने उत्तर दिया — आप कौन हैं (इस प्रकार पूछने वाले)? ॥२२॥

फिर से जब देवताओं की इस त्रिलोकी में आक्रमण करते हुए अत्यन्त उग्र चेष्टा वाले अदेवों ने आक्रमण किये तो विष्णु और इन्द्र धर्म और धैर्य से युक्त (धर्म-धीर) नित्य तैयार रहते थे ॥२३॥

स्कन्द पुराण के कौमार-खण्ड के उन्तीसवें अध्याय में इन्द्र के कर्तव्य और कर्मों का वर्णन किया गया है।

"इन्द्र समस्त प्रजाओं को तेज, बल, सन्तान, सुख व बुद्धि प्रदान करता है। और सुरेश्वर इन्द्र अन्य भी समस्त देने योग्य वस्तुएँ देता है ॥१॥

यह इन्द्र दुराचारियों का सर्वस्व हरण कर लेता है और सत्कर्म करने वालों को प्रदान करता है। वह अत्यन्त बलवान् है, प्राणियों को अपने अपने कार्यों में नियोजित करता है ॥२॥

यह इन्द्र जिस स्थान पर सूर्य नहीं है, वहाँ सूर्य बन जाता है, जहाँ चन्द्रमा नहीं है वहाँ चन्द्रमा बन जाता है। पृथ्वी पर जीव का कारण अग्नि और वायु भी इन्द्र ही है ॥३॥

ये इन्द्र द्वारा करने योग्य कर्तव्य कर्म हैं और इन्द्र महान् बलशाली है ॥इति॥

१५. देवासुराणां द्वादश महासंग्रामाः ।

प्रत्यक् कृष्णादम्बुधेः काश्यपीयादार्मीन्याख्ये सीरियाऽसीरियादौ ।
स्वर्गे भूम्यां चात्र देवासुराणां संग्रामाः प्राग्द्वादशासन् महोग्राः ॥१॥
(१) (२) (३) (४)
आडीबक, कोलाहल, हालाहल, जलधिमन्थनान्येवम् ।
(५) (६) (७) (८) (९) (१०)
त्रैपुर, मान्धक, तारक, वार्त्र, ध्वजयुद्ध, बलिबन्धाः ॥२॥
(११) (१२)
हैरण्याक्ष नृसिंहावेते द्वादश पुरायुगे जाताः ।
देवासुरसंग्रामा इतरेऽप्यभवन्नितः क्षुधा ॥३॥
यद्यपि वेदग्रन्थे स्पष्टं त इमे न दृश्यन्ते ।
किन्त्वनुबिनुमो लुप्तान् सन्ति पुराणेतिहासयोर्हि धृताः ॥४॥
आग्नेयस्याध्याये षट्सप्ततियुक्शतद्वयप्रमिते ।
मात्स्यस्य सप्तचत्वारिंशाध्याये च संग्रामाः ॥५॥
निजघानान्धकमसुरं भगवान् रुद्रः सुरैरुक्तः ।
त्रैपुरयुद्धेऽप्येष न्यवधीत् त्रिपुरासुरत्रिपुरम् ॥६॥
उत्तरशामप्रान्ते तिरपूली नाम या नगरी ।
तन्मन्ये त्रिपुरं स्यात् तत्र त्रिपुरासुरो निहतः ॥७॥
इन्द्रेण हतो वृत्रस्त्वष्टृसुतो वृत्रवधसमरे ।
निहतश्च विप्रचित्तिमायाछन्नः सहानुजो ध्वजके ॥८॥
हालाहले तु घोरा निहता इन्द्रेण दानवा दैत्याः
रजिना नहुषभ्रात्रा कोलाहलपर्वते हता दैत्याः ॥९॥
इन्द्रार्थे तु वराहो जघान विष्णुर्हिरण्याक्षम् ।
नरसिंहोऽपि च विष्णुर्हिरण्यकशिपुं जघान दैत्येशम् ॥१०॥

द्वासप्ततिलक्षैरयमशीतिसाहस्रसंयुक्तैः । (७२८००००)
सैन्यैर्हिरण्यकशिपुर्भारतवर्षे पुराक्रामीत् ॥११॥
इन्द्रस्य सैनिकानां संख्यानं न स्मरन्त्यत्र ।
सैनिकयुद्धे देवा दैत्यादस्मात् पराजिता अभवन् ॥१२॥
भारतवर्षे दैत्यो हिरण्यकशिपुर्बलात्प्रविष्टोऽभूत् ।
मूलस्थानं नगरं निर्म्मायैषोऽकरोद् राज्यम् ॥१३॥
आसुरभाषाशब्दो मूरः सूर्य्यार्थकस्ततो मूराः ।
सूर्य्योपासकदैत्यास्तत् स्थानं सूर्य्यधामाढ्यम् ॥१४॥
मूलस्थानं नगरं हिरण्यकशिपोस्तदद्य मुलतानम् ।
ब्रूते तत्र हि चतुरः पुरुषान् व्याप्यास्थितं राज्यम् ॥१५॥
आदौ हिरण्यकशिपुः प्रह्लादोऽन्यो विरोचनोऽथ बलिः ।
चक्रे राज्यं तदिदं बलिसमये ध्वंसितं तु सुरैः ॥१६॥
प्रह्लादस्तु तदानीमनीतिमालक्ष्य तत्र दैत्यानाम् ।
पितृद्वेषी विष्णोः पक्षं जग्राह शान्तिकामाय ॥१७॥
शान्त्यै युद्धनिवृत्त्यै प्रह्लादाऽनुमतिमाप्य विष्णुरयम् ।
अन्तः प्रविश्य योगात् सिंहाकृतिरिह जघान दैत्येशम् ॥१८॥
षण्णवतिस्तु कलानामसुरैर्यद्वत् प्रकाशिता पूर्वम् ।
तद्वद्देवैराविष्कृतास्तु विद्याश्चतुःषष्टिः ॥१९॥
तत्रैका विद्यासीदाकृतिपरिवर्तिनी देहे ।
विष्णुर्यया वराहोऽभवद्विचित्रश्च नरसिंहः ॥२०॥
अदधाद् रूपं विष्णुर्मोहिन्याश्चारुकामिन्याः ।
सेयमपूर्वा विद्या देवयुगे योगमायोक्ता ॥२१॥
अत्यद्भुतं स्वरूपं स नारसिंहं विधाय यद्विष्णुः ।
स्कम्भादाविरभूत् तद्विज्ञेयं योगमायातः ॥२२॥
नारदसुपाञ्चरात्रे पञ्चविधं ज्ञानमाख्यातम् ।
निर्विषयं यज्ज्ञानं परतत्त्वं ब्रह्म तच्छुद्धम् ॥२३॥
कर्मजमगुणब्रह्मज्ञानं परमुक्तिदं तद्वत् ।
सगुणब्रह्मोपास्तिजमवरविमुक्तिप्रदं ज्ञानम् ॥२४॥
दिव्यं ज्ञानं योगजसिद्धिमयं तच्च षोडशधा ।
अणिमा महिमा गरिमा लघिमेशित्वं वशित्वं च ॥२५॥

व्याप्तिश्च प्राकाम्यं भूतभविष्यत्परोक्षदूरेक्षा ।
दूरश्रवणं कायव्यूहः परकायवेशश्च ॥२६॥
परजीवहरणजीवप्रदानके सर्गकर्तृताशिल्पम् ।
संहारकरणमिति तत् षोडशधा योगजं ज्ञानम् ॥२७॥
अथ पञ्चमं तु विषयज्ञानं न्यूनाधिकं लोके ।
इन्द्रियसेवाविषयानुराग आत्मोन्नतिश्चेति ॥२८॥
ज्ञाने पञ्चविधेऽस्मिन् विषयज्ञानं तु चेतने सहजम् ।
दिव्यज्ञानमृषीणां देवानां योगिनां चासीत् ॥२९॥
नानाविधार्थनिर्मितिरिव निजरूपान्यता शिल्पम् ।
स्यात् सर्गकर्तृतायां तेनाभून्नारसिंहवपुः ॥३०॥
वाग्बद्ध एष विष्णुः सौहार्द्येनानुगृह्य तं तु तदा ।
प्रह्लादं तद् राज्यासने प्रतिष्ठापयामास ॥३१॥
इन्द्रेण प्रह्लादो विजितोऽमृतमन्थने पश्चात् ।
इन्द्रेण प्राह्लादिर्विरोचनस्तारकामये निहतः ॥३२॥
वैरोचनिर्बलिश्च प्रतरां निगृहीत इन्द्रविष्णुभ्याम् ।
एते बहुभिर्वर्षैः पञ्चैकस्मिन् कुलेऽभवन् समराः ॥३३॥
षष्टिसहस्रोपेते द्वे लक्षे प्रस्तुते आस्ताम् । (२६००००)
बलिदैत्यसैनिकानां रणाङ्गणे तत्र बलिबन्धे ॥३४॥
यावच्छण्डामर्कौ द्वावसुराणां पुरोधसावास्ताम् ।
असुरास्तावद्विजिता अभवन् जयमाप्नुवन् क्वापि ॥३५॥
यदवधि भृगुर्बृहस्पतिसदृशप्रतिभः पुरोहितस्तेषाम् ।
अभवत् तत आरभ्य व्यजयन्तेहासुराः प्रायः ॥३६॥

१५. देवों और असुरों के बारह महासंग्राम

प्राचीन समय में काश्यपीय कृष्ण समुद्र के आर्मीनिया नाम के स्थान पर सीरिया तथा असीरिया इत्यादि प्रान्तों में स्वर्गभूमि पर देवताओं और असुरों के बीच बारह महान् घोर संग्राम हुए ॥१॥

ये बारह संग्राम हैं—आडीबक, कोलाहल, हालाहल, समुद्रमन्थन । इसी प्रकार अन्य भी त्रैपुर, मान्धक, तारक, वृत्र से सम्बद्ध, ध्वजयुद्ध, बलिबन्ध, हिरण्याक्ष का युद्ध, नृसिंह के साथ ये बारह देवासुर संग्राम प्राचीन युग में हुए । अन्य भी अनेक छोटे-छोटे युद्ध हुए ॥२-३॥

यद्यपि वेदग्रन्थों में इन छोटे-छोटे युद्धों का स्पष्ट वर्णन दिखाई नहीं देता है । वे ग्रन्थ आज लुप्त हो गये हैं, परन्तु इतिहास पुराण में इनका वर्णन मिलता है ॥४॥

अग्निपुराण के दो सौ छियत्तरवें अध्याय में तथा मत्स्य पुराण के सैंतालीसवें अध्याय में इन संग्रामों का वर्णन है ॥५॥

देवताओं के कहने पर भगवान् रुद्र (शिव) ने अन्धक नाम के असुर का संहार किया और त्रैपुर युद्ध में भी इन्हीं रुद्र ने तीनों लोकों में विचरण करने वाले त्रिपुरासुर का संहार किया ॥६॥

उत्तरी शाम प्रान्त (सामदेश) में जो तिरपूली नाम की नगरी है, मैं मानता हूँ वही त्रिपुर नगर था और वहीं त्रिपुरासुर मारा गया था ॥७॥

त्वष्टा का पुत्र वृत्रासुर नाम का राक्षस युद्ध में इन्द्र के द्वारा मारा गया । ध्वजयुद्ध में माया-छत्र विप्रचिति भी अपने छोटे भाई सहित मारा गया ॥८॥

हालाहल नाम के युद्ध में इन्द्र द्वारा घोर बलशाली दानव और दैत्य मार दिये गये । नहुष के भाई रजि द्वारा कोलाहल युद्ध में अनेक दैत्यों का संहार किया गया ॥९॥

इन्द्र के लिए वराह नाम के विष्णु ने हिरण्याक्ष का वध किया तथा नृसिंहावतार विष्णु ने भी दैत्यों के स्वामी हिरण्यकशिपु का संहार किया ॥१०॥

हिरण्यकशिपु ने बहत्तर लाख अस्सी हजार सैनिकों के साथ भारतवर्ष पर आक्रमण किया। इस की सेना की संख्या का यहां स्मरण नहीं किया गया है । इस सैनिकयुद्ध में इस दैत्य हिरण्यकशिपु से देवता पराजित हुए ॥११-१२॥

इस हिरण्यकशिपु नाम के दैत्य ने भारत में बलपूर्वक प्रवेश करके मूलस्थान (मुल्तान) नाम के नगर की रचना करके वहां राज्य करने लगा ॥१३॥

आसुर भाषा में "मूर" शब्द का अर्थ सूर्य होता है । अतः सूर्योपासक दैत्य मूर कहलाये। इसीलिए वह स्थान सूर्योपासकों से युक्त था और सूर्यधाम भी कहलाता था ॥१४॥

हिरण्यकशिपु का यह मूलस्थान आज मुल्तान शब्द से कहा जाता है । ऐसा कहा जाता है कि चार पुरुषों (वंशजों) तक इस राज्य की स्थिति बनी रही थी ॥१५॥

सर्वप्रथम हिरण्यकशिपु, फिर प्रह्लाद तदनन्तर विरोचन और फ़िर बलि नामक दैत्यों ने यहां राज्य किया और अन्त में बलि के समय यह नगर देवताओं द्वारा नष्ट कर दिया गया ॥१६॥

इस समय दैत्यों की अनीति देखकर प्ह्लाद पिता का विद्रोही बन गया और शान्ति की इच्छा से विष्णु के पक्ष में चला गया ॥१७॥

तब प्रहलाद की अनुमति प्राप्त करके शान्ति के लिए, युद्ध की समाप्ति के लिए योगबल से सिंह की आकृति वाले विष्णु ने नगरी में प्रवेश करके दैत्यपति हिरण्यकशिपु का संहार किया ॥१८॥

प्राचीन समय में दैत्यों ने जिन छियानवे कलाओं को प्रकाशित किया था (उत्पन्न किया था) उसी प्रकार देवों ने चौंसठ विद्याओं का आविष्कार किया ॥१९॥

उन्हीं में से एक विद्या शरीर में आकृतिपरिवर्तिनी नाम की विद्या थी । इसी विद्या से विष्णु वराह और नृसिंह के विचित्र रूप में परिवर्तित हुए ॥२०॥

इसी विद्या से विष्णु ने सुन्दर मोहिनी स्त्री का रूप धारण किया था । यही वह विद्या थी, जो देवकाल में योगमाया नाम से कही जाती थी ॥२१॥

यह जानना चाहिये कि इसी योगमाया नाम की विद्या से विष्णु विचित्र नृसिंह का रूप धारण करके स्तम्भ में से प्रकट हुए थे ॥२२॥

"नारदसुपांचरात्र" ग्रन्थ में पांच प्रकार के ज्ञान का वर्णन किया है । जो निर्विषय ज्ञान है, वह शुद्ध परब्रह्म से सम्बद्ध है । वही ज्ञान शुद्ध ज्ञान है ॥२३॥

इसी प्रकार कर्म से उत्पन्न निर्गुण ब्रह्मज्ञान "परामुक्ति" प्रदान करने वाला ज्ञान है तथा सगुण ब्रह्म की उपासना करने से उत्पन्न ज्ञान अवर अर्थात् "अपरा मुक्ति" को प्रदान करने वाला ज्ञान है ॥२४॥

योग से उत्पन्न यह दिव्य ज्ञान योगसिद्ध ज्ञान है, जो सोलह प्रकार की सिद्धियों से युक्त है । ये सोलह सिद्धियां हैं—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, ईशित्व, वशित्व, प्राप्ति, प्राकाम्य, भूत-भविष्य का ज्ञान, दूरस्थ, परोक्ष-ज्ञान, दूरस्थ वाणी का श्रवण, कायव्यूह, परजीव-हरण, परकायप्रवेश, जीव प्रदान करना, सृष्टिनिर्माण का कौशल और संहारकरण । इस प्रकार सोलह प्रकार के योग से उत्पन्न ज्ञान है ॥२५-२६-२७॥

पाँचवाँ ज्ञान सांसारिक विषय-भोग का ज्ञान है, जो न्यूनाधिक रूप से सभी सांसारिकों में होता है । यह ज्ञान विषय-उपभोग्य पदार्थों द्वारा इन्द्रियसेवा तथा आत्मोन्नति से सम्बद्ध है ॥२८॥

इस पांच प्रकार के ज्ञान में विषय-ज्ञान तो प्रत्येक चेतन प्राणी में स्वाभाविक रूप से ही प्राप्त हो जाता है । परन्तु दिव्य ज्ञान तो तपस्वी-ऋषि, देवता और योगियों का ज्ञान है (प्रायः उन्हीं को प्राप्त होता था) ॥२९॥

अनेक प्रकार की वस्तुओं की निर्मिति के समान ही (सृष्टिकर्तृज्ञान के समान) अपनी आकृति को अन्य में परिवर्तित करने की विद्या है । इसी सृष्टिकृर्तृविद्या से ही भगवान् ने नृसिंह रूप धारण किया था ॥३०॥

इन विष्णु ने वचनबद्ध होकर सौहार्द-पूर्वक प्रह्लाद पर अनुग्रह करके उस राज्यासन पर प्रह्लाद को प्रतिष्ठित कर दिया ॥३१॥

तदनन्तर अमृतमन्थन के समय इन्द्र ने प्रह्लाद को पुनः जीत लिया और प्रह्लाद का पुत्र विरोचन तराकासुर-संग्राम के समय इन्द्र द्वारा मार दिया गया ॥३२॥

विरोचन का पुत्र बलि इन्द्र और विष्णु द्वारा अनेक बार निगृहीत किया गया । इसी प्रकार इसी एक वंश में अनेक वर्षो तक ये पांच महायुद्ध हुए ॥३३॥

उस बलिबन्ध नाम के युद्ध में युद्धक्षेत्र में बलिदैत्य के दो लाख साठ हजार सैनिक थे ॥३४॥

जब तक असुरों के शण्ड और अमर्क नाम के दो पुरोहित थे तब तक दैत्यों ने कभी पराजय प्राप्त की और कभी विजयी रहे ॥३५॥

और जब बृहस्पति के समान प्रतिभासम्पन्न भृगु असुरों के पुरोहित रहे, तब से प्रायः असुर विजय प्राप्त करते रहे ॥३६॥

१६. मध्यतो बहुधा विजयलाभेऽप्यन्ततो देवानां पराजयः ।

स्वार्थैकसिद्धिपरता धर्म्मान्तरबाधने स्वधर्म्मत्वम् ।
एतद्‌द्वयमसुराणां विद्रोहोत्थापने हेतुः ॥१॥
शान्तिप्रियताऽत्यर्थं धर्म्मे प्रवणत्वमानृशंस्याख्ये ।
एतद्‌द्वयमार्य्याणां प्रत्यभिमर्दं पराभवे हेतुः ॥२॥
बुद्धिश्चाक्रमणं च द्वे अप्येते बले भवतः ।
उभयोर्मिथोऽभियोगे विजयः कुत्रेति दुरभिगमम् ॥३॥
यच्चिरकारि विवेकापेक्षं तज्जीयते बुद्ध्या ।
आक्रमणं सा बुद्धिर्जयति सदा सावधाना या ॥४॥
यत् क्षिप्रकारि पूर्णोत्साहं तज्जयति नूनमाक्रमणम् ।
समयापेक्षा बुद्धिस्तत्राक्रमणेन जीयते प्रायः ॥५॥
कर्त्तुं योग्यमयोग्यं वेति धिया यावदेव विविनक्ति ।
धृष्टस्तावत् सहसैवाक्रम्यार्थं निजं प्रसाधयति ॥६॥
सूर्यो लुप्तश्चन्द्रो लुप्तः संप्रति न दृश्यते प्रायः ।
दैवतसंस्थालोपोत्तरमसुरैस्तद् द्वयोच्छेदात् ॥७॥
यज्ञजसिद्ध्या येषामात्मा दैवोऽपरो मनुष्याणाम् ।
कृत्रिम उत्पन्नः स्यात् तेषु मनुष्येष्वभूत्तु देवत्वम् ॥८॥
यज्ञक्रियाविलोपादप्रत्युत्पन्नदैवतात्मानः ।
केवलमनुष्यभावा न पुनर्देवा अकथ्यन्त ॥९॥
स्वर्गः कृत्स्नो मानुषलोकः समभूदशेषदेवाश्च ।
अभवन् मानुषरूपा आसुरधर्म्मे प्रविष्टाश्च ॥१०॥
आसुरधर्म्मे गमनाद्देवैरपि भूरभूदियं हीना ।
लोकत्रयव्यवस्थालोपाद् भूर्नाद्य दैवताधीना ॥११॥
देवासुरसंग्रामा यत्र यथा यैरभूवन् प्राक् ।
विशदं तद्‌द्रष्टव्यं मत्कृतदेवासुरख्यातौ ॥१२॥

१६. मध्य में अनेक बार विजय प्राप्त करने पर भी अन्त में देवों की पराजय

केवल अपने स्वार्थ की सिद्धि में परायण रहना तथा दूसरों के धर्म में व्यवधान डालना ही अपना धर्म मान लेना — असुरों की ये दोनों ही (नीति) विद्रोह उत्पन्न करने में कारण-स्वरूप थी ॥१ ॥

और आर्यों की शान्तिप्रियता, आनृशंस्य नाम के धर्म में निष्ठा, ये दोनों ही नीतियाँ युद्ध में पराजय का कारण थी ॥२ ॥

दो प्रकार के बल होते हैं—-एक तो बुद्धिबल और दूसरा आक्रमणबल। इन दोनों के परस्पर अभियोग में विजय किसकी होगी, यह कहना अत्यन्त कठिन है ॥३ ॥

जो युद्ध चिरकाल तक और विवेकसापेक्ष होता है, उसमें विजय बुद्धि के द्वारा ही होती है, और आक्रमण वह बुद्धि है, जो सदैव सावधान रहकर विजय प्राप्त करती है ॥४ ॥

जो आक्रमण शीघ्रकारी और पूर्णोत्साह से सम्पन्न है, वह निश्चय ही विजय प्राप्त करता है । जो समय की अपेक्षा रखने वाली बुद्धि है वह आक्रमण के द्वारा प्रायः जीत ली जाती है ॥५ ॥

क्या करना उचित है और क्या करना अनुचित है, बुद्धि द्वारा (धीर) विचार करता है। परन्तु धृष्ट व्यक्ति अचानक आक्रमण करके अपने कार्य को सिद्ध कर लेता है ॥६ ॥

इस प्रकार सूर्य (सूर्य-संस्था) लुप्त हो गया और चन्द्र (सोमलता) नष्ट हो गया । असुरों के द्वारा दोनों का उच्छेद किए जाने के कारण दैवत संस्था के लोप के पश्चात् ये अब प्रायः दिखाई नहीं देती हैं ॥७ ॥

यज्ञ से उत्पन्न सिद्धि से जिनमें मनुष्यों से श्रेष्ठ दूसरी कृत्रिम देवात्मा उत्पन्न हो गई है, उन मनुष्यों में देवत्व की प्राप्ति हुई थी ॥८ ॥

उस यज्ञक्रिया के लुप्त हो जाने से और उस दैवत आत्मा के उत्पन्न न होने से (दैवत की अनुपस्थिति रहने से) वे देव अब केवल मनुष्यभाव मात्र ही रह गये हैं अब वे देव नहीं कहे जा सकते हैं ॥९ ॥

वह स्वर्ग सम्पूर्ण रूप से मनुष्य लोक हो गया है और सम्पूर्ण देव मनुष्य रूप रह गये हैं, जो आसुर धर्म में प्रविष्ट हो गये हैं ॥१० ॥

आसुर धर्म में प्रवेश करने से यह अब देवों से विहीन हो गई है । त्रैलोक्यव्यवस्था के लुप्त हो जाने से यह पृथ्वी आज दैवताधीन नहीं रही ॥११ ॥

पुराकाल में ये देवासुरसंग्राम जहाँ, जैसे और जिनसे हुए उनको स्पष्ट रूप से मेरे द्वारा रचित "देवासुरख्याति" में देखना चाहिये ॥१२ ॥

१७. सोमार्थे देवानां दैत्यैः संग्रामः। सोमोच्छेद-कासुरप्रतियोधार्थं गंधर्वविनियोगः।

चन्द्रस्तु सोमवल्लीरूपो यो हेमकूटाद्रौ ।
यज्ञैकसाधनं तद्देवानामुदखनन्नसुराः ॥१॥
यज्ञात् सिद्धीर्देवतानामनेका दृष्ट्वा यज्ञं कर्तुमैच्छन्नदेवाः ।
किन्त्वस्मिंस्ते यज्ञविज्ञानशिक्षाशून्याः सिद्धिं नाप्नुवन् विध्यबोधात् ॥२॥
यज्ञज्ञानायोग्यतां स्वस्य दृष्ट्वा जातामर्षा विद्विषन्तश्च देवान् ।
तेषां सिद्धौ हेतुभूतस्य यज्ञस्यैच्छन् कर्तुं हन्त निर्मूलनाशम् ॥३॥
सूर्यं श्रुत्वा यज्ञविज्ञानहेतुं चन्द्रं श्रुत्वा तद्विधाने च हेतुम् ।
आक्रम्यैते सूर्यचक्रे विहन्तुं दासानादौ प्रेरयामासुरुग्रान् ॥४॥
एवं कर्तुं हन्त निर्मूलनाशं दैत्यव्रातः सोमवल्ल्याख्यचन्द्रम् ।
भूयो भूयो हेमकूटाद्रिदेशानेत्योच्चखनुस्ते यथाशक्ति सोमम् ॥५॥
इन्द्रः श्रुत्वा सोमवल्लीविनाशं तद्रक्षार्थं दैत्यमार्गांश्च रोद्धुम् ।
गन्धर्वाख्यान् वासयामास वीरान् सिन्धोः पश्चाद्व्याप्य गान्धारदेशे ॥६॥
गन्धर्वास्ते पूर्वमासन् हिमाद्रेर्द्रोण्यावासा नृत्यगीतानुरक्ताः ।
तेषां वृत्तिं तां निवर्त्याथ योद्धुं वृत्तिं तेषां कल्पयामास देवः ॥७॥
गन्धर्वास्ते तत्र काले द्विधाऽऽसन् दिव्या अन्ये केचिदन्ये तु मर्त्याः ।
दिव्यास्त्रेधोत्कृष्टकर्माण आप्ता मर्त्यास्त्वेके क्षुद्रकर्माण आसन् ॥८॥

(१७) सोम के लिए देवों का दैत्यों के साथ संग्राम/सोम को नष्ट करने वाले असुरों से युद्ध करने के लिए गन्धर्वों की नियुक्ति

हेमकूट पर्वत पर सोमवल्ली रूप जो चन्द्रमा था, जो कि देवों के यज्ञ का एकमात्र साधन था, उसे असुरों ने उखाड़ दिया ॥१॥

देवों की अनेक प्रकार की सिद्धियाँ यज्ञ से सम्पन्न होतीं देखकर असुरों ने भी यज्ञ करने की इच्छा की। परन्तु यज्ञविज्ञान की शिक्षा से शून्य होने के कारण विधि को न जानने के कारण वे सफल नहीं हुए ॥२॥

अपनी यज्ञज्ञान में अयोग्यता को देखकर क्रोधित होकर देवताओं से द्वेष करते हुए उन असुरों ने देवों की सिद्धि के कारणभूत यज्ञ को ही समूल नष्ट करने की इच्छा की ॥३॥

सूर्य को यज्ञविज्ञान का कारण सुन कर और चन्द्रमा को उस यज्ञविज्ञान के विधान का कारण जानकर पूर्वकाल में उन असुरों ने सूर्यचक्र को नष्ट करने के उद्देश्य से उग्रदासों को प्रेरित किया ॥४॥

इसी प्रकार सोमवल्ली नाम के चन्द्रमा को निर्मूल नष्ट करने के लिए दैत्यसमूह ने बार-बार हेमकूट पर्वत के देशों को जाकर अपनी शक्त्यनुसार सोम का खनन कर दिया ॥५॥

इन्द्र ने सोमलता के विनाश की बात को सुन कर उसकी रक्षा के लिए दैत्यों का मार्ग रोकने के लिए सिन्धु नदी के पश्चिमी भाग में गान्धार नाम के देश में गन्धर्व नाम के वीरों को बसाया ॥६॥

वे गन्धर्व पूर्वकाल में हिमालय पर्वत की गुफाओं में निवास करते थे और नृत्य-गीत में अनुरक्त रहते थे । उनकी उस वृत्ति को रोक कर इन्द्र ने उन्हें युद्ध करने की वृत्ति में लगा दिया ॥७॥

उस काल में वे गन्धर्व दो प्रकार के थे, जिनमें कुछ दिव्य गन्धर्व थे और अन्य कुछ मर्त्य गन्धर्व थे । दिव्य गन्धर्व तीन प्रकार के (यज्ञ, दान और तप) उत्कृष्ट कर्मों को करने वाले थे और आप्त थे । दूसरे मर्त्य गन्धर्व क्षुद्र कर्मों को करने वाले थे ॥८॥

१८. सोमसंरक्षणाय दैत्यान् प्रति योद्धुं नियुक्ता गन्धर्वाश्चतुर्धा ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
हाहाहूहूहंसगोमायुनन्दितुम्बुर्वख्याश्चित्रविश्वावसू च ।
एते मर्त्या अष्टगन्धर्वभेदा हैमाद्रिस्था नृत्यगीतानुषक्ताः ॥१॥
(वह्निपु.)

१ २ ३ ४
दिव्या वर्गाः स्वर्ग एकादशासन् बम्भारिश्चाऽङ्गारिहस्तौ सुहस्तः ।
५ ६ ७ ८ ९ १० ११
मूर्धन्वान् वा सूर्य्यवर्चाः कुशानुः कृध्वभ्राजौ स्वानविश्वावसू च ॥२॥
(ऋग्वेदे—१०।१३९)

स्वर्गं क्रीत्वा सोमसंरक्षणं वै वृत्तिर्ह्येषामाहरन्ति स्म तेभ्यः ।
सोमं देवाः दिव्यगन्धर्वभेदानेतानूचे तित्तिरिः षष्ठकाण्डे ॥३॥
एभ्यो भिन्ना वीरगन्धर्ववर्गा आसन् द्वेधा तत्र मौनेयसंज्ञाः ।
पातालस्थाः कोटिषट्कप्रमाणा नागैर्द्वेषाद् यद्धमासीत्तु तेषाम् ॥४॥
कलिभीमसेनभीमोग्रसेनपर्जन्यगोपतिप्रयुताः ।
धृतराष्ट्रसूर्य्यवर्चो वरुणसुपर्णार्कपर्णचित्ररथाः ॥५॥

शालिशिरा अथ नारदवशिनावति षोडशैतानि ।
गन्धर्वाणामासन् मौनेयानां कुलानीह ॥६॥
प्राधेयाः पुनरन्ये गान्धर्वाः कोटयः पुरा तिस्रः ।
सिन्धोः पश्चाद्देशे गान्धाराख्ये वसन्ति स्म ॥७॥
१ २ ३ ४ ५
सिद्धः पूर्णो बर्ही पूर्णायुर्ब्रह्मचारी च।
६ ७ ८ ९ १०
रतिगुणसुपर्णविश्वावसवो भानुश्च चन्द्रश्च ॥८॥
एते दश कुलभेदाः प्राधेयानां प्रसिध्यन्ति ।
एषा च राजधानीपुरमासीद् वर्द्धमानपुरम् ॥९॥
वल्मीकीये सन्ति रामायणे ते प्रोक्ता, भ्राता रामचन्द्रस्य येभ्यः ।
युद्ध्वा जित्वा स्वस्य पुत्रद्वये तद् राज्यं सर्वं संविभक्तं व्यधत्त ॥१०॥
ते चैते प्राधेया मूजवदाद्यद्रिजातसोमानाम् ।
सिन्धु सुवास्तु वितस्ता सरस्वती प्रभृति सरिदप्सु ॥११॥
वहमानानां विचिर्तिं रक्षां कर्तुं न्ययुज्यन्त ।
इत्थं वदन्ति कौषीतकिनः स्वब्राह्मणे मुनयः ॥१२॥

क्षुद्रगन्धर्वाः ८	प्राधेयगन्धर्वाः १० ३००००००००	मौनेयगन्धर्वाः १६ ६००००००००	दिव्यगन्धर्वाः ११
१ हाहाः	१ सिद्धः	१ भीमः	१ अङ्गारिः
२ हूहूः	२ पूर्णः	२ भीमसेनः	२ अम्भारिः
३ हंसः	३ बर्ही	३ उग्रसेनः	३ अभ्राजः
४ गोमायुः	४ पूर्णायुः	४ कलिः	४ मूर्धन्वान्
५ नन्दी	५ ब्रह्मचारी	५ पर्जन्यः	५ कृधुः
६ तुम्बुरुः	६ रतिगुणाः	६ गोपतिः	६ सूर्य्यवर्चाः
७ चित्रसेनः	७ सुपर्णः	७ प्रयुतः	७ कृशानुः
८ विश्वावसुः	८ भानुः	८ धृतराष्ट्रः	८ हस्तः
	९ चन्द्रः	९ सूर्य्यवर्चाः	९ सुहस्तः
	१० विश्वावसुः	१० वरुणः	१० स्वाञ्ची
		११ सुपर्णः	११ विश्वावसुः
		१२ अर्कपर्णः	
		१३ वशी	
		१४ शालिशिराः	
		१५ नारदः	
		१६ चित्ररथः	

"गन्धर्वा ह वा इन्द्रस्य सोममप्सु प्रत्यायिता गोपायन्ति ।
त उह स्त्रीकामाः । ते हा—सुमनांसि कुर्वते" ॥२१॥ (कौषी.)

१८. सोम की रक्षार्थ दैत्यों से युद्ध करने के लिए नियुक्त गन्धर्वों के चार प्रकार थे।

इन गन्धर्वों में हाहा, हूहू, हंस, गोमायु, नन्दि, तुम्बुर्व, चित्र और विश्वावसु नाम के आठ प्रकार के गन्धर्व थे । ये हिमालय पर रहते थे और नृत्य-गीत में आसक्त थे ॥१॥ (वह्नि पु.)

दिव्य गन्धर्व ग्यारह प्रकार के थे । उनके नाम थे—बम्भारि, अङ्घारि, हस्त, सुहस्त, मूर्धन्वान्, सूर्यवर्च्च, कृशानु, कृधु, अभ्राज, स्वान और विश्वावसु । ये स्वर्ग में निवास करते थे ॥२॥ (ऋग्वेद १०/१३९)

स्वर्ग में मूल्य लेकर सोम की रक्षा करना ही इनकी वृत्ति थी । देवतागण इनसे ही सोम ग्रहण करते थे । इन दिव्य गन्धर्वों के भेद तैत्तिरीय ब्राह्मण के छठे काण्ड में वर्णित किये गये हैं ॥३॥

इनसे भिन्न गन्धर्वों के दो वर्ग और थे, जो वीर थे । इनका नाम मौनेय था ।ये पाताल में निवास करते थे, इनकी संख्या छः करोड़ थी । द्वेष के कारण इनका नागों के साथ युद्ध हुआ ॥४॥

इन मौनेय गन्धर्वों के सोलह कुल थे, जिनके नाम हैं—कलि, भीमसेन, भीम, उग्रसेन, पर्जन्य, गोपति, प्रयुत, धृतराष्ट्र, सूर्यवर्च, वरुण, सुपर्ण, अर्कपर्ण, चित्ररथ, शालिशिर, नारद और वशि ॥५-६॥

दूसरे प्राधेय नाम के तीन करोड़ गन्धर्व थे, जो सिन्धु नदी के पश्चिम में गान्धार देश में निवास करते थे ॥७॥

इन प्राधेयों के कुल के दस भेद प्रसिद्ध थे । ये कुल थे—सिद्ध, पूर्ण, बर्ही, पूर्णायु, ब्रह्मचारी, रतिगुण, सुपर्ण, विश्वावसु, भानु और चन्द्र । प्राचीनकाल में इनकी राजधानी वर्द्धमान पुर थी ॥८-९॥

वाल्मीकिरामायण में इनका उल्लेख है कि, जिसके अनुसार श्री रामचन्द्र के भाई (भरत) ने जिनसे (गन्धर्वों से) युद्ध करके, नगरी को जीत कर अपने दो पुत्रों में उस सम्पूर्ण राज्य को विभाजित कर दिया था ॥१०॥

ये जो प्राधेय नाम के गन्धर्व थे वे मूजवान् आदि पर्वतों पर उत्पन्न और सिन्धु, सुवास्ति, वितस्ता नदियों में बहने वाले सोम की रक्षा करने के लिए नियुक्त किया गया था, ऐसा कौषीतकी मुनियों ने अपने ब्राह्मण में कहा है ॥११-१२॥

ये गन्धर्व (चन्द्रमा की किरणें "गाधारयतीनि गन्धर्वः") इन्द्र के जलों के भीतर जो सोम है, उस सोम को छिपा लेते हैं । वे गन्धर्व उन अप्सराओं की कामना करने वाले हैं । वे निश्चय ही उन्हें चारों ओर से सुन्दर मन वाला बना लेते हैं ॥२१॥ (कौषी.)

१९. विश्वावसुप्रधानानां गन्धर्वाणामाधिपत्ये चन्द्राभिषेकः ।

एषां राजाऽभूच्च विश्वावसुः प्राग् दैतेयानां मार्गरोधं स चक्रे ।
भूयो भूयो मार्गरोधे कृतेऽपि प्राग्रया दैत्या नो निवृत्ता बभूवुः ॥१॥
दैत्यक्रान्तेः सोमरक्षां विधातुं धात्रेऽभ्येत्याभ्यर्थमास शक्रः ।
गन्धर्वाणां शासकं कञ्चिदन्यं त्वैच्छत् सोमं योऽभिरक्षेद् विशिष्य ॥२॥
ब्रह्मा दृष्ट्वा कञ्चिदत्रेस्तु पुत्रं योग्यं युक्तं ब्राह्मवीर्येण तावत् ।
क्षात्रं वीर्यं धातुमत्राभिषिच्य प्रागास्येनाभ्रामयत् कृत्स्नपृथ्व्याम् ॥३॥
गन्धर्वाणामौषधीनां च सोमादीनां चक्रे तत्र राजानमेतम् ।
*** गन्धर्वेऽस्मिंस्तं प्रतिष्ठाप्य देशे सोमस्थानं रक्षितुं तं न्ययुङ्क्त ॥४॥**
चन्द्रांशुभ्यो जातमूलं तु सोमं ज्योतिष्मन्तं रक्षितुं यन्नियुक्तः ।
तस्मात् स्वर्गे लोकपालः स भूत्वा चन्द्रः सोमो नामतः ख्यातिमागात् ॥५॥
पुत्रस्तस्यासीद् बुधो राजपुत्रो नाम्ना ख्यातो हस्तिविद्याप्रवीणः ।
यस्तत्पुत्रोऽभूदिलागर्भजन्मा तस्मादासीच्चन्द्रवंशप्रवृत्तिः ॥६॥
चन्द्रस्येत्थं चान्तरिक्षावकाशे गन्धर्वाणामाधिपत्ये नियोगम् ।
पूर्णोद्योगं दैवतानां च दृष्ट्वा कञ्चित्कालं स्तम्भितास्ते बभूवुः ॥७॥

१९. विश्वावसु आदि प्रधान गन्धर्वों के आधिपत्य में चन्द्रमा का अभिषेक

प्राचीनकाल में इनका (गन्धर्वों का) राजा विश्वावसु था । इसने दैत्यों का मार्ग अवरुद्ध किया । गन्धर्वों द्वारा बार-बार मार्गावरोध करने पर भी दैत्य रुके नहीं ॥१॥

इन्द्र ने दैत्य-क्रान्ति से सोम की रक्षा के लिए विधाता के पास जाकर प्रार्थना की और इच्छा की कि गन्धर्वों का शासक किसी अन्य को नियुक्त किया जावे, जो विशेष रूप से दैत्यों से सोम की रक्षा कर सके ॥२॥

---

* "सौमो वै राजा अमुष्मिन् लोके आसीद्"—इत्यैतरेयब्राह्मणस्य त्रयोदशाध्याये सोमस्य द्युलोकस्थताख्याता।
"द्यावापृथिव्योर्वा एष गर्भो यत् सोमो राजा"—इत्यैतरेयब्राह्मणस्य चतुर्थाध्याये सोमस्यान्तरिक्षस्थताख्याता।
"सोमो वै राजा गन्धर्वेष्वासीद्"—इत्यैतरेयब्राह्मणस्य पञ्चमाध्याये सोमस्य गन्धर्वलोकस्थताख्याता॥

ब्रह्मा ने अत्रि के किसी पुत्र को ब्राह्मवीर्य से युक्त और योग्य समझ कर उसमें क्षात्रवीर्य (सेनापतित्व) का आधान करने के लिए अभिषेक कर के पूर्व दिशा से सम्पूर्ण पृथिवी पर घुमाया ॥३ ॥

* उसे गन्धर्वों, औषधियों और सोम का राजा बनाया और गन्धर्व देश में प्रतिष्ठित कर के सोम की रक्षा के लिए नियुक्त कर दिया ॥४ ॥

वह (चन्द्र सोम) चन्द्रमा की किरणों से उत्पन्न ज्योतिष्मान् सोम की रक्षा के लिए नियुक्त किया गया था । इसलिए वह स्वर्ग में लोकपाल हुआ और चन्द्रसोम के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥५ ॥

राजपुत्र के नाम से विख्यात बुध उसका पुत्र हुआ । वह हस्तविद्या में प्रवीण था। उस चन्द्र सोम का जो पुत्र इला से उत्पन्न हुआ था, उससे चन्द्रवंश का प्रारम्भ हुआ ॥६ ॥

चन्द्रमा की इस प्रकार गन्धर्वों के राजा के रूप में अन्तरिक्षावकाश में नियुक्ति और देवताओं के पूर्ण उद्योग को देखकर कुछ समय के लिए असुर लोग स्तम्भित रह गए ॥७ ॥

२०. दैत्यैः कृतः सोमवल्लीविध्वंसः ।

एवं सोमध्वंसने चान्तरायं दृष्ट्वा दूरादागमे चान्तरायम् ।
योद्धुं दैत्या यत्नमातस्थिरे ते प्रान्तेऽत्रैव स्वं निवासं विधाय ॥१ ॥
सैन्यग्रामं ते महान्तं सम्भारञ्च प्राप्य सोत्साहयत्नम् ।
आक्रम्यास्मिन् भारते सिन्धुदेशान् मूलस्थाने स्थापयन्ति स्म राज्यम् ॥२ ॥
प्रह्लादोऽस्मिस्तत्पिता तस्य पुत्रस्तत्पौत्रो वा दैत्यराजः प्रसह्य ।
दैतेयान् स्वान् सैन्यचारादिभृत्यान् सोमस्थाने चारणायादिदेश ॥३ ॥
तस्मिन्काले दैवयोगेन रुष्टां याज्यं मत्वा चन्द्रसद्माभ्युपेताम् ।
तारां देवाचार्य्यपत्नीं स चन्द्रो हृत्वा देवैर्भर्त्सितश्चिन्तितोऽभूत् ॥४ ॥
गन्धर्वाणामेष राजा तदासीत् तेषां नीतौ स्त्रीषु वैवाहिकोऽयम् ।
नासीद्बन्ध प्रीतिदायेन पुंसां स्वीया स्त्री स्यादेष जह्ने ततस्ताम् ॥५ ॥
आकृष्टोऽभूद्दैवतैस्तत्र चन्द्रस्तस्मिन्काले लब्धवेला अदेवाः ।
चन्द्रस्यार्थं साधयन्तः स्वसैन्यैः स्वीये पक्षे चन्द्रमेतं व्यनैषुः ॥६ ॥

---

* "इस लोक में सोम राजा था" ऐसा ऐतरेय ब्राह्मण के तेरहवें अध्याय के अनुसार सोम की द्युलोक में स्थिति वर्णित है । ऐतरेय ब्राह्मण के चौथे अध्याय में वर्णित "सोम. द्यावापृथिवी का राजा है" के अनुसार सोम का अन्तरिक्ष में होना बताया गया है। "सोम गन्धर्वों का राजा है" ऐसे ऐतरेय ब्राह्मण के पाँचवें अध्याय के वर्णन के अनुसार सोम का गन्धर्वलोक में स्थित होना बताया गया है।

पक्षग्राहक्रीत एष श्लथोऽभूत् स्वे कर्तव्ये सोमसंरक्षणेऽर्थे ।
इत्थं दैत्याः सोमवल्लीवितानध्वंसे जाताश्चन्द्रदोषात् समर्थाः ॥७॥
काले काले सोमवल्लीविनाशे कुर्वद्भिस्तैर्यत्नमन्यत्र युद्धात् ।
दुष्टैर्नीचैर्ब्राह्मवीर्याः प्रशस्ता सौम्या वल्लयो नाशिताः कृत्स्नशस्ताः ॥८॥
अद्यत्वे यच्चक्षते सिन्धुपारे बोलन्घाटी (Bolan pass) पर्वतप्रान्तभागे ।
माजन्दारान् नामतः ख्यातशैले सोऽयं सोमो लभ्यतेऽद्यापि भूयान् ॥९॥
किन्तु ब्रूमो नैव सोमोऽस्ति मुख्यो यो ब्रह्मण्यः सोम आसीत् स नष्टः ।
यद्वद् ब्राह्मीं नाम मण्डूकपर्णीमाहुः केचित् तद्वदन्यः स सोमः ॥१०॥

२०. दैत्यों द्वारा सोमवल्ली का विध्वंस

इस प्रकार सोम का नाश करने में और दूर से आने में विघ्न को देखकर दैत्यों ने इसी देश में अपना निवास बना कर युद्ध करने का प्रयत्न किया ॥१॥

विशाल सैन्यसमूह, विपुल युद्धसामग्री और उत्साहपूर्वक प्रयत्न को प्राप्त करके, सिन्धु के निकटवर्ती देशों पर आक्रमण कर के भारतवर्ष में मूलस्थान (मुलतान) में अपना राज्य स्थापित किया ॥२॥

इस मुलतान क्षेत्र में प्रह्लाद, उसका पिता, प्रह्लाद का पुत्र और पौत्र बलवान् राजा हुए, जिन्होंने बलपूर्वक अपने असुर सैनिक चारण इत्यादि भृत्यों (गुप्तचरों) को सोमस्थान में विचरण करने का आदेश दिया ॥३॥

उस समय भाग्य से आचार्यपत्नी तारा किसी कारणवश रुष्ट होकर अपना यजमान समझकर चन्द्रमा के निवास पर गई । तब चन्द्रमा देवाचार्यपत्नी तारा का हरण करने पर देवों के द्वारा प्रताड़ित होकर चिन्तित हो गया ॥४॥

यह चन्द्रमा उस समय गन्धर्वों का राजा था, जिनके नियम में स्त्रियों के लिए विवाह के सम्बन्ध में कोई बन्धन नहीं था । इनकी नीति में प्रीतिदान से ही स्त्रियाँ पुरुषों की स्वीया (अपनी) हो जाती थीं । इसलिए इसने तारा का हरण कर लिया ॥५॥

जब उस समय देवों ने चन्द्रमा को रुष्ट कर दिया, तब अवसर पाकर दैत्यों ने अपनी सैन्यशक्ति से चन्द्रमा का हित साधन करते हुए उसे अपने पक्ष में कर लिया ॥६॥

पक्ष में ग्रहण कर लेने पर खरीदा हुआ यह चन्द्रमा अपने सोमरक्षण रूप कर्तव्य से शिथिल हो गया । इस प्रकार दैत्यगण सोमवल्ली के समूह का विनाश करने में चन्द्रमा के दोष के कारण समर्थ हो गये ॥७॥

धीरे-धीरे दुष्ट नीच दैत्यगणों द्वारा युद्ध के अतिरिक्त भी अन्य प्रयत्नों से भी सोमवल्ली का विनाश करते हुए ब्रह्मवीर्य द्वारा अत्यधिक प्रशस्त ये सोमवल्लियाँ पूर्णतः नष्ट कर दी गईं ॥८॥

ऐसा मानते हैं कि सिन्ध के पार बोलनघाटी (Bolan Pass) पर्वत के प्रान्त भाग में माजन्दारान् नाम से प्रसिद्ध पर्वत पर आज भी पर्याप्त मात्रा में सोम उपलब्ध होता है ॥९ ॥

परन्तु हम कहते हैं कि यह वह मुख्य सोम नहीं है । जो ब्रह्मण्य (ब्राह्मी) सोम था, वह नष्ट हो गया है । आज जिस प्रकार मण्डूकपर्णी को ब्राह्मी कहा जाता है, उस प्रकार यह सोम भी कोई अन्य सोम ही है ॥१० ॥

२१. सोमप्रातिनिध्येन सुरोत्पादनम् ।

अप्राप्य सोममसुराः सोमविधं मादकं विधापयितुम्।
असुराधीशं वरुणं राजानं प्रार्थयामासुः ॥१ ॥
वरुणस्ततः प्रयत्नाद् विनिर्म्ममे वारुणीं मदिराम्।
पास्यामस्त्वसुरानिति सुरामिमां नातश्चक्रुः ॥२ ॥
एकादशप्रकाराः सुरास्ततस्त्वासवाः पृथग् बहवः।
भिन्नास्ततश्च शीधव इत्यवरे मादकाः सोमात् ॥३ ॥
सोमो धृतिविज्ञाने वर्द्धयते संस्करोति मस्तिष्कम्।
माल्यं, सुरा तु हरते तद् विज्ञानं, शिरोऽपि दूषयति ॥४ ॥

२१. सोम के प्रतिनिधित्व के रूप में सुरा का उत्पादन

अंसुरों ने सोम की प्राप्ति के अभाव में सोम सदृश ही किसी मादक वस्तु का विधान करने के लिए असुरपति राजा वरुण से प्रार्थना की ॥१ ॥

तब वरुण ने प्रयत्न करके वारुणी मदिरा का निर्माण किया। तब असुरों ने "हम इन सुरों का पान करेंगे" ऐसा कहते हुए इसका नाम सुरा रखा ॥२ ॥

यह सुरा ग्यारह प्रकार की होती है और इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के आसव होते हैं। इसके अतिरिक्त भी शीधु आदि सोम से निम्न स्तर के मादक द्रव्य होते हैं ॥३ ॥

सोम धृति (धारणाशक्ति) और विज्ञान को बढ़ाता है, मस्तिष्क का संस्कार करता है, सुरा मलिन है। यह विज्ञान का हरण करती है और मस्तिष्क को दूषित करती है ॥४ ॥

२२. सोमरसगुणप्रकाशका वेदमन्त्राः ।

बुद्धिः शौर्य्यसमृद्धी बलमारोग्यं महत्त्वमभयत्वम् ।
रिपुदमनक्षमता सुखदीर्घायुष्ट्वे जयश्च सोमेन ॥१ ॥
अद्रौ हैमे त्वोषधीनामधीशो योऽयं सोमः कश्चिदासीत् पुरात्वे ।
यो यस्तस्यासीद् गुणस्तं प्रगाथः काण्वः सम्यग् वर्णयामास विद्वान् ॥२ ॥

स्वादोरभक्षि वयसः सुमेधा स्वाध्यो वरिवोवित्तरस्य ।
विश्वे यं देवा उत मर्त्यासो मधु ब्रुवन्तो अभिसञ्चरन्ति ॥१॥
अन्तश्च प्रागा अदितिर्भवास्यवयाता हरसो दैव्यस्य।
इन्दविन्द्रस्य सख्यं जुषाणः श्रौष्टीव धुरमनुराय ऋध्याः ॥२॥
अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।
किं नूनमस्मान्कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृतमर्त्यस्य ॥३॥
शं नो भव हृद आपीत इन्दो पितेव सोम सूनवे सुशेवः ।
सखेव सख्य उरुशंस धीरः प्रण आयुर्जीवसे सोम तारीः ॥४॥
इमे मा पीता यशस उरुष्यवो रथं न गावः समनाह पर्वसु ।
ते मा रक्षन्तु विस्त्रसश्चरित्रादुत मा स्रामाद्यवयन्त्विन्दवः ॥५॥
अग्निं न मा मथितं संदिदीपः प्रचक्षय कृणु हि वस्यसो नः ।
अथा हि ते मद आ सोम मन्ये रेवां इव प्रचरा पुष्टिमच्छ ॥६॥
इषिरेण ते मनसा सुतस्य भक्षीमहि पित्र्यस्येव रायः ।
सोमराजन्प्रण आयूँषि तारीरहानीव सूर्यो वासराणि ॥७॥
सोमराजन्मृडयानः स्वस्ति तव स्मसि व्रत्या ३ स्तस्य विद्धि।
अलर्ति दक्ष उत मन्युरिन्दो मानो अर्यो अनुकामं परा दाः॥८॥
त्वं हि नस्तन्वः सोमगोपा गात्रे गात्रे निषसत्था नृचक्षाः।
यत्ते वयं प्रमिनाम व्रतानि सनो मृड सुषखा देववस्यः॥९॥ऋदूदरेण
सख्या सचेय यो मा नरिष्येद्धर्य्यस्व पीतः।
अयं यः सोमो न्यधाय्यस्मे तस्मा इन्द्रं प्रतिरमेम्यायुः॥१०॥
अपत्या अस्थुरनिरा अमी वा निरत्रसन्तमिषीचीरमैषुः।
आ सोम अस्माँ अरुह द्विहाया अगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः॥११॥
यो न इन्दुः पितरो हृत्सुपीतोऽमर्त्या मर्त्या आविवेश।
तस्मै सोमाय हविषा विधेम मृलीके अस्य सुमतौ स्याम॥१२॥
त्वं सोम पितृभिः संविदानोऽनुद्यावा पृथिवी आ ततन्थ।
तस्मै त इन्द्रो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥१३॥
त्रातारो देवा अधि वोचता नो मा नो निद्रा ईशत मोतजल्पिः।
वयं सोमस्य विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम॥१४॥
त्वं नः सोम विश्वतो वयोधास्त्वं स्वर्विदा विशा नृचक्षाः।
त्वं नः इन्द ऊतिभिः सजोषाः पाहि पश्चात्तादुत वा पुरस्तात्॥१५॥

(८।४८।१-१५)

एवं कृत्नुर्भार्गवः सोममस्तौदूनाशीत्या वाष्टषष्ट्यामिते वा॥ (७९) (६८) ॥
सूक्ते सम्यङ् मण्डलस्याष्टमस्य प्रायः प्रोचुर्मण्डले वोत्तरेऽन्ये ॥१६॥

२२. सोम रस के गुण को प्रकाशित करने वाले वेद-मंत्र

सोम से बुद्धि, वीरता, समृद्धि, बल-आरोग्य, महत्त्व, निर्भयता, शत्रुदमन-शक्ति, सुख, दीर्घायु और विजय की प्राप्ति होती है। ॥१॥

औषधियों का स्वामी कोई यह सोम प्राचीन काल में हिमालय पर्वत पर विद्यमान था। उसके जो गुण थे, उनका विद्वान् काण्व प्रगाथ ने भली प्रकार से वर्णन किया है॥२॥

जिस सोम को देव और मनुष्य मीठा बताते हुए विचरण करते हैं, उस अत्यन्त पूज्य और स्वादिष्ट अन्य रूप सोमरस को उत्तम अध्ययन करने वाले तथा उत्तम बुद्धि वाले मैंने (काण्व ने) खाया है॥१॥

हे अविनाशी सोम ! तू शरीर के अन्दर जाते ही मनुष्य के घोर क्रोध को भी दूर कर देता है। हे सोम ! तू धन प्रदान करने के लिए उसी प्रकार प्रवृत्त होता है, जिस प्रकार घोड़े इन्द्र की मित्रता को स्वीकार कर के रथ की धुरी में जुड़ने के लिए प्रवृत्त होते हैं॥२॥

हमने अब सोम का पान कर लिया है और हम अमर हो गये हैं। हमने अब प्रकाश को प्राप्त कर लिया है और देवों को जान लिया है। हे अमृतरूप सोम ! अब शत्रु और धूर्त मनुष्य हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है॥३॥

हे चन्द्र सोम ! पेट में पीए जाने पर तू हमारे लिए कल्याणकारी हो। तू हमारे लिए उसी तरह कल्याणकारी हो, जिस तरह एक पिता अपने पुत्र के लिए और मित्र अपने मित्र के लिए कल्याणकारी होता है। हे प्रशंसनीय सोम ! तुम धीर हो अतः हमारी आयु को दीर्घ करो अर्थात् हमें दीर्घायु प्रदान करो॥४॥

यह यशस्वी और रक्षा करने वाला सोम शरीर में पीए जाने पर मेरे शरीर के जोड़ों को उसी प्रकार सुदृढ़ बनावे जैसे बैल रथ को खींचता है।वे सोम मेरे कमजोर पैरों को शक्ति प्रदान कर और मुझे रोगों से मुक्त करे॥५॥

हे सोम ! मुझे भी प्रज्वलित होती हुई अग्नि के समान देदीप्यमान कर, मुझे तेजस्वी बना, हमें धनवान् बना। हे सोम ! मैं आनंद में तेरी स्तुति करता हूँ कि तू धनवान् की तरह सर्वत्र विचरण करता हुआ हमें पुष्टि प्रदान कर॥६॥

इच्छायुक्त मन से निचोड़े हुए हे सोम! तेरा हम उसी तरह उपभोग करें, जिस तरह पिता के धन का पुत्र उपभोग करता है। हे तेजस्वी सोम ! जिस तरह सूर्य निवास देने वाले दिनों का विस्तार करता है, उसी तरह तू भी हमारी आयु का विस्तार कर (वृद्धि प्रदान कर)॥७॥

हे तेजस्वी सोम ! हमें हमारे कल्याण के लिए हमें सुखी कर। हम व्रत का पालन करने वाले हैं और तेरे अपने हैं ऐसा तू जान। हे चन्द्र सोम ! हमें दक्षता और सात्त्विक

क्रोध प्रदान कर। हमें शत्रुओं की इच्छा के अधीन मत कर (अर्थात् हमें शत्रुओं से अधिक बलवान् बना) ॥८॥

हे सोम ! तू हमारे शरीर का रक्षक है। मनुष्यों का निरीक्षण करने वाला तू हमारे प्रत्येक अंग में जा कर शक्ति प्रदान कर। यद्यपि हम तेरे नियमों का उल्लंघन कर देते हैं तथापि तू अच्छे मित्र की भांति हमें सुखी कर॥९॥

हे उत्तम घोड़े वाले इन्द्र ! मैं सरलता से पचाने योग्य सोम की मित्रता प्राप्त करूँ। जो सोम पान किये जाने पर हमें दुखी न करे। मैं इन्द्र से प्रार्थना करता हूँ कि वह हमारे अन्दर प्रविष्ट हुए सोम से हमें दीर्घायु प्रदान करे॥१०॥

यह महान् सोम हमें प्राप्त हो गया है, इसलिए अब हमारे बलवान् और असाध्य रोग भी दूर चले जाएँ, जिन रोगों ने हमें पीड़ा दी है और हमें त्रस्त किया है, वे चले जाएँ और हम वहीं जावें, जहां सोम आयु की वृद्धि करते हों॥११॥

हे पितरों ! पान करने पर जो अमर सोम हम मर्त्य प्राणियों के हृदय में प्रविष्ट होता है। हम उस सोम की हवि द्वारा आराधना करते हैं। इसकी सेवा से हम उत्तम बुद्धि को प्राप्त करें॥१२॥

हे सोम ! तू विद्वानों से युक्त होकर द्युलोक और पृथिवीलोक का विस्तार करता है। हे चन्द्र सोम ! हम तुझे हवि प्रदान करते हुए तेरी सेवा करते है। हम धन के स्वामी बनें॥१३॥

हे रक्षक देवों ! हमें उपदेश प्रदान करो, जिससे हम अपना समय आलस्य और व्यर्थ प्रलाप में न व्यतीत करें। हम प्रतिदिन उत्तम पुत्र पौत्रों से युक्त होकर सोम के प्रिय बनें और उसकी स्तुतियों का गान करें॥१४॥

हे चन्द्र सोम ! तू हमें चारों ओर से अन्न प्रदान करने वाला है, तु सुख को जानने वाला और मनुष्यों का निरीक्षण करने वाला है। तू हमारे अन्दर प्रवेश कर, तू प्रसन्न होकर हमारे आगे पीछे से अपने संरक्षणों से रक्षा कर॥१५॥ (ऋग्.८/४८)

इसी प्रकार कृत्नु भार्गव ने भी ऋग्वेद के आठवें मण्डल के उनियासीवें (७९) और अड़सठवें (६८) सूक्त में सोम की स्तुति की है। अन्य उत्तरमण्डलों में भी सोम की स्तुति की है॥१६॥

२३. इन्द्रभवने प्रत्यहं त्रिंशतः सोमसरसामुपयोगः ।

सोमलतारसपूर्णान्यासन् प्रातिस्विकानि शक्रस्य ।
गन्धर्वरक्षितानि त्रिंशत् स्वर्गे सरांसि क्लृप्तानि ॥१॥
ऐन्द्रे भुक्तिप्रमहे सहभुग् जनता बहुत्वतस्त्रिंशत् ।
सोमसरांसि निपीतान्येकोपक्रमतया भवन्ति स्म ॥२॥

"एकया प्रतिधाऽपिबत् साकं सरांसि त्रिंशतम् ।
इन्द्रः सोमस्य काणुका" ॥१९॥ [८।७७।४]

सोमवल्लीस्वरूपम् ।

सुश्रुतचिकित्सितेऽपि च स चतुर्विंशतिविधो विनिर्दिष्टः । (चिकित्सा-स्थाने २९ अ.)

* वल्ली—प्रतानरूपा क्षुपरूपा वा भवेच्च सोमविधा ॥१॥
पाङ्क्तत्रैष्टुभजागतगायत्राः सांकराश्च काश्मीरे ।
क्षुद्रकसरसि प्राप्या गिरिषु वितस्तोत्तरेषु चन्द्राख्यः ॥२॥
अपि मुञ्जवान् स शैले मुञ्जवतीहांशुमानयं गिरिषु ।
अपि शर्य्यणावदादिषु गरुडः श्वेताक्ष इत्याद्याः ॥३॥
अलवर्ज नामतो यं पर्वतमाचक्षते म्लेच्छाः ।
सोमस्तत्र च लभ्यत इत्येवं प्रायशः ख्यातिः ॥४॥
सोमे श्वेतं क्षीरं प्रवर्तते मूलगः कन्दः ।
रस एतस्यास्वादुः श्वेतः पीतोऽथ चित्रपृश्निश्च ॥५॥
सोमलतताया दण्डे पञ्चदशैवच्छदा भवन्ति स्म ।
पञ्चदशाहं स्थित्वा ध्रुवं व्यशीर्यन्त षोडशेऽहनि ते ॥६॥
दर्शे पर्णाभावः प्रतिपदि पर्णोद्गमोऽन्वधः पर्व ।
प्रतितिथि पर्णोद्गमनात् पूर्णायां पञ्चदश तानि ॥७॥
प्रतिपद्यधरे पर्वणि पर्णनिपातः क्रमादुपर्य्येवम् ।
दर्शे पर्णाभावो ज्योतिष्मन्त्यस्य पर्णानि ॥८॥
सोमरसोऽयं पीतो दिव्यां दृष्टिं मनोगतः कुरुते ।
भूतं भव्यं चार्थं दूरपरोक्षं च दर्शयति ॥९॥
सर्वे नूनं मादकाः शीर्ष्णि दोषानुत्पाद्यालं घ्नन्ति बुद्धेः प्रभावम् ।
सोमस्त्वेको मादकः पीयमानः शीर्ष्णः सर्वान्नाशयत्याशु दोषान् ॥१०॥
मस्तिष्काङ्गं पोषयन्नेष सोमो ब्राह्मं वीर्यं क्षात्रवीर्य्योपपन्नम् ।
सृष्ट्वा सूते शिल्पविज्ञानविद्याः सोमस्तस्मादोषधीनामधीशः ॥११॥

---

* [1] गुडूच्याद्याकारा वल्ली । [2] उर्वारुकाद्याकारः प्रतानः । [3] कण्टकारिकाद्याकारः क्षुपः ।

२३. इन्द्रभवन में प्रतिदिन तीस प्रकार के सोम रसों का उपयोग

स्वर्ग में सोमलता के रस से परिपूर्ण, इन्द्र के गन्धर्वों के द्वारा रक्षित परम्परागत तीस सरोवर इन्द्र के अपने वैयक्तिक सरोवर बनें हुए थे ॥१॥

इन्द्र के भोजनोत्सव में इन्द्र के साथ प्रायः भोजन करने वाले तीस जनता अर्थात् जन समूह थे और वे क्रमशः एक-एक करके इन तीस सोम सरोवरों का पान करते थे ॥२॥

ऋग्वेद में लिखा है —

"यह इन्द्र सोम के तीस सुन्दर पात्रों को एक साथ एक ही सांस में पी गया ॥१९॥ (८/७७/४)"

सोमवल्ली का स्वरूप-वर्णन—

सुश्रुत संहिता में भी चौबीस प्रकार के सोम का निर्देश किया गया है । (चिकित्सा स्थान/२९ अ.)

* सोम तीन प्रकार का होता है—वल्ली रूप, प्रतान रूप और कण्टकारी (छोटा कटीला पौधा) ॥१॥

सोम की विभिन्न जातियों में से काश्मीर प्रदेश में पाङ्क्त, त्रैष्टुभ, जागत, गायत्र और विभिन्न जाति की सम्मिलित श्रेणियाँ पाई जाती थीं । वितस्ता नदी के उत्तरी पर्वत में क्षुद्रक नाम के अथवा छोटे-छोटे तालाबों में चन्द्र नाम की सोमवल्ली प्राप्त होती थी ॥२॥

मुंजवान् नाम के पर्वत पर मंजुवती नाम की नदी में अंशुमान् नाम का सोम पैदा होता था । शर्य्यणावत इत्यादि पर्वतों पर गरुड़ और श्वेताक्ष नाम के सोम उत्पन्न होते थे ॥३॥

म्लेच्छ जिस पर्वत को अलवर्ज नाम से कहते हैं, उस पर्वत पर सोम प्रायः (बहुत मात्रा में) उत्पन्न होता था ऐसा प्रसिद्ध है ॥४॥

सोमलता का दूध सफेद होता है और इसके मूल में कन्द भी होता है, किन्तु इसका रस सफेद, पीला, विविध प्रकार का अथवा विचित्रवर्ण का होता है तथा वह स्वादिष्ट नहीं होता है ॥५॥

सोमलता के दण्ड पर मात्र पन्द्रह ही पत्ते होते थे । वे पत्ते पन्द्रह दिन ठहर कर सोलहवें दिन अवश्य ही झड़ने लग जाते थे ॥६॥

अमावस्या के दिन पत्तों का पूर्णतः अभाव होता था अर्थात् लतादण्ड पर कोई पत्ता नहीं रहता था । प्रतिपदा से पत्तों का उद्गम प्रारंभ होता था और प्रत्येक तिथि पर पत्ते के उगने से पूर्णिमा के दिन वे पन्द्रह पत्ते हो जाते थे ॥७॥

---

* (१) गिलोय आदि के आकार की वल्ली (लता) रूप, (२) बेर की झाड़ी के आकार की प्रतान रूप और (३) कटहेली की तरह छोटे पौधे के रूप में तीन प्रकार की सोमलता बताई गई है।

पूर्णिमा के बाद की प्रतिपदा से पत्तों का क्रमशः निपात होता था और अमावस्या के दिन पत्तों का पूर्ण अभाव हो जाता था । इस सोमलता के पत्ते प्रकाशमान (चमकीले) होते थे ॥८॥

इस सोमरस को पीए जाने पर यह मनोगत (मन की इच्छानुसार) दिव्य दृष्टि प्रदान करता है । इससे भूत और भविष्य तथा अदृश्य और दूरस्थ अर्थ (वस्तु-ज्ञान) का दर्शन हो जाता है ॥९॥

अन्य सभी मादक पदार्थ निश्चय ही मस्तिष्क में दोष उत्पन्न करके बुद्धि के प्रभाव को नष्ट कर देते हैं, परन्तु सोम ही एकमात्र ऐसा मादक पदार्थ है, जो पीए जाने पर मस्तिष्क के समस्त दोषों को तत्काल ही नष्ट कर देता है ॥१०॥

यह सोम मस्तिष्क के अंगों को पुष्ट करता हुआ क्षात्रवीर्य से युक्त ब्राह्मवीर्य का सर्जन कर के शिल्प और विज्ञान-विद्याओं को उत्पन्न करता है । इसीलिए सोम औषधियों का स्वामी है ॥११॥

२४. ब्रह्मवीर्य्यम् ।

ब्राह्मे वीर्य्ये योगजाः सिद्धयः स्युः सूक्ष्मेऽप्यर्थे भाति विज्ञानमग्र्यम्।
धृत्युत्कर्षः स्यात् स्थितप्रज्ञता वा शान्तिर्दैवी संपदत्राऽनृशंस्यम् ॥१॥

२४. ब्राह्मवीर्य

ब्राह्मवीर्य में योगज सिद्धियां होती हैं और ब्राह्मवीर्य में सूक्ष्म अर्थ (ज्ञान) में भी श्रेष्ठ (अग्रिम) ज्ञान प्रकाशित होता है । इसमें धर्म (धैर्य) का उत्कर्ष होता है और चित्त में एकाग्रता उत्पन्न होती है । सोम से दैवी शान्ति प्राप्त होती है अर्थात् दिव्य गुणों की उत्पत्ति होती है और दयालुता जागृत होती है ॥१॥

२५. सोमध्वंसाद् ब्रह्मवीर्यापध्वंसः ।

ब्राह्मं वीर्य्यं भाति विज्ञानहेतोः सूर्य्योपास्तेः सोमपेयाच्च यज्ञात् ।
ब्राह्माद् वीर्य्यात् त्वेषु सक्तिः प्रवृत्तिः ब्राह्मं वीर्य्यं सर्वसिद्धेरुपायः ॥१॥
यद्वद्दासैर्नाशितं सूर्य्यचक्रं तद्वद्दैत्यैर्नाशिता सोमवल्ली ।
भूमिः कृत्स्ना दानवैस्तैर्जितेयं हन्तेदानीं ब्रह्मवीर्य्यं निरस्तम् ॥२॥
विड्वीर्य्यात्तु क्षात्रवीर्य्यं वरेण्यं क्षात्राद्वीर्य्याद् ब्राह्मवीर्य्यं वरेण्यम् ।
ब्राह्मं शास्तृ क्षात्रविड्वीर्य्ययोः स्याद् विड्वीर्य्यस्य क्षात्रवीर्य्यं प्रशास्तृ ॥३॥
विड्वीर्य्यात्तु तु प्रायशोऽस्त्यत्र लभ्यं भूयांसो वै सन्ति लोके विशस्ताः।
तासां शास्तृ क्षत्रमत्यल्पमाप्यं राजा ह्येको भूयसीनां प्रशास्ता ॥४॥

यावत्क्षत्रं किञ्चिदस्तीह लोके तस्मादेतद् ब्राह्मवीर्य्यं कनीयः।
नाना क्षत्रं शास्ति हि ब्राह्मणोऽसावेकः कश्चिद् यो गुरुः क्षत्रियाणाम् ॥५ ॥
किन्तु ब्रूमो भूयसाल्पं विनष्टं कर्त्तुं शक्यं वस्तुधर्म्मस्तथास्ति।
साध्यं श्रेयो दूरमस्तीति मन्दं सिद्धात् पापाद्धन्यते वा सदेशात् ॥६ ॥
क्षुद्रश्चन्द्रः सूर्य्यमेतं महान्तं खग्रासे हि च्छादयन् संतनोति।
ध्वान्तं सूर्य्यज्योतिषः स्यान्निरोधस्तद्वद् ब्राह्मं क्षात्रतोऽभूद्विनष्टम् ॥७ ॥
अग्नेर्जातो वर्द्धितो रक्षितोऽस्माद् अग्नी रक्षत्येष वंशप्रकाण्डः।
तत्रैवान्यो घर्षजन्माऽग्निरुग्रं शान्तं चाग्निं वंशमप्याशु हन्ति ॥८ ॥

२५. सोम के नष्ट हो जाने से ब्राह्मवीर्य का ध्वंस होना

ब्राह्मवीर्य विज्ञान के कारण, सूर्य की उपासना से, सोम का पान करने से और यज्ञ से उत्पन्न होता है। इस ब्राह्मवीर्य से इनमें आसक्ति उत्पन्न होती है और प्रवृत्ति होती है । अतः ब्राह्मवीर्य समस्त (सम्पूर्ण) सिद्धियों का साधक है ॥१ ॥

जिस तरह दासों द्वारा सूर्यचक्र नष्ट कर दिया गया था उसी तरह दैत्यों ने सोमवल्ली को नष्ट कर दिया। सम्पूर्ण भूमि दानवों के द्वारा जीत ली गई। दुःख है कि अब इस समय ब्राह्मवीर्य नष्ट हो गया ॥२ ॥

विड्वीर्य (वैश्यवीर्य) से क्षात्रवीर्य श्रेष्ठ है, क्षात्रवीर्य से ब्राह्मवीर्य श्रेष्ठ है। ब्राह्मवीर्य क्षात्रवीर्य और विड्वीर्य दोनों पर शासन करता है। क्षात्रवीर्य विड्वीर्य पर शासन करने वाला है ॥३ ॥

यहाँ (भूमि पर) विड्वीर्य तो प्रायः उपलब्ध हो जाता है। अर्थात् विपुल मात्रा में प्राप्त हो जाता है। और वैश्यगण लोक में बहुत मात्रा में मिल जाते है, परन्तु उनका शासक जो क्षात्रवीर्य है, वह बहुत अल्प मात्रा में प्राप्त है, क्योंकि अकेला राजा ही बहुत सी प्रजाओं का शासक होता है ॥४ ॥

जितना कुछ इस लोक में क्षात्रवीर्य है, उससे भी ब्राह्मवीर्य अल्प मात्रा में है, क्योंकि यह ब्राह्मवीर्य अकेला ही अनेक क्षात्रवीर्य पर शासन करता है। यह क्षत्रियों का गुरु है ॥५ ॥

किन्तु हम कहते है कि अधिक मात्रा वाला (बलवान्) अल्पमात्रा वाले को नष्ट करने में समर्थ होता है, क्योंकि ऐसा ही वस्तु का धर्म है (प्रकृति का नियम है) कि कल्याण साध्य (साधना करने योग्य) है, परन्तु वह दूर (कष्टसाध्य) होता है। अतः मन्द है अर्थात् पुण्य का फल देर से मिलता है। पाप सिद्ध होता है और वह समान देश अर्थात् तत्काल फलदायी होता है ॥६ ॥

यह चन्द्रमा छोटा है और सूर्य महान् है, विशाल है। उस सूर्य को अल्पाकार चन्द्रमा खग्रास (सूर्यग्रहण) के समय ढक देता है और अन्धकार फैला देता है। सूर्य के ढक जाने पर सूर्य ज्योति भी नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार बढे हुए क्षात्रवीर्य से ब्राह्मवीर्य नष्ट हो गया ॥७ ॥

बाँस की तरह ब्राह्मवीर्य अग्नि से उत्पन्न हुआ, अग्नि द्वारा वृद्धि को प्राप्त हुआ और रक्षा किया गया है। इसलिए दूसरे के घर्षण से उत्पन्न अग्नि अधिक उग्र होता है (दावाग्नि), जो शान्त अग्निस्वरूप बाँस को तत्काल नष्ट कर देता है ॥८ ॥

२६. सूर्य्यार्थे देवानां दस्युभिः संग्रामः। तत्र विज्ञानौपयिके सूर्य्येऽसुरप्रेरितानां दासानामाक्रमणम् ।

देवानामिह सूर्य्यादुदगाद् वैज्ञानिकः प्रभावः सः।
सौमिकयज्ञवशात् ते प्रापुर्लोकातिगां भूतिम् ॥१ ॥
बलिनोऽसुरास्त एते महाविभूतिं महाप्रभावं च।
देवानामिह दृष्ट्वा यज्ञं कर्तुं यतन्ते स्म ॥२ ॥
विज्ञानदुर्बलत्वादप्रारयन्तस्तु ते यज्ञे।
विज्ञानोदयनार्थं सूर्य्येस्मिन्नाक्रमन्ते स्म ॥३ ॥
सूर्य्यः पृथ्व्यां चक्रद्वयरूपः कश्चिदासीत् प्राक्।
देवैर्विनिर्मितस्तं हर्तुं दासान् न्ययोजयन्नसुराः ॥४ ॥
यद्देवदासीयनियोधनं तद् यैर्यत्र येषामभवद् यदर्थम्।
तज्ज्ञायते वेदवचोऽवधानात् तत्किंचिदत्रापि निदर्शयामः ॥ ५ ॥
प्राक् स्वर्णरं सप्तगुमभ्यवोचद् वैकुण्ठ इन्द्रः प्रमहेऽमराणाम्।
स्वं कार्त्स्न्यतो जीवनकर्म्म तस्मिन् अवर्णयद्दासकुलैः स्वयुद्धम् ॥६ ॥

२६. सूर्य के लिए देवों का दस्युओं से संग्राम। विज्ञान के लिए उपयुक्त सूर्य पर असुरों द्वारा प्रेरित दासों का आक्रमण

यहाँ देवों का वैज्ञानिक प्रभाव सूर्य से उत्पन्न हुआ और सोम यज्ञ के द्वारा ये लोकोत्तर ऐश्वर्य को प्राप्त हो गये ॥१ ॥

ये बलवान् असुर देवों की महान् विभूति और प्रभाव को देखकर यज्ञ करने में प्रयत्नशील हुए ॥२ ॥

विज्ञान में दुर्बल होने के कारण उन असुरों ने यज्ञ कार्य में सफल न होते हुए विज्ञान के उदय के लिए अर्थात् विज्ञानोत्पत्ति के आधार स्वरूप सूर्य पर आक्रमण कर दिया ॥३ ॥

प्राचीनकाल में पृथ्वी पर कोई दो चक्र वाला सूर्य था, जो देवों द्वारा बनाया गया था और जिसका हरण करने के लिए असुरों ने दासों को नियुक्त किया ॥४ ॥

इन देवों और दासों का युद्ध जिनके साथ जिस स्थान पर, जिनका और जिनके कारण हुआ, वह वैदिक वाक्यों से जाना जाता है, उसका कुछ निदर्शन यहाँ भी करते हैं ॥५ ॥

प्राचीन समय में देवों के उत्सव में वैकुण्ठ नाम के इन्द्र ने स्वर्ग के मानव सप्तगु को अपने सम्पूर्ण जीवनकर्म और उस जीवन में दासकुलों के साथ हुए अपने युद्ध के विषय में कहा ॥६ ॥

२७. मनुष्यामनुष्यभेदात् दासानां त्रैविध्यम्।

स एष दासस्तु न देव आसीन्न दानवो नापि मनुष्य आसीत्।
आर्य्यैर्द्विषन् कश्चिदनार्य्यः पृथग्वदेवैष विभाग आसीत् ॥१ ॥
बर्बरभिन्नाः सभ्या आर्य्या दासा इति द्विविधाः।
आर्य्या बहुधा भिन्ना देवपितृप्रभृतयः कथिताः ॥२ ॥
सभ्येष्वेकेऽनार्य्या जात्या दासा हि दस्यवो वृत्त्या।
चौर्य्याद्भयाच्च दैन्यात् पलाय्य दासा उपक्षयिणः ॥३ ॥
अमनुष्याश्च मनुष्या इत्थं दासा अमी द्विविधाः।
भारतवर्षाभिजना वन्यनिषादा मनुष्यदासाः स्युः ॥४ ॥
तेषामार्य्यैः साकं क्वापि कदापि श्रुतं न युद्धमिदम्।
नैते जिता न चैते भारतवर्षान्निराकृता न हताः ॥५ ॥
दस्युनियुद्धादस्मात् प्रागेवैषां बहोः कालात्।
सहवासोऽनार्य्याणां भारतीयानाम् ॥६ ॥
मनुना स्मृतौ त एते स्मर्यन्तेऽद्यापि दृश्यन्ते
भारतवर्षबहिःस्थास्त्वमनुष्या गिरिचरा दासाः ॥७ ॥
तेषां प्रभवं प्रकृतिं भेदान् वसतीश्च युद्धसंस्थानम्।
तदभिज्ञानविशेषानत ऊर्ध्वं दर्शयिष्यामः ॥८ ॥

२७. मनुष्य और अमनुष्य भेद से दासों के तीन भेद

यह दास (दासकुल) न तो देव था, न दानव था और न ही मनुष्य था। आर्यों से द्वेष करने वाले यह अनिवार्य वर्ग का कोई एक भिन्न ही विभाग (जाति) था ॥१ ॥

बर्बर-क्रूर जाति से भिन्न आर्य और दास रूप से सभ्य लोग दो भागों में विभक्त थे। आर्य अनेक प्रकार के थे, जो देव और पितृ आदि नामों से कहे जाते थे ॥२ ॥

सभ्यों में कुछ अनार्य जाति के थे, वे दास कहे जाते थे, जो वृत्ति से दस्यु थे। चोरी, भय और दैन्य (दीनता) से ये उपक्षयी (क्षीणावस्था वाले) दास भाग कर मनुष्य और अमनुष्य

रूप से दो भागों में विभक्त हो गये अर्थात् दो प्रकार के दास हो गये। इनमें से भारतवर्ष में रहने वाले जंगली निषाद आदि मनुष्य दास थे ॥३-४॥

इन मनुष्य दासों के साथ आर्यों का कभी भी कोई युद्ध नहीं सुना गया। न तो ये कभी जीते गये और न ही कभी भारतवर्ष से बाहर निकाले गये ॥५॥

इस दस्यु-युद्ध से बहुत समय पहले से ही भारतीय आर्यों और अनार्यों का सहवास था अर्थात् वे साथ साथ निवास करते थे ॥६॥

आचार्य मनु के द्वारा मनुस्मृति में ये वन्य मनुष्य दास स्मरण किये गये है। आज भी भारत के बाहरी भागों में रहने वाले पर्वतों में विचरण करने वाले ये मनुष्य दास दिखाई देते हैं ॥७॥

इन दासों की उत्पत्ति, स्वभाव, इनके भेद, इनका निवासस्थान और युद्धक्रिया, उनका पहचान का चिह्न इत्यादि बातें हम आगे बतायेंगे ॥८॥

२८. अमनुष्यदासानां प्रभवः ।

ये देवयोनयस्ते दशधा भिन्ना अमीषु भूतगणाः ।
आसन्नेके तेऽपि द्विविधाः सभ्या असभ्याश्च ॥१॥
सभ्यनिकाये भुक्ता आर्यनिदेशानुकारिणः सभ्याः ।
ये विपरीता एभ्योऽसभ्यास्ते दस्यवोऽपगणाः ॥२॥
*** प्रमथप्रमुखा बहवो गणाः सुराणां तु सैनिका आसन् ।**
उत्सवसंकेताद्याः केऽपि गणाः भारते कथिताः ॥३॥ सभा—२७

* सभापर्व अ. २७ पौरवं युधि निर्जित्य दस्यून् पर्वतवासिनः ।
गणानुत्सवसंकेतानजयत् सप्त पाडवः ॥१॥
ततः काश्मीरकान्वीरान् क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः ।
व्यजयल्लोहितं चैव मंडलैर्दशभिः सह ॥२॥
ततः परमविक्रान्तो बाह्लीकान् पाकशासनिः ।
महता परिमर्देन वशे चक्रं दुरासदान् ॥३॥
दण्डान् सह काम्बोजैरजयत् पाकशासनिः ॥४॥
प्रागुत्तरां दिशं ये च वसन्त्याश्रित्य दस्यवः ॥
निवसन्ति वने ये च तान् सर्वानजयत् प्रभुः ॥५॥
लोहान् परमकाम्बोजानृषिकानुत्तरानपि ।
ऋषिकेष्वपि संग्रामो बभूवातिभयंकरः ॥६॥
स श्वेतपर्वतं वीरः समतिक्रम्य वीर्य्यवान् ।
तं जित्वा हाटकं नाम देशं गुह्यकरक्षितम् ॥७॥

टिप्पणी क्रमशः......

एभ्यो ये विपरीता लुठच्चरास्तेऽपरीतयः प्रोक्ताः।
मन्ये त एव सांप्रतमफरीदीत्याख्ययाख्याताः ॥४॥
हीरोदोतस एवान्-अपरीतईत्येवमाचष्ट (Apparytai)
तस्मात् पूर्वयुगेऽमी अपरीयत एवं चाख्याताः ॥५॥
युद्धस्थलान्न येषां परिच्युतिस्तेऽपरीतयः सुदृढाः।
परिगलितं यन्न स्यादपरीतत्वं श्रुतं तस्य ॥६॥
विश्वमना वैयश्वोऽप्रतिरुद्धं वक्तुमिन्द्रबलम्।
अपि गौतमः क्रतून् प्रतिरुद्धान् वक्तुमाह शब्दं तम् ॥७॥
इन्द्र यथा ह्यस्तितेऽपरीतं नृतो शवः।
अमृताराति: पुरुहूत दाशुषे (८। २४। ९) ॥८॥
आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास
उद्भिदः। देवानो यथा सदमिद् वृधे
असन्न प्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥९॥ (ऋ. सं. १।९।१)
(शु. यजु. सं. २५।१४)
अथवा ये प्रतिरुद्धाः परिच्युता आपरीतयस्ते स्युः।
एषां वेश्म समन्तात् प्रतिरुद्धं चापरीतिनस्ते वा ॥१०॥
दैवतरीत्यपकर्षादेषामरीतिता गणानां स्यात्।
अपकृष्टत्वादेषामपगणशब्देन विश्रुतिश्चासीत् ॥११॥
त इमेऽफगाननाम्ना अफगन् नाम्ना च सांप्रतं प्रथिताः।
एषामेव तु वैदिकसमये दासत्वमुपपन्नम् ॥१२॥

२८. अमनुष्य-दासों का प्रभाव

जो देवयोनियाँ हैं, वे इस प्रकार से विभाजित हैं, इन्हीं में कुछ भूतगण थे, जो सभ्य और असभ्य दो प्रकार के थे।

(ये दस देवयोनियाँ पुराणों में इस प्रकार वर्णित हैं-विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध और भूत) ॥१॥

सभ्य भूमि में निवास करने वाले और आर्यों के निर्देश को मानने वाले सभ्य थे। जो इनके विपरीत थे, वे असभ्य निम्न जाति के दस्यु थे ॥२॥

पिछले पृष्ठ से टिप्पणी क्रमशः......
सरो मानसमासाद्य हाटकानभितः प्रभुः।
गन्धर्वरक्षितं देशमजयत् पांडवस्ततः ॥८॥

* प्रमथ जिनके प्रधान थे ऐसे बहुत से गण थे। वे देवों के सैनिक थे। कुछ उत्सव और संकेत आदि नाम के गण महाभारत में कहे गये हैं ॥३॥ महा. भा. के सभापर्व के २६वें अध्याय में इनका वर्णन है।

इनसे जो विपरीत थे, वे लुटेरे थे, वे अपरीति कहलाये । मैं मानता हूँ कि वे ही आज "अफरीदी" नाम से कहे जाते हैं ॥४॥

"हीरोदोतस" नाम के लेखक ने इनको "अपरीतइ" नाम से कहा है। उससे पूर्वकाल में वे "अपरीति" ही कहे जाते थे ॥५॥

इनका नाम अपरीति क्यों रखा गया ? इस संबंध में कहा गया है-युद्धस्थल से जिनकी च्युति (पराजय अथवा पलायन) नहीं होती थी और जो सुदृढ़ बलवान् थे वे अपरीति थे। जिसका परिगलन अर्थात् रिसाव नहीं हो, जो टपके नहीं उसे उसका अपरीतत्व कहा जाता है अथवा सुना गया है ॥६॥

वियश्व के पुत्र विश्वमना ने इन्द्र के निन्दारहित श्रेष्ठ बल को कहने के लिए और गौतम ने भी प्रतिरुद्ध अर्थात् विघ्नयुक्त यज्ञों के लिए अपरीति शब्द का प्रयोग किया है ॥७॥

ऋग्वेद में लिखा है-हे महान् इन्द्र !जिस प्रकार तेरा बल शत्रुओं द्वारा अपरिमित है, उसी प्रकार हे पुरुहूत इन्द्र !दाता को दिये जाने वाले तेरे दान भी अविनाशी हैं ॥(८/२४/९) ॥८॥

हमारे पास चारों ओर से कल्याणकारी उच्चावस्था को पहुँचाने वाले, पराभूत न होने वाले शुभ कर्म आवें। प्रगति को न रोकने वाले, प्रतिदिन सुरक्षा करने वाले देव सदैव हमारा संवर्धन करें॥ (१/९/१) ॥९॥

---

* पौरव को युद्ध में जीत कर पर्वतनिवासी लुटेरों के सात दलों पर, जो उत्सव संकेत नाम से जाने जाते थे, पांडव कुमार अर्जुन ने विजय प्राप्त की ॥१॥

इसके बाद क्षत्रिय शिरोमणि (धनंजय) ने काश्मीर के क्षत्रियवीरों को तथा दस मण्डलों के साथ राजा लोहित को जीत लिया ॥२॥

तत्पश्चात् परमपराक्रमी इन्द्र कुमार जयन्त ने भारी मारकाट मचाकर दुर्घर्ष, वीर बाह्लीकों को वश में कर लिया ॥३॥

काम्बोजों के साथ दरदों पर भी जयन्त ने विजय प्राप्त की ॥४॥

जो दस्यु ईशान कोण का आश्रय लेकर वन में निवास करते थे, उनको शक्तिशाली धनंजय ने जीतकर अपने वश में कर लिया ॥५॥

लोह, परम काम्बोज, ऋषिक, उत्तर देशों में और ऋषिक देशों में भी अर्जुन ने अत्यन्त भयंकर युद्ध किया ॥६॥

उस पराक्रमी वीर अर्जुन ने श्वेत पर्वत को लांघ कर उन गुह्यकों द्वारा रक्षित हाटक नाम के देश पर विजय प्राप्त की ॥७॥

मानसरोवर पर पहुंचकर शक्तिशाली पाण्डुकुमार अर्जुन ने हाटक देश के निकटवर्ती गन्धर्वो द्वारा सुरक्षित प्रदेश पर भी विजय प्राप्त की ॥८॥ (महा.भा.सभा. २७ अ)

अथवा प्रतिरुद्ध (कैद किए गए), भागे हुए और आपरीति है तथा इनका घर चारों ओर से प्रतिरुद्ध (घेर लिया गया) है, वे आपरीति है। (आ समन्तात् परीत अर्थात् जो चारों ओर से घिर गया है, वह अपरीती है) ॥१०॥

दैवत रीति से अपकर्ष होने के कारण इन गणों का अपरीतित्व था और अपकृष्ट होने के कारण इनकी 'अपगण' शब्द से ख्याति थी ॥११॥

वे ही इस समय अफगान नाम से और अफगन् नाम से प्रसिद्ध हैं। इन्हीं का वैदिक काल में दास होना युक्तिसंगत है ॥१२॥

२९. अमनुष्यदासप्रकृतिः।

उग्रप्रकृतय आसन् एते हत्यापरायणाः क्रूराः।
घोरा द्रुहश्च योद्धुं संनद्धाः स्वैरचर्य्याश्च ॥१॥

२९. अमनुष्य दासों की प्रकृति

ये अमनुष्य दास उग्र प्रकृति वाले, हत्या कार्य मे अनुरक्त, क्रूर, घोर, (दुर्धर्ष), षड्यंत्रकारी, युद्ध में लगे रहे वाले और स्वेच्छाचारी थे ॥१॥

३०. अमनुष्यदासप्रभेदाः ।

एषां बहवो भेदा अद्यत्वे चाभवनन्ये।
आसन् पुरापि बहवः सांकर्य्येण गण-नाग-दैत्यानाम् ॥१॥

३०. अमनुष्य दासों के प्रभेद

इनके बहुत से और भी भेद आज तक थे और पहले भी गण, नाग और दैत्यों के सांकर्य (मिश्रण) से बहुत से भेद थे ॥१॥

३१. अमनुष्यदासानां प्रमुखाः कतिपये वेदे नामतो निर्दिश्यन्ते।

बहवः श्रेणय एषामेकैकश्रेणिनायको भिन्नः।
प्रमुखा अराजकानां दासानां मन्त्रविश्रुताः केचित् ॥१॥
शंबरः कुयव-शुषण-पिप्रवाः पड्गृभिः स्मदिभ-रोहिणाऽहयः ।
व्यंस-वेश-मृगया-इलीलिविशः-शूश्रुवांश्चमुरि-तुग्रकौ धुनिः ॥२॥
पर्वतनिवासिशंबर एवाममोंच्यते तुजिर्वर्ची ।
दस्यव एते दासा असुरा पृत्राश्च सर्व उच्यन्ते ॥३॥

३१. अमनुष्य दासों के कुछ प्रमुख नामों का वेद में निर्देश किया जाना

इन अमनुष्य दासों की बहुत सी श्रेणियाँ थीं और प्रत्येक श्रेणी (जाति) का नायक अलग था । इन प्रमुख अराजक (राजा विहीन) दासों के सम्बन्ध में कुछ मन्त्र सुने जाते हैं ॥१॥

इन अराजक दासों के प्रमुखों के नाम थे— शंबर, कुयव - शुषण - पिप्रवा - पड्गृभि-स्मदिभ रोहिण - अहय - व्यंस - वेश - मृगया - इलीविश - शूश्रुवान् चमुरि - तुग्रक-धुनि - पर्वत में निवास करने वाले शंबर कहलाते थे और तुजि और वर्ची अमर्म कहलाते थे । ये दस्यु दास और वृत्र जाति के लोग असुर कहलाते थे ॥२-३॥

३२. अमनुष्यदासानां हिमवत्प्रदेशे सिन्धुनदप्रान्ते निवासः।

हिमवति च हेमकूटे यावन्तः पादपर्वतास्तेषु।
सिन्धुनदोत्तरभागे द्रोण्यां निवसन्ति दासगणाः॥१॥
गान्धारोत्तरसीम्नि च निषधात् प्राच्यां य उज्जिहानदेशोस्ति।
अद्यत्वे तं देशं म्लेच्छा आहुस्तु काफिरस्थानम्॥२॥
जाह्नवहाटकदेशौ संप्रति चित्राललद्दाखौ।
कथितौ तत्र प्रान्ते दस्यव एते वसन्ति स्म॥३॥
दुर्गमगिरिगहनेऽस्मिन् श्वेतागिरेः प्रागुपत्यकाप्रान्ते।
विषमेऽङ्गणे निगूढे निवसन्ति स्मापरीतिनोऽपगणाः॥४॥
गान्धराद्या देशा आर्य्याणामथ च हेमकूटाद्याः।
दासानामुभये ते विभिन्नसप्तनदवास्तव्याः॥५॥

३२. अमनुष्य दासों का हिमालय प्रदेश और सिन्धुनद-प्रान्त में निवास

हिमालय और हेमकूट प्रदेश में जितने भी छोटे-छोटे पर्वत थे, उनमें और सिन्धु नदी की उत्तरी गुफाओं में दासगण निवास करते थे ॥१॥

गान्धार देश की उत्तर सीमा में और निषध पर्वत की पूर्वी सीमा में जो उज्जिहान नाम का देश है, उसे आज म्लेच्छ लोग "काफिरस्थान" कहते हैं ॥२२॥

जाह्नव और हाटक देश, जो आज चित्राल और लद्दाख कहे जाते हैं, वहां ये दस्यु निवास करते थे ॥३॥

इस दुर्गम और गहन पर्वत (हिमालय) में श्वेतगिरि के पूर्वी उपत्यका प्रान्त में विषम स्थान पर ये अपरीति जाति के लोग छिप कर निवास करते थे ॥४॥

गान्धार आदि आर्यों के और हेमकूट आदि दासों के निवासस्थान थे और विभिन्न सप्तनद प्रदेशों में ये दोनों ही जातियाँ निवास करती थीं ॥५॥

३३. "सिन्धुनदप्रान्ते सप्तनदत्रयम्"।

सिन्धौ तावत् सप्त स्रवन्त्यः संगच्छन्ते वामतो दक्षतश्च।
सिन्धोः प्राच्यामन्यदन्यत् प्रतीच्यां तस्योदीच्यां सङ्गमस्थानमन्यत्॥१॥
प्रसप्त सप्त त्रेधा हि चक्रमुः प्रसृत्वरीणामतिसिन्धुरोजसा।
त्रिः सप्त सस्रा नद्यः॥२॥
त्रिः सप्त सस्रा नद्यो महीरपो वनस्पतीन् पर्वताँ अग्निमूतये।
कृशानुमस्तृन् तिष्यं सधस्थ आ रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे॥३॥
(१०।६४।८)
अभि त्वा सिन्धो शिशुमिन्न मातरो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः।
राजेव युध्वा नमसि त्वमित् सिचौ यदासामग्रं प्रवतामिनक्षसि॥४॥
(१०।७५।४)

१. पूर्वसप्तनदः ।

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये श्रृणुह्या सुषोमया॥१॥
(१०।७५।५)
इत्थं शतद्रुश्च इरावती च या चन्द्रभागा च विपाड् वितस्ता।
ताभिः कृतः पञ्चनदप्रदेशः प्राच्यां स्थितः सप्तनदः स एव॥२॥

२. पश्चिमसप्तनदः ।

यद्वत्सिन्धोः प्राच्यां सप्तनदान्तर्गतोस्ति पञ्चनदः।
तद्वत् ततः प्रतीच्यां सप्तनदे पञ्चगौरदेशोस्ति॥१॥
तृष्टा मया प्रथमं यातवे सजूः सु सर्त्वा रसया श्वेत्या त्या।
त्वं सिन्धो कुभया गोमती क्रुमुं मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे॥२॥
(१०।७५।६)
कुरम क्रमुर्गोमल गोमतीसिदुम् श्वेती कुभा काबुल उच्यतेऽधुना।
रसा वुरिंडू च सुवात् सुसर्तुस्तृष्टां मिकोर्ध्वं गिलघिट सरिन्मता॥३॥
मेहत्नूः स्याद् वर्णुनद्ये वमन्येयत्सबंन्धाद् वर्णुदेशः प्रसिद्धः।
वर्णुर्देशो दक्षिणे स्यात् कुभायास्तस्यास्तूदक् पञ्चगौरप्रदेशः॥४॥

संगच्छते सुवास्तुर्य्यस्यां सा वास्तुरेकधा भूत्वा।
संगच्छते कुभायां कुभा तु सिन्धौ समन्वेति॥५॥
वास्तोः पश्चात् कुभया चित्राख्याऽन्वेति सा गौरी।
जाह्नवी सा गङ्गा चित्रालो जाह्नवो देशः॥ ६॥
गाओरीति म्लेच्छा गौरी तामाहुरितरत्र।
देशं च पञ्चगौरं वदन्ति ते पञ्चकोरेति॥ ७॥
सिन्धोरस्ति स पश्चात् हिर्म्मण्डाख्यां (हेलमण्ड) हिरण्वतीं यावत्।
या अस्य पञ्चनद्यस्ता उक्ता भारते भैष्मे॥८॥
वास्तुं सुवास्तुं गौरीं च कम्पनां च हिरण्यवतीम्।
वरां वीरकरां चापि पञ्चमीं च महानदीम् ॥९॥ भा.भी. ९।२५।४)
सश्वा सिन्धुः सुरथा सुवासा हिरण्यमयी सुकृता वाजिनीवती।
ऊर्णवती युवतिः सीलनावत्यु ताधिवस्ते सुभगामधु वृधम्॥१०॥
(१०।१५।८)

३. उत्तरसप्तनदः।

तत्पञ्चगौरदेशादुत्तरतोऽन्योऽस्ति सप्त नददेशः।
कुलिशी च वीरपत्नी शिफाञ्जसीत्यादिभिः क्लृप्तः ॥१॥

३३. सिन्दुनद प्रान्त में तीन सप्तनद प्रदेश

सिन्धु नदी में बाई और दाहिनी ओर से सात सात नदियाँ संगत होती हैं। सिन्धु से पूर्व में अन्य सात तथा पश्चिम में दूसरी सात नदियों का संगम स्थान था॥१॥

इन्द्र के अपने ओज से नदियों में सर्वश्रेष्ठ हो जो सिन्धु नदी है, उसको सात सात रूपों में विभाजित कर दिया। इस प्रकार इक्कीस नदियाँ बहने लगीं॥२॥

ऋग्वेद में इन सप्तनदत्रयी का वर्णन है-सरस्वती, सरयु, सिन्धु आदि बहने वाली नदियाँ महान् जल, वनस्पतियों, पर्वतों, अग्नि और कृशानु नामक सोमपालक गन्धर्वों, बाणचालक अनुचर गन्धर्वों, पुष्य नक्षत्र, हविर्भागयोग्य रुद्र इन सबको यज्ञ में रुद्रगणों में श्रेष्ठ रुद्रों को स्तुति वर्णन करने के लिए हम बुलाते है॥३॥ (१०।६४।८)

हे सिन्धो ! जैसे माताएँ अपने पुत्र के पास प्रेम से जाती हैं, और गायें अपने बछड़े के पास जाती हैं, वैसे ही शब्द करती हुई नदियाँ तेरी ओर आती हैं। युद्ध करने वाले राजा के समान तू ही सींचने वाली नदियों को लेकर जाती है और तुम इन जाती हुई नदियों के आगे जाती हो॥४॥ (१०।७५।४)

१. पूर्व सप्तनद प्रदेश

पूर्व भाग के सप्तनद प्रदेश के लिए ऋग्वेद में लिखा है-हे गंगे! यमुने! सरस्वति! शुतुद्रि! परुष्णि! असिक्नि मरुद्रवृधे! वितस्ता सुषोमा और आर्जीकीये! हमारे इस स्तोत्र को स्वीकार करके सुनो ॥१॥ (१० ।७५ ।५)

इस प्रकार शतद्रू, इरावती, चन्द्रभागा, विपाड् और वितस्ता नाम की पांच नदियों से यह सिन्धु के पूर्व का प्रदेश सप्तनद (पूर्वसप्तनद) कहलाता है ॥२॥

२. पश्चिम सप्तनद प्रदेश

जिस तरह सिन्धु की पूर्व दिशा में सप्तनद के अन्तर्गत पंचनद (पंजाब) प्रदेश है, उसी प्रकार सिन्धु नदी के पश्चिम में जो सप्तनद प्रदेश है, उसमें पंचगौर देश है ॥१॥

ऋग्वेद में लिखा है—हे सिन्धो! तू गमनशील गोमती नदी को मिलाने के लिए पहले तृष्टामा नदी के साथ चली। फिर तू सुसर्तु, रसा, श्वेती, कुभा और मेहन्तु नदियों के साथ मिलती है। तदनन्तर तू इन सबके साथ एक रथ पर आरूढ होकर चलती है। (सिन्धु के पश्चिम में इन सात नदियों का संगम होता है, फिर ये एक में मिलकर बहती हैं।) ॥२॥ (१० ।७५ ।६)

कुरम, क्रमु, गोमल, गोमती, सिदुम्, श्वेती, और कुभा नदियां आज काबुल में बताई जाती हैं। इसके अतिरिक्त रसा, बुरिंडू, सुवात्, सुसर्तू, तृष्टा, मिकोर्ध्व और गिलगिट नदियाँ मानी गई हैं ॥३॥

मेहत्नू नदी ही वर्णु नदी हो सकती है। मैं मानता हूँ कि इसी के संबंध से वर्णु नाम का देश प्रसिद्ध है। कुभा नदी के दक्षिण में वर्णुदेश है और उत्तर में पंचगौर प्रदेश है ॥४॥

जिसमें सुवास्तु नदी मिलती है, वह वास्तु नदी एक में मिलकर कुभा नदी में मिल जाती है और कुभा सिन्धु में संगमित हो जाती है ॥५॥

वास्तु के पश्चिम में कुभा नदी से चित्रा नदी मिलती है और वह गौरी नाम की नदी है। जाह्नवी नदी गंगा नदी है और चित्राल नाम का देश जाह्नव देश है ॥६॥

म्लेच्छ लोग उसी जाह्नवी नदी को गाओर नदी कहते हैं और अन्य कुछ इसे गौरी कहते हैं। इसी तरह पंचगौर देश को वे पंचकोर देश कहते हैं ॥७॥

सिन्धु नदी के पश्चिम में हिर्म्मण्ड (हेलमण्ड) नाम की हिरण्वती नदी तक जो इसकी पांच नदियाँ हैं, वे महाभारत के भीष्म पर्व में कही गई हैं ॥८॥

वास्तु, सुवास्तु, गौरी, कल्पना, हिरण्यावती, वश, वीरंकरा और महानदी पंचमी अथवा पांचवी जिनमें महानदी है अर्थात् हिरण्यवती पांचवी नदी है ॥९॥

३. उत्तर सप्तनद प्रदेश

इस पंचगौर देश से उत्तर की ओर एक दूसरा ही सप्तनद प्रदेश है, जिनका कुलिशी, वीरपली और शिफांजसी इत्यादि द्वारा वर्णन किया गया है ॥१ ॥

३४. परस्परतो युध्यमानानामार्य्यदासानां पश्चिमोत्तरविभिन्नसप्तनदवासित्वम् ।

इत्थं सप्तनदेषु त्रिषु सिन्धोरुत्तरं तु सप्तनदम् ।
तद्दासानां स्थानं भारतवर्षाद्बहिश्चैतत् ॥१ ॥
सप्तनदे पुनरन्ये सिन्धोः पौरस्त्यपाश्चात्ये ।
ते द्वे भारतवर्षान्तर्भुक्ते वसतिरार्य्याणाम् ॥२ ॥

३४. परस्पर युद्ध करने वाले आर्य-दासों का पश्चिमोत्तर विभिन्न सप्तनद प्रदेशों में निवास

इस प्रकार तीनों सप्तनद प्रदेशों में जो सिन्धु के उत्तर का सप्तनद प्रदेश है, वह दासों का निवासस्थान है और वह भारतवर्ष के बाहर है ॥१ ॥

सिन्धु के पूर्व और पश्चिम में जो दूसरे दो सप्तनद प्रदेश हैं, वे दोनों भारतवर्ष के अन्तर्गत थे और वहाँ आर्यों का निवासस्थान था ॥२ ॥

३५. पूर्वसप्तनदे दासकुलाभिजनासत्त्वात् तत्र युद्धाभावः ।

तेषु च सप्तनदेषु त्रिषु पूर्वस्मिन्नभूदिदं युद्धम् ।
इति पाश्चात्या आहुः प्रत्यगुदक्प्रान्तयोस्तु तद्ब्रूमः ॥१ ॥
चित्रालदेशतो यः पूर्वोत्तरदेशगोऽस्ति सप्तनदः ।
तत्रत्यदस्युभिः सह पश्चिमसप्तनदवासिनां युद्धम् ॥२ ॥
द्विविधं युद्धमिहासीत् प्रथमं युद्धं तु दासकृतम् ।
उत्तरमिन्द्रकृतं तत् तदुभयमन्यान्यदेशेऽभूत् ॥३ ॥
यत् प्राथमिकं युद्धं तदभूद्गान्धारदेशेस्मिन् ।
स्वस्थानस्थानार्य्यान् दस्यव एत्याभ्यमर्द्दयंस्तत्र ॥४ ॥
यत्तु श्वेतगिरेः प्राग् मूजवतः पर्वतादपि प्रत्यक् ।
अभवद् द्वितीययुद्धं तत्राक्रम्यावधीद्धरिर्दस्यून् ॥५ ॥

पश्चिमसप्तनदस्था आर्य्यास्ते स्थायिनो युद्धे ।
उत्तरसप्तनदस्था दस्यव इह यायिनः प्रथमे ॥६॥
पश्चात्तु दस्यवस्ते प्राप्तजयाः स्थायिनोऽभूवन् ।
इन्द्रो दीनसहायो यायी जयमाप्य कुत्समातस्थे ॥७॥
पूर्वस्मिंस्तु न कश्चित् सभ्योऽनार्य्योपि वात्र सप्तनदे ।
स्थायी यायी वाऽसीत् तस्माद् युद्धं न तत्राभूत् ॥८॥

३५. पूर्व सप्तनद प्रदेश में दास जाति के न होने से वहां युद्ध का अभाव

उन तीनों सप्तनद प्रदेशों में प्राचीन समय में युद्ध हुआ, ऐसा पाश्चात्यों का कहना है, परन्तु हम कहते है कि वह युद्ध पश्चिम की ओर के प्रान्त में हुआ था॥१॥

चित्राल देश से पूर्वोत्तर देश का जो सप्तनद प्रदेश है, वहाँ के दस्युओं के साथ पश्चिम सप्तनदवासियों का युद्ध हुआ था॥२॥

यहां दो प्रकार का युद्ध हुआ था। पहला युद्ध तो दासों के द्वारा किया गया था और दूसरा युद्ध इन्द्र के द्वारा किया गया था । ये दोनों युद्ध अन्यान्य (भारत के अतिरिक्त) देशों में हुए थे ॥३॥

जो पहला युद्ध हुआ था, वह इस गान्धार देश में हुआ था । जिसमें दस्युओं ने वहाँ आ कर अपने देश में रहने वाले आर्यों को वहीं पर मर्दित किया अर्थात् घोर पीड़ा पहुंचायी॥४॥

जो दूसरा युद्ध श्वेतगिरि पर्वत के पूर्व में स्थित मूंजवान् पर्वत के पश्चिम में हुआ, वहाँ आक्रमण करके इन्द्र ने दस्युओं को मारा ॥५॥

पश्चिम सप्तनद प्रदेश में स्थित जो आर्यगण थे, वे युद्ध में "स्थायी" रहे और जो उत्तर सप्तनद में स्थित दस्यु थे, वे युद्ध में "यायी" हुए अर्थात् युद्ध में आवागमन करने वाले थे ॥६॥

इसके पश्चात् वे दस्युगण विजय प्राप्त कर के स्थायी हो गये तथा दीनों का सहायक इन्द्र विजय को प्राप्त करके कुत्स की रक्षा करने के लिए यायी हो गया (प्रस्थान कर गया)॥७॥

पूर्व सप्तनद प्रदेश में तो कोई भी सभ्य (आर्य) अथवा अनार्य स्थायी अथवा यायी नहीं था । इसलिए वहाँ कोई युद्ध नहीं हुआ ॥८॥

३६. उत्तरसप्तनदवासिनां दासानां भारतवर्षीयत्वाभावः ।

उत्तरसप्तनदं यद्दासानां स्थानमेतच्च ।
भारतवर्षाद्बहिरिति दासा न हि भारतीयाः स्युः ॥१॥

३६. उत्तर सप्तनद-निवासी दासों का भारतवर्ष का निवासी न होना

उत्तर सप्तनद प्रदेश में जो दासों का निवासस्थान था, वह भारतवर्ष के बाहर था । इसलिए निश्चय ही दास भारतीय नहीं थे ॥१॥

३७. भारतवर्षसीमाचतुष्टयी ।

एतद्भारतवर्षं रक्तसमुद्रान्तमस्ति पश्चिमतः ।
पीतसमुद्राश्लिष्टप्रशान्तसागरपरं प्राच्याम् ॥१॥
याम्ये समुद्रमध्ये विषुवान्तं तत् तथोदीच्याम् ।
हिमवत्पर्वतपरमं प्रवदन्तीत्थं चतुःसीमम् ॥२॥
त्रैलोक्यस्य विभागे त्वेतद्वर्षं हि मानुषो लोकः ।
स इरावतीविनिर्गमदेशादर्वाग् निरूपितः पूर्वैः ॥३॥
पश्चादष्टमतोंऽशात् पूर्व्यं यावत्तु सप्तदशमंशम् ।
भारतवर्षं ब्रुवते सा सीमा राजशासनस्याद्य ॥४॥
"पूर्वे किराता यवनाश्च पश्चिमे याम्ये समुद्रो हिमशैल उत्तरे" ।
पौराणिका इत्थमनेकधाऽब्रुवन् तद्भारतं सीमाचतुष्टयं कृतम् ॥५॥
पूर्वसमुद्रारब्धो रक्तसमुद्रान्तविस्तृतो देशः ।
भारतवर्षं ज्ञेयं पूर्वापरतो नवत्यंशैः ॥६॥
प्राग् मेरुकर्णिकस्य हि भूपद्मस्यास्य सन्ति पत्राणि ।
चत्वारि दिक्षु चतसृषु क्लृप्तानि समं नवत्यंशैः ॥७॥
नववर्षाणि यदानीं कल्प्यन्ते भूतलस्यास्य ।
तर्ह्यपि भारतवर्षं दक्षिणतः स्यान्नवत्यंशम् ॥८॥
क्लृप्ता तु मध्यरेखा मेरुस्पृग् भारते वर्षे ।
तस्याः प्रागपि पश्चाच्चत्वारिंशच्च पञ्च चांशाः स्युः ॥९॥

३७. भारतवर्ष की सीमाचतुष्टयी (चारों सीमाएँ)

यह भारतवर्ष पश्चिम में लाल समुद्र के अन्त तक और पूर्व में पीत-(पीला) सागर से लगे हुए प्रशान्त महासागर पर्यन्त व्याप्त था ॥१॥

दक्षिण में समुद्र (हिन्द महासागर) के मध्य स्थित विषुवत् रेखा तक फैला था और उत्तर में हिमालय पर्वत पर्यन्त इस भारतवर्ष की सीमा चतुष्टयी बताते हैं ॥२॥

प्राचीन विद्वानों द्वारा यह भारतवर्ष त्रैलोक्यविभाजन में मनुष्यलोक बताया गया है । यह भारतवर्ष इरावती नदी के निर्गमस्थान से पहले बताया गया है ॥३॥

बाद में विद्वानों ने पूर्व में आठ अंश (८°) से सत्रह अंश (१७°) तक भारतवर्ष बताया है । यही सीमा आज राजशासन की दृष्टि से बताई जाती है ॥४॥

पुराणों में पौराणिकों द्वारा अनेक बार भारतवर्ष की सीमाचतुष्टयी का वर्णन करते समय कहा गया है - (यह भारतवर्ष है, जिसके) "पूर्व में किरात, पश्चिम में यवन, दक्षिण में समुद्र (दक्षिण समुद्र) और उत्तर में हिमालय पर्वत है ।" ॥५॥

पूर्व समुद्र से प्रारम्भ होकर लाल समुद्र पर्यन्त विस्तृत देश भारतवर्ष है, जो पूर्वापर दोनों ओर नब्बे अंश (९०°) का जानना चाहिये ॥६॥

मेरुकर्णिका के पूर्व स्थित इस भूपद्म के चार पत्र हैं, जो चारों दिशाओं में समान रूप से ९०°-९०° अंश के कल्पित किये गये हैं । (इस भारत की प्राचीन सीमा के अनुसार भारतवर्ष की चारों दिशाओं में ९०° - ९०° अंश तक क्रमशः भद्राश्व वर्ष, कुरुवर्ष, केतुमाल वर्ष और लंकापुरी बताई गई है । विस्तृत वर्णन सीमाप्रसंग में द्रष्टव्य है।) ॥७॥

जिस समय इस भूतल के नौ वर्ष (नौ उपद्वीप) कल्पित किये गये थे, उस समय ही भारतवर्ष दक्षिण से ९०° अंश का कल्पित किया गया था ॥८॥

मेरुपर्वत को छूती हुई जो मध्य रेखा भारतवर्ष में कल्पित की गई है, उसके पूर्व में और पश्चिम में ४५° अंश (तक भारत वर्ष) है ॥९॥

३८. भारतवर्षस्यैन्द्रवारुणाभ्यां पूर्वपश्चिमाभ्यां विभागः ।

तत्सिन्धुना विभक्तं तत्रैन्द्रं भारतं पूर्वम् ।
तत्पश्चिमं तु भारतमस्तीदं वारुणं विद्यात् ॥१॥
भूमध्यसागरात् प्राक् सिन्धोः प्रत्यक् समुद्रतस्तूदक् ।
आरालकाश्यपीयनजलधिभ्यां दक्षिणो यावान् ॥२॥
एतं देशं ब्रुवते म्लेच्छजना ओरियंसशब्देन ।
तदिदं भारतवर्षं वारुणमासीत् पुरायुगे मन्ये ॥३॥
वारुणभारतभागे न्यवसन् प्राधेयगन्धर्वाः ।
गन्धर्वदेश एव प्रथते गान्धारनाम्ना सः ॥४॥
वर्णुश्च पञ्चगौरो जाह्नव एवोज्जिहानश्च ।
हाटक एवं बहवो गान्धारे पूर्वतो देशाः ॥५॥

मद्रा उत्तरमद्रा गान्धारेभ्यः स्युरुत्तरे पश्चात् ।
उत्तरमद्रा देशा मिदिया मादेति वोदिता म्लेच्छैः ॥६॥
अप्येत आरियाना दक्षिणमद्रास्तु पारसेत्युक्ताः ।
उभयविधा अपि मद्रा भारतवर्षस्य पश्चिमा देशाः ॥७॥
गान्धार-मद्रदेशे सिन्धुनदात् पश्चिमे भागे ।
यवन-म्लेच्छाक्रमणादार्य्यास्तत्राल्पशोऽद्य निवसन्ति ॥८॥

३८. भारतवर्ष का ऐन्द्र और वारुण रूप से पूर्व और पश्चिम दो भागों में विभाजन

जो भारतवर्ष सिन्धु नदी से पूर्व की ओर विभक्त किया गया है, वह ऐन्द्र (इन्द्रानुयायी) भारत है । जो सिन्धु से पश्चिम का भारतवर्ष है, वह वारुण (वरुण से सम्बद्ध) भारत मानना चाहिये ॥१॥

भूमध्य सागर से पूर्व, सिन्धु से पश्चिम, समुद्र (दक्षिण समुद्र) से उत्तर और आराल तथा काश्यपीयन समुद्रों से दक्षिण तक का जो भाग है, उसे म्लेच्छ लोग ओरियंस शब्द से कहते हैं, परन्तु मैं मानता हूँ कि यह प्राचीन काल में वारुण भारतवर्ष था ॥२-३॥

इस वारुण भारतवर्ष में प्राधेय गन्धर्व निवास करते थे । यह गन्धर्व देश ही गान्धार नाम से प्रसिद्ध है ॥४॥

गान्धार के पूर्व में वर्णु, पंचगौर, जाह्नव, उज्जिहान, हाटक और ऐसे अनेक देश थे ॥५॥

गान्धार के उत्तर में, मद्र, उत्तर-मद्र देश है । अवान्तर काल में म्लेच्छो द्वारा ये उत्तरमद्र देश ही मिदिया और माद नामों से कहे गये ॥६॥

इसी तरह दक्षिण मद्र प्रदेश आरियाना और पारस नाम से कहे गये । इस प्रकार दोनों ही तरह से मद्र देश भारतवर्ष के पश्चिमी देश हैं ॥७॥

सिन्धु नदी के पश्चिमी भाग में गान्धार-मद्र-देश में यवनों और म्लेच्छों के आक्रमण के कारण आज आर्य लोग अत्यन्त अल्प मात्रा में निवास करते हैं ॥८॥

३९. पश्चिमभारते गान्धारदेशे दासकृतं प्रथमं युद्धम् ।

दस्युनियुद्धात् प्राक् त्विह सिन्धोः प्राच्यां प्रतीच्यां च ।
भारतवर्षीयार्य्या न्यूषुर्युद्धप्रतीच्येषु ॥१॥
गान्धारे तु वसन्तोऽनार्य्या वार्य्याः पुरा वृचीवन्तः ।
आर्य्यस्य चायमानस्यासन् विद्वेषिणस्तत्र ॥२॥
हरियूपीया नद्याः कूले यव्यावती नगरी ॥ (ऋ.६।२७।भरद्वाजः)
तस्यां वरशिख आसीद् वृचीवतः कस्यचित् कुलजः ॥३॥

त्रिंशं शतं त आसन् वीराः प्रथिता बृचीवन्तः ।
अभ्यावर्त्यभिधस्याभिघातिनश्चायमानस्य ॥४॥
अन्ये तु हेमकूटद्रोण्यावासा लुठच्चरा दासाः ।
गन्धारमद्रदेशे न्यपीडयन्निवसतो हि गन्धर्वान् ॥५॥
भारतवर्षबहिःस्था दासा आक्रम्य पीडयन्ति स्म ।
चिरकालादिह भारतवर्षे वसतो नृपानार्य्यान् ॥६॥
गान्धारेऽस्मिन्देशे सिन्धुप्रान्तस्थकुत्सनृपराष्ट्रे ।
अपगणदस्युभिरासीदार्य्याणां मन्त्रविश्रुतं युद्धम् ॥७॥
सिन्धोः पश्चिमदेशे पुरायुगादद्यपर्यन्तम् ।
या गान्धारपुरीयं तदुपह्वरतोऽर्जुनी तु नदी ॥८॥
अर्जुन्याः सरितोऽस्या अर्गन्दारेति नाम च ब्रुवते ।
अद्यत्वे म्लेच्छाद्याः, सैव स्यादर्जुनीधारा ॥९॥
कूलेऽर्जुन्या नद्या या नगरी वेतसूस्तया क्लृप्तः ।
कश्चिज्जनपद आसीत् तत्र नृपोऽभूत् कथंरुरुर्नाम ॥१०॥
पुत्रोऽस्य कुत्स आसीद् गन्धर्वः शिक्षितः स विद्यायाम् ।
सिन्धुप्रान्तनिवासिभिरभूद वसिष्ठश्रुतर्य्याद्यैः ॥११॥
दभीतितुर्वीतिमुखाः परेऽपि स्युस्तस्य सामन्तनृपा अधीनाः ।
यतोऽर्जुनीसंनिहितोऽस्य वासस्ततः स कुत्सो मत आर्जुनेयः ॥१२॥
"याभिः कुत्समार्जुनेयं शतक्रतू प्र तुर्वीतिं प्र च दभीतिमावतम् ।
याभिर्ध्वसन्तिं पुरुषन्तिमावतं ताभिरूषु ऊतिभिरश्विनागतम् ॥१३॥
(२।११२।२३)

यत्त्वार्जुनेयस्य पदस्य सायणो ब्रूतेऽर्थमिन्द्रस्य हि पुत्रमित्यपि ।
न साधु मन्ये तदमुष्य सख्यता त्विन्द्रेण कुत्सस्य न पुत्रता श्रुता ॥१४॥
"मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे" इत्येवन्तं कुत्स ऊचे सखायम् ।
सखायं कृत्वा कुत्समिन्द्रः प्रतस्थे हन्तुं कुत्सद्वेषिणो दस्युसंघान् ॥१५॥
यद्वाऽर्जुन्या स्याज्जनन्याऽऽर्जुनेयो यद्वाऽर्जुन्या स्याद्वसत्यार्जुनेयः ।
अश्विस्तुत्यामिन्द्रसंबन्धिताया आख्यानं स्यादिन्द्रदस्त्रावमत्यै ॥१६॥
ध्वंसन्ति तुर्वीतिदभीति भूपतीन् कुत्सानुगान् प्राक् पुरुषन्तिनाऽन्वितान् ।
न्यपीडयन्दस्युगणाः पुरायुगे ररक्षतुः शक्रनियोगतोऽश्विनौ ॥१७॥

३९. पश्चिमी भारत में गान्धार-देश में दासों-द्वारा किया गया प्रथम युद्ध

दस्यु-युद्ध से पहले यहाँ सिन्धु से पूर्व और पश्चिम में भारतवर्षीय आर्य निवास करते थे । उस समय पश्चिमी भागों में युद्ध हुआ था ॥१ ॥

पूर्वकाल में गान्धार देश में आर्य और अनार्य निवास करते थे । ये अनार्य वृचीवान् के वंशज (कुटिल मार्ग पर चलने वाले) थे, जो चायमान के वंशज (उत्तम कर्मों को करने वाले श्रेष्ठ) आर्य-जाति के द्वेषी थे अर्थात् विद्रोही थे ॥२ ॥

हरियूपीया नाम की नगरी, जो यव्यावती नदी के किनारे स्थित है, उस नगरी में किसी वृचीवान् का वंशज वरशिख रहता था ॥३ ॥

वृचीवान् के वीर सैनिक तीन हजार बताये गये हैं, जो चायमान (उत्तम कर्मों को करने वाले आर्य) के पुत्र अभ्यावर्ती नाम के चायमान के घातक शत्रु थे ॥४ ॥

दूसरे हेमकूट की गुफा में रहने वाले लुटेरे दास थे, जो गन्धर्वों को पीड़ित करते हुए गान्धार-मद्र देशों में निवास करते थे ॥५ ॥

भारतवर्ष के बाहर रहने वाले दास लोग आक्रमण करके भारतवर्ष में रहने वाले आर्य राजाओं को चिरकाल तक पीड़ित करते रहते थे ॥६ ॥

इस गांधार देश में सिन्धु प्रान्त में रहने वाले कुत्स राजा के राष्ट्र में अपगण दस्युओं से आर्यों का युद्ध हुआ, जो मन्त्रों में द्रष्टव्य है ॥७ ॥

सिन्धु से पश्चिम में प्राचीन युग से आज तक जो यह गान्धार नगरी है, उसके समीप के भाग में अर्जुनी नाम की नदी है ॥८ ॥

इसी अर्जुनी नदी को आज के म्लेच्छ लोग 'अर्गन्दारा' नाम से कहते हैं, वही अर्गन्दारा नदी सम्भवतः अर्जुनीधारा है ॥९ ॥

इस अर्जुनी नदी के किनारे जो 'वेतसू' नाम की नगरी है, वहाँ कोई जनपद था, जिसका 'कथंरुरु' नामक राजा था ॥१० ॥

इस कंथरुरु का पुत्र कुत्स नाम का गन्धर्व था। वह सिन्धुप्रान्त-निवासी वशिष्ठ, श्रुतर्य्य, आदि के द्वारा विद्याओं में शिक्षित किया गया था ॥११ ॥

इस कुत्स के और दभीति, तुर्वीति प्रमुख राजा अधीनस्थ थे। क्योंकि यह अर्जुनी नदी के समीप निवास करता था इसलिए वह कुत्स आर्जुनेय माना गया ॥१२ ॥

ऋग्वेद में भी लिखा है-हे शतक्रतो (सैंकड़ों कर्म करने वाले) अश्विदेवों ! जिससे अर्जुनी के पुत्र कुत्स, तुर्वीति, दभीति, ध्वंसन्ति और पुरुषन्ति को तुम दोनों प्रकर्ष से बचा सकते हो, उन्हीं रक्षाओं से युक्त होकर तुम दोनों इधर हमारे पास आओ ॥१३ ॥

जैसा कि आर्जुनेय पद का अर्थ सायण ने इन्द्र का पुत्र किया है, परन्तु हम इसे सही नहीं मानते हैं, क्योंकि इन्द्र के साथ कुत्स की मित्रता थी, इन्द्र की पुत्रता नहीं सुनी गई है। (कुत्स इन्द्र का मित्र था, पुत्र नहीं) ॥१४ ॥

मरुत्वान् (इन्द्र) को हम मित्रता के लिए बुलाते है, ऐसा कहकर कुत्स और इन्द्र की मित्रता बताई है। इन्द्र ने कुत्स को अपना मित्र बताकर कुत्स-द्वेषी शत्रुओं को मारने के लिए प्रस्थान किया ॥१५॥

अर्जुनी नाम की माता के कारण यह आर्जुनेय कहलाया था अथवा अर्जुनी नदी के समीप निवास होने के कारण यह आर्जुनेय कहलाया। ऋग्वेद में अश्वि-स्तुति में इन्द्र की संबन्धता का आख्यान इन्द्र और अश्विनी कुमारों के अपमान के लिए कहा गया हो, ऐसा माना जा सकता है ॥६॥

कुत्स के अनुयायी तुर्वीति, दभीति राजाओं को तथा पुरुषन्ति सहित अन्य राजाओं को प्राचीनकाल में दस्युओं ने पीडित किया, जिनसे इन्द्र के आदेश से अश्वि देवों ने रक्षा की ॥१७॥

४०. परमतनिरासेन सिद्धान्तस्थापनम् ।

अद्याप्येते दस्यवः सिन्धुपारे चित्राप्रान्ते गूहितान्तर्निकेताः ।
दृश्यन्ते ये पश्चिमोदक्प्रदेशे सभ्यान् लोकान् पीडयन्ति प्रसह्य ॥१॥
एतानेव प्रोद्धतान् वृद्धिमाप्तान् भीष्मान् दस्यून् दण्डयामास धृष्टान् ।
एत्य स्वर्गात् सोऽमरावत्यधीशः प्रत्यावृत्तः स्वर्गमेवाभ्यगात् सः ॥२॥
कुत्सादीनां सिन्धुपारे स्थितानां रक्षार्थं तद्दस्युभिर्लुण्ठितानाम् ।
इन्द्रः कुत्साभ्यर्थितस्तद्धिमाद्रिद्रोण्यावासान्नाशयामास दस्यून् ॥३॥
बध्यान् दासान् भारतस्यादिवासान् भ्रान्त्या कश्चित्साहसं कल्पते तत् ।
बध्या दासा भारताद् बाह्यसीमाप्रान्तेष्वासन् भारतं नाध्यवात्सुः ॥४॥
तस्माद् ब्रूमो भारतवर्षे वसतो नृपानार्य्यान् ।
भारतबहिः प्रदेशादेत्याक्रामन्निमे दासाः ॥५॥
भारतवर्षे वसतो दासानाद्यानिहाक्रम्य ।
देशान्तरादुपेता आर्य्या युयुधिर इति भ्रान्तम् ॥६॥
मेरुभ्रष्टा आर्य्या विदेशिनः पौर्विकान् दासान् ।
हत्वा भारतवर्षे न्यवसन्निति हन्त निःसारम् ॥७॥

४०. दूसरों के मत को निरस्त करते हुए सिद्धान्त की स्थापना

सिन्धु के पार आज भी चित्रा प्रान्त में दस्यु लोग छिपे हुए रहते हैं, जो पश्चिमोत्तर प्रदेश में सभ्य लोगों को बलपूर्वक पीडित करते हैं ॥१॥

इन्हीं वृद्धि को प्राप्त हुए उद्धत, धृष्ट और भीषण दस्युओं को अमरावती के स्वामी इन्द्र ने आकर पीड़ित किया अथवा दण्ड दिया। तत्पश्चात् वह इन्द्र पुनः स्वर्ग में लौट गया ॥२॥

सिन्धु के पार रहने वाले और लुटेरों द्वारा लूटे गये कुत्स आदि की रक्षा के लिए कुत्स द्वारा प्रार्थना किये जाने पर इन्द्र ने हिमालय की घाटियों में निवास करने वाले उन दस्युओं का नाश किया ॥३॥

इन मारने योग्य आदिवासी दासों को कुछ लोग भारतीय कहने का साहस करते हैं, परन्तु ये दास भारत की बाह्य सीमा प्रान्तों के निवासी थे, भारत में निवास नहीं करते थे ॥४॥

इसलिए हम कहते हैं कि भारतवर्ष में रहने वाले आर्य राजाओं को भारत के बाहर से आकर ये दास लोग आक्रमण करते थे ॥५॥

यह जो मत है कि भारतीय आदिवासी दासों पर आक्रमण करके देशान्तर से आये हुए आर्यों ने युद्ध किया, ऐसा पूर्णतः भ्रान्त है ॥६॥

मेरु पर्वत प्रदेश से भ्रष्ट हुए विदेशी आर्यों ने पूर्व रहते हुए भारतीय दासों को मार कर भारत में निवास किया। ऐसी धारणा पूर्वतः तथ्यहीन है ॥७॥

४१. दस्युयुद्धाद् बहुपूर्वमार्य्याणां भारतवर्षनिवासित्वे पूर्वमनुष्याणाम् ऋभूणां भारतीयत्वं हेतुः।

अप्यस्ति हेतुरन्यो यत एषोऽर्थोऽवधार्य्यते नितराम् ।
दस्युपराजयमूलो नार्य्याणां भारते वासः ॥१॥
पूर्वं हि दस्युयुद्धादार्य्याणां भारतीयत्वम् ।
विज्ञायते यतः प्राक् पूर्वमनुष्या इहभवो न्यूषुः ॥२॥

४१. दस्युयुद्ध से बहुत पहले ही आर्यों का भारतवर्ष का निवासी होने में पूर्व मनुष्य ऋभुओं का भारतीय होना एक प्रमुख कारण

इस संबंध में एक अन्य कारण है, जिससे यह अर्थ निश्चित रूप से स्वीकार किया जाता है कि आर्यों ने दस्युओं को मार कर भारत में निवास नहीं किया है ॥१॥

दस्युयुद्ध से पहले भी आर्यों का भारतीयत्व सिद्ध होता है, क्योंकि पूर्व मनुष्य ऋभु इस दस्युयुद्ध से भी पहले यहाँ (भारत में) निवास करते थे ॥२॥

४२. ऋभुपरिचयः ।

दस्युनियुद्धादस्माद् बहुपूर्वं भारते वर्षे ।
आसीन्नृपः सुधन्वा पुत्रास्तस्य त्रयस्त्वासन् ॥२॥
ऋभुरथ विभ्वावाजस्त्वष्टुः शिष्यास्त्रयोऽप्यभूवंस्ते ।
त्वष्टा त्वाष्ट्रे कर्म्मणि तान् सम्यक् शिक्षयामास ॥३॥

त इमे कलाविभागे निजनैपुण्याभिमानतो जातु ।
देवचमसनिर्म्माणात् प्रथितं त्वष्टुर्यशः पराक्षिप्यन् ॥१॥
त्वष्टृविनिर्म्मितचमसे निर्म्मातुः कौशलं न पश्यामः ।
यत्रोत्पन्नश्चमसो माहात्म्यं तस्य दारुणो भवति ॥२॥
त्वष्टृविनिर्म्मितचमसाद् देवानां सोमपानार्थात् ।
अत्युत्कृष्टं चमसं निर्म्मातुं नः प्रतिज्ञास्ति ॥३॥
एकं चमसं सद्यश्चतुर्विधं शक्नुमः कर्तुम् ।
इत्थमृभूणां वचनं त्वष्ट्रेऽचकथत् दिवं गतस्त्वग्निः ॥४॥
निन्दिष्यन्ति तु चमसं देवानां सोमपानं ये ।
तान् ध्रुवमत्र हनिष्याम्येवं क्रुध्यन्नवोचत त्वष्टा ॥५॥
प्रत्यावृत्त्य स्वर्गाच्छ्रावयितुं त्वष्टृरोषवचः ।
एष ऋभूणां सदनं मनुष्यलोकेश आजगामाग्निः ॥६॥
आगच्छन्तं दृष्ट्वा तमग्निमृभवो व्यतर्कयन् स्वगतम् ।
किमयमकमस्मादग्निर्देवो नः सदनमभ्येति ॥७॥
किमयं श्रेष्ठोस्त्यस्माननुग्रहीतुं समायाति ।
अस्ति यविष्ठो वायं किञ्चिद् धृतं कुत्सितं न्यवोचाम ।
तत्रैति दूत्यमेतत् किञ्चिद् धृतं निवेदयिष्यति नः ॥९॥
इत्थं वितर्क्य पक्षे त्रयस्तृतीयो प्रतीतिमास्थाय ।
दैवी गर्हाऽनुचिता मर्त्यैरिति दोषमक्षिपन् स्वीयम् ॥१०॥
ऋभवः प्राहुर्न वयं निन्दामस्त्वष्टृनिर्म्मितं चमसम् ।
ब्रूमस्तु दारुणस्तं प्रभावमत्रास्ति यश्चमत्कारः ॥११॥

४२. ऋभु-परिचय

इस दस्युयुद्ध से बहुत पहले ही भारतवर्ष में सुधन्वा नाम का राजा था, जिसके तीन पुत्र थे। ये तीनों पुत्र ऋभु, विभ्वा और वाज ऋषि त्वष्टा के शिष्य हुए। त्वष्टा ने इनको त्वाष्ट्र कर्म में पूर्ण शिक्षित किया ॥१-२॥

इन्होंने कला के क्षेत्र में अपने नैपुण्य के अभिमान से देवचमस (सोम पान करने का लकड़ी का पात्र) के निर्माण से फैले त्वष्टा के यश पर आक्षेप किया ॥१॥

(ऋग्वेद में चमस का अर्थ अन्न भी किया गया है)

इन्होंने त्वष्टा द्वारा बनाये गये चमस के निर्माण में निर्माता का कोई कौशल नहीं बताया, अपितु कहा कि चमस जिससे उत्पन्न होता है, उस लकड़ी का कौशल है ॥२॥

शिष्यों ने कहा-त्वष्टा द्वारा देवों के सोमपान के लिए निर्मित चमस के अत्यन्त श्रेष्ठ चमस बनाने की हमारी प्रतिज्ञा है ॥३॥

हम एक चमस को तत्काल चार प्रकार का बना सकते हैं अर्थात् हम एक चमस को तत्काल चार प्रकार का कर सकने में समर्थ हैं। इस प्रकार ऋभुओं के वचन को अग्नि ने स्वर्ग में जाकर तत्काल त्वष्टा से कह दिया ॥४॥

देवों के सोमपान के चमस की जो निन्दा करेंगे, उनको निश्चित रूप से मैं मार दूँगा। त्वष्टा ने क्रोधित होते हुए इस प्रकार कहा ॥५॥

त्वष्टा के क्रोधवचन सुनाने के लिए स्वर्ग से लौट कर मनुष्यलोक का स्वामी अग्नि ऋभुओं के निवास पर आया ॥६॥

ऋभुओं के अग्नि को आता देख कर मन में विचार किया कि यह अग्नि देव अकस्मात् हमारे घर पर क्यों आ रहा है ॥७॥

क्या यह अग्नि देव श्रेष्ठ है, जो हम पर अनुग्रह करने के लिए आ रहा है? अथवा यविष्ठ है, जो हमसे कुछ याचना करने के लिए आ रहा है ॥८॥

(वेद में इस अग्नि देव को अतिथि बताया है, जिसके संबंध में गृहस्थी विचार करता है कि यह अतिथि हम से श्रेष्ठ (पूजनीय) है अथवा यविष्ठ है, जिसे हम दान देकर सन्तुष्ट करें।)

अथवा त्वष्टा के संबन्ध में हमने पहले जो निन्दित वचन कहे थे, उस विषय में दूत बन कर यह हमें कुछ कहने आया है ॥९॥

इस तरह विचार करके तृतीय पक्ष (त्वष्टा का दूत बनकर आना) में विश्वास करके अपने इस दोष को स्वीकार किया कि मनुष्यों को देवों की निन्दा नहीं करनी चाहिये ॥१०॥

ऋभुओं ने कहा हम त्वष्टा द्वारा बनाये हुए चमस की निन्दा नहीं करते हैं। हम तो इस चमत्कार को दारु का चमत्कार (लकड़ी का चमत्कार) कहते हैं ॥११॥

४३. ऋभुभ्यः स्वकौशलं दर्शयितुं देवानामादेशः ॥

ऊचे भगवानग्निर्निभृतं प्रोत्साहयन्नृभूनेतान् ।
आदिदिशुर्वो देवाश्चमसं चैकं चतुर्विधं कर्तुम् ॥१॥
खेचरमश्वमनश्वं रथमथ गां चर्म्मणोनिर्ऋताम्।
वृद्धस्य च तारुण्यं वक्तुमिमामागतोस्मि देवाज्ञाम् ॥२॥
देवादिष्टानर्थान् प्रणीय गच्छत दिवं स्वयं यूयम् ।
यद्येवं प्रकरिष्यथ तर्हि भविष्यथ नु यज्ञिया देवाः ॥३॥
चमसचतुष्टयमेतद् दृष्ट्वा त्वष्टा भविष्यति ह्रीणः ।
इत्याकर्ण्य वचोब्रुनेर्ऋभवः पुनरऽग्वन् प्रतिज्ञाय ॥४४॥

अग्निकथितमादेशं देवानां दृढमिमं प्रतिश्रुत्य ।
निर्म्माय वाहनानि च देवेभ्यः स्वर्गमागमिष्यामः ॥५॥
अग्निर्ऋभून् पुनरूचे स्वर्गे चामन्त्र्य मां तु युष्माभिः ।
देयानि मत्समक्षं देवेभ्यः शिल्पजातानि ॥६॥
एवं कृते वयं वः सख्यं देवेषु भावयिष्यामः ।
देवेन्द्रेण च सन्धिं सवने क्वापि प्रवर्तयिष्यामः ॥७॥
प्रातरपां यदि पानं मध्यदिने मुञ्जने जनं वा चेत् ।
अनुरुचितं वो न स्यात् सायं सन्धिस्तदा ध्रुवं वः स्यात् ॥८॥
इत्यादिष्टा ऋभवश्चमसविधाने त्रयोपि सहयुक्ताः ।
अभवन् विप्रवदन्तः स्वस्वाकूत्याऽनुसंवदन्तश्च ॥९॥
आपो भूयिष्ठास्तत् प्रातरपां सन्धिरुत्कृष्टा ।
भूयिष्ठोऽग्निरतोह्नो मध्ये सन्धिः प्रकर्षाय ॥१०॥
सायं बहवः साकं बहुविधभोज्यानि चात्र भुञ्जन्ति ।
तस्मात् सायं सन्धिः श्रेष्ठेति च ते मिथो मता न्यूचुः ॥११॥
शक्नोमि चमसमेकं कर्तुं द्वेधेत्यवोचत ज्येष्ठः ।
त्रेधेति मध्यमोऽसौ किन्तु चतुर्धा व्यधुः कनिष्ठगिरा ॥१२॥

४३. ऋभुओं से अपना कौशल दिखाने के लिए देवों का आदेश

तब भगवान् अग्नि ने इन ऋभुओं को ऐकान्तिक रूप से प्रोत्साहित करते हुए कहा कि देवों ने तुम्हें एक चमस को चतुर्विध बनाने का आदेश दिया है ॥१॥ (यदि चमस का अर्थ अन्न किया जाता है, तो एक चमस को चतुर्विध बनाने से तात्पर्य होगा, गृहस्थी द्वारा एक ही अन्न को चार भागों में विभक्त किया जावे, जिसमें पहला स्वयं के परिवार के लिए, दूसरा अतिथि के लिए, तीसरा परिजनों के लिए और चौथा जन्तुओं के लिए)

अग्नि ने कहा कि देवों की आज्ञा को बताने के लिए मैं यहां आया हूँ। देवों की आज्ञा है-आकाश में विचरण करने वाले अश्व का निर्माण करो, बिना अश्व के चलने वाले रथ का निर्माण करो, ऐसी गाय को पुष्ट करो जो चर्म मात्र शेष है अथवा कृशकाय है और वृद्धों में तारुण्य उत्पन्न करो ॥२॥

देवों द्वारा आदिष्ट इन वस्तुओं का निर्माण कर के आप स्वयं स्वर्ग में जाओ। यदि आप लोग ऐसा करेंगे तो देवों के साथ तुम भी यज्ञिय (प्रशंसनीय अथवा यज्ञ में प्रतिष्ठित) हो जाओगे ॥३॥

इस चमसचतुष्टय (एक चमस को चतुर्विध बनाना) को देखकर त्वष्टा लज्जित हो जाएगा। ऐसा सुनकर ऋभुओं ने फिर प्रतिज्ञा करने के लिए कहा ॥४॥

अग्नि के द्वारा कथित देवों के इस दृढ आदेश को सुनकर (ऋभुओं ने कहा) ६देवों के लिये वाहनों का निर्माण करके हम स्वर्ग में जायेंगे ॥५॥

अग्नि ने ऋभुओं को फिर कहा कि स्वर्ग में मुझे आमन्त्रित करके मेरे समक्ष ये समस्त शिल्प तुम्हारे द्वारा देवों को दिए जायेंगे ॥६॥

अग्नि ने कहा-ऐसा करने पर हम देवों में तुम्हारी मित्रता स्थापित करा देंगे तथा देवेन्द्र के साथ किसी भी सवन (समय) में तुम्हारी सग्धि (सहस्थिति, साथ भोजन करने का अधिकार रूप सम्मान) स्थापित करा देंगे ॥७॥ (साथ भोजन करने का अधिकार समान अवस्था के व्यक्ति को ही प्रदान किया जाता है।) ॥

अग्नि ने कहा-यदि आपको प्रातः काल का आपोमय तत्त्व का पान करना और मध्याह्न काल का मौंजवान् पर्वत से लाया गया सोमरस रुचिकर नहीं हो तो निश्चय ही आपको सांयकालीन सवन में सग्धि प्राप्त हो जाएगी ॥८॥

इस प्रकार आदेश प्राप्त किये जाने पर तीनों ऋभु मिलकर चमस-निर्माण में साथ-साथ कार्य करने लगे और अपनी अपनी इच्छा के अनुसार वक्तव्य देते. हुए, विवाद करते हुए सहयुक्त हो गये ॥९॥

उन ऋभुओं ने अपना अपना मत व्यक्त किया-जल श्रेष्ठ है, विपुल है, अतः इन्द्र के साथ प्रातःकालीन सग्धि ही श्रेष्ठ है। दूसरे ने अपना मत प्रकट किया कि अग्नि श्रेष्ठ है, अतः मध्याह्न की सग्धि श्रेष्ठ है। तीसरे ने कहा सायंकालीन सग्धि श्रेष्ठ है, क्योंकि सांयकाल में बहुत से भोज्य पदार्थों का भोजन किया जाता है। (देवता बहुविध भोज्य पदार्थों का भोजन करते हैं) इस प्रकार तीनों ने परस्पर अपना मत प्रकट किया ॥१०-११॥

(तत्त्वों की परस्पर श्रेष्ठता बताने के लिए कहीं जल को श्रेष्ठ कहा है, कहीं अग्नि को और कहीं भूमि को। यह सत्य है कि जल के अभाव में जीवन नहीं हो सकता अतः जल श्रेष्ठ है, अग्नि के अभाव में शरीर नहीं रह सकता है और यदि भूमि नहीं हो तो सभी तत्त्व आधारहीन होकर नष्ट हो जायेंगे। अतः भूमि ही सर्वश्रेष्ठ है।)

चमस के चातुर्विध्य कर्म के संबंध में ज्येष्ठ विभु ने कहा-मैं एक चमस को दो तरह का बना सकता हूँ, मध्यम ने कहा-मैं एक चमस को तीन तरह का बना सकता हूँ, किन्तु उन्होंने कनिष्ठ की वाणी से (कथनानुसार) उस एक चमस को चार प्रकार का बना दिया ॥१२॥

४४. पञ्चदशादिष्टान्यनादिष्टानि च बहूनि शिल्पानि प्रदर्शयितुमृभूणां स्वर्गे गमनम् ॥

अथ कुशला ऋभवस्ते त्रेधा शिल्पानि कल्पयामासुः ।
पञ्च परोक्षार्थेऽपि च दश सख्यार्थे बहूनि कीर्त्यर्थे ॥१॥
आदिष्टकौशलानि तु पञ्चादिष्टोपयोजनानि दश ।
उपबृहंणानि चानादिष्टानि तु विदधिरे कतिचित् ॥२॥

एकं चमसं चतुरश्चमसान् श्लिष्टान् विबर्हयेति ।
पुनरेकं च चतुर्णां संपादयतीति कौशले परमम् ॥३॥
आश्वादश्वमतक्षद् द्वौ चाश्वावेक एवाश्वः ।
अपि बहवोऽश्वाः सहिता दिवि ते प्रचरन्ति भूमौ च ॥४॥
उक्थ्यो रथेऽप्यनश्वोऽभीषुरेतैर्विनिर्म्मितो विपुलः ।
परिवर्तते स चक्रैस्त्रिभिः समं दिवि भुवि प्रचरन् ॥५॥
"अनश्वो जातो अनभीषुरुक्थ्यो रथस्त्रिचक्रः परिवर्त्तते रजः ।
महत्तद्वो देवस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवीं यच्च पुष्यथ" ॥६॥वामदेवः—
(४।३६।१)

द्विविधा तु निर्म्मिता गौरग्नेर्वचनाद् बृहस्पतेर्वचनात् ।
आदिष्टकौशलेऽन्या आदिष्टे तूपयोजने साऽन्या ॥७॥
गौः श्वेतरी तु पूर्वा बृहस्पतेर्विश्वरूपाख्या ।
गौः श्वैतरीयमेकाऽनेकतनुः स्यान्निकृत्तचर्म्मवशात् ॥८॥ (१।१६१।७)
अन्या गौरतिभव्या कामगवी निर्म्मिता चित्रा ।
एषा यदेव किञ्चित् प्राश्नात्यमृतं ततो दुग्धे ॥९॥
मातापितरौ यौ यौ जरसा भूमौ शयानौ स्तः ।
यन्त्रप्रभावतस्तौ पुनर्युवानौ प्रचक्रिरे सद्यः ॥१०॥
इत्थं चमसानश्वं रथमथ धेनुं युवानौ च ।
निर्म्माय सुष्ठु पश्चाद् व्यधुरादिष्टो योजनानि दश ॥११॥
इन्द्रस्य हरी हरितः सूर्य्यस्याग्नेस्तु रोहितो नाम ।
श्यावाः सवितुः पूष्णस्त्वजाश्च मरुतां पृषन्नाम ॥१२॥
नियुतो वायोरुषसोऽरुण्यो गावोथ विश्वरूपा गौः ।
विहिता बृहस्पतेरथ रासभयुग्मं तथाश्विनोः क्लृप्तम् ॥१३॥
दश चैतान्यादिष्टोपयोजना प्रसिद्ध्यन्ति ।
एतान्यारुह्यैते यान्ति स्माकाशमार्गेण ॥१४॥
इन्द्राय चक्रुर्हरिसंज्ञकौ हयौ श्लिष्टौपृथिव्यां दिवि च प्रचारिणौ ।
यथेच्छमाभ्यां भुवि खे च संचरन् हर्य्यश्व उक्तो हरिवाहनोऽपि सः ॥१५॥
हरिप्रभावाद्धरिवान् पराक्रमं स मानुषः सन्नतिमानुषं व्यधात् ।
ताभ्यां स सानोः परसानुमारुहन्नस्पृष्टकर्त्वं बहुदस्युहत्यके ॥१६॥

प्राथमिकषष्ठतुर्य्ये तित्तिरयः संहितायां तु ।
सूर्य्यस्यैतशमाहुः सोपि स्याद्धरित एवाश्वः ॥१७॥
"त्वं सूरो हरितो रामयो नृन्। भरचक्रमेतशो वायमिन्द्रः ।" (१।१२३।३)
अस्मिन्मन्त्रे ह्येतशो नानियुक्तो नृणां हरितां स्थान इन्द्रेण पूर्वम् ॥१८॥
अर्थाहरणे कर्म्मणि ये नियता व्यापृता नरा भृतकाः ।
हरितो नरास्त उक्ताः शिरसा रश्मिभिरिमे हरन्ति रथम् ॥१९॥
हरितो हरन्ति शिरसा पृष्ठेन च किमपि संभारम् ।
हरितां तु नायको यो वहनेऽधिकृतः स वह्निराख्यातः ॥२०॥
अपि यो मनुष्यलोकेश्वरोऽग्निरस्थात्तु भारते वर्षे ।
वह्निः स उक्त एष हि देवैर्देयं दिवे वहति ॥२१॥
इत्यधिभूतं विद्यादधिदैवं तूदिता दिशो हरितः ।
ता इह विद्याच्छन्दांस्येवाहोरात्रवृत्तानि ॥२२॥
नरदेवानामेषां यानि यु यानाभिधानानि ।
प्रायेण तानि क्लृप्तान्यधिदैवतयानसामान्यात् ॥२३॥
ऋक्सामे हरिसंज्ञे अधिदैवतमिन्द्रयाने स्तः ।
यजुरिन्द्रं हरतस्ते अधिभूताश्वो हरिस्तदिन्द्रस्य ॥२४॥
इत्थं पञ्चदशार्थानादिष्टानग्नये निवेद्यैतान् ।
दर्शयितुं स्वं कौशलमृभवः स्वर्गे विमानतो जग्मुः ॥२५॥

४४. पन्द्रह आदिष्ट और अनेक अनादिष्ट शिल्पों का प्रदर्शन करने के लिए ऋभुओं का स्वर्ग-गमन

तदन्तर इन कुशल ऋभुओं ने तीन प्रकार के शिल्पों को कल्पित किया। इन शिल्पों में से पांच शिल्प परीक्षा के लिए, दस शिल्प मित्रता के लिए तथा अन्य अनेक शिल्प यशप्राप्ति के लिए कल्पित किये ॥१॥

इन शिल्पों में से पांच आदिष्ट कौशल थे (जिनके लिए देवों ने आदेश दिया था), दस आदिष्ट उपयोजन थे। जिन शिल्पों को प्रयत्नपूर्वक एकत्रित किया गया था। अन्य कुछ अनादिष्ट शिल्पों का निर्माण किया गया जो उत्तरोत्तर बढाए जा सकते थे (यथा-एक से दो से तीन-चार आदि) ॥२॥

जिसमें चार चमस मिले हुए हों, ऐसा एक चमस चार मिले हुए चमसों में फैल जाता है। पुनः चारों चमसों का एक चमस बना देता है, यह एक विचित्र कौशल है ॥३॥

एक घोड़े से दूसरा घोड़ा बनाया, एक ही अश्व दो अश्वों का जैसा (दो घोड़ों की शक्ति से सम्पन्न) बनाया। अनेक अश्व एक साथ मिलकर आकाश और भूमि पर विचरण

करते थे ॥४॥ यहाँ एक अश्व को अनेक बनाने से तात्पर्य (Horse Power) लिया जा सकता है ॥

इन ऋभुओं द्वारा निर्मित विशाल रथ का वर्णन किया गया है, जो बिना घोड़े और बिना लगाम के तीन पहियों से आकाश और पृथिवी पर समान रूप से विचरण करता है ॥५॥ (बिना अश्व और बिना लगाम का रथ सूर्य का रथ है। यहाँ ऋभु का अर्थ है-सूर्य और उसकी किरणें, सूर्य का रथ है, जो अश्व और लगाम से रहित है। प्रातः मध्याह्न, और सायम् इसके तीन चक्र हैं, जिनसे यह चक्र सम्पूर्ण भूमण्डल और आकाश में विचरण करता है।)

ऋग्वेद में लिखा है-"हे ऋभुओं ! तुम्हारा रथ अश्वों से रहित, लगाम से रहित, तीन पहाड़ियों से युक्त तथा प्रशंसनीय है। वह रथ अन्तरिक्ष में चारों ओर घूमता है। तुम जो द्युलोक और पृथिवी को पुष्ट करते हो, वह महान् कर्म तुम्हारे देवत्व का द्योतक है ॥ (४।३६।१) ॥६॥

ऋभुओं ने अग्नि के वचनों से और बृहस्पति के वचनों से दो प्रकार की गौ बनाई। एक गौ आदिष्ट कौशल में बनाई और दूसरी आदिष्ट उपयोजन में बनाई ॥७॥

पहली गौ श्वेतरी (दुधारू) थी और दूसरी बृहस्पति की विश्वरूपा नाम की गौ थी। यह श्वेतरी गौ एक गौ ही चर्म को काटने से अनेक प्रकार शरीर वाली बन जाती थी ॥८॥

(यहाँ गौ से तात्पर्य गौ) गाय के अतिरिक्त वाणी भी लिया जा सकता है, जिसके अनुसार बृहस्पति ने अनेक प्रकार की वाणी बोलना प्रारंभ कर दिया। अग्नि की श्वेतरी गौ से तात्पर्य है-सूर्य ने अग्नि को देदीप्यमान चमक रूप किरणें प्रदान की) ॥

अन्य गौ अत्यन्त भव्य और विचित्र थी, जो कामगवी (इच्छा पूर्ति करने वाली) थी, वह जो कुछ भी खाती थी, उससे अमृत का दोहन होता था ॥९॥

जो-जो माता पिता वृद्धावस्था से भूमि पर सोये हुए थे, उनको यंत्र के प्रभाव से तत्काल युवा बना दिया ॥१०॥

इस प्रकार चमसों को, रथों को, धेनु को और युवाओं को बनाकर उन ऋभुओं ने दस आदिष्ट उपयोजन बनाये ॥११॥

इन्द्र का घोड़ा हरि कहलाया था, सूर्य का घोड़ा हरित (हरा-पीला) कहलाया, अग्नि का घोड़ा रोहित (लाल रंग) कहलाया, सविता का श्यावा (काले रंग का), पूषा देवता का घोड़ा अजा और मरुतों का घोड़ा पृषत् कहलाया ॥१२॥

वायु का घोड़ा नियुत, उषा की अरुणी गौ (लाल रंग की किरणें) बनाई। बृहस्पति के लिए अनेक रूपों वाली वाणी बनाई और अश्विनी कुमारों के लिए रासभयुग्म (गधों की जोड़ी) बनाई ॥१३॥

ये दस आदिष्ट उपयोजन प्रसिद्ध हैं। इन पर आरोहण करके ये ऋभु आकाश मार्ग से गमन करते थे ॥१४॥

ऋभुओं में इन्द्र के हरि नाम के एक-दूसरे से सटे हुए घोड़े बनाये (साथ-साथ रहने वाले घोड़े बनाये) जो पृथ्वी और द्युलोक में विचरण करने वाले थे। इसलिए इन घोड़ों से इच्छानुसार पृथ्वी और आकाश में विचरण करते हुए वह इन्द्र हर्य्यश्व और हरिवाहन कहलाता है ॥१५॥

इन हरि (घोड़ों) के प्रभाव से इस इन्द्र ने हरिवान् होकर मनुष्य होते हुए भी अतिमानुष पराक्रम किये। उन दोनों घोड़ों से वह बिना स्पर्श किये ही एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर चढ़ता हुआ बहुत से राक्षसों को मारने में समर्थ होता था ॥१६॥

तित्तिरों के द्वारा तैत्तिरीय संहिता के प्रारंभिक छठे अध्याय के चौथे मंत्र में सूर्य का घोड़ा एतश (तेजस्वी) नाम का बताया गया है। वह भी हरित (पीले हरे वर्ण का) अश्व ही था ॥१७॥

ऋग्वेद में लिखा है-"हे इन्द्र ! तू इस तेजस्वी सूर्य के समान मनुष्यों का हित करने वाली हरित वर्ण की (रसों का हरण करने वाली) किरणों को प्रकट करता है। तेरे रथ का चक्र सदैव चलता रहता है ॥ (१।१२१।३)

इस मंत्र में पहले मनुष्य-अश्वों के स्थान पर इन्द्र के द्वारा निश्चय ही एतश (तेजस्वी घोड़े) को नियुक्त किया गया ॥१८॥

अर्थाहरण (सामान ढोने) के काम में जो व्यापार कर्म करने वाले सेवक नियुक्त हैं, वे लोग हरित कहे गये, क्योंकि वे अपने सिर से लगाम के द्वारा रथ को खींचते हैं ॥१९॥

ये हरित मस्तक और पीठ से भी कुछ भार को खींचते हैं। इन हरितों का नायक, जो वहन कार्य में अधिकृत है (अधिकारी है), वह वाहन नाम से कहा गया है॥ (वाहन अथवा वहन कार्याधिकारी वह्नि है। अग्नि मनुष्यों द्वारा दी हुई हवि को स्वर्ग में देवों के पास पहुँचाता है, अतः वहनाधिकारी होने के कारण वह्नि है) ॥२०॥

मनुष्यलोक का स्वामी अग्नि जो भारतवर्ष में रहता है वह वह्नि कहा गया है । यह वह्नि देवों के द्वारा देय हव्य को द्युलोक में ले जाता है ॥२१॥

यह बात अधिभूत (पार्थिव अथवा मनुष्य देवों) की माननी चाहिये। अधिदेव में दिशाएँ हरित शब्द से कही गई हैं। उन्हीं को यहाँ पर अहोरात्र वृत्त छन्दों के नाम से जानना चाहिये ॥२२॥

इन मनुष्यदेवों के यानों के जो नाम थे वे भी प्रायः अधिदैवत के यानों से समानता होने के कारण उन्हीं नामों से रखे गये थे ॥२३॥

अधिदैवत में ऋक् (सूर्यपिण्ड) और साम (प्रभा-मण्डल) रूप हरि संज्ञक इन्द्र के विमान हैं तथा हरण और अपहरण करने वाला यजु नाम का अश्व ही अधिभूत-अश्व है, वही इन्द्र का घोड़ा है ॥ (ऋक् नाम प्रत्येक पिण्ड का है, उसका जो प्रभामण्डल है, वही साम है। इन दोनों के मध्य का गति तत्त्व ही यजु है।) ॥२४॥

इस प्रकार इन पन्द्रह आदिष्ट अर्थों को अग्नि को निवेदन करके ऋभुओं ने अपने कौशल को प्रदर्शित करने के लिए विमान से स्वर्ग में गमन किया ॥२५॥

४५. ऋभुकौशलविमुग्धैर्देवैर्ऋभुभ्यो देवत्वेन्द्रसग्धित्वादिपारितोषिकप्रदानम्।

अग्निसमक्षं भगवानिन्द्रः शिल्पानि तानि चालोच्य ।
देवसभायां प्रमहे देवेभ्यो वाहनानि ददौ ॥१॥
अस्थिभिरस्य दधीचोऽतो वज्रं प्रागजीजनत् ।
सोमग्रहणं चमसं योऽपूर्वं दारुणोऽकुरुत ॥२॥
तस्मादप्याचार्य्यात् त्वष्टुर्देवान्मनुष्याणाम् ।
ऋभ्वादीनामेषामप्रथत यशोऽधिकं स्वर्गे ॥३॥
यशांसि भूयांसि सुपर्वणां कुले प्रगीयमानानि निशम्य वासवः ।
तुतोष मेने मनुजेषु सत्क्रियामग्नेर्मनुष्याधिपतेर्विचारतः ॥४॥
स्वाराट् स दृष्ट्वा हरिसप्तिनिर्म्मितौ लोकातिगं कौशलमस्य शिल्पिनः ।
सम्मानहेतोः सह पारितोषिकैः सग्धिं तृतीये सवनेऽन्वकल्पयत् ॥५॥
महती हि सा प्रतिष्ठा स्वर्गे लोके यदिन्द्रतः सग्धिः ।
तेनोत्साहितचित्ताः शिल्पान्यन्यानि भूरिशश्चक्रुः ॥६॥
परिनिष्ठितकर्म्माणो विश्वैर्देवैस्त आहूताः ।
यानानि ते च तेषां व्यदधुर्विविधानि शस्त्राणि ॥७॥
अत्यद्भुतं स पक्षिणमेकं व्यधात् प्लवं नाम ।
इन्द्राज्ञया जगृहतुस्तमश्विनौ देवकर्म्मार्थम् ॥८॥
यावन्मितमिह वेगं निवेश्य नोदेन गमयेत् तम्।
तावन्मिते प्रदेशे गत्वा परिवर्त्य चायाति ॥९॥
पृष्ठारूढं स वहन्नारूढं वा विनैव नोदनया ।
विचरन् विहायसाऽयं याति मनोनीतमास्पदं तरसा ॥१०॥
एष समुद्रे प्लवते बलाज्जलाधो निधीयमानोऽपि ।
तत्पृष्ठस्था बहवो मनुजाः प्रतरन्ति सागरेऽप्यभयम् ॥११॥
अथ यांस्ते देवेभ्यो रथानश्वान् विहङ्गमान् व्यदधुः ।
तानि विमानान्याहुस्तानि च नानाविधान्यासन् ॥१२॥
प्रथमं बृहस्पतिकृते प्रणयन्ति स्म त्रिबन्धुर सुरथम् ।
अश्विभ्यामपि रासभरथं प्रचक्रुस्त्रिबन्धुरं सुदृढम् ॥१३॥ (८।८५।७)

क्रमतोऽत्र सिद्धहस्ता ऋभव इमे शिल्पिमूर्द्धन्याः ।
आविश्चक्रुर्नानाविधानि तेभ्यो विमानानि ।.१४ ॥
एतद्विमानकौशलदर्शनतो हृष्ट एष देवेन्द्रः ।
बहुभिः सुपुरस्कारैः सत्कृत्य ऋभून् सभाजयामास ॥१५ ॥
इन्द्रस्तैर्ऋभुभिः सममारुह्यैतं विमानरथम् ।
व्यचरद्दिवि देवानिव तान् यज्ञे सोमपायिनो व्यदधात् ॥१६ ॥
एषां च मानुषाणां सम्मानायाददात् स देवत्वम् ।
महती कीर्तिरमीषामभूत् ततो यज्ञभागभुजाम् ॥१७ ॥
इन्द्रस्यासन् बहवो मनोनपात् संज्ञयाऽमात्याः ।
एषामपि स ऋभूणां मनोनपात्त्वं ददाविन्द्रः ॥१८ ॥
अग्निर्भूम्या, वातोऽन्तरिक्षतो, दिव इमे मरुतः ।
*शवसोनपात इच्छन्त्यृभून् समुद्रस्य वरुणश्च ॥१९ ॥ (१ ।१६१ ।१४)
अपि वामदेव ऊचे रत्नानां दुर्लभाद्भुतानां ते।
श्वसोनपात ऋषभोऽभवंश्च देवेन्द्रसाम्राज्ये ॥२० ॥ (४ ।३५ ।८)

४५. ऋभुओं के कौशल से मुग्ध होकर देवों द्वारा ऋभुओं को देवत्व और इन्द्रसग्धित्व रूप पारितोषिक प्रदान करना

अग्नि के समक्ष भगवान् इन्द्र ने उन शिल्पों की परीक्षा करके उत्सव के समय देवों की सभा में देवों को ये वाहन प्रदान किये ॥१ ॥

दधीचि ने इन्द्र के लिए पहले जो हड्डियों का वज्र उत्पन्न (बनाया) किया था, त्वष्टा ने सोमपान करने का लकड़ी का जो अपूर्व चमस बनाया था, ऐसे आचार्य त्वष्टा के यश से भी अधिक इन मनुष्य ऋभुओं का यश स्वर्ग में फैल गया ॥२-३ ॥

देवों के कुल में गाये जाते हुए इन ऋभुओं के विस्तृत यश को सुन कर इन्द्र सन्तुष्ट हुआ और मनुष्यों के अधिपति अग्नि का मनुष्यों में सत्कार माना अथवा स्वीकार किया गया ॥४ ॥

उस स्वाराट् इन्द्र ने इस शिल्पी के हरि-सप्ति (सात प्रकार के घोड़ों) के निर्माण में जो अलौकिक कौशल देखा, उसका सम्मान करने के लिए पारितोषिक के रूप में सायंकालीन सग्धि का अधिकार दे दिया ॥५ ॥

इन्द्र के साथ सग्धि होना स्वर्ग लोक में बहुत बड़ी प्रतिष्ठा है, इससे उत्साहित होकर इन्होंने और भी बहुत से शिल्पों का निर्माण किया ॥६ ॥

---

* सिकत्तर, नायब।

ये परिनिष्ठित (अपने कार्य में पूर्ण निष्ठा रखने वाले) कर्म करने वाले ऋभु सभी देवों द्वारा आहूत किये गये। इन्होंने उन देवों के लिए बहुत से यान और शस्त्रों का निर्माण किया ॥७॥

इन ऋभुओं ने एक अत्यन्त अद्भुत "प्लव" नाम के पक्षी की रचना की, जिसको इन्द्र की आज्ञा से देवकर्म के लिए अश्विनी कुमारों ने ग्रहण किया ॥८॥

इस पक्षी के लिए कहा गया है-इस पक्षी में जितना वेग (प्रेरणा रूपी चाबी) भरकर प्रेरित किया जावे, वह उतने ही प्रदेश तक जाकर वापस लौटकर आ जाता है ॥९॥

अपनी पीठ पर बैठे हुए को धारण करते हुए (सवारी सहित) अथवा बिना किसी को आरूढ किये भी मात्र प्रेरणा से ही विचरण करता हुआ यह आकाश में मन की इच्छा से भेजे हुए स्थान पर शीघ्र ही चला जाता है ॥१०॥

यह पक्षी बलपूर्वक समुद्र में रखे जाने पर भी समुद्र में तैर लेता है। इस पक्षी की पीठ पर बैठकर बहुत से मनुष्य समुद्र को निर्भयता से पार कर लेते हैं ॥११॥

इसके पश्चात् ऋभुओं ने देवों के लिए जिन रथों, अश्वों और पक्षियों की रचना की, उनको विमान कहा गया और वे विमान अनेक प्रकार के थे ॥१२॥

सर्वप्रथम बृहस्पति के लिए सुन्दर रथ बनाया, जो तीन भागों में विभक्त था। फिर अश्वि देवों के लिए भी एक सुदृढ रासभरथ (गधों से चलने वाला रथ) बनाया, वह भी तीन भागों में विभक्त था ॥१३॥

शिल्पिशिरोमणि ये ऋभु लोग धीरे-धीरे सिद्धहस्त हो गये और इन्होंने उन देवों के लिए अनेक प्रकार के विमानों का आविष्कार किया ॥१४॥

इस विमानकौशल को देखकर प्रसन्न हुए देवेन्द्र ने ऋभुओं को बहुत से अच्छे-अच्छे पुरस्कारों से सत्कार करके सम्मानित किया ॥१५॥

इन्द्र ने इन ऋभुओं के साथ विमानरथ में बैठकर आकाश में विचरण किया और देवों की तरह उन ऋभुओं को यज्ञ मे सोमपायी बना दिया ॥१६॥

इन मनुष्यों के सम्मान के लिए इन्द्र ने इन्हें देवत्व प्रदान किया, फिर यज्ञभाग का उपभोग करने वाले इन ऋभुओं की भारी कीर्ति फैल गई ॥१७॥

इन्द्र के बहुत से मनोनपात् (उत्साहवर्धक) संज्ञक आमात्य थे। इन्द्र ने इन ऋभुओं को भी अपना मनोपात्त्व प्रदान कर दिया। (अपने अमात्यों में स्थान प्रदान कर दिया ॥१८॥

इन ऋभुओं की इच्छा करते हुए भूमि से अग्नि, अन्तरिक्ष से वायु और द्युलोक से मरुत् तथा समुद्र के अधिपति (बल के न गिरने देने वाले शवसोनपात्) आते हैं ॥१९॥

वामदेव भी बोले-देवेन्द्र के साम्राज्य में दुर्लभ और अद्भुत रत्नों के वे ऋभु शवसोनपात् (अधिपति) बन गये ॥२०॥

४६. ऋभूणां यशःस्थैर्य्याय देवेन्द्रनिदेशाद्देवसभाविद्भिः कीर्तिसूक्तनिर्म्माणम् ।

दीर्घतमसा कृतमृभूणां कीर्तिसूक्तम् ।

दीर्घतमा औचथ्यो ममतापुत्रोन्यदर्शयत्प्रायः ।
चरितमृभूणामेषामप्रथत यथा तु शिल्पिनां सुयशः ॥१॥ (१।१६१)
"किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन्किमीयते दूत्यङ् कद्यदूचिम ।
न निन्दिम चमसं यो महाकुलोऽग्ने भ्रातर्द्रुण इद्भूतिमूदिम ॥१॥
एकं चमसं चतुरस्कृणोतन तद्वो देवा अब्रुवन्तद्व आगमम् ।
सौधन्वना यद्येवा करिष्यथ साकं देवैर्यज्ञियासो भविष्यथ ॥२॥
अग्निं दूतं प्रति यदब्रवीत नाश्वः कर्त्वो रथ उतेह कर्त्वः ।
धेनुः कर्त्वा युवशा कर्त्वा द्वा तानि भ्रातरनु वः कृत्व्येमसि ॥३॥
चकृवांस ऋभवस्तदपृच्छत क्वेदभूद्यः स्य दूतो न आजगन् ।
यदावाख्यच्चसाञ्चतुरः कृतानादित्त्वष्टामग्नास्वन्तर्न्यानजे ॥४॥
हनामैनां इति त्वष्टा यदब्रवीच्चमसं ये देवपानमनिन्दिषुः ।
अन्या नामानि कृण्वते सुते सचां अन्यैरेनान्कन्या ३ नामभिः स्परत् ॥५॥
इन्द्रो हरी युयुजे अश्विना रथं बृहस्पतिर्विश्वरूपामुपाजत ।
ऋभुर्विभ्वा वाजो देवाँ अगच्छत स्वपसो यज्ञियं भागमैतन ॥६॥
निश्चर्मणो गामरिणीता धीतिभिर्या जरन्ता युवशा ताकृणोतन ॥७॥
इदमुदकं पिबतेत्यब्रवीत नेदं वा घा पिबता मुञ्जनेजनम् ।
सौधन्वना यदि तन्नेव हर्यथ तृतीये घा सवने मादयाध्वै ॥८॥
आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवीदग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत् ।
वर्धयन्ती बहुभ्यः प्रैको अब्रवीदृता वदन्तश्चमसाँ अपिंशत ॥९॥
श्रोणामेक उदकं गामवाजति मांसमेकः पिंशति सूनयाभृतम् ।
आ निम्रुचः शकृदेको अपाभरत्किंस्वित्पुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः ॥१०॥
उद्वत्स्वमा अकृणोतना तृणं निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः ।
अगोह्यस्य यदसस्तना गृहे तद्येदमृभवो नानुगच्छथ ॥११॥
सम्मील्य यद्भुवना पर्यसर्पत क स्वित्तात्या पितरा व आसतुः ।
अशपत यः करस्नं व आददे यः प्राब्रवीत्प्रो तस्मा अब्रवीतन ॥१२॥

सुषुप्वांस ऋभवस्तदपृच्छतागोह्य क इदं नो अबूबुधत् ।
श्वानं वस्तो वोधयितारमब्रवीत्संवत्सर इदमद्या व्यख्यत ॥१३॥
दिवा यान्ति मरुतो भूम्याग्निरयं वातो अन्तरिक्षेण याति ।
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रैर्युष्माँ इच्छन्तः शवसो नपातः" ॥१४॥

४६. ऋभुओं के यश की स्थिरता के लिए देवेन्द्र की आज्ञा से देवसभा के विद्वानों द्वारा ऋभुओं के लिए कीर्तिसूक्त की रचना।

दीर्घतमा द्वारा रचित ऋभुओं का कीर्तिसूक्त

ममतापुत्र औतथ्य दीर्घतमा ने प्रायः ऋभुओं के चरित का निदर्शन किया है, जिससे शिल्पियों का सुयश प्रसिद्ध हो गया ॥१॥

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के (१६१) वें सूक्त में दीर्घतमा स्तुति करते हैं-

"वह क्या श्रेष्ठ है ? अथवा छोटा है ? जो हमारे पास आया है। यह किसका दूत बन कर आया है ? हम किसका वर्णन करें ? हे भरण-पोषण करने वाले अग्नि ! जो महान् कुल में उत्पन्न होते हैं, वे ऐसे चमस की निन्दा नहीं करते हैं, अपितु शत्रुओं को जीतने वाले अन्न का ऐश्वर्य वर्णन करना चाहिये ॥१॥

हे सुन्धवा के पुत्रो ! तुम एक चमस (अन्न) के चार भाग करो, ऐसा देवों ने तुमसे कहा है। मैं ऐसा कहने के लिए ही यहाँ आया हूँ। यदि तुम ऐसा करोगे तो देवों के साथ तुम भी पूजनीय हो जाओगे ॥२॥

हे ऋभुओं ! तुमने दूतकर्म करने वाले अग्नि से कहा है कि घोड़ों को हृष्ट-पुष्ट बनाना है और यहाँ रथ भी तैयार करना है और दोनों वृद्धों को युवा बनाना है। इन समस्त कार्यों को कर के हे भ्राता अग्नि ! हम तुम्हारे पीछे आते हैं ॥३॥

विद्वानों ने ऋभुओं से यह पूछा कि जो दूत बनकर हमारे पास आया है, वह कहाँ उत्पन्न हुआ था। जब त्वष्टा ने चमस को चार प्रकार से प्रकाशित किया तभी वह दूत बनने योग्य भूमियों पर विचरण करने लगा ॥४॥

त्वष्टा ने कहा कि जो देवों द्वारा खाने योग्य अन्न की निन्दा करते हैं, (सोम पान के योग्य चमस की निन्दा करते हैं) उनका हम संहार करें। सोम को निचोड़ने पर अनेक नाम हो जाते हैं, तब कन्याएं इन्हें (सोम को) अनेक नामों से बुलाती हैं। (अर्थात् देवों के द्वारा भक्षण करने योग्य अन्न की निन्दा नहीं करनी चाहिये) ॥५॥

इन्द्र ने घोड़ों को जोड़ दिया है, अश्विनी कुमारों ने रथ को तैयार कर दिया है, बृहस्पति ने अनेक रूपों वाली वाणी बोलना शुरु कर दिया है। अतः हे विभ्वा और वाज ऋभुओं ! तुम देवों के पास जाओ और उत्तम कर्म करने वाले बन कर यज्ञभाग को प्राप्त करो ॥६॥

हे सुन्धवा के पुत्रो ! तुमने अपने प्रयत्नों से चर्मरहित (कमजोर) गायों को भी पुष्ट बना दिया है। जो वृद्ध हो गये हैं, उनको युवा बना दिया है। अश्व से अश्वों की रचना की है और फिर उन घोड़ों को अपने रथ में जोड़ कर देवों के पास गये हैं ॥७॥

हे सुन्धवा के पुत्रो ! इस जल को पीओ, इस मूंजवान् पर्वत से लाये गये सोम का पान करो । यदि इसको पीने की तुम्हारी इच्छा नहीं है, ऐसा तुमने कहा था, तो तीसरे प्रहर में अवश्य ही इसको पी कर आनंदित होओ ॥८॥

जल श्रेष्ठ है, ऐसा एक ने कहा, अग्नि श्रेष्ठ है, ऐसा दूसरे ने कहा, एक ने भूमि को सर्वश्रेष्ठ बतलाया है। इस प्रकार सत्य बोलते हुए सभी ने ऐश्वर्य का विभाजन किया है ॥९॥

एक पुष्ट गायों को जल की ओर ले जाता है, दूसरा पुत्र भली प्रकार गायों का भरण करके उनके शरीर को माँसयुक्त करता है। एक पुत्र सूर्यास्त के समय गाय का गोबर उठाता है, ऐसे पुत्रों से युक्त माता-पिता और किस बात की अपेक्षा कर सकते हैं ॥१०॥

हे तेजस्वी मनुष्यों ! अपने उत्तम कर्मों से उच्च प्रदेशों में इन गायों के लिए घास पैदा करो तथा जलों को सुरक्षित करो। तुम जब तक बिना गाय वाले घर में रहोगे तब तक तुम इस ऐश्वर्य को नहीं प्राप्त कर सकते हो ॥११॥

हे ऋभुओं ! तुम जब मेघों से संसार को आच्छादित करके चारों ओर विचरण करते हो तब तुम्हारे पिता और माता कहाँ चले जाते हैं। जो तुम्हारे हाथों को रोकता है, उसे तुम शाप दो। जो तुम्हारी स्तुति करता है, उसे तुम आशीर्वाद दो ॥१२॥

हे सूर्य किरणों (ऋभुओं) ! तुमने सोते-सोते सूर्य से पूछा कि हे अस्त न होने वाले सूर्य ! हमें किसने जगाया है। तब सबको शरण देने वाले सूर्य ने तुम्हे जगाने वाला वायु को बताया है। तुमने एक वर्ष के पश्चात् आज इस जगत् को प्रकाशित किया है ॥१३॥

हे बल को न गिरने देने वाले ऋभुओं ! मरुद्गण तुम्हें पाने की इच्छा करते हुए द्युलोक से आते हैं, अग्नि भूमि पर से जाता है और वायु अन्तरिक्ष से जाता है तथा वरुण जलप्रवाह से जाता है ॥१४॥

४७. वामदेवः ।

अपि वामदेव ऊचे विस्तरतस्तन्महर्षिराङ्गिरसः ।
चरितमृभूणामेषामप्रथत यथा तु शिल्पिनां सुयशः ॥१॥
(ऋ.४।३३) "प्र ऋभुभ्यो दूतमिव वाचमिष्य उपस्तिरे श्वैतरीं धेनुमीळे।
ये वातजूतास्तरणिभिरेवैः परि द्यां सद्यो अपसो बभूवुः ॥१॥
यदारमक्रन्नृभवः पितृभ्यां परिविष्टी वेषणा दंसनाभिः ।
आदिद्देवानामुप सख्यमायन्धीरासः पुष्टिमवहन्मनायै ॥२॥

पुनर्ये चक्रुः पितरा युवाना सना यूपेव जरणा शयाना ।
ते वाजो विभ्वाँ ऋभुरिन्द्रवन्तो मधुप्सरसो नोऽवन्तु यज्ञम् ॥३॥
यत् संवत्समृभवो गामरक्षन् यत् संवत्समृमवो मा अपिंशन्।
यत्संवत्समभरभासो अस्यास्ताभिः शमीभिरमृतत्वमाशुः ॥४॥
ज्येष्ठ आह चमसा द्वा करेति कनीयान् त्रीन्कृणवामेत्याह ।
कनिष्ठ आह चतुरस्करेति त्वष्ट ऋभवस्तत्पनयद्वचो वः ॥५॥
सत्यमूचुर्नर एवा हि चक्रुरनु स्वधामृभवो जग्मुरेताम् ।
विभ्राजमानंश्चमसाँ अहेवाऽवेनत् त्वष्टा चतुरो ददृशवान् ॥६॥
द्वादश द्यून्यदगोह्यस्यातिथ्ये रणन्नृभवः ससन्तः ।
सुक्षेत्राकृण्वन्ननयन्त सिन्धून्धन्वातिष्ठन्नोषधीर्निम्नमापः ॥७॥
रथं ये चक्रुः सुवृतं नरेष्ठां ये धेनुं विश्वजुवं विश्वरूपाम् ।
त आतक्षन्त्वृभवो रयिं नः स्ववसः स्वपसः सुहस्ताः ॥८॥
अपो ह्येषामजुसन्त देवा अभि क्रत्वा मनसा दीध्यानाः ।
वाजो देवानामभवत्सुकर्मेन्द्रस्य ऋभुक्षा वरुणस्य विभ्वा ॥९॥
ये हरी मेधयोक्था मदन्त इन्द्राय चक्रुः सुयुजा ये अश्वा।
ते रायस्पोषं द्रविणान्यस्मे धत्त ऋभवः क्षेमयन्तो न मित्रम् ॥१०॥
इदाह्नः पीतिमुत वो मदं धुर्न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः ।
ते नूनमस्मे ऋभवो वसूनि तृतीये अस्मिन्सवने दधात ॥११॥
(ऋ.४।३४) "ऋभुर्विभ्वा वाज इन्द्रो नो अच्छेमं यज्ञं रत्नधेयोप यात।
इदा हि वो धिषणा देव्यह्नामधात्पीतिं सं मदा अग्मता वः ॥१॥
विदानासो जन्मनो वाजरत्ना उत ऋभुभिर्ऋभवो मादयध्वम् ।
सं वो सदा अग्मत सं पुरन्धिः सुवीरामस्मे रयिमेरयध्वम् ॥२॥
अयं वो यज्ञ ऋभवोऽकारि यमा मनुष्यवत्प्रदिवो दधिध्वे ।
प्र वोऽच्छा जुजुषाणासो अस्थुरभूत विश्वे अग्रियोत वाजाः ॥३॥
अभूद् वो विधते रत्नधेयमिदा नरो दाशुषे मर्त्याय ।
पिबत वाजा ऋभवो ददे वो महि तृतीयं सवनं मदाय ॥४॥
आ वाजा यातोप न ऋभुक्षा महो नरो द्रविणसो गृणानाः ।
आ वः पीयतोऽभिपित्वे अह्नामिमा अस्तं नवस्व इव ग्मन् ॥५॥
आ नपातः शवसो यातनोपेमं यज्ञं नमसा हूयमानाः ।
सजोषसः सूरयो यस्य च स्थ मध्वः पात रत्नधा इन्द्रवन्तः ॥६॥

सजोषा इन्द्र वरुणेन सोमं सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ।
अग्रेपाभिर्ऋतुपाभिः सजोषा ग्नास्पत्नीभी रत्नधाभिः सजोषाः ॥७॥
सजोषस आदित्यैर्मादयध्वं सजोषस ऋभवः पर्वतेभिः ।
सजोषसो दैव्येना सवित्रा सजोषसः सिन्धुभी रत्नधेभिः ॥८॥
ये अश्विना ये पितरा य ऊती धेनुं ततक्षुर्ऋभवो ये अश्वा ।
ये अंसत्रा य ऋधग्रोदसी ये विभ्वो नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥९॥
ये गोमन्तं वाजवन्तं सुवीरं रयिं धत्थ वसुमन्तं पुरुक्षम् ।
ते अग्रेपा ऋभवो मन्दसाना अस्मे धत्त ये च रातिं गृणन्ति ॥१०॥
नापाभूत न वोऽतीतृषामानिःशस्ता ऋभवो यज्ञे अस्मिन् ।
समिन्द्रेण मदथ सं मरुद्भिः सं राजभी रत्नधेयाय देवाः" ॥११॥
(ऋ. ४।३५) इहोप यात शवसो नपातः सौधन्वना ऋभवो माप भूत ।
अस्मिन्हि वः सवने रत्नधेयं गमन्त्विन्द्रमनु वो मदासः ॥१॥
आगन्नृभूणामिह रत्नधेयमभूत्सोमस्य सुषुतस्य पीतिः ।
सुकृत्यया यत्स्वपस्यया चँ एकं विचक्र चमसं चतुर्धा ॥२॥
व्यकृणोत चमसं चतुर्धा सखे वि शिक्षेत्यब्रवीत ।
अथैत वाजा अमृतस्य पन्थां गणं देवानामृभवः सुहस्ताः ॥३॥
किंमयः स्विच्चमस एष आस यं काव्येन चतुरो विचक्र ।
अथा सुनुध्वं सवनं मदाय पात ऋभवो मधुनः सोम्यस्य ॥४॥
शच्याकर्त पितरा युवाना शच्याकर्त्त चमसं देवपानम् ।
शच्या हरी धनुतरावतष्टेन्द्रवाहावृभवो वाजरत्नाः ॥५॥
यो वः सुनोत्यभिपित्त्वे अह्नां तीव्रं वाजासः सवनं मदाय ।
तस्मै रयिमृभवः सर्ववीरमा तक्षत वृषणो मन्दसानाः ॥६॥
प्रातः सुतमपिबो हर्य्यश्व माध्यन्दिनं सवनं केवलं ते ।
समृभुभिः पिबस्व रत्नधेभिः सखीँर्यां इन्द्र चकृषे सुकृत्या ॥७॥
ये देवासो अभवता सुकृत्या श्येना इवेदधि दिवि निषेद ।
ते रत्नं धात शवसोनपातः सौधन्वना अभवतामृतासः ॥८॥
यत्तृतीयं सवनं रत्नधेयमकृणुध्वं स्वपस्या सुहस्ताः ।
तदृभवः परिषिक्तं व एतत्संमदेभिरिन्द्रियेभिः पिबध्वम्" ॥९॥
(ऋ.४।३६) "अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो३ रथस्त्रिचक्रः परिवर्तते रजः।
महत्तद्वो देव्यस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवीं यच्च पुष्यथ ॥१॥

रथं ये चक्रुः सुवृतं सुचेतसोऽविह्वरन्तं मनसस्परि ध्यया ।
ताँ ऊ न्वस्य सवनस्य पीतय आ वो वाजा ऋभवो वेदयामसि ॥२॥
तद्वो वाजा ऋभवः सुप्रवाचनं देवेषु विभ्वो अभवन्महित्वनम् ।
जिव्री यत्सन्ता पितरा सनाजुरा पुनर्युवाना च रथाय तक्षथ ॥३॥
एकं विचक्र चमसं चतुर्वयं निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिः ।
अथा देवेष्वमृतत्वमानश श्रुष्टी वाजा ऋभवस्तद्व उक्थ्यम् ॥४॥
ऋभुतो रयिः प्रथमश्रवस्तमो वाजश्रुतासो यमजीजनन्नरः ।
विभ्वतष्टो विदथेषु प्रवाच्यो यं देवासोऽवथा स विचर्षणिः ॥५॥
स वाज्यर्वा स ऋषिर्वचस्यया स शूरो अस्ता पृतनासु दुष्टरः ।
स रायस्पोषं स सुवीर्यं दधे यं वाजो विभ्वाँ ऋभवो यमाविषुः ॥६॥
श्रेष्ठं वः पेशो अधिधायि दर्शतं स्तोमो वाजा ऋभवस्तं जुजुष्टन ।
धीरासो हि ष्ठा कवयो विपश्चितस्तान् व एना ब्रह्मणा वेदयामसि ॥७॥
यूयमस्मभ्यं धिषणाभ्यस्परि विद्वांसो विश्वा नर्याणि भोजना ।
द्युमन्तं वाजं वृषशुष्ममुत्तममा नो रयिमृभवस्तक्षता वयः ॥८॥
इह प्रजामिह रयिं रराणा इह श्रवो वीरवत्तक्षता नः ।
येन वयं चितयेमात्यन्यान्तं वाजं चित्रमृभवो ददा नः" ॥९॥
(ऋ.४।३७) "उप नो वाजा अध्वरमृभुक्षा देवा यात पथिभिर्देवयानैः ।
यथा यज्ञं मनुषो विक्ष्वा३सु दधिध्वे रण्वाः सुदिनेष्वह्नाम् ॥१॥
ते वो हृदे मनसे सन्तु यज्ञा जुष्टासो अद्य घृतनिर्णिजो गुः ।
प्र वः सुतासो हरयन्त पूर्णाः क्रत्वे दक्षाय हर्षयन्त पीताः ॥२॥
त्र्युदायं देवहितं यथा वः स्तोमो वाजा ऋभुक्षणो ददे वः ।
जुह्वे मनुष्वदुपरासु विक्षु युष्मे सचा बृहद्दिवेषु सोमम् ॥३॥
पीवो अश्वाः शुचद्रथा हि भूतायः शिप्रा वाजिनः सुनिष्काः ।
इन्द्रस्य सूनो शवसो नपातोऽनु वश्चेत्यग्रियं मदाय ॥४॥
ऋभुमृभुक्षणो रयिं वाजे वाजिन्तमं युजम् ।
इन्द्रस्वन्तं हवामहे सदासातममश्विनम् ॥५॥
सेदृभवो यमवथ यूयमिन्द्रश्च मर्त्यम् ।
स धीभिरस्तु सनिता मेधसाता सो अर्वता ॥६॥
वि नो वाजा ऋभुक्षणः पथश्चितन यष्टवे ।
अस्मभ्यं सूरयः स्तुता विश्वा आशास्तरीषणि ॥७॥

तं नो वाजा ऋभुक्षण इन्द्र नासत्या रयिम् ।
समश्वं चर्षणिभ्य आ पुरु शस्त मघत्तबे" ॥८॥
एषां कतिपयमन्त्रा अधिदैवतपक्ष उपनेयाः ।
शेषाः सर्वे मन्त्रा अधिभूतं तूपनीयन्ते ॥९॥

४७. वामदेव

महर्षि आंगिरस वामदेव ने इन ऋभुओं के चरित का विस्तार से वर्णन किया है, जिससे शिल्पियों का सुयश प्रसिद्ध हो गया ॥१॥

ऋग्वेद के चौथे मण्डल के तेतीसवें सूक्त में वर्णन है—"मैं उन ऋभुओं के लिए स्तुतियों को दूत के समान प्रेरित करता हूँ और उनसे सोम को उत्तम बनाने के लिए दुधारू गायें माँगता हूँ, जो ऋभु वायु के समान वेगवान् और कर्तृत्वशाली हैं और अपने द्रुतगामी घोड़ों से शीघ्र ही द्युलोक को प्राप्त होते हैं ॥१॥

जब ऋभुओं ने माता-पिता की सेवा करके अपने महत्त्व और उत्तम कर्मों से स्वयं को सामर्थ्यशाली बनाया और उसके बाद ही देवों की मित्रता को प्राप्त किया और तब उन बुद्धिमान् ऋभुओं ने अपने मन को शक्तिशाली बनाया ॥२॥

फिर से उन ऋभुओं ने यूप के समान जीर्ण पड़े अपने माता-पिता को हमेशा के लिए तरुण बना दिया । वे वाज और विभ्वा ऋभु इन्द्र की कृपा से युक्त होकर मधुर सोमरस का भक्षण करते हुए हमारे यज्ञ की रक्षा करें ॥३॥

जब ऋभुओं ने एक वर्ष तक गाय की रक्षा की, जब ऋभुओं ने उस गाय में एक वर्ष तक मांस भर कर पुष्टि प्रदान की । जब एक वर्ष तक उस गाय में तेज भरा तब उन उत्तम कर्मों के कारण ही ऋभुओं ने अमरता प्राप्त की ॥४॥

ऋभुओं में से बड़े ने कहा—हम चमस के दो भाग करें, छोटे ने कहा—हम तीन भाग करें और सबसे छोटा बोला—हम चार भाग करें । तब त्वष्टा ने ऋभुओं की इन बातों की प्रशंसा की ॥५॥

नर रूपी ऋभुओं ने सत्य ही कहा, क्योंकि उन्होंने जैसा कहा था, वैसा ही किया । इसके बाद इस हवि को ऋभुओं ने प्राप्त किया । त्वष्टा ने दिन के समान देदीप्यमान चार चमसों को देखा और उनकी प्रशंसा की ॥६॥

जब ऋभुओं ने (सूर्यरश्मि रूप ऋभु) तेजस्वी आदित्य के आतिथ्य में रहकर आनन्द प्राप्त किया; तब सूर्यकिरण रूप ऋभुओं ने खेतों को उत्तम बनाया, नदियों को प्रेरित किया, निर्जल प्रदेशों में ओषधियों को उत्पन्न किया और जलों की नीचे की ओर बहाया ॥७॥

जिन ऋभुओं ने भली प्रकार बंधे हुए और मनुष्यों के बैठने योग्य रथ को तैयार किया जिन्होंने सबको प्रेरणा देने वाली और अनेक रूपों वाली गाय को बनाया, वे उत्तम कर्म

करने वाले और उत्तम रक्षा साधनों से युक्त और कुशल हाथों वाले हैं, ऐसे ऋभु हमें ऐश्वर्य प्रदान करें ॥८॥

इन ऋभुओं के कर्मों को कर्म और मन से तेजस्वी देवों ने स्वीकार किया है । अपने उत्तम कर्मों के कारण वाज नाम का ऋभु देवों का प्रिय बना, ऋभुक्षा इन्द्र का प्रिय बना तथा विभ्वा वरुण का प्रिय बना ॥९॥

जिन ऋभुओं ने स्तुतियों से आनन्दित होकर अपनी बुद्धि से दो उत्तम घोड़ों को बनाया, जिन्होंने इन्द्र के लिए आसानी से जुड़ने वाले घोड़ों को बनाया । ऐसे हे ऋभुओं! वे तुम कल्याण चाहने वाले मित्र के समान हमारे लिए धन, पुष्टि और ऐश्वर्य प्रदान करो ॥१०॥

हे ऋभुओं ! दिन के इस भाग में देवों ने तुम्हारे लिए सोम और आनन्द प्रदान किया। देव भी कष्ट उठाये बिना मित्रता नहीं करते हैं । अतः हे ऋभुओं ! हमें इस तीसरे सवन में धन प्रदान करो ॥११॥ (ऋग्वेद ४/३३)

ऋग्वेद के ४/३४ में भी ऋषि गोतम ने ऋभुओं की स्तुति की है—

"ऋभु, विभ्वा, वाज और इन्द्र हमें रत्न देने के लिए हमारे पास, यज्ञ की ओर सीधे आवें । आज वाग्देवी ने तुम्हें सोम पीने के लिए दिया है । ये आनन्दकारक सोम तुम्हें प्राप्त हों ॥१॥

हे उत्तम और श्रेष्ठ अन्न से युक्त ऋभुओं ! तुम सभी प्राणियों के जन्मों को जानते हुए सभी ऋतुओं में आनन्द प्राप्त करो । ये आनन्दकारक सोम तुम्हें सदा प्राप्त होवें । तुम्हें उत्तम बुद्धि प्राप्त होती रहें । तुम उत्तम वीर पुत्रों से युक्त धन को हमारी ओर प्रेरित करो ॥२॥

हे ऋभुओं ! यह यज्ञ तुम्हारे लिए किया गया है, उस यज्ञ को तुम तेजस्वी मनुष्य के समान स्वीकार करो । ये प्रसन्न करने वाले सोम सीधे तुम्हारी ओर आते हैं । इसी कारण हे बलवान् ऋभुओं ! तुम सबसे श्रेष्ठ हो ॥३॥

हे नेता ऋभुओं ! तुम्हारे रत्नादि ऐश्वर्य तुम्हारे लिए यज्ञ करने वाले को प्राप्त हों। हे बलशाली ऋभुओं ! मैं तुम्हारे आनन्द के लिए, तुम्हारे पीने के लिए बहुत सोमरस प्रदान करता हूँ ॥४॥

हे बलवान् नेता ऋभुओं ! तुम अत्यन्त शक्तिशाली के रूप में प्रसिद्ध होकर हमारे पास आओ । दिवस की समाप्ति पर ये सोमरस तुम्हारी ओर उसी तरह जाते हैं, जैसे नव प्रसूता गायें अपने घर की ओर उत्सुकता से जाती हैं ॥५॥

हे शवसोनपात ऋभुओं ! बुद्धिमान् तथा विनीत भाव से बुलाये जाने पर तुम प्रेमपूर्वक इस यज्ञ में आओ । तुम जिसके हो, उस इन्द्र के साथ रमणीय कार्यों को धारण करने वाले मधुर सोम रस का पान करो ॥६॥

हे इन्द्र ! तू प्रीतिपूर्वक वरुण के साथ सोम पी । हे स्तुत्य इन्द्र ! तू प्रीति युक्त होकर मरुतों के साथ सोम पान कर, तू सर्वप्रथम सोम रस को पीने वाले तथा ऋतुओं

के अनुसार सोमपान करने वाले देवों के साथ प्रीतिपूर्वक सोम पी तथा उत्तम ऐश्वर्यो को धारण करने वाली स्त्रियों के साथ सोम पान कर ॥७॥

हे ऋभुओं ! तुम प्रीतिपूर्वक आदित्यों के साथ आनन्द करो, प्रीतिपूर्वक, पर्वतों के साथ आनन्द करो, प्रीतिपूर्वक देवों के हितकारी सविता देव के साथ आनन्द करो तथा प्रेमपूर्वक रत्नों को धारण करने वाले सागर के साथ आनन्द करो ॥८॥

जिन ऋभुओं ने अपने संरक्षण के साधन से अश्विनी कुमारों को समर्थ बनाया, जिन्होंने पितरों को समर्थ बनाया, गायों को दुधारू और घोड़ों को शक्तिशाली बनाया, जिन्होंने कवचों का निर्माण किया, जिन्होंने द्युलोक और पृथिवी को अलग-अलग किया, जिन शक्तिशाली नेताओं ने सुन्दर कर्मो को किया ॥९॥

हे ऋभुओं ! तुम जो गायों, घोड़ों और वीर सन्तानों से युक्त द्रव्य और सर्वाधिक समृद्ध ऐश्वर्य को धारण करते हो, जिनके दान की सर्वत्र प्रशंसा होती है, वे सर्वप्रथम सोमपान करने वाले तुम आनन्द से युक्त होकर हमें धन प्रदान करो ॥१०॥

हे ऋभुओं ! तुम हमसे दूर मत जाओ, हम तुम्हें प्यासे न रखें अर्थात् सोमरस प्रदान करते रहें । हे ऋभुओं ! दिव्यगुणों से युक्त तुम निन्दा रहित होकर इस यज्ञ में इन्द्र के साथ बैठकर आनन्दित होओ । हे ऋभुओं ! रत्न प्रदान करने के लिए तेजस्वी मरुतों के साथ आनन्द प्राप्त करो ॥११॥

वामदेव गौतम ने ४/३५ में भी ऋभुओं की स्तुति करते हुए कहा है—

“हे बल को नष्ट न करने वाले तथा उत्तम धनुषों को धारण करने वाले ऋभुओं ! हमारे पास आओ, हमसे दूर मत जाओ और इस यज्ञ में रत्नों को प्रदान करने वाले इन्द्र को दिये जाने वाले आनन्दकारक सोम तुम्हें भी प्राप्त हों ॥१॥

ऋभुओं के रत्नादि दान यहाँ आवें, अच्छी तरह निचोड़े गये सोमरस का पान होता रहे । हे ऋभुओं ! क्योंकि तुमने अपनी कुशलता और कर्तव्य-शक्ति से एक चमस को चार प्रकार से बनाया ॥२॥

हे ऋभुओं ! तुमने चमस को चार तरह से विभक्त किया, हे मित्र! तुमने दान देने को कहा था, इसके बाद तुम अमृत के मार्ग पर चले । हे उत्तम हाथों वाले ! तुम देवों के संघ में सम्मिलित हो गये ॥३॥

हे ऋभुओं ! तुमने जिस चमस के चार भाग किये वह किस चीज का बना हुआ था। हे ऋत्विजों ! आनन्द के लिए सोम को पीस कर, निचोड़ो और मीठे सोमरस का पान करो ॥४॥

हे ऋभुओं ! तुमने अपनी कर्मकुशलता से माता-पिता को तरुण बनाया, तुमने अपनी कुशलता से चमस को देवों के पीने योग्य बनाया । हे ऐश्वर्यशाली ऋभुओं ! तुमने अपनी कुशलता से इन्द्र को ले जाने वाले घोड़ों को बाण से भी अधिक वेग से जाने वाला बनाया ॥५॥

हे ऋभुओं ! जो मनुष्य दिन की समाप्ति पर तुम्हें आनन्दित करने के लिए तीक्ष्ण सोमरस को निचोड़ता है, उसे हे शक्तिशाली ऋभुओं ! सब तरह से आनन्दित होकर वीर सन्तान से युक्त धन प्रदान करो ॥६ ॥

हे उत्तम घोड़ों वाले इन्द्र ! तू प्रातः सवन किये गये सोम को पी । मध्याह्न का सोम भी केवल तुम्हारे लिए है । हे इन्द्र ! उत्तम कर्मों को करने के कारण जिन्हें तुमने अपना मित्र बनाया, उन रत्नों को धारण करने वाले ऋभुओं के साथ तू सोम पान कर ॥७ ॥

हे ऋभुओं ! तुम जिन उत्तम कर्मों के कारण देव बने, उसी कारण तुम सुपर्ण के समान द्युलोक में प्रतिष्ठित हुए । हे बल को न गिरने देने वाले ऋभुओं ! तुम रत्न प्रदान करो। हे सुधन्वा (उत्तम धनुष को धारण करने वाले) ! तुम अमर हो गये हो ॥८ ॥

हे सुहस्ता (उत्तम और कुशल हाथों वाले) ! तुमने अपने उत्तम कर्मों से जिस तीसरे सवन को रत्न प्रदान करने वाला बनाया है । इसलिए हे ऋभुओं ! प्रसन्न इन्द्रियों से युक्त होकर तुम्हारे लिए निचोड़े गये सोम का भली प्रकार पान करो ॥९ ॥

वामदेव ने ४/३६ में स्तुति करते हुए कहा है—हे ऋभुओं ! तुम्हारा रथ घोड़ों से रहित, लगाम से रहित और तीन पहियों से युक्त तथा प्रशंसनीय है । वह रथ अन्तरिक्ष में चारों ओर घूमता है । तुम्हारा द्युलोक और पृथिवीलोक में घूमने रूप महान् कर्म तुम्हारे देवत्व का द्योतक है ॥१ ॥

उत्तम चित्त वाले ऋभुओं ने अच्छी तरह घूमने वाले और कभी टेढ़ा न चलने वाले रथ को मन के संकल्प से ही बनाया है । हे बलशाली ऋभुओं ! तुम उन लोगों को यह सोम रस पीने के लिए आमन्त्रित करते हो ॥२ ॥

हे बलशाली तथा तेजस्वी ऋभुओं ! तुमने जो अत्यन्त वृद्ध और जीर्ण-शीर्ण माता-पिता को घूमने के लिए फिर से तरुण बनाया है, वह महत्त्वपूर्ण कर्म देवों में अत्यन्त प्रशंसनीय हुआ है ॥३ ॥

हे बलशाली ऋभुओं ! तुमने एक ही चमस को चार अवयव वाला बनाया है और अपने कर्मों से मात्र चमड़ी वाली (अत्यन्त कृश) गाय को अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट बनाया । तुम्हारा वह काम शीघ्र ही प्रशंसनीय हो गया, तत्पश्चात् तुमने देवों में प्रशंसा प्राप्त की ॥४ ॥

जिसे नेता ऋभुओं ने उत्पन्न किया, वह सबसे श्रेष्ठ और यश को प्रदान करने वाला धन, अपने बल के लिए विख्यात ऋभुओं से हमें प्राप्त हो । ऋभुओं द्वारा बनाया गया विशिष्ट रथ युद्धों में प्रशंसनीय होता है । हे देवों ! तुम जिसकी रक्षा करते हो वह विश्वविख्यात होता है ॥५ ॥

वाज, विभ्वा और ऋभु जिस जिस मनुष्य की रक्षा करते हैं, वह बलवान् और प्रगतिशाली है, वह मन्त्र-द्रष्टा और प्रशंसनीय है, वह शूरवीर है । इसलिए युद्धों में विजयी होता है, वह धन, पोषण और उत्तम पराक्रम को धारण करने वाला है ॥६ ॥

हे बलशाली ऋभुओं ! तुम्हारा श्रेष्ठ और दर्शनीय सुन्दर रूप सर्वश्रेष्ठ है । तुम धैर्यशाली, दूरदर्शी और बुद्धिमान् हो, ऐसी जो हमने स्तुति की है, तुम उसके अनुरूप कार्य करो । हम तुम्हारा मन्त्रों से आह्वान करते हैं ॥७॥

हे ऋभुओं ! तुम ज्ञानवान् हो ! हमें हमारी कल्पना से भी अधिक सम्पूर्ण प्राणियों का हित करने वाली सम्पत्ति, ऐश्वर्य से युक्त अधिकार, उत्तम अन्न, बल और ऐश्वर्य प्रदान करो ॥८॥

हे ऋभुओं ! तुम प्रसन्न होते हुए हमें इस संसार में उत्तम सन्तान, यहाँ वीरता से युक्त अन्न और ऐश्वर्य प्रदान करो । हमें ऐसा उत्तम और श्रेष्ठ बल प्रदान करो जिससे हम अन्य लोगों से आगे बढ़ जावें ॥९॥ (ऋग्. ४/३६)

ऋग्वेद के ही चौथे मण्डल के सैंतीसवें अध्याय में ऋषि वामदेव गौतम स्तुति करते हुए कहते हैं—

हे बलशाली ऋभु देवों ! तुम देवमार्गों से हमारे यज्ञ में आओ । हे रमणीय ऋभुओं ! जिससे तुम श्रेष्ठ दिन में मनुष्यों द्वारा किये यज्ञ की हवि को ग्रहण करो ॥१॥

हे बलवान् ऋभुओं । ये यज्ञ तुम्हारे मन और हृदय को आनन्द देने वाले हों । घी के समान तेजस्वी और सेवन करने योग्य सोम तुम्हें प्राप्त हों । निचोड़े हुए और पूर्ण सोम तुम्हारे लिए ले जाए जावें । पीए गए सोम तुम्हारे चातुर्य और पराक्रम को प्रकट करने के लिए तुम्हें प्रसन्न करें ॥२॥

हे बलवान् ऋभुओं ! जिस तरह तुम्हें स्तोत्र-समर्पित किए जाते हैं, उसी प्रकार तीनों सवनों में तैयार होने वाला तथा देवों के लिए हितकारी सोम तुम्हें समर्पित करता हूँ । मैं तेजस्वी मनुष्यों में भी श्रेष्ठ तेज को धारण करने वाला हूँ, ऐसा मैं तुम्हें सोम प्रदान करता हूँ ॥३॥

हे बलवान् ऋभुओं ! तुम पुष्ट घोड़ों वाले, तेजस्वी रथों वाले और लोहे के कवचों को धारण करने वाले हो, तुम उत्तम धन को देने वाले बनो । हे इन्द्रपुत्र ! बल से उत्पन्न ऋभुओं ! तुम्हारी प्रसन्नता के लिए यह श्रेष्ठ सोम रस प्रदान किया जाता है ॥४॥

हे ऋभुओं ! हम तुम्हारे उस समूह को बुलाते हैं, जो तेजस्वी, धनवान्, बलवान् योद्धा, एक साथ रहने वाले और इन्द्र के प्रिय हैं, ऐसे समूह को हम बुलाते हैं ॥५॥

हे ऋभुओं ! तुम और इन्द्र जिस मनुष्य की रक्षा करते हो, वही श्रेष्ठ होता, है और वही अपने उत्तम कर्मों से उपभोगों से संयुक्त है । वही यज्ञ में अश्व से युक्त होता है ॥६॥

हे बलवान् ऋभुओं ! तुम हमें उत्तम कर्म करने के लिए उत्तम मार्ग प्रकाशित करो। हे बुद्धिमान् ऋभुओं ! तुम स्तुति किये जाने पर हमें सभी दिशाओं को पार जाने योग्य मार्ग दिखाओं ॥७॥

हे बलवान् ऋभुओं ! इन्द्र और अश्विनी देवों ! तुम हम मनुष्यों को आशीर्वाद दो, जिससे हमें बहुत सा धन और घोड़ों की प्राप्ति हो ॥८॥ (ऋग्. ४/३७)

इनमें से कुछ मन्त्र अधिदैवत पक्ष में (अधिदैवत स्वरूप के है) लिए जाने चाहिए और शेष सभी मन्त्र अधिभूत (भौतिक प्राणियों से सम्बद्ध) अर्थ में लिए जाते हैं ॥९॥

४८. युद्धात्प्राक्तनानामृभूणां भारतीयमनुष्यतया दस्युयुद्धात् प्रागेवार्य्याणां भारतीयत्वसिद्धान्तः ।

इत्थमृभूणामेषां शिल्पं श्रृणुमः पुरा मनुष्याणाम् ।
भारतवर्षाभिजना ध्रुवमासंस्ते मनुष्यत्वात् ॥१॥
एभिश्च निर्मितौ तावश्वौ हरिसंज्ञकौ समारुह्य ।
इन्द्रो दस्यूनवधीत् तस्मादृभवः पुरैवासन् ॥२॥
एष सुधन्वा राजा जनक ऋभूणां च मानुषे लोके ।
आसीद् भारतवर्षे तस्मादार्याः पुराप्यासन् ॥३॥

४८. युद्ध से पहले के ऋभुओं का भारतीय मनुष्य होने से दस्युओं के साथ युद्ध होने के कारण आर्यों का पहले से ही भारतीय होना रूप सिद्धान्त

इस प्रकार प्राचीन मनुष्य रूप ऋभुओं का शिल्प सुनते हैं। अतः निश्चय ही मनुष्य होने के कारण वे भारतवर्ष के निवासी थे ॥१॥

इनके द्वारा बनाये गये हरि नाम के दोनों घोड़ों पर आरूढ होकर इन्द्र ने दस्युओं को मारा। इससे प्रतीत होता है कि ये ऋभु पहले से ही यहाँ रहते थे ॥२॥

मनुष्यलोक में यह सुन्धवा नाम का राजा ऋभुओं का पिता था, इससे सिद्ध होता है कि भारतवर्ष में पहले भी आर्य निवास करते थे ॥३॥

४९. दस्युयुद्धाद् बहुपूर्वं सभ्यानामार्य्याणां भारतनिवासित्वसिद्धान्तः ।

यस्मिन्काले स्वर्ग इन्द्रोऽयमासीत् पामीरे वा ब्रह्मणो वास आसीत् ।
पामीरोऽयं देवपूर्णो यदासीत् तर्ह्येवासन् भारतेऽप्यार्यसभ्याः ॥४॥
नैषां वासः स्वर्गलोके कदाचित् पामीराद्वा नागता भारतेऽस्मिन् ।
नो वाऽनार्य्याधिष्ठितं देशमेतं जित्वा तत्र स्वान्निवासानकार्षुः ॥५॥
युद्धेऽप्यायुः श्रूयतेऽस्मिन् सहायः सोयं राजैलेयपुत्रः श्रुतोऽस्ति।
ऐलेयश्चेक्ष्वाकुणा तुल्यकालोऽयोध्यायां चेक्ष्वाकुरार्य्येश आसीत् ॥६॥
तस्मान्मन्ये भारतीयार्यसंघा दस्योर्युद्धात्पूर्वमेवात्र देशे ।
अस्थुस्तेषामेष देशः स्वकीयो न त्वेवास्मिन् सन्ति वैदेशिकास्ते ॥७॥

इति मधुसूदनविद्यावाचस्पतिप्रणीतस्य ब्रह्मविज्ञानशास्त्र-
सम्बन्धिनो विज्ञानेतिवृत्तवादस्य द्वितीयपर्वणि
भारतवर्षीयार्य्योपाख्याने आर्यदासीयाख्यो
द्वितीयः प्रक्रमः सम्पूर्णः ॥२॥



४९. दस्युयुद्ध से बहुत पहले भी सभ्य आर्यों का भारत का निवासी होने का सिद्धान्त

जिस समय स्वर्ग में इन्द्र निवास करता था, और पामीर में ब्रह्मा का निवास था, तब पामीर देवों से व्याप्त था और तब भारत में आर्य सभ्य निवास करते थे ॥४॥

इन आर्यों का निवास कभी स्वर्ग में नहीं था और न ही ये पामीर प्रदेश से भारत में आये थे और न ही अनार्यों से अधिष्ठित इस देश को जीत कर यहाँ अपना निवास स्थान बनाया ॥५॥

इस युद्ध के प्रसंग में आयु का नाम सहायक के रूप में सुना जाता है, जो राजा ऐलेय का पुत्र था, ऐसा सुना गया है। यह ऐलेय इक्ष्वाकु का समकालीन था और अयोध्या में इक्ष्वाकु आर्यों का राजा था ॥६॥

इसलिए मैं मानता हूँ कि भारतीय आर्यसमूह दस्युयुद्ध से भी पहले इस देश में निवास करते थे। अतः यह देश उनका अपना देश था, इस देश में वे कोई विदेशी नहीं थे। (अपितु स्वदेशी थे, यह उनका अपना देश था) ॥७॥



अथ विज्ञानभवनं तृतीयः प्रसङ्गः

पुरायुगे दिव्यप्राणपरीक्षणार्थं विज्ञानशालानिर्म्माणम्।

१. आर्य्यानार्य्यविद्रोहनिमित्तभूतं सिन्धुसरस्वतीसंभेदे सूर्य्याधिष्ठानम्॥

आर्य्याणां दस्यूनां सूर्य्योऽभ्यामर्द्दने निमित्तमभूत्।
तद्दर्शयामि तावद् यत्र स सूर्य्यो यथा चासीत् ॥१॥

वेत्तुं वसिष्ठमुख्याः सूर्य्यस्य गवां तथोषसो विद्याम्।
चक्रे सूर्य्यं नामाधिष्ठानं प्राक् सरस्वतीकूले ॥२॥

अस्ति वितस्तासिन्धोरन्तरतः सा सरस्वती धारा ।
सरयूसहिता काचित् सान्या प्राचीसरस्वत्याः ॥३॥

"सरस्वती सरयूः सिन्धरूर्म्मिभिर्महो महीरवसा यन्तु वक्षणीः।
देवीरापो मातरः सूदयित्न्वो घृतवत्पयो मधुमन्नो अर्चता॥(१०।६४।९)
इयं शुष्मेभिर्विसखा इवारुजत् सानु गिरीणां तविषेभिरूर्म्मिभिः ।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः॥(६।६१।२)

    १   २

सा पारसीकवेदे हरखूवतीत्याख्यया पठिता ।
सर्पसरोवरतोऽस्या निर्गमनं दर्शितं मात्स्ये ॥४॥

"हेमकूटस्य पृष्ठेतु सर्पाणां तत्सरः स्मृतम् ।
सरस्वती प्रभवति तस्माज्ज्योतिष्मती तु या॥" (मात्स्ये १६१।६४)

मन्ये सर्पसरस्तत् पञ्चाशत् क्रोशदीर्घं यत् ।
सार्द्धक्रोशप्रततं भाषायामद्य 'पानकाङ्गा'ख्यम् ॥५॥

"काश्मीरेष्वेव नागस्य भवनं तक्षकस्य च ।
वितस्ताख्यमिति ख्यातं सर्वपापप्रमोचनम् ॥" (पाद्म खं. २५ अ.)

इत्थं पाद्मे स्वर्गखण्डे (२५अ.) वितस्ता नामाख्याता तक्षकाणां पुरी या।
आसन्नेऽस्यास्तत्सरस्तक्षकाणां तीर्थं तस्मात्सा सरस्वत्युपेता ॥६॥

काश्मीरादुत्तरतो बिन्दुसरस्तत्सरीकुलेत्युक्तम् ।
'सरपस' नाम च तस्मात्सरस्वतीत्याहुरन्ये तु ॥७॥

---

१. अवस्ताख्ये । २. हरकुअती ।

सिन्धोः सङ्गमदेशे तस्या वामे च दक्षिणे च तटे ।
यासीत्सरस्वती पूस्तस्यां सूर्य्यप्रतिष्ठाऽऽसीत् ॥८॥
ऊचे वसिष्ठ एतां सरस्वतीं पुरि सरस्वत्याम् ।
प्रवहन्ती रथ्यामिव तत्र वसिष्ठः स वसति स्म ॥९॥
स्थानं यदुन्नतं स्यान्निसर्गजं कृत्रिमेण वा विधिना ।
तत्राऽस्ति धरुणशब्दः सरस्वती पूरियं धरुणम् ॥१०॥

"प्रक्षोदसा धायसा सस्र एषा सरस्वती धरुणमायसी पूः ।
प्र वा बधाना रथ्येव याति विश्वा आपो महिना सिन्धुरन्याः ॥
एकाऽचेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात् ।
रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृतं पयो दुदुहे नाहुषाया ॥
इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः प्रतिस्तोमं सरस्वति जुषस्त ।
तव शर्मन् प्रियतमे दधाना उपस्थेयाम शरणं न वृक्षम् ॥(७।९५।५)
अयमुते सरस्वती वसिष्ठो द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः ।
वर्धशुभ्रे स्तुवतेरासि वाजान् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥"

तृतीय प्रक्रम

विज्ञानभवन

१. पुराकाल में दिव्यप्राण की परीक्षार्थ विज्ञानभवन का निर्माण, आर्यों और अनार्यों के विद्रोह के निमित्तस्वरूप सिन्धु और सरस्वती के संदर्भ में सूर्यभवन की स्थापना

आर्यों और दस्युओं के संग्राम में सूर्य को निमित बनाया गया। वह सूर्य जहाँ और जैसा था, इस संबंध में वर्णन करता हूँ ॥१॥

वसिष्ठ ऋषि के नेतृत्व में सूर्य की किरणों तथा उषा की विद्या जानने के लिए प्राचीन सरस्वती के किनारे सूर्य नामक भवन का निर्माण किया गया ॥२॥

वितस्ता और सिंधु के मध्य सरयु नदी के साथ जो सरस्वती नदी की धारा थी, वह कोई अन्य ही सरस्वती नाम की नदी थी ॥३॥

ऋग्वेद संहित में वर्णन है—

"महान्, श्रेष्ठ और तरंगों से युक्त सरस्वती, सरयु और सिन्धु नदियाँ हमारी रक्षा के लिए आवें। प्रेरणा देने वाली माता सदृश नदियाँ घी, मधुयुक्त जल हमें प्रदान करें।" (१० ।६४ ।९)

"यह सरस्वती कमलनाल को तोड़ने वाले के समान बलवान्, वेगवान् लहरों से पर्वतों से उच्च भागों को तोड़ती है। तीव्राघात करने वाली सरस्वती की हम भक्तिभाव से अपनी रक्षा के लिए सेवा करते है॥" (६ ।६१ ।२)

पारसियों के अवेस्ता नाम के वेद में हरकुअती (हरकुवती) नाम से (सरस्वती नदी को) पढ़ा गया है। मत्स्य पुराण में सर्प सरोवर में उसका उद्गम दर्शाया गया है ॥४॥

हेमकूट के पृष्ठ भाग में वह सर्पों का सरोवर स्मरण किया गया है, उस सर्प सरोवर से सरस्वती नदी का उद्गम होता है, इसलिए वह ज्योतिष्मती नाम से कहीं गई है। (मत्स्य. १६१ ।६४)

मैं मानता हूँ कि वह सर्प सरोवर पचास कोस लम्बा है और डेढ कोस चौड़ा है जिसे लौकिक भाषा में 'पानकाङ्गा' नाम से कहा गया है॥ ५॥

काश्मीर में एक तक्षक नाग का भवन है, जो वितस्ता नाम से प्रसिद्ध है और समस्त पापों का नाश करने वाला है। (पद्म. २५)

इस प्रकार पद्मपुराण के स्वर्ग खण्ड के २५वें अध्याय में वितस्ता नाम की जो तक्षकों की नगरी है, उसके समीप तक्षकों का वह सरोवर तीर्थ है, इसलिए वह सरस्वती प्रसिद्ध हुई ॥६॥

काश्मीर से उत्तर की ओर बिन्दुसार नाम का सरोवर है, जो 'सरपस' नाम का सरोवरों का कुल कहा जाता है, जिसको अन्य लोग सरस्वती कहते हैं ॥७॥

सिन्धु के संगमस्थल पर पूर्व और पश्चिम तट पर जो सरस्वती नाम की नगरी है, उसमें सूर्य की प्रतिष्ठा की गई ॥८॥

वसिष्ठ ऋषि इस सरस्वती नदी को सरस्वती नाम की नगरी में रथ्या (गली) की तरह बहती हुई बताते हैं, वही जो वह वसिष्ठ ऋषि निवास करते थे ॥९॥

जो स्थान प्राकृतिक रूप से अथवा कृत्रिम विधि से ऊँचा हुआ था, वहा धरुण शब्द से सुशोभित और दृढ़ (सबको धारण करने वाली) यह सरस्वती नाम की नगरी है ॥१०॥

यह सरस्वती नदी वहन करने योग्य जल के साथ तेज बह रही है। यह लोहे की नगरी के समान सबको दृढता से धारण करती है। यह नदी अपनी महत्ता से रथ चलाने वाले सारथि की तरह अन्य समस्त जलों को बाधा पहुँचाती हुई चली जाती है॥१॥

चेतनायुक्त वह अकेली सरस्वती नदी समस्त नदियों में शुद्ध, पहाड़ों से समुद्र तक जाने वाली है। यह नदी पृथिवी की अपार धनसम्पदा को प्रकट करती है और नदी के किनारे रहने वालों को घी और दूध प्रदान करती है ॥२॥

हे सरस्वती हम यज्ञ करने वाले इन अन्नों को तुमसे नमस्कारपूर्वक प्राप्त करते हैं। हमारी स्तुतियों को सुन। हम तेरे अत्यन्त प्रिय सुख में स्वयं को धारण करते हैं। वृक्ष के समान आश्रयभूत तेरे साथ रहे ॥५॥

हे सौभाग्यशाली सरस्वति ! यह वसिष्ठ ऋषि तुम्हारे लिए यज्ञ के दोनों द्वार खोलता है। हे शुभ्रे, स्तुतियां करने वाले के लिए बढ़ तुम अन्न प्रदान करो। तुम कल्याण के साधनों से हमारी रक्षा करो ॥६॥ (७।९५।१-२-५-६)

२. भरद्वाजो वार्हस्पत्य इमां सरस्वतीं स्तौति।

पुत्रो बृहस्पतेः प्रागत्रैवासीत् पुरा भरद्वाजः ।
सहकारी स वसिष्ठस्यासीत् स च तां सरस्वतीं स्तौति ॥१॥

(६।६१) "इयमददाद्रभसमृणच्युतं दिवोदासं बध्र्यश्वाय दाशुषे ।
या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति॥१॥
इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत् सानु गिरीणां तविषेभिरूर्म्मिभिः।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमाविवासेम धीतिभिः॥२॥
सरस्वति देवनिदो निबर्हय प्रजां विश्वस्य वृसयस्य मायिनः।
उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्दो विषमेभ्यो अस्रवो वाजिनीवति ॥३॥
प्रणो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
धीनामवित्र्यवतु ॥४॥
यस्त्वा देवि सरस्वत्युपब्रूते धने हिते ।
इन्द्रं न वृत्रतूर्ये ॥५॥
त्वं देवि सरस्वत्यवा वाजेषु वाजिनि।
रदा पूषेव नः सनिम् ॥६॥
उत स्या नः सरस्वती घोरा हिरण्यवर्तनिः ।
वृत्रघ्नी वष्टि सुष्टुतिम् ॥७॥
यस्या अनन्तो अह्रुतस्त्वेषश्चरिष्णुरर्णवः ।
अमश्चरति रोरुवत् ॥८॥
सा नो विश्वा अतिद्विषः स्वसृरन्या ऋतावरी ।
अनन्नहेव सूर्य्यः ॥९॥
उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा।
सरस्वती स्तोम्याभूत् ॥१०॥

आपप्रुषी पार्थिवान्यूरु रजो अन्तरिक्षम् ।
सरस्वती निदस्पातु ॥११॥
त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्चजाता वर्धयन्ती ।
वाजे वाजे हव्याभूत् ॥१२॥
प्रया महिम्ना महिनासु चेकिते द्युम्नेभिरन्या अपसामपस्तमा ।
रथ इव बृहती विभ्वने कृतोपस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती ॥१३॥
सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो माप स्फरीः पयसा मा न आधक् ।
जुषस्व नः सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥१४॥"

२. बृहस्पति के पुत्र भरद्वाज द्वारा इस सरस्वती नदी की स्तुति

प्राचीन समय में बृहस्पति के पुत्र भरद्वाज पहले यहीं निवास करते थे, वह वसिष्ठ के सहयोगी थे। वह उस सरस्वती की स्तुति करते हैं ॥१॥

ऋग्वेद के ६/६१ में ऋषि भरद्वाज स्तुति करते हैं—

"इस सरस्वती ने दानदाता बध्र्यश्व को देवों की सेवा करने वाला (दिवोदास) पुत्र प्रदान किया, जो धैर्यवान् और ऋण से मुक्त होने वाला था। इसने कष्टकारी और धनवान् होते हुए भी कृपण का नाश किया। हे सरस्वति! ऐसे तेरे दान वैभवशाली हैं ॥१॥

यह सरस्वती कमलनाल को तोड़ने वाले के समान बलवान् और वेगवान् लहरों से पर्वत के उच्च भागों को तोड़ती है। तीव्राघात करने वाली सरस्वती की हम भक्तिभाव से अपनी रक्षा के लिए सेवा करते हैं ॥२॥

हे सरस्वति ! तू ईश्वर की निन्दा करने वाले मनुष्यों का नाश कर। समस्त मायावी दुष्टजनों का नाश कर। तू पृथिवी की रक्षा के लिए भूमि प्रदान कर। हे वाजिनीवति। तूने इस संसार के लिए जल को प्रवाहित किया है ॥३॥

सरस्वती देवी अन्न से युक्त होने के कारण अन्न वाली है । वह बुद्धि की रक्षा करने वाली हमारी रक्षा करे ॥४॥

हे सरस्वति ! वृत्र को मारने वाले इन्द्र की तरह युद्ध प्रारम्भ हो जाने पर जो तेरी प्रार्थना करता है, तू उसकी रक्षा करती है॥५॥

हे अन्नमयि सरस्वति ! तू युद्ध में हमारी रक्षा कर। तू हमें पूषा के समान धन प्रदान कर ॥६॥

यह घोर, सुवर्ण के रथ-चक्र को वर्तन करने वाली सरस्वती वृत्र का नाश करती है। यह सरस्वती हमारी उत्तम स्तुतियों को सुनने की कामना करती है ॥७॥

जिस सरस्वती नदी का प्रवाह मर्यादाविहीन, अत्यन्त वेगवान्, निरन्तर गतिशील, एक स्थान पर स्थिर न रहने वाला है। ऐसा यह प्रवाह शब्द करता हुआ चलता है ॥८॥

यह सरस्वती नदी हमारे समस्त शत्रुओं को दूर करती है। यह सरस्वती सत्य का पालन करने वाली है, यह अन्य बहिनों गे (नदियों से) हमें पार ले जाती है। यह नदी दिन में सूर्य के समान प्रकाश फैलाती है ॥९॥

यह सरस्वती हमें समस्त प्रिय लगने वालों में सर्वाधिक प्रिय है। यह सरस्वती उत्तम सेवा के योग्य है, अतः सात बहिनों (नदियों) में सर्वश्रेष्ठ है ॥१०॥

लौकिक धनों को प्रदान करने वाली और विशाल अन्तरिक्ष को अपने तेज से ढकने वाली यह सरस्वती नदी निन्दा करने वालों से हमारी रक्षा करे ॥११॥

यह सरस्वती तीनों स्थान (भू, भुवः, स्वः) में रहने वाली, सात धातुओं से युक्त पंच जनों (चार वर्ण और निषाद) का वर्धन करने वाली है, अतः यह प्रत्येक युद्ध में (सदैव) प्रार्थनीया है ॥१२॥

यह सरस्वती अपने विचित्र महत्त्व से और अपने तेजों से इन समस्त नदियों में सर्वश्रेष्ठ दिखाई देती है। इस नदी का प्रवाह अन्य नदियों के प्रवाह से सर्वाधिक तीव्र है। यह नदी रथ के समान श्रेष्ठ है। इस सरस्वती की विधाता ने रचना की है, अतः यह ज्ञानवती प्रशंसा करने योग्य है ॥१३॥

हे सरस्वति ! तू हमें इच्छित धन प्रदान कर। हमें अपने जलप्रवाह से कष्ट न पहुँचा। हमें अपने पास से दूर मत कर। तू हमारी मित्रता और सेवा को स्वीकार कर। हम तुझसे दूर अन्य खेतों में न जावें ॥१४॥

३. सूर्य्यसंस्थापनस्वरूपम्।

अस्याः सिन्धुप्रान्ते प्रवहन्त्या अनुतटं सरस्वत्याः।
नगरी सरस्वती या तस्यां सौरं बृहत् सदनम् ॥१॥
तत्र वसिष्ठप्रमुखा द्विचक्रयन्त्रेण सूर्य्यसंज्ञेन ।
उषसं सूर्य्यज्योतिश्चन्द्राद्यंशून् परीक्षयामासुः ॥२॥
वैज्ञानिकैर्महर्षिभिरासीद् रचितं पुरा परीक्षार्थम् ।
यत्सूर्य्यमन्दिरं तत् स्तूपाकारं शिलामयं वृत्तम् ॥३॥
स्तूपादस्माद् बाह्य भागे समन्तान्नानाशालाश्रेणिसंभक्तमूर्तिः ।
प्रासादोऽभूदम्बरोल्लेखिश्रृङ्गो नानाकक्षोऽग्र्यः शतस्तम्भरम्यः ॥४॥
प्रासादेऽस्मिन् मुख्यवेश्माध्यवात्सीत् सूर्य्यः पश्चादेतशश्चोषश्च ।
वार्हस्पत्योऽन्ये वसिष्ठादयो वा सर्वेप्यासन् मन्दिरेऽस्मिन्नियुक्ताः ॥५॥
प्रासादनां मध्यभूमौ तदासीत् स्तूपाकारं सद्म वैवस्वतं तत्।
द्विप्राकारं छन्नसोपानगम्यातिध्वान्तान्तर्वेश्मनिम्नावकाशम् ॥६॥

सूर्य्यस्थानं निस्तलं वर्तुलं तद् ब्रह्माण्डाभं श्लक्ष्णबाह्यान्तरङ्गम्।
अन्तर्भूम्या अर्द्धमूर्ध्वं बहिर्धा तत्रागारं निम्नभूमीतलेऽन्तः ॥७॥
रन्ध्रैरच्छाश्मावरुद्धैः कृतोर्ध्वं भाभैः सूक्ष्मैर्नीलदेशोपपन्नैः।
तत्सोपानं द्वारयोः क्लृप्तमन्तर्द्वारं द्वारधः स्थितं भिन्नभित्तौ ॥८॥
द्वारेकस्मिन् (१) बाह्यभित्तौ ततोऽन्तः प्रादक्षिण्यात् सम्मुखी द्वारधस्तात् ।
अन्तर्भित्तौ या तयाऽन्तःप्रविष्टः सूर्य्यं साक्षाच्चक्रगं पश्यति स्म ॥९॥
सूर्य्यगृहस्यैतस्यच्छदिपटलेऽकृत सा रन्ध्राणि ।
दुर्लक्ष्याणि यथैभ्यो रश्मिश्चक्रे समं न्यपतत् ॥१०॥
अष्टाचत्वारिंशद्रेखाः पूर्वापराः पटले ।
प्रतिरेखं रन्ध्राणामभवदशीतिशतं (१८०) न्यस्तम् ॥११॥
संवत्सरेण सूर्य्यो व्योम्नि चरन् यत्र यत्र देशे स्यात् ।
तत्तत्सम्मुखखरन्ध्रादंशुनिपातोत्र चक्रे स्यात् ॥१२॥
यर्ह्येवायं प्रागुदेति स्म सूर्य्यस्तर्ह्येवास्मिन्नश्मके बिम्बितः स्यात्।
खे संचारेऽप्यत्र चक्रे स्थिरोऽर्कोऽप्यथास्तंभावे नक्तमत्राप्यदृश्यः ॥१३॥
तत्राश्चर्यं संवृतेऽस्मिन्नागारे ध्वान्ते गाढे सूर्य्य एकत्र तस्थौ ।
नाभौ चक्रस्याश्मके बिम्बितोऽभात् प्रातःकालात् सायमन्तं स सूर्य्यः ॥१४॥

३. सूर्य-संस्थापन का स्वरूप

इस सिन्धु नदी के प्रदेश में बहती हुई सरस्वती के तट पर जो सरस्वती नाम की नगरी है, उसमें वह विशाल सूर्यसदन स्थित था ॥१॥

वहाँ वसिष्ठादि ऋषि सूर्य नाम के द्विचक्र यन्त्र से उषा, सूर्य-किरणों तथा चन्द्रकिरणों की परीक्षा करते थे ॥२॥

प्राचीन समय में विद्वान् महर्षियों द्वारा परीक्षण करने हेतु जिस सूर्यमन्दिर की रचना की गई थी, वह स्तूप की आकृति का वृत्ताकार शिलामय भवन था ॥३॥

इस स्तूप के बाह्य भाग में चारों ओर अनेक कमरों की पंक्तियों से बंटी हुई आकृति का तथा गगनचुम्बी शिखरों से युक्त प्रासाद था, जिसमें अनेक कक्ष थे। वह प्रासाद सौ स्तम्भों से युक्त अत्यन्त सुन्दर और श्रेष्ठ था ॥४॥

इस प्रासाद के प्रमुख भवन में सूर्य अधिष्ठित था तथा अन्य भवनों में एतश और उषाएँ अधिष्ठित थीं। बृहस्पति के पुत्र भरद्वाज तथा वसिष्ठादि अन्य सभी सूर्यमंदिर में (व्यवस्थापक के रूप में) नियुक्त थे ॥५॥

महलों के मध्य भूमि पर एक स्तूपाकार सूर्यभवन था, जिसके दो परकोटे थे, ढ़की हुई सीढियाँ थीं। भवन के अन्दर घोर अन्धकार से युक्त एक आन्तरिक भाग अथवा भवन था, जिसमें प्रकाश जाने के लिए अत्यन्त अल्प छिद्र थे ॥६॥

यह सूर्यभवन वर्तुलाकार था, जिसमें कोई तल (आधार अथवा आंगन) नहीं था। वह भवन ब्रह्माण्ड जैसी देदीप्यमान आभा से युक्त था, वह भवन अन्दर और बाहर दोनों ओर से चिकना और सुन्दर था। जिस भवन का आधा भाग नीचे भूमि पर और आधा ऊपर बाहर की ओर था, जिसके कारण इसका अन्दर का भूमि-तल बहुत नीचा था ॥७॥

स्वच्छ पत्थरों से ढ़के हुए, उर्ध्व फैलती हुई आभा से युक्त, अत्यन्त सूक्ष्म और नीली आभा से युक्त छिद्रों से उस भवन की दो द्वार से युक्त सीढ़ियाँ बनी थीं। उसका आन्तरिक द्वार दूसरी दीवार में बना हुआ था ॥८॥

बाहरी दीवार पर एक द्वार में दूसरा द्वार था, जो नीचे सामने की ओर बना हुआ था। अन्दर की भित्ति पर जो द्वार था, उसमें प्रवेश करने पर चक्र में स्थित साक्षात् सूर्य का दर्शन किया जाता था ॥९॥

उस सूर्यभवन की छत में इस प्रकार अत्यन्त सूक्ष्म छिद्र बने हुए थे, जिससे इनमें से सूर्यचक्र पर सूर्य की किरणें समान रूप से पड़ती थीं ॥१०॥

इस भवन की पूर्व और पश्चिम की छत पर ४८ रेखाएँ निर्मित थीं और प्रत्येक रेखा पर १८० छिद्र निर्मित थे ॥११॥

वर्ष भर में आकाशमण्डल पर विचरण करता हुआ सूर्य जिस-जिस स्थान पर होता था, उस-उस स्थान के सम्मुख छिद्र से सूर्य किरणें इस सूर्यभवन स्थित सूर्य पर पड़ती थीं॥१२॥

जब सूर्य पूर्व दिशा में उगता था, तब सूर्य की किरणें इस सूर्यचक्र पर पड़ती थीं तब वह सूर्य प्रतिबिम्बित होता था और आकाश में सूर्य के विचरण करने पर भी इस चक्र पर किरणें पड़ती थीं और सूर्य के अस्त होने के समय भी इस स्थिर सूर्य-चक्र पर सूर्य की किरणें पड़ती थीं परन्तु रात्रि में यह चक्र दिखाई नहीं देता था ॥१३॥

यह आश्चर्य की बात थी कि इस भवन में गहन अन्धकार में एक स्थान पर स्थित चक्र के पत्थर पर अपनी धुरि पर स्थित वह सूर्य प्रातःकाल से सायंकाल तक सूर्य से प्रतिबिम्बित होकर चमकता रहता था ॥१४॥

४. सूर्य्यचक्रस्वरूपम् ।

तत्रागारेन्तःस्थले चक्रयुग्मं हैमं सांशुश्लिष्टमासीत् स सूर्य्यः।
नाभिस्थोऽयं नास्य तत्रावलम्बोऽत्रात्याश्चर्य्य खे निराधार एव॥१॥
सूर्य्ये द्विचक्ररूपे एक चक्रं बृहत् तदन्तरतः ।
क्षुद्रं चक्रं निहितं तत्र प्रतिबिम्ब एति बृहतोऽस्य ॥२॥

वृहदपि चक्रं द्विकृतं परिवर्तते क्रमेण ते चक्रे ।
संवत्सरेण सौरेणैते परिवृत्तिमायातः ॥३॥
चक्रद्वितये चैकं भवति निगूढं सदैकवद् ददृशे ।
षण्मासैः पर्य्यायाद् दृष्टमदृष्टं बभूव तच्चित्रम् ॥४॥
'द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः ।
अथैकं चक्रं यद् गुहा दतद्धातय इद् विदुः॥" (१०।८५।१६)
एतच्चक्राधस्ताद् भूमौ चक्रं समाहितं धरुणे ।
ऊर्ध्वस्थसूर्य्यरश्मिग्राहि परीक्षास्ति तत्रैव ॥५॥

४. सूर्यचक्र का स्वरूप

उस भवन के आन्तरिक भाग में दो सुवर्णमय (देदीप्यमान) चक्र थे, वह सूर्य था, जो किरणों से आश्लिष्ट था। वह सूर्य अपनी नाभिचक्र (केन्द्र) पर स्थित था, पर यह आश्चर्य की बात है कि वह चक्र अवलम्बरहित शून्य में निराधार लटका हुआ था ॥१॥

द्विचक्र रूप सूर्य में एक बड़ा था और उसके अन्दर एक छोटा चक्र निहित था, जिसमें बड़े चक्र का प्रतिबिम्ब दिखाई देता था ॥२॥

वृहत् चक्र भी दो भागों में था, वे दोनों चक्र क्रम से सौर संवत्सर के क्रम से (दक्षिणायन और उत्तरायण) परिक्रमा करते थे ॥३॥

दो चक्रों में से एक चक्र छिपा हुआ था, अतः सदैव एक चक्र का जैसा दिखाई देता था। आश्चर्य है कि वह छः महिने दिखाई देता था और छः महिने अदृश्य रहता था॥४॥

'तेरे रथ के जो सूर्य और चन्द्रात्मक दो चक्र समयानुसार चलने वाले प्रख्यात हैं, उनको ब्राह्मण जानते हैं और तीसरा संवत्सरात्मक चक्र, जो गुप्त था, उसको विद्वान् ही जानते हैं॥' (१०।८५।१६)

इस चक्र के नीचे भूमि में स्तम्भ पर एक चक्र और था, जो ऊपर स्थित सूर्य की किरणों को ग्रहण करने वाला था और वहीं पर सूर्य की परीक्षा होती थी ॥५॥

५. सूर्य्यविज्ञानादाधिदैविकसिद्धिः ।

गौर्ज्योतिरायुरेते सूर्ये सन्ति त्रयो भावाः ।
भूतग्रामो देवग्रामात्मग्रामकौ च तेभ्यः स्युः ॥१॥
सर्वं व्योम व्याप्नुवन् सोम एतत् सूर्य्यप्राणे द्वादशात्मन्यपीतः ।
ज्योतिर्भावं भावयत्यत्र देवाः सेन्द्रा इन्द्रः शुक्लकृष्णादिरूपम् ॥२॥

५. सूर्यविज्ञान से संबंद्ध आधिदैविक सिद्धि

गौ, ज्योति और आयु नाम से सूर्य के तीन मनोता हैं। इनमें गौ से भूतसमूह (भौतिक पदार्थों) की उत्पत्ति होती है, ज्योति से देवसमूह की उत्पत्ति होती है और आयु से आत्मसमूह की उत्पत्ति होती है ॥१॥

आकाश में व्याप्त सम्पूर्ण सोम की इस द्वादशात्मा सूर्य प्राण की आहुति होती है, जिससे इन्द्र सहित समस्त देव ज्योतिर्भाव को प्रकट करते हैं और इन्द्र उसमें शुक्ल कृष्णादि रूप को प्रकट करता है ॥२॥

६. सूर्य्यविज्ञानादाधिभौतिकसिद्धिः ।

तस्मिश्चक्रे शङ्क्वोऽन्ते सहस्रं तीव्रज्योतिर्भासते चक्रमध्ये।
ज्योतिष्यस्मिन् ये सहस्रं विभागास्तेषामेकः सस्यकृत् कामधुक् च ॥१॥
शेषा गावस्तास्त्रिधा स्युर्विभक्ता आदित्यानां रुद्रकाणां वसूनाम् ।
चक्रेऽन्यस्मिन् द्वादशैकादशाष्टौ द्वौ चेति स्युस्त्रिशदंशास्त्रयश्च ॥२॥
शङ्कुग्रामे शक्तिवैचित्र्यहेतोर्गोभ्यो वर्णाः सप्त पार्थक्यतः स्युः ।
अन्योन्यस्मिन् घातविक्षेपकर्म्मद्वारा नानाशक्तयः प्रादुरासन् ॥३॥
इति चक्रद्वययोगात् प्रतिफलिता अंशवो विभक्ताः स्युः ।
विशकलितास्ता गावो भवन्ति ते सप्तसप्तका मरुतः ॥४॥
गन्धादींस्तु विशेषान् जनयन्तीमानिमे मरुतः ।
तत एव भूतभेदा भवन्ति नानाविधा लोके ॥५॥
मरुतां पुनर्विभागादेकादशजातयो हि ते रुद्राः ।
रुद्राणां च विभागादादित्या द्वादशाविःस्युः ॥६॥
इन्द्रस्तेषामेकोऽस्त्योकःसारीश्वरो महावीर्य्यः ।
आदित्यरुद्रमरुतोऽवलम्बिताः सन्ति तत्रेन्द्रे ॥७॥
"यथाग्निगर्भा पृथिवी तथा द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी ॥" (यजु.)
इत्थं वदन्त ऋषयः सूर्य्येऽपश्यन् विशिष्यैतम् ॥८॥
आयुः स एष इन्द्रः स हि सर्वेषां भवत्यात्मा ।
प्रत्यर्थमेष तिष्ठन् देवान् भूतानि वा जनयेत् ॥९॥
देहे देहे बृहतीसहस्रभेदास्त्रिधा प्रवर्तन्ते ।
प्राणमनोवाग्भेदादायुस्तत् तत्र सम्यगैक्षन्त ॥१०॥

आयुस्त्वमृतः प्राणस्तत आदित्या भवन्ति तैरात्मा ।
प्रत्यात्मतस्तु गावः सहस्रमभितः प्रवर्तन्ते ॥११॥
योगाद् गवां तु रुद्रा एकादशजातिका विजायन्ते ।
रुद्रे तु रुद्रयोगान्मरुतः स्युः सप्तसप्तकास्तत्र ॥१२॥
एषामेव तु मरुतां योगविभेदाद् भवन्ति वसवोष्टौ ।
गन्धो रसश्च रूपं स्पर्शो वाग् धृतिमती ध्रुवत्वं च ॥१३॥
मात्राभिराभिरेव प्रज्ञानप्राणभूतानि ।
प्रभवन्त्येषां ग्रामा धातूद्भिच्चेतनैस्त्रिविधाः ॥१४॥
यत्किञ्चिदत्र वीक्षे तत् खनिजोद्भिज्जचेतनतः ।
त्रेधा विभक्तमेतत् सर्वं सवितुः प्रसूतमंशुभ्यः ॥१५॥
"नूनं जनाः सूर्य्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृण्वन्नपांसि ।
इत्थं वसिष्ठ ऊचे सर्वेषा सूर्य्यजनितत्वम् ॥१६॥
जगति हि सृष्टिविधाने यद्वैचित्र्यं प्रदृश्यते क्वापि ।
तस्यैष एव सूर्य्यः कारणमस्तीति सिद्धान्तः ॥१७॥
सूर्य्ये द्युस्थे के के सन्ति पदार्थाः कथं च तैर्विश्वम् ।
उत्पद्यते कुतो वा नानाभेदा इहोत्पन्नाः ॥१८॥
कथमिह वायुः पवते निर्वातं वा कुतो भवति ।
कथमिह मेघा वृष्ट्यै कदाचिदुद्भूय शाम्यन्ति ॥१९॥
एतत् सर्वं ज्ञातुं भूमौ सूर्य्यं प्रतिष्ठाप्य।
चक्रद्वयप्रभावान् सर्वानर्थान् परीक्षयामासुः ॥२०॥
चक्रद्वयेऽत्र सौरान् रश्मीन् संश्लेष्य विश्लेष्य ।
नाना भावा जनिताः सर्वं विज्ञानमुपलब्धम् ॥२१॥

६. सूर्य-विज्ञान से सम्बद्ध आधिभौतिक सिद्धि

उस चक्र में हजार शंकु लगे थे। उस चक्र के मध्य तीव्र ज्योति प्रकाशित होती थी। इस ज्योति में जो एक हजार विभाग थे, उनमें एक सत्यस्वरूप तथा कामनाओं की पूर्ति करने वाला था ॥१॥

शेष रश्मियाँ आदित्यों, रुद्रों और वसुओं के रूप से तीन भागों में विभक्त थीं। अन्य चक्र में आदित्य-बारह, रुद्र-ग्यारह, और वसु-आठ तथा अश्विनी कुमार (दोनों काल की सन्ध्या)-दो संख्या से तेतीस अंश हैं ॥२॥

उस शंकुसमुदाय में शक्तिवैचित्र्य से उन किरणों से सात वर्ण पृथक्-पृथक् हो जाते थे, जिनसे परस्पर आघात-प्रतिघात रूप कर्म के द्वारा अनेक शक्तियाँ उत्पन्न हो जाती थीं ॥३ ॥

इस प्रकार दो चक्रों के संयोग के परिणामस्वरूप वे किरणें स्वयमेव विभक्त होती हैं और विकासशील होकर वे किरणें उनचास मरुद्गण (वायु) हो जाती हैं ॥४ ॥

ये उनचास मरुत् रूप, रस, गन्धादि गुणों को उत्पन्न करते हैं और उन्हीं से संसार में अनेक प्रकार के प्राणियों के भेद उत्पन्न होते हैं ॥५ ॥

मरुतों के पुनर्विभाजन से एकादश रुद्रों की उत्पत्ति होती है और रुद्रों के विभाजन से द्वादश आदित्यों की उत्पत्ति होती है ॥६ ॥

इन सबका एक ही निवासस्थान इन्द्र (सूर्य) है । वही उनका एक मात्र संचालन करने वाला है और महान् शक्तिशाली है। उसी इन्द्र में आदित्य, रुद्र और मरुत् सभी आश्रित हैं ॥७ ॥

यजुर्वेद में लिखा है-"यथा पृथिवी अग्नि से गर्भित है, तथैव द्युलोक इन्द्र से गर्भित है।" इस प्रकार ऋषिगण इस सूर्य को देख कर कहते हैं ॥८ ॥

यह इन्द्र की आत्मा रूप आयु है। वह इन्द्र ही समस्त प्राणियों में आत्मा रूप से व्याप्त है। यह प्रत्येक तत्त्व में रहता हुआ समस्त देवों और प्राणियों को उत्पन्न करता है ॥९ ॥

प्रत्येक देह में बृहती सहस्र के प्राण, मन और वाक् रूप तीन भेद प्रवृत्त होते हैं जिनमें आयु (आत्मतत्त्व) वहाँ सर्वत्र और सम्यक् रूप से व्याप्त है ॥१० ॥

यह आयु तत्त्व मौलिक प्राण है, जिनसे आदित्यों की उत्पत्ति होती है, उन आदित्यों से आत्मा उत्पन्न होता है, प्रत्येक आत्मा से गौ की उत्पत्ति होती और वह गौ (किरणें) चारों ओर सहस्रों रूपों में प्रवर्तित हो जाती है ॥११ ॥

गौ के योग से एकादश रुद्रों की उत्पत्ति होती है और रुद्र में रुद्र का योग होने से (घात-प्रतिघात अथवा संश्लेष-विश्लेष के योग से) उनचास मरुतों की उत्पत्ति होती है। ॥१२ ॥

इन्हीं मरुतों के संयोगभेद से आठ वसु उत्पन्न होते हैं तथा गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, वाक्, धृति, मति और ध्रुवत्व भी इसी से उत्पन्न होते हैं ॥१३ ॥

इन्हीं की मात्राओं से प्रज्ञान, प्राण और भौतिक तत्त्वों की उत्पत्ति होती है। इन्हीं से धातु, उद्भिज्ज और चेतना रूप तीन भेद प्रकट होते हैं ॥१४ ॥

लोक में जो कुछ भी दिखाई देता है, वह सब धातु, उद्भिज्ज और चेतना से ही तीन भागों में विभक्त होता है और यह सब सूर्य की किरणों से ही उत्पन्न होता है ॥१५ ॥

"निश्चय ही समस्त उत्पन्न होने वाले तत्त्व सूर्य-किरणों से ही उत्पन्न हुए हैं, यह ही समस्त अर्थों का क्रमण करता है।" इस प्रकार वसिष्ठ ऋषि ने समस्त प्राणियों की उत्पत्ति सूर्य से बताई है ॥१६ ॥

द्युलोक स्थित सूर्य में कौन-कौन से पदार्थ हैं, उनसे यह विश्व किस प्रकार उत्पन्न होता है और इस विश्व के ये नाना प्रकार के प्राणी कहाँ से उत्पन्न हुए। यह वायु किस प्रकार

बहती है, किस प्रकार से वायु हीनता को प्राप्त होती है। ये मेघ कहां से वृष्टि करके पदार्थों को उत्पन्न कर के शान्त हो जाते हैं ॥१८-१९॥

इन समस्त रहस्यों को जानने के लिए भूमि पर सूर्य (सूर्यभवन) की स्थापना कर के, चक्रद्वय (दो सूर्यचक्र) के प्रभाव से समस्त तत्त्वों की परीक्षा करते थे ॥२०॥

दो चक्रों में सूर्यरश्मियों के संश्लेषण-विश्लेषण से नाना भावों की उत्पत्ति हुई है, और सम्पूर्ण विज्ञान की उपलब्धि हुई है ॥२१॥

७. सूर्य्यविज्ञानादाध्यात्मिकसिद्धिः ।

संकलितैर्व्यवकलितैरंशुभिरर्था बहिः क्रियन्ते स्म ।
देवानामिदमेव तु विज्ञानं यज्ञयोनिरभूत् ॥१॥
संकलितैर्व्यवकलितैरंशुभिरात्मनि बलं हितं यज्ञात् ।
आत्मा परोक्षदर्शी परोक्षकारी च यज्ञतो भवति ॥२॥
अपि मृतमुज्जीवयते यज्ञात् सिद्ध्यन्ति भुक्तयः सर्वाः ।
या चाष्टयोगसिद्धिः सा यज्ञादात्मनि प्रभवेत् ॥३॥
"अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा ।
प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्ट सिद्धयः" ॥
एतद्यज्ञविधाने यजमाननियुक्त ऋत्विगाख्यातः ।
ऋत्विज ऋषयो ह्यृषिता वैज्ञानिकता हि सूर्य्यविज्ञानात् ॥४॥

७. सूर्यविज्ञान से सम्बद्ध आध्यात्मिक सिद्धि

संकलित और व्यवकलित किरणों से समस्त अर्थों (तत्त्वों) को स्पष्ट किया गया है। देवों का यही विज्ञान है और यह विज्ञान ही यज्ञ का कारण बना ॥१॥

संकलित और व्यवकलित किरणों से ही (आदान-प्रदान क्रिया के फलस्वरूप) आत्मा में बल का आधान होता है। यज्ञ से परोक्ष ज्ञान की प्राप्ति होती है और परोक्षज्ञान की प्राप्ति करने वाला आदान-प्रदान रूप यज्ञ से ही उत्पन्न होता है ॥२॥

यज्ञ से मृत वस्तु को भी जीवित किया जा सकता है और समस्त भोग पदार्थों की सिद्धि होती है और जो अष्ट योगसिद्धि है वह भी यज्ञ से ही आत्मा में उत्पन्न होती है ॥३॥

अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व नाम की आठ सिद्धियाँ हैं। इस यज्ञविधान में यजमान द्वारा नियुक्त ऋत्विज ही प्रमुख होता है। ऋत्विज ही ऋषि होता है और ऋषियों की ऋषिता अर्थात् वैज्ञानिकता सूर्यविज्ञान से ही सिद्ध होती है ॥४॥

८. विज्ञानशीलसूर्य्यप्रतिमायाः प्रतिमाराधनप्रचारमूलबीजत्वम् ।

अतः एव सूर्य्यसदनाद् देवप्रतिमाप्रकल्पनारम्भः।
वेदेऽन्योपि च देवप्रतिमार्चायाः प्रचार आम्नातः ॥१॥
ऋग्वेदसंहितायां चतुर्थमण्डलचतुर्विंशे ।
सूक्ते दशमर्च्यैन्द्र्या मूर्तेः क्रयमाह वामदेव ऋषिः ॥२॥
उत्कृष्टं बहुमूल्यं विक्रीणन् द्रव्यमल्पमूल्येन ।
पूजाफलोपलब्धौ समयं प्रत्यर्पणाय चक्रे सः॥३॥
"भूयसां वस्नमचरत् कनीयोऽविक्रीतो अकानिषं पुनर्यन् ।
स भूयसा कनीयो नारिरेचीद् दीना दक्षा विदुहन्ति प्र वाणम्" ।(४।२४।९)
"क इमं दशभिर्ममेन्द्रं क्रीणाति धेनुभिः ।
यदा वृत्राणि जङ्घनद् अथैनं मे पुनर्ददत्" । (४।२४।१०)
इन्द्रप्रतिमापूजाप्रकारमप्ययमुपादिक्षत् ।
देहोपचारभोगाहवनमनःप्रेमभावनास्तुतिभिः ॥४॥
"आदिद्ध नेम इन्द्रियं यजन्त आदित् पक्तिः पुरोडाशं रिरिच्यात् ।
आदित्सोमो विपपृच्यादसुष्वीनादिज्जुजोष वृषभं यजध्यै" (४।२४।५)
"कृणोत्यस्मै वरिवो य इत्था इन्द्राय सोममुशते सुनोति।
सध्रीचीनेन मनसाऽविवेनं तमित् सखायं कृणुते समत्सु।" (४।२४।६)
"य इन्द्राय सुनवत् सोममद्य पचात् पक्तीरुत भृज्जाति धानाः ।
प्रति मनायोरुचथानि हर्य्यन् तस्मिन्दधद्वृषणं शुष्ममिन्द्रः।" (४।२४।७)
सर्वप्रथमें मन्ये देवयुगे वामदेव एवायम् ।
देवप्रतिमापूजां मानुषलोके प्रचारयामास ॥५॥
यद्यपि ततोपि पूर्वं सारस्वतसूर्य्यसदनेभूत् ।
अपि सूर्य्यचक्रमूर्तेरुपासनारम्भ इत्युक्तम् ॥६॥
किन्त्वासीदिह सेयं विज्ञानार्थैव सूर्य्यचक्रस्य ।
अंशुपरीक्षोपासा दैवप्रतिमार्चना नैवम् ॥७॥
योगस्त्रिधा क्रियाया भक्तेर्ज्ञानस्य भेदेन ।
भक्तेस्ते चत्वारो हठलयवन्मन्त्रराजयोगाख्याः॥८॥
देवप्रतिमायामियमुपासनामन्त्रयोगोऽस्ति ।
योगान्नियमाचरिताद् दैवीं रक्षामपेक्षितां लभते ॥९॥

"को देवानामवो अद्यावृणीते क आदित्यां अदितिं ज्योतिरीहे।
कस्याश्विनाविन्द्रो अग्निः सुतस्यांशोः पिबन्ति मनसाऽविवेनम्।
देवानामिदवो महत् तदा वृणीमहे वयम् ।
वृष्णामस्मभ्यमूतये।" (८।८३।१
इत्थं महर्षयः प्राग् दैवीं रक्षां परामुपादिक्षन् ।
मन्त्राराधितदेवः प्रत्यासन्नो भवन्नवति ॥ १० ॥
यत्र न विज्ञानार्थो न मन्त्रयोगाय वा मनोयोगः ।
सविकल्पकः समाधिर्न यत्र सार्चा वृथा क्रियते ॥११ ॥

८. विज्ञानशाला-स्थित सूर्यप्रतिमा ही मूर्तिपूजा के प्रचार का मूल आधार

इस प्रकार सूर्यसदन से ही देवप्रतिमा की कल्पना का प्रारम्भ हुआ। वेदों में और भी अनेक स्थानों पर देवप्रतिमा के प्रचार का वर्णन किया गया है ॥१ ॥

ऋग्वेदसंहिता के चतुर्थ मण्डल के चौबीसवें सूक्त की दसवीं ऋचा में वामदेव ऋषि ने इन्द्र की मूर्ति के क्रय के संबंध में कहा है ॥२ ॥

उत्कृष्ट और बहुमूल्य वस्तु को अल्प मूल्य में खरीदते हुए पूजा के फल की प्राप्ति होने पर उसने (क्रेता ने) पुनः लौटाने के लिये प्रतिज्ञा की ॥३ ॥

"किसी ने बहुत धन दे कर थोड़ी सी वस्तु प्राप्त की, जब वह वस्तु कहीं बेची नहीं जा सकी तो उसने पुनः जाकर अपना धन मांगा, परन्तु वह बेचने वाला बहुत धन देकर अल्प वस्तु को खरीदने के लिये तैयार नहीं हुआ। असमर्थ और चतुर जो कुछ बोल देते हैं, उसी को प्राप्त करते हैं।" (४।२४।९)

"मेरे इस इन्द्र को दस गायों से कौन खरीद सकता है? हे क्रेताओं, यब वह इन्द्र शत्रुओं को मार देगा तब इस इन्द्र को मुझे वापस कर दें।" (४।२४।१०)

देहोपचार, भोग, आहवन, मनःप्रेम, भावना और स्तुति के द्वारा इन्द्र की प्रतिमा की पूजा के ढंग का भी उपदेश दिया ॥४ ॥

"इसके बाद योद्धागण इन्द्र की शक्ति का यजन करते हैं, इसके बाद पकाने वाला पुरोडाश को पकाता है। तत्पश्चात् सोमयज्ञ करने वाला यज्ञ न करने वाले नास्तिकों को दूर करता है। तब यज्ञ के लिये बलवान् इन्द्र की सेवा करते हैं।" (४।२४।५)

"इस प्रकार जो शुभेच्छु इन्द्र के लिए सोम निचोड़ता है, उसके लिए वह इन्द्र धन देता है। यह इन्द्र उत्तम मन से शुभकामना करता हुआ उसी सोमयज्ञकर्त्ता को मित्र बनाता है।" (४।२४।६)

"आज जो इन्द्र के लिए सोम निचोड़ेगा, पुरोडाश पका कर उसे देगा और धान को भून कर उसे देगा, उसके लिए उत्तम मन वाला इन्द्र स्तोत्रों को सुनता हुआ अत्यन्त बल प्रदान करेगा।" (४।२४।७)

ऐसा मानते हैं कि सर्वप्रथम देवयुग में वामदेव ऋषि ने मनुष्यलोक में देवप्रतिमा की पूजा का प्रचार किया था ॥५॥

यद्यपि उससे भी पूर्व सारस्वत सूर्यसदन में सूर्यचक्र की मूर्ति की उपासना का प्रारम्भ हो गया था, ऐसा कहा गया है ॥६॥

किन्तु यह देवप्रतिमा की पूजा नहीं थी अपितु विज्ञान के लिये सूर्य-चक्र की किरणों की परीक्षा के लिये की जाने वाली उपासना थी ॥७॥

भक्तियोग, ज्ञानयोग और कर्मयोग के भेद से योग तीन प्रकार का है। हठ, लय के समान मंत्र और राजयोग नाम से भक्ति चार प्रकार की होती है ॥८॥

देवप्रतिमा की यह उपासना रूप भक्ति मंत्रयोग है। मंत्रयोग और नियमपूर्वक आचरण से इच्छित रक्षा की प्राप्ति होती है ॥९॥

"आज कौन देवों की रक्षा को वरण करता है ? कौन सूर्य की ज्योति की कामना करता है ? अश्विनी कुमार, अग्नि और इन्द्र किसके द्वारा छाने गए सोम का मन से पान करते हैं ॥

वरणीय तथा बलशाली देवों के महान् संरक्षण की हम अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना करते हैं ॥" (८/८३/१)

इस प्रकार प्राचीन महर्षियों ने पहले दैवी रक्षा को प्राप्त करने का उपदेश दिया। मन्त्र-आराधना से निश्चय ही देव प्रकट होकर रक्षा करता है ॥१०॥

जहाँ न तो विज्ञान ही उद्देश्य है और न हीं मन्त्रयोग अथवा मनोयोग ही उद्देश्य है। जहाँ सविकल्पक समाधि भी नहीं है, ऐसी पूजार्चा व्यर्थ ही की जाती है ॥११॥

९. विज्ञानशालाकर्म्माधिकारितया नियुक्तानां सूर्य्यैतशोषसामितिवृत्तम् ॥

१. सूर्य्योषसोः प्रथमतः सूर्य्यायतनप्रबन्धकर्तृत्वम् ॥

सौरं धामैतद्ध्यधीष्टे दिविष्ठो वागध्यक्षो देवतानां पुरोधाः ।
भूमिष्ठोऽयं तद्वसिष्ठोऽध्यतिष्ठद् बार्हस्पत्यस्तस्य चासीत् सहायः ॥१॥
भरद्वाजश्च शंयुश्च बार्हस्पत्यौ प्रसिद्ध्यतः ।
उभावपि तु पर्य्यायादत्रास्तां सूर्य्यमन्दिरे ॥२॥
यद्यप्यत्रासन् बृहस्पत्यधीना द्रष्टारोऽन्येऽन्ये वसिष्ठादयश्च ।
किन्तु स्थाने नित्यरक्षास्वभूवन् सूर्य्याधीना बह्व्य एवोषसः प्राक् ॥३॥

स्वश्वो नाम बभूव क्षितिपतिरेतस्य पुत्रस्तु ।
सूर्य्य इति स्वं विरुदं सूर्य्योपासकतया जगृहे ॥४॥
स च सौवश्वः सूर्य्यो गन्धर्वः ख्यायते जात्या ।
घोरः प्रगाथ ऊचेऽष्टमादिमैकादशे हि तथा ॥५॥
सूर्य्यायतनाध्यक्षः स हि सूर्य्योऽभूत् सहोषसा पूर्वम् ।
सूर्य्यं च दिवस्पुत्रं विदुरुषसं तां दिवस्पुत्रीम् ॥६॥
वरुणस्य कापि जामिर्भगस्वसाऽसीदुषा इति प्रथिता ।
सूर्य्यायतने सासीदुषसां प्रवरा तु वह्वीनाम् ॥७॥
रक्षति सूर्य्यं सूर्य्यः सोषा आप्तान् जनान् सभाजयति ।
सूर्य्यः सूर्य्यपरीक्षामुषःपरीक्षामुषा जनयेत् ॥८॥

२. इन्द्रक्रोधात् सूर्य्ये निराकृते पश्चादेतशोषसोः सूर्य्यायतनप्रबन्धकर्तृत्वम् ।

सूर्य्येण सख्यमभवद्दस्योः कृष्णस्य लम्पटस्येति ।
सूर्य्यायेन्द्रोऽक्रुद्ध्यत्कृष्णासुरसौहृदाद्धेतोः ॥१॥
अत एवैतशनामा तैर्य्यग्योनोऽश्वजातिः सुष्विः ।
आचक्रमे ग्रहीतुं सूर्य्यं सूर्य्याय दुद्रोह ॥२॥
तत्र च सूर्य्यैतशयोस्तयोः प्रवृत्तेऽत्यभीमर्द्दे ।
आस्कन्दयत् स सूर्य्यस्तमेतशं कृष्णसहयोगात् ॥३॥
तत्र स इन्द्रोऽश्वाभ्यां वातजवाभ्यां समानयत्कुत्सम् ।
अप्रच्छन्नं सूर्य्यं गन्धर्वं छद्मनाऽऽक्राम्यत् ॥४॥
एतशमेतमरक्षत् समरे सूर्य्यं पराभाव्य ।
इन्द्रोऽनुगृह्य तस्मिन् सूर्य्यायतने न्ययुङ्क्तापि ॥५॥
"अस्मा इदुत्यदनुदाय्येषामेको यद् वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्य्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥" (१।६१।१५) नोधागौ.)
"यत् तुदत् सूर एतशं बङ्कू वातस्य पर्णिना ।
बहत्कुत्समार्जुनेयं शतक्रतुस्त्सरद् गन्धर्वमस्तृतम् ॥"
इन्द्रकृतैतशरक्षा चक्रापहृतिश्च सूर्य्यस्य।
तुर्य्ये सप्तदशस्य त्वृच्याम्नाते चतुर्दश्याम्॥६॥

"अयं चक्रमिषणात् सूर्य्यस्य नेतशं रीरमत् ससृमाणम् ।
आकृष्ण ईं जुहुराणो जिघर्त्ति त्वचो बुध्ने रज़सो अस्य योनौ ॥" (४।१७।१४)
नोधा गौतम इव तत् प्रोवाचावस्युरात्रेयः ।
पञ्चम एकत्रिंशस्यैकादश्यामृचि द्वितयम् ॥७॥
"सूरश्चिद्रथं परितक्यायां पूर्वं करदुपरं जुजुवांसम्।
भरच्चक्रमेतशः संरिणाति पुरो दधत् सनिष्यति क्रतुं नः ॥" (५।३१।११)
पञ्चम ऊनत्रिंशे शाक्त्यो यद् गौरवीतिरिन्द्रमिमम्।
महयति यस्मिन्नेतशसंरक्षणमुपदिशत्येषः ॥८॥
"अधकृत्वा मधवन्तुभ्यं देवा अनुविश्वे अददुः सोमपेयम्।
यत्सूर्य्यस्य हरितः पतन्ती पुरः सतीरुपटा एतशे कः ॥" (५।२९।५)

३. एतशस्य मानुषस्याप्याधिदैविकवद् वृतिः ।

संवत्सरे तु कतिधा रथमारूढं स एतशः सूर्य्यम् ।
स्वयमुपबृहन्नुदग् दिशि सीमाप्रान्ते दिवो नयति ॥१॥
"उदुत्यद्दर्शतं वपुर्दिव एति प्रतिह्वरे ।
यदी माशुर्वहति देव एतशो विश्वस्मै चक्षसे अरम् ॥" (७।६६।१४)
अर्थाहरणे कर्म्मणि ये नियता व्यापृता नरा भृतकाः ।
हरितो नरास्त उक्ताः शिरसा रश्मिभिरिमे हरन्त्यर्थान् ॥२॥
इन्द्रश्चक्रं स यदा दिवमनयत् यत्र हरितो नॄन् ।
व्यरमयतेन्द्रो ना त्वयमेतश एकोऽहरच्चक्रम् ॥३॥
"त्वं सूरो हरितो रामयो नॄन् भरच्चक्रमेतशो नायमिन्द्र ।
प्रास्यापारं नवतिं नाव्यनामपि कर्तमवर्तयोऽयज्यून् ॥" (१।१२१।१३)

९. विज्ञानशाला के कार्य के अधिकारी के रूप में नियुक्त सूर्य, एतश और उषा के संबन्ध में आख्यान

१. सूर्य और उषा सूर्यसदन के प्रमुख प्रबन्धकर्त्ता

वाणी के अधिपति और देवों के पुरोहित बृहस्पति द्युलोकस्थित धाम के अध्यक्ष थे। भूलोकस्थित सौर-धाम के अध्यक्ष ऋषि वसिष्ठ थे तथा बृहस्पति के पुत्र भरद्वाज उनके सहायक थे ॥१॥

बृहस्पति के पुत्र और भरद्वाज और शंयु दोनों बारी-बारी से इस सूर्यमन्दिर का प्रबन्ध कार्य करते थे ॥२॥

यद्यपि इस सूर्यसदन में बृहस्पति के अधीन वसिष्ठादि अलग अलग अनेक द्रष्टा (प्रबन्धक) ऋषि थे, किन्तु उस स्थान पर सूर्य के अधीन अनेक उषाएँ नित्य रक्षा का कार्य करती थीं ॥ ३ ॥

स्वश्व नाम का एक राजा हुआ है, इसका पुत्र सूर्य था, जिसने सूर्य की उपासना करने के कारण सूर्य की उपाधि धारण की ॥४ ॥

वह स्वश्व का पुत्र सूर्य जाति से गन्धर्व कहा जाता था, ऐसा घोर प्रगाथ नाम के ऋषि ने अष्टम मण्डल के एकादश सूक्त में कहा है ॥ ५ ॥

पहले वह सूर्य ही उषा के साथ इस सूर्यायतन का अध्यक्ष बना। इसीलिए उस सूर्य को द्युलोक का पुत्र और उषा को द्युलोक की पुत्री के रूप में जाना गया ॥ ६ ॥

वरुण की भगस्वसा नाम की कोई (एक) पुत्री थी, वह उषा नाम से प्रसिद्ध थी । वह उषा सूर्यायतन में स्थित अनेक उषाओं में से श्रेष्ठ थी ॥ ७ ॥

सूर्य नाम का (स्वश्व का पुत्र) व्यक्ति सूर्यसदन की रक्षा करता था और उषा वहाँ आने वाले सम्भ्रान्त लोगों (विद्वान् वैज्ञानिकों) का सत्कार करती थी । सूर्य गन्धर्व सूर्य की परीक्षा करता था और उषा उषस् तत्त्व की परीक्षा करती थी ॥ ८ ॥

२. इन्द्र के क्रोध से सूर्य को निष्कासित किए जाने के पश्चात् उषा का सूर्य-सदन में प्रबन्धकर्तृत्व

कृष्ण नाम के लम्पट दस्यु की सूर्य (सूर्यसदन का अध्यक्ष) के साथ मित्रता हो गई। अतः कृष्णासुर के साथ मित्रता होने के कारण इन्द्र इस सूर्य से क्रुद्ध हो गया ॥ १ ॥

इसलिए तिर्यग् योनि में अश्व जाति के सुष्वि नाम के दृप्त वीर ने सूर्य को बन्दी बनाने के लिए आक्रमण किया और सूर्य से द्रोह कर दिया ॥२ ॥

वहाँ उन सूर्य और एतश में परस्पर विद्रोह हो जाने पर उस सूर्य ने कृष्णासुर के सहयोग से एतश को दबा दिया ॥३ ॥

उस समय वह इन्द्र पवनगति से चलने वाले द्रुतगामी घोड़ों से कुत्स को लाया और अप्रच्छन सूर्य नाम के गन्धर्व पर कपटपूर्वक आक्रमण कर दिया ॥ ४ ॥

इन्द्र ने युद्ध में सूर्य को पराजित करके एतश की रक्षा की और उस पर अनुग्रह कर के एतश को सूर्यायतन का (अध्यक्ष) नियुक्त किया ॥५ ॥

"यह इन्द्र अकेला ही समस्त ऐश्वर्यों का स्वामी है । यह जिस स्तुति की इच्छा करता है, उसी स्तुति को स्तोतागण इन्द्र के लिए गाते हैं। इन्द्र ने स्वश्व के पुत्र सूर्य के साथ युद्ध करते हुए सोमयागी एतश ऋषि की रक्षा की ॥" (१ । ६१ । १५)

"जब सूर्य ने वायु के वक्र गति वाले पत्तों से एतश नाम के मेघ (घोड़े) को झकझोरा, तब शतक्रतु इन्द्र अर्थात् विद्युत् अत्यन्त देदीप्यमान प्रकाश को ले गया और तब किसी से हिंसित न होने वाले मेघ के पास पहुँचा ॥"

इन्द्र द्वारा की गई एतश की रक्षा और सूर्यचक्र की अपहृति का ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल के सप्तदश सूक्त की चतुर्दश संख्या की ऋचा में वर्णन किया गया है ॥६॥

"इस इन्द्र ने सूर्यचक्र को प्रेरित किया और युद्ध के लिए आते हुए एतश को लौटा दिया। टेढ़े-मेढ़े चलने काले मेघ अन्तरिक्ष में इस इन्द्र को धारण करते हैं ॥ (जब काले बादलों में सूर्य की किरणें प्रवेश करती हैं, तो परस्पर घर्षण होता है, तब इन्द्र (ज्योति) की उत्पत्ति होती है) ॥" (४।१७।१४)

नोधा गौतम की तरह आत्रेय-अवस्यु ने भी पंचम मण्डल के इकत्तीसवें सूक्त की एकादश संख्या की ऋचा में कहा है ॥७॥

"पूर्व में इन्द्र ने सूर्य से भी अधिक वेगवान् रथ को युद्ध में गतिहीन कर दिया था। उसने एतश के चक्र को छीन कर शत्रुओं का संहार किया था । ऐसा वह इन्द्र हमारी वृद्धि करता हुआ हमारे यज्ञ का सेवन करे ॥" (५।३१।११)

पंचम मण्डल के उनतीसवें सूक्त में शाक्त्य गोरवीति ने इन्द्र की महिमा का गान किया है, जिसमें इन्होंने एतश की रक्षा का उल्लेख किया है ॥८॥

"हे इन्द्र ! तूने जब आगे बढ़ती हुई सूर्य की किरणों को एतश की रक्षा के लिए गतिहीन कर दिया, तब हे मघवन् ! तेरे इस कर्म से प्रसन्न होकर समस्त देवों ने तुझे पीने के लिए सोम प्रदान किया ॥" (५।२९।५)

३. मनुष्य होते हुए भी एतश की अधिदैवत के समान वृत्ति

वह एतश वर्ष में कितनी बार (अनेक बार) रथ पर आरूढ़ सूर्य को स्वयं उसका वर्धन करते हुए उत्तर दिशा की सीमा प्रान्त में द्युलोक (भौम स्वर्ग) में ले गया ॥१॥

"यह दर्शनीय सूर्य का मण्डल द्युलोक के प्रान्त भाग में उदय ले रहा है । यह सूर्य सम्पूर्ण विश्व को दिखने में समर्थ है, ऐसे इस सूर्य को किरणें गतिमान् बनाती हैं ॥" (७।६६।१४)

अर्थसंग्रह के कार्य में जो सेवक जन नियुक्त किए गये थे, वे लोग हरित नाम से कहे जाते थे और किरण रूप मस्तक से भौतिक तत्त्वों का हरण करते थे । (सूर्य की रश्मियाँ ही सूर्य के हरित नाम के घोड़े हैं और ये रश्मियां संसार के समस्त तत्त्वों का तथा काल-चक्र का हरण करती हैं) ॥२॥

जब वह इन्द्र उस सूर्य-चक्र को द्युलोक में ले गया, तब वहाँ इन्द्र ने उन हरित नाम से कहे जाने वाले मनुष्यों को रोक दिया और यह एतश अकेला ही उस चक्र को ले गया ॥३॥

"हे इन्द्र ! इस देदीप्यमान सूर्य के समान मनुष्यों की हितसाधिका किरणों को तू प्रकट करता है। इन्द्र के रथ का चक्र सदैव चलता रहता है। यज्ञ न करने वालों को नावों से पार करने योग्य नब्बे नदियों के पार फेंक कर तूने बड़ा उपकार किया है ॥"(१।१२१।१३)

४. एतशाश्वकृतपरीक्षा।

सूर्य्यसंस्थाननियुक्तः स एतशः सूर्य्यमन्वीक्ष्य ।
आयुर्ददर्श सम्यक् सूर्य्यादध्यात्ममुपसृप्तम् ॥१॥
*वरुणस्य राजधान्यां बाह्लीके भृगुमहर्षिरभूत् ।
भृगुवंश्य एतशोऽयं कौषीतकिनोदितस्त्रिंशे ॥२॥
अपि चैतरेय ऊचे त्रिंशाध्याये त्रयस्त्रिंशे ।+ (३।३३)
एतश आयुरपश्यच्छन्दांस्यप्येतशप्रलाप इति ॥३॥

सूर्यस्थान में नियुक्त उस एतश ने सूर्य का अन्वेक्षण कर के आयु तत्त्व को भली प्रकार से देखा । सूर्य से अध्यात्म (शरीर) में आते हुए सूर्य प्राण को देखा ।१॥

* वरुण की राजधानी बाह्लीक में भृगु नाम के महर्षि हुए हैं और यह एतश भृगुवंशी था, ऐसा कौषीतकियों ने तीसवें काण्ड में कहा है ॥२॥

+ ऐतरेय ब्राह्मण के तीसवें काण्ड के तेतीसवें अध्याय में भी कहा गया है, जिसके अनुसार एतश ने आयुस्तत्त्व को भली प्रकार देखा और उसने अहोरात्रवृत्त रूप छन्द के सम्बन्ध में भी वर्णन किया है ॥३॥

---

* "एतशो ह वै मुनिर्यज्ञस्यायुर्ददर्श । स ह पुत्रानुवाच । पुत्रका यज्ञस्यायुरदर्शम् । तदभिलपिष्यामि। मा मा दृप्तं ते ह तथेत्यूचुः तद्धाभिललाप । तस्य ह ज्येष्ठः पुत्रोभिसृप्य मुखमपि जग्राह—अदृपद्वै नः पितेपि । तं होवाच—अयनश्याधिक्त्वा जाल्मास्तु । पापिष्ठां ते प्रजां करोमि । यद्वै मे जाल्मसुखं नाप्यगृहीष्यः । शतायुषं गामकरिष्यं सहस्रायुषं पुरुषमिति । तस्मादैति शायना आजेनेयाः सन्तो भृगूणां पापिष्ठाः । पित्रा हि शप्ताः स्वया देवतया, स्वेन प्राजापतिना" (इति कौब्रा. ३०।५)

+ (१) "एतशो ह वै मुनिरग्नेरायुर्ददर्श। यज्ञस्यायातयाममिति हैक आहुः । स प्रत्यपद्यत। एता अश्वा आप्लवन्ते प्रतीपं प्रतिसस्वनमिति॥" (ऐ. ब्रा. ३०।३३)
(२) "सर्वाणि छन्दांस्यैतशप्रलापः । छन्दसां हैष रसो यदैतशप्रलापः । अयातयामा वा अक्षितिरैतशप्रलापः।" (ऐ. ब्रा. ३०।३३)

* एतश नाम के ऋषि ने यज्ञ की आत्मा को पहचाना। उन्होंने पुत्रों से कहा-पुत्रों! मैने यज्ञ की आयु को देखा है। अतः वह मैं तुमसे कहूँगा। पुत्रों ने कहा-नहीं नहीं, आप गर्व मत करो, आप वृथा प्रलाप करते हो। उनके ज्येष्ठ पुत्र ने आगे बढ़ कर उनका मुख पकड़ लिया और कहा-आपने अभिमान किया है। तब भृगु ने पुत्र से कहा-तुम कपटी हो, तुम्हारी अनीति सीमातीत है। मैं तुम्हारी प्रजा (सन्तान) को कष्ट में डाल दूँगा। यदि तुम कपटी लोगों ने मेरा मुख बन्द न किया होता तो मैं गायों को शतायु कर देता और पुरुषों को सहस्रायु कर देता । इसलिए तुम भृगुओं के प्रति पाप करने वाले हो। वे इस प्रकार अपने पिता रूप देवता के समान प्रजापति के द्वारा शापित हुए ॥ (क्रौ. ब्रा. ३०।५)

+ "एतश नाम के मुनि ने अग्नि की आत्मा को पहचाना । उसने अग्नि रूप यज्ञ की नवीन स्थिति को कहा । उसने यह स्वीकार किया कि ये छन्द रूप अश्व लोक में सर्वत्र दौड़ रहे हैं ॥" (ऐ. ब्रा. ३०/३३)

१०. अहोरात्रवृत्तानां छन्दःसंज्ञानामेतशनाम्ना विवक्षितानां सूर्य्याश्वत्वम्। तत्परीक्षकत्वात् सुष्विराजस्य मनुष्यस्याप्येतशत्वम् ।

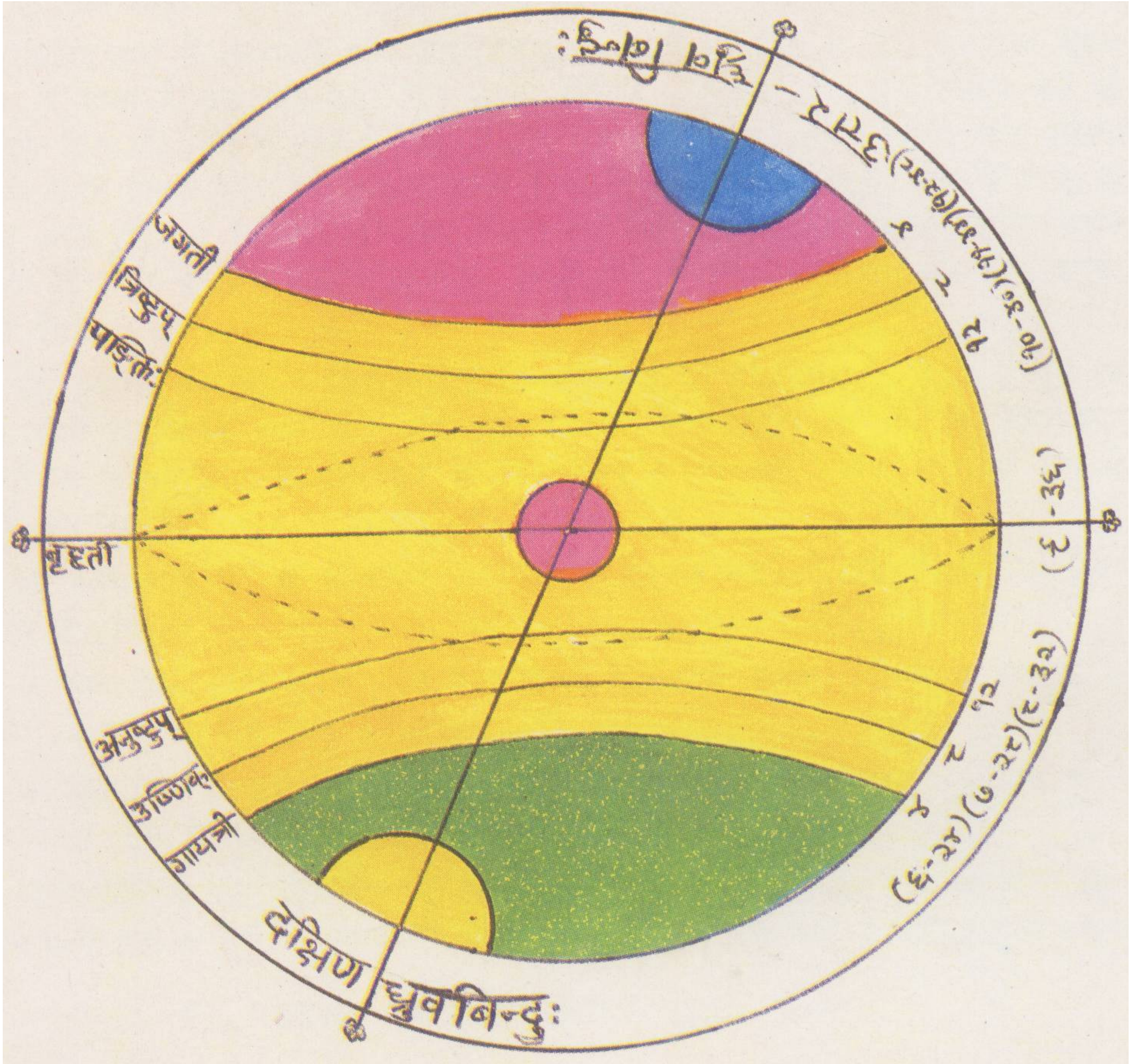
प्रजापतेः सूर्य्यसतोऽक्षि पृथ्वयां यदश्वयत् सोऽश्व इति प्रसिद्धः ।
स सप्तसंस्थो विषुवाध ऊर्ध्वप्रदेशभेदाहिह सूर्य्यदृष्टेः ॥१॥
विषुवन्मण्डलोऽर्वाक् त्रीणि त्रीण्येव तूदक् च ।
सन्ति समानान्तरवत् कृतान्यहोरात्रवृत्तानि ॥२॥
सप्तानामपि तेषां गायत्र्युष्णिक् तथाऽनुष्टुप् ।
बृहती पंक्तिस्त्रिष्टुप् जगतीति च सन्ति नामानि ॥३॥
गायत्र्यामुदगयनं दक्षिणमयनं जगत्यां स्यात् ।
रात्र्यहनी तु समाने भवतः सूर्य्ये बृहत्यां चेत् ॥४॥
यावान् सप्तच्छन्दोभिरवच्छिन्नो दिवः प्रदेशोऽयम् ।
सूर्य्यरथं तं ब्रूमः सप्ताश्वं चैकचक्रं च ॥५॥
यद् भास्वद्गतिवर्म्म प्रसिद्ध्यति क्रान्तिवृत्ताख्यम् ।
रथचक्रं तद् ब्रूमस्तत्सयुजः सन्ति सप्ताश्वाः ॥६॥
एषा वै परिभाषा पशवश्छन्दांसि देवानाम् ।
शतपथचतुर्थकाण्डे तार्तीयकपञ्चेऽधीता ॥७॥ (४।३।५।११)
सप्तच्छन्दांस्यश्वाः सप्तमुखो वा स एक एवाश्वः ।
एतशमेतं ब्रुवते एतश एतं ददर्श सम्यगृषिः ॥८॥
तिर्य्यग्योनावश्वयोनिर्य आसीत् कश्चिद्वर्गस्तस्य राजैव सुष्विः ।
सूर्य्यस्याश्वं यद्ददर्शैताख्यं तस्मादेषोऽप्येतशोऽभूत् प्रसिद्धः ॥९॥

१०. एतश नाम से विवक्षित छन्दःसंज्ञक अहोरात्र वृत्तों का सूर्य का अश्वत्व होना । उस एतश की परीक्षा करने के कारण सुष्विराज का मनुष्य होते हुए भी एतशत्व-कथन ।

सूर्य रूप प्रजापति की व्याप्ति को जिस ऋषि ने पृथिवी पर चारों ओर प्रसिद्ध किया, वह ऋषि भी अश्व नाम से प्रसिद्ध हो गया। यह क्रान्तिवृत्त सूर्य की स्थिति के आधार पर विषुवत् रेखा के नीचे और ऊपर सात छन्दों के भेद से सात भागों में विभक्त है ॥१॥

विषुवत् मण्डल से नीचे दक्षिण की ओर तीन छन्द (गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप्) और उत्तर की ओर तीन छन्द (पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती) हैं जो समानान्तर में अहोरात्र वृत्त की रचना करते

सप्ताहोरात्रवृत्त



विष्वद्वृत्त से उत्तर की ओर पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती नाम के तीन पूर्वापर वृत्त माने गये हैं। इसी प्रकार दक्षिण की ओर अनुष्टुप्, उष्णिक् और गायत्री नाम के तीन पूर्वापर वृत्त माने गये हैं। सातवाँ प्रतिष्ठारूप स्वयं विष्वद्वृत्त है, यही बृहती छन्द है। ये सातों अहोरात्र वृत्त 360+360=720 अहोरात्र के जनक हैं। अतएव इन्हें ''अहोरात्रवृत्त'' कहा जाता है। उक्त सात छन्द पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती क्रमशः 10, 11, 12 और इसी प्रकार अनुष्टुप्, उष्णिक् और गायत्री छन्द क्रमशः 8, 7, 6 अक्षर संख्याओं से विभक्त है। प्रतिष्ठारूप बृहती छन्द 9 अक्षर संख्या का छन्द है।

हैं। (विषुवत् नाम से प्रसिद्ध बृहती छन्द के दक्षिण भाग में क्रमशः गायत्री, उष्णिक् और अनुष्टुप् नाम के तीन छन्दों की सत्ता है। ये छन्द क्रमश ६, ७, ८ और १०, ११, १२ अक्षर के छन्द हैं और मध्य में बृहती छन्द है ॥१२॥

इन सात छन्दों के नाम हैं-गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती ॥३॥

गायत्री छन्द में उत्तरायण और जगती छन्द में दक्षिणायन होता है तथा सूर्य जब बृहती छन्द में होता है तब रात्रि और दिन समान होते हैं। (गायत्री छन्द सूर्य-संक्रमण-वृत्त की दक्षिण. दिशा के अन्त में होता है, जहां से सूर्य २२ दिसम्बर को अपनी दक्षिण यात्रा समाप्त करके उत्तर दिशा में लौटना प्रारम्भ करता है, यही दक्षिणायन है। इस यात्रा में उत्तर की ओर जाते हुए २३ दिसम्बर को तथा दक्षिण की ओर जाते हुए २१ मार्च को सूर्य मध्य बिन्दु पर होता है और यही मध्य बिन्दु बृहती छन्द है, जिस पर रात्रि और दिन बराबर होते हैं ॥४॥

इस द्युलोक का जितना प्रदेश गायत्र्यादि सात छन्दों से अवच्छिन्न है, उसे हम सूर्य का रथ कहते हैं, जिसके सात घोड़े और एक चक्र हैं। (सूर्य अपने क्रान्तिवृत्त पर जिन सात छन्दों पर भ्रमण करता है, वही सूर्य के सात अश्व हैं तथा यह सम्पूर्ण परिभ्रमण वृत्त ही सूर्य का रथ है) ॥५॥

क्रान्तिवृत्त नाम का जो परिभ्रमण मार्ग है, उसे रथचक्र कहते हैं, जिसमें छन्द रूप सात अश्व हैं ॥६॥

ये सात छन्द ही देवों के सात पशु बताए गए, ऐसा शतपथ के तृतीय प्रपाठक के पंचम अध्याय में पढ़ा गया है ॥७॥

ये सात छन्द ही सूर्य के सात अश्व हैं अथवा वह (सम्पूर्ण क्रान्तिवृत्त रूप) एक अश्व को एतश नाम के ऋषि ने भली प्रकार देखा है ॥८॥

तिर्यग्योनि में जो अश्वयोनि था, उसके किसी वर्ग का यह सुष्वि नाम का राजा था। इसने एतश नाम के सूर्य के अश्व को देखा इसीलिए यह एतश नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥९॥

११. उषसः सूर्य्यायतनस्थाया ब्रहवः प्रभेदाः ।

आसन्नुषसी बह्व्यः पर्य्यायेणात्र कर्मकारिण्यः।
तासामेका सूर्य्यायतनस्था सूनरी नाम ॥१॥
प्रागुदयादिह चक्रे केतौ चित्रा प्रभोदेति ।
तां सूनरी ह्युपास्ते नाखिलभास्ते तु साऽभास्ति ॥२॥
योषा सूर्य्यसदेशे नक्तं शेते विभावरी सोक्ता ।
सैव पुनः स्यादहना प्रातर्यात्रां प्रकुर्वाणा ॥३॥
अहना चरति गवाश्वोपेतं वाजं प्रयच्छन्ती ।
दिवि तु भुवनस्य पत्नी याति मनुष्येषु मानुषीनाम्ना ॥४॥

पञ्चक्षितिषु सरन्ती यतस्ततः पुंश्चली भवत्वेषा ।
तेन भुवनस्य पत्नीत्यहना सा या दिवि क्रमते ॥५॥
अपि सा सर्वाध्यक्षा तेन च भुवनस्य पत्नी सा ।
यो विश्वकर्म्मजनको भुवनः सा तस्य पत्नी वा ॥६॥
सूर्य्यस्यैका योषा तामाहुर्वाजिनीवतीं नाम्ना ।
स हि गन्धर्वः सूर्यः सूर्य्यायतनेऽधिकारवानासीत् ॥७॥
स्वर्ग्यधनाढ्यैर्वसुभिः काले काले प्रदीयमानस्य ।
क्रोशं धनस्य रक्षति या सा चित्रा मघा नाम ॥८॥
ते वह्न्यो वहन्ति तु ये संभारान् कुतश्चिदन्यत्र ।
वह्नी नामाध्यक्षा काचिदुषा सा मघोन्याख्या ॥९॥
ऋषयस्तु सूर्य्यरश्मीन् परीक्षितुं येऽत्र समवयन्त्यसकृत् ।
तेषां परिचर्य्यायां जरयन्ती नाम काचिदुषा ॥१०॥
विश्वपिशेति तृतीया कृतं पदं सायणः प्राह ।
अथवा विश्वपिशा सा या बहुरूपा रथेनैति ॥११॥
मधुधा च रोचनान्या ऋतावरी रेवती चान्या ।
इत्थं बहवो भेदा आसन्नुषसो दिवस्पुत्र्याः ॥१२॥
एताः कर्मनियुक्ता उषसः कर्म्माख्यया ख्याताः ।
इतरा विश्राम्यन्तः सर्वा भद्राभिधानाः स्युः ॥१३॥
उषसः सर्वा आसन् प्रसन्नहृदयाः सदा हसद्वदनाः ।
मधुभाषिण्यः प्रेम्णा कर्षन्त्यश्चारुसर्वाङ्ग्यः ॥१४॥

११. सूर्यायतन-स्थित उषाओं के अनेक भेद

वहाँ बारी-बारी से कार्य करने वाली अनेक उषाएँ थीं, जिनमें से सूर्यायतन में स्थित एक सूनरी नाम की उषा थी ॥१॥

उदयं से पूर्व उस चक्र के शीर्ष भाग में विचित्र प्रभा उदय लेती है। सूनरी नाम की उषा इस विचित्र प्रभा के समीप रहती है, परन्तु सूर्य के पूर्ण प्रकाशित होने पर वह विचित्र प्रभा अथवा चित्रा की आभा विद्यमान नहीं रहती है ॥२॥

सूर्यस्थान पर जो उषा रात्रि में शयन करती थी वह विभावरी नाम से कही जाती थी। वही विभावरी प्रातःकाल की यात्रा करती हुई अहना नाम से कही जाती है ॥३॥

यह अहना नाम की उषा गायों और घोड़ों से युक्त अन्न प्रदान करती हुई द्युलोक में भुवन की पत्नी और मनुष्यों में मानुषी नाम से कही जाती है ॥४॥

यह उषा यत्र-तत्र पांच क्षितियों (चन्द्रमाँ, पृथ्वी, सूर्य, परमेष्ठी और स्वयंभू प्रजापति) पर विचरण करती हुई पुंश्चली नाम की हो जाती है। इस प्रकार वह अहना नाम की उषा द्युलोक में विचरण करती है, इसीलिए भुवन की पत्नी कहलाती है ॥५॥

यह अहना समस्त उषाओं की अध्यक्षा भी है इसलिए भी भुवन की पत्नी कही जाती है अथवा जो समस्त कर्मों का उत्तपत्तिकर्त्ता भुवन है, वह अहना उस भुवन की पत्नी है ॥६॥

सूर्य (सूर्य नाम का गन्धर्व) की एक पत्नी है, जिसको वाजिनीवती के नाम से कहा जाता है। यह सूर्य एक गन्धर्व है, जो सूर्यायतन में अधिकारवान् था ॥७॥

स्वर्ग में ऐश्वर्यों से जो धनाढ्य जन हैं, उनके द्वारा समय समय पर दिए जाने वाले धन की जो रक्षा करती है, वे विचित्र और मघा नाम की उषाएँ हैं ॥८॥

जो वाह्नियों को ले जाती है और जो वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाती है, वह वह्नि नाम की अध्यक्षा उषा मघोनी नाम से कही जाती है ॥९॥

सूर्यरश्मियों की परीक्षा करने के लिए यहाँ ऋषिगण अनेक बार एकत्रित होते थे, उनकी परिचर्चा करने वाली कोई जरयन्ती नाम की उषा थी ॥१०॥

सायण ने कहा है कि विश्वपिशा शब्द तृतीया के लिए प्रयुक्त किया गया है, परन्तु विश्वपिशा वह उषा भी है, जो अनेक रूपों वाले रथ से जाती है ॥११॥

मधुधा, रोचना, ऋतावरी और एक रेवती, इस प्रकार द्युलोक की पुत्री उषाओं के अनेक भेद थे ॥१२॥

ये उषाएँ जिस कार्य में नियुक्त थीं, वे उसी कर्म के नाम से कही जाती थीं और दूसरी जो विश्राम करने वाली उषाएँ थीं, वे भद्रा नाम से कही जाती थीं ॥१३॥

ये सभी उषाएँ प्रसन्नचित्त और सदैव हंसमुख रहती थीं। ये उषाएँ मधुर वचन बोलने वाली थीं और आकर्षित अंगों वाली उषाएँ प्रेम से सबको आकर्षित करती थीं ॥१४॥

१२. उषसो मानुष्या अप्याधिदैविकवद् वृत्तिः ।

सूर्य्योदयादेव रथं हिरणमयं सारुह्य दूरानभियाति मानुषान् ।
अध्यासितं तत्सहचारि दैवतैः शतं रथानामनुयापि पृष्ठतः ॥१॥
वाजैश्च पूर्णं वसुभिश्च भूरिभिर्नयन्त्यनोऽश्वानपि गाश्च भूयसीः ।
सूर्य्यप्रसादोपहृतान् विभाजयत्यर्थानिमान् प्राणिजने दिने दिने ॥२॥
गृहे गृहे संप्रचरन्त्यनातुरा समीक्ष्य सा दीनजनान् नवान्नवान् ।
तेभ्यः प्रयच्छत्यहना यथोचितं धनानि वाजानपि गाश्च वाजिनः ॥३॥
या द्वेषिणोऽन्योन्यविरोधिनो जनान् प्रवृज्य धत्ते सुभगाऽतिसौभगम् ।
तां भासमानामभिलाषपूरणीं विश्वं जगद् द्रष्टुमिमां ननाम ह ॥४॥

चित्रं तु वाजं प्रविभज्य मानुषे जनेन्तरिक्षं च कदाप्युपेत्य सा ।
विश्वांश्च देवानिह सोमपीतये संतर्पणायाह्वयति स्म दक्षिणा ॥५॥
संयाति सूर्य्यायतनादितस्ततस्त्रिंशत्समन्तादिह योजनानि सा ।
पुंसां समक्षं चरतीयमत्र सा निवर्तते नित्यमुपह्वराद् दिवः ॥६॥
या चाद्य विश्राणयते धनान्नं रथेन गत्वोषसि मानुषेभ्यः ।
निवृत्त्य विश्राम्यति सा परेद्युः पराऽहना याति रथेन दातुम् ॥७॥
उषसो या मे दानं विशेषपुण्यातिशयकृत् स्यात् ।
इत्येव घोषयन्ती ददात्युषा उषसि कण्व इत्याह ॥८॥

१२. उषाओं की मानुषी होते हुए भी आधिदैविक उषाओं के समान वृत्ति

सूर्योदय से ही यह उषा हिरण्मय रथ पर आरूढ होकर दूर मनुष्यों के पास जाती है। उसके सहचारी देवों के द्वारा अधिष्ठित सौ रथ उसके पीछे-पीछे चलते हैं ॥१॥

वह उषा घोड़ों और विपुल धनों से पूर्ण गाड़ियों, घोड़ों और बहुत सी गायों को ले जाती है। इस प्रकार ये सूर्य की कृपा से लाये गये अर्थों को प्रतिदिन प्राणियों में बांटती हैं ॥२॥

यह अहना नाम की उषा धैर्यपूर्वक घर-घर विचरण करती हुई दीन जनों को और नवीन अन्न से युक्त जनों को देखकर उन्हें यथोचित धन, अन्न, गायें और घोड़े प्रदान करती है ॥३॥

जो द्वेष करने वाले और विभिन्न विरोधी लोग हैं, उनको छोड़ कर यह सुभगा नाम की उषा अत्यन्त सौभाग्य को धारण करती है, ऐसी उस प्रकाशवती और अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली को हम समस्त संसार को देखने के लिए नमस्कार करते हैं ॥४॥

वह दक्षिणा उषा मनुष्य जनों में विचित्र अन्न को बांटकर, कभी भी अन्तरिक्ष में पहुँच कर समस्त देवगणों को सोमपान करने के लिए और उन्हें तृप्त करने के लिए बुलाती है॥५॥

यह उषा सूर्यायतन से इधर-उधर चारों ओर तीस योजन की दूरी पर लोगों के समक्ष विचरण करती हुई प्रतिदिन नीचे से ऊपर द्युलोक में लौट जाती है ॥६॥

और जो उषा मनुष्यों को धन और अन्न बांट देती है, तब वह रथ से पुनः लौट कर विश्राम करती है। दूसरे दिन वह अहना नाम की उषा रथ से धनादि देने के लिए जाती है ॥७॥

जो उषा मुझे विशेष रूप से अतिशय पुण्य करने वाले दान की घोषणा करती हुई दान देती है। ऋषि कण्व ने ऐसा उषा के संबन्ध में कहा है ॥८॥

१३. विश्वामित्रो महर्षिरुषसं स्तौति ।३।६१।१-७

पञ्चनदाख्ये देशे विश्वामित्रो महर्षिरासीत् प्राक्।
एष सुदासो राज्ञः पुरोहितः स्तौति तामुषसम् ॥१॥
"३/६१ उषो वाजेन वाजेनि प्रचेताः स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि।
पुराणी देवि युवतिः पुरन्धिरनुव्रतं चरसि विश्ववारे ॥१॥
उषो देव्यमर्त्या विभा हि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णाः पृथपाजसो ये॥२॥
उषः प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः ।
समानमर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्व ॥३॥
अवस्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी ।
स्वर्जनती सुभगा सुदंसा आन्ताद्दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः ॥४॥
अच्छा वो देवीमुषसं विभातीं प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम् ।
ऊर्ध्वं मधुधा दिवियाजो अश्रेत्प्ररोचना रुरुचे रण्वसंदृक् ॥५॥
ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या रेवती रोदसी चित्रमस्थात् ।
आयातीमग्न उषसं विभातीं वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणः ॥६॥
ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन्वृषा मही रोदसी आविवेश ।
मही मित्रस्य वरुणस्य माया चन्द्रेव भानुं पुरुत्रा ॥७॥"

१३. ऋग्वेद के ३/६१ में ऋषि विश्वामित्र उषा की स्तुति करते हैं

प्राचीन समय में पंचनद (पंजाब) नाम के प्रदेश में विश्वामित्र नाम के महर्षि हुए थे, जो राजा सुदास के पुरोहित थे। वह उषा की स्तुति करते हैं ॥१॥

"हे अन्न के साथ रहने वाली, धन से परिपूर्ण रहने वाली उषा ! तू ध्यान युक्त होती हुई स्तुतिकर्ताओं की स्तुति का श्रवण कर। हे विश्व द्वारा वरण करने योग्य देवि उषा! तू प्राचीन होते हुए भी नवीन है, बुद्धिशालिनी और अपने नियमों का पालन करने वाली है ॥१॥

चन्द्रमा के समान सुन्दर रथ में बैठने वाली, मधुर वाणी को प्रेरित करने वाली, अमर स्वरूपधारिणी उषा ! तू तेजस्विनी हो। जो हिरण्यवर्णा है, विशेष बलशालिनी है, ऐसी तुझे स्वतंत्र घोड़े यहाँ ले आवें ॥२॥

हे उषा ! समस्त भुवनों के सम्मुख अमृत की पताका है, तू उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित है। हे उषा ! तू नवीना और तरुणी है। तू एक ही ध्येय के लिए चक्र के समान विचरण करने वाली है, तू पुनः विचरण कर ॥३॥

यह उषा ज्योति किरण के समान अन्धकार को दूर करने वाली है, ऐश्वर्यशालिनी है, यह उषा सूर्य की पत्नी है, यह विचरण करती है। यह उषा प्रकाश को उत्पन्न करने वाली है। यह सौभाग्यशाली और सुन्दर है, द्युलोक और पृथिवीलोक के अन्त तक प्रकाश फैलाने वाली है ॥४॥

हे स्तुतिकर्ताओ ! यह उषा आप सबके सम्मुख ज्योति उत्पन्न करने वाली है। तुम सब नमस्कारपूर्वक इसकी स्तुति करो। यह मधुरता को धारण करने वाली है, द्युलोक में उच्च भाग पर अपना तेज स्थापित करती है। सुन्दर दर्शन वाली, तेजस्विनी उषा का प्रकाश व्याप्त हो रहा है ॥५॥

सत्य का पालन करने वाली तथा द्युलोक में अपनी किरणों को फैलाने वाली यह उषा पहचानी गई है। धन से सम्पन्न यह उषा द्यावापृथिवी पर विचित्र शोभा को स्थापित कर रही है। हे अग्नि ! सामने आती हुई प्रकाश से युक्त उषा के प्रति स्वीकार करने योग्य धन की मांग करता हुआ तू जाता है ॥६॥

बलवान् सूर्य दिन के प्रारम्भ में उषाओं को प्रेरित करता हुआ इस विशाल द्यावा पृथिवी में प्रविष्ट हुआ है। मित्र और वरुण की यह महान् शक्ति सुवर्णवर्णा, देदीप्यमान उषा के समान सूर्य के चारों ओर फैलाती है ॥" ॥७॥ (३।६१)

१४. वसिष्ठो महर्षिरुषसं स्तौति ।

अस्तु वसिष्ठो राज्ञो वरुणस्यासीत् पुरोहितः पूर्वम् ।
पश्चात्सूर्य्यायतने नियुक्त आसीत् स चोषसं स्तौति ॥१॥
"७/७५ व्युषा आवो दिविजा ऋतेनाविष्कृण्वाना महिमानमागात् ।
अपद्रुहस्तम आवरजुष्टमङ्गिरस्तमापथ्या अजीगः ॥१॥
महेनो अद्य सुविताय वोध्युषो महे सौभगाय प्रयन्धि ।
चित्रं रयिं यशसं धेह्यस्मे देवि मर्तेषु मानुषि श्रवस्युम् ॥२॥
एते त्ये भानवो दर्शतायाश्चित्रा उषसो अमृताश्च आगुः ।
जनयन्तो दैव्यानि व्रतान्यापृणन्तो अन्तरिक्षा व्यस्थुः ॥३॥
एषा स्या युजाना पराकात्पञ्च क्षितिः परि सद्यो जिगाति ।
अभिपश्यन्ती वयुना जनानां दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी ॥४॥
वाजिनीवती सूर्य्यस्य योषा चित्रा मघा राय ईशे वसूनाम्।
ऋषिष्टुता जरयन्ती मघोन्युषा उच्छति वह्निभिर्गृणाना ॥५॥
प्रति द्युतानामरुषासो अश्वश्चित्रा अदृश्रन्नुषसं वहन्तः ।
याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन दधाति रत्नं विधते जनाय ॥६॥

सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता यजत्रैः ।
रुजदृढाहानि ददद्रुस्त्रियाणां प्रतिगाव उषसं वावशन्त ॥७॥
नूनो गोमद्वीर वद्धे हि रत्नमुषो अश्वावत्पुरु भोजो अस्मे ।
मानो बर्हिः पुरुषता निदेकर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः" ॥८॥
७।७६ उदु ज्योतिरमृतं विश्वजन्यं विश्वानरः सविता देवो अश्श्रेत् ।
क्रत्वा देवानामजनिष्ट चक्षराविरकर्भुवनं विश्वमुषाः ॥१॥
प्रमे पन्था देवयाना अदृश्रन्नमर्धन्तो वसुभिरिष्कृतासः ।
अभूदु केतुरुषसः पुरस्तात्प्रतीच्यागादधिहर्म्येभ्यः ॥२॥
तानीदहानि बहुलान्यासन् या प्राचीनमुदिता सूर्य्यस्य ।
यतः परिजार इवा चरन्त्युषो ददृक्षे न पुनर्यतीव ॥३॥
त इद्देवानां सधमाद आसन्नृतावानः कवयः पूर्व्यासः।
गूढं ज्योतिः पितरो अन्वविन्दन्त्सत्यमन्त्रा अजनयन्नुषासम् ॥४॥
समान ऊर्वे अधिसङ्गतासः सं जानते न यतन्ते मिथस्ते।
ते देवानां न मिनन्ति व्रतान्यमर्धन्तो वसुभिर्यादमानाः ॥५॥
प्रति त्वा स्यौमैरीडते वसिष्ठा उषर्बुधः सुभगे तुष्टुवांसः।
गवां नेत्री वाजपत्नी न उच्छीषः सुजाते प्रथमा जरस्व ॥६॥
एषा नेत्री राधसः सूनृतानामुषा उच्छन्तीरिभ्यते वसिष्ठैः।
दीर्घश्रुतं रयिमस्मे दधाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥
७।७७ उषो रुरुचे युवतिर्न योषा विश्वं जीवं प्रसुवन्ती च रायै।
अभूदग्निः समिधे मानुषाणामर्कज्योतिर्बाधमाना तमांसि ॥१॥
विश्वं प्रतीची स प्रथा उदस्थाद्रुसद्वासो विभ्रती शुक्रमश्वैत् ।
हिरण्यवर्णा सुदृशी कसन् दृग्गवां माता नेत्र्यह्नामरोचि ॥२॥
देवानां चक्षुः सुभगा वहन्ती श्वेतं नयन्ती सुदृशीकमश्वम् ।
उषा अदर्शि रश्मिभिर्व्यक्ता चित्रामघा विश्वमनुप्रभूता ॥३॥
अन्ति वामा दूरे अमित्रमुच्छोर्वीं गव्यूतिमभयं कृधी नः ।
यावयद् द्वेष आभरा वसूनि चोदय राधो गृणते मघोनि ॥४॥
अस्मे श्रेष्ठिभिर्भानुभिर्विभाह्युषो देवि प्रतिरन्ती न आयुः ।
इषं च नो दधती विश्ववारे गोमदश्वावद्रथवच्च राधः ॥५॥
यां त्वा दिवो दुहितर्वर्धयन्त्युषः सुजाते मतिभिर्वसिष्ठाः ।
सास्मासुधा रयिमृष्वं बृहन्तं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

७।७८ "प्रति केतवः प्रथमा अदृश्रन्नूर्ध्वा अस्या अज्जयो विश्रयन्ते।
उषो अर्वाचा बृहता रथेन ज्योतिष्मता वामस्मभ्यं वक्षि ॥१॥
प्रति षीमग्निर्जरते समिद्धः प्रति विप्रासो मतिभिर्गृणन्तः ।
उषा याति ज्योतिषा बाधमाना विश्वा तमांसि दुरिताय देवो॥२॥
एता उत्याः प्रत्यदृश्रन्पुरस्ताज्ज्योतिर्यच्छन्तीरुषसो विभातीः ।
अजीजन्त्सूर्य्यं यज्ञमग्निमपाचीनं तमो अगादजुष्टम् ॥३॥
अचेति दिवो दुहिता मघोनी विश्वे पश्यन्त्युषसं विभातीम् ।
आस्थाद्रथं स्वधया युज्यमानं मायमश्वासः सुयुजो वहन्ति ॥४॥
प्रतित्वाद्य सुमनसो बुधन्तास्माकासो मधवानो वयं च ।
तिल्विलायध्वमुषसो विभातीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः"॥५॥
७।७९ "व्युषा आ वः पथ्याजनानां पञ्चक्षितीर्मानुषीर्बोधयन्ती ।
सुसन्दृग्भिरुक्षभिर्भानुमश्रेद्धि सूर्य्यो रोदसी चक्षसावः ॥१॥
व्यञ्जते दिवो अन्तेष्वक्तून्विशो न युक्ता उषसो यतन्ते ।
सं ते गावस्तम आवर्तयन्ति ज्योतिर्यच्छन्ति सवितेव बाहू ॥२॥
अभूदुषा इन्द्रतमा मघोन्यजीजनत्सुविताय श्रवांसि।
वि दिवा देवा दुहिता दधात्यङ्गिरस्तमा सुकृते वसूनि॥३॥
तावदुषो राधो अस्मभ्यं रास्व यावत्सोतृभ्यो अरदो गृणाना।
यां त्वा जज्ञुर्वृषभस्यारवेण विदृलहस्य दुरो अद्रेरौर्णोः॥४॥
देवं देवं राधसे चोदयन्त्यस्मद्र्यक्सूनृता ईरयन्ती ।
व्युच्छन्ती नः सनये धियो या यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥५॥
प्रति स्तोमेभिरुषसं वसिष्ठा गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अबुध्रन् ।
विवर्तयन्तीं रजसी समन्ते आविष्कृण्वतीं भुवनानि विश्वा॥१॥
एषास्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वी तमो ज्योतिषोषा अबोधि।
अग्र एति युवतिरह्रयाणा प्राचिकितत्सूर्य्यं यज्ञमग्निम् ॥२॥
अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छरन्तु भद्राः।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः"॥३॥
७।८१ "प्रत्यु अदृश्र्यायत्युच्छन्ती दुहिता दिवः ।
अपोमहि व्ययति चक्षसे तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी॥१॥
उदुस्त्रियाः सृजते सूर्य्यः सचाँ उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत् ।
तवेदुषो व्युषि सूर्य्यस्य च सम्भक्तेन गमेमहि ॥२॥

प्रति त्वा दुहितर्दिव उषो जीरा अभुत्स्महि ।
या वहसि पुरुस्यार्हं वनन्वति रत्नं न दाशुषे मयः ॥३॥
उच्छन्ती या कृणोषि मंहना महि प्रख्यै देवि स्वर्दृशे ।
तस्यास्ते रत्नभाज ईमहे वयं स्याम मातुर्न सूनवः ॥४॥
तच्चित्रं राध आभरोषो यद्दीर्घश्रुत्तमम् ।
यत्ते दिवो दुहितर्मर्तभोजनं तद्रास्व भुनजामहै ॥५॥
श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं वाजाँ अस्मभ्यं गोमतः ।
चोदयित्रि मघोनः सूनृतावत्युषा उच्छदपस्त्रिधः" ॥६॥

१४. महर्षि वसिष्ठ द्वारा उषा की स्तुति

पहले जो ऋषि वसिष्ठ राजा वरुण के पुरोहित थे जो बाद में सूर्यभवन में नियुक्त किये गये वह वसिष्ठ उषा की स्तुति करते हैं ॥१॥

ऋग्वेद के ७।७५ में ऋषि वसिष्ठ स्तुति करते हैं—

"यह उषा द्युलोक में प्रकट होकर विशिष्ट रीति से प्रकाशित होने लगती है। यह अपने तेज से अपनी महिमा को प्रकट करती हुई आ रही है। यह उषा शत्रुओं तथा अप्रिय अन्धकार को दूर करती है और चलने के मार्ग को प्रकाशित करती है ॥१॥

हे उषा ! आज हमारे महान् सुख के लिए उठ, हमें सौभाग्य प्रदान कर तथा विशिष्टता से युक्त धन हमें प्रदान कर। हे मानुषि देवि ! मर्त्यलोक के प्राणियों को यशस्वी और धनवान् पुत्र प्रदान कर ॥२॥

शोभनीय उषा की ये विचित्र और अमर प्रकाश किरणें फैल रही हैं । वे दिव्य नियमों का निर्माण कर रही हैं और अन्तरिक्ष को पूर्णता प्रदान करते हुए वहां उत्तम रीति से निवास करती हैं ॥३॥

यह उषा दूर रहकर भी पांच मानवों (चार वर्ण और निषाद) को अपने कार्य में प्रवृत्त करती है । लोगों के कार्यों का अवलोकन करती हुई यह द्युलोक की पुत्री उषा भुवनों की पालना करती है ॥४॥

यह बलवर्धक अन्न से युक्त तथा विलक्षण धन से युक्त है। यह सूर्य की पत्नी है, ऐश्वर्यों और धनों की स्वामिनी है। ऋषिगण जिसकी स्तुति करते हैं, ऐश्वर्यशालिनी उषा सबकी आयु का नाश करती है। (कालचक्र की गति) और अग्नि के साथ प्रशंसित होकर प्रकाशित हो रही है ॥५॥

तेजोमयी उषा को वहन करने वाले विचित्र घोड़े दिखाई दे रहे हैं। यह शुभ्रा उषा सर्वश्रेष्ठ सुन्दर रथ से जाती है। यह कर्मशील लोगों को रत्न और धन प्रदान करती है ॥६॥

यह उषा देवी सत्य का पालन करने वाली तथा पूजनीय है तथा सत्य का पालन करने वाले महान् पूजनीय देवों के साथ रहकर घोर अन्धकार को नष्ट करती है । गायों के लिए उषा प्रकाश देती है इसीलिए गाएँ उषा की कामना करती है ॥७॥

"हे उषा ! हमें गाएँ, अश्व, वीर पुत्रों से युक्त धन और विपुल भोजन सामग्री दो । हमारा यज्ञ समाज में निन्दनीय न होवे । तुम हमें सर्वदा कल्याण-साधनों से सुरक्षित रखो ॥८॥ (७/७५)

"अमर और सबका हित करने वाले, विश्व के नेता सविता देव ने तेज को आश्रय दिया है। वह देवों के लिए दृष्टिस्वरूप सूर्य शुभ कर्म के साथ उदय हुआ है और उषा भी सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करती है ॥१॥

हिंसा न करने वाले और तेज से युक्त देवों के अनेक मार्ग मेरे द्वारा देखे गये हैं। पूर्व दिशा में उषा का ध्वजा रूपी प्रकाश फैलने लगा है और पूर्व दिशा में उषा ऊँची अट्टालिकाओं पर प्रकाशित हो रही है ॥२॥

हे उषा ! सूर्योदय के पूर्व बहुत काल तक तू प्रकाशित होती रहती है क्योंकि तू सूर्य रूप पति की सेवा करती है परन्तु पुनः यती-स्त्री के समान आचरण नहीं करती है ॥३॥

सत्य के पालनकर्त्ता विद्वान् और मन्त्र-सिद्ध सबके पिता जैसे पालन करते थे, वे देवों के साथ बैठ कर सोमपान करने वाले थे जिन्होंने छिपे हुए सूर्य के प्रकाश को प्राप्त किया है और उषा को प्रकट किया है ॥४॥

एक महान् कार्य करने के लिए वे एकत्रित होते हैं और अपना एक विचार रखते हैं, वे परस्पर कलह नहीं करते, वे देवों के नियमों का उल्लंघन नहीं करते और हिंसा न करते हुए ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं ॥५॥

हे सुभगे ! प्रातःकाल उठकर स्तुति की इच्छा करने वाले वसिष्ठ लोग स्तुतियों से तुम्हारी स्तुति करते है गायों को चलाने वाली और पालना करने वाली हो कर उषा हमारे लिए प्रकाशित हो। हे उत्तम कुल में उत्पन्न होने वाली उषा! सब देवों में तू श्रेष्ठ है॥६॥

यह उषा स्तुति करने वाले के दिव्य वचनों को प्रेरित करती है, यह अन्धकार को दूर करती है और स्तुतिकर्ताओं द्वारा प्रशंसित होती है हमें प्रशंसा के योग्य ऐश्वर्य प्रदान करती है। ऐसी हे उषा ! तुम हमारा सर्वदा कल्याण से रक्षण करो ॥७॥ (७।७६)

युवति स्त्री के समान यह उषा प्रथम प्रकाशित हो रही है। यह समस्त प्राणियों को संचय करने के लिए प्रेरित करती है। यह मनुष्यों को प्रकाशित करती है और अग्नि अंधकार को दूर करने वाली ज्योति को प्रकाशित करता है ॥१॥

यह उषा सम्पूर्ण विश्व के सम्मुख प्रकट हुई है, और यह तेजस्वी स्वच्छ वस्त्र पहन कर बढ़ रही है, यह स्वर्ण के समान देदीप्यमान और दर्शनीय तेज से युक्त है। गौ माता के समान आनन्ददायिनी और दिन का संचालन करने वाली उषा प्रकाशित हो रही है ॥२॥

देवों के तेज को धारण करने वाली सौभाग्यशाली सुन्दर श्वेत किरणों से युक्त सूर्य के घोड़ों को चलाने वाली उषा किरणों के रूप में स्पष्ट दिखाई देती है। यह उषा ऐश्वर्यवती है और सम्पूर्ण विश्व के संम्मुख बढ़ रही है ॥३॥

हमारे समीप धन को लाने वाली हे उषा ! हमारे शत्रुओं को छोड़कर प्रकाशित हो। हमारे लिए विस्तृत भूमि को अभय बनाओ, हमारे शत्रुओं को दूर करो और हमें धन से पूर्ण करो। हे ऐश्वर्यमयि ! स्तुति करने वाले के लिए धन प्रदान करो ॥४॥

हे उषा ! हमारे लिए श्रेष्ठ सूर्य की किरणों के साथ प्रकाशित हो। हमारी आयु वृद्धि करने वाली, सबके द्वारा वरण करने योग्य हे उषा ! हमारे लिए अन्न, गौ, घोड़े और रथ से युक्त धन प्रदान करो। हे द्युलोक की पुत्री, उत्तम कुल में उत्पन्न उषा ! वसिष्ठ लोग अपनी बुद्धि से तुम्हारी स्तुति करते हैं। ऐसी तू हमारे पास विपुल धन को धारण कर और सर्वदा कल्याणकारी साधनों से हमारी रक्षा कर" ॥६॥ (७।७७)

"इस उषा की प्रथम किरणें ध्वजा के समान दिखाई दे रही हैं। इसकी गतिशील किरणें ऊँचे स्थान पर आश्रय ले रही हैं यह उषा हमारी ओर बढ़ते हुए तेजस्वी रथ में बैठ कर मनुष्यों के पास आती है ॥१॥

ज्ञानी लोग स्तुतियों से स्तोत्र गान करते हुए अपने कर्म में प्रवृत्त हो रहे हैं। समृद्ध हुआ अग्नि बढ़ रहा है। यह उषा सम्पूर्ण अन्धकार को अपनी ज्योतिर्मयी किरणों से दूर करती हुई जाती है ॥२॥

ये उषाएँ प्रकाशित होती हुईं और तेज प्रदान करती हुईं हमारे सम्मुख दिखाई दे रही हैं। सूर्य, अग्नि और यज्ञ को उषा ने प्रकट किया है और कष्टकारी अंधकार को दूर किया है ॥३॥

द्युलोक की पुत्री और ऐश्वर्यमयी उषा आती है और सम्पूर्ण विश्व इस प्रकाशमयी उषा को देखते हैं। यह उषा अन्नयुक्त रथ पर चढ़ती है, जिसके श्रेष्ठ घोड़े गन्तव्य स्थान तक ले जाते हैं ॥४॥

हे उषा ! आज हमारे ऐश्वर्यवान् और बुद्धिमान् पुरुष तथा हम सब तेरी स्तुति करते हैं। तू प्रकाशित हो कर विश्व को स्नेह से युक्त कर, तू सदा कल्याण के साधनों से हमारा रक्षण कर ॥५॥ (७।७८)

"वह उषा लोगों को हित करने वाली है, जो विशेष रूप से प्रकट हुई है। यह पांच मानवों को जगाती है, श्रेष्ठ गायों के साथ तेज को धारण करती है और सूर्य भी अपने तेज से द्यावा-पृथिवी को बल देता है ॥१॥

ये उषाएँ अपने तेज को द्युलोक के अन्तिम भाग तक फैलाती हैं। एकत्रित प्रजा की तरह ये उषाएँ अंधकार को नष्ट करने के लिए प्रयत्न करती हैं। हे उषा ! तेरी किरणें अंधकार को नष्ट करती हैं । सूर्य अपनी बाहुरूपी किरणों को जिस तरह फैलाता है उसी तरह उषाएँ अपने तेज को फैलाती हैं ॥२॥

श्रेष्ठ ऐश्वर्यवती उषा प्रकट हुई है। इस उषा ने सबका कल्याण करने के लिए अन्न का निर्माण किया है। द्युलोक की पुत्री उषा ! अग्नि के समान तेज से युक्त होकर सुकर्म करने वाले को धन प्रदान करती है ॥३॥

हे उषा ! तूने जितना धन स्तुतिकर्ताओं को दिया था, उतना ही धन प्रसन्न होते हुए हमें भी प्रदान कर। सब तुझे बैल के शब्द से जानते हैं और सुदृढ़ पर्वत के द्वार को खोल कर तूने गायों को बाहर निकाला है ॥४॥

हे उषा ! तू प्रत्येक देव को धन के लिए प्रेरित करती है, हमारे सम्मुख सत्य वाणी को प्रेरित करती है। तू अंधकार को दूर करती हुई हमें धन देने की बुद्धि धारण कर। तू कल्याणकारी साधनों से हमारा रक्षण कर ॥५॥ (७।७९)

"ज्ञानी वसिष्ठ लोग अपनी प्रथम स्तुतियों और वाणियों से उषा को जगाते हैं। यह उषा द्यावा-पृथिवी को समान रूप से घुमाती हुई सम्पूर्ण भुवनों को प्रकाशित करती है ॥१॥

यह उषा नवीन आयु को धारण करती हुई अपने तेज से अंधकार को दूर करती हुई उदय होती है। लज्जारहित युवति के समान यह आगे चलती है और सूर्य, अग्नि और यज्ञ के सम्मुख प्रकट होती है ॥२॥

घोड़े गायें और वीर पुरुष से युक्त यह उषा कल्याण करने वाली है, यह सर्वदा हमें प्रकाशित करे। यह उषा घी को दुहने वाली चारों ओर से परिपुष्ट हुई है। हे उषा ! तू कल्याण युक्त साधनों से हमारा रक्षण कर" ॥३॥ (७।८०)

"अंधकार को दूर करने वाली द्युलोक की दुहिता उषा आती हुई दिखाई देती है। यह उषा घोर अंधकार को दूर करती है और सबके नेत्रों के लिए प्रकाश फैलाती है ॥१॥

सूर्य अपनी किरणों के साथ प्रकाश को ऊपर फैलाता है और उदय से पूर्व नक्षत्रों को तेजस्वी बनाता है। हे उषा ! तेरे और सूर्य के प्रकाशित होने पर हम अन्न को प्राप्त करेंगे ॥२॥

हे द्युलोक की पुत्री उषा ! हम शीघ्र कर्मों को करने वाले तुझे जगावेंगे। हे ऐश्वर्यशालिनि ! तू प्रशंसा के योग्य धन को वहन करती है और दानदाता के लिए सुख और धन प्रदान करती है ॥३॥

हे उषा ! तू महान् है, अंधकार को दूर करती है और अपने तेज से विश्व को जगाने के लिए प्रकाश फैलाती है। हम रत्नमयी तेरा स्तवन करते है। हम तुझे उसी तरह प्रिय हों जैसे माता को अपने पुत्र प्रिय होता है ॥४॥

हे उषा ! जो अत्यन्त यशस्वी और विचित्र धन है, तू हमें वह धन प्रदान कर। हे द्युलोक की पुत्री उषा ! तेरे पास जो मनुष्यों के लिए भोजन है, वह हमें प्रदान कर, हम वह भोजन करेंगे ॥५॥

हे उषा ! हम वीरों के लिए अमृतमय धन और यश प्रदान कर। हमें गायों से युक्त अन्न प्रदान कर। हे ऐश्वर्यमयी ! सत्यवाणी से युक्त उषा ! तू शत्रुओं का नाश करने वाली है ॥" ६॥ (७।८१)

१५. प्रस्कण्वः काण्व उषसं स्तौति ।

प्रस्कण्वोपि च काण्वो महर्षिरुषसं परिष्टौति ।
काण्वाः सूर्य्यायतने परोक्षयन्ति स्म सूर्य्यविज्ञानम् ॥ १ ॥
१।४८ "सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
सह द्युम्नेन बृहता विभावरिरापादेवि दास्वती ॥ १ ॥
अश्वावतीर्गोमतीर्विश्व सुविदो भूरि च्यवन्त वस्तवे ।
उदीरय प्रतिमा सूनृता उषश्चोदराधो मघोनाम् ॥ २ ॥
उवासोषा उच्छाच्च नु देवी जीरा रथानाम् ।
ये अस्या आचरणेषु दध्रिरे समुद्रे न श्रवस्यवः ॥ ३ ॥
उषो ये ते प्रयामेषु युञ्जते मनो दानाय सूरयः ।
अत्राह तत्कण्व एषां कण्वतमो नाम गृणाति नृणाम् ॥४ ॥
आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती ।
जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षिणः ॥५ ॥
वि या सृजति समनं व्यर्थिनः पदं न वेत्योदती ।
वयो नकिष्टे पप्तिवांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवति ॥ ६ ॥
एषा युक्तः परावतः सूर्य्यस्योदयनादधि ।
शतं रथेभिः सुभगोषा इयं वियात्यभिमानुषान् ॥ ७ ॥
विश्वमस्या नानाम चक्षसे जगज्ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।
अपद्वेषो मघोनी दुहिता दिव उषा उच्छदपस्त्रिधः ॥८ ॥
उष आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः ।
आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्ठषु ॥ ९ ॥
विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरी ।
सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघे हवम् ॥ १० ॥
उषो वाजं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जने ।
तेना वह सुकृतो अध्वराँ उप ये त्वा गृणन्ति वह्नयः ॥११ ॥
विश्वान्देवाँ आवह सोमपीतयेऽन्तरिक्षादुषस्त्वम् ।
सास्मासु धा गोमदश्वा वदुक्थ्य मुषो वाजं सुवीर्यम् ॥ १२ ॥
यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदृक्षत ।
सो नो रयिं विश्ववारं सुपेशसमुषा ददातु सुगम्यम् ॥ १३ ॥

य विद्धि त्वामृषयः पूर्व ऊतये जुहूरेऽवसे महि ।
सा नः स्तोमो अभिगृणीहि राधसोषः शुक्रेण शोचिषा ॥१४॥
उषो यदद्य भानुना विद्वारा वृणवो दिवः ।
प्र नो यच्छ तादवृकं पृथुच्छर्दिः प्रदेवि गोमती रिषः ॥१५॥
सं नो राया बृहती विश्वेश सामिमिक्ष्वा समिलाभिरा।
संद्युम्नेन विश्वतुरोषो महि संवाजै वाजिनीवती" ॥१६॥

(२) "उषो भद्रेभिरागहि दिवश्चिद्रोचनादधि ।
वह त्वरुणप्सव उप त्वां सोमिनो गृहम्" ॥१॥
सुपेशसं सुखं रथं यमध्यस्था उषस्त्वम् ।
तेना सुश्रवसं जनं प्रावाद्य दुहितर्दिवः ॥२॥
वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपज्चचतुष्पदर्जुनि ।
उषः प्रारन्नृतूँ रनुदिवो अन्तेभ्यस्परि ॥३॥
व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विश्वमाभासि रोचनम् ।
तां त्वां मुषर्वसूयवो गीर्भिः कण्वा अहूषत ॥४॥

१५. कंण्वपुत्र प्रस्कण्व द्वारा उषा की स्तुति

कण्व-पुत्र महर्षि प्रस्कण्व भी उषा की स्तुति करते हैं। सूर्यभवन में कण्वपुत्र सूर्य से सम्बद्ध विज्ञान की परीक्षा करते हैं ॥१॥

ऋग्वेद के १।४८ में महर्षि प्रस्कण्व द्वारा उषा की स्तुति की गई है—

"हे द्युलोक की पुत्री उषा ! तू हमारे लिए वामान्न के साथ प्रकाशवती बन। हे विभावरि देवी ! महान् तेज के साथ दान देने वाली तू बड़े वैभव से प्रकाशित हो ॥१॥

घोड़ों और गायों से युक्त, समस्त प्रकार के धन को प्राप्त करने वाली उषाएँ प्रजा का हितसाधन करने के लिए अनेक प्रकार से प्रकाशित होती हुई मेरे प्रति सुन्दरवाणी का उच्चारण करें। हे उषा ! हमें धनवानों के योग्य धन प्रदान कर ॥२॥

जिस उषा ने (विश्व) में निवास किया है, वह उषा रथों को चलाने वाली है, वह और भी अधिक प्रकाशित होवे। समुद्र में धन की इच्छा वाले जैसे नौकाएँ चलाते है, वैसे ही यह उषा अपने चलने योग्य रथ को चलाती है ॥३॥

हे उषा ! जो विद्वान् तेरे आगमन-समय के लिये अपना धन-मन लगा देते हैं, उन मनुष्यों में सर्वाधिक विद्वान् कण्व ऋषि यहाँ स्तुति करते हैं ॥४॥

उत्तम गृहिणी स्त्री के समान पालन करती हुई उषा आ रही है। वह उषा सबको शक्तिशाली बनाती हुई अपने पांवों को चलाती है और पक्षियों को उड़ाती है ॥५॥

जो उषा श्रेष्ठ मन वाले लोगों को प्रेरणा देती है। धन की इच्छा करने वालों को प्रेरित करती है। प्रेरणा देने वाली उषा एक स्थान पर पद स्थिर नहीं करती है ॥६॥

यह सूर्योदय पूर्व ही अपने रथों को जोड़ती है। यह सौभाग्यशालिनी उषा मनुष्यों के प्रति सौ रथों से जाती है ॥७॥

सम्पूर्ण विश्व इस उषा को नेत्रों से (देखते ही) नमस्कार करते हैं । वह उषा श्रेष्ठ स्त्री है, यह प्रकाश फैलाती है। यह उषा द्युलोक की पुत्री है, ऐश्वर्यशालिनी है, यह हिंसक शत्रुओ को दूर करती है ॥८॥

द्युलोक की पुत्री उषा! आनन्ददायिनी किरणों से तू प्रकाशित हो। दिन के नित्य कर्मों के लिए अन्धकार को दूर करती है ॥९॥

हे उत्तम नेतृत्व करने वाली उषा ! तू अन्धकार को दूर करती है, तब सम्पूर्ण विश्व का जीवन-प्राण तुझ में ही रहता है। हे विचित्र ऐश्वर्य और धनवाली देवी उषा ! ऐसी तू अपने महान् रथ से हमारी स्तुति सुन ॥१०॥

हे उषा ! मनुष्यों के पास जो विचित्र धन है, उस धन को तू स्वीकार कर। जो अग्नियाँ (स्तुतिकर्ता) तेरी स्तुति गाते हैं, उनसे सन्तुष्ट होकर सुकृत लोगों को यज्ञ के पास ले जा ॥११॥

हे उषा ! तू सोमपान के लिये समस्त देवों को अन्तरिक्ष से ले आ। हे उषा ! तू गायों और घोड़ों से युक्त प्रशंसनीय अन्न-बल को हमारे अन्दर धारण कर ॥१२॥

जिसकी सुन्दर कल्याणकारी किरणें दिखाई दे रही हैं, ऐसी वह उषा हमें सबके द्वारा वरणीय सुन्दर और आनन्ददायी धन प्रदान करे ॥१३॥

हे महान् तेजस्वी उषा ! जो प्राचीन ऋषि तेरी रक्षा और अन्न के लिये प्रार्थना करते थे, वह तू साफल्य, शौर्य और तेज से युक्त होकर हमारी स्तुतियों की प्रशंसा कर ॥१४॥

हे उषा ! तूने जब अपने प्रकाश से द्युलोक के दोनों द्वारों को खोल दिये हैं। हमें रहने के लिए विशाल घर प्रदान कर। हे उषा! हमें गायों से युक्त धन प्रदान कर ॥१५॥

हे उषा ! महान् और प्रशंसनीय धन से समृद्ध कर। हमें गायों से युक्त कर। हे अन्न से युक्त श्रेष्ठ उषा ! हमें शत्रुनाशक तेजस्वी धन और अन्न-धन से सम्पन्न कर॥" १६॥ (१।४८)

"हे उषा ! द्युलोक के देदीप्यमान स्थान से कल्याणकारी मार्गों से आ। लाल रंग के घोड़े तुझे सोमयज्ञ के स्थान पर पहुँचा देवें ॥१॥

हे उषा ! तू जिस शोभनीय सुखदायी रथ पर बैठती है, उस रथ से हे द्युलोक की पुत्री उषा ! आज उत्तम अन्न वाले मनुष्य की भली प्रकार रक्षा कर ॥२॥

हे श्वेतवर्णा उषा ! तुम्हारे चलने के अनुसार दो पांवों वाले (मनुष्य) और चतुष्पत् (पशु) और उड़नेवाली पक्षी भी द्युलोक तक स्वागतार्थ उड़ते हैं ॥३॥

हे उषा ! अन्धकार को दूर करती हुई सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करती है। ऐसी तुम्हे धनार्थी कण्व बुलाते हैं।" ॥४॥ (१।४९)

१६. कक्षीवान् दैर्घतमस उषसं स्तौति ।

दीर्घतमा औतथ्यो बृहस्पतेर्भ्रातृपुत्रो यः ।
सूर्य्यायतने पश्यति कर्म भरद्वाजवत् सोपि ॥१॥
१।१२३॥ (१) "पृथूरथो दक्षिणाया अयोज्यैनं देवासो अमृतासो अस्थुः।
कृष्णा दुदस्था दर्या विहायाश्चिकित्सन्ती मानुषाय क्षपाय ॥१॥
पूर्वा विश्वस्माद्भुवनादबोधी जयान्ती वाजं बृहती सनुत्री ।
उच्चाव्यख्यद्युवतिः पुनर्भूरोषा अगन्प्रथमा पूर्वहूतौ ॥२॥
यदद्य भागं विभजासि नृभ्य उषोदेवि मर्त्यत्रा सुजाते ।
देवो नो अत्र सविता दमूना अनागसो वोचति सूर्य्याय॥३॥
गृहङ् गृहमहना यात्यच्छा दिवे दिवे अधि नामा दधाना ।
सिषासन्ती द्योतना शश्वदागादग्रमग्रमिद्भजते वसूनाम् ॥४॥
भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिरुषः सुनृते प्रथमा जरस्व ।
पश्वा सदध्यायो अघस्य धाता जयेम तं दक्षिणया रथेन॥५॥
उदीरतां सूनृता उत्पुरन्धीरुदग्नयः शुशुचानासो अस्थुः।
स्पार्हा वसूनि तमसाप गूढाविष्कृण्वन्त्युषसो विभातीः ॥६॥
अपान्यदेत्यभ्यन्यदेति विषुरुपे अहनी सञ्चरेते ।
परीक्षितो स्तमो अन्या गुहाकर द्यौ दुषाः शोशुचता पथेन ॥७॥
सदृशोरद्य सदृशीरिदु श्वो दीर्घं सचन्ते वरुणस्य धाम ।
अनवद्यास्त्रिंशतं योजनान्येकैका क्रतुं परियान्त सद्यः ॥८॥
जानत्यह्नः प्रथमस्य नाम शुक्रा कृष्णा दजनिष्टश्वितीची ।
ऋतस्य योषा न मिनाती धामाहरहर्निष्कृतमाचरन्ती ॥९॥
कन्येव तन्वा शाशदानां एषि देवि देवमियक्षमाणम् ।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाति ॥१०॥
सुसङ्काशा मातृमृष्टेव योषा विस्तन्वं कृणुषे दृशेकम् ।
भद्रा त्वमुषो पितरं व्युच्छनतत्ते अन्या उषसो नशन्त॥११॥
अश्वावतीर्गोमती विश्ववारा यतमाना रश्मिभिः सूर्यस्य ।
परा च यन्ति पुनराच यन्ति भद्रा नाम वहमाना उषासः" ॥१२॥
(१।१२४।३।६।७।८।९)

"एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात् ।
ऋतभ्य पन्था मन्वति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥१॥
एवेदेषा पुरुतमा दृक्षे कं ना जामिं न परिवृणक्ति जामिम् ।
अरेपसा तन्वा शाशदाना नार्भादीषते न महो विभाती ॥२॥
अभ्रातेवः पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम् ।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव निरिणीते अप्सः ॥३॥
स्वसा स्वस्रे ज्यायस्यै योनिमारैगपैत्यस्याः प्रतिचक्ष्येव ।
व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्या ञ्ज्यङ्क्तेसमनगा इव व्राः ॥४॥
आसां पूर्वासामहसु स्वसृणामपरापूर्वामभ्येति पश्चात् ।
ताः प्रत्नवन्नभ्यसीर्नूनमस्मे रेवदुच्छन्तु सुदिना उषासः"॥५॥

१६. कक्षीवान् दीर्घतमा द्वारा उषा की स्तुति

बृहस्पति के भाई के पुत्र औतथ्य दीर्घतमा, जो सूर्यभवन में भरद्वाज के समान सूर्य से सम्बद्ध कर्म को देखते हैं, उषा की स्तुति करते हैं ॥१॥

"उषा, जो दक्षिणा (चतुर) है, इसका रथ योजित हो गया है। इस रथ पर अमर देवगण आसीन हो गए हैं। यह विशिष्ट और श्रेष्ठ उषा मनुष्यों के सूखपूर्वक निवास के लिये प्रयत्नशील होती हुई अन्धकार से ऊपर उठ रही है ॥१॥

यह उषा समस्त प्राणियों के लिए जागती है। यह विशाल दान करने वाली है। यह उषा महान् धन को जीतने वाली है। यह उषा युवति है, जो पुनः पुनः उत्पन्न होने वाली है। प्रथम हवन में प्रथम यह उषा आकर उच्च स्थान से देखने लगी ॥२॥

हे उत्तम कुलीना उषा ! मानव की पालना करने वाली, आज यज्ञ के जिस भाग को तू मनुष्यों को देती है, वहां संसार को दान देने वाला सविता देव हमारा निष्पाप होना सूर्य से बोले ॥३॥

यह उषा प्रतिदिन घर-घर जाती है और अपना नाम धारण करती है। यह उषा प्रातः कालीन हविर्भाग का सेवन करने वाली होती हुई निरन्तर आती है और धनों के अग्र भाग का सेवन करती है ॥४॥

सुन्दर वाणी वाली उषा तू भग और वरुण की बहिन है, ऐसी तू उषा स्तुत्य होवे। तत्पश्चात् पापी शत्रु बंदी बनाया जावे और शत्रु को हम तेरी चतुराई से जीत लेवें ॥५॥

सुन्दर वाणी बोली जावे, विशाल बुद्धियाँ क्रियाशील हों, अग्नियाँ प्रदीप्त होकर प्रज्वलित होवें । देदीप्यमान उषा अंधकार से आवृत प्रशंसनीय धन को प्रकाशित करे ॥६॥

जब विपरीत स्वरूप (अन्धरयुक्त) वाली रात्री और देदीप्यमान उषा प्रतिदिन क्रम से विचरण करती हैं तब (रात्रि का अन्धकार) एक ओर आ जाता है। संचरणशील रात्रि और उषा

में से एक रात्रि तो अंधकार की गुहा सबको आच्छादित कर लेती है और उषा देदीप्यमान रथ से प्रकाशित होती है ॥७॥

आज और कल समान रूप से ये शुद्ध उषाएँ निरन्तर वरुण के दीर्घाकार वाले स्थान की सेवा करती है। ये एक एक उषा सूर्य के आगे-आगे तीस योजन तक निरंतर चलती रहती है ॥८॥

यह उषा दिन के प्रथम भाग (प्रातःकाल) का महत्त्व जानती हुई, शुभ्र और तेजस्वी उषा रात्रि के घोर अंधकार में से प्रकट होती है। यह उषा युवति है तथा सत्य व्रत से कभी विचलित नहीं होती है तथा प्रतिदिन अपने नियत स्थान पर चलती रहती है ।।९॥

हे उषा ! अपनी काया को स्पष्ट (स्वच्छ) रूप से प्रकट करने वाली कन्या के समान इच्छित सुख देने वाले पति के पास जाती है। हंसती हुई युवति स्त्री पति के सम्मुख सौम्य मुद्रा में अपने वक्षःस्थल को स्पष्ट रूप सें दिखाती है ॥१०॥

माता से शुद्ध की हुई (संस्कारित) सुन्दर स्त्री के समान देदीप्यमान तू अपने स्वच्छ शरीर को सबके सामने प्रकट करती है। हे उषा ! तू कल्याण करने वाली है, तू प्रकाश का वितरण कर। तेरे समान अन्य उषाएँ देदीप्यमान नहीं हो सकती हैं ॥११॥

घोड़ों और गायों से युक्त, सबके द्वारा वरण करने योग्य, सूर्य की रश्मियों से प्रकाश फैलाने वाली, कल्याणकारी नाम को धारण करने वाली उषाएँ दूर तक जाती हैं और पुनः लौटती हैं" ॥१२॥ (१।१२३।१-१२)

"यह उषा द्युलोक की पुत्री, देदीप्यमान उज्ज्वल वस्त्र धारण करने वाली, स्वच्छ मन वाली पूर्व दिशा में दिखाई देने लगती है। यह उषा ऋत के मार्ग पर चलने में योग्य है। जिस प्रकार ज्ञानवती स्त्री जाती है उसी प्रकार यह उषा चलती है और दिशाओं में कोई बाधा नहीं पहुँचाती है ॥३॥

विस्तार को प्राप्त होती हुई उषा प्रकाश वितरण करने के लिये परजातीय का त्याग नहीं करती है और स्वजातीय का भी त्याग नहीं करती है। पापरहित शरीर से प्रकाशित होती हुई उषा छोटे अथवा बड़े का त्याग नहीं करती है, अपितु दोनों को प्रकाशित करती है ॥६॥

भ्राता से हीन स्त्री जैसे निराश्रित होकर पिता आदि के पास जाती है, धनों की प्राप्ति के लिये न्यायालय में जाती है, सुन्दर वस्त्र धारण करके स्त्री पति के पास जाती है, वैसे ही उषा हंसती हुई स्त्री के समान अपनी ज्योति को प्रकाशित करती है ॥७॥

जैसे एक छोटी बहिन अपनी बड़ी बहिन के लिये स्थान खाली करती है, वैसे ही (रात्रि) इस उषा को देखते ही दूर हट जाती है। सूर्य की किरणों से अन्धकार को दूर करती हुई यह उषा एक साथ प्रकाश फैलाने वाले विद्युत्समूह के समान प्रकाशित होती है ॥८॥

इन पहले की बहिनों में से दिन में दूसरी और बाद में (पीछे से) पहले वाली जाती है। वे उषाएं प्राचीन भी हैं और नवीन भी हैं, वे निश्चय ही हमारे लिये धन के साथ शुभ दिन प्रकाशित करती रहे॥" ९॥ (१।२४।३-६-७-८)

१७. अष्टादंष्ट्रो वैरूप इन्द्रं स्तुवन्नुषसं स्तौति।

१—"सचन्त यदुषसः सूर्येण चित्रामस्य केतवो रामविन्दन् ।
आ यन्नक्षत्रं ददृशे दिवो न पुनर्यतो न किरद्धा नु वेद्" ॥१॥
एषां कतिपयमन्त्रा आधिदैवतपक्ष उपनेयाः ।
सर्वे त्वपरे मन्त्रा अधिभूतं समनुगच्छन्ति ॥१॥

१७. विरूप के पुत्र अष्टादंष्ट्र द्वारा इन्द्र की स्तुति करते हुए उषा की स्तुति

"जब उषाएँ सूर्य के साथ मिलती हैं, तब सूर्य की किरणों ने आश्चर्यकारक अद्‌भुत वर्णों की शोभा प्राप्त की। जब आकाश में नक्षत्र दिखाई नहीं देता है, तब सर्वत्र व्याप्त सूर्य की किरणों को कोई भी नहीं जानता है, यह सत्य है।" ॥१॥

इनमें से कुछ मन्त्र अधिदैवत के पक्ष में लिये जाने चाहिये और अन्य सभी मन्त्र अधिभूतार्थ में समझने चाहिये ॥१॥

१८. आप्त्योऽधिदैवतमुषसं स्तौति ।८।४७। (१४।१८)

केचिन्मन्त्रा उषसस्त्वधिदैवतमेव पर्याप्ताः ।
आप्त्यस्त्रितो यथोचे संधे सूक्तेऽन्ततोऽष्टमगे ॥१॥
यच्च गोषु दुः ष्वप्न्यं यच्चास्मे दुहितार्दिवः ।
त्रिताय तद्विभावर्याप्त्याय परावहानेहसो व उतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥८॥
४७।१५"

"निष्कं वा घा कृण्वते स्रजं वा दुहितर्दिवः ।
त्रिते दुःष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये परिद्मस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥८॥
४७।१५"

"तदन्नाय तदयसे तं भागमुपसेदुषे ।
त्रिताय च द्विताय चोषो दुःष्वप्न्यं वहानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः" ॥८॥
४७/१६

"यथा कलां यथाशफं यथा ऋणं सन्नमयामसि ।
एवादुःष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये सं नयामय नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः" ॥८॥
४७/१८

"अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागसो वयम् ।
उषो व यस्मादुःष्वप्न्यादभैष्मायतदुच्छत्वनेहसो व ऊतय सुऊतयो व ऊतयः" ॥
८।४७।१८

१८. महर्षि आप्त्य द्वारा अधिदैवत उषा की स्तुति

कुछ वेदमन्त्र पूर्ण रूप से अधिदैवत उषा की स्तुति से ही सम्बद्ध हैं जैसा कि त्रित आप्त्य ऋषि ने अष्टम मण्डल के सैंतालीसवें सूक्त में कहा है ॥१॥

"हे द्युलोक की पुत्री ! विभावरि ! गायों में और हममें जो दुष्वप्न हों उन्हें मुझ त्रित आप्त्य से दूर करो। तुम्हारी रक्षाएँ दोषरहित हैं, तुम्हारी सुरक्षाएँ उत्तम सुरक्षा है ॥१४॥

द्युलोक की पुत्री ! आभूषण बनाने वाले सुनार अथवा माला बनाने वाले माली के जो दुःष्वप्न हों तुम उन सभी को मुझ त्रित आप्त्य से दूर भगाती है। तुम्हारी रक्षाएँ पापरहित हैं, तुम्हारी सुरक्षाएँ उत्तम सुरक्षाएँ हैं ॥१५॥

वह अन्न लेने वाला, वह कर्म करने वाला, उस अन्न भाग को स्वीकार करने वाला तुम उस त्रित और द्वित के लिए दुःष्वप्नों को दूर ले जाओ । तुम्हारी रक्षाएँ पापरहित हैं, तुम्हारी सुरक्षाएँ उत्तम सुरक्षाएँ हैं। (जो अन्न पाप से युक्त होता है, उस अन्न का भोग करने वाला अथवा अंश को भी स्वीकार करने वाला सदैव पाप का भागी होता है। अतः उसके पाप नष्ट हों) ॥१६॥

जिस प्रकार ब्याज और ऋण के मूलधन को हम पूर्णरूप से दे देते हैं, उसी तरह तुम मुझ आप्त्य से समस्त दुःष्वप्न दूर ले जाती हो। तुम्हारी रक्षाएँ पापरहित हैं, तुम्हारी सुरक्षाएँ उत्तम सुरक्षाएँ हैं ॥१७॥

आज हमने विजय प्राप्त की है, हमने आज लाभ प्राप्त किया है। आज हम पापरहित हो गये हैं । हे उषा ! हम जिस दुःष्वप्न से भयभीत हैं, वह हमसे दूर हो। तुम्हारी रक्षाएँ पापरहित हैं, तुम्हारी सुरक्षाएं उत्तम सुरक्षाएँ हैं ॥१८॥ (८।४७।१४-१८)

१९. विज्ञानशालास्थितात् सूर्य्यचक्रद्वयादेकस्य देवेन्द्रेण परीहरणम्।

१९. विज्ञानशाला-स्थित सूर्यचक्र-द्वय में से एक चक्र का देवेन्द्र के द्वारा हरण

२०. उषःकारणात् सूर्य्याधिष्ठाने दस्यूनामाक्रमणमिन्द्रकुत्साभ्यां तन्निबर्हणं च ।

उषा विलज्जा चरतीति शुष्णो बबन्ध तां प्रेम्णि कदाप्यभीक्ष्य।
तत्प्रेमपाशानुविकर्षितः सन्नुषः समीपं स उपैत्यभीक्ष्णम् ॥१॥

सूर्य्यनिवृत्त्या कृष्णो विरतोऽभूत् किन्तु तत्पश्चात्।
सूर्य्यायतने शुष्णो यातायातं व्यधादुषोहेतोः ॥२॥
शुष्णो दस्युः सूर्य्यं बहुधागत्य व्यमर्दयद् धृष्टः ।
अकुतोभयः स सूर्य्यद्वारं पिदधे निजह्नुवे सूर्य्यम् ॥३॥
इन्द्रः शुष्णाक्रमणं सूर्य्यापह्नुतिमुपद्रवातिशयम् ।
बार्हस्पत्यस्य गिरा श्रुत्वा सद्यः समाययौ सूर्य्यम् ॥४॥
दासाक्रमणनिरोधोपायानृषि सदसि चिन्तयंस्तत्र ।
सूर्य्यसदनरक्षार्थं कमपि नृपं मार्गयामास ॥५॥
तत्रावोचदगस्त्यः सौराच्चक्रद्वयादेकम् ।
दिवि नीत्वा परचक्रं स्थापयितुं कुत्सरक्षणे युक्तम् ॥६॥
"वह कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्त्स्यु मन्यू ऋज्रा वातस्याश्वा ।
प्रसूरश्चक्रं बृहतादभीकेऽभिस्पृधो यासिषद् वज्रबाहुः" ॥ (१।१७४।५)
रपक्तविरिद्रार्कं सातौक्षां दासायोपवर्हणीं कः ।
करत् तिस्रो मघवा दानुचित्रानिदुर्योणे कुयवाचं मृधिश्रेत् ॥८॥
मुषाय सूर्य्यं कवे चक्रमीशान ओजसा।
वह शुष्णाय वधं कुत्सं वातस्याश्वैः ॥९॥ (१।१७५।४)
श्रुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः।
वृत्रध्ना वरिवोविदा मंसीष्ठा अश्वसातमः ॥१०"॥ (१।१७५।५)
इत्यगस्त्यपरामर्शं युयुत्सुरनुमोदयन् ।
हत्वैकं चक्रमन्यस्य रक्षायै कुत्समाह्वयत् ॥७॥
गत्वोशनसा साकं कुत्सगृहं तं न्ययोजयत् त्रातुम् ।
वातजवाश्वैः सूर्य्यस्थानेऽत्रानाय्य चादिशत् कुत्सम् ॥८॥
गान्धारमद्रभूपान् न्युङ्क्त कांश्चिच्च कुत्ससहकर्तॄन् ।
वार्षागिरान् दर्भानि ध्वसन्ति पुरुषन्ति पूर्वांश्च ॥९॥
इन्द्रस्तत्र तदानीं दासाक्रान्तिं निरोधयितुम् ।
सहदेवैः कुत्सेन च सूर्य्यस्थानादताडयच्छुष्णम् ॥१०॥
स यथाऽयमिन्द्र एतं सह कुत्सेन न्यवर्हयच्छुष्णम् ।
शाक्त्यो हि गौरवीतिः स्मारयतीन्द्राय तत् स्तोतुम् ॥११॥

"उशना यत् सहस्यैरयातं गृहमिन्द्रजूजुवानेभिरश्वैः।
वन्वानो अत्र सरथं ययाथ कुत्सेन देवैरवनोर्हशुष्णम् (५।२९।९)
(गौरवीति शाक्त्य)

षष्टिः षष्टिश्चेत्थं मरुतां सेनासु कल्पिता व्यूहाः ।
त्रिःषष्टिर्मरुतोऽत्राभिक्रमणे प्रस्तुता आसन् ॥१२॥

२०. उषा के कारण सूर्यसदन में दस्युओं का आक्रमण तथा इन्द्र और कुत्स द्वारा उसका निर्वाह

उषा लज्जारहित होकर विचरण करती हैं, उसको किसी समय शुष्ण दैत्य ने देखकर अपने प्रेम-पाश में बांध लिया। उस दैत्य के प्रेम-पाश में बंधा हुआ आकर्षित होकर वह पुनः पुनः उषा के पास आता था ॥१॥

सूर्य की निवृत्ति से कृष्ण नाम का दस्यु सूर्यसदन में लौट गया परन्तु पश्चात् सूर्यायतन में उषा के कारण शुष्ण नाम के दस्यु ने अनेक बार आकर सूर्यचक्र का मर्दन किया॥२॥

धृष्ट शुष्ण दस्यु ने अनेक बार आकर सूर्यचक्र का मर्दन कर दिया। उसने निर्भय होकर सूर्य को छिपाने के लिये सूर्य-द्वार को ढक दिया ॥३॥

इन्द्र शुष्ण के आक्रमण को, सूर्य की अपह्नुति को तथा अत्यधिक उपद्रव को देखकर बृहस्पति के पुत्र की वाणी को सुनकर शीघ्र ही सूर्यचक्र के पास आया ।।४॥

दासों द्वारा किये गये आक्रमण के निराकरण के उपाय के संबंध में वहां सूर्यसदन में ऋषियों की सभा में विचार-विमर्श हुआ। सूर्यसदन की रक्षा के लिये किसी राजा को नियुक्त किया ॥५॥

तब ऋषि अगस्त्य ने सूर्यचक्र-द्वय में से एक को द्युलोक में ले जाकर कुत्स की रक्षा के लिये दूसरे चक्र की स्थापना करने को उचित समझा ॥६॥

"ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में—

"हे इन्द्र ! तू जिस यज्ञ में जाना चाहता है, उसी में सुखाभिलाषी, सीधे चलने वाले, वायु के समान गति वाले घोड़ों को कुत्स के पास ले जा। सूर्य उसी के पास अपना चक्र चलावे और वज्रबाहु इन्द्र शत्रुओं की ओर जावे" ॥५॥

हे इन्द्र ! कवि ने स्तुति करते समय तेरी प्रशंसा की। तूने दासों के लिये पृथिवी को सोने का स्थान बना दिया। मधवा इन्द्र ने तीनों स्थानों को दान से विचित्र बना दिया। दुर्योण के युद्ध में कुयवाच को मार दिया" ॥७॥ (१।१७४।५-७)

"हे कवे ! तूने अपने बल से सूर्य का चक्र छीन लिया। तू सबका स्वामी है। तू वायु के घोड़ों से शुष्ण को मारने के लिये कुत्स के पास अपना वज्र ले जा ॥४॥

हे इन्द्र ! तेरा मद सबके लिए बल प्रदान करने वाला है और तेरा कर्म विपुल अन्न देने वाला है। तू अश्वों का दान देने में प्रसिद्ध है, अतः तू हमें वृत्र को मारने वाले और धन देने वाले शस्त्र प्रदान कर" ॥५॥ (१।१७५।४-५)

इस प्रकार अगस्त्य द्वारा की गई परामर्श का युद्धेच्छुओं ने अनुमोदन किया, जिसके अनुसार एक चक्र का हरण करके चक्र की रक्षा के लिए कुत्स को बुलाया गया ॥७॥

उशनस् ऋषि के साथ कुत्स के घर जाकर सूर्यचक्र की रक्षा के लिए कुत्स को नियुक्त किया गया। पवनगति से चलने वाले अश्वों से सूर्यचक्र को सूर्य-संस्था में लाकर कुत्स को उसकी रक्षा का आदेश दिया ॥८॥

कुत्स के साथ कार्य करने वाले वृषागिर के पुत्रों, दभीति, ध्वसन्ति, पुरुषन्ति इत्यादि सहित गान्धार और मद्र देश के कुछ राजाओं को नियुक्त किया गया ॥९॥

दासों द्वारा किये जाने वाले आक्रमणों का निराकरण करने के लिए देवों और कुत्स के साथ इन्द्र ने शुष्ण दस्यु को सूर्य-स्थान से प्रताड़ित कर दिया ॥१०॥

उस इन्द्र ने जिस तरह से कुत्स के साथ शुष्ण को प्रताड़ित किया, उस प्रसंग को शाक्त्य गौरवीति ऋषि इन्द्र की स्तुति करने के लिये स्मरण करते हैं ॥११॥

"हे इन्द्र ! जब तू और उशना दोनों शत्रुओं को मारने वाले और वेगवान् घोड़ों से घर गये, तब तुम दोनों कुत्स और देवों के साथ एक ही रथ पर गये और तुमने शुष्ण का संहार किया" ॥ (५।२९।९)

इस प्रकार मरुतों की सेना में साठ-साठ मरुद्गणों की व्यूहरचना की गई तथा तरेसठ मरुत् वहाँ अभिक्रमण के लिए तैयार रहते थे ॥१२॥

२१. सूर्य्यसंस्थासंरक्षणार्थो देवेन्द्रकृतः स्थानिकः प्रबन्धः ।

ये द्वेचक्रे सूर्यस्तत्रैकं दिवि समाधातुम् ।
दस्योः शङ्कित इन्द्रो हत्वाऽन्यत् कुत्सरक्षणे न्यदधात् ॥१॥
प्रथमस्य मथकसूक्ते चतुर्थमन्त्रे तदेतदाम्नातम्।
पञ्चममण्डलधारासूक्तस्य च दशममन्त्रेऽपि ॥२॥
सूर्य्यस्यास्य विधाने नियुक्त आसीत् तदैतशः सुष्विः।
सूनर्य्युषोऽभिधाना पुत्री दिव उषस उपचारे ॥३॥
चक्रं हत्वापीन्द्रः कृपयाऽरक्षत् तमेतशं मर्त्यम् ।
उषसं त्ववधीदुषसः शकटं भंक्त्वा विपाशि निक्षिप्य॥४॥
उषसो दिवः सुतायाः प्रेमवशादेव गतागतं चक्रे ।
शुष्णः सूर्य्यस्थाने दासाक्रमणे निमित्तमेषोषाः ॥५॥

अत एवेन्द्रः क्रुद्धस्तदुषोऽधिकृतं तदेकरविचक्रम् ।
स्वर्गे निनाय शकटं वाजावहमक्षिपद् विपाशायाम् ॥६॥
उषसः संबन्धादिह सर्वविधानं व्यवर्जयत् किन्तु ।
एतशहयानुवाहितचक्रमरक्षत् तदैतशाधिकृतम् ॥७॥
एतच्च वामदेवस्त्रिशे सूक्ते चतुर्थमण्डलगे ॥४।३०॥
उषसो निवर्हणं तद् व्याचष्टे शकटभङ्गं च ॥८॥
"यत्रोत बाधितेभ्यश्चक्रं कुत्साय युध्यते।
मुषाय इन्द्रसूर्य्यम् ॥ (४।३०।४)
यत्रोत मर्त्याय कमरिणा इन्द्र सूर्य्यम् ।
प्रावः शचीभिरेतशम् ॥ (४।३०।६)
एतद्धे दुतवीर्यमिन्द्र चकर्थ पौंस्यम् ।
स्त्रियं यद्दुर्हणा युवं बधीर्दुहितरं दिवः॥ (४।३०।८)
दिवश्चिद् घा दुहितरं महान्महीयमानाम् ।
उषासमिन्द्र संपिणक ॥ (४।३०।९)
अपोषा अनसः सरत्सम्पिष्टादह विभ्युषी ।
नियत्सीं शिश्नथद्वृषा ॥ (४।३०।१०)
एतदस्या अनः शये सुसम्पिष्टं विपाश्या ।
ससारसीं परावतः ॥" (४।३०।११)
सूर्य्यस्य दस्युगणतो रक्षार्थं ये न्ययुज्यन्त।
ते खलु कुत्साधीना राजानः सूर्य्यमासेदुः ॥९॥
अधितिष्ठति तं सूर्य्यम् कुत्सदभीति ध्वसन्ति तुर्वीति ।
सह राजचक्रमेवं वार्षागिर पज्जराज कुलम् ॥१०॥
इत्थं सूर्य्यस्थाने विधाय शान्ति कृतेऽखिले सुस्थे ।
सबृहस्पतिरियमिन्द्रः समरुत्सेनोऽभ्यगात्स्वर्गम् ॥११॥

२१. सूर्यसंस्था की रक्षा के लिए देवेन्द्र द्वारा किए गए स्थानीय प्रबन्ध

जो दो सूर्यचक्र थे, उनमें से एक को द्युलोक में स्थापित करने के लिए दस्युओं से शंकित होकर इन्द्र ने इस चक्र का हरण करके कुत्स की रक्षा में अन्य स्थान पर स्थापित कर दिया ॥१॥

ऋग्वेद के प्रथमण्डल के मथक सूक्त के चतुर्थ मन्त्र में तथा पंचम मण्डल के धारा सूक्त की दशम ऋचा में भी इसका वर्णन किया गया है ॥२॥

इस सूर्य की व्यवस्था के लिए सुष्वि नाम का राजा एतश नियुक्त किया गया। द्युलोक की पुत्री सूनरी नाम की उषा इसकी परिचर्या में नियुक्त हुई ॥३॥

चक्र का हरण करके इन्द्र ने कृपा करके उस मनुष्य एतश की रक्षा की और उषा को मार डाला और उसकी गाड़ी को तोड़ कर विपाशा में फेंक दिया ॥४॥

द्युलोक की पुत्री उषा के प्रेम के वशीभूत होकर ही शुष्ण ने आवागमन किया था, इसीलिए यह उषा ही सूर्यस्थान में दासों के आक्रमण का कारण थी ॥५॥

अतः इन्द्र ने क्रुद्ध होकर इस उषा द्वारा अधिकृत उस एक सूर्यचक्र को स्वर्ग में ले जाकर उसकी घोड़ो द्वारा वहन की जाने वाली गाड़ी को विपाशा में फेंक दिया ॥६॥

उषा से सम्बद्ध समस्त कार्यों का बहिष्कार कर दिया गया, किन्तु उस एतश मनुष्य द्वारा अधिकृत तथा एतश नाम के घोड़ों द्वारा वहन किये जाने वाले सूर्य-चक्र की इन्द्र ने रक्षा की ॥७॥

उषा का अन्त उसकी गाड़ी के नष्ट होने के सम्बन्ध में वामदेव ऋषि ऋग्वेद के ४।३० में वर्णन करते हैं ॥८॥

"हे इन्द्र ! शत्रु के साथ युद्ध करने वाले कुत्स की रक्षा के लिए जिस युद्ध में तूने सूर्यचक्र का हरण करके रक्षा की ॥४॥

जिस स्थान पर तूने मनुष्यों के सुखदाता सूर्य को प्रेरित किया और एतश को अपनी शक्ति से विशेष रूप से सुरक्षित किया ॥६॥

हे इन्द्र ! तूने जो यह वीरतापूर्वक पुरुषार्थ से युक्त कार्य किया, (उसके अनुसार) तूने तेरा संहार करने की इच्छा रखने वाली द्युलोक की पुत्री उषा को मारा ॥८॥

हे इन्द्र ! तू महान् है। द्युलोक की महिमा से युक्त पुत्री उषा के रथ को तूने नष्ट कर दिया, ऐसा सत्य है ॥९॥

बलशाली इन्द्र ने उषा के रथ को तोड़ डाला, तब भयभीत उषा अपनी टूटी हुई गाड़ी (रथ) से दूर हो गई ॥१०॥

इस उषा का यह टूटा हुआ रथ (गाड़ी) विपाशा नदी के किनारे पर पड़ा है और वहां से यह उषा दूर भाग गई ॥११॥

(उषा का रथ तोड़ने से तात्पर्य है कि जो कन्याएँ मर्यादा का उल्लंघन करती हैं, उनको दण्ड दिया जाता है। इसी भावार्थ से उषा को कन्या बताई गई है और उस पर प्रतिबन्ध रखने वाला सूर्य है, जो उसके स्वैर गमन को प्रतिबन्धित करता है।) ४।३०।६-८-९-१०

दस्युगण से सूर्य की रक्षा करने के लिए जिनको नियुक्त किया गया था, वे राजागण कुत्स के अधीन थे वे सूर्य के पास पहुँच गए॥९॥

कुत्स, दभीति, ध्वसन्ति, तुर्वीति और वृषागिर के पुत्रों सहित पांच राजाओं का समूह उस सूर्य की रक्षा के लिए नियुक्त था ॥१०॥

इस प्रकार उस सूर्यस्थान में शान्ति स्थापित करके समस्त प्रकार की सुव्यवस्था हो जाने पर बृहस्पति तथा देवसेना के साथ वह इन्द्र स्वर्ग को प्रस्थान कर गया ॥११॥

२२. पृथिव्यां प्रतिष्ठापितसूर्य्यद्वयादेकस्य सूर्य्यस्य दिव्यारोपणम्।

एकं चक्रं कुत्साभिरक्षणे तत्र संस्थाप्य ।
अपरं चक्रं हत्वा तं दिवमारोहयत् सूर्य्यम् ॥१॥
प्रान्यच्चक्रमवृहः सूर्य्यस्य कुत्सायान्यद् वरिवो यावतेऽकः।
अनासो दस्यूं रमृणो वधेन निदुर्य्योण आवृणङ् मृध्रर्वाचः" ॥२॥
(५।२९।१०)

२२. पृथिवी पर प्रतिष्ठापित सूर्यद्वय में से एक सूर्य का दिव्यारोपण

कुत्स की रक्षा में एक सूर्य को वहां स्थापित करके दूसरे सूर्यचक्र का हरण करके द्युलोक में आरोपित कर दिया गया ॥१॥

"हे इन्द्र ! तूने सूर्य के एक चक्र को पृथक् किया और कुत्स को धन देने के लिए अन्य चक्र का निर्माण किया। हे इन्द्र ! तूने नासिकारहित (चिपटी नाक वाले पहाड़ों में रहने वाले) दस्युओं को शस्त्र से मारा । तूने युद्ध में दुर्वचन बोलने वालों का संहार किया ॥२॥ (५।२९।१०)

२३. अग्निपुरस्कृतानां देवानां स्वर्गे सहगमनम् ।

तत्सूर्यचक्रं तु मनुष्यलोकाद्दिवि प्रणेतुं विहिते विमर्शे ।
अग्नादयस्तत्र सहोपगन्तुं चक्रुः समारम्भमनेकदेवाः ॥१॥
(११।६५।१) "अग्निरिन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमावायुः पूषा सरस्वती सजोषसः।
आदित्या विष्णुर्मरुतः स्वर्बृहत् सोमो रुद्रो अदितिर्ब्रह्मणस्पतिः॥
इन्द्राग्नी वृत्रहत्येषु सत्पती मिथो हित्वानातन्वा समोकसा ।
अन्तरिक्षं मह्यापप्रुरोजसा सोमोधृतश्रीमहिमानमीरयन्" ॥
दिवस्पतिर्यः पृथिवीपतिर्यः प्रधानतो दासवधोद्यतौ तौ।
सोमोऽन्तरिक्षस्य पतिर्घृतश्रीस्त्रयोन्तरिक्षं विपुलं तदाक्षुः॥२॥
"ब्रह्म गामश्वं जनयन्त ओषधीर्वनस्पतीन् पृथिवीं पर्वताँ अपः ।
सूर्य्यं दिवि रोहयन्तः सुदानवः आर्याव्रता विसृजन्तो अधिक्षमि ॥५॥

स्वर्णरमन्तरिक्षाणि रोचना द्यावाभूमीं पृथिवीं स्कम्भुरोजसा।
पृक्षा इव महयन्तः सुरातयो देवाः स्तवन्ते मनुषाय सूरयः" ॥ ६ ॥
दिव्यन्तरिक्षे भुवि च प्रचक्रुर्ज्योतींषि भूमिं च सुसज्जितां ते।
ये स्वर्णरास्तान् व्यदधुः सुदीप्तान् कृतोत्सवान् राजनिदेशयोगात्॥३॥
विश्वेपि देवा दिवि सम्प्रयातुं प्रतिष्ठमानाहि मनुष्यलोकात्।
नृभ्यो वसूनि व्यतरन् प्रहर्षात् तेभ्यः स्तवन्ते स्म च मानुषेभ्यः॥४॥
दिवोऽधिकारो मरुतां यथासीद् यथान्तरिक्षेऽधिकृतश्च वातः।
यथाप्सु चाब्धौ वरुणस्तथाग्निर्भूम्याः पतिर्दीर्घतमा जगाद ॥५॥
यद्यप्यमरावत्यां देवसभायां सुधर्म्मायाम् ।
धिष्ण्यानधितिष्ठन्ति हि दिक्पाला लोकपालाश्च ॥६॥
सन्ति तथापि ततोऽन्ये चत्वारो लोकपतयोऽमी ।
स्वे स्वे लोके प्रत्यासन्नाः शवसोनपात् संज्ञाः ॥७॥
शवसोनपात् स शास्ता यः स्थानीयः प्रबन्धकर्ता स्यात्।
राजप्रतिनिधिभूतः प्रान्ताध्यक्षः पुराकाले ॥८॥
योऽग्निः स देवोऽधिकृतः पृथिव्यां मनुष्यलोकेऽधिपतिर्नियुक्तः।
वह्निः स देवेभ्य इतः प्रदानं प्रगृह्य दिव्यर्पयति प्रणीय ॥९॥
"त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः।
देवेभिर्मानुषे जने ॥
यो अग्निः सप्त मानुषः श्रितो विश्वेषु सिन्धुषु॥
तमागन्मत्रिपस्त्यं मन्धातुर्दस्युहन्तारमग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम्।
नभन्ता मन्यके समे"—
इत्थं ब्रूते काण्वो नाभाकस्त्रिषु समुद्रकूलेषु ॥
भवनानि त्रीण्यग्नेर्मन्त्रकृतः सप्तमानुषान् सभ्यान्॥१०॥
मनुष्यलोकाधिपतित्वहेतोरग्निः प्रधानः स इतः पृथिव्याः॥
चक्रप्रणीतौ दिवि तेन केतुः सूर्य्यप्रणेतृत्वममुष्य वक्ति॥११॥
"अग्ने नक्षत्रमजरमासूर्य्यं रोहयो दिवि॥
दधज्ज्योतिजनेभ्यः"—(१० । १५६ । ४)
तान् प्रस्थितान् दिव्यमरान्मनुष्यास्ते स्वस्तिवाकैर्बहुधाऽभ्यनन्दन्॥
यूयं समं धीभिरितः प्रयान्तः स्वः प्राप्य तत् स्वस्तिगिरो जुषध्वम् ॥१२॥

"विश्वेदेवाः सह धीभिः पुरन्ध्वा मनोर्यजत्रा अमृता कृतज्ञाः ॥
एतिषाचो अभिषाचः स्वर्विदः स्वर्गिरो ब्रह्मसूक्तं जुषेरत" ॥
स्वं स्वं दिविस्थानमभिप्रयातान् ववन्दिरे भक्तिवशान्मनुष्याः ॥
वसिष्ठपूर्वा भुवि सूर्य्यसंस्था-प्रतिष्ठिताः स्वं च यशोऽर्थयन्तः ॥ १३ ॥
"देवान् वसिष्ठो अमृतान् ववन्दे ये विश्वा भुवनाऽभिप्रतस्थुः ॥
तेनो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २२ ॥"
(१० । ६५ । १५)

२३. अग्नि के नेतृत्व में देवों का स्वर्ग में सहगमन

उस सूर्यचक्र को मनुष्यलोक से द्युलोक में स्थापित करने का विचार करने पर अग्नि इत्यादि अनेक देवों ने स्वर्ग में सहगमन के लिए प्रयाण किया ॥ १ ॥

"अग्नि, इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा, वायु, पूषा, सरस्वती, आदित्य, विष्णु, मरुत्, महान् स्वः, सोम, रुद्र, अदिति, और ब्रह्मणस्पति, ये प्रीतिपूर्वक एक साथ मिलकर (अन्तरिक्ष को जाते हैं) ॥ १ ॥

युद्ध में अपनें शरीर की सामर्थ्य से परस्पर एक दूसरे को प्रेरित करते हुए, सज्जनों के पालक, इन्द्र और अग्नि एक स्थान पर रह कर घी युक्त समृद्ध और महान् सोम, ये सब महान् अन्तरिक्ष को अपने ओज से ढक देते हैं ॥ २ ॥ (१० । ६५ । १-२)

दासों का वध करने के लिये जो प्रधानतः उत्सुक थे, वे द्युलोकपति इन्द्र हैं और जो पृथिवीपति अग्नि है, वे दोनों तथा अन्तरिक्षपति सोम, ये तीनों ही सौभाग्य (घी और श्री) से सम्पन्न होते हुए इस विपुल अंतरिक्ष को घेर लेते हैं अथवा व्याप्त करते हैं ॥ २ ॥

"देवतागण ज्ञान, गौ, अश्व, औषधि, वनस्पति, पृथिवी, पर्वत, जल को उत्पन्न करते हुए सूर्य को आकाश में आरूढ करते हुए दानशील देव पृथिवी पर श्रेष्ठ वृत्तों का प्रचार करते हुए, स्वर्ग के मनुष्यों को और अन्तरिक्ष को प्रकाशवान् करते हुए द्युलोक और भूमि को तथा भूमि की महिमा (पृथिवी) को देवों ने अपने तेज से धारण किया। वृक्षा की तरह महिमा बढ़ाते हुए दान देने वाले देवता, विद्वान् और देव मनुष्य के लिए स्तुति करते हैं ॥" ये जो मनुष्य देव थे, उन्होंने द्युलोक, अन्तरिक्षलोक और पृथिवीलोक में भूमि पर राजाज्ञा से मनाये गये उत्सवों, सुसज्जित भूमि की महिमा और यश को विस्तारित किया ॥ ३ ॥

समस्त देवों ने साथ साथ मनुष्यलोक से द्युलोक प्रयाण करने के लिए तैयार होने पर मनुष्यों को धन का वितरण किया और हर्षपूर्वक उन मनुष्यों के लिए स्तुति की ॥ ४ ॥

दीर्घतमा ऋषि ने कहा है कि जैसा द्युलोक में मरुद्गणों का आधिपत्य है, जैसा अन्तरिक्ष में वायु का अधिकृत है, जैसा समुद्र के जलों पर वरुण का अधिकार है वैसा ही इस भूमि का स्वामी अग्नि है ॥ ५ ॥

यद्यपि अमरावती में सुधर्मा नाम की देवसभा में दिक्पाल और लोकपाल अपने अपने स्थान पर बैठते हैं, तथापि ये चार लोकों के स्वामी (अग्नि, वायु, वरुण, मरुद्गण) उनसे भिन्न हैं, जो अपने अपने लोक में प्रतिष्ठित रहते हुए शवसोनपात् (स्थानाध्यक्ष) की उपाधि को धारण करते हैं ॥६-७॥

शवशोनपात् वह शासक है, जो स्थानीय प्रबन्ध करता है, (जो क्षेत्र उसके अधिकार में है, वह उस क्षेत्र की व्यवस्था करता है), प्राचीन काल में वह शवसोनपात् राजा का प्रतिनिधि होकर प्रान्त का अध्यक्ष होता था ॥८॥

जो अग्नि देवों द्वारा अधिकृत होकर पृथिवी पर मनुष्यलोक का अधिपति नियुक्त किया गया था, वह अग्नि है तथा जो देवों के लिए इस पृथिवी से दी गई हवि को वहन करके द्युलोक में ले जाकर देवों को अर्पित कर देता है, वह वह्नि है ॥९॥

"हे अग्नि ! तू मनुष्यों के बीच समस्त यज्ञों को करने वाला है। देवों के द्वारा तुझे यहाँ स्थापित किया गया है।"

"जो अग्नि सात होता मनुष्यों और समस्त नदियों में विद्यमान रहता है, वह तीनों स्थानों (भूमि, अन्तरिक्ष और द्युलोक) में रहने वाले ज्ञानियों की रक्षा करता है। दस्युओं को मारने वाले, यज्ञ में सर्वश्रेष्ठ उस अग्नि को हम प्राप्त करें। हमारे अन्य शत्रु स्वयमेव नष्ट हो जावें ॥"

इस प्रकार अग्नि के लिए तीनों समुद्रों के किनारे मन्त्र द्वारा तीन भवनों को बनाकर कण्व मुनि ने सात सभ्य जनों को इस प्रकार कहा ॥१०॥

मनुष्यलोक का अधिपति होने के कारण यह अग्नि ही पृथिवी का प्रधान है, उसने द्युलोक में चक्र के निर्माण के सम्बन्ध में चिह्नस्वरूप इस सूर्य के प्रणेतृत्व के विषय में कहा है ॥११॥

"हे अग्नि ! जो सूर्य लोगों के लिए प्रकाश धारण करता है, उस अजर नक्षत्र सूर्य को तूने द्युलोक में प्रतिष्ठित किया है ॥ (१०।१५६।४)

उन मनुष्यों ने स्वर्गारोहण करते हुए उन देवों का अनेक प्रकार के स्वस्ति वचनों से बार-बार अभिनन्दन किया और बोले आप सब एक जैसे विचारों के साथ यहाँ से जाकर स्वर्ग में पहुँच कर इन स्वस्ति वचनों से आनन्दित होओ ॥१२॥

"इन्द्रादि" समस्त देव अपनी बुद्धि और कर्तव्य से युक्त मनुष्य के यज्ञ में यज्ञ का महत्त्व, अमृत और ऋत को जानने वाले हवि-दान को ग्रहण करने वाले, यज्ञ में साथ-साथ रहने वाले, स्वर्ग को जानने वाले होकर हमारी स्तुतियों को और सूक्तों से युक्त अन्न को ग्रहण करें ॥" द्युलोक में अपने-अपने स्थान पर जाते हुए देवों की मनुष्यों ने भक्तिपूर्वक वन्दना की और भूलोक-स्थित सूर्य-संस्था में वसिष्ठ के नेतृत्व में अपने यश की वृद्धि की याचना करते हुए प्रतिष्ठित हुए ॥१३॥

"ऋषि वसिष्ठ के वंशज ऋषियों ने अमर देवों की स्तुति की, जो देव समस्त भुवनों में अपने तेज से प्रसिद्ध हैं। वे देव आज हमें यशस्वी अन्न प्रदान करें। हे समस्त देवों ! तुम सब कल्याण से हमारी रक्षा करो ॥" (१०।६५।१५)

२४. एतशेन सूर्यरथवहनम् ।

अर्थाहरणे कर्म्मणि ये नियता व्यापृता नरा भृतकाः ।।
हरितो नरास्त उक्ताः शिरसा रश्मिभिरिमे हरन्त्यर्थान् ।।१ ।।
इन्द्रश्चक्रं स यदा दिवमनयत् तत्र हरितो नृन् ।।
व्यरमयतेन्द्रो ना त्वयमेतश एकोहरच्चक्रम् ।।
"त्वं सूरो हरितो रामयो नृन् भरच्चक्रमेतशो नायमिन्द्र ।।
प्रास्य पारं नवतिं नाव्यानामपि कर्तमवर्तयोऽयज्यून" ।।।(१ । १२१ । १३)
यद्यपि नद्यो बह्व्यस्तथापि या नौकया तार्य्याः ।।
मध्ये मार्गं नवतिस्तत्पारे चक्रमेतशो निन्ये ।।४ ।।

२४. एतश द्वारा सूर्य के रथ का वहन करना

अर्थसंग्रह के कार्य में जो सेवक जन नियुक्त किये गये थे, वे मनुष्य भी हरित नाम से कहे गए। वे मनुष्य हरित अपने मस्तक से रस्सियों द्वारा (सूर्य की किरण रूपी मस्तक से) संसार के समस्त अर्थों का हरण करते हैं ।। १ ।।

जब वह इन्द्र उस चक्र को द्युलोक में ले गया, तब उसने उन हरित नाम के मनुष्यों को वहीं रोक लिया और अकेला एतश ही उस चक्र को ले गया ।। २ ।।

"हे इन्द्र ! इस देदीप्यमान सूर्य के सदृश मनुष्यों की हितसाधिका किरणों को तू प्रकट करता है। इन्द्र के रथ का चक्र हमेशा चलता रहता है। यज्ञ न करने वालों को नावों से पार करने योग्य नब्बे नदियों के पार फेंककर तूने बड़ा उपकार किया है ।।" (१ ।१२१ ।१३)

यद्यपि नदियाँ अनेक होती हैं, तथापि जो नदियाँ केवल नाव से पार की जा सकती हैं, उन नब्बे नदियों के पार बीच रास्ते में वह एतश उस चक्र को ले गया अथवा छोड़ आया ।।४ ।।

२५. दिवि सूर्य्यारोपणस्थानम् ।

स्वर्गस्त्रिविष्टपाख्यो विष्टपमेतस्य मण्डलं खण्डम् ।।
ऐशान्यामपराजितदिशि चैन्द्रं विष्टपं त्वासीत् ।। १ ।।
प्राग्मेरुलक्षितं तु ब्राह्मं विष्टपमवाग् दिशि प्रथितम् ।।
तत उत्तरदिक्प्रथितं नाकाख्यं तु विष्टपं विष्णोः ।। २ ।।
ब्रह्माविष्णुरथेन्द्रस्त्रयोऽक्षरा मुख्यतोऽधिदैवमिमे ।।
अग्निः सोम इतीमावनुगौ पञ्चाक्षरं विश्वम् ।। ३ ।।

लोकत्रयमधिभूतं तद्वदिदं पञ्चमण्डलं क्लृप्तम् ॥
एकं मनुष्यलोकोऽन्तरिक्षमेकं त्रिविष्टपं तु द्यौः ॥४॥
ब्राह्मस्य वैष्णवस्यान्तरे स्थित विष्टपस्यास्य ॥
ब्रध्नस्य विष्टपं तत् प्रकल्पितं यज्ञसूर्य्याभ्याम् ॥५॥
आसीद्दिवस्तु मध्ये लोको ब्रध्नस्य विष्टपस्तत्र ॥
संप्रत्युत्तरतः प्राग्मेरोरंशे तु सप्तदशे ॥ (१७) ॥६॥
मध्ये चतुष्पथं यः स्कम्भोधरुणाख्य उन्नतः क्लृप्तः ॥
तदुपरि चाश्मा पृश्निर्नामहितं सूर्य्यचक्रं तत् ॥७॥
"इन्द्रो दीर्घाय चक्षसे आसूर्य्यं रोहयद्दिवि ॥
विगोभिरद्रिमैरयत्" । (ऋ. सं. १।७।३) (मधुच्छन्दाः) ॥
"इन्द्रो दिवः प्रतिमानं पृथिव्या विश्वा वेद सवना हन्ति शुष्णम् ॥
महीं चिद्द्यामातनोत् सूर्य्येण चास्कम्भ चित्कम्भनेन स्कभीयान्" ॥
(१०।१११।५)
अद्रिः सोऽश्मा पृश्निः समन्ततो गोभिराकीर्णः ॥
अहनि च दिवा च दीर्घत्विषेऽत्रसूर्य्ये तमाधत्त ॥८॥
स्कम्भस्यास्य चतुर्षु च पार्श्वेष्वासीच्चतुर्भद्रम् ॥
वृषभो ह्रदश्च चन्द्राश्वः पक्षी ते शिलाकायाः ॥११॥
"दिवो यः स्कम्भो धरुणः स्वातत आपूर्णो अंशुः पर्य्येति विश्वतः ॥
सेमे मही रोदसी यक्षदावृतासमीचीने दाधार समिषः कविः ॥
(ऋ.९.७४.२)
स्कम्भो दाधार द्यावापृथिवी उभे इमे स्कम्भो दाधारोर्वन्तरिक्षम् ॥
स्कम्भो दाधार प्रदिशः षडुर्वीः स्कम्भ दाधारोर्वन्तरिक्षम् ॥
उक्षा समुद्रो अरुषः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुराविवेश ॥
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा विचक्रमे रजसस्यात्यन्तौ" ॥ (५।४७।३)
स्कम्भोऽधिदैवतमयं व्याख्यातोऽथर्वसंहितायां यः ।
दशमे काण्डे सप्तमसूक्ते सोपीन्द्रतः क्लृप्तः ॥१२॥
"स्कम्भे लोकाः स्कम्भेऽधृत्यमाहितम् ।
स्कम्भं त्वां वेद प्रत्यक्षमिन्द्रे सर्वं समाहितम् ॥
इन्द्रे लोका इन्द्रे तप इन्द्रेऽधृत्यमाहितम् ।
इन्द्रं त्वां वेद प्रत्यक्षं स्कम्भे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥

यत्परममवमं यच्च मध्यमं प्रजापतिः ससृजे विश्वरूपम्।
कियता स्कम्भः प्रविवेश तत्र यन्न प्राविशत्कियत् तद् बभूव॥
यस्मिन् भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन्नध्याहिता ।
यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्य्यो वातस्तिष्ठन्त्यार्पिताः ॥
यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवाः अङ्गे सर्वे समाहिताः ।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेवसः ॥
यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचस्साम यजुर्मही ।
एकर्षिर्यस्मिन्नार्पितः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेवसः ॥
अस्त्यधिदैवं स्कम्भो नाकाद्वितयान्तरा ततो विपुलः ।
सूर्य्येण क्लृप्तगर्भस्तत्प्रतिमो भौमदिवि स कृतः ॥ १३ ॥
अस्ति सुषुम्णा वृषभो वरुणः समुद्रः खगश्चन्द्रः।
स्कम्भं परितस्तस्माद् भौमस्कम्भानुगा अपि ते ॥ १४ ॥
अस्ति च वेदो वृषभोऽस्त्यपां समुद्रः क्षितिश्चन्द्रः।
स्कम्भं परितस्माद् भौमे स्कम्भे परितस्ते ॥ १५ ॥

२५. द्युलोक में सूर्यारोपण का स्थान

स्वर्ग त्रिविष्टप के नाम से कहा जाता है और उसके एक खण्ड मण्डल को विष्टप कहा जाता है। अपराजिता नाम की ईशान दिशा में चन्द्र का विष्टप था ॥ १ ॥

प्राग्मेरु नाम से उपलक्षित दक्षिण दिशा में फैला हुआ ब्रह्मा का विष्टप है, उससे उत्तर दिशा में फैला हुआ नाकलोक से जो प्रारम्भ होता है, वह विष्णु का विष्टप है ॥२ ॥

ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र ये तीन अक्षर देव हैं। (सर्वशक्तिमान् शाश्वत देव हैं), इनमें मुख्य रूप से अधिदैवत्व शक्ति है। इन अधिदेवों का अग्नि और सोम अनुगमन करते हैं। इस प्रकार यह सम्पूर्ण विश्व पंचाक्षर है। इन्हीं पांच तत्त्वों पर यह विश्व आधारित है, ये ही पंच पुण्डीर हैं, जो सम्पूर्ण मण्डल में परस्पर एक दूसरे के क्रान्तिवृत्त में परिक्रमण करते हुए ब्रह्माण्ड की सत्ता को बनाए हुए हैं) ॥३ ॥

जिस प्रकार एक मनुष्य लोक पृथिवी, एक अन्तरिक्ष लोक और एक त्रिविष्टप द्युलोक ये तीनों लोकों से अधिभूत हैं, उसी तरह यह ब्रह्माण्ड पंच मण्डलात्मक हैं (पंच मण्डलात्मक ब्रह्माण्ड चन्द्रमा, पृथिवी, सूर्यपरमेष्ठी और प्रजापति के मण्डलों से समन्वित है और यही पंच, पुण्डीर विद्या है) ॥४ ॥

ब्रह्मा और विष्णु के विष्टप के मध्य इस सूर्य का विष्टप है, जो यज्ञ और सूर्य द्वारा प्रकल्पित है ॥५ ॥

आज के उत्तर प्राग्मेरु प्रदेश पर १७^{0} अक्षांश पर, जहाँ सूर्य का विष्टप है, वहाँ मध्य में प्राचीन काल में द्युलोक था ॥६॥

मध्य में जो चतुष्पथ है, जो स्कम्भोधरुणनाम से कहा जाता है, वह स्थान कुछ ऊँचाई पर बनाया गया है। इसके ऊपर वह अश्मा पृश्नि नाम का सूर्यचक्र स्थापित था ॥७॥

"इन्द्र ने विस्तृत प्रकाश के लिए द्युलोक में सूर्य को स्थापित किया। उस सूर्य ने अपनी किरणों से बादलों को प्रेरित किया ॥८॥ (१।७।३)

"इन्द्र द्युलोक और पृथिवी लोक का प्रतिमान स्वरूप है, अतः वह समस्त यज्ञों को जानता है। वह इन्द्र शुष्ण का वध करता है। वह सूर्य के द्वारा विशाल अन्तरिक्ष और पृथिवी को प्रकाशित करता है। विश्व को धारण करने वालों में से सर्वश्रेष्ठ धारक ने विश्व को अपने आधार पर धारण कर रखा है॥" ॥९॥ (१०।१११।५)

वह अश्मा पृश्नि नाम का सूर्य चारों ओर से किरणों से घिरा हुआ था। प्रतिदिन दिन के समय यहाँ इस सूर्य पर विशद मात्रा में किरणें अपना प्रकाश डाल कर अन्धकार को नष्ट करती है॥१०॥

"चतुष्पथ पर स्थित इस स्कम्भ के पार्श्व भाग में एक चतुर्भद्र था। इस चतुर्भद्र के चार स्वरूप अथवा नाम थे—वृषभ, सरोवर, चन्द्र और अश्व, जो शिला से निर्मित थे ॥ ११॥

"यह द्युलोक का आधार स्तम्भ, सबको धारण करने वाला, सर्वत्र व्याप्त होकर रहने वाला और सर्वत्र पूर्ण रूप से भरा हुआ है। यह सर्वत्र व्याप्त रहने वाला सोम इस महान् द्यावा पृथिवी में अपने कर्म से यजन करे। यह ज्ञानवर्धक सोम द्यावा पृथिवी दोनों को एक साथ धारण करता है और अन्नों को धारण करता है॥"

यह स्कम्भ (इन्द्र) द्युलोक और पृथिवी को धारण करता है, यह स्कम्भ अन्तरिक्ष को धारण करने वाला है, यह स्कम्भ छः दिशाओं को धारण करने वाला है, यह स्कम्भ इस सम्पूर्ण भुवन में व्याप्त है॥"

"तेजस्वी किरणों वाला सूर्य जल से समुद्र को भरता है। सूर्य अपने पिता सदृश आकाश के पूर्व स्थान में आ गया है। विचित्र रंगों वाली उल्का के समान यह सूर्य आकाश में स्थापित किया गया है, वहाँ पर परिक्रमा करता है। यह द्युलोक के अंतिम भागों की रक्षा करता है॥" (५।४७।३)

यह स्कम्भ अधिदैवत रूप से अथर्वसंहिता के दशम काण्ड के सप्तम सूक्त में वर्णन किया गया है, जिसके अनुसार यह स्कम्भ भी इन्द्र से व्याप्त है ॥१२॥

"यह स्कम्भ सर्वाधार परमात्मा है, उस स्कम्भ में ही तप है, उसी के आधार पर ऋत रहता है। हे स्कम्भ ! मैं तुझे प्रत्यक्ष जानता हूँ कि तुझ (इन्द्र) में ही यह सब कुछ समाया हुआ है ॥

इन्द्र में समस्त लोक, तप और ऋत रहते हैं । हे इन्द्र ! मैं तुझे प्रत्यक्ष जानता हूँ कि तू ही स्कम्भ हैं, जिसमें यह सब समाया है॥

जो श्रेष्ठ, निकृष्ट और मध्यम विश्व रूप प्रजापति ने उत्पन्न किया है, वहाँ सर्वाधार रूप इन्द्र ने कितना प्रवेश किया है और जहाँ वह प्रविष्ट नहीं हुआ है, वह कितना है।

जिसमें भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौ टिके हुए हैं और जहाँ अग्नि, सूर्य, चन्द्र और वायु आश्रय लेकर रहते हैं, जिसके शरीर में समस्त तेतीस समाहित हैं, उस सर्वाधार के विषय में बता वह कौन है ? ॥"

जिसमें पहले बने ऋषि तथा ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और महान् अर्थववेद रहे हैं, जिसमें एक मनुष्य ऋषि ने आश्रय लिया है, उस सर्वाधार के विषय में बता वह कौन है॥"
(अथर्व. १०।७)

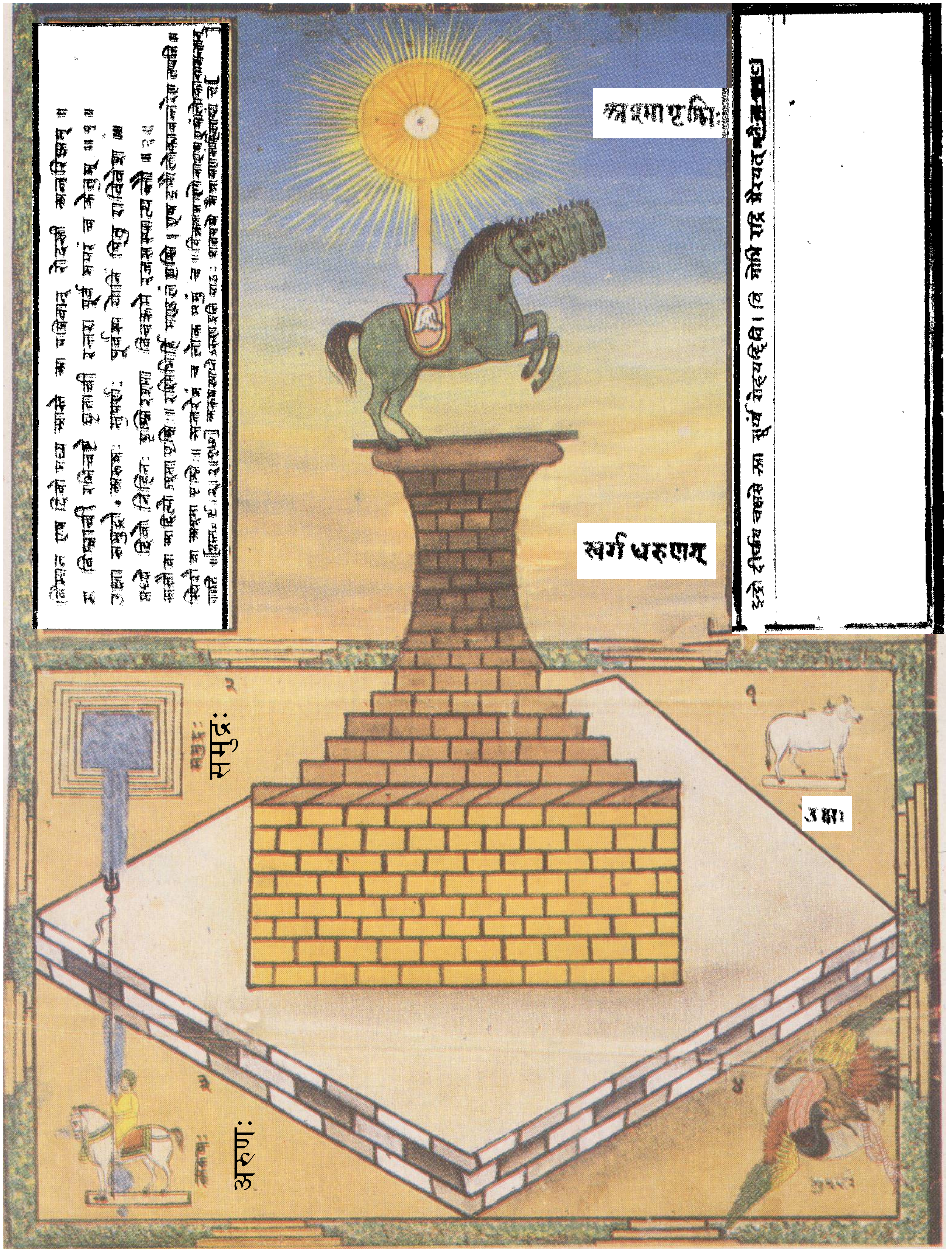
दोनों स्वर्ग लोकों के मध्य कोई विशाल अधिदेव स्कम्भव है जिसका गर्भ भाग सूर्य से आवृत है, इसी की प्रतिकृति रुप स्कम्भ की भौम-स्वर्ग में भी रचना की गई ॥१३॥

चतुर्भद्र का यह वृषभ वस्तुतः सूर्य की प्रधान किरण है तथा वरुण ही समुद्र है और पक्षी चन्द्रमा है। ये सभी स्कम्भ के चारों ओर व्याप्त हैं। इसीलिए इनको भौमस्कंम्भ में देवस्कम्भ के अनुकरण से बनाया गया है ॥१४॥

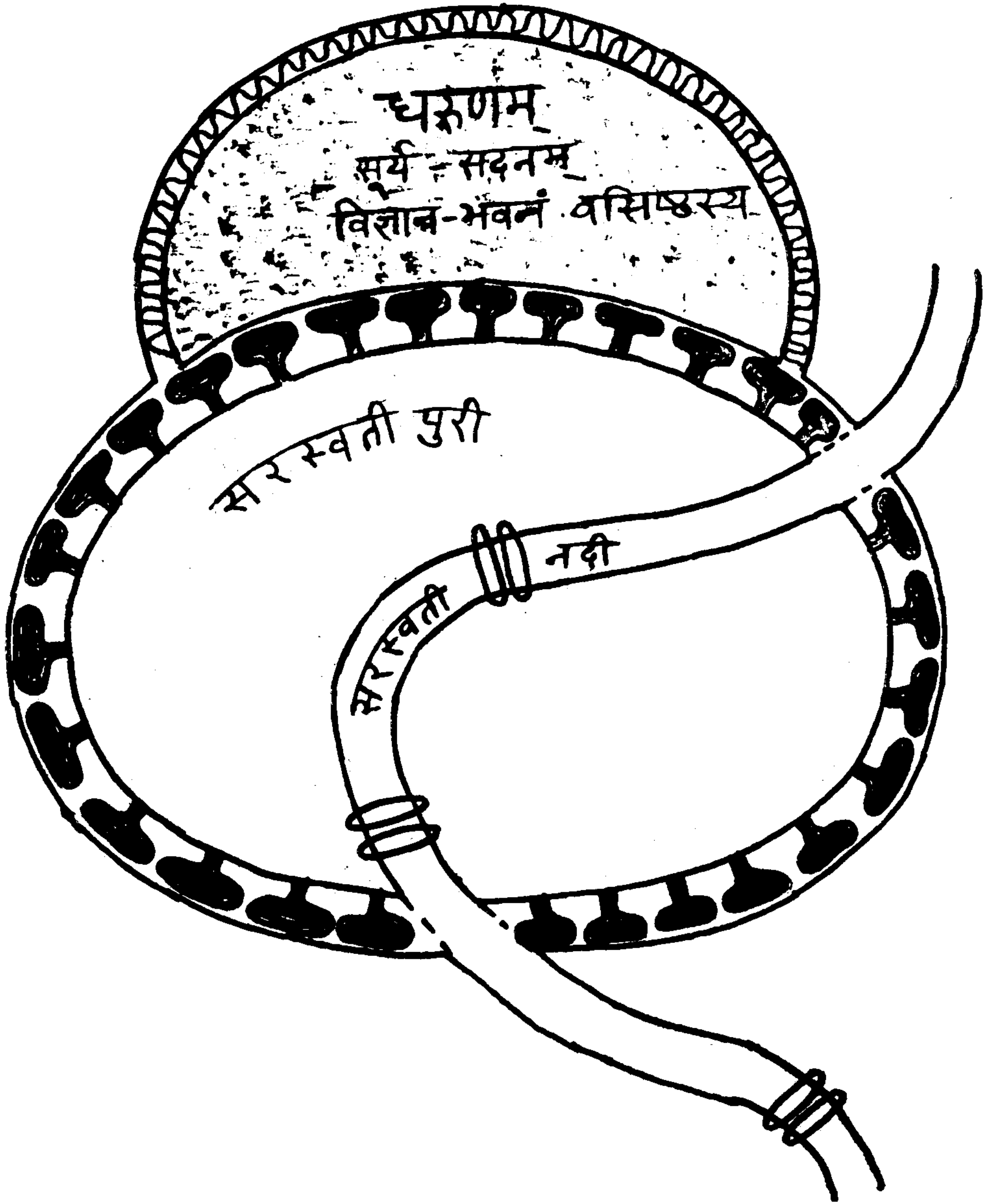
और इसी प्रकार वृषभ वेद है, प्रमुख है। जलों का समुद्र, पृथिवी और चन्द्रमा, ये सभी दैव स्कम्भ के चारों ओर हैं इसीलिये भौमस्कम्भ में भी ये चारों ओर व्याप्त हैं ।।१५॥

२६. अश्मा पृश्निः ।

देवयुगे प्रागभवद् विश्वविदितमद्भुतत्रितयम् ।
एकं मानुषलोके सूर्य्यायतनं सरस्वत्याम् ॥१॥
अन्यत् स्वर्गे प्रेङ्खं वरुणाधीनं हिरण्मयं विपुलम् ।
तत्रैवान्यद्धरुणं यत्राश्मा पृश्निराहितो रेजे ॥२॥
विशदं स्वरूपमेषामन्यत्र स्वर्गवर्णने कथितम् ।
स्वर्गे सोऽश्मा पृश्निः सुप्रथितोऽत्यद्भुतश्चासीत्॥३॥
तत उत्तरतः पन्था विष्णोश्चेन्द्रस्य ब्रह्मलोकस्य ।
पितृलोकस्य प्राच्यां दक्षिणतो ब्रह्मलोकस्य ॥४॥
तत्र चतुष्पथमध्ये स्कम्भस्योपरि विहायसि क्रान्तः।
सप्तशिरा हैमाश्वोऽश्मनि पृश्नौ चक्रमदधात् तत् ॥५॥
नक्तं दिवा च तुल्यं सूर्य्यमयूखप्रसारतो ज्योतिः।
सर्वासु दिक्षु पथिषु प्रयतामयनान्यदर्शयत्साधु ॥६॥
इत्थं भगवानिन्द्रः स्वर्गेप्येकं स सूर्य्यमारोप्य।
कीर्तिं स्वामप्रथयत् भूमौ शान्तिं च संस्थाप्य॥७॥



स्वर्ग–धरुण–परिलेख


धरूणम्
सूर्य - सदनम्
विज्ञान-भवनं वसिष्ठस्य
सरस्वती पुरी
सरस्वती नदी

इति मधुसूदनविद्यावाचस्पतिप्रणीतस्य ब्रह्मविज्ञानशास्त्रसम्बन्धिनो विज्ञानेतिवृत्तवादस्य द्वितीयपर्वणि भारतवर्षीयार्य्योपाख्याने विज्ञानभवनाख्यस्तृतीयः प्रसङ्गः सम्पूर्णः ॥३॥

२६. अश्मा प्रश्नि

प्राचीन काल में देवयुग में विश्वविदित तीन आश्चर्य थे, जिनमें से एक मनुष्यलोक में सरस्वती नगरी में सूर्यायतन में स्थित था ॥१॥

दूसरा स्वर्ग में वरुण के अधीन सुवर्णमय विशाल झूला था और तीसरा वहीं पर धरुण था, जहां अश्मा प्रश्नि रूप सूर्य सुशोभित था ॥२॥

इनका विस्तार से स्वरूप-वर्णन अन्य स्थान पर स्वर्गख्याति में किया गया है, जिसमें वर्णन है कि स्वर्ग में वह अत्यन्त अद्भुत अश्मा प्रश्नि प्रसिद्ध था ॥३॥

इस ब्रह्मलोक के उत्तर की ओर विष्णु के नाकलोक का मार्ग है, पश्चिम में चन्द्रलोक है और दक्षिण में पितृलोक है ॥४॥

इस चतुष्पथ (चौराहे) के बीच और स्कम्भ के ऊपर अश्मा प्रश्नि पर सुवर्ण के अश्वों से युक्त और सात सिर वाला वह सूर्यचक्र को धारण करता है। (सरस्वतीपुर में स्थित सूर्यसंस्था में चारों ओर जो कक्ष बने हैं उनकी स्थिति इसी प्रकार है, जिसमें मध्य में स्कम्भ पर अश्मा प्रश्नि, जो देदीप्यमान किरणों से युक्त है, वह सूर्य है, जिसके पश्चिम में चन्द्र का स्थान है, उत्तर में विष्णु का स्थान है और दक्षिण में पितृलोक रूप शालायें बनी हुई हैं) ॥५॥

रात्रि और दिन में समान रूप से फैलती हुई सूर्यसंस्था में स्थित सूर्य की किरणों की ज्योति को समस्त दिशाओं के मार्ग पर फैलाते हुए विद्वानों ने अयनों (कालचक्र और ब्रह्माण्ड की गति) को देखा है। (यह सूर्यसंस्था ही वह कार्यशाला थी, जहाँ इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के विषय में ज्ञान प्राप्त किया जा सकता था ॥६॥

इस प्रकार ऐश्वर्यवान् इन्द्र ने उस एक सूर्य को स्वर्ग में स्थापित करके, भूमि पर शान्ति स्थापित कर के अपनी कीर्ति फैलाई ॥७॥

इस प्रकार विद्यावाचस्पति श्री पं. मधुसूदन ओझा द्वारा प्रणीत ब्रह्मविज्ञान-शास्त्र से सम्बद्ध विज्ञानेतिवृत्तवाद के द्वितीय पर्व में भारतवर्षीयार्योपाख्यान में विज्ञानभवन नाम के तृतीय प्रसंग समाप्त हुआ ॥३॥

अथ दस्युनिग्रहश्चतुर्थः प्रक्रमः ॥

(१) भारतीयार्य्यराष्ट्रे वैदेशिकानार्यदासानामाक्रमणम्।

दस्यूनामुपद्रावकाणां पुनराक्रमणम्।

गतवति कतिपयकाले पुनरपि शान्तिर्व्युलुप्यत प्रायः ॥
अत्युद्धतस्वभावैराक्रम्यन्तार्य्यराष्ट्राणि ॥१ ॥
एतेऽपगणप्रमुखा आर्य्यान् गन्धर्वदेशवास्तव्यान् ॥
शश्वत् प्रपीडयन्तो व्याकुलयाञ्चक्रुरत्युग्राः ॥२ ॥
आर्य्यौ दशद्युरन्यः श्वैत्रेयोन्यो मुहुर्नियुध्यापि ॥
बलवद्दस्युभिरेतैर्हृतश्रियौ जग्मतुः परां विपदम् ॥३ ॥
सव्यं षड्गृभि-शुष्णौ वेशस्त्वायुं पुरूरवःपुत्रम् ॥
वैदथिनमृजिश्वानं पिप्रुर्मृगयश्च शूशुवान् व्यरुजन् ॥४ ॥
वयं चतूर्वयाणं सुश्रवसं चातिथिग्वमार्यं नृपम् ॥
बङ्गृद-करञ्ज-पर्णयमुख्या बहुधा निपीडयामासुः ॥५ ॥
चुमुरिर्धुनिर्दभीति-ध्वसन्ति-पुरुषन्ति-तुर्वीतीन् ॥
वार्षागिरांश्च पञ्चभ्रातृन् भूपान् प्रपीडयतः ॥६ ॥
राज्ञो यदा पिठीनस आसीद् रज्यां विवाह आदिष्टः ॥
चुमुरिर्धुनिर्बलादिव तां रजिमपजह्रतुस्तर्हि ॥७ ॥
राजादभीतिरेतौ परिभावयितुं यदा प्रवृत्तोऽभूत् ॥
प्रबलौ तदा दभीतिं चुमुरिर्धुनी तौ तमर्द्दयतः ॥८ ॥
देवेन्द्रः श्रुतवृत्तः समादिशन्ति ग्रहीतुं तौ ॥
इन्द्रकृपातो राज्ञा पिठीनसा सा रजिर्लब्धा ॥९ ॥
षष्टिसहस्राण्यस्मिन्नभिमर्दे निहताः सुभटाः ॥
दासानामित्यूचे बार्हस्पत्यो भरद्वाजः ॥१० ॥

दस्युनिग्रह चतुर्थ प्रक्रम

(१) भारतीय आर्य राष्ट्र पर विदेशी अनार्य दासों का आक्रमण

उपद्रवी दस्युओं का पुनः आक्रमण

कुछ समय व्यतीत हो जाने पर फिर से शान्ति का प्रायः लोप हो गया (अशान्ति फैल गई) क्योंकि अत्यन्त उद्धत स्वभाव वाले दस्युओं ने आर्यराष्ट्रों पर आक्रमण किया ॥ १ ॥

गन्धर्व देश में निवास करने वाले आर्यों को अत्यन्त उग्र इन अपगण (अफगान) प्रमुखों ने निरन्तर पीड़ित करते हुए व्याकुल कर दिया ॥ २ ॥

एक तो आर्य दशद्यु और दूसरा आर्य श्वैत्रेय, ये दोनों ही इन बलशाली दस्युओं द्वारा पुनः पुनः आक्रान्त होकर ऐश्वर्य से विहीन होकर घोर विपत्ति में पड़ गए ॥ ३ ॥

इन दस्युओं में ही आर्य सव्य को षड्गृभि और शुष्ण ने, पुरूरवा के पुत्र आयुराज को वेश ने, वैदथिन-ऋजिश्वा को पिप्रु, और बलवान् मृगय ने पीड़ित किया ॥ ४ ॥

आर्य वय, चतुर्वयाण, सुश्रवा और आर्य राजा अतिथिग्व को बङ्गृद-करंज और पर्णय आदि प्रमुख दस्युओं ने अनेक बार पीड़ित किया ॥ ५ ॥

इन चुमुरि और धुनि नाम के दस्युओं ने दभीति, ध्वसन्ति, पुरुषन्ति, तुर्वीती और वृषागिर के पुत्र पाँच भाई राजाओं को पीड़ित किया ॥ ६ ॥

राजा पिठीना का जब रजि के साथ विवाह निश्चित हुआ तब चुमुरि और धुनि ने बलपूर्वक उस रजि का अपहरण कर लिया ॥ ७ ॥

जब राजा दभीति इन दोनों को परास्त करने के लिए प्रवृत्त हुआ, तब उन प्रबल चुमुरि और धुनि ने दभीति को ही पीड़ित किया ॥ ८ ॥

इस वृत्तान्त को सुनकर इन्द्र ने इन दोनों (चुमुरि, धुनि) को पकड़ने का आदेश दिया और इन्द्र की कृपा से राजा पिठीना को वह रजि पुनः प्राप्त हो गई ॥ ९ ॥

बृहस्पति के पुत्र भरद्वाज ने कहा है कि इस युद्ध में साठ हजार वीर योद्धा मारे गए ॥ १० ॥

(२) कुवयकृतः कुत्सपराभवः।

कुयवः शुष्णः पिप्रुस्तुग्रः स्मदिभश्च दस्यवोऽत्युग्राः ॥
आक्रम्य सूर्य्यसंस्थामशान्तिमातेनिरे भूयः ॥ १ ॥
वेतसुनगराधीशे कुत्से तत्सूर्य्यसंस्थायाः ॥
त्राणार्थमागते सति बभूव दासैरमुष्य संमर्दः ॥ २ ॥
प्रबलः कुयवस्तमिमं कुत्सं छलतः पराभाव्य।

वेतसुजनपदसीम्नः सहसा निष्कासयामास ॥३ ॥
अपहत्यैतत् क्षेत्रं तुग्रस्मदिभौ तु शासकत्वेन।
कुयवस्तत्र तदानीं वेतसुराष्ट्रे नियोजयामास ॥४ ॥
सिन्ध्वादिस्रोतोभ्योऽपां ग्रहणं वर्जितं चक्रे।
जलनिग्रहाय शुष्णं पिप्रुं चापि प्रयोजयामास ॥५ ॥
प्रस्तरखण्डप्रचयाज्जलप्रवाहो न्यरोधि सिन्धूनाम्।
हिमवद्द्रोण्यामजिरे कृतोऽर्णवः कृत्रिमोऽवरुद्धाद्भिः ॥६ ॥
कृष्णस्तदधिष्ठाता मध्येऽर्णवमुन्नते गिरौ न्युषितः।
अहिशम्बरौ च नौभ्यो यातायातं गृहेषु चक्रुरिमे ॥७ ॥

दस्युनिग्रहणार्थं भारतीयार्य्याणां देवेन्द्रसाहाय्यलाभाय प्रयत्नः।
कुत्सादीनामार्य्यनृपाणां परित्राणोपायचिन्तासमितिः ॥

कुत्सादयोऽतिखिन्नाः किं करवामेति चिन्तयामासुः।
घौरः प्रगाथ एतानूचे समयोचितं तत्र ॥१ ॥

(१) —८।१ "मा चिदन्यद् विशंसत सखायो मा रिषण्यत।
इन्द्रमित्स्तोता वृषणं स चासुते मुहुरुक्था च शंसत ॥१ ॥
अवक्रक्षिणं वृषभं पथाजुरं गां न चर्षणी सहम्।
विद्वेषणं संवननो भयंकरं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥२ ॥
य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः।
सन्धाता सन्धिं मघवा पुरुवसुरिष्कर्ता विहुतं पुनः' ॥३ ॥

(२) -८। —६२"प्रो अस्मा उपस्तुतिं भरता यज्जुजोषति।
उक्थैरिन्द्रस्य माहिनं वयो वर्धन्ति सोमिनो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥१ ॥
अयुजो असमो नृभिरेकः कुष्टीरयास्यः।
पूर्वीरिति प्रवावृधे विश्वा जातान्योजसा भद्रा इन्द्रस्य रातयः" ॥२ ॥

(३) ८।—६३"सपूर्व्यो महानां वेनः क्रतुभिरानजे।
यस्य द्वारा मनुष्पिता देवेषु धिय आनजे ॥१ ॥
दिवो मानं नोत्सदन्त्सोम पृष्ठासो अद्रयः।
उक्थ्या ब्रह्म च शंस्या ॥२ ॥
स विद्वाँ अङ्गिरोभ्य इन्द्रो गा अवृणोदप।
स्तुषे तदस्य पौंस्यम् ॥३ ॥

स प्रत्नथा कविवृध इन्द्रो वाकस्य वक्षणिः।
शिवो अर्कस्य होमन्यस्मत्रागन्त्ववसे ॥४॥
आदूनुते अनुक्रतुं स्वाहा वरस्य यज्यवः।
श्वात्रमर्का अनूषतेन्द्रगोत्रस्य दावने ॥५॥
इन्द्रे विश्वानि वीर्या कृतानि कर्त्वानि च।
यमर्का अध्वरं विदुः ॥६॥
यत्पाञ्चजन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत।
अस्तृणद्बर्हणा विपो३र्यो मानस्य सक्षयः ॥७॥
अस्य वृष्णो व्योदन उरुक्रमिष्ट जीवसे।
यवं न पश्य आददे ॥८॥
तद्दधाना अवस्यवो युष्माभिर्दक्षपितरः।
स्याम मरुत्वतो वृधे ॥९॥"

(४) —"प्रास्मै गायत्रमर्चत वावातुर्यः पुरन्दरः।
याभिः काण्वस्योपबर्हिरासदं या सद्वज्री भिनत्पुरः"॥ (८।१।८)
अन्यन् मा प्रयतध्वं मा क्लिश्यध्वं तमेकमेवेन्द्रम्।
शरणं यात स एवाऽखिलकृच्छ्रात् तारयिष्यति नः ॥२॥
ग्रीवाछेदात्पूर्वं संधानद्रव्यमन्तरेणैव।
स च्छिन्नमङ्गमखिलं सद्यः संधाय संस्कुरुते ॥३॥
दासानां प्रबलानामिन्द्रोऽस्त्येको निबर्हणे शक्तः।
तस्मादिन्द्रं यातेत्यादिश्योचे स कुत्सादीन् ॥४॥
कुत्सं त्वामिह सूर्य्यायतनेऽस्मिन् स न्ययुङ्क्तेन्द्रः।
प्राक् स यदा गन्धर्वं सूर्य्य हत्वैतशं तत्र ॥५॥
तस्मादत्र विपन्नः शरणं याहीन्द्रमेव तं तूर्णम्।
अहमपि तमाह्वयामि तु कामगवीमिव समस्तकामदुहम् ॥६॥
गायत्रमिन्द्रसविधे नयतेत्युक्त्वा प्रगाथ एतददात्।
वाग् ब्रह्म भद्रसूक्तं गायत्रं नाम कुत्साय ॥७॥
देवानामाह्वानं त्वाहव इत्युच्यते तत्र।
आश्रावणं तदुक्तं यच्चाश्रावयति देवेभ्यः ॥८॥
अभ्यर्थनां तु देवा अभ्युपगच्छन्ति तच्छ्रौषट्।
अभ्यर्थनामयं यद्विनयवचस्तद्धि गायत्रम् ॥९॥
काण्वो हीन्द्रप्रणयी काण्वकृताभ्यर्थनास्तोत्रम्।
नीत्वा यातेत्यददात् कुत्सकरे विनयपत्रं सः ॥१०॥

तत्र प्रथमं काण्वः प्रगाथ एवार्थनांचक्रे।
दस्युवधार्थं कुत्सत्राणार्थं त्वरितमायातुम् ॥११ ॥
मेधातिथि-मेध्यातिथि-नीपातिथयस्तदेन्द्राय।
काण्वा एत्य त्रातुं चक्रुरिहाभ्यर्थनासूक्तम् ॥१२ ॥

(२) कुयव द्वारा कुत्स का पराभव

कुयव, शुष्ण, पिप्रु, तुग्र, स्मदिभ आदि प्रबल दस्युओं ने सूर्यसंस्था पर आक्रमण करके फिर से अशान्ति फैला दी ॥१ ॥

वेसतसु नगरी के राजा कुत्स के उस सूर्यसंस्था की रक्षा के लिए आने पर दासों के साथ उनका घोर युद्ध हुआ ॥२ ॥

पराक्रमी कुयव ने उस कुत्स राजा को छल से पराजित करके वेतसु जनपद की सीमा से तत्काल निष्कासित कर दिया ॥३ ॥

उस क्षेत्र का अपहरण करके कुयव ने तुग्र और स्मदिभ को उस समय उस वेतसु राष्ट्र के शासक के रूप में नियुक्त कर दिया ॥४ ॥

इसने सिन्धु आदि जलग्रहण के स्रोतों से जलग्रहण निषिद्ध कर दिया और इस जल का निग्रह (रोकना) करने के लिए शुष्ण और पिप्रु को प्रेरित किया (नियुक्त किया) ॥५ ॥

वहाँ सिन्धु आदि नदियों का जलप्रवाह प्रस्तरखण्डों (विशाल शिलाओं) को एकत्रित करके रोक दिया गया। इस जल को रोकने से हिमालय के द्रोणि-प्रदेश में एक कृत्रिम समुद्र बन गया ॥६ ॥

उस समुद्र का अधिष्ठाता कृष्ण नाम का दस्यु था, जो समुद्र के मध्य के ऊँचे पर्वत पर निवास करता था। अहि और शम्बर दोनों नौकाओं से अपने निवास पर यातायात करतेथे ॥७ ॥

दस्युओं का निग्रह करने के लिए भारतीय आर्यों का देवेन्द्र की सहायता-प्राप्ति के लिए प्रयत्न

कुत्सादि आर्य राजाओं की रक्षा के उपाय के लिए चिन्तासमिति

कुत्सादि राजा अत्यन्त चिन्तित हो गये और क्या करें ? ऐसा विचार करने लगे तब वहाँ घोर प्रगाथ ने उन्हें समयोचित सलाह दी ॥१ ॥

ऋग्वेद में इस संबंध में कुछ सूक्त हैं- यथा अष्टम मण्डल का प्रथम सूक्त " हे मित्रो ! तुम किसी अन्य देव की उपासना मत करो। तुम दुःखी मत होओ। सोम यज्ञ में सब एक साथ मिलकर स्तुति करो और इन्द्र की स्तुतियों को बार-बार बोलो" ॥१ ॥

"बलवान् बैल के समान और शत्रुसंहर्ता अजर रहने वाले गौ के समान मनुष्यों का पोषण करने वाले, विद्वेषी, सब के द्वारा पूजनीय, निग्रह और अनुग्रह दोनों करने वाले अत्यन्त महिमाशाली चराचर जगत् की रक्षा करने वाले इन्द्र की स्तुति करो" ॥२ ॥

"जिस इन्द्र ने गर्दन से खून की धारा बहने से पूर्व ही बिना पट्टी बांधे ही घाव की सन्धियों को जोड़ दिया वही मघवा ऐश्वर्यवान् इन्द्र घात्र को फिर से ठीक कर देता है ॥३ ॥"(८/१) ॥

अष्टम मण्डल के ६२वें सूक्त में —

"हे ऋत्विजो ! यदि यह इन्द्र चुप रहना चाहता है, तो इसकी स्तुति करो। सोमयागी इस इन्द्र के लिए महान् सोमान्न को स्तुतियों से बढ़ाते हैं। यह इन्द्र दान देने में कल्याणकारी है ॥" ॥१ ॥

"यह अविनाशी इन्द्र अकेले दुकेले मनुष्यों में एक ही है। यह प्राचीन मनुष्यों को तथा सम्पूर्ण पैदा हुए प्राणी मात्र को बल प्रदान करके वृद्धि को प्राप्त करता है। इन्द्र के धन कल्याणकारी हैं" ॥२ ॥

अष्टम मण्डल के ६३वें सूक्त में प्रगाथ काण्व स्तुति करते हैं —

"जिस इन्द्र के पास पहुँचने के उपायों को देवों में पालनकर्ता मनु ने प्राप्त किया, वह देदीप्ययान और प्राचीन इन्द्र कर्मो के साथ यज्ञ को प्राप्त हुआ है।" ॥१ ॥

"सोम को पीसने वाले पत्थर, प्रशंसायोग्य स्तोत्र और ज्ञान द्युलोक के स्वामी इन्द्र को न छोड़ें ॥"२ ॥

"उस विद्वान् इन्द्र ने अंगिरा ऋषियों के लिए गायों को बाहर निकाला, इसलिए इसके बल की प्रशंसा करता हूँ ॥३ ॥

ज्ञानियों को बढ़ाने वाला, स्तुतियों को प्राप्त करने वाला, कल्याणकारी इन्द्र पूर्ववत् हमारे सोम-यज्ञ में सरंक्षण के लिए आवे ॥४ ॥

हे इन्द्र ! इसके बाद ही अग्नि में यज्ञ करने वाले तथा स्तुति करने वाले धन का दान देने के लिए तेरे कर्मो का शीघ्र ही वर्णन करते हैं ॥५ ॥

स्तोतागण जिस इन्द्र को अहिंसक मानते हैं, उस इन्द्र में किए हुए तथा किए जाने वाले समस्त पराक्रम हैं ॥६ ॥

जब पंचजन प्रजा के द्वारा इन्द्र के लिए स्तुतियाँ की जाती हैं, तब वह अपनी सामर्ध्य से शत्रुओं को मारता है, ऐसा सर्वेश्वर, ज्ञानवान् इन्द्र मेरे द्वारा सत्कृत हो ॥७ ॥

इस शूरवीर इन्द्र से हम सब प्राणी जौ आदि अन्न प्राप्त करते हैं तथा अन्न के प्राप्त होने पर ही जीवन के लिए महान् कर्म करते हैं ॥८ ॥

मरुत्-सखा इन्द्र की यशोवृद्धि के लिए उस यश को धारण करते हुए संरक्षण की इच्छा करने वाले हम तुम लोगों के साथ अन्न के स्वामी हों ॥९ ॥ (८/६३)

"जो पुरंदर इन्द्र भक्तों पर कृपा करता है, उस इन्द्र के लिए गायत्री छन्द में स्तुति गाओ। जिन स्तुतियों से प्रेरित होकर कण्व के पुत्र के यज्ञ के आसन के पास जाए। वह वज्री इन्द्र शत्रु के नगरों को तोड़े ॥८/१/८) ॥१ ॥

हे मनुष्यो ! अन्य कोई प्रयत्न मत करो, किसी प्रकार का क्लेशानुभव मत करो। एकमात्र उस इन्द्र की शरण में जाओ, वही समस्त कष्टों से हमारा उद्धार करेगा ॥२ ॥

गर्दन कटने से पहले ही जोड़ने के साधन के बिना ही वह इन्द्र टूटे हुए सम्पूर्ण अंग को शीघ्र ही संस्कृत कर देता है ॥३ ॥

प्रबल दासों के मर्दन में इन्द्र ही एकमात्र समर्थ है। इसलिए इन्द्र के पास जाओ, ऐसा आदेश देकर उसने कुत्सादि से कहा ॥४ ॥

इन्द्र ने पहले जिस सूर्यसदन पर एतश को मार कर सूर्य नाम के गन्धर्व को नियुक्त किया था, वहाँ इस सूर्यसदन में इन्द्र ने तुझ कुत्स को नियुक्त किया है ॥५ ॥

इसलिए अब विपन्नावस्था को प्राप्त तुम शीघ्र ही उस इन्द्र की शरण में जाओ। मैं भी समस्त कामनाओं का दोहन करने के लिए कामगवी (कामधेनु) की तरह उस इन्द्र का आह्वान करता हूँ ॥६ ॥

इन्द्र के पास इस गायत्र स्तुति को लेकर जाओ, ऐसा कह कर प्रगाथ काण्व ने गायत्र नामक "वाग्-ब्रह्म-भद्र" सूक्त प्रदान किया ॥७ ॥

देवों के आह्वान को यहाँ "आहव" कहा गया है। देवो को सुनाये जाने वाले आख्यान को "आश्रावण" कहा जाता है ॥ उस प्रार्थना को जिससे देवता समीप पहुँचते हैं, उसे श्रौषट् कहा जाता है।अभ्यर्थना में जो विनय-वचन होते हैं, उसे गायत्र कहा जाता है ॥८-९ ॥

कण्व इन्द्र का प्रिय था, इसलिए कण्व द्वारा रचित प्रार्थना स्तोत्र को लेकर इन्द्र के पास जावे इसलिए उस काण्व प्रगाथ ने कुत्स के हाथ में वह विनयपत्र दे दिया ॥१० ॥

वहाँ सर्वप्रथम काण्य प्रगाथ ने ही उस कुत्स की रक्षा के लिए और दस्युवध के लिए शीघ्र आने के लिए इन्द्र से प्रार्थना की ॥११ ॥

इसके पश्चात् मेधातिथि, मेध्यातिथि और नीपातिथि नाम के काण्वों ने आ कर इन्द्र से रक्षा के लिए प्रार्थना सूक्त की रचना की ॥१२ ॥

(३) प्रगाथस्याभ्यर्थनासूक्तम्।

८।६२—"आयाहि कृणवाम त इन्द्र ब्रह्माणि वर्धना।
येभिः शविष्ठ चाकनो भद्रमिह श्रयस्यते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥४ ॥
धृषतश्चिद्धृषन्मनः कृणोषीन्द्र यत्त्वम्।
तीव्रैः सोमैः सपर्यतो नमोभिः प्रतिभूषतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥५ ॥

अवचष्ट ऋचीषमोऽवँता इव मानुषः ।
जुष्ट्वी दक्षस्य सोमिनः सखायं कृणुते युजं भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥६ ॥
विश्वे त इन्द्र वीर्यं देवा अनुक्रतुं ददुः ।
भुवो विश्वस्य गोपतिः पुरुष्टुत भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥७ ॥
गृणे तदिन्द्र ते शव उपमं देवतातये ।
यद्धंसि वृत्रमोजसा शचीपते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥८ ॥
समनेव वपुष्यतः कृणवन्मानुषा युगा ।
विदे तदिन्द्रश्चेतनमधश्रुतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥९ ॥
उज्जातमिन्द्र ते शव उत्त्वामुत्तवक्रतुम् ।
भूरिगो भूरि वा वृधुर्मघवन्तवशर्मणि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥१० ॥
अहं च त्वं च वृत्रहन्त्संयुज्याव सनिभ्य आ ।
अराती वा चिदद्रिवोऽनु नौशूर मंसते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥११ ॥
सत्यमिद्वा उतं वयमिन्द्रं स्तवाम नानृतम् ।
महां असुन्वतो वदो भूरि ज्योतींषि सुन्वतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः" ॥१२ ॥

८ ।६५—"यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
आयाहि तू यमाशुभिः ॥१ ॥
यद्वा प्रस्रवणे दिवो मादयासे स्वर्णरे ।
यद्वा समुद्रे अन्धसः ॥२ ॥
आत्वागीर्भिर्महामुरुं हुवे गामिव भोजसे ।
इन्द्रसोमस्य पीतये ॥३ ॥
आतइन्द्र महिमानं हरयो देव ते महः ।
रथं वहन्तु विभ्रतः ॥४ ॥
इन्द्रगृणीष उ स्तुष महाँ उग्रईशानकृत ।
एहि नः सुतं पिब ॥५ ॥
सुतावन्तस्त्वा वयं प्रयस्वन्तो हवामहे ।
इदं नो बर्हिरासदे ॥६ ॥
यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्रसाधारणस्त्वम् ।
तं त्वा वयं हवामहे ॥७ ॥
इदं ते सोम्यं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः ।
जुषाण इन्द्र तत्पिब ॥८ ॥
विश्वाँ अर्यो विपश्चितोऽतिख्यस्तूयमागहि ।
अस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥९ ॥

दाता में पृषतीनां राजाहिरण्यवीनाम्।
मा देवो मघवा रिषत्॥१०॥
सहस्रे पृषतीनामधिश्चेन्द्रं बृहस्पृथु।
शुक्रं हिरण्यमाददे॥११॥
न पातो दुर्गहस्य मे सहस्रेण सुराधसः।
श्रवो देवेष्वक्रत"॥१२॥
"इयमुते अनुष्टुतिश्चकृषे तानि पौंस्या।
प्रावश्चक्रस्य वर्तनिम्।" (८।६२।८)
"ववृत्त्वियाय धाम्न ऋक्वभिः शूर नो नुमः।
जेषामेन्द्र त्वया युजा॥" (८।६३।११)
"अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः।
यः शंसते स्तुवते धायिपज्र इन्द्रज्येष्ठा अस्मां अवन्तु देवाः॥"(८।६३।१२)

क्राण्व प्रगाथ रचित प्रार्थना-सूक्त

ऋग्वेद के ८/६२ में काण्व प्रगाथ द्वारा रचित प्रार्थना है, जिसमें वर्णन है—

"हे इन्द्र! हम तेरे उत्साहवर्धक स्तोत्रों का गान करेंगे, तू यहाँ आ! हे बलवान् इन्द्र! जिनके द्वारा तू यहाँ यश की इच्छा करने वाले यजमान का कल्याण करना चाहता है। इन्द्र के धन कल्याणकारी हैं॥४॥

हे इन्द्र! जब तू तीव्र सोमरस को देकर सत्कार करने वाले, नमस्कारों से तूझे सत्कृत करने वाले शत्रुओं का नाश करने वाले यजमान के मन को और अधिक बलवान् करता है, तब तेरे दान कल्याणकारी होते हैं॥५॥

ऋचाओं को पसन्द करने वाला यह इन्द्र जैसे मनुष्य कुओं का निरीक्षण करता है उसी तरह सबको देखता है। इस तरह प्रसन्न हुआ यह इन्द्र सोमयज्ञ करने वाले को अपना मित्र बना लेता है॥ इसलिए इन्द्र के धन कल्याणकारी हैं॥६॥

हे इन्द्र! तेरा अनुकरण करके सभी देवों ने बल और बुद्धि को धारण किया है। हे स्तुति करने योग्य इन्द्र! तू सम्पूर्ण लोकों का और गायों का स्वामी है। इसलिए इन्द्र के धन कल्याणकारी हैं॥७॥

हे शचीपते! जिस कारण तूने बल से वृत्र को मारा। इसलिए हे इन्द्र! तेरे उस श्रेष्ठ बल का यज्ञ में वर्णन करता हूँ। इन्द्र के कल्याणकारी धन को प्राप्त करना चाहता हूं॥८॥

जिस प्रकार समान मन वाली स्त्री बलवान् पुरुष को आकर्षित कर लेती है, उसी प्रकार इन्द्र भी समस्त प्राणियों और काल को अपने वश में करता है। वह इन्द्र ज्ञानयुक्त कर्म करके सर्वत्र प्रसिद्ध होता है। इन्द्र के धन कल्याणकारी हैं॥९॥

हे ऐश्वर्यवान्, अनेक गायों से सम्पन्न इन्द्र ! यजमान लोग तेरे सुख में रहते हुए, तेरे उत्पन्न बल को बढ़ाते हैं, तुझे और तेरे कर्मों को बढ़ाते हैं। इन्द्र के धन कल्याणकारी हैं ॥१० ॥

हे वृत्र को मारने वाले इन्द्र ! धन (ऐश्वर्य) की प्राप्ति के लिए मैं और तू दोनों एक हो जावें। हे शूरवीर इन्द्र ! दरिद्र मनुष्य भी इस तरह हमारा समर्थक होगा। इन्द्र के धन कल्याणकारी हैं ॥१ ॥

हम उस सच्चे इन्द्र की स्तुति करते हैं, असत्यवादी इन्द्र की नहीं। सोमयाग न करने वाले का घोर नाश होता है, परन्तु सोम को तैयार करने वाले के लिए इन्द्र के धन कल्याणकारी हों ॥१२ ॥" (८/६२) ॥

ऋग्वेद के ८/६५ में काण्व प्रगाथ की स्तुति है—

"हे इन्द्र ! तू जो मनुष्यों के द्वारा आगे, पीछे, ऊपर और नीचे की ओर से बुलाया जाता है, वह तू शीघ्र द्रुतगामी घोड़ों से आ ॥१ ॥

अथवा हे इन्द्र ! तू द्युलोक के जल के उद्गमस्थान में, अथवा स्वर्ग को प्राप्त कराने वाले यज्ञ में अथवा सोमरस के प्रभाव में आनन्दित होता है ॥२ ॥

हे इन्द्र ! मैं तुम महान् और विशाल इन्द्र को सोमपान के लिए अपनी वाणियों से उसी तरह बुलाता हूँ जिस तरह खाने के लिए गाय को बुलाते हैं ॥३ ॥

हे दिव्य इन्द्र ! महान् यशस्वी तेरे ये घोड़े तुझे रथ में बिठाकर ले आवें ॥४ ॥

हे वीर, महान्, सबके स्वामी इन्द्र ! मैं तेरे गुणों का वर्णन करता हूँ, तेरी स्तुति करता हूँ, तू आकर हमारे द्वारा प्रदत्त सोम का पान कर ॥५ ॥

हे इन्द्र ! हम अन्न वाले हैं और सोम याग करने वाले हैं, हम तुझे हमारे आसन पर बैठने के लिए बुलाते हैं ॥६ ॥

हे इन्द्र ! क्योंकि तू अनेक लोगों द्वारा धारण किया जाता है, अतः हम तेरा आह्वान करते हैं ॥७ ॥

हे इन्द्र ! यज्ञकर्ता तेरे लिए पत्थरों से मीठे सोम को कूटते हैं, अतः तू प्रसन्न होकर उसका पान कर ॥८ ॥

हे इन्द्र ! तू शीघ्र आकर सभी ज्ञानियों को देखकर उसका निरीक्षण कर और हमें खूब अन्न प्रदान कर ॥९ ॥

हे देवो ! हिरण्यवर्ण की गायों का स्वामी वह इन्द्र मुझे धन देने वाला है और वह कभी हिंसा न करे ॥१० ॥

इन्द्र की कृपा से हजारों गायों से युक्त, प्रसन्नता देने वाले, महान्, बहुत और तेजस्वी स्वर्ण को प्राप्त करता हूँ ॥११॥

असहाय तथा दुःख में पड़े मेरे लोग हजारों तरह से उत्तम धन वाले हों और देवों में यश को प्राप्त करें" ॥१२॥ (८/६५)

"हे इन्द्र ! तूने उन पराक्रमों को किया है, इसलिए यह अनुकूल स्तुति तुम्हारे लिए ही है। तू हमारे रथचक्र के मार्ग का संरक्षण कर ॥" (८/६३/८)

"हे शूरवीर इन्द्र ! हम तुझ तेजस्वी और यज्ञरक्षक की स्तोत्रों से स्तुति करते हैं। हम तेरी सहायता से विजयी बनें ॥" (८/६३/११)

वह इन्द्र, जो बलशाली है, स्तुति करने वाले तथा प्रशंसा करने वाले के पास स्वयं जाता है, ऐसा इन्द्र, रुद्र, हमारे लिए वृष्टि करने वाले मेघ तथा जिनमें इन्द्र सबसे प्रमुख हैं, ऐसे सभी देव मिलकर वृत्र को मारने वाले संग्राम में हमारी रक्षा करें ॥ (८/६३/१२)"

(४) मेघातिथेरभ्यर्थनीयं वाग्ब्रह्म।

८।१—"यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये।
अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेऽहा विश्वा च वर्द्धनम् ॥३॥
विततूर्य्यन्ते मघवन्, विपश्चितोऽर्य्योविपोजनानाम्।
उपक्रमस्व पुरुरूपमाभर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥४॥
महेचन त्वामद्रिवः परा सुल्काय देयाम्।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥५॥
वस्याँ इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः।
माता चेमे छदयेथः समावसो वसुत्वनाय राधसे ॥६॥
क्वेयथ क्वेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः।
अलर्षि युध्म खजकृत् पुरन्दर प्रगायत्रा अगासिषुः ॥७॥
ये ते सन्ति दशग्विनः शतिनो ये सहस्रिणः।
अश्वासो ये ते वृषणो रघुद्रुवस्तेभिर्नस्तूयमागहि ॥८॥
आ त्वाद्य सवर्दुघां हुवे गायत्र वेपसम्।
इन्द्रं धेनुं सुदुघामन्यामिषमुरुधारामरं कृतम् ॥९॥
यत्तुदत्सूर एतशं वङ्कूवातस्य पर्णिना।
वहत्कुंत्समार्जुनेयं शतक्रतुस्तत्सरद् गन्धर्वमस्तृतम्" ॥१०॥
"मा भूमनिष्या इवेन्द्र त्वदरणा इव।

वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्महि ॥(८।१।१३)
अधज्मो अधवादिवो वृहतो रोचनादधि।
अया वर्धस्व तन्वागिरा ममा ज ता सुक्रतो पृण (८।१।१८)
मात्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं गिरा।
भूर्णि मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत् ॥(८।१।२०)
इहि तिस्रः परावत इहि पञ्चजनां अति।
धेना इन्द्रावचाकशत् ॥" (८।३२।२२)

मेधातिथि द्वारा स्तुति करने योग्य वाग्ब्रह्म

ऋग्वेद के अष्टम मण्डल के प्रथम सूक्त में मेधातिथि इन्द्र की स्तुति करते हैं:—

" हे इन्द्र ! यद्यपि ये समस्त प्रजाएँ अपनी रक्षा के लिए तुझे प्रतिदिन बुलाती हैं, फिर भी हमारी स्तुति प्रतिदिन तेरी महिमा को बढ़ाने वाली हो ॥३ ॥

हे मघवन् ! विद्वान् और श्रेष्ठ पुरुष, लोगों की पालना करने वाले तेरे उपासक संकटों से पार हो जाते हैं। अतः तू हमारे पास आ तथा हमें हमारी रक्षा के लिए सदैव पास रहने वाले, अनेक रूपों वाले बल को प्रदान करे ॥४ ॥

हे वज्री, सैंकड़ों प्रकार के ऐश्वर्य वाले इन्द्र ! मैं तुझे बहुत बड़े शुल्क देने वाले को भी न दूँ, हे इन्द्र ! मैं तुझे हजारों का मूल्य देने वाले को न दूँ, दस हजार के लिए भी न दूँ, सैंकड़ों के लिए भी न दूँ। (भक्त अपने स्वामी को कोई भी कीमत लेकर बेचना नहीं चाहता है।) ॥१५ ॥

हे इन्द्र ! तू मेरे पिता की अपेक्षा अधिक धनवान् हैं, मेरे कंजूस भाई की अपेक्षा भी अधिक धनवान् है, जो धन का उपयोग नहीं करता है। परन्तु तू मेरी माता के समान है। हे वसो ! धन और निवास की प्राप्ति के लिए तुम उन दोनों और मुझे समर्थ बनाओ ॥६ ॥

हे इन्द्र ! यह नहीं जाना जा सकता है तू कहाँ जाता है, कहाँ रहता है?, क्योंकि तेरा मन सभी जगह जाने वाला है। हे पुरंदर, हे युद्ध करने में कुशल ! तू हमारे पास आ। स्तुति करने वाले हम तेरी स्तुति करते हैं ॥७ ॥

हे इन्द्र ! तेरे ये दस योजन तक जाने वाले, सैंकड़ों योजन, और हजारों योजन तक जाने वाले घोड़े हैं। तेरे जो बलवान् और तेज दौड़ने वाले घोड़े हैं, उन घोड़ों से तू शीघ्रता से हमारे पास आ ॥९ ॥

हे इन्द्र ! आज मैं इन्द्र का सत्कार करने के लिए, समस्त कामना पूर्ति करने वाली, गायत्री छन्द रूपा वाणी वाली, सरलता से समस्त फलों को देने वाली, अनेकों धाराओं वाली, अन्न-प्रदायिका, अलंकृता धेनु अर्थात् वाणी का आह्वान करता हूँ ॥

जब सूर्य ने वायु के वंकू पणि के द्वारा एतश को पीड़ित किया तब आर्जुनेय कुत्स चमकीले प्रकाश को ले गया और वह गन्धर्व मेघ के पास पहुँचा।"

(यहाँ अर्थ इस प्रकार लिया जा सकता है कि जब सूर्य ने वायु की वंकू अर्थात् टेढ़ी मेढ़ी लहरों को प्रेरित करके एतश अर्थात् मेघ को झकझोरा, तब मेघ के घर्षण से विद्युत् की उत्पत्ति हुई और आर्जुनेय अर्थात् चमकीला कुत्स (प्रकाश) चारों ओर फैल गया तब मेघ नीचे झुक गया)" ॥१०॥

"हे वज्रधारी इन्द्र! हम निकृष्ट मनुष्यों की तरहन होवें । तेरे साथ आनन्दरहित भी न होवें, सूखे वनों की तरह भी न होवें। हम शान्त स्थिति वाले घर में रहकर तुम्हारी स्तुति करें॥" (८/१/१३)

हे इन्द्र! इस समय तू चाहे पृथिवी पर हो, अथवा अन्तरिक्ष में हो अथवा इस प्रकाशमान द्युलोक से भी ऊपर हो, तब भी तू इस तुच्छ स्तुति से भी वृद्धि को प्राप्त हो। हे सुकृती! तू मेरे पुत्रादि को भी पूर्ण कर॥" (८/१/१८)॥

"हे इन्द्र! मैं यज्ञों में सोम को छानने से और अपनी वाणी से सदा तुझे प्रसन्न करूँ। मैं सदैव याचना करके सिंह के समान सर्वेश तुझ को क्रोधित न करूँ। अथवा विचार करता हूँ कि अपने स्वामी से कौन नहीं मांगता है? अर्थात् स्वामी तो सदैव दाता ही होता है॥ (८/१/२०)

"हे इन्द्र! तू हमारी वाणियों को सुन और हमारे तीनों सवनों में हमारे पास आ। तू पांचों के लोगों का अतिक्रमण करता हुआ हमारे पास आ॥" (८/३२/२२)॥

(५) मेध्यातिथेरभ्यर्थनासूक्तम्।

"एन्द्र याहि मत्स्व चित्रेण देव राधसा।
सरो न प्राम्युदरं सपीतिभिरासोमेभिररु स्थिरम्॥" (८।१।२३)
आत्वा सहस्त्रमाशतं युक्ता रथे हिरण्यये।
ब्रह्म युजो हरय इन्द्र केशिनो वन्तु सोमपीतये॥८।१।२४)
अत्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या।
शितिपृष्ठा वहताँ मध्वो अन्धसोविवक्षणस्य पीतये॥(८।१।२५)
पिबात्वस्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वया इव।
परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुमदाय पत्यते॥(८।१।२६)
य एको अस्ति दसना महाँ उग्रो अमिव्रतैः।
गमत् स शिप्री न स योषदागमद्धवं न परिवर्जति॥(८।१।२७)

त्व पुरं चरिष्णवं बधैः शुष्णस्य सं पिणक्।
त्वं भा अनुचरो अधद्विता यदिन्द्रहव्यो भुवः ॥(८।१।२८)
ममत्वा सूर उदिते मम मध्यन्दिने दिवः।
मम प्रतित्वे अपि शर्वरे वसवा स्तोमासो अवृत्सत।(८।१।२९)
वयँ घत्वा सुतावन्त आपो न वृक्त वर्हिषः।
पवित्रस्य प्रस्त्रवणेषु वृत्रहन् परिस्तोतार आसते॥(८।३३।१)
स्वरन्ति वा सुतेनरो वसो निरेक उक्थिनः।
कदा सुत तुषाण ओक आगम इन्द्रस्वब्दीव वंसगः॥(८।३३।२)
सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽवतः।
वृषा ह्युग्र श्रृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः॥ (८।३३।१०)
वृषणस्ते अभीशवो वृषा कशा हिरण्ययी।
वृषा रथो मघवन् वृषणाहरी वृषा त्वं शतक्रतो॥(८।३३।११)
एन्द्र याहि पीतये मधुशविष्ठ सोम्यम्।
नायमच्छा मघवा श्रृणवद् गिरो ब्रह्मोक्था च सुक्रतुः॥(८।३३।१३)
वहन्तु त्वा रथेष्ठामा हरयो रथयुजः।
तिरश्चिदर्य्यं सवनानि वृत्रहन्नन्येषां या शतक्रतो॥(८।३३।१४)
नहि षस्तव नो मम शास्त्रे अन्यस्य रण्यति।
यो अस्मान् वीर आनयत्॥ (८।३३।१६)
अधः पश्यश्व मोपरि संतरां पादकौ हर।
माते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ" ॥ (८।३३।१९)

(५) मेध्यातिथि-रचित प्रार्थना-सूक्त

ऋषि मेध्यातिथि इन्द्र की स्तुति के लिए सूक्त रचना करते हुए कहते हैं " हे इन्द्र! तू तेजस्वी है। हमें चाहने योग्य धन देकर आनन्दित कर। तू अपने विशाल उदर को स्वर्णमय सोम रस से भर तालाब की तरह भर॥(८/१/२३)।

हे इन्द्र! तू सौ घोड़ों के साथ आ। तेरे सोने के रथ में ब्रह्मशक्ति से जुड़े हुए हजारों घोड़े तुझे सोम के लिए ले आवें ॥ (८/१/२४)॥

हे इन्द्र! यह आनन्दकारी सोम रस है, जिसकी तू इच्छा करता है, इसे पीने के लिए स्वर्ण के रथ में मोर के समान रंग वाले तथा सफेद पीठ के घोड़े तुझे यहाँ लावें॥८/१/२५)

हे वाणी से स्तुत्य इन्द्र! पहले के समान इस निचोड़े गये, परिष्कृत किए गए और दिव्य रस को आज भी पी। यह भली प्रकार निचोड़ा गया सोमरस तुझे आनन्द देने के लिए बह रहा है ॥(८/१/२६) ॥

जो इन्द्र अकेला ही अपने उत्तम कर्मों के कारण महान् पराक्रमी है और नियम पालन के कारण श्रेष्ठ है। ऐसा श्रेष्ठ रूपवान् इन्द्र हमारे पास आवे, वह हमसे दूर न जावे, वह हमारे यज्ञ में आवे, हमारा यज्ञ न छोड़े ॥(८/१/२७) ॥

हे इन्द्र! तूने जब वधयोग्य अपने शस्त्रों से शुष्ण नाम के असुर के चलते फिरते नगर का ध्वंस किया। तू दिव्य मार्ग का अनुसरण करता है। इसलिए तू दोनों तरह से प्रशंसनीय हुआ ॥११(८/१/२८) ॥

हे इन्द्र! सूर्योदय होने पर मेरे स्तोत्र तुझे प्राप्त हों। मध्याह्न के समय, तथा सूर्यास्त के समय भी मेरे स्तोत्र तुझे प्राप्त हों ॥(८/१/२९) ॥

हे वृत्रासुर को मारने वाले इन्द्र! सोमरस को निकाल कर पवित्र छलनी से नीचे टपकने वाले सोम के पास जल के समान फैले हुए आसनों पर हम उपासक गण चारों ओर बैठते हैं ॥(८/३३/१)

हे सबको निवास देने वाले इन्द्र! तेरा यशोगान करने वाले लोग सोम को चुवाने के समय तेरा ही यशोगान करते हैं। सोम का प्यासा तू आवाज करते हुए बैल की तरह कब हमारे निवासस्थान पर आयेगा ॥ (८/३३/२)

हे शक्तिशाली इन्द्र! यह सत्य है कि तू इस प्रकार से शक्तिशाली है। तू शक्तिशाली लोगों के पास शीघ्रता से जाता है, तू बलवान् के रूप में प्रसिद्ध है, तेरा कभी कोई घेराव नहीं करता है। तू दूर और पास के देशों में बलवान् के रूप में ही सुना गया है ॥(८/३३/१०)

हे इन्द्र! तेरा रथ बलशालो है, तेरे दोनों घोड़े बलशाली हैं, तेरी सुवर्णमयी चाबुक भी बलशाली है और लगाम बलशाली है। इसी तरह हे शतक्रतो! तू स्वयं बलवान् हैं। ॥(८/३३/११)

हे बलशाली इन्द्र! इस सोम्य मधु को पीने के लिए तू हमारे पास आ। हे बलशाली, सुन्दर कार्य को करने वाले इन्द्र! तू हमारी वाणी, ज्ञान और स्तुति को भली प्रकार सुन ॥(८/३३/१३) ॥

हे वृत्र को मारने वाले शतक्रतो! रथ में आसीन तुझ श्रेष्ठ इन्द्र को रथ में जुते हुए घोड़े दूसरो के यज्ञों का तिरस्कार करते हुए हमारे यज्ञ में लेकर आवें ॥(८/३३/१४) ॥

जो वीर इन्द्र हमारा नायक है। वह न तुम्हारे शासन में रहना पसन्द करता है, न मेरे शासन में और न ही अन्य किसी से शासन में रहना पसन्द करता है ॥(८/३३/१६)"

हे स्त्री! तू सदा नीचे देख, ऊपर की ओर नहीं, पैरों को पास-पास रखकर चल, तेरे शरीर के दोनों भाग (ऊपर और नीचे का भाग) दिखाई न दे, क्योंकि तू ब्रह्मा की स्त्री थी ॥(इस मन्त्र में स्त्रियों को लज्जा और विनम्रता की शिक्षा दी गई है) ॥(८/३३/१९) ॥

(६) नीपातिथेरभ्यर्थनासूक्तम्।

८।३४ "एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम्।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१॥
आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण यच्छतु।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥२॥
अत्रा वि नेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥३॥
आ त्वा कण्वा इहावसे हवन्ते वाजसातये।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥४॥
दधामि ते सुतानां वृष्णे न पूर्वपाय्यम्।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥५॥
स्मत्पुरन्धिर्न आ गहि विश्वतो धीर्न ऊतये।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥६॥
आ नो याहि महेमते सहस्रोते शतामघ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥७॥
आ त्वा होता मनुर्हितो देवत्रावक्षदीड्यः।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥८॥
आ त्वा मदच्युता हरी श्येनं पक्षेव वक्षतः।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥९॥
आ याह्यर्य आ परि स्वाहा सोमस्य पीतये।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१०॥
आ नो याह्युपश्रुत्युक्थेषु रणया इहे।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥११॥
सरूपैरा सु नो गहि संभृतैः सम्भृताश्वः।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१२॥
आ याहि पर्वतेभ्यः समुद्रस्याधि विष्टपः।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१३॥
आ नो गव्या न्यश्व्या सहस्रा शूर दर्दृहि।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१४॥
आ नः सहस्रशो भरायुतानि शतानि च।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१५॥

(६) नीपातिथि-रचित प्रार्थना-सूक्त

ऋग्वेद के ८/३४ में नीपातिथि द्वारा अभ्यर्थना की गई है —

" हे इन्द्र ! तुम अपने घोड़ों से कण्व की स्तुति के पास आओ। हे द्युलोकवासी इन्द्र! इस द्युलोक का शासन करने वाले तुम फिर द्युलोक को चले जाओ ॥१॥

हे इन्द्र ! इस यज्ञ में सोमरस निकालने का पत्थर आवाज करते हुए तुम्हें प्राप्त होवे। हे दिवावसो! इस द्युलोक का शासन करने के पश्चात् तुम फिर द्युलोक में चले जाओ ॥२॥

हे द्युलोकवासी इन्द्र ! इस सोमयज्ञ में सोमलता पत्थरों को उसी तरह कँपाती है, जिस तरह भेड़िया भेड़ को कंपाता है। हे इन्द्र ! इस द्युलोक का शासन करके तुम फिर द्युलोक चले जाओ ॥३॥

हे इन्द्र! यहाँ यज्ञ में कण्व के पुत्र तुम्हें संरक्षणं तथा अन्न के लिए बुलाते हैं। हे द्युलोक मे रहने वाले इन्द्र! तुम इस द्युलोक का शासन करके फिर द्युलोक में चले जाओ ॥४॥

हे इन्द्र! मैं सर्वप्रथम वायु के समान तुम्हें सोम रस देता हूँ। हे द्युलोकवासी इन्द्र! द्युलोक का शासन करके तुम फिर द्युलोक में चले जाओ ॥५॥

हे इन्द्र! तुम बुद्धिमान् हो, चारों ओर बुद्धि को फैलाने वाले हो, तुम हमारी रक्षा के लिए आओ। हे द्युलोकवासी इन्द्र! इस द्युलोक का शासन करके तुम फिर द्युलोक में चले जाओ ॥६॥

हे महान् बुद्धिमान्, हजारों तरह से क्षमा करने वाले, सैंकड़ों प्रकार के धन वाले इन्द्र! हमारे पास आओ। हे द्युलोकवासी इन्द्र! द्युलोक का शासन करने वाले तुम फिर द्युलोक में चले जाओ ॥७॥

हे इन्द्र! देवों द्वारा स्तुति करने योग्य, मनुष्यों का हित चाहने वाला यह अग्नि तुम्हें हमारे पास ले आए। हे द्युलोकवासी इन्द्र! इस द्युलोक का शासन करने वाले तुम फिर द्युलोक में चले जाओ ॥८॥

हे इन्द्र ! बाज पक्षी जैसे अपने पंखों के आश्रय से जाता है, उसी तरह मद को चुवाने वाले घोड़े तुम्हें हमारे पास लेकर आवें। हे द्युलोकवासी इन्द्र! इस द्युलोक का शासन करने वाले तुम फिर द्युलोक को चले जाओ ॥९॥

हे श्रेष्ठ इन्द्र! उत्तम ढंग से समर्पित इस सोम का पान करने के लिए हमारे पास आओ। हे द्युलोकवासी इन्द्र! द्युलोक का शासन करने वाले तुम फिर द्युलोक को चले जाओ ॥१०॥

हे इन्द्र! स्तुतियों को सुनकर तुम हमारे यज्ञ में आकर हमे आनन्दित करो। हे द्युलोक में रहने वाले इन्द्र! द्युलोक का शासन करने वाले तुम फिर द्युलोक को चले जाओ ॥११॥

हे उत्तम घोड़ो वाले इन्द्र! सुन्दर रूपवान् और पुष्ट घोड़ों से तुम हमारे पास आओ। हे द्युलोकवासी! द्युलोक में शासन करने वाले तुम फिर द्युलोक को चले जाओ ॥१२॥

हे इन्द्र ! तुम पर्वतों और समुद्र के प्रदेशों से हमारे पास आओ। हे द्युलोकवासी इन्द्र इस द्युलोक का शासन करके तुम फिर द्युलोक को चले जाओ ॥१३॥

हे शूरवीर इन्द्र ! तुम हमें हजारों गायें और घोड़े दो। हे द्युलोकवासी इन्द्र ! द्युलोक का शासन करने वाले तुम फिर द्युलोक को जाओ ॥१४॥

हे इन्द्र ! हमें हजारों और सैंकड़ों प्रकार से धन देकर ऐश्वर्य शाली बनाओ। हे द्युलोकवासी इन्द्र ! द्युलोक का शासन करने वाले तुम फिर द्युलोक को जाओ ॥१५॥

भर्गस्य प्रगाथस्याभ्यर्थनासूक्त्।

८।६१ 'उभयं श्रृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आगमत् ॥१॥
तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे घिषणे निष्टतक्षतुः।
उतोपमानां प्रथमो निषीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥२॥
आवृषस्व पुरूवसो सुतस्येन्द्रान्धसः॥
विद्मा हित्वा हरि वः पृत्सु सासाहे मधृष्ठं चिद्दधृष्वणिम् ॥३॥
अप्रामि सत्य मघवन्तथे दसदिन्द्र क्रत्वा यथावशः।
सनेमवाजं तव शिप्रिन्नवसा मक्षूचिद्यन्तो अद्रिवः ॥४॥
शग्ध्यूउषु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
भगं नहि त्वा यशसं वसुविदमनुशूर चरामसि ॥५॥
पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवा मस्युत्सो देव हिरण्ययः।
न किर्हि दानं परिमधिषत्त्वे यद्यद्यामि तदाभर ॥६॥
त्वं ह्येहि चेरवे विद्राभगं वसुत्तये।
उद्वोवृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥७॥
त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथादानाय मंहसे।
आ पुरन्दरं चकृम विप्रवचस इन्द्र गायन्तोऽवसे ॥८॥
अविप्रो वा यदविधद्विप्रो वेन्द्रते वचः।
स प्रममन्दत्वाया शतक्रतो प्राचामन्यो अहंसन ॥९॥
उग्रबाहुर्म्रक्ष कृत्वा पुरन्दरो यदि मे शृणवद्धवम्।
वसूयवो वसुपति शतक्रतुं स्तोमैरिन्द्रं हवामहे ॥१०॥
न प्यपासो मनामहे नारायसो न जल्हवः।
यदिन्विन्द्र वृषणं स चा सुते सखायं कृणवामहे ॥११॥
उग्रं युयुज्म पृतनासु सासहि मृणकाति मदाभ्यम्।
वेदा भृमं चित्सनितारथी तमो वाजिनं यमिदूनशत् ॥१२॥
यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि।

मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिर्विद्विषो वृमृधो जहि ॥१३॥
त्वं हि राधस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधतः।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्रगिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥१४॥
इन्द्रः स्पलुत वृत्रहा परस्यानो वरेण्यः।
सनो रक्षिषच्चरमं समध्यमं सपश्चात्पातु नः पुरः ॥१५॥
त्वं नः पश्चादधरादुत्तरात्पुर इन्द्र निपाहि विश्वतः।
आरे अस्मात्कृणु हि देव्यं भयमारे हेतीरदेवीः ॥१६॥
अद्याद्याश्वः श्व इन्द्र त्रास्व परे च नः।
विश्वाचनो जरितृन्त्सत्पते अहादिवानक्तं च रक्षिषः ॥१७॥
प्रभङ्गी शूरी मघवा तुवीमघः सम्मिश्लो वीर्यायकम्।
उभाते बाहू वृषणा शतक्रतो निया वज्रं मिमिक्षतुः ॥१८॥"

(७) ऋषि भर्ग प्रगाथ-रचित प्रार्थनासूक्त

भर्ग प्रगाथ के अभ्यर्थनासूक्त को ऋग्वेद के ८/६१ के अनुसार—

"वह इन्द्र हमारी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों स्तुतियों को पास से सुने और वह शूरवीर और ऐश्वर्यशाली इन्द्र यज्ञ में साथ बैठकर की गई स्तुतियों को सुनकर सोम-पान के लिए हमारे पास आवे ॥१॥

उस स्वराट् तथा बलवान् इन्द्र को यह द्युलोक और पृथिवीलोक बलशाली और उत्तम बनाते हैं। हे इन्द्र, तुम उन उपमायोग्य देवों में श्रेष्ठ हो, क्योंकि तेरा मन सोमपान की इच्छा करता है ॥२॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! तु हमारे लिए सोमरूपी अन्न की वर्षा कर, हे घोड़ों से युक्त, युद्ध में शत्रु को हराने वाले, स्वयं पराजित न होने वाले, दूसरों को मानने वाले हम तुम्हें जानते हैं ॥३॥

हे ऐश्वर्यशाली, सत्य का पालन करने वाले इन्द्र ! तुम कर्म करके जैसी कामना करते हो, वैसा ही होता है। हे श्रेष्ठ और शिरस्त्राण पहनने वाले इन्द्र ! हम शीघ्र ही जीते हुए तेरे संरक्षण में अन्न को प्राप्त करें ॥४॥

हे शचीपते इन्द्र ! हमें सभी प्रकार की रक्षाओं से समर्थ कर। हे शूरवीर इन्द्र ! हम भाग्यवान् और यशस्वी धन की प्राप्ति करने वाले बन कर तुम्हारा अनुसरण करें ॥५॥

हे इन्द्र ! तुम प्रजाओं के स्वामी हो, गाय, घोड़े, को समृद्ध (अनेक) बनाने वाले हो तथा तुम स्वर्ण के उद्‌गम स्थान हो, तुम्हारे द्वारा दिए गए दान को कोई नष्ट नहीं कर सकता है, इसलिए मैं जो कुछ याचना करता हूँ, वह सब मुझे प्रदान करो ॥६॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! हम तेरी सेवा करने वाले हैं, तू हमें दान देने के लिए ऐश्वर्य प्रदान कर। तू आ तथा गाय की इच्छा करने वाले हमें गायें दे, अश्व की इच्छा करने वाले हमें अश्व प्रदान कर ॥७॥

हे इन्द्र ! तू हजारों, सैंकड़ों, बहुत सी गायें और घोड़ों के झुण्डों को दान के लिए देता है। हम गान करते हुए ज्ञानयुक्त स्तुति करने वाले हैं। हम उस पुरन्दर इन्द्र की रक्षा की कामना से स्तुति करते हैं ॥८ ॥

हे शतक्रतु इन्द्र ! तू सैकड़ों कर्म करने वाला है तथा अप्रतिहत क्रोध करने वाला, अभिमान को प्रकट करने वाला है। कोई भी ज्ञानी अथवा अज्ञानी तेरी स्तुति करते हैं, वह तेरे द्वारा बहुत आनन्दित होते हैं ॥९ ॥

वह इन्द्र, जो बड़ी बड़ी भुजाओं वाला है, शत्रुसंहर्ता है, शत्रुओं के नगरों का विस्फोटन करने वाला है, यदि मेरी प्रार्थना सुन ले तो धन की कामना करने वाले हम धन के स्वामी, सैंकड़ों कर्मों को करने वाले इन्द्र को स्तुतियों के द्वारा बुलावें ॥१० ॥

क्योंकि सोमयाग में जिस बलवान् इन्द्र को हम एक साथ मिलकर मित्रता के लिए बुलाते हैं, इसलिए हम इसे पापी नहीं मानते हैं, न ही दरिद्री अथवा नास्तिक मानते हैं। ।११ ॥

युद्ध में शत्रुओं का नाश करने वाले, ऋण को दूर करने वाले, न दबने वाले उग्र वीर इन्द्र को हम अपने पक्ष में लेते हैं। वह श्रेष्ठ रथी दौड़ने वाले श्रेष्ठ घोड़े को जानता है, जिसको वह प्राप्त हो जाता है, वह सुखी होता है ॥१२ ॥

हे इन्द्र ! जहाँ जहाँ से हमें भय होता है, वहाँ वहाँ से हमें अभय प्रदान कराओ। हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र। हमें अपने उन रक्षासाधनों से समर्थ कर, हमारा द्वेष करने वालों तथा हिंसकों को पराजित कर ॥१३ ॥

हे धन के स्वामी इन्द्र ! तू ही यजमान के ऐश्वर्य तथा घर का वृद्धिकर्ता है। हे स्तुत्य, ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! उस तुझे हम सोमयाग करने वाले बुलाते हैं ॥१४ ॥

वह इन्द्र सबका ज्ञाता है, वृत्र को मारने वाला हैं, सज्जनों का पालक तथा हमारे द्वारा स्वीकरणीय है। वह इन्द्र हममें से जो भी श्रेष्ठ हो, उसकी रक्षा करे, जो मध्यम हो, उसकी रक्षा करे। वह इन्द्र हमारी आगे पीछे सभी ओर से रक्षा करे ॥१५ ॥

हे इन्द्र ! तू हमारी आगे-पीछे, नीचे-ऊपर सभी ओर से रक्षा कर। हमारी दैवी भय (आपत्तियों) से रक्षा कर तथा असुरों के शस्त्रों से हमारी रक्षा कर ॥१६ ॥

हे इन्द्र ! आज-आज, कल-कल तथा अन्य सभी दिन हमारी रक्षा कर। हे सज्जनों के भर्ता इन्द्र ! सम्पूर्ण दिन और रात्रि में तेरी स्तुति करने वाले हमारी रक्षा कर ॥१७ ॥

वह इन्द्र वीर, ऐश्वर्यवान्, धन देने वाला, शत्रुसंहर्ता, वीर्य के लिए सोम में जल का मिश्रण करने वाला है। हे सैंकड़ों कर्मों को करने वाले इन्द्र ! तेरी दोनों भुजाएँ, जो वज्र को धारण करती है, अत्यन्त पुष्ट हैं ॥१८ ॥" (८/६१)

(८) अथ दस्युपरिपीडितानामार्य्याणामिन्द्रशरणे गमनम्।

इत्थं कृतमतिराप्तप्रणयवचोयुक् स विह्वलः कुत्सः।
अन्यच्छरणमपश्यन्निन्द्रायैवामरावतीं प्रययौ ॥१ ॥

वैकुण्ठस्तु तदानीमासीदिन्द्रोऽमरावत्याम्।
स्वर्गेऽपराजितायां दिशि तस्यासीदियं नगरी ॥२ ॥
तत्र स गत्वा कुत्सो महेन्द्रभवनं पुरः समासाद्य।
काण्वनिवेदितसूक्तान्यस्मै प्रणयादुपाजह्रे ॥३ ॥
इन्द्रेण पृष्टवृत्तः स्वं तत् कष्टं निवेदयामास ॥
येन स विधिना कुत्सो हतराज्यो दीनतामापत् ॥४ ॥

(८) तदनन्तर दस्युओं से पीड़ित आर्यों का इन्द्र की शरण में गमन

इस प्रकार विचार करते हुए विह्वल वह कुत्स अत्यन्त विश्वस्त और प्रणयवाक्यों से युक्त होता हुआ अन्यत्र कहीं आश्रयस्थान न देखते हुए अमरावती को इन्द्र के लिए (इन्द्र से प्रार्थना करने के लिए) प्रस्थान कर गया ॥१ ॥

उस समय अमरावती में वैकुण्ठ नाम का इन्द्र था। उस वैकुण्ठ इन्द्र की यह नगरी उत्तर दिशा में स्वर्ण में स्थित थी ॥२ ॥

उस कुत्स ने वहाँ देवेन्द्र के भवन में पहुँचकर, आगे जाकर कण्व द्वारा निवेदित उन सूक्तों का प्रणामपूर्वक इन्द्र को उच्चारण कर दिया ॥३ ॥

इन्द्र के द्वारा पूछे जाने पर कुत्स ने जिस विधि से वह राज्यविहीन होकर इस प्रकार दीनावस्था को प्राप्त हुआ, अपने इस कष्ट को निवेदित कर दिया ॥४ ॥

(९) इन्द्राय कुत्सप्रमुखानां स्वदुःखाश्रावणम्।

कौत्से राष्ट्रे दस्युभिः सिन्धुपश्चात्प्रन्ते नानोपद्रवा अक्रियन्त।
क्षेत्राणां चाप्स्रोतसां चावरोधास्तार्णात्रादिस्तूपदुर्निग्रहाश्च ॥१ ॥
सिन्धुश्लिष्टा या सरस्वत्यमुष्याः कूलस्थाया पूः सरस्वत्यपूर्वा।
तस्यां यासीद् सूर्यसंस्था वशिष्ठाधीना तां च प्रोद्धताम्ते न्यगृह्णन् ॥२ ॥
सोहं कुत्सोऽन्ये च राजान आर्या एवं भूयो दस्युभिः पीड्यमानाः ॥
स्वत्राणार्थं स्वर्गराजं भवन्तं प्राप्ता नत्वाऽभ्यर्थयामः शरण्यम् ॥३ ॥
कुरुते च घोषणामिह मानुष्येषा प्रजा परितः ॥
अवधीत् पुरा पणीन् यो मानस्थानं प्रभुः स इन्द्रो नः ॥४ ॥
"यत्पाञ्जन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत।
अस्तृणाद् बर्हणा विपो उर्यो मानस्य सक्षयः ॥" (८ ।६३ ।७)

(९) कुत्सादि का इन्द्र को अपना दुःख निवेदन करना

सिन्धु के पश्चिमी प्रान्त में कुत्स के राष्ट्र में दस्युओं द्वारा अनेक उपद्रव किए गए।

खेतों और जल के स्रोतों को अवरुद्ध कर दिया गया । तृण (चारा) और अन्न के स्तूपों का निग्रह कर लिया गया ॥१ ॥

सिन्धु नदी के निकट जो सरस्वती नदी है, उसके तट पर अपूर्व सरस्वती नाम की नगरी थी, उसमें वसिष्ठ मुनि के अधीन जो सूर्यसंस्था थी, उसको उन उद्धतों ने अपने अधिकार में कर लिया ॥२ ॥

ऐसा वह मैं कुत्स हूँ। अन्य आर्य राजा भी इस प्रकार बार-बार दस्युओं से पीड़ित होते हुए, अपनी रक्षा के लिए आप स्वर्गाधिपति इन्द्र की शरण में आकर, नमस्कार करके प्रार्थना करते हैं ॥३ ॥

यह मानुषी प्रजा चारों ओर से घोषणा करती है, कि प्राचीन काल में जिसने पणियों का वध किया था, वह मानस स्थान (हमारा रक्षक) इन्द्र ही हमारा अधिपति है ॥४ ॥

"जब पंचजन (चार वर्ण और निषाद) प्रजा के द्वारा इन्द्र के लिए स्तुतियाँ की जाती हैं, तब वह इन्द्र अपनी सामर्थ्य से समस्त शत्रुओं को मारता है। सबका स्वामी ज्ञानवान् वह इन्द्र सबके द्वारा सत्कृत हो ॥" (८/६३/७)

(१०) देवेन्द्रस्य दस्युनिग्रहणार्थं भारतवर्षे सपरिकरमागमनम्।

१- दस्युनिग्रहार्थमिन्द्रस्याभिक्रमणम्।

इत्थं कुत्साभ्यर्थनातो दयार्द्रः प्रौढो रक्षां संप्रतिश्रुत्य तेषाम्।
कुत्सं सख्येनाभ्युपेत्य प्रतस्थे मारुत्येन्द्रः सेनयाऽभिक्रमार्थी ॥१ ॥
आश्रितदीनजनार्थं स्वार्थमयैवाभिन्यते यो हि।
स सखा सख्यं त्वाहुः पक्षग्रहणं सहायकत्वेन ॥२ ॥
कुत्समुखेन श्रुत्वा दस्यूनामुग्रतामयं घोराम्।
तन्निग्रहाय बुद्धिं चक्रे जनताभिरक्षार्थम् ॥३ ॥
सद्यः स हि प्रतस्थे सह कुत्सेनाश्वमारुह्य।
दस्युकुलं प्रतिकर्तुं यानायादिश्य मारुतीं सेनाम् ॥४ ॥
इन्द्रस्य निषधिगिरौ समुपनिवेशः।
वेगेनाविश्रान्तैरहर्निशं धावमानैस्तौ।
इन्द्राकुत्सावश्वैस्त्र्यहेण हिमगिरिमुपाययतुः ॥१ ॥
कुत्सस्तस्येन्द्रस्य हि निषधिगिरौ विश्रमस्थानम्।
प्रागेव कल्पयित्वा तमुपेतं त्र सादयन्नाह ॥२ ॥
"योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि तमा निषीद स्वानोर्नावा।
विमुच्यावयोऽवसायाश्वान् दोषाविस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे ॥"(१ ।१०४ ।१)
दोषावस्तोरश्वान् वहीयसो यदवदत् स कुत्स इह।
तेन ज्ञायत इन्द्रस्यागमने मार्गे विश्रमो नासीत् ॥३ ॥

(१०) देवेन्द्र का दस्युओं के निग्रह के लिए भारतवर्ष में अपने परिकर (सेना) सहित आगमन

१—दस्युनिग्रह के लिए इन्द्र का अभिक्रमण

इस प्रकार कुत्स की प्रार्थना से द्रवीभूत उस प्रौढ़ इन्द्र ने उन आर्यों की रक्षा की प्रतिज्ञा को सुनकर कुत्स को अपना मित्र समझकर देवसेना के साथ अभिक्रमण करने की इच्छा से प्रस्थान किया ॥१ ॥

आश्रित दीन जनों के अर्थ को अपने अर्थ के रूप में जो मानता है, वही मित्र होता है तथा सहायक रूप में पक्ष•ग्रहण करना ही सख्य भाव है ॥२ ॥

कुत्स के मुख से दस्युओं के उग्र और बर्बरतापूर्ण संग्राम को सुनकर उनका दमन करने के लिए जनता की रक्षा करने के लिए इन्द्र ने अपनी बुद्धि लगाई (क्रोधित हुआ) ॥३ ॥

तत्काल वह इन्द्र घोड़े पर सवार होकर प्रस्थान कर गया और दस्युकुल का प्रतिकार करने के लिए मारुति सेना (देव सेना) को प्रयाण के लिए आदेश देकर प्रस्थान किया ॥४ ॥

२—इन्द्रस्य निषधपर्वते स्कन्धावारम्

गान्धारेऽस्मिन्देशे श्वेतगिरिप्रान्तमागत्य।
निपधे स्कन्धावारं कृत्वेन्द्रो व्यश्रमयत् तत्र ॥५ ॥
इन्द्रो न्यषीददस्मिन्निषदनतो निषद् इत्यभूत्प्रथितः ।
निषदेति वैदिकाख्या तदपभ्रंशात्तु 'निषध' संज्ञाऽभूत् ॥६ ॥

(२) इन्द्र का निषधपर्वत पर उपनिवेश (स्कन्धावार)

विश्रामरहित (निरन्तर), वेगपूर्वक, दिन-रात दौड़ते हुए कुत्स और इन्द्र दोनों अपने घोड़ों से तीन दिन में हिमालय पर्वत पर पहुंच गए ॥५ ॥

कुत्स इन्द्र के लिए निषध पर्वत पर विश्राम का स्थान पहले से ही निश्चित करके उस इन्द्र को वहाँ ले गया और वहाँ स्थित करके बोला ॥६ ॥

"हे इन्द्र ! इस (योनि) स्थान को तेरे बैठने के लिए बनाया है, इसलिए इस स्थल पर पहुँच कर रात-दिन दौड़ने वाले घोड़ों को खोलकर तथा उनको बन्धनमुक्त करके उस स्थान पर हिनहिनाते घोड़े के समान आकर बैठे ॥" (१/०४/१) ॥

निरन्तर दिन-रात दौड़ने वाले घोड़ों के लिए उस कुत्स ने जो कहा (कि यहाँ इन्हें विश्राम कराओ) इससे ज्ञात होता है कि इन्द्र के आगमन के मार्ग में कोई मार्गविश्राम नहीं था ॥७ ॥

इस गान्धार देश में श्वेतगिरि के पर्वत प्रान्त में आकर निषध में इन्द्र ने अपना स्कन्धावार (सेना का पड़ाव) करके विश्राम किया ॥८ ॥

इन्द्र ने यहाँ विश्राम किया, इस निषद अर्थात् आकर बैठने (पड़ाव) के कारण ही यह प्रान्त निषद नाम से प्रसिद्ध हुआ॥ निषद एक वैदिक नाम है और इसके अपभ्रंश से ही इसका नाम निषध पड़ गया॥९॥

३— निषधपर्वताभिज्ञानम्।

अद्यत्वे यो देशः पामीरः कथ्यते स पुरा।
मेरूः कदाचिदासीत्तेन प्राग् मेरुरुक्तः सः॥१॥
काश्मीरादुत्तरतोऽष्टत्रिंशे तूत्तराक्षांशे।
सार्धात्सप्तत्यंशाद् 'ग्रिनविच' देशान्तरात् पूर्वात्॥२॥
तन्मध्यादिषु वेदव्यासार्द्धं मण्डलं यत् स्यात्।
द्वीपानामन्तःस्थं जम्बूद्वीपं तमाह सप्तानाम्॥३॥
दक्षिणातः प्राग् मेरोर्या प्रथते पर्वतश्रेणी।
पूर्वापरायताद्रिस्तस्या भागास्त्रयो भाव्याः॥४॥
भारतवर्षादुत्तरदिशि यः पूर्वापरो महाशैलः।
पूर्वाब्धेराक्रोश्चात्सिन्धुनदान्तो हिमालयः सोऽस्ति॥५॥
'अफगानस्थानस्य' प्रत्यक् सीमान्तविस्तृतो योऽद्रिः।
स हि हेमकूट उक्तस्तत्पश्चान्निषध आयवनात्॥६॥
अपि चाष्टोत्तरशतकाद् 'ग्रिनविच' पूर्वांशतः समारभ्य।
आषट् सप्तत्यंशं योऽद्रिः स हिमालयो नाम॥७॥
तस्मादुत्तरतो यो विंशशतांशात्तु पूर्वतः प्रभृति।
द्वापञ्चाशं यावद् विततोऽसौ हेमकूटोस्ति॥८॥
तस्मादुदक् तु सप्तत्यंशात् त्रिंशांशकं यावत्।
नानापर्वतनिचितः कुलपर्वत एष निषधोऽस्ति॥९॥
अपि च 'स्याम' समुद्रात् पारस्याख्यातगः स हेमाद्रिः।
'चीन' समुद्रा'ल्लोहित'सिन्ध्वन्तो हेमकूटोऽस्ति॥१०॥
सिन्धुनदादिनिषधः प्रथते भूमध्यसागरं यावत्।
इत्थं पर्वतमाला त्रिविधा प्राग्मेरुदक्षिणे ख्याता॥११॥
एते कुलाचलाः स्युस्त्रयोऽपि ताः श्रेणयस्तिस्त्रः।
एकैकस्यां श्रेण्यां शाखापादाद्रयोऽसंख्याः॥१२॥
गान्धारोत्तरसीम्नि प्रथते या हेमकूटाद्रेः।
कृष्णगिरिः शाखाद्रिर्भवति चतुस्त्रिंशकेऽक्षांशे॥१३॥
तत उत्तरतोऽर्द्धांशे 'श्वेतगिरि'स्तस्य शाखाद्रिः।

स च पेशावरगजनीमध्यस्था 'च्छ्वेतगिरि'तोऽन्यः ॥१४ ॥
श्वेतोदरः स नाम्ना गजनी यस्यान्तिके नगरी।
कृष्णगिरेरुत्तरतः श्वेतगिरिः पाण्डुरो नाम्ना ॥१५ ॥
तस्माच्छ्वेतगिरेरपि र्योंशेनैकेन तूत्तरस्थोऽद्रिः।
मधुपर्वतः स उक्तः स च निषधस्यास्ति शाखाद्रिः ॥१६ ॥
सार्धे पञ्चत्रिंशेऽक्षांशे मुरुघावनद्यान्यम्।
युक्तो मधुस्त्रिषष्टिप्राये देशान्तरे पूर्व्ये ॥१७ ॥
'योवकडिया' प्रदेशान्नैर्ऋत्येऽवस्थितो यो वा।
याम्येऽस्ति 'मार्गियाना' प्रदेशतः पर्वतः समधुः ॥१८ ॥
अपि पश्चिमोत्तरेऽस्मादस्ति 'गुलिस्तान' पर्वतो विततः।
भारतवर्षीयार्या यं 'पुष्पक'पर्वतं ब्रुवते ॥१९ ॥
एषोऽस्ति 'मार्गियाना' प्रदेशतः पश्चिमे न्यस्तः।
पूर्वोस्ति कश्यपाब्धेः पुष्पकगिरिरुत्तरः 'खुरासानात्' ॥२० ॥
षट्त्रिंशादक्षांशादंशत्रयमस्ति पश्चिमोत्तरतः।
पुष्पकगिरिस्ततोऽन्यो दक्षिणतः पर्वतः कपिलः ॥२१ ॥
षट्त्रिंशादक्षांशात् सप्तत्रिंशांशकं यावत्।
आरभ्य सप्तपञ्चाशांशाद्देशान्तरोनषष्ट्यन्ते (५७-५९) ॥२२ ॥
कपिलोऽपि पर्वतोऽसावैशान्यां 'पार्थिया' प्रान्तात्।
पुष्पकगिरितो याम्ये सौम्ये देशात् खुरासानात् ॥२३ ॥
मधुपुष्पककपिलेषु त्रिषु शाखा गिरिषु निषधस्य।
ऐन्द्रः स्कन्धावारः कृत्स्नेनासीद् विनिर्दिष्टः ॥२४ ॥
मधुपर्वते तु शिविरो देवेन्द्रस्याथ 'मारुती' सेना।
पुष्पकगिरौ सहायकसेनानिहिता तु कपिलाद्रौ ॥२५ ॥

३—निषध पर्वत की पहचान

आज जो देश पामीर कहा जाता है, वह किसी समय मेरु पर्वत था। इसी से वह प्राग्मेरु कहा गया है ॥१।

काश्मीर से उत्तर की ओर ३८ डिग्री उत्तर अक्षांश पर तथा ग्रीन वीच से ७१ १/२ डिग्री पूर्वी देशान्तर पर (यह निषध पर्वत स्थित) है ॥२ ॥

उनके मध्य में जो ४५ व्यासार्ध मण्डल बनता है, उस स्थल को सात द्वीपों में से जम्बूद्वीप कहते हैं ॥३ ॥

प्राग्मेरु से दक्षिण में जो पर्वतश्रेणी फैली हुई हैं, उसके पूर्व से पश्चिम तक जो पर्वत है, उसके तीन भाग समझने चाहिये ॥४॥

भारतवर्ष से उत्तर दिशा में जो पूर्व और पश्चिम तक विशाल पर्वत है, वह पूर्व समुद्र से क्रोंच पर्वत तक सिन्धु नदी पर्यन्त हिमालय पर्वत है ॥५॥

अफगानिस्थान की पश्चिमी सीमा तक जो विशाल पर्वत फैला हुआ है, वही हेमकूट पर्वत यवन देश पर्यन्त पश्चिम की ओर निषध पर्वत कहा गया है ॥६॥

ग्रीनवीच के एक सौ आठ पूर्वी देशान्तर पर्यन्त तथा छियत्तर अंश तक जो पर्वत है, वह हिमालय पर्वत है ॥७॥

उसके उत्तर में १२० डिग्री अक्षांश पूर्व से प्रारम्भ करके ५२ डिग्री अक्षांश तक विस्तृत यह हेमकूट पर्वत है ॥८॥

उस हेमकूट के उत्तर में ७० डिग्री अक्षांश से ३० डिग्री अक्षांश तक अनेक पर्वतों से बना यह निषध पर्वत एक कुल-पर्वत (पर्वतों का समूह) है ॥९॥

और भी स्याम समुद्र से पारस नाम के स्थान तक वह हिमालय पर्वत है। इसी प्रकार चीन सागर से लाल सागर पर्यन्त हेमकूट पर्वत है ॥१०॥

सिन्धु नदी से लेकर भूमध्य सागर पर्यन्त निषध पर्वत है। इस प्रकार प्राग्मेरु से दक्षिण में तीन प्रकार की पर्वतमाला है ॥११॥

ये तीनों पर्वतमालाएँ ही कुलाचल (पर्वतों का समूह) है, जिन तीनों की ही तीन तीन पर्वत श्रेणियाँ हैं और एक एक श्रेणी में असंख्य शाखा पर्वत है ॥१२॥

गान्धार देश की उत्तर सीमा पर हेमकूट पर्वत से २४ डिग्री अक्षांश पर जो पर्वत व्याप्त है, वह कृष्णगिरि नाम का शाखा पर्वत है ॥१३॥

उस कृष्णगिरि के उत्तर में अर्ध अंश पर इसी कृष्णगिरि का शाखा पर्वत "श्वेतगिरि" नाम का पर्वत है। यह श्वेतगिरि पेशावर और गजनी देश के मध्य स्थिति श्वेतगिरि से भिन्न है ॥१४॥

जिस पर्वत के समीप गजनी नाम की नगरी है, वह पर्वत श्वेतोदर नाम से कहा गया है। कृष्णगिरि के उत्तर में जो श्वेतगिरि है, वह पाण्डुर नाम का पर्वत है ॥१५॥

उस श्वेतगिरि से एक अक्षांश उत्तर में स्थिति जो पर्वत है, वह मधु पर्वत कहा गया है, वह निषध पर्वत का शाखा पर्वत है ॥१६॥

३५ १/२ डिग्री अक्षांश पर मरूघाव नदी से युक्त मधु पर्वत है, जो प्रायः ६३ डिग्री अंश पूर्वी देशान्तर पर "योवकुडिया" प्रदेश के नैर्ऋत्य कोण में स्थित है तथा दक्षिण में मार्गियाना प्रदेश में स्थित पर्वत है, वह समधु पर्वत है ॥१७-१८॥

इससे भी पश्चिमोत्तर में "गुलिस्तान" नाम का पर्वत फैला हुआ है, उसे भारतीय आर्य "पुष्पक" पर्वत कहते हैं ॥१९॥

यह पुष्पक गिरि मार्गियाना प्रदेश से पश्चिम में कश्यप समुद्र (कैश्पियन सी) से पूर्व में खुरासान से उत्तर में स्थित है ॥२० ॥

३६ डिग्री अक्षांश से तीन अक्षांश पश्चिमोत्तर में जो पुष्पक गिरि है, वह दूसरा पुष्पक गिरि है। उससे दक्षिण में कपिल नाम का पर्वत है ॥२१ ॥

३६ डिग्री अक्षांश से ३७ डिग्री अक्षांश पर्यन्त ५७ डिग्री अक्षांश ५९ डिग्री अशं देशान्तर पर पार्थिया प्रान्त से ईशान कोण में, पुष्पक गिरि के दक्षिण में और खुरासान से उत्तर में कपिल नाम का पर्वत है ॥२२-२३ ॥

निषध के इन मधु, पुष्पक और कपिल नाम के तीनों शाखा पर्वतों में कुत्स द्वारा ऐन्द्र स्कन्धावार का निर्देश किया गया है ॥२४ ॥

मधु पर्वत पर देवेन्द्र का शिविर था तथा मारुति सेना पुष्पकगिरि पर और कपिल गिरि पर सहायक सेना रखी गई ॥२५ ॥

४— निषिधगिरौ विश्रान्तायेन्द्राय कुत्सस्तत्कालेतिकर्तव्यतामनुमन्त्रयामास।

इन्द्रागमनं श्रुत्वा भूयस्युपसर्पतीह जनतेयम्।
निज निकार्य्यपथान् प्रतिगमयैतां कार्य्यसंसिद्ध्यै ॥१ ॥
देवाश्च दासजनता क्रोधं प्रतिकृत्यनः प्राग्वत्।
संपादयन्तु वर्णं कुत्सः प्रोचे तदित्थमिन्द्राय ॥२ ॥
"ओत्येनर इन्द्रमूतये गुर्नूचित्तान्त्सद्यो अध्वनो जगम्यात्।
देवासो मन्युं दासस्य श्चम्नन्ते न आचक्षन्त्सुविताय वर्णन् ॥"(१ ।१०४ ।२)

४—निषध पर्वत पर विश्राम करते हुए इन्द्र के लिए कुत्स की तात्कालिक कर्तव्यता हेतु मन्त्रणा

इन्द्र के आगमन को सुनकर बहुत सी जनता यहाँ आई। उस जनता को अपने अपने कार्य पथों पर कार्य की सिद्धि के लिए भेज दिया गया ॥१ ॥ देवगण दास जनता के क्रोध का प्रतिकार करके पूर्ववत् वर्ण का सम्पादन करे, ऐसा कुत्स ने इन्द्र के लिए कहा ॥२ ॥

"वे मनुष्य संरक्षण के लिए इन्द्र के पास आये। इन्द्र ने उन्हें शीघ्र ही उसी समय उत्तम मार्गों पर चलाया, देवगण असुर के क्रोध को नष्ट करें तथा वे देव यज्ञ के लिए वरणीय इन्द्र को हमारे पास ले आवें ॥" ॥१/१०४/२ ॥

(५) स्वागतीयसभां प्रस्तुत्य नाभाककृता इन्द्राग्न्योः स्वागतप्रशस्तयः।

अथ नाभाकः काण्वो निषधगिराविन्द्रमेतमुपगम्य।
युतमग्निना मनुष्येश्वरेण तत्स्वागतं चक्रे ॥१ ॥
अपि शुष्णपीडितोऽयं शुष्णं प्रति वर्द्धितं निजक्रोधम्।

आवेदयन् सहैव च तद्वधमुद्वेगतोऽर्थयामास ॥२ ॥

८ ।४० "इन्द्राग्नी युवं सुनः सहन्ता दासयो रयिम्।
येन दृळहा समत्वा वीलु चित्साहिषीमह्यग्निर्वनेववात इन्नभन्नामन्यके समे ॥१ ॥
नहि वां वव्रयामहेऽथेन्द्रमिद्यजामहे। शविष्ठं नृणां नरम्।
सनः कदाचिदर्वता गमदावाजसातये। गमदा मेधसातये। नभन्ता मन्यके समे ॥२ ॥
ताहि मध्यं भराणामिन्द्राग्नी अधिक्षितः।
ता उ कवित्वना कवीपृच्छ्यमाना सखीयते ।संधीतमश्नुतं नराः। नभन्ता मन्यके समे॥
अभ्यर्च नाभाकवदिन्द्राग्नी यजसागिरा।
ययोर्विश्वमिदं जगदियं द्यौः पृथिवीमह्युपस्थे विभृतोवसु। नभन्ता मन्यके समे ॥७ ॥

५—प्रब्रह्माणि नाभाकवदिन्द्राग्निभ्यामिरज्यत।

या सप्तबुध्नमर्णवं जिह्मवारमपोर्णुत। इन्द्र ईशान ओजसा। नभन्ता मन्यके समे॥
स्वागतमिन्द्राग्निभ्यामित्थं कृत्वा स नाभाकः।
शुष्णवधाय विशेषादिन्द्रं प्रोवाच तत्प्रवक्ष्यामि ॥८ ॥

स्वागतीय सभा को प्रस्तुत करके नाभाक द्वारा इन्द्र और अग्नि के स्वागत की प्रशस्ति

तदनन्तर नाभाक कण्व ने निषध पर्वत पर इन्द्र के पास आकर मनुष्येश्वर अग्नि के साथ इन्द्र का स्वागत किया ॥१ ॥

शुष्ण से पीड़ित इस नाभाक काण्व ने शुष्ण के प्रति बढ़ते हुए अपने क्रोध को निवेदित किया साथ ही उस शुष्ण के वध के लिए भी उद्वेगपूर्वक प्रार्थना की ॥२ ॥

ऋग्वेद के अष्टम मण्डल के चालीसवें अध्याय में इन्द्र के इस स्वागत का वर्णन मिलता है — ऋषि नाभाक — काण्व स्तुति करते हैं — " हे शत्रु संहर्ता इन्द्र और अग्नि तुम दोनों हमें उत्तम धन दो, जिससे हम युद्धों में विशाल सेना को भी उसी प्रकार नष्ट कर दें, जिस प्रकार वायु और अग्नि मिलकर वनों को नष्ट कर देते हैं। हमारे अन्य शत्रु भी इसी तरह नष्ट हो जावें ॥१ ॥

हे इन्द्र और अग्नि ! हम तुम दोनों का अपमान नहीं करते हैं, अपितु मंनुष्यों में श्रेष्ठ. मनुष्य, श्रेष्ठ बलशाली इन्द्र का यजन करते हैं। वह इन्द्र अन्न के लिए तथा यज्ञ के लिए घोड़ों से हमारे पास कब आएगा? जिससे हमारे अन्य शत्रु स्वयमेव नष्ट हो जावें ॥२ ॥

वे इन्द्र और अग्नि युद्ध के मध्य में निवास करते हैं। हे नेताओं ! अपने ज्ञान से ज्ञानी बने हुए, सबके द्वारा पूछे जाने वाले तुम दोनों अपने उपासक, तुमसे मित्रता चाहने वाले के हितार्थ उसके कर्म को स्वीकार करो तथा हमारे अन्य सभी शत्रु नष्ट हो जावें ॥३ ॥

हे मनुष्य ! तू भी नभाक ऋषि के समान इन्द्र और अग्नि की स्तुति कर, जिन दोनों में यह सारा विश्व समाया हुआ है, यह द्युलोक और पृथिवी लोक समाया हुआ है। जो इन्द्र और अग्नि अपने पास धन को धारण करते हैं, (उनके आश्रम से) अन्य शत्रु स्वयमेव नष्ट हो जाएंगे ॥४ ॥

मनुष्य इन्द्र और अग्नि के लिए नाभाक ऋषि के समान स्तुति करता है (प्रेरित करता है) इन दोनों देवों ने सात पर्त के ढके हुए द्वार वाले सागर (मेघ) को खोला। इन्द्र अपने ओज और तेज की सहायता से शासन करता है। अतः अन्य शत्रु स्वयमेव नष्ट हो जाएंगे ॥५ ॥ (८/४०/१-५)

इस प्रकार इन्द्र और अग्नि का स्वागत करके उस नाभाक ऋषि ने इन्द्र को विशेष रूप से शुष्ण का वध करने के लिए जो कहा, वह मैं कहूँगा ॥८ ॥

इन्द्रस्यातिथ्यपरिचर्य्या।

इन्द्रः स्वाराणिनषधे तिष्ठटन्नासीत्सा कुत्सस्य।
अतिथिस्तेन सकुत्सः पर्य्यचरत् तं हि सर्वतोभावैः ॥१ ॥
देवानामविशेषात् प्राशनसमयास्त्रयो दिवा नियताः।
प्रातः सवनं माध्यन्दिनसवनं वा तृतीयसवनं वा ॥२ ॥
कुत्सो विश्वामित्रं न्ययोजयत् तस्य भोजनाद्यर्थे।
प्रातःसवने मध्यन्दिनसवनेऽथो तृतीयसवने च ॥३ ॥
ऋभुरथ विभ्वावाजः पूषा वैतस्य देवराजस्य।
सहभोजने नियुक्ताः पर्वतहर्य्यश्वपूर्वकाश्चान्ये ॥४ ॥
पूषा पशुशालानामध्यक्षः किन्तु सोऽस्ति हर्य्यश्वः।
देवेन्द्रः प्रियवाहनहर्य्यश्वान् यो विशेषतोऽधीष्टे ॥५ ॥
इन्द्राय यत्र धानास्तृतीयसवने प्रदीयन्ते।
तत्रर्भवे च वाजायेन्द्रहरिभ्यां च दीयन्ते ॥६ ॥
इन्द्रस्य पानभोजनसमये तत्र च मरुद्गणः सर्वः।
पिबति च सोममपूपं भुङ्क्ते चानुग्रहादैन्द्रात् ॥७ ॥
भोजनसामग्र्या ये धर्त्तारस्ते जनाः प्रयस्वन्तः।

सोमादिपानदाने परिचरितारस्तु जरितारः ॥८॥
सर्वेषां सोऽध्यक्षो विश्वामित्रो महर्षिरिन्द्रं तम्।
आमन्त्र्य सूक्तवाकैर्मधुवाकैश्चोपचरति स्म ॥९॥

६— इन्द्र की आतिथ्य परिचर्या

निषध में स्वराट् इन्द्र कुत्स के आतिथ्य में ठहरा हुआ था और कुत्स ने इन्द्र की सम्पूर्ण भाव से (पूर्णरूपेण) परिचर्या की ॥१॥

देवों के अवशेष रूप से भोजन के लिए दिन में तीन समय निश्चित किये गये हैं। वे हैं — प्रातःसवन, माध्यन्दिन सवन और सायंसवन ॥२॥

कुत्स ने भोजन के लिए तीनों सवनों में (प्रातः, माध्यन्दिन और सायं) ऋषि विश्वामित्र को नियुक्त किया ॥३॥

वैतस देवराज के साथ भोजन करने में ऋभु, विभ्वा, वाज और पूषा नियुक्त किये गये। इसके अतिरिक्त पर्वत, हर्यश्व आदि भी नियुक्त किये गये ॥४॥

सामान्यतः पूषा नाम का देवता पशुशालाओं का अध्यक्ष था, किन्तु देवेन्द्र के प्रियवाहन हर्य्यश्वों का जो विशेष रूप से संरक्षण करता था, वह हर्य्यश्व था ॥५॥

इन्द्र के लिए जहाँ तृतीय सवन में धान दिये जाते थे, वहाँ इन्द्र के घोड़ों तथा वाज और ऋभु को भी धान दिये जाते थे ॥६॥

वहाँ इन्द्र के पान और भोजन के समय समस्त मरूद्गण सोमपान करता था और इन्द्र की कृपा से सोम और अपूप (मधुर खाद्य) का भोजन करता था ॥७॥

भोजनसामग्री को जो धारण करने वाले (व्यवस्थापक) थे, वे प्रयस्वान् कहलाते थे। इसके अतिरिक्त सोम आदि पेय को देने में जो सेवकगण थे, वे जरिता कहलाते थे।।८॥

और इन सबके अध्यक्ष महर्षि विश्वामित्र थे, जिन्होंने इस इन्द्र को बुलाकर सूक्त वाणी से और मधुरवाणी से इन्द्र की परिचर्या की ॥९॥

(७) तत्र विश्वामित्रकृतो देवेन्द्राय भोजनसमये मधुवाकः।

३।५२ "धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् ॥
इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥१॥
पुरोडाशं पचत्यं जुषस्वेन्द्रा गुरस्व च।
तुभ्यं हव्यानि सिस्रते ॥२॥
पुरोडाशं च नोघसो जोषयासे गिरश्च नः।
वधूयुरिव योषणाम् ॥३॥
पुरोडाशं सनश्रुत प्रातः सावे जुषस्व नः।

इन्द्रक्रतुर्हि ते बृहन् ॥४ ॥
माध्यन्दिनस्य सवनस्य धानाः पुरोडाशमिन्द्रकृष्वेह चारुम् ।
प्रयत्स्तोता जरिता तूर्ण्यर्थो वृषायमाण उपगोर्भिरीट्टे ॥५ ॥
तृतीये धानाः सवने पुरुष्टुत पुरोडाशमाहुतं मामहस्व नः ।
कृभुमन्तं वाजवन्तं त्वा कवे प्रयस्वन्त उपशिक्षेम धीतिभिः ॥६ ॥
पूषण्वते च कृमा करम्भं हरिवते हर्य्यश्वाय धानाः ।
अपूपमद्धि सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहाशूर विद्वान ॥७ ॥
प्रतिधाना भरत तूपमस्मै पुरोडाशं वीरतमाय नृणाम् ।
दिवे दिवे सदृशोरिन्द्र तुभ्यं वर्धन्तु त्वां सोमपेयाय धृष्णो ॥८ ॥"

३-६०-१-७ विश्वामित्रकृतस्तृतीयसवने ऋभुत्रयपरितोषार्थः प्राशनीयो मधुवाकः ।
"इहेह वो मनसा वन्दुता नर उषिजो जग्मुरभि तानि वेदसा ॥
याभिर्मायाभिः प्रतिजूति वर्पसः सौधन्वना यज्ञियं भागमानश ॥१ ॥
याभिः शचीभिश्चमसाँ अपिंशत यया धिया गामरिणीति चर्मणः ।
येन हरी मनसा निरतक्षत तेन देवत्वमृभवः समानश ॥२ ॥
इन्द्रस्य सख्यमृभवः समानशुर्मनोर्नपातो अपसोदधन्विरे ।
सौधन्वनासो अमृतत्वमेरिरे विष्ट्वी शमीभिः सुकृतः सुकृत्यया ॥३ ॥
इन्द्रेण याथ सरथं सुते सचाँ अथो वशानां भवथा सहश्रिया ।
नवः प्रतिमै सुकृतानि वाघतः सौधन्वना ऋभवो वीर्याणि च ॥४ ॥
इन्द्र ऋभुभिर्वाजवद्भिः समुक्षितं सुतं सोममा वृषस्वा गभस्तयोः ।
धियेषितो मघवन्दाशुषो गृहे सौधन्वनेभिः सह मत्स्वानृभिः ॥५ ॥
इन्द्र ऋभुमान्वाजवान्मत्स्वेह नोऽस्मिन्त्सवने शच्या पुरुष्टुत ।
इमानि तुभ्यं स्वसराणि येमिरे व्रता देवानां मनुषश्च धर्मभिः ॥६ ॥
इन्द्र ऋभुभिर्वाजिभिर्वाजयन्निह स्तोमं जरितुरुपयाहि यज्ञियम् ।
शतं केतेभिरिषिरेभिरायवे सहस्रणीथो अध्वरस्य होमनि ॥७ ॥

(७) वहाँ भोजंन के समय देवेन्द्र के लिए विश्वामित्र द्वारा रचित मधुर वचन

ऋग्वेद के तृतीय मण्डल के बावनवें सूक्त में ऋषि विश्वामित्र देवेन्द्र के लिए मधुर वचन कहते हैं — " हे इन्द्र ! हमारे धान, दही और पूओं से युक्त प्रशंसनीय सोम रस को प्रातः काल के समय पी ॥१ ॥

हे इन्द्र ! भली प्रकार पकाए गए पुरोडाश को खाकर तू बलवान् बन, ये हव्य तुझे दिए जाते हैं ॥२ ॥

हे इन्द्र ! हमारे इन पुरोडाश को खाकर जैसे स्त्री की कामना करने वाला स्त्री को प्राप्त करता है, उसी तरह हमारी स्तुतियों का तून सेवन कर ॥३ ॥

हे इन्द्र ! प्रातःकाल के सवन में तू हमारे बहुश्रुत (प्रसिद्ध) पुरोडाश को खा, क्यों कि तेरे कर्म महान् हैं ॥४ ॥

हे इन्द्र ! क्यों कि यज्ञ को प्रेरणा देने वाला, बलवान् तथा स्तुतिकर्ता स्तोता अपनी वाणी से तेरी स्तुति करता है, तू यहाँ यज्ञ में मध्याह्न के यज्ञ का धान तथा उत्तम पुरोडाश को खा ॥५ ॥

हे कवि इन्द्र ! तू सायंकालीन सवन में हमारे द्वारा आहुत महत्वपूर्ण धान का पुरोडाश खा। ऋभुओं वाले तथा अन्नवाले, अन्न की इच्छा करने वाले हम स्तुतियों से प्रशंसा करते हैं ॥६ ॥

हे इन्द्र ! तू पुष्टिदाता है, कष्ट निवारक है, तथा हरिनामक घोड़ोंवाला है, तेरे लिए हमने दही और धान से मिश्रित सोम को तैयार किया है। हे वृत्र को मारने वाले, शूरवीर और विद्वान इन्द्र ! तू मरूद्गण के साथ आकर सोम-पान कर तथा अपूपभक्षण कर। ।७ ॥

मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ वीर इन्द्र के लिए पर्याप्त धान (ख़ील) तथा पुरोडाश प्रदान करो। हे शत्रुसंहर्ता इन्द्र ! हम एकत्र बैठकर प्रतिदिन स्तुति करते हैं, उनसे तू सोमपान के लिए वृद्धि को प्राप्त कर" ॥८ ॥ (३/५२/१-९८) ॥

तृतीय सवन (सन्ध्याकालीन भोजन के समय) में ऋभुओं के सन्तोष के लिए विश्वामित्र द्वारा रचित भोजनोचित मधुर वाणी की रचना की गई ॥

ऋग्वेद के तृतीय मण्डल में ऋषि विश्वामित्र स्तुति रचना करते हैं —

हे ऋभुओं ! आप शत्रुओं पर आक्रमण करके अपना तेज प्रकट करने वाले, उत्तम धनुष को धारण करने वाले हो जिन महिमा से युक्त कर्मों से आप य्रज्ञिय भाग को प्राप्त करते हो, उन कर्मों को जो मनुष्य त्रान पूर्वक करते हैं, उनके साथ तुम्हारी बन्धुता यहीं होती है ॥१ ॥

हे ऋभुओं ! आपने अपनी जिन शक्तियों से चमसों को सुन्दर रूप प्रदान किया, जिस बुद्धि से तुमने चर्म से गाय को बनाया है, जिस मन से घोड़ों को बलवान् बनाया है, इसीलिए आपने देवत्व प्राप्त किया है ॥२ ॥

ऋभुओं ने इन्द्र की मित्रता को प्राप्त किया है और उसे दारण भी किया है। ये ऋभु मनोबल को गिरने नहीं देते है और उत्तम कर्म करने वाले हैं। धनुष को धारण करके सुकृत करने वाले ऋभुगण ने अपनी शक्तियों और उत्तम कर्मों से अमरता को प्राप्त किया ।.३ ॥

हे उत्तम धनुष को धारण करने वाले तथा बुद्धिमान ऋभुगण ! तुम सोमयाग में इन्द्र के साथ एक ही रथ पर बैठकर जाते हो। जो तुम्हें प्राप्त करना चाहता है, उसके पास

धन और ऐश्वर्य के साथ जाते हो। तुम्हारे सुकृत और पराक्रम की कोई उपमा नहीं है ॥४ ॥

हे इन्द्र ! (वाजवद्भिः ऋभुभिः) बल से युक्त ऋभुओं के साथ (समुक्षित सुतं सोमं) भली प्रकार से निचोड़े गये सोम को (गभस्त्योः आवृषस्व) हाथों में धारण कर। हे मधवन् ! (धिया दूषितः) अपनी उत्तम बुद्धि से प्रेरित (सौधन्वनेभिः नृभिः) उत्तम धुनर्धर मनुष्यों के साथ (दाशुष गृहे मत्स्व) दानदाता के धर में जाकर आनन्दित हो ॥५ ॥

हे (पुरूष्टुत) बहुतों के द्वारा स्तुत्य इन्द्र ! ऋभुओं से युक्त, बलशाली तथा शक्तिमान् होकर यहाँ हमारे इस यज्ञ में आनन्दित हो। ये दिन और मनुष्यों तथा देवों के कर्म तथा नियम भी तेरे कारण ही चलते हैं ॥६ ॥

हे इन्द्र ! तू बलवान् ऋभुओं के साथ सबको बलशाली बनाता हुआ स्तोता के इस पूजनीय यज्ञ में आ। हे इन्द्र ! तू हजारों उत्तम मार्गों को जानता है। तू सौ अत्यन्त तीव्रगामी घोड़ों से आयु प्रदान करने के लिए इस हिंसा रहित यज्ञ में आ ॥७ ॥(३/६०/१-७) ॥

देवमेदेन सोमपानसमयभेदः ।

समयः पृथगिव नियतो देवानां सोमपानाय।
आसीदित्यावेदितमाथर्वणनवमकाण्डेऽपि। (अथर्व१ ।९ ।१) ॥१ ॥
"यथा सोमः प्रातः सवने अश्विनोर्भवति प्रियः।
एवा मे अश्विनावर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥२ ॥(९ ।१ ।११)
यथा सोमो द्वितीये सवन इन्द्राग्न्योर्भवति प्रियः।
यथा सोमस्तृतीये सवन ऋभूणां भवंति प्रियः ॥३ ॥"(९ ।१ ।१३)

(८) देवों के भेद के अनुसार सोम-पान के समय में भेद

देवों के सोम पान के लिए अलग अलग ही समय निर्धारित था, ऐसा अथर्ववेद के नवें काण्ड में भी स्पष्ट किया गया है ॥१ ॥

"जैसे अश्वि देवों को प्रातः सवन में सोम पान करता प्रिय होता है। अतः उसी तरह वे अश्वि देवता मुझे अपने प्रीत स्थान प्रदान करें (मेरी आहुति स्वीकार करें) ॥२ ॥

जैसे इन्द्र और अग्नि को द्वितीय सवन (मध्याहन काल का सोमपान का समय) में सोमपान करना प्रिय होता है।

जैसे ऋभुओं को तृतीय सवन (सायंकालीन सोमपान का समय) में सोम-पान करना प्रिय लगता है ॥"३ ॥(९/१/१३)

(९) निषधगिरौ समरारम्भणीयः सोमाभिषव प्रमहाख्यः- प्रागुत्तेजकवीरपानमहोत्सवः।

तत्रेन्द्रस्य प्रीत्यै संमानार्थं महोत्सवं कुत्सः।
सोमाभिषवं नामाऽऽतेनेऽत्युत्साहसंभारैः ॥१॥
युद्धात्पूर्वं पश्चादासीन्नियतं तु वीरपानं प्राक्।
उद्दिश्य वीरपानं कुत्सेनायं महोत्सवः क्लृप्त ॥२॥
धानापूपकरम्भामिक्षादध्याशिरादयो भोज्याः।
सोमाग्रपेयणूर्वा गुणकीर्तनभक्तिसूक्तान्ताः ॥३॥
महतो यो माहात्म्यं दर्शयितुं क्रियत उत्सवस्तं हि।
प्रमहं मह इति चाहुः सूनृतवाङ् महसि पानमशनं च ॥४॥
तत्रानेकसहस्राण्यासन्निन्द्राय सोमकुम्भानाम्।
विनिमयनार्था गावः प्रणयवचांसि च निवेदनीयानि ॥५॥
विनिमयनव्यवहाराञ्जस्यार्थं राजशासनप्रख्यम्।
अद्य यथा पश्यामस्ताम्रपणं रौप्यणं स्वर्णम् ॥६॥
एवं देवयुगे प्रागासीद् गोनाम विनिमयद्रव्यम्।
तद् गौरेव हिरण्यं वान्यद्वेत्येवमनुचिन्त्यम् ॥७॥
अद्येव पूर्वकाले क्रयविक्रयवत् प्रभूपहारेऽपि।
विनिमयनीयद्रव्याण्यावेद्यन्ते स्म ता गावः ॥८॥
आराध्याः संभ्रान्ताः संभावितसज्जनाश्च समवेत्य।
प्रणयप्रदेयमर्थं स्वैः स्वैः काव्यैः सहार्पयामासुः ॥९॥
येयं प्रथते वैदिकमन्त्राणां संहितात्रितयी।
काव्यानि तान्यृषीणामित्युक्तं शतपथेऽष्टमे काण्डे ॥१०॥
(शत॰ ८ कां। ३ प्र॰ ३ ब्रा॰ ४ कं॰)
तत्र च कुत्सुनियुक्तो विश्वामित्रो महर्षिरुत्थाय।
दस्युवधायेन्द्रायावदेयदभ्यर्थनासूक्तम् ॥११॥
शुष्मिन्तरमं च वनुते दस्युभ्यः स्वगृहराष्ट्ररक्षार्थम्।
भोज्यान्नलाभहेतोर्द्युम्निनियुक्तिं च सोर्थते सोमम् ॥१२॥

(९) निषध गिरि पर युद्ध के प्रारम्भ में किया जाने वाला प्रमह नाम का सोभाभिषव। युद्ध पूर्व सोमपान द्वारा वीर्यस्थापना अथवा उत्तेजना उत्पन्न करने के लिए उत्सव

तब वहाँ कुत्स ने इन्द्र की प्रसन्नता के लिए और सम्मान करने के लिए सोमाभिषव नाम का उत्सव अत्यन्त उत्साह से मनाया ॥१ ॥

प्राचीन समय में युद्ध से पूर्व और पश्चात् सोमपान (वीरपान) उत्साह वर्द्धन के उद्देश्य से नियत किया गया था। इसलिए कुत्स ने यह वीरपान नाम का महोत्सव सम्पन्न किया ॥२ ॥ धान, अपूप, करम्भ (दही मिश्रित भोज्य पदार्थ), आमिक्षा (दधि, छाछ अथवा छेना) और दध्याशिर आदि भोजन ते, जिनसे पहले सोमपान किया जाता था, तत्पश्चात् गुणों का बखान और भक्ति (प्रशंसा) सूक्त होते थे ॥३ ॥

महान् व्यक्ति के माहात्म्य को प्रदर्शित करने के लिए यह उत्सव मनाया जाता था। उस उत्सव को मह कहा जाता हैष इस मह में पान भोजन और मांगलिक प्रवचन होते हैं ॥४ ॥

वहाँ इन्द्र के लिए अनेक सहस्र सोम कुम्भ, विनिमय के उद्देश्य से गायें (गौमूल्य कल्पित द्रव्य) और प्रणय - वचन - निवेदन किये गये ॥५ ॥

आज जिस तरह हम देखते हैं, कि विनिमय, व्यवहार, सम्मान तथा राज व्यवस्था के कार्यों के लिए तांबा, यांजी और सोने की मुद्राएँ होती हैं, उसी तरह प्राचीन देवयुग में गो नाम का विनिमय द्रव्य होता था। वहाँ गाय, स्वर्ण अथवा कोई अन्य द्रव्य विनिमय के रूप में दिया जाता था, यह विचारणीय है ॥६-७ ॥

आज की तरह पूर्वकाल में भी क्रय-विक्रय की तरह महापुरूषों की भेंट में भी जो विनिमय योग्य द्रव्य भेंट दिये जाते थे, वह गौ ही होती थी ॥८ ॥ आराध्य, सम्भ्रान्त, सम्मानित और सज्जनों ने एकत्रित होकर प्रणय रूप में देने योग्य द्रव्यों को अपने अपने काव्यों (स्तुतियों) के साथ प्रस्तुत किया ॥९ ॥

वैदिक मंत्रों की जो तीनों संहिताएँ प्रसिद्ध हैं, वे ऋषियों के काव्य थे, ऐसा शतपथ के अष्टम काण्ड में कहा गया है ॥१० ॥

वहाँ कुत्स द्वारा नियुक्त महर्षि विश्वामित्र ने उठकर दस्यु निग्रह के लिए इन्द्र से अभ्यर्थना सूक्त का उच्चारण किया। दस्युओं से अपने गृहराष्ट्र की रक्षा की रक्षा के लिए दैदीप्यमान् इन्द्र से तथा भोज्यान्न लाभ हेतु सोम की नियुक्ति हेतु प्रार्थना की ॥११-१२ ॥

१०- वीरपानप्रमहे विश्वामित्रकृतो दस्युवधाभ्यर्थनासूक्तपाठः ।३ ।३७ ॥

विश्वामित्रो भोजनादिप्रबन्धाध्यक्षः क्लृप्तस्तेन पानोत्सवस्य।
अध्यध्यक्षः सोऽभवत् तत्सभायां सग्धेरन्तेऽभ्यर्थनां सोऽध्यवोचत् ॥१ ॥
३ ।३७। "वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च
इन्द्रत्वा वर्तयामसि ॥१ ॥
अर्वाचीनं सुते मन उत चक्षुः शतक्रतो।
इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥२ ॥
नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे।
इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥३ ॥
पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि।
इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ॥४ ॥
इद्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुपब्रुवे।
भरेषु वाज सातये ॥५ ॥
वाजेषु सासहिर्भव त्वामी महे शतक्रतो।
इन्द्रवृत्राय हन्तवे ॥६ ॥
द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवःसु च।
इन्द्र साक्ष्वामि मातिषु ॥७ ॥
शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम्।
इन्द्रसोमं शतक्रतो ॥८ ॥
इन्द्रियाणि शतक्रतो याते जनेषु पञ्चसु।
इन्द्र तानि त आ वृणे ॥९ ॥
अगन्निन्द्रश्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम्।
उत्ते शुष्मं तिरामसि ॥१० ॥
अर्वावतो न आ गह्यथो शक्रं परावतः।
ऊलोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि" ॥११ ॥

(१०) वीर-पान-महोत्सव में विश्वामित्र द्वारा रचित दस्युओं का वध करने के लिए प्रार्थना सूक्त

उस पानोत्सव का भोजन इत्यादि का प्रबन्धाध्यक्ष विश्वामित्र को नियुक्त किया गया।वह उस सभा में अध्यक्षों का अध्यक्ष हुआ और सहभोज के अन्त में उससे प्रार्थना वचन कहे ॥१ ॥

ऋग्वेद के ३/३७ में विश्वामित्र कहते हैं —

"हे इन्द्र ! हम तुझे वृत्र को मारने के लिए, बल के लिए और शत्रुओं का संहार करने के लिए प्रेरित करते हैं ॥१ ॥

हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्मों को करने वाले इन्द्र ! स्तुति करने वाले तेते उत्तम मन और नेत्रों को नवीन बनावें (उज्जवल बनावें) ॥२ ॥

हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्मों को करने वाले इन्द्र ! युद्ध में तेरे (नमानि) बलों को हम सम्पूर्ण प्रार्थना के सूक्तों से भांगते हैं ॥३ ॥

(पुरूष्टुतस्य) बहुतों के द्वारा स्तुत्य सैंकड़ों तेजों से युक्त, मनुष्यों को धारण करने वाले इन्द्र की हम स्तुति करते हैं ॥४ ॥

बहुत लोगों द्वारा बुलाये जाने वाले इन्द्र को युद्धों में अन्न की प्राप्ति के लिए तथा वृत्र को मारने के लिए मैं बुलाता हूँ ॥५ ॥

हे सैंकड़ों कर्मों को करने वाले इन्द्र ! तू युद्धों में शत्रुओं को हराने वाला बन। मैं वृत्र को मारने के लि तुझे बुलाता हूँ ॥६ ॥

हे इन्द्र ! (अभिमातिषु प्रतनाज्ये) शत्रुओं को हराने वाले युद्ध में (द्युम्नेषु श्रवःसु च) अन्न प्राप्त होने वाले युद्धों में तथा (पृत्सुतूर्षु) अन्य युद्धों में तू शत्रुओं को मार ॥७ ॥

हे शतक्रतो ! बलयुक्त, तेजस्वी और चेतना देने वाले सोम को हमारे संरक्षण के लिए पी ॥८ ॥

हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्मों को करने वाले इन्द्र ! पाचं जनों (चार वर्ण और निषाद) में जो तेरी शक्ति है, उन शक्तियों को मैं स्वीकार करता हूँ ॥९ ॥

हे इन्द्र ! यह महान् अन्न तेरे पास (अगन्) जाए, तथा तू शत्रुओं द्वारा कठिनाई से पार करने योग्य तथा तेजस्वी इस सोम को धारण कर, हम तेरे बल को बढ़ाते हैं ॥१० ॥

हे वज्रधारी इन्द्र ! तू (अर्वावतः) समीप के देशों से हमारे पास आ तथा (परावतः) दूर के देशों से हमारे पास आ तथा जो तेरा लोक है, उस लोक से हमारे पास आ" ॥११ ॥ (३/३७/१-११)

(११) नाभाकः काण्वोऽपि दस्युवधाद्यभ्यर्थनासूक्तमुवाच

(८/४०/—१२)

ऋ.८/४० "अपि वृश्च पुराणवद् व्रततेरिव गुष्पितमोजो दासस्य दम्भय।
वयं तदस्य सम्भृतं वस्विन्द्रेण विभजेमहि नभन्तामन्यके समे ॥ ६ ॥
यदिन्द्राग्नी जना इमे विह्वयन्ते तना गिरा।
अस्माकेभिर्नृभिर्वयं सासह्याम पृतन्यतो वनुयाम वनुष्यतो नभन्ताम
न्यके समे ॥ ७ ॥

या नु श्वेताववो दिव उच्चरात उप द्युभिः।
इन्द्राग्न्योरनु व्रतमुहाना यन्ति सिन्धवो यान्त्सी वन्धादमुञ्चतां न
भन्ता मन्यके समे ॥ ८ ॥
पूर्वीष्ट इन्द्रोपमातयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः सूनो हिन्वस्य हरिवः।
वस्वो वीरस्यापृचो या नु साधन्त नो धियो नभन्तामन्यके समे॥ ९ ॥
तं शिशीता सुवृक्तिभिस्त्वेषं सत्वानमृग्मियम्।
उतो नु चिद्य ओजसा शुष्णस्याण्डानि भेदति जेषत्स्वर्वतीरपो
नभन्तामन्यके समे ॥१० ॥
तं शिशीता स्वध्वरं सत्यं सत्वानमृत्वियम्।
उतो नु चिद्य ओहत आण्डा शुष्णस्य भेदत्यजैः स्वर्वतीरपो
नभन्तामन्यके समे ॥११ ॥
एवेन्द्राग्निभ्यां पितृवन्नवीयो मन्धातृवदङ्गिरस्वदवाचि।
त्रिधातुना शर्म्मणा पातमस्मान्वयं स्याम पतयो रयीणाम्" ॥ १२ ॥

(११) नाभाक काण्व दस्युओं का वध करने हेतु रचित प्रार्थना सूक्त

ऋग्वेद के ८/४० में नाभाक काण्व ने प्रार्थना सूक्त की रचना की

"हे इन्द्र ! पहले के समान ही तू शत्रुओं को उसी तरह काट जिस तरह से बेल से ढ़के हुए तने को काटते हैं। तू दास के तेज को नष्ट कर। हम इन्द्र के साथ इस शत्रु के छिपे हुए उस धन को प्राप्त करें तथा अन्य शत्रु स्वयमेव नष्ट हो जावे ॥ ६ ॥

जब ये मनुष्य अपनी वाणी तथा शरीर से इन्द्र और अग्नि को बुलाते हैं, तब हम अपने वीर सैनिकों की सहायता से शत्रुसेना को पराजित करें। हमारी प्रशंसा करने वालों की हम भी प्रशंसा करें। अन्य शत्रु स्वयमेव नष्ट हो जावें ॥ ७ ॥

जो सत्त्वगुण से युक्त इन्द्र और अग्नि हैं, वे अपने तेजों से द्युलोक के नीचे, आस-पास तथा ऊपर भी विचरण करते हैं। जिन नदियों को इन इन्द्राग्नी ने चारों ओर के बन्धन से छुड़ाया, उन्हीं के कर्मानुसार हवि देने वाले चलतें हैं। अन्य शत्रु स्वयेव नष्ट हो जावें ॥ ८ ॥

हे (हरिवः सूनो इन्द्र) वज्रधारी तथा सबको उत्पन्न करने वाले इन्द्र ! तू अपने प्रसन्नकर्ता को धन प्रदान कर। तेरी उपमाएँ और प्रशंसाएँ बहुत हैं, जिन प्रशंसाओं ने हमारी बुद्धियों को श्रेष्ठ बनाया है। अन्य शत्रु स्वयमेव नष्ट हो जावें ॥ ९ ॥

और जिस इन्द्र ने अपने तेज से शुष्ण नाम के असुर की सन्तानों को मारा है तथा जिसने शब्द करती हुई नदियों को जीता है, उस इन्द्र को, जो तेजस्वी, बलशाली ऋचाओं द्वारा स्तुत्य है, उत्तम वचनों से तथा उत्तम विधि से तेजस्वी करो। अन्य शत्रु स्वयमेव नष्ट हो जावें ॥ १० ॥

जो (ओहत) सर्वत्र विचरण करता है तथा शुष्ण नाम के असुर की सन्तानों को मारता है, जिसने शब्द करती हुई नदियों को जीता है, उस उत्तम मार्ग को बताने वाले, अविनाशी, बलशाली और स्तुति करने योग्य इन्द्र को तेजस्वी करो। अन्य शत्रु स्वयमेव नष्ट हो जावें ॥११॥

इस प्रकार मैंने इन्द्र और अग्नि के लिए पिता के समान, मान्धाता के समान तथा अंगिरा के समान नवीन स्तुति की है, वे दोनों (इन्द्र और अग्नि) तीनों धातुओं से (सोना, चाँदी और तांबा) समृद्ध हमारी रक्षा करें और ऐश्वर्यों के स्वामी हो ॥१२॥ (८/४०/६ - १२)

(१२) ततो दस्युनिग्रहोपायचिन्तायां कुत्सेनोपायप्रदर्शनम्।

अथ सुप्रसन्न इन्द्रो दस्यूनामभिजनस्थितिप्रचारादि।
अपि तद्दमनोपायाद्यध्यवसातुं परामृक्षत् ॥ १ ॥
व्यज्ञपयत्तु स कुत्सो निषधादस्मात्तु पूर्वतः सरिताम्।
पारेऽङ्कुस्यादीनां प्रस्यासन्ने 'शिफा' नद्याः ॥ २ ॥
कुयवग्रामं जाने किन्त्वङ्कुस्यादयोतिदुष्पाराः।
बलवज्जलसंवेगाः सन्ति पथि प्राणहारिणः ॥ ३ ॥
यद्यपि सरित्प्रवाहो हस्तद्विशतीमितोस्ति विस्तारे।
किन्तु तथापि न नौभिर्गन्तुं शक्योन्तरश्मभिर्घातात् ॥ ४ ॥
जलवेगप्राबल्यादुच्चावचभूमिसञ्चारात्।
सरितां पारं गन्तुं न बाहुतरणात्समर्थन्ते ॥ ५ ॥
दस्यव एते निपुणा गिरिशिखरप्रोतदोलवर्तन्याः ।
शिक्याभिर्मशकैर्वा यातायातं प्रकुर्वन्ति ॥ ६ ॥
दासातिरिक्तजनता त्वासां पारं समर्थते नैतुम्।
तत्कृतदोलनिपातादवहनतो मशकशिक्यानाम् ॥ ७ ॥
दोलाद्यारूढा अपि बहवो नद्यां निपातिता द्वेषात्।
तस्मात्तेषां ग्रामाः सहसा द्रष्टुं न शक्यन्ते ॥ ८ ॥
मध्ये च बहवो दासा मार्गं च सन्ति रुन्धानाः।
तस्मात्तेषां ग्रामा दुरधिगमा दुर्गमाः सन्ति ॥ ९ ॥
आसां ततो नदीनां निस्तारार्थं नियुज्यन्ताम्।
आहूय राष्ट्रशूराः आर्या वनरक्षिणः कुशलाः ॥ १० ॥
दासानां पथि चरतां व्यामोहार्थं नियुज्यन्ताम्।
कृतदासवेषभूषास्तद्भाषायां च शिक्षिता मरुतः ॥ ११ ॥

(१२) तदनन्तर दस्युनिग्रह के उपायसम्बन्धी विचार में कुत्स द्वारा निराकरण हेतु सुझाव

तदनन्तर इन्द्र ने प्रसन्न होकर दस्युओं के अभिजन (वंश, कुल, निवास एवं उत्पत्ति), स्थिति, प्रचार (विचरण करना, घूमना-फिरना) और उनका दमन करने हेतु उपाय सम्बन्धी प्रयत्न करने के लिए विचार किया ॥१॥

कुत्स ने विज्ञापित किया कि इस निषध पर्वत से पूर्व नदियों के पार अंजसी आदि नदियों के समीप "शिफा" नदी के निकट कुयव नाम के ग्राम को मैं जानता हूँ, किन्तु अंज़सी आदि नदियों का पार करना अत्यन्त ही दुष्कर है। इन नदियों का जल-प्रवाह अतिप्रबल है और वह जल-प्रवाह मध्य मार्ग में प्राण-घातक हो जाता है। ॥२-३॥

यद्यपि नदी के प्रवाह का विस्तार दो सौ हाथियों के माप का है, तथापि नदी में पाषाणखण्डों के घात के कारण नावों से भी जाना सम्भव नहीं है ॥४॥

तीव्र जल-प्रवाह के प्राबल्य से, भूमि के मार्ग के असमतल (ऊँची-नीची) होने से नदी को तैरकर भी पार करना सम्भव नहीं है ॥५॥ ये दस्युगण अत्यन्त ही चतुर हैं, पर्वत-शिखर पर आर-पार विचरण करने के लिए छींको अथवा मशकों से यातायात करते हैं ॥६॥

दासों से भिन्न जनता तो इन नदियों के पार जाने में समर्थ नहीं है, क्योंकि उन लोगों द्वारा बनाए गए झूलों के गिर जाने से तथा मशकों को वहन न कर सकने से (पारगमन में असमर्थ थे) ॥७॥

झूलों पर चढ़े हुए भी अनेक (दासभिन्न जनता) लोगों को द्वेष के कारण नदी में गिरा दिया जाता था। इसलिए वे उनके ग्रामों को सहसा नहीं देख सकते हैं ॥८॥

मध्य मार्ग में अनेक दास मार्गावरोधक होते थे। इसलिए उनके ग्राम दुष्प्राप्य और अप्रवेश्य थे ॥९॥

इसलिए इन नदियों को पार करने हेतु राष्ट्र के शूरवीर आर्यो और कुशल वन रक्षकों को बुलाकर नियुक्त किया जाना चाहिये ॥१०॥

मार्ग में विचरण करते हुए दासों को व्यामोहित (भ्रमित, परेशान अथवा वश में) करने के लिए दासों की वेशभूषा और उनकी भाषा को जानने वाले मरुतों (देवों) को नियुक्त किया जावे ॥११॥

(१३) ततो दस्युनिग्रहार्थं कुत्सप्रदर्शितमार्गाश्रयणम्।

इत्थं कुत्सादिष्टमार्गं स इन्द्रः सम्यग् मत्त्वा तत्तथैवादिदेश।
दस्यूनेतान् संनिगृह्य स्वराज्ये भूयोऽप्यार्यान् धातुमाधात् प्रतिज्ञाम् ॥१॥

सिन्धोः पारे नैषधेऽद्रौ स इन्द्रः स्कन्धावारं विश्रमाय प्रकल्प्य।
गूढं दस्युस्थानमादौ विचेतुं विज्ञान् द्रोण्यां प्रेषयामास चारान् ॥२॥
काले भूयस्यप्यनिश्चित्य तेषां शैलद्रोणीगह्वरस्थान्निकेतान् !
प्रत्यावृत्तास्ते चरा आयुराजप्रेष्यारण्याभिज्ञवेशानकुर्वन् ॥३॥
आसीदायुः प्राक् प्रतिष्ठानराजो हेमाद्रिस्थे पञ्चगौरप्रयागे।
ये तद्भृत्याः केऽप्यटव्यां नियुक्तास्ते खल्वासन् दस्युजातीयजीवाः॥ ४॥

(१३) तदनन्तर दस्युओं के निग्रह के लिए कुत्स द्वारा प्रदर्शित मार्ग का आश्रय ग्रहण करना

इस प्रकार कुत्स द्वारा प्रदर्शित मार्ग को उचित मान कर इन्द्र ने तदनुसार इन दस्युओं को कैद करके फिर से आर्यों को अपने राज्य में प्रतिष्ठित होने की आज्ञा दी ॥१॥

सिन्धु के पार निषध पर्वत पर उस इन्द्र ने विश्राम के लिए स्कन्धावार बना कर सर्वप्रथम दस्युओं के गुप्त स्थानों की खोज करने के लिए जानकार गुप्तचरों को पर्वत की द्रोणि (घाटी) में भेजा ॥२॥ बहुत समय व्यतीत हो जाने पर भी उन दस्युओं की पर्वत घाटियों और कन्दराओं में स्थित निवासस्थानों की जानकारी न होने पर जब वे गुप्तचर वापस आ गये तब आयुराज नाम के राजा के सेवकों, जो अरण्य-भ्रमण में निपुण थे, जंगली वेष धारण किये हुये थे, को भेजा ॥ ३॥

प्राचीन समय में आयु नाम का राजा प्रतिष्ठान नगर का राजा था, जो हिमालय पर्वत में पंचगौरप्रयाग में स्थित था, उसके जो सेवक थे, उनमें से कुछ जंगल में नियुक्त थे और वे दस्यु जाति से सम्बद्ध थे ॥४॥

(१४) आयुराजस्य प्रतिष्ठानं पुराधिष्ठातुः परिचयः।

गन्धर्वराजपौत्रो बुधपुत्रो यः पुरूरवा राजा।
तत्पुत्र आयुरासीद् गन्धर्वेशः प्रतिष्ठाने ॥१॥
'गौरी' नदीसमीपे मूजवतः पर्वतादर्वाग्देशे।
गान्धारे प्रागासीदिदं प्रतिष्ठानमायुपुरम् ॥२॥
अधुना केचिद्ब्रुवते भारतवर्षीयमध्यरेखाप्राक् ।
'झूसी'-'प्रायाग'-सविधे पुरं प्रतिष्ठानमित्यलीकं तत् ॥३॥
राजा ययातिरवसद् वार्धक्ये तं प्रयागमभ्येत्य।
तस्य निवासस्थानं विदुः 'प्रतिष्ठान' मित्यन्यत् ॥४॥
अस्मिन् भारतवर्षे सन्ति हि 'बाह्लीक''वैतुला'दीनि।
बाह्लीक-वैतुलादि-प्रतिकृतिरूपाणि तद्वदन्यत्तत् ॥ ५॥

जाह्नवदेशप्रथिता 'जाह्नवी' नाम या गङ्गा ।
तस्याः कूले मुख्यं पुरं प्रतिष्ठानमासीत्तत् ॥ ६ ॥
अत्र प्रमाणजातं निदर्शितं पौरवख्यातौ ।
आयुः पौरूरवसो दासानपि कांश्चिदीष्टे स्म ॥ ७ ॥
इन्द्रस्तस्मादायुराड्वन्यवर्गात्तेषां भाषावेशभूषादि साम्यम् ।
संपाद्य स्वांस्तत्र वर्गे स्थानं तेषामध्यवास्यत् क्रमेण ॥८ ॥

(१४) प्रतिष्ठानपुर के अधिष्ठाता आयुराज का परिचय

गंधर्वराज का पौत्र, बुधपुत्र जो पुरुरवा नाम का राजा था, उसका पुत्र आयु था, जो प्रतिष्ठान नगर में गंधर्वों का अधिपति था ॥ १ ॥

गौरी नदी के पास मूजवान् पर्वत के पार्श्व भाग में गांधार प्रदेश में प्राचीन समय में आयुराजा का यह प्रतिष्ठान का नाम का नगर था ॥ २ ॥

आज कुछ लोग कहते हैं, कि भारतवर्ष की मध्य रेखा के पूर्व "झूसी" और "प्रयाग" के पास प्रतिष्ठान नाम का नगर है, परन्तु ऐसा कहना मिथ्या है ॥३ ॥

राजा ययाति ने वृद्धावस्था में जिस प्रयाग में आकर निवास किया, उसे प्रतिष्ठान कहतें हैं, परन्तु वह (ययाति राजा का निवास-स्थान) कोई अन्य नगर था ॥४ ॥

इस भारतवर्ष में "बाह्लीक" और "वैतुल" नगरों की प्रतिकृति रूप "बाह्लीक" और "वैतुल" इत्यादि नगर हैं, वैसे ही वह प्रतिष्ठान नाम का नगर भी अन्य ही है ॥५ ॥

"जाह्नव" देश में प्रसिद्ध "जाह्नवी" नाम की जो गंगा थी, उसके किनारे यह प्रतिष्ठान नाम का मुख्य नगर था ॥६ ॥

इस सम्बन्ध में "पौरव-ख्याति" में प्रमाण दिया गया है कि पुरूरवा-पुत्र आयुराजा दासों पर भी स्वामित्व रखता था ॥७ ॥

उस आयुराजा के वन्य वर्गों से उनके भाषा और वेशभूषा से समानता करके इन्द्र ने उनको अपने नगर में प्रविष्ट करा कर उनके निवासस्थानों में क्रम से अधिवास किया ॥८ ॥

(१५) अप्रतिरथमहोवाकः ।

अथ तत्र देवसेना मारुत्या सेनया सयुक् सज्जा ।
समराङ्गणेऽवतरितुं प्रतीक्षते स्म प्रभोराज्ञाम् ॥ १ ॥
अथ समराय मरुद्भिः सयुजं निषधात् प्रतिष्ठमानं तम् ।
प्रोत्साहयितुं चैन्द्रोऽप्रतिरथ उपासते स्म ॥ २ ॥
आभिक्रमिकः सुभटः प्रास्थानिकसमयमालक्ष्य ।
राजनियत्याऽभ्यूचेऽप्रतिरथ ऐन्द्रो महोवाकम् ॥३ ॥

(१५) अप्रतिरथ महोवाक्

तदनन्तर वहाँ देवसेना मारुती सेना के साथ सुसज्जित होकर समराङ्गण में उतरने के लिए प्रभु की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रही थी। ॥१॥

अब युद्ध के लिए मरुतों के साथ निषध देश से प्रस्थान करते हुए उसे प्रोत्साहित करने के लिए ऐन्द्र अप्रतिरथ ने उपासना की ॥२॥

अभिक्रमण करने वाले सुभट (अप्रतिरथ) ने प्रस्थान-समय को देखकर राजाज्ञा से अप्रतिरथ ऐन्द्र महोवाक् का उच्चारण किया ॥३॥

(१६) युद्धयात्रारम्भे राजपुरुषेणाप्रतिरथेनाप्रतिरथसूक्तपाठः।

१०/१०३ "आशुः" शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्।
संक्रन्दनोऽनिमिष एक वीरः शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥१॥
संक्रंदनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो पर इषुहस्तेन वृष्णा ॥२॥
स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन।
संसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥३॥
बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अप बाधमानः।
प्रभञ्जन्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥४॥
बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठ गोवित् ॥५॥
गोत्रभिदं गोविदं बज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा।
इमं सजाता अनुवीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनुसंरभध्वम् ॥६॥
अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽढयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः।
दुश्च्यवनः पृतनाषाळयुध्योस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥७॥
इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः षुर एतु सोमः।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥८॥
इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्द्ध उग्रम्।
महामनसा भुवनच्यवानाङ्घोषो देवानाञ्जयतामुदस्थात् ॥९॥
उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां मनांसि।
उद्वृत्रहन्वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः ॥१०॥
अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु।

अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्स्माँ उ देवा अवता हवेषु ॥११॥
अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि।
अभिप्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥१२॥
अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते।
गच्छामित्रान्प्रपद्यस्व मामीषां कञ्चनोच्छिषः॥ (६/७५/१६)
प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म्म यच्छतु।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ॥(१०/१०३/१३)
असौ या सेना मरुतः परेषामभ्यैति न ओजसा स्पर्द्धमाना।
ताङ्गूहत तमसापव्रतेन यथामी अन्यो अन्यन्नजानन्॥
यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव॥
तत्रा नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म्म यच्छतु विश्वाहा शर्म्म यच्छतु।
(६/७५/१७)
मर्म्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम्।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु॥" (६/७८/१८)

(१६) युद्धयात्रा के प्रारम्भ में राजपुरुष अप्रतिरथ द्वारा अप्रतिरथसूक्त का उच्चारण

ऋग्वेद के दशम मण्डल के अध्याय संख्या १०३ में ऋषि इन्द्र-स्तुति करते हैं -

"शीघ्रता से शत्रुओं पर आक्रमण करने वाला, सर्वव्यापी, वृषभ के समान भयंकर, बलवान्, मनुष्यों को विचलित करने वाला, शत्रुओं को रुलाने वाला, सर्वदा चैतन्य और महान् वीर इन्द्र सैकड़ों सेनाओं को एक साथ जीतता है॥१॥

वह इन्द्र शत्रुओं को रुलाने वाला, सर्वदा चैतन्य, विजय की इच्छा करने वाला, युद्धशील तथा शत्रुओं से पराजित नहीं होने वाला है। उस इन्द्र की सहायता से विजय प्राप्त करो। हे युद्धप्रिय मनुष्यों ! वह इन्द्र हाथ में धनुष धारण करता है तथा बलवान् है।।२॥

वह इन्द्र धनुष और तलवार धारण करने वाले मरुतों के साथ रहता है। वह इन्द्र शत्रुसमूह में युद्ध के लिए प्रवेश करने वाला है। वह शत्रुओं को जीतने वाला, सोमपायी, बाहुबल से सम्पन्न, उग्र धनुर्धारी, फैंके हुए बाणों से शत्रु का नाश करता है॥३॥

हे बृहस्पते ! तू रथ से आगे बढ़। तू राक्षसों को मारने वाला है, अमित्रों का संहर्ता है, शत्रु की सेना को नष्ट करने वाला है, मारने वाला है और युद्ध में विजय प्राप्त करने वाला है। ऐसा वह बृहस्पति देव हमारे रथों की रक्षा करने वाला बने॥ ४॥

हे इन्द्र ! तू शक्ति को पहचानने वाला है, सबका जीवनाधार है, श्रेष्ठ वीर है, तेजस्वी है, अन्न से सम्पन्न है, वेगवान् है, शक्तिशाली शत्रु को भी पराजित करने वाला, वीरों

से घिरा हुआ, सेवकों से युक्त (सहोजाः गोवित्) उत्साह और गायों से युक्त है। ऐसा तू विजय दिलाने वाले रथ पर बैठ॥ ५॥

हे एकत्रित हुए वीरों ! मेघों को फाड़ने वाले, पर्वतों को फोड़ने वाले, वज्र हाथ में धारण करने वाले अथवा वज्र के समान भुजाओं वाले, युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले, अपनी वीरता से शत्रुओं का संहार करने वाले इन्द्र की वीरता का अनुसरण करो। हे मित्रों ! इन्द्र का अनुसरण करके अपना कार्य करो ॥६॥

इन्द्र अपनी शक्ति से मेघों में प्रवेश करता है। वह इन्द्र शत्रुओं के लिए दयाहीन है, वीर, क्रोध करने वाला, विचलित न होने वाला तथा शत्रुसेना का संहार करने वाला तथा जिसके साथ कोई युद्ध नहीं कर सकता है, ऐसा वह इन्द्र युद्ध में हमारी सेना की रक्षा करें ॥७॥

इन्द्र इन समस्त सेनाओं का नायक है। अतः बृहस्पति, चतुर सेना, यज्ञ और सोम उसके आगे रहें तथा मरुत् शत्रु का संहार करने वाली, विजय प्राप्त करने वाली देवसेना के अग्र भाग में जावे ॥८॥

बलवान् इन्द्र का, राजा वरुण का, आदित्यों का, मरुतों का श्रेष्ठ बल हमें प्राप्त हो। महान् मनस्वी, तीनों लोकों को कंपित कर देने वाले सम्पूर्ण विश्व के संचालक, विजयी देवों की विजयध्वनि गूंज रही है॥ ९॥

हे मघवन् ! हमारे आयुधों को उत्साहित कर। मेरे वीर सैनिकों के मन को उत्साहित कर। हे वृत्रघ्न इन्द्र ! हमारी सेना के अश्वों का बल बढ़े। विजय प्राप्त कराने वाले रथों की ध्वनि गूंजे॥ १०॥

वह इन्द्र हमारी ध्वजा पताकाओं के एकत्रित हो जाने पर रक्षा करता है। जो हमारे बाणधारी सैनिक हैं, उनकी विजय हो। हमारे वीर सैनिक उत्तम कोटि के हों। हे देवों !युद्ध में हम सब की रक्षा करो ॥११॥

हे (अप्वे) पापाभिमानी देवता ! तू इन शत्रुओं के हृदय को मोहित करती हुई उनके शरीर के अंगों को पकड़ ले। इनके साथ तू दूर तक जा। तू इनकी तरफ आगे बढ़ती जा। इनके हृदयों में शोकाग्नि प्रज्वलित कर तथा इन अमित्रों को घोरतम अन्धकार में दुःखी कर" ॥१२॥ (१०/१०३/१-१२)

"हे तीक्ष्ण बाण ! तुझे ज्ञान द्वारा तीक्ष्ण बनाया गया है (मन्त्रप्रभाव से तीक्ष्ण किया गया है), अतः तू छोड़ा जाने पर जा और शत्रुओं पर जाकर गिर। इन समस्त शत्रुओं में से किसी को भी जीवित मत बचा ॥" (६/७५/१६)

"हे मनुष्यों (वीरों) तुम आगे बढ़ो और विजय प्राप्त करो। इन्द्र हमें प्रसन्न करे। तु उग्र होओ,जिससे तुम कभी पराजित न होओ ॥" (१०/१०३/१३)

यह जो मरुतों की सेना शत्रुओं से स्पर्धा करती हुई पराक्रमपूर्वक जा रही है, उस को अंधकार से दूर, ऐसे घरों को मिलाओं, जिससे वे एक दूसरे को पहचान न सकें।

"शिखारहित (अत्यन्त तीक्ष्ण) कुमारों के समान जहाँ बाण गिरते हैं, वहाँ उस युद्ध-भूमि में इन्द्र, बृहस्पति और अदिति हमें सुख प्रदान करें ॥" (६/७५/१७)

"कवच से तेरे समस्त मर्मस्थलों को आवृत करता हूँ। राजा सोम अपने अमरता के गुण से तेरे पास निवास करता रहे। वरुण तेरे लिए अच्छे से अच्छा अथवा श्रेष्ठ धन प्रदान करे। विजय प्राप्त करने के पश्चात् समस्त देव आनन्दित होवें ॥" (६/७५/१८) ॥

(१७) नृमेधपुरुमेधौ बृहद्गानेन देवेन्द्रमभिष्टोतुं देवेन्द्रसहचारिणं प्रधानामात्यमिन्द्रतनूनपातं मरुद्गणं तावदभ्यर्थयेते।

८/८६ "बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम्।
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥१ ॥
अपाधमदभिशस्तीरशस्ति हाथेन्द्रो द्युम्न्याभवत्।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण ॥२ ॥
प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत।
वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा" ॥३ ॥

(१७) नृमेध और पुरूमेध ऋषियों द्वारा बृहद्गान से देवेन्द्र की स्तुति करने के लिए देवेन्द्र के सहचारी प्रधानामात्य मरुद्गण, जो शरीरबल के रक्षक थे, की प्रार्थना

ऋग्वेद के ८/८९ में ऋषिद्वय स्तुति करते हैं -

"हे यज्ञवर्धक मरुतो ! जिस सामगान से तुमने सदैव देदीप्यमान रहने वाली ज्योति को उत्पन्न किया, उस शत्रुसंहर्ता बृहत् साम को उस इन्द्र देव के लिए गाओ ॥१ ॥

हे देदीप्यमान मरुद्गणों ! दुष्टों का नाश करने वाले इन्द्र ने समस्त शत्रुओं को मारा और वह तेजस्वी बना। हे इन्द्र देव ! सभी तेरी मित्रता की अभिलाषा से तेरे पास आते हैं ॥२ ॥

हे मरुतो ! उस महान् इन्द्र के लिए स्तोत्र गाओ। वह इन्द्र सैकड़ों कर्म करने वाला तथा वृत्र को मारने वाला है। वह इन्द्र तीक्ष्ण अथवा सैंकड़ों धार वाले वज्र से शत्रु के मारता है ॥ ३ ॥

(१८) अथेन्द्राय तौ बृहद्गानं गायतः ।

अप्रतिरथे प्रयुक्ते मारुत्या सेनयेन्द्रमासक्तम् ॥
उपतस्थाते तु बृहद्गानं गातुं नृमेधपुरुमेधौ ॥१ ॥

८/८९ "अभिप्रभर धृषता धृषन्मनः श्रवश्चित्ते असद्बृहत् ॥
अर्षन्त्वापो जवसा वि मातरो हनो वृत्रं जया स्वः ॥४॥
यज्जायथा अपूर्व्य मघवन्वृत्रहत्याय ॥
तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उत द्याम् ॥५॥
तत्ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः ॥
तद्विश्वमभिभूरसि यज्जतं यच्च जन्त्वम् ॥६॥
आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि।
धर्मं न सामन्तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत्" ॥७॥
८/९० आनो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु ॥
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचीषमः ॥१॥
त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् ॥
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥२॥
ब्रह्मा त इन्द्र गिर्वणः क्रियन्ते अनतिभ्दुता ॥
इमा जुषस्व हर्यश्व योजनेन्द्र या ते अमन्महिं ॥३॥
त्वं हि सत्यो मघवन्ननानतो वृत्रा भूरि न्यृञ्जसे ॥
स त्वं शविष्ठ वज्रहस्त दाशुषेऽर्वाञ्चं रयिमा कृधि ॥४॥
त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्यपते ॥
त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इदनुत्ता चर्षणीधृता ॥५॥
तमु सुत्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधो भागमिवेमहे ॥
महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र प्रते सुम्ना नो अश्नवन्" ॥६॥

(१८) तदनन्तर उन दोनों द्वारा इन्द्र के लिए बृहद्गान का गायन

अप्रतिरथ स्तुतिगान के होने के पश्चात् नृमेध और पुरूमेध बृहद्गान गाने के लिए उपस्थित हुए ॥१॥

ऋग्वेद के ८/८९ में दोनों ऋषियों द्वारा गाई गई स्तुति उद्धृत है :-

"हे दृढ़ मन वाले इन्द्र ! जो तेरा श्रेष्ठ अन्न है, उस श्रेष्ठ अन्न को अपने शक्तिशाली मन से खूब (अधिक मात्रा में) प्रदान कर। हे इन्द्र ! तू वृत्र को मारकर जलों को जीत, जिससे माता के समान ये जल वेग के साथ प्रवाहित होंवे ॥ ४ ॥

हे अपूर्व ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! तूने वृत्र नाम के असुर को मारने के लिए अपने जिस शौर्य को प्रदर्शित किया था, उसी शौर्यबल से इस पृथिवी को विस्तृत किया तथा उसी बल से द्युलोक को स्थिर किया ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! वह यज्ञ तेरे लिए हुआ और वे वषट्कारपूर्वक मन्त्र भी तेरे लिए ही बोले गये। इस सम्पूर्ण विश्व में जो कुछ उत्पन्न हुआ है अथवा जो कुछ होने वाला है, वह सम्पूर्ण विश्व हे इन्द्र ! तेरे ही अधिकार में है ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तूने गायों में पौष्टिक दुग्ध को स्थापित किया है और इस द्युलोक में सूर्य को स्थापित किया। हे मनुष्यों ! जिस तरह प्रवर्ग्य याग को वर्धित किया जाता है, उसी तरह इस इन्द्र को भी बृहत् नामक प्रिय लगने वाले सामगान से तथा उत्तम स्तोत्रों से बढ़ाओ ॥ ७ ॥ (८/८९/४-७)

"वह इन्द्र वृत्र को मारने वाला, श्रेष्ठ धनुष की प्रत्यंचा वाला, सोमपान करने वालों में सर्वश्रेष्ठ तथा समस्त युद्धों में आहूत करने योग्य है, वह ब्रह्म नामक मन्त्रों को तथा यज्ञों को अलंकृत करे ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तू सर्वश्रेष्ठ धन का दान देने वाला है। तू सत्यस्वरूप तथा सबका शासक है। हम अत्यन्त ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी, बल के पुत्र और महान् इन्द्र से उसके देने योग्य धन की कामना करते हैं ॥ २ ॥

हे स्तुति करने योग्य, घोड़ों से युक्त इन्द्र देव ! जो अत्यन्त अद्भूत नहीं है, ऐसे ब्रह्म नाम के साम को मननपूर्वक गाते हैं, तदनुरूप कार्य करते हैं, अतः हे इन्द्र ! तू उन योजनाओं का पालन कर ॥ ३ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तू सत्यस्वरूप है, अतः कोई शत्रु तुझे झुका नहीं सकता है, तू (अपनी विपुल शक्ति से) बहुत से वृत्रों (शत्रुओं) का संहार करता है। हे शूरवीर और वज्रधारी इन्द्र ! तू दान देने वाले के लिए समृद्धि को उसकी ओर प्रेरित करता है ॥ ४ ॥

हे देवों के स्वामी अथवा बलों के अधिपति इन्द्र ! तू यशस्वी तथा सोमपान करने वाला है। तू अकेला ही वज्र को धारण करते हुए अपराजेय तथा कभी युद्ध से पलायन न करने वाले शत्रुओं को भी मार देता है ॥ ५ ॥

हे (असुर) प्राणों की रक्षा करने वाले इन्द्र ! हम अपने हिस्से के समान तुझ बुद्धिमान् इन्द्र से धन की कामना करते हैं। हे इन्द्र ! तुझसे हम तेरे समस्त प्रकार को सुखों को मांगते हैं, क्योंकि तेरी शरण हमारे लिए एक महान् कवच (रक्षासाधन) के समान है ॥ ६ ॥ (८/९०)

(१९) निषधात् प्रस्थितेनेन्द्रेण आदौ सरयुपारस्थमार्य्यराजद्वयं निहतम्।

निषधाद्रिगिरेः प्रतस्थे मारुत्या देवसेनया च सह।
महतोत्साहेनेन्द्रोऽश्विविष्णुयुक् कुत्सयुग् बृहस्पतियुक् ॥१॥
दस्यूनिन्द्रो हन्तुं शैलानेवाभियातुकमोऽपि।

मध्ये मार्गं प्रथमं द्वावार्यौ प्रतिययौ हन्तुम् ॥२॥
आर्य्याविमौ नरेशावार्य्यकुलध्वंसनोपायान्।
परिदर्शयतस्तेषां दासानां प्रेमवशभूतौ ॥३॥
इत्याकर्ण्य स इन्द्रः प्रथमं तावेव धर्षितुं चकमे।
रुग्भैषज्यात्पूर्वं रुक्प्रभवोत्सादनं श्रेयः ॥४॥
सरयोः सरितः पारे क्वचिदार्यावर्णचित्ररथौ।
भूपो वसतः स्मैतौ दाससखौ तद्धितप्रवणौ ॥५॥

(१९) निषध से प्रस्थान करने से पूर्व इन्द्र ने सरयु पार स्थित दो आर्यो का संहार किया

निषधाद्रि पर्वत ठहरने के पश्चात् मारुति सेना के (देवसेना के) साथ बड़े उत्साह से इन्द्र ने अश्वि, विष्णु, कुत्स और बृहस्पति के साथ प्रस्थान किया ॥१॥

इन्द्र ने दस्युओं को मारने के लिए पर्वतों पर ही जाने का इच्छुक होते हुए भी मध्य मार्ग में दो आर्यों को मारने के लिए प्रतिदान (विरुद्ध गमन) किया, क्योंकि ये दोंनो आर्य राजा दासों के प्रेम के वशीभूत होकर उनको आर्यों के नाश का उपाय दिखाते थे ॥२-३॥

यह सुनकर इन्द्र ने पहले उन्हीं आर्यों का ध्वंस करने की इच्छा की क्योंकि रोग की चिकित्सा से पूर्व रोग की उत्पत्ति के कारणों को नष्ट करना श्रेयस्कर होता है ॥४॥

सरयू नदी के पार कहीं अर्ण और चित्ररथ नाम के दो आर्य राजा थे, जो दस्युओं के मित्र थे और वे उनके हितसाधन में रत थे ॥५॥

(२०) सरयुनदीपरिचयः।

आत्रेयः श्यावश्वः सरयुं सह पठति सिन्धुना कुभया।
क्रुम्वाथगयः प्लातोऽपि सिन्धुनापि च सरस्वत्या ॥१॥
"मावोरसाऽनितभा कुभा क्रुमुर्मावः सिन्धुर्निरीरमत।
मावः परिष्ठात् सरयुः पुरीषिण्यस्मे इत् सुम्नमस्तुवः॥ (५/५३/९)
सरस्वती सरयुः सिन्धुरुर्मिभिर्महो महीरवसा यन्तु वक्षणीः।
देवीरापो मातरः सूदयित्वो घृतवत्पयो मधुमन्नो अर्चत"॥ (१०/६४/९)
एतेनेयं सरयुः सिन्धुगता काचिदन्तरिक्षेऽस्ति।
न तु साऽयोध्याप्रान्तस्थिता श्रुता कुत्रचिद्वेदे ॥ २॥
तक्षशिलानगरी तलवहना या सिन्धुसंगमना।
सा सरयुरिति सत्यव्रताख्यसामश्रमी प्राह ॥ ३॥

अपरे त्वेतां सरयुं हिन्दुकुशपर्वतप्रभवाम्।
प्राहुस्तथाहि तस्याः परिचयमित्थं विजानीयात् ॥ ४ ॥
वेदे यक्षुर्योक्ता चक्षर्जम्बूश्च सा पुराणोक्ता।
'अक्सस'-इति तां म्लेच्छा आहु 'रमू' इति च तामाहुः ॥ ५ ॥
तस्या दक्षिणकूले यक्ष: पू 'रोक्सियाना' ख्या।
तद्देशस्था उक्ता यक्षव इति वेदमन्त्रे प्राक् ॥ ६ ॥
एतानेव तु पश्चान्म्लेच्छा विदु 'रोक्सियानी' ति।
यक्षव आर्य्या आसन् पश्चान्म्लेच्छा बभूवुस्ते ॥ ७ ॥
यक्षुष उदक् तु शिग्रुर्नदी 'सुगद' उच्यते म्लेच्छैः।
यक्षुषि सैति च सुगदप्रान्तोयं 'सुगदियाना' ख्या ॥ ८ ॥
सुगदनदी यद्गिरितः प्रवहति 'सुगदी' स पर्वतः कथितः।
तद्गिरिशिखरे स ऋषिर्मार्कण्डेयः पुरायुगे न्यवसत् ॥ ९ ॥
अथ 'हिन्दुकुश'-'सुगदानिया' न्तरे यक्षुषोऽवाच्याम्।
प्रान्तोस्ति वक्द्रियाना हिन्दूकुशजा नदीह 'दर्गिदुसा' ॥ १० ॥
वाह्लीक एव 'वक्ट्रा' नाम्नाख्यातः पुरा म्लेच्छैः।
स च वाह्लीकप्रान्तस्तैरुक्तो 'वक्ट्रिया' नाम्ना ॥ ११ ॥
शैलद्वयान्तराले प्रवहन्त्युत्तरमुखी तु 'दर्गिदुसा'।
तृत्सुः सा तत्प्रान्ते 'जरियस्या' सैव 'वक्ट्रा' पूः ॥ १२ ॥
प्रान्तोस्ति 'मार्गियाना' पश्चिमतो 'वक्ट्रिया' प्रान्तात्।
तत्र च हिन्दूकुशजा 'मरग्युसो' दङ्मुखी नदी वहति ॥ १३ ॥
४-योऽर्वाक् तु मार्गियानाप्रान्ताद् हिन्दूकुशोऽस्य दक्षिणतः।
उद्भूय पश्चिमां प्रागथोत्तरामनु तु या नदी वहति ॥ १४ ॥
प्राक्सीम्नि 'हरसियाना' प्रान्तस्यौ 'च्छुस' नदीन्तु यान्वेति।
या च 'सरीफी' पर्वतपश्चिमपार्श्वानुगोत्तरां याति ॥ १५ ॥
'अरियुस' नदी तु सोक्ता सरयुः स्यात् सा नदी वेदे।
दक्षिणतोऽस्या: प्रान्त: प्रथते वा एरियानेति ॥ १६ ॥
प्रागेतदेरियानाप्रान्तात् प्रत्यक्तटे सुलेमानात्।
प्रान्तो य इण्डियाख्यस्तत्र वसन्ति स्म भारतीयाः प्राक् ॥ १७ ॥
फरहनदीनिर्गमने पारस्यानां तु 'पर्सिया' नगरी।
तस्या उत्तरतः सा सरयुर्या 'मरियुसं' प्राह ॥१५॥

(२०) सरयु नदी का परिचय

आत्रेय श्यावश्व कुभा नदी के साथ सरयु का उल्लेख करते हैं। क्रुमु और गय नामक जो झरना है, उसका सिन्धु, और सरस्वती के साथ किया है ॥ १ ॥

ऋग्वेद में वर्णन है - "हे वीर मरुत् ! तुम्हें तेजोहीन और मलिन रसा नामक नदी रममाण न करे तुम्हें क्रुमु (वेगपूर्ण) सिन्धु नदी बीच में ही न रोक दे, जल से परिपूर्ण सरयु नदी न घेर लेवे । हमें ही तुम्हारा सुख प्राप्त हो।" (५/५३/९)

"महती, पूज्य और तरंगशालिनी सरयु, सरस्वती और सिन्धु आदि बहने वाली इक्कीस नदियाँ हमारी रक्षा के लिए आवें और माता-सदृश और जलप्रेरक सुन्दर देवी हमें घृतयुक्त, पुष्टिदायक और मधुर जल प्रदान करें ॥" (१०/६४/९)

यह सरयु नदी अंतरिक्ष में कहीं सिन्धु नदी के पास थी वेद में कहीं अयोध्या प्रांत में स्थित सरयु नदी का उल्लेख नहीं सुना गया है॥ २ ॥

तक्षशिला नगरी के तल में बहने वाली और सिन्धु नदी में मिलने वाली सरयु नदी है, ऐसा सत्यव्रत नाम के सामश्रमी ने कहा है॥ ३ ॥

दूसरे लोगों ने इस सरयु नदी को हिन्दुकुश पर्वत से उत्पन्न बताया है, इसी प्रकार उसका परिचय यही जानना चाहिए॥ ४ ॥

वेद में जो यक्षु नाम की नदी कही गयी है, वहीं पुराणों में चक्षु और जम्बु नाम से कही गई है। म्लेच्छों ने उसे "अक्सस" और "रमू" कहा है॥ ५ ॥

उसके दक्षिणी तट पर यक्षपू नाम की नगरी, जो "रोक्सियानों" नाम से कहा। ये यक्षु आर्य थे, जो बाद में म्लेच्छ हो गए॥७ ॥

इस यक्षु के उत्तर दिशा में शिगु नाम की नदी थी जिसे म्लेच्छों द्वारा "सुगद" नाम से कहा गया है। यह नदी यक्षु नगरी में थी, और सुगध प्रांत "पुगदियाना" नाम से कहा जाता है॥ ८ ॥

यह सुगध नदी जिस पर्वत से निकलती है उस पर्वत को "सुगदी" पर्वत कहा जाता है। उसी सुगदी पर्वतशिखर पर प्राचीन समय में ऋषि मार्कण्डेय निवास करते थे॥९ ॥

हिन्दुकुश और सुगदियाना के बीच यक्षु के दक्षिण में वक्ट्रियाना नाम का प्रान्त है और हिन्दुकुश से उत्पन्न होने वाली "दर्गिदुसा" नाम की नदी भी यहीं है॥ १० ॥

बाह्लीक को ही म्लेच्छों ने पुराकाल में "वक्ट्रा" नाम से कहा है और वह बाह्लीक प्रान्त उन म्लेच्छों द्वारा "वक्ट्रिया" नाम से कहा गया है॥ ११ ॥

दो पर्वतों के बीच बहती हुई "दर्गिदुसा" नाम की उत्तरमुखी नदी है, उसी का नाम "तृत्सु" है और उस प्रांत में "जरियस्या" नगरी है, वही "वक्ट्रा" नाम की नगरी है ॥१२ ॥

इस वक्ट्रिया प्रान्त से पश्चिम में मार्गियाना नाम का प्रान्त है, वहाँ हिन्दुकुश पर्वत से उत्पन्न उत्तरमुखी मरग्र्युसा नाम की नदी बहती है॥ १३ ॥

मार्गियाना प्रान्त से पहले जो हिन्दूकुश पर्वत है, उसके दक्षिण भाग से उत्पन्न होकर पश्चिम और पूर्वोत्तर दिशा में जो नदी बहती है (वहाँ प्राचीनकाल में भारतीय निवास करते थे)॥ १४ ॥

"हरसियाना" प्रान्त की पूर्वी सीमा पर जो "उच्छुस" नाम की नदी मिलती है, और जो "सरीफी" पर्वत के पश्चिमी पार्श्व भाग से जाती है, वह "अरियुस" नदी कही गई है और वही वेद में सरयु नाम से कही जा सकती है, इसका दक्षिणी प्रान्त "एरियाना" नाम से प्रसिद्ध है॥ १५-१६ ॥

इस एरियाना प्रान्त से पूर्वी तट पर और सुलेमान पर्वत से पश्चिमी तट पर जो प्रान्त है, वह "इण्डिया" नाम का प्रान्त है और वहाँ प्राचीन समय में भारतीय लोग निवास करते थे॥ १७ ॥

फरह नदी के निर्गमस्थल में पारसियों की परसिया नाम की नगरी थी, उसके उत्तर में वह सरयु नदी थी जिसे "मरियुस" कहा गया है॥ १८ ॥

(२१) अर्णचित्ररथयोः स्वजातिविद्वेषो वधे हेतुः ।

तस्याः सरयोः परितस्तावार्य्यावर्णचित्ररथौ ।
कुत्साद्यार्यगृहाणां परिस्थितिं दस्युषु स्म सूचयतः ॥१ ॥
तस्मादार्य्यावेव तु समूलघातं जघान स प्रथमम् ।
इति वामदेव ऊचे तुर्यस्य त्रिंशके सूक्ते ॥२ ॥
"उत त्या सद्य आर्य्या सरयोरिन्द्र पारतः ।
अर्णोचित्ररथावधीः ॥ (ऋ. ४/३०/१८)

(२१) अर्ण और चित्ररथ का अपने जातीय-विद्वेष के कारण वध (अर्ण और चित्ररथ के वध में उनका जातीय विद्वेष कारण था)

उस सरयु के चारों ओर अर्ण और चित्ररथ नाम के आर्य राजा थे, वे कुत्स आदि आर्यों की गृहपरिस्थिति की दस्युओं को सूचना दे देते थे॥ १ ॥ इसलिए सर्वप्रथम इन दोनों आर्यों को ही समूल नष्ट करके मार दिया, ऐसा वामदेव ने चतुर्थ मण्डल के तीसवें सूक्त में कहा है॥ २ ॥

ऋग्वेद में - "हे इन्द्र ! उन आर्य राजाओं ने सरयु के पार रहने वाले अर्ण और चित्ररथ को तत्काल मार दिया । (४/३०/१८)

(२२) सरस्वतीप्रान्तवासिचित्रराजापेक्षया सरयुप्रान्तवासिनश्चित्ररथस्य भिन्नत्वम्।

यं सोभरिस्तु काण्वो दातारं भूरि तुष्टाव।
सोऽन्यश्चित्रो राजा सरस्वतीतटेऽवसन्नृपप्रवरः ॥१॥
इन्द्रो वा घेदयन्मघं सरस्वती वा सुभगा ददिर्वसु।
त्वां वा चित्र दाशुषे॥ २॥
चित्र इद् राजा राजका इदन्यके यके सरस्वतीमनु।
पर्जन्य इव ततनद्धि वृष्ट्या सहस्रमयुता ददत्॥"(८/२१/१७-१८)

(२२) सरस्वतीप्रान्त के निवासी चित्रराज की अपेक्षा सरयुप्रान्तवासी चित्ररथ की भिन्नता

कण्ववंशज सोभरि ने जिस दाता की बहुत प्रशंसा की है, वह चित्र नाम का राजा अन्य ही श्रेष्ठ राजा था, जो सरस्वती नदी के किनारे रहता था ॥१॥

"सरस्वती नदी के किनारे जो अनेक राजा हैं, वे वस्तुतः अपने ओज से दीप्त और दर्शनीय है। शोभनीय उस इन्द्र ने पर्जन्य की भांति वृष्टि से उसे बांध दिया। इन्द्र ने हजारों (अतुलनीय) दान दिये ॥२॥

इन्द्र ने हवियों की आहुति देने वाले ऋत्विज को यह धन प्रदान किया। (उस इन्द्र का अनुगमन करते हुए) सौभाग्य प्रदान करने वाली सरस्वती ने यह दर्शनीय धन प्रदान किया ॥३॥ (८/२१/१७-१८)

(२३) अर्णचित्ररथयोर्गन्धर्वत्वम्।

अर्णश्चित्ररथो वा मन्ये स्यातामिमौ तु गन्धर्वौ।
मन्ये तद्वधमेव त्वकीर्तयत्कुरुसुतिः काण्वः ॥१॥
"अभि गन्धर्वमतृणदबुध्नेपु रजःस्वा।
इन्द्रो ब्रह्माभ्य इद्वृधे"॥२॥ (ऋ ८/७७/५)

(२३) अर्ण और चित्ररथ दोनों का गंधर्व होना

अर्ण और चित्ररथ दोनों गंधर्व थे, ऐसा मेरा, मानना है और मैं मानता हूँ, कि कण्वपुत्र "कुरुसुति" ने जिसके वध का कीर्तन (वर्णन) किया है वे दोनों ये ही गंधर्व थे॥१॥ ऋग्वेद में - इन्द्र ने ज्ञानियों को सम्पन्न करने के लिए निराधार लोकों में स्थित गंधर्वों को चारों ओर से मार डाला॥ २॥ (८/७७/५)

(२४) ततः सप्तदस्युराजराष्ट्राभिक्रमणम्।

अञ्जस्याद्या दुस्तरा आपगाया आसंतासां पारमासाद्य कष्टात्।
दस्युग्रामान् वीर आक्रम्य हत्वा काँश्चित् कांश्चिज्जीवतोपि न्यगृह्णत्।।१ ।।
सप्तभ्योऽशत्रुभ्यः शत्रुरभूदिन्द्र एष यानवधीत्।
कुयवं शुष्णं शंबरमहिबंगृदरौहिणान् कृष्णम्।। २ ।।
एषां भुवनान्यासन् सप्तानां सप्तभिन्नतन्त्राणि।
गणनागासुरभेदादेते सङ्कीर्णजातिका दासाः।। ३ ।।
अहिरत्र नाग आसीदसुराः कृष्णश्च रौहिणो नमुचिः।
अपरेऽपगणा वृत्त्या दस्यव एतेऽसुरानुगा अभवन्।। ४ ।।

(२४) सात दस्यु राजाओं के राष्ट्रों पर अभिक्रमण

अंजसी आदि जो दुस्तुर नदियों के अत्यन्त कठिनाई से पार आकर उन दस्युओं के समूहों को पराक्रमपूर्वक आक्रमण करके मार दिया और कुछ को जीवित ही निगृहीत कर लिया।। १ ।।

सात दस्यु - कुयव, शुष्ण, शंबर, अहि, बंगृद, रौहिण और कृष्ण जो अशत्रु (सर्वविजेता होने के कारण जिनका कोई शत्रु नहीं था) थे, उनका यह इन्द्र शत्रु हो गया, जिनको इसने मार डाला ।।२ ।।

इस सातों दस्युओं के सात अलग-अलग स्वतंत्र भुवन थे और ये दस्युगण, नाग और असुर भेद से संकीर्ण जाति के दास थे ।।३ ।।

इनमें अहि नाम का दैत्य नाग था, कृष्ण, रौहिण, नमुचि असुर थे और अन्य दस्यु अपगण थे, जो वृत्ति के असुर थे और असुरों के अनुयायी हो गये थे ।।४ ।।

(२५) पर्वतयात्रायां रासभरथादयः परिकराः।

रासभरथेन चेन्द्रो दस्युविदासाय पर्वतप्रान्ते।
अचरद् विष्णुसहायः स बृहस्पतिरन्वितोऽश्विभ्याम्।। १ ।।
हरयः पृष्ठानुचरा दश तु शतानीन्द्रमेतमनुचेरुः।
मारुत्या सेनया भागत्रयमत्र सह भेजे।। २ ।।
हरिभिः सहस्रसंख्यैर्हरिवानुक्तः सहस्राक्षः।
स मरुद्भिस्तु मरुत्वान् न विना हरिभिर्मरुद्भिः सः ।।३ ।।
द्वौ तु हरी इन्द्राश्वौ खे भुवि चाभ्यामयं चरति।
याति गिरीणां विषमं शृङ्गाच्छृङ्गान्तरं ताभ्याम् ।।४ ।।

(२५) पर्वतयात्रा में गधों के रथ आदि की परिचर्चा

इन्द्र रासभ-रथ से पर्वत प्रान्त में दस्युओं का नाश करने के लिए विचरण करते थे। अश्वियों के साथ विष्णु का सहायक बृहस्पति विचरण करता था ॥१ ॥

पीछे चलने वाले एक हजार घोड़े इस इन्द्र का अनुगमन करते थे तथा मारुति सेना के तीन भाग यहाँ इनके साथ-साथ थे ॥२ ॥

एक हजार संख्या के घोड़ो के साथ होने के कारण इन्द्र (सहस्राक्ष) हरिवान् कहा जाता था, मरुतों के साथ वह मरुत्वान् कहा जाता था तथा वह हरि और मरुतों के बिना नहीं रहता था ॥३ ॥

इन्द्र के हरी (दो हरि) नाम के दो घोड़े थे, जिनसे वह पृथिवी और अंतरिक्ष में भ्रमण करता था, विषम पर्वतों की एक चोटी से दूसरी चोटी पर इन्हीं अश्वों से जाता था ॥४ ॥

(२६) रौहिणासुरनिपातः।

दस्युकुलध्वंसायाभिक्रममाणं निशम्य देवेन्द्रम्।
स्वर्गं रिक्तं मत्वा तं जेतुं रौहिणश्चक्रमे ॥१ ॥
तं द्यामारोहन्तं सत्वरमाक्रम्य रौहिणं परितः।
निजघान वज्रहस्तो देवेन्द्रः कम्पयन् दासान् ॥२ ॥

(२६) रोहिण नाम के असुर का पतन

दस्यु कुल का ध्वंस करने के लिए अभिक्रमण करते हुए, देवेन्द्र के सम्बन्ध में सुनकर रोहिण नाम के असुर ने स्वर्ग को रिक्त मान कर उसे जीतने का विचार किया ॥१ ॥

वज्र-हस्त देवेन्द्र ने स्वर्ग पर आरोहण करते हुए रोहिण को चारों ओर से आक्रमण करके दस्युओं को कम्पित करते हुए मार दिया ॥२ ॥

(२७) अहिनिर्य्यातनम्।

आसन् केचित् पर्वतास्तत्र दस्युग्रामो वासाऽध्वादि निर्गूहतेऽलम्।
तेषामन्तः क्वापि शैलस्य गर्भे दासग्र्योऽहिर्नागवंशोऽध्यवात्सीत् ॥१ ॥
अहिरयमसुरः कुयवप्रभृतीनां दासमुख्यानाम्।
साहाय्येन कदाचित् सिन्धोः स्रोतोऽवरोधनं चक्रे ॥२ ॥
सिन्धोः सप्तस्रोतांस्यन्यान्यग्रावगह्वरोद्भेदात्।
तेषां यमदिग्वाहीन्ययनान्युपरोधयाञ्चक्रे ॥३ ॥

शैलद्रोण्यामद्रिद्वययोगेन पथि संकीर्णे।
स्थूलोपलैः प्रपातैः प्रचितैः स्रोतांसि रुद्धानि ॥४॥
गिरिकुलगह्वरभागाः सर्वेऽप्यभवन् पयोभिराकीर्णाः।
ओघः समुद्रवद्भूदुर्गैः कूटैरितस्ततः प्रचितः ॥५॥
वंक्षण्यो याः सरितामद्रीणां याश्च वंक्षणा आसन्।
तत्रापां बिलमखिलं प्रस्तरखण्डैर्निरोधयामासुः ॥६॥
स्रोतःसृत्यवरोधे रक्षार्थं दासपत्न्योऽग्र्याः।
आसंस्तत्र नियुक्ता निरीक्षका यामिका बहवः ॥७॥
तत्र च पयःप्रसारेऽन्तरीपदेशे विशालशैलस्य।
अधरशिलाविस्फोटात् तिर्य्यग्विवरं चकार दूरतरम् ॥८॥
जलमयमन्तर्विवरं प्लवगम्यं तत्परं तमसा।
छन्नं वर्त्म ततस्तद्विशति गिरेरुदरमत्यजिरम् ॥९॥
तत्र च विविधाः शाला राजगृहाण्यपि, गृहाणि भृत्यानाम्।
दृषदुत्किरणात् सिद्धान्यत्र च भाः शिखरविवरेभ्यः ॥१०॥
इत्थं पर्वतगर्भे दृषदुद्धरणान्महाजिरे जाते।
सिद्धेष्वनेकसदनेष्वहिरण्यमाशेत संवृतोऽम्भोभिः ॥११॥
अम्भसि पर्वतगर्भे तमसाक्रान्ते बिलेशयः सोऽहिः।
लोकान् दष्ट्वा दृष्ट्वा गिरिकुहरेह्योष्ट दुष्ट आत्मानम् ॥१२॥
"समुद्रे अन्तः शयत उद्ना वज्रो अभीवृतः।
भरन्त्यस्मै संयतः पुरःप्रस्रवणा बलिम्" ॥(८/१००/९)
इन्द्रस्तेषां पर्वतानां च पक्षांश्छित्वाक्रम्योद्बोधयामास सुप्तम्।
अत्युग्राहिं तं जघानाद्रिभेदात्तस्मादापोऽगुः समुद्रं सरस्तः ॥१३॥
शैलद्रोण्यां वंक्षणाख्या अपां ये बन्धा आसन् दासपत्नीप्रगुप्ताः।
ते च ध्वस्ताः शैलपक्षावभेदादापः सर्वाः सप्तसिन्धुष्वगुस्ताः ॥१४॥
सगरो नामस्थानं तदन्तरिक्षं यतो मूलात्।
सिन्धोः सप्तस्रोतांस्युन्मोच्यावाहयत् सिन्धौ ॥१५॥
तत्र प्रान्ते पर्वतश्रेणिबन्धे संरुद्धानां तर्ह्यपां भूयसीनाम्।
शैलोद्भेदात् स्रोतसाऽभूद् 'वितस्ता' भूमिप्रान्ते सिन्धुवारां प्रसारः ॥१६॥
तत्रैकहेलयाऽपामोघविसारे पुराऽवरुद्धानाम्।
क्वासां मूलं मध्यं वाऽन्तो वेत्यवगमे जनः मुमुहुः ॥१७॥

(२७) अहि-निर्य्यातन

कुछ पर्वत थे, जहाँ दस्युओं का समूह पूरी तरह छिप जाता था। उनके बीच किसी पर्वत के गर्भ में दासराज अहि, जो नागवंशी था, निवास करता था ॥१ ॥

इस अहि नाम के असुर ने कुयव आदि दास मुख्यों की सहायता से सिन्धु नदी के प्रवाह को किसी समय अवरुद्ध कर दिया था ॥२ ॥

विभिन्न पाषाण-खण्डो की कन्दराओं को उखाड़ने से सिन्धु के सात स्रोत बहते थे, जिनमें दक्षिण दिशा में बहने वाले स्थानों को (सिन्धु के प्रवाह स्थलों को) रोक दिया था ॥३ ॥

उस पर्वत की द्रोणि में दो पर्वतों के योग से संकीर्ण हुए मार्ग में बड़े-बड़े पत्थरों के समूह को एकत्रित करके, सिन्धु के स्रोतों को अवरुद्ध कर दिया गया था। ।४ ॥

उस पर्वतसमूह के समस्त कन्दराभाग जल से परिपूर्ण हो गए तथा वह ओघ (जलसमूह) इधर-उधर भारी मात्रा में एकत्रित होकर (फैल कर) समुद्र के समान हो गया ॥५ ॥

नदियों की जो गुफाएँ थीं, पर्वतों के जो गह्वर थे, वहाँ जल के समस्त बिलों (मार्गों) को वे दस्यु विशाल पाषाणखण्डों से रोक देते थे ॥६ ॥

उन स्रोतों के मार्गावरोध में रक्षा के लिए दासपत्नियाँ अग्रणी थीं, तथा यहाँ अनेक निरीक्षक प्रहरी नियुक्त थे ॥७ ॥

वहाँ जलप्रसार में उस विशाल पर्वत के अन्तरीप देश में नीचे की शिलाओं के विस्फोट से दूर तक एक तिरछा विवर (खाई) बन गया ॥८ ॥

जल से परिपूर्ण वह अन्तर विवर (अन्दर की गहरी विवर) तैर कर पार करने योग्य था, उसके आगे घोर अंधकार युक्त मार्ग उस गिरि के अन्त:प्रांगण में पहुँचता था ॥९ ॥

वहाँ अनेक शालाएँ, राजगृह, सैनिकों के निवासगृह बने हुए थे, जो पत्थरों को उत्कीर्ण कर के बनाए गए थे तथा जिनमें पर्वतशिखर के विवरों (छिद्रों) से प्रकाश पहुँचता था ॥१० ॥

इस प्रकार पर्वत के गर्भ में पत्थरों को उत्कीर्ण करके विशाल प्रांगण में बनाए हुए अनेक भवनों में, जो जल से घिरे हुए थे, वह अहि नाम का असुर रहता था ॥११ ॥

वह अहि नाम का असुर जल में पर्वत के गर्भ में अंधकार से आक्रांत बिल (गुफा) में रहने वाला था और लोकों (लोगों) को देख-देख कर वह दुष्ट स्वयं को गिरि-कुहर (पर्वत की गुफाओं) में छिपा लेता था ॥१२ ॥

ऋग्वेद में - "इन्द्र का वज्र जल से घिरे हुए समुद्र के बीच स्थित है, उसके भय से युद्ध में सामने से भागने वाले शत्रु, इस वज्र के लिए अथवा इन्द्र के लिए बलि अर्पित करते हैं।(८/१००/९)

इन्द्र ने उन पर्वतों के पक्षों को काटकर आक्रमण करके सोते हुए, अत्यन्त उग्र अहि को जगाया और उसका संहार कर दिया। उस पर्वत को तोड़ने से सरोवर का जल समुद्र में चला गया ॥१३ ॥

पर्वत की द्रोणि, में "चक्षण" नाम के जो जलबंध दासपत्नियों द्वारा सुरक्षित थे, वे पर्वत के पक्षों का भेदन करने से नष्ट हो गए और उनका सम्पूर्ण जल सप्त-सिन्धु में चला गया ॥१४ ॥

वह अन्तरिक्ष में सगर नाम का स्थान है, जिसके मूल से सातों स्रोतों को तोड़कर सिन्धु (नदी) का जल समुद्र में प्रवाहित कर दिया गया (यहाँ अंतरिक्ष से तात्पर्य भौम - त्रिलोकी के अंतरिक्ष से है) ॥१५ ॥

उस पर्वतप्रांत में पर्वतश्रेणी के बंध में अवरुद्ध बहुत से जलों का पर्वत के तोड़ने से जो स्रोत बना, उससे भूमि-प्रान्त में "वितस्ता" नाम की नदी के जल का प्रसार होने लगा ॥१६ ॥

वहाँ एक ही बार में पहले से रोके हुए जलों के ओघ के विस्तार में इनका उद्‌गम मध्य और अन्त कहाँ है ? यह समझने में लोग भ्रमित हो गए ॥१७ ॥

(२८) शंबरहत्यम्।

प्रस्तोकाख्यः सृञ्जयपुत्रः कथितो दिवोदासः।
'अतिथिग्व'श्व स एवाश्वथ उक्तो गर्गयजमानः ॥१ ॥
'अतिथिग्वं तु 'कशोजुव' मपीडयच्छंबरो दिवोदासम्।
अश्विभ्यां मयमिन्द्रस्तमरक्षच्छंबरं हत्वा ॥२ ॥
अतिथिग्वशत्रुशंबरनिग्रहणायेन्द्र आदिशत् पूर्वम्।
तद्भयतो गिरिगह्वरतमसि पयःसंवृतः सोऽस्थात् ॥३ ॥
अत्युच्चपर्वतोपरि गृहमासीत् किञ्चिदस्यान्तः।
अवरोहणसोपानेऽभूदवतरितं तु कंदरद्वारम् ॥४ ॥
उत्कीर्णाश्मकृताजिरमासीदुदरं गिरेस्तत्र।
अन्तर्विविधाः शाला आसन् वर्त्मानि चत्वराणि सरः ॥५ ॥
आरुह्यादौ शिखरं गृहान्तरद्वारमासाद्य।
अवरोहणसोपानेनावतरन् विंशति गह्वारायतने ॥६ ॥
इत्थं सोतिनिगूढं सुरक्षितं दुर्गमाश्रित्य।
इन्द्रनियुक्तैश्चारैरलक्षितः शम्बरोऽजीवत् ॥७ ॥
चत्वारिंशद्वर्षाण्यात्मानं निह्नुवानः सः।
शुष्णनिबर्हाभिक्रमकालेऽकस्मादयं ददृशे ॥८ ॥
पर्वतशिखरस्योपरि शंबर एत्य स्थितो रिपुं द्रष्टुम्।
शृङ्गान्निपात्य भूमौ तमश्विनौ जध्नतुः क्रूरम् ॥९ ॥

"याभिर्महामतिथिग्वं कशोजुवं दिवोदासं शंबरहत्य आवतम्।
याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥"
(१/११२/१४)

शतमश्ममय्य आसन् शम्बरपुर्य्यो दृढाऽऽसु या मुख्या।
आयस्येका शंबरदस्योः सा राजधान्यासीत्॥१०॥
नवनवतिर्य्याः पुर्य्यस्तासामीशाश्च नवनवतिः।
बाहव इव ते चासन् वशंवदाः शंबरस्यास्य॥११॥
निर्हत्य शंबरं प्रागतिथिग्वायाददात्पुरीं मुख्याम्।
नवनवतिं तु पुरीस्ताः सर्वा विध्वंसयामास॥१२॥
मध्ये मध्ये श्रान्तः स्थगितः समरे बभूव यर्हीन्द्रः।
तर्हि भरद्वाजः सहकाले तत्रार्पयत्सोमम्॥१३॥
"यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयः।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब॥"(ऋ ६/४३/१)
"यत्सानोः सानुमारुहद् भूर्य्यस्पष्ट कर्त्वम्।
तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति (ऋ १/१०/२) मधुच्छन्दाः।
शंबरपुरी विभेदनकर्म्मणि राजा तु यो नियुक्तोभूत्।
त्रसदस्युन्तं दासैः प्रहण्यमानं ररक्षतुर्दस्रौ॥१४॥
'वर्ची' शंबरसेनापतिरसुरस्तस्य वीरान् सः।
इन्द्रो विष्णुसहायः शतं सहस्रं न्यवधीत्॥१५॥
"सखे विष्णो वितरं विक्रमस्व द्यौर्देहि लोकं वज्राय विष्कभे।
हनाव वृत्रं रिणचाव सिन्धूनिन्द्रस्य यन्तु प्रसवे विसृष्टाः॥"
(ऋ. ८/१००/१२)

शंबरहत्ये नवति नव च पुरीरासुरीस्तु यद् व्यधमत्।
यद्वा शतं सहस्रं वीरान् भूमौ न्यपातयत्साकम्॥१६॥
पर्वतभेदाच्चक्रे मार्गं सेनाभियानाय।
कतिपयपर्वतपक्षानशातयत् सप्तसिन्धुषु यत्॥१७॥
स्रोतांसि दासरुद्धान्यचारयत्सागरं यावत्।
महदिदमैन्द्रं वीर्य्यं प्रभाव उग्रोऽद्भुतं कर्म्म॥१८॥
"पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत।
इन्द्रो विश्वस्य कर्म्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः॥"
जेता मधुच्छन्दसः(१/११/४)

इन्द्रो मानुष आसीदमानुषं कर्म्म यच्चक्रे।
तत्सर्वं व्याचष्टे गृत्समदो वज्रिणं स्तुत्वा॥१९॥
अहिशंबरयोर्युद्धे पर्वतपक्षावभेदनादिन्द्रः।
लेभे गोत्रभिदाख्यां पुरन्दराख्यां तु पुरशतोद्भेदात्॥२०॥
यच्छंबरसमकालो राजाऽऽसीद् भारते दिवोदासः।
तदतो दस्युनियुद्धात्प्रागपि सभ्यस्थितिं विजानेऽत्र॥२१॥

(२८) शम्बर-वध

प्रस्तोक नाम का सृंजय का पुत्र दिवोदास कहा गया है। इसी को अतिथिग्व और अश्वथ कहा गया है, वह गर्ग ऋषि का यजमान था ॥१॥

"कशोजुव" नाम के दिवोदास अतिथिग्व को यह शंबर नाम का दस्यु पीड़ित करता था। इन्द्र ने अश्वियों के साथ मय जाति के दस्यु को मार कर (शंबर के निग्रह का आदेश दिया) ॥२॥

अतिथिग्व के शत्रु शम्बर नामके असुर का निग्रहण करने के लिए इन्द्र ने आज्ञा दी। उसके भय से पर्वत की खाइयों में अंधकार में, जो जल से घिरी हुई थीं, वह छिप गया॥३॥

अत्यन्त उच्च पर्वत पर इसका कोई घर था, जिसमें उतरने की सीढ़ी में उतरने के पश्चात् एक गुहाद्वार था॥४॥

उस पर्वत के गर्भ में उखाड़े हुए पत्थरों से एक प्रांगण बनाया गया था, जिसके अन्दर अनेक शालाएँ, मार्ग, चौराहे और तालाब थे॥५॥

पर्वत के शिखर पर चढ़ कर गृह के अन्तर्द्वार पर पहुँचकर अवरोहण की सीढ़ियों से उतरते हुए विशाल गुहाप्रांगण में प्रवेश करता है॥६॥

इस प्रकार वह शम्बर अत्यन्त सुरक्षित, छिपा हुआ और दुर्गो का आश्रय लेकर इन्द्र द्वारा नियुक्त गुप्तचरों से लक्षित न होते हुए जीवित था॥७॥

इस प्रकार चालीस वर्ष तक वह शम्बर स्वयं को छिपाए रहा, परन्तु शुष्ण को मारने के अभिक्रमण के समय वह अकस्मात् दिखाई दिया॥८॥

पर्वतशिखर के ऊपर आकर वह शम्बर शत्रु को देखने के लिए खड़ा हुआ। उस क्रूर शम्बर को अश्वियों ने पर्वत की चोटी से भूमि पर गिरा कर मार दिया॥९॥

ऋग्वेद में-"हे अश्वि देवों! शम्बर का वध कर के युद्ध में अतिथिग्व, कशोजुव और दिवोदास की तुम दोनों ने जिससे रक्षा की, जिससे दस्युओं को डराने वाले नरेश को शत्रुओं की नगरियों को तोड़ने के युद्ध में तुम दोनों ने रक्षा की, उन्हीं रक्षाओं से युक्त होकर हमारे पास आओ।(१/११२/१४)

शम्बर दस्यु की सौ नगरियाँ पत्थर से बनी हुई थीं और दृढ़ थीं, उनमें से प्रमुख आयसी (लोहे) की नगरी थी, जो शम्बर दस्यु की राजधानी थी ॥१० ॥

निन्यानवें नगरियों के स्वामी निन्यानवें ही थे, जो शम्बर दैत्य की भुजाओं के समान थे और उसके आज्ञाकारी थे ॥११ ॥

सर्वप्रथम शम्बर दैत्य को मारकर (इन्द्र ने) यह प्रमुख नगरी अतिथिग्व को दे दी। अन्य जो निन्यानवें नगरियाँ थी, वे सभी नष्ट कर दी गईं ॥१२ ॥

युद्ध के बीच बीच में जब इन्द्र रुक जाता था, तब उस समय भरद्वाज ऋषि उसे सोम अर्पित करते थे ॥१३ ॥

ऋग्वेद में - "हे इन्द्र ! तुमने जिसके पीने से उत्साह उत्पन्न होने पर दिवोदास का हित करने के लिए शम्बर को नष्ट किया, वही यह सोम है, तेरे लिए निकाला गया है, तू इसका पान कर"(६/४३/१)

"जैसे तू एक पर्वतशिखर से दूसरे पर्वतशिखर पर जाता है, वैसे ही जो अनेक कार्यो को पूर्ण करता है, इन्द्र उसके उद्देश्य को जानता है, और अपने साथियों के साथ उसकी सहायता के लिए शीघ्रता से दौड़ता है ॥(१/१०/२)

शम्बरपुरी को नष्ट करने में जिस राजा को नियुक्त किया गया था, उसका नाम त्रसदस्यु था, जिसकी दासों के प्रहार से अश्वियों ने रक्षा की ॥१४ ॥

"वर्ची" नाम का दैत्य शम्बर का सेनापति था जिसके सैकड़ों हजारों वीरों को इन्द्र ने विष्णु की सहायता से मार दिया ॥१५ ॥

ऋग्वेद में - "हे मित्र विष्णु ! तू अधिक पराक्रम दिखा। हे द्यौ ! तू हमारे वज्र के लिए अधिक स्थान दे। हे विष्णो ! वृत्र को हम दोनों मारें और जल को प्रवाहित करें। वे जल मुक्त होते ही इन्द्र की आज्ञा में जावें ।(९/१००/१२)

शम्बर को मारने में निन्यानवें आसुरी पुरियों को नष्ट किया और सेना के सौ हजार (एक लाख) वीरों को साथ ही मार कर भूमि पर गिरा दिया ॥१६ ॥

सेना के अभियान के लिए पर्वतों को तोड़ कर मार्ग बनाया। सप्त-सिन्धु में कुछ पर्वतों के पक्षों को काट दिया ॥१७ ॥

दासों द्वारा अवरुद्ध स्रोतों को सागर पर्यन्त पहुँचा दिया। इन्द्र का यह महान् पराक्रम उग्र प्रभाव और अद्‌भुत कर्म था ॥१८ ॥

ऋग्वेद में - "शत्रु के नगरों को तोड़ने वाला महान् पराक्रमी युवा, ज्ञानी समस्त कर्मों को करने वाला और सम्पूर्ण विश्व द्वारा प्रशंसित वज्रधारी इन्द्र प्रकट हुआ।"(१/११/४)

यह इन्द्र मनुष्य इन्द्र था जिसने मानुषी कर्म किये। यह सब गृत्समद ने इन्द्र की स्तुति करते हुए कहा ॥१९ ॥

अहि और शम्बर के युद्ध में पर्वतों के पक्षों का भेदन करने से इन्द्र गोत्रभिद् नाम से और सौ पुरों को नष्ट करने से पुरन्दर नाम से प्रसिद्ध हैं ॥२० ॥

भारत में शम्बर का समकालिक दिवोदास नाम का राजा था तथा इस दस्युयुद्ध से पहले भी यहाँ सभ्य लोगों की स्थिति थी, ऐसा प्रतीत होता है ॥२१ ॥

(२९) कृष्णासुरत्वगुत्कर्तनम्।

अंशुमती तु नदी या तस्यास्तीरेऽसुरस्तु कृष्णाख्यः।
अयुतानुचरोपेतस्तत्प्रान्ते नृन् प्रपीडयन्नासीत् ॥१ ॥
पश्चिमतो दक्षिणतश्चोत्तरतस्तं बृहस्पतिर्न्यरुणत्।
इन्द्रः पूर्वत इत्वा मध्ये सन्तं तमाक्रामत् ॥२ ॥
सर्वाजय्यात्माभिमानेन दासस्तुच्छं जानन् सर्वमन्यं युयुत्सुम्।
अभ्यायान्तं वीरमिन्द्रं प्रशंसन् हास्ये कृष्णः कौतुकादाजुहाव ॥३ ॥
स्तुतिमुखनिन्दां कुर्वन् राज्ञः पत्युः स्फुटं ब्रुवन् दोषान्।
सन्धिं चेच्छन् रक्षां चार्थयते योद्धुमाह्वयति ॥४ ॥

ऋ.१०/४२ "अस्तेव सुप्रतरं लायमस्यन्भूषन्निव प्रभरा स्तोममस्मै।
वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो निरामय जरितः सोम इन्द्रम् ॥१ ॥
दोहेन गामुप शिक्षा सखायं प्रबोधय जरितर्जारमिन्द्रम्।
कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टमा च्यावय मघदेयाय शूरम् ॥२ ॥
किमङ्ग त्वा मघवन्भोजमाहुः शिशीहि मा शिशयं त्वा श्रृणोमि।
अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः ॥३ ॥
त्वां जना ममसत्येष्विन्द्र सन्तस्थाना विह्वयन्ते समीके।
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः ॥४ ॥
धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्त्सोमाँ आसुनोति प्रयस्वान्।
तस्मै शत्रून्त्सुतुकान्प्रातरह्नो नि स्वष्ट्रान्युवति हन्ति वृत्रम् ॥५ ॥
यस्मिन्वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्राय मघवा काममस्मे।
आराच्चित् सन्भयतामस्य शत्रुर्न्यस्मै द्युम्ना जन्या नमन्ताम् ॥६ ॥
आराच्छत्रुमपबाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन।
अस्मे धेहि यवमद्गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम् ॥७ ॥
प्र यमन्तर्वृषसवासो अग्मन्तीव्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम्।
नाह दामानं मघवा नियंसन्नि सुन्वते वहति भूरि वामम् ॥८ ॥

उत प्रहामतिदीव्या जयाति कृतं यच्छ्वघ्नी विचिनोति काले।
यो देवकामो न धना रुणद्धि समित्तं राया सृजति स्वधावान् ॥९ ॥
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम्।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१० ॥
बृहस्पतिर्नः परिपातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु" ॥११ ॥
(१०/४२)

ऋ.१०/४३ "अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत।
परिष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥१ ॥
न घा त्वद्रिगपवेति मे मनस्त्वे इत्कामं पुरुहूत शिश्रय।
राजेव दस्म निषदोधि बर्हिष्यस्मिन्त्सु सोमेऽवपानमस्तु ते ॥२ ॥
विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इद्रायो मघवा वस्व ईशते।
तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य शुष्मिणः ॥३ ॥
वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्त्सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः।
प्रैषामनीकं शवसा दविद्युतद्विदत्स्वर्मनवे ज्योतिरार्यम् ॥४ ॥
कृतं न श्वघ्नी विचिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत्।
न तत्ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघवन्नोत नूतनः ॥५ ॥
विशं विशं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवचाकशद्वृषा।
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः ॥६ ॥
आपो न सिन्धुमभि यत्समक्षरन्त्सोमास इन्द्रं कुल्या इव ह्रदम्।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥७ ॥
वृषा न क्रुद्धः पतयद्रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः।
स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ॥ ८ ॥
उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत्।
विरोचतामरुषो भानुना शुचिः स्वर्णशुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ॥९ ॥
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम्।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१० ॥
बृहस्पतिर्नः परिपातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु" ॥११ ॥

ऋ.१०/४४ "आयात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान्।
प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्ण्येन ॥१ ॥

सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ।
शीभं राजन्त्सुपथा याह्यार्वाङ् वर्धाम ते पपुषो वृष्ण्यानि॥२॥
एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहुमुग्रमुग्रासस्तविषास एनम्।
प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्ममेमत्स्मत्रा सधमादो वहन्तु॥३॥
एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतसमूर्जः स्कम्भं धरुण आ वृषायसे।
ओजः कृष्व सङ्गृभाय त्वे अप्यसो यथा केनिपानामिनो वृधे॥४॥
गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं स्वाशिषं भरमायाहि सोमिनः।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि वर्हिष्यनाधृष्या तव पात्राणि धर्मणा॥५॥
पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः॥६॥
एवैचापागपरे सन्तु दूढयोश्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना॥७॥
गिरीँरज्रान्रेजमानाँ अधारयद्द्यौः क्रन्दन्तरिक्षाणि कोपयत्।
समीचीने धिषणे विष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद उक्थानि शंसति॥८॥
इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवञ्छफारुजः।
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ मघवन्बोध्याभगः॥९॥
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम्।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम॥१०॥
बृहस्पतिर्नः परिपातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु"॥११॥

(२९) कृष्ण नामक असुर की त्वचा का उत्कर्तन (उखाड़ना)

"अंशुमती" नाम की जो नदी है, उसके किनारे पर कृष्ण नाम का असुर था, जो अयुत (दस हजार) सेवकों के साथ उस प्रांत में रहने वाले मनुष्यों को पीड़ित करता था॥१॥

उसको बृहस्पति ने पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशा से रोक दिया और इन्द्र ने पूर्व दिशा से आकर बीच में घिरे हुए उस पर आक्रमण कर दिया॥२॥

स्वयं को अजेय मानने के अभिमान से इस दास ने अन्य समस्त युद्धेच्छु योद्धाओं को तुच्छ जानते हुए सामने आते हुए वीर इन्द्र की प्रशंसा करते हुए उस कृष्ण दस्यु ने कुतूहलपूर्वक इन्द्र का आह्वान किया॥३॥

कृष्ण दस्यु इन्द्र की स्तुतिमुख निन्दा (प्रशंसा के बहाने निंदा) करते हुए स्वामी राजा (इन्द्र) के दोषों का वर्णन करता हुआ सन्धि चाहतां हुआ और रक्षा की प्रार्थना करता हुआ युद्ध का आह्वान करता है ॥४ ॥

इस युद्ध के सम्बन्ध में ऋग्वेद के दशम मण्डल के बियालीसवें सूक्त में वर्णन है - "जैसे बाण फैंकने वाला धनुर्धर उत्तम प्रकार से दूरी पर स्थित लक्ष्य पर बाण का प्रहार करता है और आभूषणों से सुसज्जित होता है, वैसे ही हे विप्र! तू इन्द्र के लिए स्तुतियाँ प्राप्त कर और इन स्तुतियों के प्रयोग से अपने शत्रु का वचनों से निराकरण कर। हे स्तुतिकर्ता! तू सोमयाग में इन्द्र को नित्य अपने अनुकूल कर ॥१ ॥

हे स्तुतिकर्ता। जैसे गाय को दूह कर अभीष्ट प्राप्ति की जाती है, वैसे ही तू अपने मित्र इन्द्र को अभीष्ट प्राप्ति के लिए प्रसन्न कर, इन्द्र को स्तुतियों से प्रबुद्ध कर धन से परिपूर्ण कोष के समान ऐश्वर्यसम्पन्न शूरवीर इन्द्र को धनदान के लिए अपने अनुकूल कर। हे मघवन् इन्द्र ! तुझे दान दाता क्यों कहते हैं ? मुझे धन देकर समर्थ कर। मैं तुझे समर्थ बनाने वाला सुनता हूँ। मेरी बुद्धि कर्म में निपुण हो, हमें उत्तम धन प्रदान करने वाला सौभाग्य प्रदान कर ॥२-३ ॥

हे इन्द्र ! युद्ध में जनता तुझे सहायतार्थ सम्मानपूर्वक बुलाती है, युद्ध में प्रयाण करते समय तुझे बुलाती हैं, इस समय वीर इन्द्र हवि से युक्त है उसके साथ ही मित्रता करती है, क्योंकि सोमरहित स्तुतिकर्ता के साथ इन्द्र मित्रता नहीं करना चाहता है ॥४ ॥

जो यजमान अनेक गौ, अश्वादि प्रदान करने वाले ऐश्वर्यवान् के समान इस इन्द्र को तीव्र सोमरस प्रदान करता है, उसके लिए इन्द्र दिन के प्रातःकाल में (शीघ्र ही) पुत्रों को देता है, सुन्दर आयुधों से युक्त शत्रुओं को दूर कर देता है और घृत्र का संहार कर देता है ॥५ ॥

हम जिस इन्द्र की स्तुति करते हैं, जो ऐश्वर्यवान् इन्द्र हमें अभीष्ट धन प्रदान करता है। इस इन्द्र का शत्रु दूर से ही भयभीत हो जाता है, इस इन्द्र को शत्रु की सम्पत्ति भी प्राप्त हो ॥६ ॥

हे पुरूहूत इन्द्र ! तुम्हारा जो उग्र वज्र है, उस वज्र से हमारे समीप के शत्रुओं को दूर कर। हमें जौ से युक्त अन्न और गौ से युक्त सम्पत्ति प्रदान कर। हे इन्द्र ! तू हम स्तुतिकर्ताओं की बुद्धि को धन और रत्न से युक्त कर (सुद्बुद्धि प्रदान कर) ॥७ ॥

जिस इन्द्र के उदर में तीव्र एवं क्षुधावर्धक हवन किया गया सोम प्राप्त होता है, वह मघवा इन्द्र हवि प्रदान करने वाले यजमान का कभी विरोध नहीं करता है। वह इन्द्र पर्याप्त सोमप्रदाता यजमान को अधिक सम्पन्न बनाता है ॥८ ॥

जिस प्रकार जुआरी स्वयं जिससे पराजित होता है पुनः उसी की खोज करके उसे हरा देता है, उसी प्रकार इन्द्र भी दुष्कर्म करने वाले को अतिक्रमण करके पराजित कर देता है ॥९ ॥

हे पुरूहूत! दारिद्र्य से युक्त दुर्बुद्धि को हम गौ आदि पशुओं से दूर कर दें तथा जौ अन्न से हम समस्त प्रकार की क्षुधा को शान्त कर ले, राजाओं से हम श्रेष्ठ धन प्राप्त करें तथा अपने बल से विजय को प्राप्त करें ॥१० ॥

हमें बृहस्पति पीछे-ऊपर और नीचे से दुष्ट (पाप करने वाले) शत्रुओं से बचावे तथा इन्द्र पूर्व दिशा और मध्य भाग से हमारी रक्षा करे। वह मित्र इन्द्र, हम मित्रों के लिए उत्तम धन प्रदान करे ॥११ ॥(१०/४२/१-११) ॥

"मेरी बुद्धि, जो सर्वव्यापी, परस्पर सुसम्बद्ध, समस्त प्रकार की कामना करने वाली है, वह उस इन्द्र की स्तुति करती है। जिस प्रकार स्त्रियाँ अपने पति को सुखी करने के लिए उनका आलिङ्गन करती हैं, उसी प्रकार हमारी ये स्तुतियाँ उस ऐश्वर्यवान् इन्द्र को प्राप्त हों ॥१ ॥

हे पुरूहूत (पुरों पर विजय पाने वाले इन्द्र) मेरा मन तुम्हें छोड़कर अन्यन्त्र नहीं जाता है। मैं अपनी कामना तुझमें ही स्थापित करता हूँ। हे दर्शनीय इन्द्र! जैसे राजा आसन पर बैठता है, वैसे ही तुम भी बैठो और इस सोम में उत्तम रीति से सोमपान कार्य सम्पन्न हो ॥२ ॥

इन्द्र हमारी दुर्बुद्धि और क्षुधा से बचाने के लिए सर्वदा हमारे पास रहे। वह इन्द्र समस्त ऐश्वर्यों और धनों का स्वामी है, उसी बलवान्, शोषक और वृष्टिकर्ता इन्द्र की ये श्रेष्ठ एवं प्रसिद्ध सात गंगादि नदियाँ अन्न की वृद्धि करें ॥३ ॥

यथा सुन्दर कोमल पत्ते वृक्ष के आश्रित होते हैं, तथैव मस्त करने वाले तथा चमस पात्र में स्थित सोम इन्द्र को प्राप्त हो। इस सोमपान के बल से इन्द्र का मुख द्युतिमान् हो गया है, अतः वह इन्द्र अपना सर्वश्रेष्ठ तेज मनुष्य के लिए प्रदान करे ॥४ ॥

जिस प्रकार द्यूतविद्याप्रवीण अपने जूआ खेलने के स्थान पर दूसरे जुआरी को खोज लेता है, उसी प्रकार वह ऐश्वर्यशाली इन्द्र वृष्टि को अवरुद्ध करने वाले सूर्य को जीतता है। हे मघवन्। तेरे बल और वीर्य के समान कार्य अन्य कोई नहीं कर सकता है ॥५ ॥

समस्त ऐश्वर्यों को देने वाला इन्द्र प्रत्येक मनुष्य में रहता है, मनुष्यों की प्रार्थनाओं को सुनता है। यह इन्द्र जिस मनुष्य के यज्ञों में आनन्द प्राप्त करता है, वह मनुष्य तीव्र सोमरसों के द्वारा शत्रुओं को पराजित कर देता है ॥६ ॥

जिस प्रकार नदियों का जल समुद्र की ओर जाता है, छोटी-छोटी नालियाँ तालाब की ओर जाती हैं, वैसे ही सोमरस इन्द्र की ओर जाता है। उस इन्द्र के महत्त्व को यज्ञ के समय विद्वान् लोग बढ़ाते हैं, जैसे दिव्य वृष्टि करने वाला पर्जन्य जौ को बढ़ाता है ॥७ ॥

जैसे संसार में क्रोधित हुअ बैल दौड़ता है, वैसे ही यह इन्द्र दौड़ता है। मेघों को तोड़कर अपने आश्रित इन जलों को हमारे लिए मुक्त करता है वह ऐश्वर्यवान् इन्द्र

सोम का सेवन करने वाले, दान देने वाले और हविर्युक्त मनुष्य को ज्योतिप्रदान करता है ॥८ ॥

यह इन्द्र समस्त ज्योतिसमूह के साथ उदित हो, ऋत को उत्पन्न करने वाली वाणी पहले की तरह पुनः प्रगट हो और सज्जनों का संरक्षण करने वाला इन्द्र सूर्य के समान अत्यन्त ज्योतिष्मान् हो ॥९ ॥

हे पुरूहूत इन्द्र ! हम गौ आदि के द्वारा दारिद्र्य से प्राप्त दुर्बुद्धि को पार करें और जौ आदि अन्न से क्षुधा को पार करें। राजाओं से श्रेष्ठ धन प्राप्त करें और अपने बल से शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें ॥१० ॥

"बृहस्पति हमें पीछे, ऊपर और नीचे से दुष्ट (पाप करने वाले) शत्रुओं से बचावें। इन्द्र हमें पूर्व दिशा और मध्य भाग से शत्रुओं से बचावें। यह इन्द्र सबका मित्र है और हम मित्रों के लिए धन प्रदान करें ॥११ ॥"(१०/४३/१-११)

"वह इन्द्र धन का स्वामी है, हमें हर्षित करने के लिए आवे। वह इन्द्र वेगवान् और बलवान् है, जो समस्त शत्रुओं को अपने महान् और अतुल बल से नष्ट करता है, वह इन्द्र रथ पर चढ़कर हमारे यज्ञ में आवे ॥१ ॥

हे मनुष्यों के स्वामी इन्द्र ! तेरा रथ अत्यन्त सुघटित है, तेरे रथ के दोनों घोड़े नियंत्रित हैं और तेरे हाथ में देदीप्यमान वज्र है। हे राजन्! तू शीघ्र ही उत्तम मार्ग से हमारे पास आ और हम तुझे सोम पिलाकर तेरे बल का वर्धन करेंगे ॥२ ॥

मनुष्यों के स्वामी, वज्रबाहु, उग्र, शत्रु के सैन्यबल को दुर्बल करने वाले अभीष्ट की प्राप्ति कराने वाले, सत्य और पराक्रमी इन्द्र को उग्र वीर्यवान् और मदमस्त इन्द्र को लाने वाले घोड़े हमारे पास लावें ॥३ ॥

इस प्रकार हे इन्द्र ! तू रक्षा करने वाला, पूर्ण कलश, उत्साहवर्धक और ओज को उत्पन्न करने वाला सोमरस अपने उदर में एकत्रित करता है हमें बल प्रदान कर, तू हमें अपने आप में आत्मसात् कर, क्योंकि तू ज्ञानियों के सुख और ऐश्वर्य की बुद्धि करने वाला है ॥४ ॥

हे इन्द्र ! हमें समस्त प्रकार का धन प्राप्त हो क्योंकि हम तेरी स्तुति करते हैं। हे इन्द्र ! तू हमारे सोमयाग में सुन्दर आशीर्वाद से युक्त होकर आ क्योंकि इन सबका स्वामी है। तेरे सोमपान करने के पात्र अन्य किसी के द्वारा आक्रान्त न होते हुए सुसज्जित हैं। अतः तू हमारे इस यज्ञ में आकर आसीन हो ॥५ ॥

हे इन्द्र ! प्राचीनकाल से ही देवों की स्तुति करने वाले पृथक्-पृथक् स्थानों (देवलोकों) को प्राप्त करते हैं, वे अत्यन्त दुष्कर और यशोवृद्धिजनक कर्म को कर लेते हैं और जो यज्ञरूपी नाव पर आरूढ नहीं हो सकते हैं वे पाप-कर्मों में लिप्त होकर निम्नगति को प्राप्त करते हैं ॥६ ॥

इस प्रकार के जो दूषित कर्म करने वाले हैं, जिनके रथ में दूषित ढंग से चलने वाले अश्व योजित होते हैं, ऐसे मनुष्य निम्न गति को प्राप्त होते हैं। जो यजमान पहले से ही हविर्दान में तत्पर रहते हैं, वे ऊर्ध्वगति (स्वर्गगामी) को प्राप्त करते हैं, जिस स्वर्ग में अनेक प्रकार के धन और भोज़नयोग्य सामग्री प्राप्त होती है ॥७॥

जिस इन्द्र ने रमणशील और कम्पित होते हुए पर्वतों को स्थिर किया है। जो आकाश गर्जना करता है, अन्तरिक्ष क्षुभित होता है और जो परस्पर समीचीन द्यावा-पृथिवी है, इन सबको धारण करता है (स्थिर करता है) तथा वह सोमरस को पी कर मदमस्त हो कर उत्तम वचन बोलता है ॥८॥

हे मघवन्। तेरा उत्तम कर्म इस अंकुश को धारण करता है, जिस अंकुश से तू दूषित कर्म करने वालों के बल को नष्ट करता है, इस यज्ञ में तेरा निवास आनन्द-युक्त हो। हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र! इस सोमयज्ञ में, जो उत्तम रीति से सम्पन्न हुआ है, तू हमारी सुन्दर स्तुतियों को पहचान ॥९॥

हे पुरूहूत इन्द्र! दारिद्र्य से युक्त दुर्बुद्धि को हम गौ आदि पशुधन से दूर कर दें तथा जौ अन्न से हम समस्त प्रकार की क्षुधा को शान्त करें, राजाओं से श्रेष्ठ धन की प्राप्ति करें तथा अपने बल से विजय को प्राप्त करें ॥१०॥

बृहस्पति हमें पीछे, ऊपर और नीचे से दुष्ट (पाप करने वाले) शत्रुओं से बचावें। इन्द्र हमें पूर्व दिशा (दाहिनी ओर) तथा मध्य भाग से आने वाले शत्रुओं से बचावें। सबका मित्र इन्द्र हम मित्रों को उत्तम धन प्रदान करे ॥११॥"(१०/४४/१-११)

(३०) बङ्गृदादिदस्युग्रामाणां निर्मूलनम्।

पौरूरवसस्यायोः शत्रुं वेशं तु नम्रतामनयत्।
षड्गृभिमरन्धयत् तं यः सव्यायार्द्दयत्पूर्वम् ॥१॥
स्मदिभं तूग्रं कुत्सद्विषं श्रुतर्वद्विषं न्यहन् मृगयुम्।
अश्मं चार्बुदमुरणं बलं दृभीकं रुधिक्रां च ॥२॥
सुश्रवसः पुनरार्य्यस्यासन् विद्रोहिणो दासाः।
बङ्गृदकरञ्जपर्णमुख्याः क्रूराश्च निःषपिनः ॥३॥
बङ्गृद एष ऋजिश्च द्वेषी पर्णयकरञ्जौ तु।
अप्यर्बुदोऽतिथिग्वस्यायोर्वेशः सपत्नोऽभूत् ॥४॥
शंबरवदस्य बङ्गृदनाम्नो दस्योः शतं पुर्य्यः।
आसंस्ता अपि सर्वा मरुतो विध्वंसयामासुः ॥५॥
बङ्गृदप्रमुखानामभिमर्दे निर्हता दासाः।
षष्टिसहस्राणीति प्रोचे सव्यस्त्रिपञ्चाशे ॥६॥

(३०) बङ्गृदादि दस्युओं के ग्रामों का निर्मूलन

पुरूरवा के पुत्र आयु के शत्रु वेश को विनीत किया तथा जिसने पहले सव्य को पीड़ित किया था, उस षड्गृभि का दमन किया ॥१ ॥

कुत्स के शत्रु अत्यन्त उग्र स्मदिभ, श्रुतर्व के शत्रु मृगयु, अश्म, अर्बुद, उरण, बल, दृभीक और रुधिक्रा नाम के उग्र शत्रुओं का संहार कर दिया गया ॥२ ॥

सुश्रवा नाम के आर्य राजा के विद्रोही बङ्गृद, करंज और पर्ण आदि प्रमुख दास, जो क्रूर और दुष्ट-प्रकृति के थे ॥३ ॥

ये बङ्गृद, ऋजि, पर्णय, करंज और अर्बुद अतिथिग्व के शत्रु थे तथा वेशनाम का दस्यु आयु राजा का शत्रु था ॥४ ॥

शंबर की तरह इस बङ्गृद नाम के दस्यु की भी सौ नगरियाँ थी, उन सभी को मरुतों ने नष्ट कर दिया ॥५ ॥

इस बङ्गृद प्रमुख दस्युओं के मर्दन में छः हजार दस्यु मारे गये, ऐसा सव्य ऋषि ने ५३वें सूक्त में कहा है ॥६ ॥

(३१) शुष्णस्य निगडबन्धनम्।

यो वा शुष्णः सर्वतः पूर्वमागात्सूर्य्यस्थानं तेत्र पुत्री दिवो यः।
धृष्टोऽबध्नात् प्रेमपाशेऽथ तस्यै यातायातं भूयसा योऽत्र चक्रे ॥१ ॥
सर्वाशान्तेर्हेतुरासीत् स तस्माज्जीवन्तं तं तर्जयामास दण्डैः।
दाम्नाबध्नाच्चाऽऽयसेन प्रगाढं कारागारे चाऽऽयसे तं न्यगृह्णात् ॥२ ॥

(३१) शुष्ण दस्यु का जीवित बन्धन

शुष्ण नाम का जो दैत्य था, वह सर्वप्रथम सूर्यस्थान पर आया था, जिस धृष्ट ने द्यु की पुत्री को अपने प्रेमपाश में बाँध लिया था, उसी के लिए यह बार-बार यहाँ आवागमन करता था ॥१ ॥

वह शुष्ण समस्त अशांति का कारण था, इसीलिए उसे जीवित को ही दण्डों से प्रताड़ित किया गया। इसे लोहे की रस्सी (लोह-श्रृंखला) से बांध दिया और लोहे के कारागार में बंदी बना लिया ॥२ ॥

(३२) कुत्सकुवीयम्।

सूर्यस्याधिष्ठाने शुष्णस्य निगडबन्धनं श्रुत्वा।
कुयवः सहस्रसुभटैराक्रामीच्छुष्णन्तमुद्धर्तुम् ॥१ ॥
कुयवाक्रमणं रोद्धुं कुत्सः प्रतिचक्रमे सुभटैः।

कुयवप्रबलाक्रमणात् कुत्सो विजितः पराभवं चापत् ॥२ ॥
विद्वान् प्रतूर्णिरिन्द्रः सहसाऽकस्मादुपस्थाय ।
कुयवाक्रमणात् कुत्सं परितत्रेऽन्यॉंश्च तत्रार्य्यान् ॥३ ॥
आक्रममाणं कुयवं प्रत्याक्रम्येन्द्र एष आहत्य ।
भूमौ निपात्य तरसा तस्य शिरश्छेदयामास ॥४ ॥
उन्नताधरधराधरस्थली स्यन्दनादिव शिफाग्र्यनिर्झरे ।
कृत्रिमोत्समुखसंपतत्पयः क्षीरवद्‌द्रवति शुभ्रमुज्ज्वलम् ॥५ ॥
क्षीरवद्धवलधारया तया कौतुकात् कुयव एव नित्यशः ।
स्नापयत्युदकमध्यगः स्वयं स्वे स्त्रियौ जलविहारहर्षितः ॥६ ॥
स्त्रैण एष कुयवः स्वभार्य्ययोः प्रेमपाशहतविक्रमो हतः ।
दासराजवधजातविस्मया दस्यवो व्यपगता इतस्ततः ॥७ ॥
क्षुब्धदासकुलमाकलय्य ते योषितौ च कुयवस्य तत्क्षणात् ।
स्वामिनं तमनुगन्तुमुद्यते योद्धुमेत्य निहते बभूवतुः ॥८ ॥
निहते तु दस्युराजे कुयवे शुष्णे च शंबरे चाहौ ।
सर्वेऽपि कान्दिशीकाः शेषा भेजुर्दिशो दासाः ॥९ ॥

(३२) कुयव और कुत्स

सूर्यस्थान में शुष्ण का निगड़बन्धन सुनकर कुयव ने एक हजार योद्धाओं के साथ शुष्ण को बन्धनमुक्त कराने के लिए आक्रमण कर दिया ॥१ ॥

कुयव के आक्रमण का प्रतीकार करने के लिए कुत्स ने अपने योद्धाओं के साथ प्रतीकार किया, किन्तु कुयव के प्रबल आक्रमण से कुत्स हार कर पराभव को प्राप्त हुआ ॥२ ॥

विद्वान् प्रतूर्णि इन्द्र ने अकस्मात् उठ कर कुयव के आक्रमण से कुत्स को बचाया और अन्य आर्यों की रक्षा की ॥३ ॥

आक्रमण करते हुए कुयव को प्रत्याक्रमण करते इन्द्र ने घायल करके, भूमि पर गिराकर वेगपूर्वक इसके मस्तक का छेदन कर दिया ॥४ ॥

ऊँची-नीची पर्वतस्थली से बहने के कारण शिफा नदी के अग्रिम झरने में कृत्रिम मार्ग (गोमुखादि) से गिरता हुआ जल शुभ और उज्ज्वल दूध के समान प्रतीत होता था ॥५ ॥

दुग्ध के समान श्वेत उस जल की धारा से कौतुकपूर्वक कुयव प्रतिदिन जल के बीच खड़ा होकर स्वयं स्त्रियों को स्नान कराता था और जलक्रीड़ा से हर्षित होता था ॥६ ॥

यह स्त्रैण (स्त्रियों के बीच रमण करने वाला) कुयव अपनी दोनों स्त्रियों के प्रेमपाश में फंसकर पराक्रम-रहित होकर मारा गया। इस दास-राज की मृत्यु से विस्मित हो कर दस्युगण इधर उधर भाग गये ॥७ ॥

दस्यु-कुल को क्षुब्ध जानकर कुयव की वे दोनों स्त्रियाँ तत्काल अपने स्वामी का अनुगमन करने के लिए युद्ध हेतु तैयार हुईं और मारं गईं ॥८ ॥

दस्युराज कुयव, शुष्ण और शंबर के मारे जाने पर सभी किस दिशा में जावें ? (अन्यत्र गतिरहित अथवा किंकर्तव्यविमूढ़), ऐसे हो गये तथा सभी दास इधर उधर दिशाओं में भाग गये ॥९ ॥

(३३) पञ्चाशत्सहस्त्रदस्युनिग्रहणम्।

सप्तापीत्थं दासराजान् हिमाद्रिद्रोणीसंस्थानुग्रवीर्य्यन्निगृह्य।
हत्वा चैषां सैनिकानां सहस्राण्युग्राण्यन्यानानयामास बध्वा ॥१ ॥
इन्द्रः पञ्चाशत्सहस्राणि तेषां नीत्वा प्राधाच्चायुराट् पारवश्ये।
सम्यक् तेषां सभ्यताशिक्षणार्थं सोऽनेनाभूदायुराजो नियुक्तः ॥२ ॥
इत्थं प्राप्तो निग्रहं दस्युसंघः प्रतिष्ठोऽपि प्राक् प्रतिष्ठानराष्ट्रे।
सोऽयं सभ्यः शिक्षितो वीरयोद्धा प्रातिष्ठानोऽभूत्प्रसिद्धः पुरात्वे ॥३ ॥
ये चेदानीं म्लेच्छवर्गे पठाना इत्याख्याता आयुराट्शिक्षितास्ते।
प्रातिष्ठानाः क्षत्रियत्वे पुराऽऽसन् पश्चान्म्लेच्छैर्म्लेच्छतां प्रापितास्ते ॥४ ॥
पूर्वे म्लेच्छा आह्नुरेके 'पतान' स्यापभ्रंशात्तं पठानेति शब्दम्।
किन्त्वेकस्यासीत्पतानत्वमिष्टं नैते सर्वे तस्य वंशे प्रसूताः ॥५ ॥

(३३) पचास हजार दस्युओं का निग्रहण

हिमालय की कन्दराओं में रहने वाले उग्र तथा पराक्रमी उन सात राजाओं का निग्रह करके और मार कर उनके हजारों उग्र सैनिकों को बांध कर ले गये ॥१ ॥

इन्द्र ने उनके पचास हजार (दासों) को ले जाकर आयुराज की पराधीनता में रख दिया और उनको भली प्रकार सभ्यता की शिक्षा देने के लिए आयुराज को नियुक्त कर दिया ॥२ ॥

इस प्रकार प्रतिष्ठान राष्ट्र में प्रतिष्ठित यह दस्युसंघ निग्रह को प्राप्त हुआ (बन्दी बना लिया गया) यह दस्युसंघ सभ्य, और शिक्षित था। प्राचीनकाल में प्रतिष्ठान देश वीर योद्धाओं के लिए प्रसिद्ध था ॥३ ॥

वे आयुराज द्वारा शिक्षित दास इस समय म्लेच्छ जाति में "पठान" कहलाते हैं। प्राचीन समय में प्रतिष्ठान पुर में रहते हुए ये दास क्षत्रिय हो गये, जो फिर से म्लेच्छों द्वारा म्लेच्छता को प्राप्त हो गये ॥४ ॥

पुराकाल में कुछ लोग कहते थे कि "पतान" शब्द का अपभ्रंश रूप पठान शब्द है, किन्तु एक 'पठान वंश' तो पतान से सम्बद्ध का हो सकता है, न कि समस्त पठान उसके वंश में उत्पन्न हुए हैं ॥५ ॥

(३४) अपहतराजेभ्यः कुत्सादिभ्यः पुनरिन्द्रकर्तृकं प्राग्वद् स्वस्वविभागदानम्।

यद्यत् क्षेत्रं यद्ध्यपां स्रोत आसीदन्नानां वा स्तूपसामीत्तृणानाम्।
दस्युक्लिष्टं सूर्य्यधामापि तत्तत् प्राग् यस्यासीत्तस्य तत्तस्ससान ॥१ ॥
इत्थं निगृह्य दस्यूनिन्द्रो राज्ञां स्वकं धनं प्राग्वत्॥
कुत्सादिभ्यो विभजन् व्यभजत्सूर्य्यं च तद्वदेवेभ्यः ॥२ ॥
भूमेर्जलाशयानां सूर्यस्य च दस्युभिर्गृहीतानाम्॥
तेभ्यो विभागदानं यदभूद् वर्षागिरास्तदेवाहुः ॥३ ॥

"एतत् त्यत् त इन्द्रं वृष्ण उक्थं वार्षागिरा अभिगृणन्ति राधः ॥
ऋज्राश्वः प्रष्टिभिरम्बरीषः सहदेवो भयमानः सुराधाः ॥
दस्यूञ्छिम्यूँश्च पुरुहूत एवैर्हत्वा पृथिव्यां शर्वा निबर्हीत्॥
सनत्क्षेत्रं सखिभिः श्वित्न्येभिः सनत्सूर्य्यं सनदपः सुवज्रः ॥
स मन्युमीः समदनस्य कर्ताऽस्माकेभिर्नृभिः सूर्य्यं सनत्॥
अस्मिन्नहन्त्सत्पतिः पुरुहूतो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती"॥
(ऋ.१/१००/१७,१८,६)

इति मधुसूदनविद्यावाचस्पतिप्रणीतस्य ब्रह्मविज्ञान-
शास्त्रसंबन्धिनो विज्ञानेतिवृत्तवादस्य
द्वितीयपर्वणि भारतवर्षीयार्य्यो-
पाख्याने दस्युसंहाराख्य-
श्चतुर्थः प्रसङ्गः
संपूर्णः ॥४ ॥

(३४) कुत्सादि अपहत राजाओं के लिए इन्द्र द्वारा पुनः स्व-स्व भाग का दान

जो-जो क्षेत्र जल के स्रोत थे, अन्न के स्तूप थे, तृणों के स्तूप थे, दस्युओं द्वारा क्लिष्ट (सताये गये) सूर्यधाम थे, इन सभी को जो जिस जिसका था, वह उसको दे दिया गया ॥१ ॥

इस प्रकार दस्युनिग्रह करके इन्द्र ने राजाओं के अपने अपने धन को पूर्ववत् कुत्सादि में विभाजित कर दिया तथा सूर्यसंस्था देवों को सौंप दी गई ॥२ ॥

दस्युओं द्वारा अधिग्रहण की हुई भूमि, जल और सूर्यभवन के विभाग का राजाओं को जो दान किया गया, उसे वार्षागिरों (वृषागिर के पुत्रों) ने ऋग्वेद में कहा है ॥३ ॥

"ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के एक सौवें सूक्त में वार्षागिर ऋषियों ने कहा है -

"हे इन्द्र समीपस्थ ऋषियों के साथ ऋज्राश्व, अम्बरीष, सहदेव, भयमान और सुराध् नाम के समस्त वृषागिर के पुत्र (वार्षागिर) तुझ वीर्यवान् इन्द्र के लिए यह उत्तम (निर्दुष्ट) स्तुति गातें हैं॥

उस पुरुहूत (सब मनुष्यों द्वारा आहूत) इन्द्र के सैनिकों के साथ पृथिवी पर स्थित दुष्ट और हिंसा करने वालों को मारकर अपने प्राणघाती वज्र से उनको समूल नष्ट कर दिया। उस सुन्दर वज्र को धारण करने वाले सफेद परिधानालंकर को धारण करने वाले इन्द्र ने मित्रों के साथ भूमि को प्राप्त किया, सूर्य (सूर्यसंस्था) को प्राप्त किया और जल को प्राप्त किया॥

वह इन्द्र (शत्रुओं पर) क्रोध करने वाला है, साथ-साथ आनन्द मनाने योग्य युद्ध का कर्ता है, सज्जनों का स्वामी है, पुरुहूत (सभी के द्वारा आहूत) है इस दिन हमारे मनुष्यों के साथ सूर्य (सूर्यसंस्था) को प्राप्त करे। वह मरुत्वान् (मरुतों को साथ रखने वाला) इन्द्र हमारी रक्षा करने वाला बने॥"(१/१००/१७,१८,६)

श्री मधुसूदन विद्यावाचस्पति द्वारा प्रणीत ब्रह्मविज्ञानशास्त्र से सम्बन्द्ध विज्ञानेतिवृत्तवाद के द्वितीय पर्व भारतवर्षीयार्योपाख्यान में दस्युसंहार नामक चतुर्थ प्रकम समाप्त हुआ।

अथेन्द्रविजयाभिनन्दनं पञ्चमः प्रक्रमः।

विज्ञानशालायां भारतीयार्य्यैः कृतः कृतज्ञतासूचको विजयमहोत्सवः। सारस्वते सूर्य्यसदने विजयाभिनन्दनमहोत्सवः प्रमहाख्यः।

दस्यूनां निग्रहणादार्य्याणां च स्वराज्यसंप्राप्तेः ॥
सुस्थेऽत्र सर्वलोके स्वर्गायेन्द्रः स गन्तुमभ्यैच्छत् ॥१ ॥
आर्य्याणामधिवक्तुर्देवेन्द्रस्याद्य संमानम् ॥
कर्तुं स कुत्स ऐच्छज्जनतास्तत्राभ्यमन्त्रयत् प्रमहे ॥२ ॥
निषधगिरिस्थस्कन्धावारे शिविरेऽभवन् महः प्रथमम् ॥
अद्य तु सूर्यस्थाने सोमाभिषवोत्सवं पुनर्व्यतनोत् ॥३ ॥
सूर्यस्यायं सदने प्रमहो विजयाभिनन्दनीयो यः ॥
तत्रेन्द्रमस्तुवन्निति विश्वामित्रश्च वक्ति सव्यश्च ॥४ ॥
"युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः ॥
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति" ॥
(ऋ.३/३४/७)

"न्यू षु वाचं प्रमहे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः ॥
नू चिद्धि रत्न ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते" ॥६ ॥
(सव्यः १/५३/१)

उपकर्तृकृतोपकृतिं कीर्तयितुं यो महोत्सवः क्रियते ॥
उत्तरमहस्तदुक्तं तत्र च पानाशने गुणाख्यानम् ॥५ ॥
बहुभिः सयुङ्नृपालैः कृतज्ञतां दर्शयंस्तदेन्द्राय ॥
प्रमहे चक्रे हर्षात् तस्मिन् विजयोत्सवे कुत्सः ॥६ ॥

पञ्चम प्रक्रम

'इन्द्रविजयाभिनन्दन'

विज्ञानशाला में भारतीय आर्यों द्वारा कृतज्ञतासूचक विजय महोत्सव सम्पन्न। सरस्वती नाम के नगर में 'सूर्यसदन' में प्रमह नामक विजयाभिनन्दन महोत्सव सम्पन्न।

दस्युओं के निग्रह के पश्चात, आर्यो द्वारा स्वराज्य की प्राप्ति कर लेने पर लोक में सर्वत्र सुव्यवस्था हो जाने पर इन्द्र ने स्वर्ग के लिए प्रस्थान करना चाहा ॥१ ॥

उस प्रमहोत्सव में ऋषि कुत्स ने देवताओं के समर्थक इन्द्र का उस समय सम्मान करना चाहा। अतः वहाँ प्रमह में उपस्थित लोगों से वे मन्त्रणा करने लगे ॥२॥

पहला विजयोत्सव निषध पर्वत पर स्थित सेना की टुकड़ी के शिविर में मनाया गया और आज सूर्यनगर में सोम का सवन करने के उत्सव के रूप में पुनः मनाया गया ॥३॥

इस सूर्यसदन में जो यह विजयाभिनन्दन का उत्सव मनाया गया, उसमें इन्द्र की स्तुति की गई, ऐसा विश्वामित्र और सव्य ऋषि वर्णन करते हैं ॥४॥

"मनुष्यों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले, सज्जनों के पालक इन्द्र ने अपने बल से युद्ध के द्वारा शत्रुओं के धन को देवों का बनाया। बुद्धिमान् स्तोता यजमान के घर में इस इन्द्र के उन कर्मो की स्तोत्रों द्वारा प्रशंसा करते हैं॥"(३/३४/७)

विवस्वान् के यज्ञ में शक्तिशाली इन्द्र के लिए उत्तम स्तुति तथा प्रशंसा करते हैं, क्योंकि जैसे चोर सोते हुओं के धन को उठाकर ले जाता है, वैसे ही इन्द्र रत्नों को शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है॥ धन देने वालों की बुरी स्तुति प्रशंसित नहीं होती है॥(१/५३/१)

उपकर्ता के उपकारों की प्रशंसा करने के लिए जो उत्सव मनाया जाता है, उसे 'उत्तर मह' अर्थात् "समापनसमारोह" कहा जाता है। इस उत्सव में जलपान, भोजन और गुणों का वर्णन किया जाता है ॥५॥

ऋषि कुत्स ने अनेक अन्य राजाओं के साथ मिलकर उस प्रमह नाम के विजयाभिनन्दन उत्सव में हर्षपूर्वक कृतज्ञता को प्रदर्शित किया ॥६॥

वीरपानप्रमहाध्याक्षो विश्वामित्रो दस्युवधं कीर्तयन्निन्द्रमभिनन्दयामास।

ऋ.३/३२ "इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि व्रतानि देवा न मिनन्ति विश्वे॥
दाधार यः पृथिवीं द्यामुतेमां जजान सूर्य्यमुषसं सुदंसाः॥८॥
त्वमपो यद्ध वृत्रं जघन्वाँ अत्याँ इव प्रासृजः सर्तवाजौ॥
शयानमिन्द्र चरता वधेन वव्रिवांसं परिदेवीरदेवम्॥६॥
अहन्नहिं परिशयानमर्ण ओजायमानं तुविजात तव्यान्॥
न ते महित्वमनु भूदध द्यौर्यदन्यया स्फिग्या क्षामवस्थाः॥११॥
यज्ञो हि त इन्द्र वर्धनो भूदुत प्रियः सुतसोमो मियेधः।
यज्ञेन यज्ञमव यज्ञियः सन् यज्ञस्ते वज्रमहिहत्य आवत्"॥१२॥
ऋ.३/३४ 'मखस्य ते तविषस्य प्र जूतिमियर्मि वाचममृताय भूषन्।
इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा॥२॥

महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि।
वृजनेन वृजिनान्त्स पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ॥६ ॥
सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः।
ससान यः पृथीवीं द्यामुतेमामिद्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥८ ॥
ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम्।
हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून्प्रार्यं वर्णमावत् ॥९ ॥
इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतींरसनोदन्तरिक्षम्।
बिभेद वलं नुनुदे विवाचोऽथाभवद्दमिताभिक्रतूनाम्" ॥१० ॥
"सखा ह यत्र स सखिभिर्नवग्वैरभिज्ञ्वा सत्वभिर्गा अनुग्मन्।
सत्यं तदिन्द्रो दशभिर्दशग्वैः सूर्यं विवेद तमसि क्षियन्तम्" ॥
(ऋ.३/३९/५)

विजयोपरान्त किये जाने वाले सोमपान के कार्यक्रम के अध्यक्ष विश्वामित्र द्वारा दस्युवध का वर्णन करते हुए इन्द्र का अभिनन्दन

(३/३२) विश्वामित्र कहते हैं - "उत्तम कर्म करने वाले जिस इन्द्र ने इस पृथ्वी तथा द्युलोक को धारण किया तथा जिसने सूर्य और उषा को उत्पन्न किया, ऐसे इन्द्र के कर्म, उत्तम कर्म और बहुत से व्रतों को विश्वेदेवाः (समस्त देव) भी नष्ट नहीं कर सकते हैं ॥८ ॥

हे इन्द्र ! तूने जब तेजस्वी जलों को रोक कर बैठे हुए उत्तम गुणों से रहित सोते हुए वृत्र को वेग से चलने वाले वज्र से मारा, तब युद्ध में जलों को बहने के लिए घोड़ों के समान मुक्त कर दिया ॥६ ॥

अनेक पदार्थों को उत्पन्न करने वाले इन्द्र ! बलशाली तूने पानी को चारों ओर से घेर कर सोने वाले तथा बलशाली अहि असुर को मारा। जब तूने अपने एक बाजू से पृथ्वी को थामा, तब तेरे उस महत्त्व को द्युलोक ने अनुभव नहीं किया ॥११ ।

हे इन्द्र ! यज्ञ तुझे बढ़ाने वाला हुआ और हवन के योग्य तैयार किया गया सोम तुझे प्रिय हो गया है। तू पूज्य होता हुआ संगठन के द्वारा इस यज्ञ की रक्षा कर। यह यज्ञ अहि को मारने वाले युद्ध में तेरे वज्र की रक्षा करे ॥१२ ॥

ऋग्वेद के ही (३/३४) सूक्त में विश्वामित्र स्तुति करते हैं -

हे इन्द्र ! मैं तुझे अलंकृत करता हुआ, पूजनीय और बलशाली तुझे प्रेरणा देने वाली स्तुति को अमृत की प्राप्ति के लिए कहता हूँ। तू मानवी प्रजाओं के और दैवी प्रजाओं के आगे चलने वाला है ॥२ ॥

इस महान् इन्द्र के बड़े-बड़े कर्म प्रशंसनीय हैं। शत्रु को हराने में समर्थ इस इन्द्र ने अपने बल से कुशलतापूर्वक दूर रखने योग्य शत्रुओं को पूर्णतः नष्ट कर दिया है ॥६ ॥

जिस इन्द्र ने उस द्युलोक और पृथ्वीलोक को दान दिया है, उस शत्रुओं को जीतने वाले, वरण करने योग्य, बल देने वाले, उत्तम कर्मों को करके सुख प्राप्त करने वाले इन्द्र को बुद्धि के साथ रमण करने वाले विद्वान् आनन्दित करते हैं ॥८ ॥

इन्द्र ने घोड़े दान में दिये, सूर्य को दिया, अधिक दूध देने वाली गायें प्रदान की, अनेक प्रकार के स्वर्ण के वस्त्राभूषण प्रदान किये। ऐसे इन्द्र ने दस्युओं को मारकर श्रेष्ठ वर्णों की रक्षा की ॥९ ॥

इन्द्र ने ओषधियां प्रदान की, दिन, वनस्पतियाँ और अन्तरिक्ष प्रदान किया। इन्द्र ने बलासुर को मारा, अनर्गल बोलने वालों को दूर किया और वह अहंकारियों का अहंकार दूर करता है ॥१० ॥

जब इन्द्र गायों को जानकर नौ घोड़ों वाले मित्रों के साथ पीछे-पीछे चला तब दस घोड़ो से जाने वाले दस मित्रों के साथ इन्द्र ने अन्धकार में छिपे हुए सूर्य को पहचाना ॥ (३/३९/५)

अथ शान्तिकवीरपानानन्तरं प्रमहप्रमुखेन कुत्सेन कृतमिन्द्रविजयाभिनन्दनसूक्तम्।

ऋ.१/१०१ "प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना।
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥१ ॥
यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना यः शम्बरं यो अहन्पिप्रुमव्रतम्।
इन्द्रो यः शुष्णमशुषं न्यावृणङ्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥२ ॥
यस्य द्यावापृथिवी पौंस्यं महद्यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्य्यः।
यस्येन्द्रस्य सिन्धव सश्चति व्रतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥३ ॥
यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशी य आरितः कर्मणिकर्मणि स्थिरः।
वीळोश्चिदिन्द्रो यो असुवन्तो वधो मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥४ ॥
यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत्।
इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन् मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥५ ॥
य शूरेभिर्हव्यो यश्च भीरुभिर्यो धावद्भिर्हूयते यश्च जिग्युभिः।
इन्द्रं यं विश्वा भुवनाभिसंदधुर्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥६ ॥
रुद्राणामेति प्रदिशा विचक्षणो रुद्रेभिर्योषा तनुते पृथु ज्रयः।

इन्द्रं मनीषा अभ्यर्चति श्रुतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥७॥
यद्वा मरुत्वः परमे सधस्थे यद्वावमे वृजने मादयासे।
अत आयाह्यध्वरं, नो अच्छा त्वाया हविश्चकृमा सत्यराधः ॥८॥
त्वायेन्द्र सोमं सुषुमा सुदक्ष त्वाया हविश्चकृमा ब्रह्मवाहः।
अधा नियुत्वः सगणो मरुद्भिरस्मिन्यज्ञे बर्हिषि मादयस्व ॥९॥
मादयस्व हरिभिर्ये त इन्द्र विष्यस्व शिप्रे विसृजस्व धेने।
आ त्वा सुशिप्र हरयो वहन्तूशन्हव्यानि प्रति नो जुषस्व ॥१०॥
मरुत्स्तोत्रस्य वृजनस्य गोपा वयमिन्द्रेण सनुयाम वाजम्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः" ॥११॥
ऋ.१/१०२ "इमां ते धियं प्रभरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्त आनजे।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु ॥१॥
अस्य श्रवो नद्यःसप्त बिभ्रति द्यावाक्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः।
अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे श्रद्धे कमिन्द्र चरतो वितर्तुरम् ॥२॥
तं स्मा रथं मघवन् प्राव सातये जैत्रं यं ते अनुमदाम संगमे।
आजा न इन्द्र मनसा पुरुष्टुत त्वायद्भ्यो मघवञ्छर्म यच्छ नः ॥३॥
वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्रशत्रूणां मघवन्वृष्ण्या रुज ॥४॥
नाना हि त्वा हवमाना जना इमे धनानां धर्तरवसा विपन्यवः
अस्माकं स्मा रथमातिष्ठ सातये जैत्रं हीन्द्र निभृतं मनस्तव ॥५॥
गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः कर्मन्कर्मञ्छतमूतिः खजङ्करः।
अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसाथा जना वि ह्वयन्ते सिषासवः ॥६॥
उत्ते शतान्मघवन्नुच्च भूयस उत्सहस्राद्रिरिचे कृष्टिषु श्रवः।
अमात्रं त्वां धिषणा तित्विषे मह्यधा वृत्राणि जिघ्नसे पुरन्दर ॥७॥
त्रिविष्टिधातु प्रतिमानमोजसस्तिस्रो भूमिर्नृपते त्रीणि रोचना।
अतीदं विश्वं भुवनं ववक्षिथाशत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि ॥८॥
त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे त्वं बभूथ पृतनासु सासहिः।
सेमं नः कारुमुपमन्युमुद्भिदमिन्द्रः कृणोतु प्रसवे रथं पुरः ॥९॥
त्वं जिगेथ न धना रुरोधिथार्भेष्वाजा मघवन्महत्सु च।
त्वामुग्रमवसे सं शिशीमस्यथा न इन्द्र हवनेषु चोदय ॥१०॥
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम्।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥११॥
ऋ.१/१०३ "तत् त इन्द्रियं परमं पराचैरधारयन्त कवयः पुरेदम्।
क्षमेदमन्यद्दिव्यन्यदस्य समी पृच्यते समनेव केतुः ॥१॥
स धारयत्पृथिवीं पप्रथच्च वज्रेण हत्वा निरपः ससर्ज।
आहन्नहिमभिनद्रौहिणं व्यहन्व्यंसं मघवा शचीभिः ॥२॥
स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः पुरो विभिन्नचरद्वि दासीः।
विद्वान्वज्रिदस्यवे हेतिमस्यायं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र ॥३॥
तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्य मघवा नाम बिभ्रत्।
उपप्रयन्दस्युहत्याय वज्री यद्ध सूनुः श्रवसे नाम दधे ॥४॥
तदस्येदं पश्यता भूरिपुष्टं श्रदिन्द्रस्य धत्तन वीर्याय।
स गा अविन्दत्सो अविन्ददश्वान्स ओषधीः सो अपः स वनानि ॥५॥
भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे सत्यशुष्माय सुनवाम सोमम्।
य आदृत्या परिपन्थीव शूरोऽयज्वनो विभजन्नेति वेदः ॥६॥
तदिन्द्र प्रेव वीर्य्यं चकर्थ यत्ससन्तं वज्रेणाबोधयोऽहिम्।
अनु त्वा पत्नीर्हृषितं वयश्च विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ॥७॥
शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र यदावधीर्विपुरः शंबरस्य।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः" ॥८॥
ऋ.१/१०४ "योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि तमा निषीद स्वानो नार्वा।
विमुच्या वयोऽवसायाश्वान्दोषा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे ॥१॥
ओ त्ये नर इन्द्रमूतये गुर्नू चित्तान्त्सद्यो अध्वनो जगम्यात्।
देवासो मन्युं दासस्य श्चम्नन्ते न आवक्षन्त्सुविताय वर्णम् ॥२॥
अव त्मना भरते केतवेदा अव त्मना भरते फेनमुदन्।
क्षीरेण स्नातः कुयवस्य योषे हते ते स्यातां प्रवणे शिफायाः ॥३॥
युयोप नाभिरुपरस्यायोः प्र पूर्वाभिस्तरते राष्टि शूरः।
अञ्जसी कुलिशी वीरपत्नी पयो हिन्वाना उदभिर्भरन्ते ॥४॥
प्रति यत् स्या नीथादर्शि दस्योरोको नाच्छा सादनं जानती गात्।
अध स्मा नो मघवञ्चर्कृतादिन्मा नो मघेव निष्षपी परादाः ॥५॥
स त्वं न इन्द्र सूर्य्यै सो अप्स्वनागास्त्व आ भज जीवशंसे।
मान्तरां भुजमां रीरिषो नः श्रद्धितं ते महत इन्द्रियाय ॥६॥
अधा मन्ये श्रत्ते अस्मा अधायि वृषा चोदस्व महते धनाय॥
मा नो अकृते पुरुहूत योनाविन्द्र क्षुध्यद्भ्यो वय आसुतिं दाः ॥७॥

मा नो वधीरिन्द्रमा परादा मा नः प्रिया भोजनानि प्रमोषीः।
आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्मा नः पात्रा भेत्सहजानुषाणि ॥८ ॥
अर्वाङेहि सोमकामं त्साहुरय सुततस्य पिबा मदाय।
उरुव्यचा जठर आवृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः" ॥९ ॥

तदनन्तर शांतिपूर्वक वीरों द्वारा सोमपान करने के पश्चात् कुत्स ऋषि द्वारा इन्द्र के विजयाभिनन्दन में उक्त सूक्त :-

हे मनुष्यों ! तुम उत्साहयुक्त इन्द्र की अन्नादि से युक्त वाणियों से स्तुति करो, जिसने ऋजिश्वा राजा के साथ वृत्र की अन्धेरे में छिपी नगरियों को नष्ट किया। रक्षा की इच्छा करने वाले हम बलवान् दाहिने हाथ में वज्रधारण करने वाले मरुतों से युक्त इन्द्र को मित्रता के लिए बुलाते हैं ॥१ ॥

जिस इन्द्र ने अत्यधिक क्रोध से कटे हुए कंधो वाले असुर को मारा, जिसने शम्बर को मारा तथा जिसने व्रतहीन पिप्रु असुर को मारा तथा जिस इन्द्र ने सबका भक्षण करने वाले शुष्ण असुर को मारा, उस मरुतों से युक्त इन्द्र को मित्रता के लिए बुलाते हैं ॥२ ॥

जिसके महान् बल का द्युलोक और पृथ्वीलोक अनुसरण करते हैं, वरुण, सूर्य और नदियाँ जिस इन्द्र के नियम में चलती है, ऐसे इन्द्र को अपनी रक्षा के लिए सभी लोग बुलाते हैं ॥३ ॥

जो इन्द्र घोड़ों का स्वामी है, जो गायों का स्वामी है, जो सब कों वश में रखता है तथा जो प्रत्येक कार्य में अचल रहकर प्रशंसित रहता है, जो इन्द्र नियमपूर्वक सोमयाग न करने वाले को मारता है, ऐसे मरुतों से युक्त इन्द्र को मित्रता के लिए बुलाते हैं ॥४ ॥

जो समस्त प्राण रूपधारी प्राणियों का स्वामी है, जिस इन्द्र ने सर्वप्रथम ब्राह्मणों के लिए गायों को प्राप्त किया, जिस इन्द्र ने शत्रुओं को परास्त करके मारा, ऐसे मरुतों के साथ इन्द्र को मित्रता के लिए बुलाते हैं ॥५ ॥

जो इन्द्र शूरवीरों द्वारा बुलाने योग्य है, जो भीरुओं द्वारा भी बुलाने योग्य है, जो युद्ध में भागने वालों के द्वारा तथा विजय पाने वालों के द्वारा बुलाया जाता है, जिस इन्द्र को समस्त संसार अग्रणी मानता है, ऐसे मरुतों से युक्त इन्द्र को मित्रता के लिए बुलाते हैं ॥६ ॥

जो बुद्धिमान् इन्द्र मरुतों की सहायता करता है, मरुतों और उषा के योग से तेज को फैलाता है, मनुष्यों के हृदय से निकली वाणी जिस इन्द्र को प्राप्त होती है, ऐसे मरुतों से युक्त इन्द्र को मित्रता के लिए बुलाते हैं ॥७ ॥

हे मरुतों से युक्त इन्द्र ! तुझे छोटे और बड़े सभी घरों में आनन्द प्राप्त होता है, उस स्थान से हमारे यज्ञ में सीधा आ। हे स्थिर ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तुझे चाहने वाले हम तुझे हवि प्रदान करते हैं ॥८ ॥

हे उत्तम बल वाले इन्द्र ! तेरी कामना से ही हम सोम को तैयार करते हैं। हे स्तुति से प्राप्त होने वाले इन्द्र ! तेरी कामना से हम हवि प्रदान करते हैं, हे घोड़ो वाले इन्द्र ! मरुद्गणों के साथ इस यज्ञ में आसन ग्रहण करके आनन्दित हो ॥९ ॥

हे इन्द्र ! तू घोड़ों के साथ आनन्दित हो तथा तेरे जो जबड़े हैं, इनको खोलकर वाणी को प्रकट कर। सुन्दर शिरस्त्राण वाले इन्द्र ! घोड़े तुझे हमारे पास लावें, हे कामना करने वाले इन्द्र ! हमारी हवियों को स्नेहपूर्वक प्राप्त कर ॥१० ॥

मरुतों द्वारा स्तुतियोग्य तथा शत्रुओं को मारने वाले इन्द्र द्वारा संरक्षित हम इन्द्र की सहायता से अन्न को प्राप्त करें, इसलिए मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक हमारी सहायता करें ॥११ ॥(१/१०१)

(१/१०२) - हे इन्द्र ! जिस कारण तेरी बुद्धि हमारी इस स्तुति से युक्त होती है, इसलिए महान् इन्द्र के लिए मैं उत्तम स्तुति करता हूँ। देवगण धनों को उत्पन्न करने वाले, शत्रु को हराकर उत्कर्ष वृद्धि करने वाले इन्द्र को अपने उत्साह से आनन्दित करते हैं ॥१ ॥

इस इन्द्र के यश को सातों नदियाँ धारण करती हैं तथा इसके सुन्दर रूप को द्युलोक, पृथ्वी और अन्तरिक्ष लोक धारण करते हैं, हे इन्द्र ! हमें प्रकाश देने के लिए तथा श्रद्धा के लिए सूर्य और चन्द्रमा दोनों सुखपूर्वक आने-जाने की गति करते हैं ॥२ ॥

स्तुतियों से प्रशंसित और ऐश्वर्यवान् हे इन्द्र ! तेरे विजय प्राप्त करने वाले युद्ध में उत्साहित करते हैं, उसी रथ को हमारी विजय के लिए प्रेरित कर और हे इन्द्र ! हम तेरी कामना करने वाले हैं, हमें सुख प्रदान कर ॥३ ॥

हे धनवान् इन्द्र ! तेरी सहायता से हम घेरने वाले शत्रु को जीतें। तू हमारी रक्षा कर, हमारे लिए आसानी से धन प्राप्त करा तथा शत्रुओं के बल का नाश कर ॥४ ॥

हे धनों को धारण करने वाले इन्द्र ! तुझे बुलाने वाले, स्तुति करने वाले ये मनुष्य अनेक हैं, इसलिए धनप्राप्ति के लिए तू हमारे ही रथ में आकर बैठ, क्योंकि तेरा शान्त मन जयशील है ॥५ ॥

इस इन्द्र की भुजाएँ गायों को जीतने वाली हैं, वह इन्द्र स्वयं भी असीम बल वाला है, प्रत्येक कर्म में अनेक सुरक्षा के साधन हैं, संग्राम करने वाला, अद्वितीय बल की मूर्ति हैं, इसलिए धन की कामना वाले मनुष्य उसे बुलाते हैं ॥६ ॥

हे इन्द्र ! मनुष्यों में इस इन्द्र का यश सैंकड़ो और हजारों रूपों से भी अधिक है। मनुष्यों की स्तुति इस अपरिमित बल वाले इन्द्र का बल बढ़ाती है तब यह शत्रुओं के नगरों का ध्वंस करके शत्रुओं को मारता है ॥७ ॥

हे मनुष्यों के पालक इन्द्र ! तेरे बल का प्रमाण तिगुना है। तू तीनों भूमियों को, तीन तेजों को तथा समस्त भुवन को संचालित करता है, तू जन्म से ही सदैव शत्रुओं से रहित रहा है ॥८ ॥

हे इन्द्र ! देवों में प्रमुख तुझे बुलाते हैं, तू युद्ध में शत्रुओं को मारने वाला हो। वह इन्द्र हमारे युद्धयोग्य तेजस्वी और शत्रुओं को खदेड़ने वाले रथ को आगे करे ॥९ ॥

हे इन्द्र ! तू शत्रुओं को जीतता है, और धनों को रोकता नहीं है, हे धनवान् इन्द्र ! हम छोटे और बड़े सभी युद्धो में संरक्षण के लिए शक्तिशाली तुझे ही बुलाते हैं। इसलिए तू हमें युद्धों में प्रेरित कर ॥१० ॥

यह इन्द्र सदा हमारे पक्ष में बोलने वाला है, हम कुटिलतापूर्ण व्यवहार न करते हुए अन्न इत्यादि प्राप्त करें, इसलिए मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और द्युलोक हमें सम्पत्ति प्रदान करें ॥११ ॥

ऋग्वेद के ही (१/१०३) सूक्त में कुत्स आंगिरस ऋषि कहते हैं -

हे इन्द्र ! तेरे उस उत्तम बल को दूरदर्शी विद्वानों ने शत्रु को मारने वाले कर्मो के रूप में धारण किया था, इस इन्द्र के बल पृथ्वी और द्युलोक में अलग अलग प्रकार के हैं। इसके ये बल जैसे युद्ध में ध्वज परस्पर मिलते हैं, उसी प्रकार परस्पर संयुक्त होकर शत्रु का संहार करते हैं ॥१ ॥

उस इन्द्र ने पृथिवी को धारण किया और फैलाया, तथा वृत्र को वज्र से मार कर जलों को बहाया, अहि असुर को मारा, रोहिणासुर का वध किया तथा धनवान् इन्द्र ने शक्तियों से व्यंसासुर को मारा ॥२ ॥

बिजली के अस्त्र को धारण करने वाला तथा बल पर श्रद्धा रखने वाला वह इन्द्र दस्युओं के नगरों को तोड़ते हुए विचरण करता है, हे ज्ञानवान् वज्रधारी इन्द्र ! इस स्तोता के शत्रु पर आयुध फैंक कर, श्रेष्ठ पुरूष के बल तथा यश को बढ़ा ॥३ ॥

बलवान्, वज्र को धारण करने वाले इन्द्र ने यश के लिए, शत्रु को मारने के लिए, उसके समीप जाते हुए, जिस यश को धारण किया था, उस प्रशंसा के योग्य यश को इन्द्र ने स्तोता के लिए युगों तक धारण किया है ॥४ ॥

उस इन्द्र ने गायें प्राप्त कीं, उसने घोड़े, ओषध, जल और धनों को प्राप्त किया है। अतः हे मनुष्यों ! उस इन्द्र के इस महान् बल को देखो और इस पर श्रद्धा करो ॥५ ॥

जो शूरवीर इन्द्र ज्ञानियों का आदर करके, लुटेरे के समान अपने पास धन जोड़ कर रखने वाले तथा यज्ञ न करने वाले असुर का धन छीन कर उसे ज्ञानियों में बाँटता हुआ जाता है, उस बहुत से उत्तम कर्मो को करने वाले बलवान्, दानदाता और सत्यवादी इन्द्र के लिए हम सोम का सवन करें ॥६ ॥

हे इन्द्र ! जब तूने सोते हुए अहि को वज्र से जगाया, तथा हर्षित हुए तुझे पत्नियों ने आनन्दित किया तथा गतिशील मरुतों ने तथा सभी देवों ने आनन्दित किया, तब अपने बल को तूने प्रकट किया ॥७ ॥

हे इन्द्र ! जब तूने शुष्ण, पिप्रु, कुयव, और वृत्र को मारा तब शंबरासुर के नगरों को भी तोड़ डाला। इसलिए मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और द्युलोक हमें बढ़ावें ॥८ ॥

(१/१०४) में भी कुत्स आंगिरस कहते हैं - हे इन्द्र ! हमने इस स्थान को तेरे बैठने के लिए बनाया है, अतः यज्ञकाल की प्राप्ति पर रात दिन ढोने वाले घोड़ो को खोल कर उनके बन्धनों को खोल कर उस स्थान पर हिनहिनाते हुए घोड़ो के समान आकर बैठ ॥१ ॥

वे मनुष्य संरक्षण के लिए इन्द्र के पास आये, इन्द्र ने उन्हें शीघ्र ही उसी समय उत्तम मार्गों पर चलाया, देवगण असुरों के क्रोध को नष्ट करें तथा वे देव यज्ञ के लिए वरणीय इन्द्र को हमारे पास ले आवें ॥२ ॥

धन को जानने वाला कुयवासुर स्वयं ही दूसरों के धन का अपहरण करता है, तथा उदय होते हुए झागयुक्त जल का स्वयं अपहरण करता है। तब कुवय की स्त्रियाँ उस जल से स्नान करती हैं, वे दोनों शिफा नदी के प्रवाह में डूब कर नष्ट हो जावें ॥३ ॥

मेघों में रहने वाले असुर का केन्द्रस्थान छिपा हुआ है, वह जलों से बढ़ता हुआ तथा शूरवीर हो कर तेजस्वी होता है, उसे जलों को बहाती हुई अंजसी, कुलिशी, वीर पत्नियों की तरह नदियाँ जलों से भर देती हैं ॥४ ॥

हे इन्द्र ! क्योंकि हमने उस मार्ग को देख लिया है, जो दस्यु के घर को उसी प्रकार सीधा जाता है जैसे गाय अपने स्थान को जाती है। इसलिए हे धनवान् इन्द्र ! असुरों के उपद्रव से हमारी रक्षा कर, जैसे व्यसनी पुरुष धन को फैंकता है उस प्रकार हमें मत फैंक ॥५ ॥

हे इन्द्र ! ऐसा तू हमें सूर्य के प्रकाश से संयुक्त कर, हमें जलों से संयुक्त कर तथा जीवों के द्वारा प्रशंसित पापरहित कार्य में संयुक्त कर। पालने योग्य प्रजा की हिंसा मत कर, क्योंकि हमने तेने महान् बल पर श्रद्धा की है ॥६ ॥

हे बलवान् और अनेकों लोगों द्वारा प्रार्थित इन्द्र ! मैं अब तेरा सम्मान करता हूँ, तेरे इस बल के लिए मैं श्रद्धा रखता हूँ, हमें महान् ऐश्वर्य के लिए प्रेरित कर, हमें धन-शून्य घर में मत रख तथा भूखों को अन्न और पीने की सामग्री दे ॥७ ॥

हे ऐश्वर्यवान्, सामर्थ्यवान् इन्द्र ! हमारी हिंसा मत कर, हमारा त्याग मत कर, हमारे प्रिय भोजन का नाश मत कर, हमारे गर्भों का नाश मत कर, तथा घुटनों से चलने वाली हमारी सन्तान का नाश मत कर ॥८ ॥

हे इन्द्र ! लोग तुम्हें सोम का इच्छुक कहते हैं, अतः तू सामने आ। यह सोम तेरे लिए निचोड़ा गया है, आनन्द के लिए उस रस को पी। बहुत विशाल होकर अपना पेट सोम से भर ले तथा बुलाया हुआ तू हमारी प्रार्थनाओं को पिता के समान सुन ॥९ ॥

इन्द्रविजयाभिनन्दनसूक्ते वार्षागिराणां राज्ञां कुत्ससहयोगित्वम्।

ऋज्राश्वाद्याः पञ्च वार्षागिराख्या राजानः प्रागिन्द्रतो नष्टकष्टाः।
दस्युध्वंसेऽत्युग्रमैन्द्रं चरित्रं संसद्युक्त्वाऽख्यापयन् सर्वलोके ॥१ ॥

पञ्चदशर्क्षु न्यास्थन् संस्तविकं त्वं वृषागिरः पुत्राः।
चतसृष्वन्ते कौत्सात् संस्तविकाच्च सहयोगिताऽत्रास्य ॥२॥
संरक्षकतामेते याचन्ते तेन करदानम्।
अभ्युपगम्यात्मानं न्यवेदयन्निन्द्रपारतन्त्र्येऽपि ॥३॥

इन्द्रविजयाभिनन्दन सूक्त में वृषागिर के पुत्र राजाओं का कुत्स को सहयोग

इन्द्र ने जिनका कष्ट निवारण किया था, ऐसे ऋज्राश्व इत्यादि पांच वृषागिर नाम के राजाओ ने दस्युओं का ध्वंस करने पर इन्द्र के अत्यन्त बलयुक्त उग्र चरित्र का एकत्रित होकर समस्त लोक में गान किया ॥१॥

वृषागिर के पुत्रों ने पन्द्रह ऋचाओं में इन्द्र के प्रति अपनी स्तुति रखी है तथा अन्तिम चार ऋचाओं में कुत्स द्वारा की गई स्तुति और सहयोगि.ता से इन्द्र की संरक्षकता तथा कर-दान (टैक्स देने) की याचना करते हैं और स्वयं को इन्द्र की परतन्त्रता में भी प्रस्तुत करके निवेदित कर दिया ॥३॥

वार्षागिराणामात्मसमर्पणम्।

इन्द्रविजयाभिनन्दने वार्षागिराणां कुत्ससहयोगेनात्मसमर्पणं सूक्तम्।

ऋ.१/१०० "स यो वृषा वृष्ण्येभिः समोका महो दिवः पृथिव्याश्च सम्राट्।
सतीनसत्वा हव्यो भरेषु मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१॥
यस्यानाप्तः सूर्यस्येव यामो भरेभरे वृत्रहा शुष्मो अस्ति।
वृषन्तमः सखिभिः स्वेभिरेवैर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥२॥
दिवो न यस्य रेतसो दुघानाः पन्थासो यन्ति शवसापरीताः।
तरद्द्वेषाः सासहिः पौंस्येभिर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥३॥
सो अङ्गिरोभिरस्तमो भूद्वृषा वृषभिः सखिभिः सखा सन्।
ऋग्मिभिर्ऋग्मी गातुभिर्ज्येष्ठो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥४॥
स सूनिभिर्न रुद्रेभिर्ऋभ्वा नृषाह्ये सासह्वाँ अमित्रान्।
सनीळेभिः श्रवस्यानि तूर्वन् मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥५॥
स मन्युमीः समदनस्य कर्ताऽस्माकेभिर्नृभिः सूर्यं सनत्।
अस्मिन्नहन्त्सत्पतिः पुरुहूतो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥६॥
तमूतयो रणयञ्छूरसातौ तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम्।
स विश्वस्य करुणस्येश एको मरुत्वान्नो भवित्विन्द्र ऊती ॥७॥

तमप्सन्त शवस उत्सवेषु नरो नरमवसे तं धनाय।
सो अन्धे चित्तमसि ज्योतिर्विदन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥८ ॥
स सव्येन यमति व्राधतश्चित्स दक्षिणे संगृभीता कृतानि।
स कीरिणा चित्सनिता धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥९ ॥
स ग्रामेभिः सनिता स रथेभिर्विदे विश्वाभिः कृष्टिभिर्न्वद्य ॥
स पौंस्येभिरभिभूरशस्तीर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१० ॥
स जामिभिर्यत्समजाति मीळ्हेऽजामिभिर्वा पुरुहूत एवैः ॥
अपां तोकस्य तनयस्य जेषे मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥११ ॥
स वज्रभृद्दस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा ॥
चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१२ ॥
तस्य वज्रः क्रन्दति स्मत्स्वर्षा दिवो न त्वेषो रवथः शिमीवान् ॥
तं सचन्ते सनयस्तं धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१३ ॥
यस्याजस्त्रं शवसा मानुमुक्थं परिभुजद्रोदसी विश्वतः सीम् ॥
स पारिषत्क्रतुभिर्मन्दसानी मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१४ ॥
न यस्य देवा देवता न मर्त्ता आपश्चन शवसो अन्तमापुः ॥
स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१५ ॥
रोहिच्छ्यावा सुमदंशुर्ललामीर्द्युक्षा राय ऋज्राश्वस्य ॥
वृषणवन्तं बिभ्रती धूर्षु रथं मन्द्रा चिकेत नाहुषीषु विक्षु ॥१६ ॥
एतत्त्यत्त इन्द्र वृष्ण उक्थं वार्षागिरा अभिगृणन्ति राधः ॥
ऋज्राश्वः प्रष्टिभिरम्बरीषः सहदेवो भयमानः सुराधाः ॥१७ ॥
दस्यूञ्छिम्यूँश्च पुरुहूत एवैर्हत्वा पृथिव्यां शर्वा निबर्हीत्।
सनत्क्षेत्रं सखिभिः शिवत्न्येभिः सनत्सूर्यं सनदपः सुवज्रः ॥१८ ॥
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः" ॥१९ ॥

वार्षागिरों का आत्मसमर्पण।

इन्द्र विजयाभिनन्दन में कुत्स के सहयोग से वार्षागिर राजाओं का आत्मसमर्पण सूक्त (१/१००) में भली प्रकार वर्णन किया गया है।

"जो बलवान् इन्द्र बल बढ़ाने वाले धनों के साथ निवास करता है, वह द्युलोक और पृथ्वी का बड़ा सम्राट् है, वह जलों का प्रेरक है और युद्ध में सहायतार्थ प्रार्थना करने योग्य है। वह मरुतों से युक्त इन्द्र हमारी रक्षा करे ॥१ ॥

जिस इन्द्र की गति सूर्य के समान अप्राप्त है अर्थात् उससे अधिक कोई नहीं चल सकता है, जो वृत्रनाशक इन्द्र प्रत्येक युद्ध में असुरों को भय से सुखाने वाला है, जो अपने साथ आक्रमण करने में कुशल मरुत् रूपी मित्रों के साथ मिल कर बड़ा बलिष्ठ होता है। वह मरुतों वाला इन्द्र हमारा रक्षक हो ॥२॥

जिस इन्द्र का स्वाधीन मार्ग सूर्य की किरणों के समान जल को देने वाला तथा आगे बढ़ाने वाला है, वह अपने पराक्रमों से द्वेष नाश करने वाला और शत्रु का पराभव करने वाला है, मरुतों के साथ वह इन्द्र हमारा रक्षक बने ॥३॥

वह इन्द्र अंगिरादि ऋषि में पूजनीय है, मित्रों में श्रेष्ठ मित्र होता हुआ, बलवानों में अधिक बलवान् और प्रशंसनीयों में अधिक प्रशंसायोग्य और गमन करने वालों में श्रेष्ठ है। ऐसा मरुतों के साथ रहने वाला इन्द्र हमारा रक्षक बने ॥४॥

पुत्रों के समान प्रिय और मरुतों से युक्त महान् इन्द्र ने वीरों के द्वारा सहन करने योग्य युद्ध में शत्रुओं को पराजित किया। एक साथ रहने वाले मरुतों के साथ मिल कर, अन्न को बढ़ाने वाला, जलों को नीचे गिराता हुआ मरुतों के साथ इन्द्र हमारी रक्षा करे ॥५॥

वह शत्रुओं पर क्रोध करने वाला, जहाँ मिलकर साथ विजय का आनन्द मनाते हैं, ऐसे युद्धों को करने वाला, सज्जनों का पालक, सभी लोगों से प्रशंसित इन्द्र आज ही के दिन वीरों के साथ मिलकर असुरों द्वारा छिपाये हुए सूर्य को प्राप्त करे। वह मरुतों को साथ रखने वाला इन्द्र इस प्रकार हमारी रक्षा करे ॥६॥

धन प्राप्त करने योग्य युद्ध में शूरवीरों ने इन्द्र को प्रसन्न किया है, प्रजाओं ने उसे क्षमा योग्य धन का रक्षक बनाया है, वह इन्द्र अकेला ही सम्पूर्ण उत्तम कर्मों का शासक, संचालक है, ऐसा वह मरुतों वाला इन्द्र हमारी रक्षा करे ॥७॥

बलशाली वीरों ने उत्सवों और युद्धों में उस वीर इन्द्र को रक्षा और धन के लिए प्राप्त किया। उस वीर इन्द्र ने घोर अन्धकार में भी प्रकाश को प्राप्त किया। ऐसा वह मरुत्वान् इन्द्र हमारा रक्षक हो ॥८॥

वह इन्द्र बांये हाथ से बड़े शत्रुओं को भी वश में करता है, वह दाहिने हाथ से किये गये सुकर्मों को ग्रहण करता है, वह स्तुति मात्र से प्रसन्न होकर उन्हें धन बांटता है। ऐसा वह मरुत्वान् इन्द्र हमारा रक्षक बने ॥९॥

वह इन्द्र मरुतों के संघो से और रथों द्वारा धन का दाता है, वह सम्पूर्ण प्रजाओं द्वारा आज भी जाना जाता है, वह बलों से निन्दनीय शत्रुओं को पराजित करने वाला है। ऐसा वह मरुत्वान् इन्द्र हमारा रक्षक बने ॥१०॥

वह बहुतों द्वारा सहायतार्थ बुलाया गया इन्द्र जिस समय बन्धु अथवा अबन्धु सैनिकों के साथ युद्ध में जाता है तब मित्रवत् उन वीरों के पुत्र-पौत्रो की विजय के लिए प्रयत्न करता है। ऐसा वह मरुत्वान् हमारा रक्षक बने ॥११॥

वह वज्रधारी, दुष्टनाशक, भयंकर, वीर, ज्ञानी, सैकड़ो नीतियों को जानने वाला महान् एकत्रित होने के समान बल से पांच प्रकार के मनुष्यों का हितकारी है, ऐसा मरुत्वान् इन्द्र हमारा रक्षक बने ॥१२॥

उस इन्द्र का वज्र बहुत गर्जना करता है। वह इन्द्र स्वर्ग की रक्षा करने वाला, द्युलोक में रहने वाले सूर्य के समान तेजस्वी, व्याख्याता और कर्म में कुशल है। सब प्रकार के दान और धन उसके पास रहते हैं। ऐसा मरुत्वान् इन्द्र हमारा रक्षक बने ॥१३॥

जिस इन्द्र का प्रशंसनीय बल अपनी शक्ति से दोनों लोकों का सब तरफ से निरन्तर पालन कर रहा है, वह पुरुषार्थों से हर्षित होने वाला इन्द्र हमें कष्ट से मुक्त करे। ऐसा मरुत्वान् इन्द्र हमारा रक्षक बने ॥१४॥

जिस इन्द्र के बल का अन्त दानशील एवं तेजस्वी देव, मनुषय और जल नहीं पा सकते हैं, वह इन्द्र अपनी सूक्ष्म शक्ति से पृथिवी और द्युलोक से आगे बढ़ा हुआ है, ऐसा मरुत्वान् इन्द्र अपनी सूक्ष्म शक्ति के साथ हमारा रक्षक बने ॥१५॥

लाल और काले रंग वाली उत्तम तेजस्वी आभूषणों से युक्त द्युलोकस्थित आनन्ददायी अश्वशक्ति ऋज्राश्व ऋषि के ऐश्वर्यवर्धन के लिए बलवान् इन्द्र से युक्त रथ को धुरों में लगाकर खींचती हुई मानुषी प्रजाओं में प्रकट हो रही है ॥१६॥

हे इन्द्र! समीप रहने वाले ऋषियों के साथ ऋज्राश्व, अम्बरीष, सहदेव, भयमान और सुधाधस् ये सारे वृषागिर के पुत्र तुझ सामर्थ्यवान् इन्द्र के उन निर्दोष स्तोत्रों का गान करते हैं ॥१७॥

जिसे अपनी सहायता के लिए बुलातें हैं, ऐसे इन्द्र ने सैनिकों के साथ मिलकर पृथिवी पर रहने वाले दुष्ट और हिंसकों पर प्रहार करके वज्र से उनको निर्मूल कर दिया, तब उस उत्तम वज्र वाले ने श्वेत वस्त्राभूषण वाले मित्रों के साथ मिलकर भूमि प्राप्त की, सूर्य प्राप्त किया और जल को प्राप्त किया ॥१८॥

इन्द्र सदैव हमें उत्तम सलाह देने वाला हो। हम भी कुटिलता छोड़कर उसे अन्न दें। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यौ हमारी प्रेरणा के स्रोत बनें।।१९॥

इतः परं कुत्सवदन्येषामप्यार्याणां यत्र प्रमहे धन्यवादरूपाः सूक्तवाकाः।

कुत्सवदन्येषामप्यार्य्याणामूतिरिन्द्रेण।
काले काले बहुधा कृतेति तेऽप्यागमन् प्रमहे।।१॥
किन्त्वेषामखिलानां ये यावन्तः प्रतिष्ठिताः प्रवराः।
आसन् त एव सूक्तान्यावेदयितुं नियोजिता अभवन्।।२॥
तत्र हिरण्यस्तूपः सव्यभरद्वाजवामदेवाश्च।

अपि दुर्मित्रः कौत्सो बृहदुक्थो वामदेव्यश्च ॥३ ॥
वत्सश्रुष्टिगुमेध्यागर्गसुहोत्रौ च शुनहोत्रः ।
गौतमनोधः कक्षीवन्तस्तद्वत् परुच्छेपः ॥४ ॥
गृत्समदोऽथावस्युर्बभ्रुर्गातुस्तथाऽगस्त्यः ।
विश्वामित्रो विमदः संवरणो वा प्रजापतेः पुत्र ॥५ ॥
अपि च वसिष्ठो वसुकृद् वासुक्रो गौरिवीतिश्च ।
अष्टादंष्ट्रोऽन्योऽन्यः शतप्रभेदन इमौ तु वै रूपौ ॥६ ॥
वैखानसस्तु बभ्रो मरुत् तिरश्चीर्द्युतानो वा ।
एषां पश्चादिन्द्रः किञ्चिदुवाचेह वामदेवाय ॥७ ॥
इत्थं तत्र सभायामार्य्यनृपाः सप्तगोत्रजा ऋषयः ।
असुरा मरुतो देवाः सर्वे भक्त्या सभाजयामासुः ॥८ ॥
एते तत्र तदानीं घटान् सहस्राणि सोमानाम् ।
गाश्चोपायनविधया सर्वस्वं च न्यवेदयन्तास्मै ॥९ ॥
विनिमयनव्यवहाराङ्गस्यार्थं राजशासनात् सिद्धम् ।
अद्य यथा पश्यामस्ताम्रपणं रौप्यकं स्वर्णम् ॥१० ॥
एवं देवयुगे प्राग् 'गो' नाम विनिमयद्रव्यम् ।
गौर्वा तच्च हिरण्यं वाऽन्यद् वेत्येवमनुभाव्यम् ॥११ ॥
अद्येव पूर्वकाले क्रयविक्रयवत् प्रभूपहारेऽपि ।
विनिमयनीयद्रव्याण्यावेद्यन्ते स्म ता गावः ॥१२ ॥
कवयोऽमी खलु तस्मै चक्रुर्विजयाभिनन्दनं हर्षात् ।
प्रत्यक्षं च परोक्षं चक्रुर्गुणकीर्तनं तस्य ॥१३ ॥
यद्वत् कुत्सस्तद्वदन्येऽपि भूपाः काले काले स्वस्वरक्षोपलक्षे ।
आहूयेन्द्रं सोमयज्ञोत्सवेऽस्मै सोमं सुत्वाऽवेदयन् भक्तिसूक्तम् ॥१४ ॥
यद्वत् कुत्सोऽयं स्वकूक्ते परेषां राज्ञामिन्द्राद्रक्षणं विब्रवीति ।
अन्येप्येवं कुत्सरक्षां ब्रुवाणा दस्योर्युद्धं चक्षते स्वस्वकाव्ये ॥१५ ॥
यद्यत्पूर्व यच्च दस्युप्रबाधे कर्मार्याणामिन्द्र ऊत्या अकार्षीत् ।
सर्वं तत्तद्वर्णयामासुरार्याः स्मारं स्मारं सव्यमुख्याः स्वसूक्ते ॥१६ ॥
बार्हस्पत्या गाव आसन् कदाचिद्दुष्टैश्चोरैर्दस्युभिर्लुण्ठिताः प्राक् ।
तच्च श्रुत्वा देवराजः सवीरो दस्यून् हत्वा प्रापयद् ब्रह्मणे ताः ॥१७ ॥
एवं ये ये चोपकाराः कृताः प्राग् देवेन्द्रणानेन तानत्र सर्वान् ।
स्मारं स्मारं कीर्तयन्तः स्वकाव्यैरार्य्याः प्रोचुः स्वं कृतज्ञत्वमस्मै ॥१८ ॥

दस्योर्युद्धादल्पकालेन पूर्वे भूयोऽप्यासंश्चोरिता गाव एतैः ॥
तासां भूयोन्वेषितानामलाभात्केचिद्देवा विह्वलास्तत्र चासन् ॥१९ ॥
दस्युग्रामध्वंसनादिन्द्रवीर्य्यं प्राशस्त्यार्थेऽत्युत्सवेऽस्मिन् प्रवृत्ते।
गोरक्षार्थं दैवतैः प्रार्थनापि स्तुत्यैवोपस्थापिताऽस्मै तदानीम् ॥२० ॥
तेषां काव्ये दस्युयुद्धप्रसङ्गो दृष्टो यावानुल्वणो यत्र वाक्ये।
तावद्वाक्यं दर्श्यते संगृहीतं सर्वं सूक्तं तावतैवोपलक्ष्यम् ॥२१ ॥

तदनन्तर इस उत्सव में कुत्स की तरह अन्य आर्यों द्वारा भी धन्यवादस्वरूप स्तुतिवचनों का उच्चारण

कुत्स के समान अन्य आर्यों की भी इन्द्र ने समय-समय पर बहुविध रक्षा की है। अतः वे भी इस उत्सव में आये ॥१ ॥

परन्तु इन आये हुए आर्यों में से जो प्रतिष्ठित और श्रेष्ठ जन थे, वे ही सूक्तों (स्तुति-वाक्यों) को कहने के लिए नियुक्त किये गये अर्थात् स्तुतिगान के अधिकारी बने ॥२ ॥

इनमें से प्रमुख थे - हिरण्यस्तूप, सव्य, भरद्वाज, वामदेव, कुत्स के पुत्र दुर्मित्र तथा वामदेव के पुत्र बृहदुक्थ, वत्स, श्रुष्टिगु, मेध्य, गर्ग, सुहोत्र, शुनहोत्र, गौतम के पुत्र नोधा, कक्षीवान् और इसी प्रकार परुच्छेप, गृत्समद, अवस्यु बभ्र, गातु, अगस्त्य, विश्वामित्र, विमद, संवरण और प्रजापति का पुत्र इन्द्र की स्तुति करने के लिए तत्पर हुए ॥३-४-५ ॥

इसी प्रकार वसिष्ठ, वसुकृद्, वासुक्र, गौरिवीति और विरूप एक अष्टादंष्ट्र और दूसरा शतप्रभेदन, विश्वानस के पुत्र बभ्र, मरुत्, तिरश्ची और द्युतान इन्द्र की स्तुति के लिए तत्पर हुए। इनके पश्चात् यहाँ इन्द्र ने वामदेव के लिए कुछ कहा ॥६-७ ॥

इस तरह उस सभी में आर्य राजागण, सप्रगोत्रोत्पन्न ऋषि, असुर, मरुत और देवगण ने भक्ति सहित इन्द्र का अभिनन्दन किया ॥८ ॥

इन सभी लोगों ने उपहार भेंट की विधि से इस इन्द्र को उस सभा में एक हजार सोम-कलश, गायें और सर्वस्व समर्पित कर दिया ॥९ ॥

जिस प्रकार वर्तमान में ताम्र, स्वर्ण और चाँदी को विनिमय-व्यापार-व्यवहार तथा सम्मानार्थ राजाज्ञा द्वारा निश्चित किया गया है, उसी प्रकार प्राचीन काल में (देवयुग में) पहले "गौ" नाम का विनिमय (परस्पर लेन-देन) का साधन था। यहाँ गौ से तात्पर्य गाय अथवा स्वर्ण अथवा अन्य किसी वस्तु को समझना चाहिये ॥१०-११ ॥

आज की भाँति प्राचीन काल में भी क्रय-विक्रय के समान राजाओं को उपहार देने में भी विनिमययोग्य साम्रगी का ही निवेदन करते थे और वह विनिमय वस्तु गाय ही थी ॥१२ ॥

इन कवि ऋषियों ने हर्षपूर्वक उस इन्द्र का विजयाभिनन्दन किया। इन्होंने इन्द्र का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सभी प्रकार से गुण वर्णन किया ॥१३ ॥

कुत्स ने समान अन्य राजाओं ने भी समय-समय की गई अपनी रक्षा के उपलक्ष-में इन्द्र को बुला कर इस सोमयागोत्सव में इन्द्र के लिए सोम का सवन करके भक्ति-पूर्वक स्तुतिसूक्तों को निवेदित किया ॥१४॥

जिस प्रकार कुत्स अपनी स्तुति में इन्द्र द्वारा अन्य राजाओं की रक्षा का वर्णन करते हैं, उसी प्रकार अन्य राजा भी अपने-अपने काव्यों में कुत्स की रक्षा का वर्णन करते हुए दस्यु-युद्ध का वर्णन करते हैं ॥१५॥

पूर्वकाल में दस्युओं द्वारा पीड़ित किये जाने पर रक्षा करते हुए इन्द्र ने आर्यों के जिन-जिन कार्यों को किया था, उन सबको स्मरण कर कर के सव्यादि आर्यों ने अपने सूक्त में वर्णन किया ॥१६॥

पूर्वकाल में दुष्ट, चोर, दस्युओं के द्वारा बृहस्पति की गायें लूट ली गई थीं, यह सुनकर देवराज इन्द्र ने वीर योद्धाओं सहित जाकर दस्युओं को मारकर वे गायें ब्राह्मण (बृहस्पति) को लौटा दीं ॥१७॥

इस प्रकार पूर्वकाल में देवेन्द्र के द्वारा जो-जो भी उपकार किये गये थे, उन सब को यहाँ स्मरण कर करके स्तुति करते हुए आर्यों ने इस देवराज के प्रति अपने काव्यों के द्वारा कृतज्ञता प्रकट की ॥१८॥

दस्यु युद्ध से कुछ समय पहले भी इन लोगों ने अनेक बार आर्यों की गायों को चुरा लिया था। उन गायों को बार-बार खोजने पर न पाने पर कुछ देवगण विह्वल हो गये ॥१९॥

दस्युओं के समूह को नष्ट करने पर इन्द्र के शौर्य की प्रशंसा के लिए इस उत्सव में आये देवताओं के द्वारा की गई प्रार्थना भी उस समय इस इन्द्र के लिए स्तुति रूप में ही उपस्थित हो गई ॥२०॥

इनके इस काव्य में दस्यु-युद्ध का प्रसंग जिस वाक्य (भाग) में प्रचुर मात्रा में दिखाई देता है, उतना सम्पूर्ण भाग संगृहीत करके इसी दृष्टि से सम्पूर्ण सूक्त में वर्णित दिखाई देता है ॥२१॥

तत्र तावद्धिरण्यस्तूपो नामाङ्गिरसो ब्रह्मर्षिरार्य्यपक्ष्याय देवेन्द्रायाभिनन्दयितुं कवयामास।

आङ्गिरसोऽयं विद्याविशेषतः प्रीणयन्निन्द्रम्।
स हिरण्यस्तूपत्वं लेभे चेन्द्रेण शाश्वतं सख्यम् ॥१॥
महती पुरा प्रतिष्ठाऽऽसीदिन्द्रेण सख्यताप्तिर्या।
लब्ध्वा हेम्नः स्तोमं स हिरण्यस्तूप इत्यभूत् प्रथितः ॥२॥
स इदानीमिह कुत्सप्रमहे संमन्त्रितः समागम्य।
अनुकुत्सं भगवन्तं देवेन्द्रं तमभिनन्दयामासः ॥१॥

अङ्गिरा के पुत्र ब्रह्मर्षि हिरण्यस्तूप द्वारा आर्यों के सहयोगी इन्द्र का अभिनन्दन करने हेतु स्तुति—

इस अङ्गिरा के पुत्र ने विद्याविशेष से इन्द्र को प्रसन्न करते हुए "हिरण्यस्तूप" पद को तथा इन्द्र से शाश्वत मित्रता को प्राप्त किया ॥१ ॥ पुरायुग में इन्द्र के साथ मित्रता होना प्रतिष्ठा का विषय था, उसे हिरण्यस्तूप ने प्राप्त की तथा हिरण्य (स्वर्ण) का ढेर प्राप्त करने से "हिरण्यस्तूप" नाम से प्रसिद्ध हुए ॥२ ॥ और अब कुत्स के उत्सव में निमन्त्रित होकर आये और कुत्स के साथ साथ भगवान् देवेन्द्र का अभिनन्दन किया ॥३ ॥

हिरण्यस्तूपः

ऋ.१/३२ "इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम् ॥१ ॥
अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टाऽस्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमवजग्मुरापः ॥२ ॥
वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्य।
आ सायकं मघवाऽदत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥३ ॥
यदिन्द्राहन्प्रथमजामहीनामान्मायिनाममिनाः प्रोत मायाः।
आत्सूर्यं जनयन् द्यामुषासं तादीत्ना शत्रु न किला विवित्से ॥४ ॥
अहन्वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णाऽहिः शयत उपपृक्पृथिव्याः ॥५ ॥
अयोद्धेव दुर्मद आहि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम्।
नातारीदस्य समृतिं वधानां सं रुजाना पिपिष इन्द्रशत्रुः ॥६ ॥
अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमाऽस्य वज्रमधि सानौ जघान।
वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन्पुरुत्रा वृत्रो अशयद्व्यस्तः ॥७ ॥
नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अतियन्त्यापः।
याश्चिद्वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्तासामहिः पत्सुतःशीर्बभूव ॥८ ॥
नीचावया अभवद्वृत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार।
उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद्दानुः शये सहवत्सा न धेनुः ॥९ ॥
अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम्।
वृत्रस्य निण्यं विचरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः ॥१० ॥
दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः पणिनेव गावः।
अपां बिलमपिहितं यदासीद्वृत्रं जघन्वाँ अप तद्ववार ॥११ ॥

अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत्त्वा प्रत्यहन् देव एकः।
अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्तसिन्धून्॥१२॥
नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध न यां मिहमकिरद् ध्रादुनिं च।
इन्द्रश्च यद्युयुधाते अहिश्चोतापरीभ्यो मघवा विजिग्ये॥१३॥
अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत्ते जघ्नुषो भीरगच्छत्।
नव च यन्नवतिं च स्रवन्तीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि॥१४॥
इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान्न नेमिः परि ता बभूव"॥१५॥
ऋ.१/३३ "एतायामोप गव्यन्त इन्द्रमस्माकं सुप्रमतिं वावृधाति।
अनामृणः कुविदादस्य रायो गवां केतं परमावर्जते नः॥१॥
उपेदहं धनदामप्रतीतं जुष्टां न श्येनो वसतिं पतामि।
इन्द्रं नमस्यन्नुपमेभिरर्कैर्यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन्॥२॥
नि सर्वसेन इषुधीँरसक्त समर्यो गा अजति यस्य वष्टि।
चोष्कूयमाण इन्द्र भूरि वामं मा पणिर्भूरस्मदधि प्रवृद्ध॥३॥
वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेनँ एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र।
धनोरधि विषुणक्ते व्यायन्नयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः॥४॥
परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्राऽयज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः।
प्र यद्दिवो हरिवः स्थातरुग्र निरव्रताँ अधमो रोदस्योः॥५॥
अयुयुत्सन्ननवद्यस्य सेनामयातयन्त क्षितयो नवग्वाः।
वृषायुधो न वध्रयो निरष्टाः प्रवद्भिरिन्द्राच्चितयन्त आयन्॥६॥
त्वमेतान्रुदतो जक्षतश्चायोधयो रजस इन्द्र पारे।
अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः॥७॥
चक्राणासः परीणहं पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः।
न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रं परि स्पशो अदधात्सूर्येण॥८॥
परि यदिन्द्र रोदसी उभे अबुभोजीर्महिना विश्वतः सीम्।
अमन्यमानाँ अभिमन्यमानैर्निर्ब्रह्मभिरधमो दस्युमिन्द्र॥९॥
न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुर्न मायाभिर्धनदां पर्यभूवन्।
युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो निर्ज्योतिषा तमसो गा अदुक्षत्॥१०॥
अनु स्वधामक्षरन्नापो अस्याऽवर्धतमध्या नाव्यानाम्।
सध्रीचीनेन मनसा तमिन्द्र ओजिष्ठेन हन्मनाऽहन्नभि द्यून्॥११॥

न्याविध्यादिलीबिशस्य दृळहा वि शृङ्गिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः।
यावत्तरो मघवन्यावदोनो वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम्॥१२॥
अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून्वि तिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत्।
सं वज्रेणाऽसृजद्वृवमिन्द्रः प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदानः॥१३॥
आवः कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्प्रावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम्।
शफच्युतो रेणुर्नक्षत द्यामुच्छ्वैत्रेयो नृषाह्याय तस्थौः॥१४॥
आवः शमं वृषभं तुग्र्यासु क्षेत्रजेषे मघवञ्छ्वित्र्यं गाम्।
ज्योक् चिदत्र तस्थवांसो अक्रञ्छत्रूयतामधरा वेदनाकः"॥१५॥

हिरण्यस्तूप द्वारा स्तुति (१/३२)

हिरण्यस्तूप ऋषि इन्द्र की स्तुति करते हुए कहते हैं - "वज्रधारी इन्द्र ने जो पहले पराक्रम किये थे, हम इन्द्र के उन्हीं पराक्रमों का वर्णन करते हैं। उसने अहि राक्षस का वध किया, जलप्रवाह को बन्धनमुक्त किया और पर्वतों में से नदियों का मार्ग खोद कर विशाल किया॥१॥

पर्वत पर निवास करने वाले अहि का इन्द्र ने वध किया, त्वष्टा नाम के शिल्पकार ने इन्द्र के लिए शत्रु पर दूर से फेंक कर बेधने योग्य वज्र बनाया था, तब जैसे गायें रम्भाती हुई अपने बच्चों की ओर दौड़ती है, वैसे ही जलप्रवाह दौड़ते हुए समुद्र की ओर जाने लगे॥२॥

बलवान् इन्द्र ने सोम को स्वीकार किया, तीन पात्रों में रखे हुए रस का पान किया, धनवान् इन्द्र ने बाण और वज्र को हाथ से पकड़ा और अहियों में से मुख्य अहि का वध कर दिया॥३॥

हे इन्द्र! तुमने जब अहियों में से प्रमुख अहि का वध किया तब कपटियों के कपटमय षड्यंत्रो का भी विनाश किया। तत्पश्चात् आकाश में उषा और सूर्य को प्रकट किया। तब तुम्हारे लिए निःसन्देह कोई शत्रु नहीं रहा॥४॥

इन्द्र ने बड़े घातक शस्त्र से बड़े घेरने वाले वृत्र का बाहु काट कर वध किया। वह कुल्हाड़ी से तोड़ी गई वृक्ष की शाखा की तरह "अहि" भूमि पर पड़ा हुआ है॥५॥

महान् अहंकारी और स्वयं को अप्रतिम योद्धा मानने वाले वृत्र ने महावीर, अनेक शत्रुओं को बन्दी बनाने वाले शत्रुनाशक इन्द्र को आह्वान करके युद्ध के लिए बुलाया, परन्तु वह इन्द्र के प्रहार को सहन नहीं कर सका और उस इन्द्रशत्रु ने वृत्र ने नदियों को भी स्वयं ही गिरते-गिरते तोड़ डाला॥६॥

हाथ-पांव कट जाने पर भी वृत्र ने इन्द्र से युद्ध करना चाहा, इन्द्र ने इसके सिर पर वज्र से प्रहार किया तब वह शक्तिहीन पुरुष जिस प्रकार शक्तिशाली के सम्मुख नहीं टिक सकता है वैसे ही वह वृत्र इन्द्र के आघात को सहन नहीं कर सका और भूमि पर गिर पड़ा॥७॥

इस पृथिवी के साथ सोने वाले वृत्र को लांघ कर बाढ़ से तट को छिन्न-भिन्न करके बहने वाली नदियों के समान मनोहारी जलप्रवाह बहने लगा। वृत्र ने अपनी महिमा से जिन जलों को बद्ध किया था वही अब उनके पांवो के नीचे गिरा हुआ है और वही अब अहि बन गया है ॥८ ॥

अब वृत्र की माता की संरक्षण करने की शक्ति कम हो गई है, वही माता अब उसे बचाने के लिए उस पर लेट गई है, परन्तु इन्द्र ने उसकी माता के नीचे से प्रहार किया उस समय माता ऊपर और पुत्र नीचे था। जिस प्रकार बछड़े के साथ गाय सोती है उसी प्रकार वृत्र-माता वृत्र की रक्षा करने के लिए सो गई ॥९ ॥

स्थिर न रहने वाले और विश्राम न करने वाले जलप्रवाहों के बीच में वृत्र का शरीर छिपा हुआ था और उसके ऊपर से जल प्रवाहित हो रहा था। इन्द्र के शत्रु वृत्र ने चारों ओर घोर अंधकार फैला दिया था॥ (यहाँ वृत्र से तात्पर्य बर्फ है) ॥१० ॥

पणि नाम के असुरों ने जैसे गायों को छिपा लिया था, उसी प्रकार वृत्र के द्वारा पालित और अहि द्वारा छिपाने पर जलप्रवाह रुक गये, बह नहीं सके। इन्द्र द्वारा वृत्र का वध करने के पश्चात् जल का बन्द पड़ा हुआ द्वार खोल दिया गया ॥११ ॥

जब कुशल वृत्र ने इन्द्र के वज्र पर प्रहार किया तो इन्द्र ने उस प्रहार को वैसे झटक दिया जैसे घोड़ा अपनी पूँछ को झटकता है। हे शूरवीर इन्द्र ! तुमने गायों को प्राप्त किया, तुमने सोम को प्राप्त किया और सातों समुद्रों के प्रवाह को गतिमान् कर खोल दिया ॥१२ ॥

जब इन्द्र युद्ध करने लगा तो बिजलियाँ, मेघ-गर्जना, महावृष्टियाँ, तुषार-वर्षा, बिजली गिरना आदि आपत्तियाँ भी इन्द्र को रोक नहीं सकीं। इन्द्र और अहि परस्पर युद्ध करने लगे उस समय धनवान् इन्द्र ने विभिन्न प्रकार के शत्रुओं द्वारा किये जाने वाले विघ्नों को भी रोक दिया और विजय प्राप्त की ॥१३ ॥

हे इन्द्र ! वृत्र का वध करते समय यदि तुम्हारे मन में भय उत्पन्न हो जाता तो तुम्हारी सहायता कौन कर सकता था क्योंकि तुम्हीं सबसे श्रेष्ठ वीर हो। तुमने तो नौ और नब्बे जलप्रवाहों को भी अन्तरिक्ष में जैसे भयभीत बाज पक्षी जाता है वैसे ही पार कर लिया ॥१४ ॥

वज्रबाहु इन्द्र समस्त स्थावर-जंगम, शान्त और क्रूर सींग वालों का राजा है। वही समस्त मनुष्यों का राजा है। जिस प्रकार चक्र की नेमि अरों को धारण करती है वैसे ही वह इन्द्र सबको धारण करता है ॥१५ ॥

(१/३३) सूक्त में हिरण्यस्तूप ऋषि ही कहते हैं - आओ ! गायें प्राप्त करने की इच्छा से हम इन्द्र के पास जावें। जिसकी कभी पराजय नहीं होती ऐसा यह हमारी उत्तम बुद्धि की वृद्धि करेगा। निस्सन्देह इन्द्र की स्तुति करने से हमें धन और गायों की प्राप्ति का श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त होगा ॥१ ॥

जैसे श्येन पक्षी अपने घोंसले के पास दौड़ता है वैसे ही उस धनदाता और विजयी इन्द्र के पास उपासनायोग्य मन्त्रों से स्तुति करता हुआ जा पहुँचता हूँ। यह इन्द्र भक्तों के लिए युद्ध में सहायता अवश्य करता है॥२॥

समस्त सेनाओं का सेनापति इन्द्र अपनी पीठ पर तर्कस धारण करता है। इन्द्र सबका स्वामी है, जिसको चाहता है, गायें प्रदान करता है। हे श्रेष्ठ इन्द्र! हम श्रेष्ठ धन की इच्छा करते हैं, हमारे साथ वणिक् जैसा व्यवहार मत करना॥३॥

शक्तिशाली वीरों के साथ हमला करते हुए भी अन्त में तुम अकेले ने ही चढ़ाई करके बलवान् वृत्र का अपने वज्र से संहार किया, तब तुम्हारे धनुष पर वे सभी शत्रु संहार करने के लिए एक साथ प्रहार करने लगे परन्तु अन्त में यज्ञ न करने वाले उन दस्युओं का नाश हो गया॥४॥

हे इन्द्र! स्वयं यज्ञ न करने वाले वे शत्रु याजकों के साथ स्पर्धा न करने के कारण अपना मस्तक नीचा करके भाग गये। हे घोड़ो को जीतने वाले, युद्ध में स्थिर उग्र वीर इन्द्र! तुमने इस पृथ्वी, द्युलोक और अन्तरिक्ष से अनियमित धर्म को मानने वालों को भगा दिया॥५॥

निर्दोष और बलवान्, इन्द्र की सेना के साथ युद्ध करने की इच्छा से उन शत्रुओं ने इन्द्र पर आक्रमण किया परन्तु नवीन साधनों से युक्त इन्द्र के सैनिकों ने उन शत्रुओं का मुकाबला किया, जिससे उन शत्रुओं की सेना वैसे ही पराजित हो गई जैसे किसी बलिष्ठ पुरुष के साथ युद्ध करने पर नपुंसक की पराजय हो जाती है। तब वे शत्रु अपनी कमजोरी मान कर दूर भाग गये॥६॥

हे इन्द्र! तुमने रोने वाले और खाने वाले इन शत्रुओं को रजोलोक (गर्त में) के पार पहुँचा दिया है। इस दस्यु को खींच कर नीचे लाकर जला दिया है तथा सोमयज्ञ करने वाले उत्तम स्तोताओं की रक्षा की है॥७॥

शत्रुओं ने अपने आप को स्वर्ण और रत्नों से सुशोभित कर लिया था और पृथ्वी पर अपना प्रभाव जमा लिया था। वे शत्रु निरन्तर बढ़ते ही जा रहे थे, परन्तु हे इन्द्र! तुमने उनको युद्ध में खदेड़ दिया और अन्त में उन शत्रुओं को सूर्य से पराजित होना पड़ा॥८॥

हे इन्द्र! तुमने द्युलोक और पृथ्वी लोक का चारों ओर से पूर्णतः उपभोग किया है। तब हे इन्द्र! तुमने नास्तिकों को आस्तिकों के द्वारा अनेक योजनाओं से परास्त कराया है॥९॥

जो द्युलोक से पृथ्वी लोक तक का मध्य का अन्तराल और अन्त नहीं जान सके, जो धनदाता इन्द्र को किसी भी कपट युक्ति से पराजित नहीं कर सके तब वीर इन्द्र ने अपने वज्र को ठीक तरह से पकड़ लिया और अन्धकार में से गायों को प्रकाश में निकाला और उनका दोहन किया॥१०॥

जलप्रवाह अन्न को बढ़ाने के लिए अच्छी तरह चलते रहें, परन्तु वृत्र अपनी नावों से नदियों के बीच बढ़ रहा था। इन्द्र ने धैर्ययुक्त मन से उस शत्रु को बलवान् घातक वज्र से कुछ ही दिनों में मार दिया ॥११॥

बलात् भूमि पर रहने वाले वृत्र के सैनिकों और सुदृढ़ किलों को इन्द्र ने तोड़ दिया और सींग वाले शोषक वृत्र को छिन्न-भिन्न कर दिया। हे धनवान् इन्द्र! तुम्हारा जितना वेग और बल था, उससे तुमने सेना को साथ ले कर शत्रु से युद्ध किया और वृत्र का वध किया ॥१२॥

इस इन्द्र का वज्र शत्रुओं के ऊपर आक्रमण करने लगा। तीक्ष्ण और बलशाली वज्र से इन्द्र ने शत्रु के नगरों को तोड़ दिया। इन्द्र ने वज्र से भली प्रकार प्रहार किया और शत्रुओं का संहार करने वाले इन्द्र ने अपनी विशाल बुद्धि को प्रकट किया ॥१३॥

हे इन्द्र! तुमने जिस पर कृपा की उस कुत्स की तुमने रक्षा की अर्थात् बुराइयों को नष्ट करने वालों तथा दशद्यु (दाने देने वालों) की रक्षा की। उस समय तुम्हारे घोड़ों के पांवों से उड़ी धूल द्युलोक तक फैल गई। श्वैत्रेय भी सबसे अधिक समर्थ होने के लिए तुम्हारी कृपा से ऊपर उठ गया ॥१४॥

हे धनवान् इन्द्र! क्षेत्रप्राप्ति के युद्ध में शान्त, बलवान् परन्तु जलप्रवाहों में डूबने वाले श्वित्र्य की तुमने रक्षा की। हमारे शत्रु ने बहुत समय तक यहाँ रहकर हमसे युद्ध किया, उन्हीं शत्रुओं को नीचे गिरा कर तुमने दुःख दिया ॥१५॥

सव्यः

सव्यो नामाङ्गिरसो राजर्षिराय्योपकारिणे स्वराजे कृतज्ञतासूक्तमावेदयितुं कवयामास।

पुत्रो मे स्यादिन्द्रतुल्यो मनीषीत्येवंकामोऽतप्यतैषोऽङ्गराः प्राक्।
तस्मात्पुत्रः सोऽयमिन्द्रावतारः सव्यो जज्ञे तं स इन्द्रं स्तवीति ॥१॥
ऋग्वेदाद्ये मण्डले कामसूक्तादिन्द्रं सव्यः सामसूक्तान्तमस्तौत्।
तेभ्यो दासायोधनं रूपयन्तीः संदर्श्यन्ते काश्चिदत्रर्च एताः ॥२॥
ऋ.१/५१ **"त्वमपामपिधानाऽवृणोरपाधारयः पर्वते दानुमद्वसु।**
वृत्रं यदिन्द्र शवसाऽवधीरहिमादित्सूर्य्यं दिव्यारोहयो दृशे ॥४॥
त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत।
त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ ॥५॥
त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथारन्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम्।
महान्तं चिदर्बुदं निक्रमीः पदा सनादेव दस्युहत्याय जज्ञिषे ॥६॥

विजानीह्यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन ॥८॥
अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रतानाभूमिरिन्द्रः श्नथयन्ननोभुवः।
वृद्धस्य चिद्वर्धतो द्यामिनक्षतः स्तवानो वम्रो विजघान संदिहः ॥९॥
तक्षद्यत्त उशना सहसा सहो वि रोदसी मज्मना बाधते शवः।
आ त्वा वातस्य नृमणो मनोयुज आ पूर्यमाणमवहन्नभि श्रवः ॥१०॥
मन्दिष्ट यदुशने काव्ये सचाँ इन्द्रो वङ्कू वङ्कुतराऽधितिष्ठति।
उग्रो ययिं निरपः स्रोतसाऽसृजद्वि शुष्णस्य दृंहिता ऐरयत्पुरः ॥११॥
इदं नमो वृषभाय स्वराजे सत्यशुष्माय तवसेऽवाचि।
अस्मिन्निन्द्र वृजने सर्ववीराः स्मत्सूरिभिस्तव शर्मन्त्स्याम" ॥१५॥
ऋ.१/५२ "स पर्वतो न धरुणेष्वच्युतः सहस्रमूतिस्तविषीषु वावृधे।
इन्द्रो यद्वृत्रमवधीन्नदीवृतमुब्जन्नर्णांसि जर्हृषाणो अन्धसा ॥२॥
जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रतविन्द्र वृत्रं मनुषे गातुयन्नपः।
अयच्छथा बाह्वोर्वज्रमायसमधारयो दिव्या सूर्यं दृशे ॥८॥
बृहत्स्वश्चन्द्रममवद्यदुक्थ्यमकृण्वत भियसा रोहणं दिवः।
यन्मानुषप्रधना इन्द्रमूतयः स्वर्नृषाचो मरुतोऽमदन्ननु ॥९॥
द्यौश्चिदस्यामवाँ अहेः स्वनादयोयवीद्भियसा वज्र इन्द्र ते।
वृत्रस्य यद्बद्धानस्य रोदसी मदे सुतस्य शवसाऽभिनच्छिरः" ॥१०॥
ऋ.१/५३ "न्यूषु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः।
नू चिद्धि रत्नं ससता मिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥१॥
एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥४॥
त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयाऽतिथिग्वस्य वर्तनी।
त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत्पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ॥८॥
त्वमेताञ्जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥९॥
त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम्।
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः ॥१०॥
य उदृचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः" ॥११॥

ऋ.१/५४ "त्वं दिवो बृहतः सानु कोपयोऽव त्मना धृषता शंबरं भिनत्।
यन्मायिनो व्रन्दिनो मन्दिना धृषच्छितां गभस्तिमशनिं पृतन्यसि ॥४॥
नियद्वृणक्षि श्वसनस्य मूर्धनि शुष्णस्य चिद्व्रन्दिनो रोरुवद्वना।
प्राचीनेन मनसा बर्हणावता यदद्याचित्कृणवः कस्त्वा परि ॥५॥
त्वमाविथ नर्यं तुर्वशं यदुं त्वं तुर्वीतिं वय्यं शतक्रतो।
त्वं रथमेतशं कृत्व्ये धने त्वं पुरो नवतिं दम्भयो नव ॥६॥
अपामतिष्ठद्धरुणह्वरं तमोऽन्तर्वृत्रस्य जठरेषु पर्वतः।
अभिमिन्द्रो नद्यो वव्रिणा हिता विश्वा अनुष्ठाः प्रवणेषु जिघ्नते" ॥१०॥
ऋ.१/५६ "स तुर्वणिर्महाँ अरेणु पौंस्ये गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः।
येन शुष्णं मायिनमायसो मदे दुध्र आभूषु रामयन्नि दामनि" ॥३॥
ऋ.१/५७ "त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन्पर्वशश्चकर्तिथ।
अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः" ॥६॥

आंगिरस सव्य ऋषि द्वारा स्तुति

अङ्गिरा के पुत्र सव्य नामक राजर्षि द्वारा आर्यों के उपकर्ता स्वराट् देवेन्द्र के प्रति कृतज्ञतासूचक सूक्त का निवेदन करते हुए काव्य की रचना

पूर्वकाल में ऋषि अंगिरा ने इन्द्र के समान मनीषी पुत्र की कामना करते हुए तपस्या की। उससे यह इन्द्र का अवतार "सव्य" उत्पन्न हुआ, वही सव्य इन्द्र की स्तुति करता है ॥१॥

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में कामसूक्त से सामसूक्त तक ऋषि सव्य ने इन्द्र की स्तुति की है। दासों के साथ हुए इन्द्र के युद्ध को प्रदर्शित करने वाली ये कुछ ऋचाएँ यहां प्रस्तुत की जाती है ॥२॥

ऋग्वेद के (१/५१) सूक्त में सव्य आङ्गिरस ऋषि करते हुए कहते हैं - "हे इन्द्र! तुमने जलों को रोकने वाले मेघो को बरसाया, तथा पर्वत में रहने वाले वृत्र के धन को धारण किया, तब अपने बल से वृत्र और अहि को मारा। तत्पश्चात् सूर्य को आकाश में प्रकाश फैलाने के लिए द्युलोक में चढ़ाया ॥४॥

जो स्वयं अपने मुँह में ही अन्नादि का हवन करते थे अर्थात् अन्न का स्वयं ही उपभोग करते थे, उन मायावी लोगों को माया से ही मारा। हे इन्द्र! मनुष्य तुम्हारी प्रशंसा करते हैं, तूने पिप्रु नाम के असुर के दुर्गों को तोड़ा तथा संग्राम में ऋजिश्वा ऋषि की रक्षा की ॥५॥

हे इन्द्र ! तूने शुष्ण असुर जिस संग्राम में मारा गया था, उस युद्ध में कुत्स ऋषि की रक्षा की। अतिथिग्व ऋषि की रक्षा के लिए शम्बर को मारा। महान् शक्तिशाली अर्बुद को तो पैरों से कुचल डाला। तू प्राचीन काल से ही असुरों को मारने के लिए ही उत्पन्न हुआ है ॥६ ॥

हे इन्द्र ! सज्जनों और दुर्जनों को दोनों को जान लो। यज्ञकर्ताओं की रक्षा के लिए व्रतहीन अनियमित लोगों पर शासन करते हुए उन्हें नष्ट कर। हे सामर्थ्यवान् इन्द्र ! मैं चाहता हूँ कि तू यजमानों को प्रेरित कर, जिससे वे यज्ञों में तेरे समस्त कर्मों की प्रशंसा करें, मैं ऐसा चाहता हूँ ॥८ ॥

यह इन्द्र सज्जनों के लिए व्रतहीन दस्युओं को मारते हुए तथा मातृभूमि के भक्तों द्वारा मातृभूमि के शत्रुओं का नाश करवाता है। ऐसे बढ़ते हुए इन्द्र की स्तुति करते हुए वभ्र ऋषि ने द्युलोक को आक्रान्त करने वाले असुरों को काटा और मार डाला ॥९ ॥

हे इन्द्र ! जब उशना ऋषि ने अपने बल से तेरे बल का वर्धन किया है और बढ़े हुए तेरे बल ने अपनी तीक्ष्णता से द्युलोक और पृथ्वी लोक को डराया, हे मनुष्यों से स्तुत्य इन्द्र ! अन्नादि से पूर्ण तुझे संकल्प मात्र से जुड़ जाने वाले तथा वायु जैसे वेग वाले घोड़े यश की ओर ले आये ॥१० ॥

इन्द्र जब उशना के साथ आनन्दित होता है, तब वह दुष्टों पर अपना शासन भी करता है। वीर इन्द्र ने मेघ से जलप्रवाह को प्रेरित किया और शुष्ण नाम के असुर के बड़े-बड़े दुर्गों को तोड़ा है ॥११ ॥

अत्यन्त महान्, बलवान्, स्वयं प्रकाशमान और यथार्थ बलशाली इन्द्र के लिए हम स्तुति करते हैं। हे इन्द्र ! इस संग्राम में हम वीर बनते हुए, पुत्रादि के साथ तेरे आश्रम में रहें ॥१५ ॥

१/५२ सूक्त में भी आङ्गिरस ऋषि ने कहा -

जब सोम रस रूपी अन्न से प्रशंसित होते हुए इन्द्र ने जलों को बांध कर रखने वाले वृत्र को मारा और जल को प्रवाहित किया, अनेक प्रकार से संरक्षण करने वाले उस इन्द्र ने जलप्रवाहों में पर्वत के समान स्थिर रहकर वृद्धि और बल को प्राप्त किया ॥२ ॥

हे उत्तम कर्म करने वाले इन्द्र ! तूने घोड़ों से युक्त होकर मनुष्यों के हित के लिए जल की वृष्टि करने के लिए अपनी किरणों से वृत्र को मारा तथा अपनी भुजाओं में अत्यन्त कठोर वज्र को धारण किया तथा देखने के लिए सूर्य को द्युलोक में स्थापित किया ॥८ ॥

मनुष्यों ने डर कर बड़े-बड़े स्तोत्रों का गान किया, जो सुख देने वाले, बलदायक, आह्लादकारी तथा स्वर्ग की प्राप्ति कराने वाले हैं और मनुष्यों की रक्षा के लिए युद्ध करने वाले, मनुष्यों की सेवा करने वाले तथा द्युलोक की रक्षा करने वाले हैं, ऐसे मरुतों ने इन्द्र की सहायता की ॥९ ॥

हे इन्द्र! सोम के आनन्द से आनन्दित तेरे वज्र ने द्युलोक और पृथिवी लोक को पीड़ित करने वाले वृत्र को मार डाला (वृत्र का सिर काट डाला), तब बलवान् द्युलोकवासी भी वृत्र की घोर गर्जना से कांपने लगे ॥१० ॥"

१/५३ सूक्त में सव्य आङ्गिरस ऋषि इन्द्र की स्तुति करते हैं - "हम विवस्वान् के यज्ञ में शक्तिशाली इन्द्र के लिए उत्तम स्तुति करते हैं, इन्द्र की प्रशंसा करते हैं। वह इन्द्र शीघ्र ही धन को वैसे ही प्राप्त कर लेता है, जैसे चोर सोते हुए लोगों के धन को शीघ्र ही उठा ले जाता है। धन देने वालों की बुरी स्तुति इन्द्र को आनन्दित नहीं करती है ॥१ ॥

हे इन्द्र! तू इन तेजों से तथा सोम रसों से तृप्त गायें और घोड़े दे कर हमारी दरिद्रता को समाप्त करता है। हम अच्छे मन वाले उस इन्द्र को सोम रसों से तृप्त करके शत्रुओं को नष्ट करते हुए, शत्रुरहित होकर अन्न से आनन्दित होने वाला करें ॥४ ॥

हे इन्द्र! तूने अतिथिग्व ऋषि के मार्ग को बाधा पहुंचाने वाले करंज और पर्णय नाम के असुरों को अपने तीक्ष्ण शस्त्र से मारा तथा सहायक के बिना ही तूने ऋजिश्वा के द्वारा घेरे हुए बंगृद नामक असुर के सैंकड़ों नगरों को तोड़ा ॥८ ॥

हे प्रसिद्ध इन्द्र! तूने किसी सहायक के बिना ही सुश्रवा नाम के राजा से युद्ध करने के लिए आये हुए बीस राजाओं को तथा उनके इन साठ तथा निन्यानवे हजार सैनिकों को रथ के कठिन चक्र से मार डाला ॥९ ॥

हे इन्द्र! अपने संरक्षण से सुश्रवा की रक्षा की तथा अपने पालन के साधनों से तूर्वयाण की रखा की, तूने महान्, तरुण इस राजा के लिए कुत्स, अतिथिग्व और आयु को वश में किया ॥१० ॥

हे इन्द्र! हम देवताओं के द्वारा सुरक्षित तेरे मित्र हैं, ऐसे हम अत्यन्त सुख वाले बने। तेरी कृपा से हमारे उत्तम सन्तान हों, हम दीर्घ तथा उत्तम आयु को धारण करते हुए तुझे यश से सन्तुष्ट करते हैं॥" ॥११ ॥

१/५४ सूक्त में सव्य आंगिरस स्तुति करते हैं - हे इन्द्र! जब तू मायावी असुर की सेना को तीक्ष्ण किये गये वज्र को उत्साहपूर्वक हाथ में पकड़ कर, प्रहार करके मारता है, तब विशाल द्युलोक के ऊपर क्रोध करता हो, ऐसा दिखाई देता है। हे इन्द्र! तू अपने बल से शम्बर को मारता है ॥४ ॥

हे इन्द्र! तब तूने सेना के रहते हुए भी गर्जनापूर्वक अपने वज्र से लम्बी-लम्बी सांसें लेते हुए शुष्ण के सिर पर प्रहार किया। अतः अपने बल से युक्त, अपने मन से ही अनादि काल से आज तक शत्रुओं का संहार करता आ रहा है। इसलिए इन्द्र ही सर्वोपरि है, उसका कोई शासक नहीं है ॥५ ॥

शुभ कर्मों के कर्ता हे इन्द्र ! तूने संग्राम के प्रारम्भ हो जाने पर नर्य (नेता), तुर्वश (अपने यश को फैलाने वाले) और यदु (गतिशील) मनुष्य की रक्षा की है। तूने वय्य कुलोत्पन्न तुर्वीति की रक्षा की है। तूने रथ और एतश की रक्षा की है तथा तूने असुरों के निन्यानवे नगरों को तोड़ा है ॥६ ॥

जलप्रवाह का नियन्त्रक अन्धकार अनेकों पर्व वाले वृत्र के पेट में जलों को रोक कर बैठ गया, तब इन्द्र ने वृत्र द्वारा रोके हुए, अनुकूलता से चलने वाले इन सभी जलप्रवाहों को नीचे गिराया, जल को प्रवाहित किया ॥१० ॥

१/५६ सूक्त में सव्य आङ्गिरस कहते हैं - वह इन्द्र शत्रुओं को मारने वाला तथा श्रेष्ठ है। वह इन्द्र जिस उत्साह के साथ मायावी शुष्ण असुर को कारागार में रस्सियों से बाँधता है, वह इन्द्र लोहमय कवच को धारण करता है, शत्रुओं को मारने वाला है, ऐसे इन्द्र का प्रशंसनीय, शत्रुसंहारक बल युद्ध में पर्वतशिखर के समान प्रकाशित होता है ॥३ ॥

१/५७ में सूक्त में सव्य आङ्गिरस ऋषि कहते हैं - हे वज्रधारी इन्द्र ! तूने अपने वज्र से महान् बलशाली उस मेघ के टुकड़े-टुकड़े कर दिये और बंधे हुए जलप्रवाह को बहने के लिए बाहर निकाला है। यह सत्य है कि एक मात्र तू ही समस्त बलों को धारण करता है ॥६ ॥

गृत्समदो दस्युवधं कीर्तयन्निन्द्रं महयति।

ऋ.२/११ 'सृजो महीरिन्द्र या अपिन्वः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः।
अमर्त्यं चिद्दासं मन्यमानमवाभिनदुक्थैर्वावृधानः ॥२ ॥
शुभ्रं नु ते शुष्मं वर्धयन्तः शुभ्रं वज्रं बाह्वोर्दधानाः।
शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मे दासीर्विशः सूर्येण सह्याः ॥४ ॥
गुहा हितं गुह्यं गूळहमप्स्वपीवृतं मायिनं क्षियन्तम्।
उतो अपो द्यां तस्तभ्वांसमहन्नहिं शूर वीर्येण ॥५ ॥
इन्द्रो महाँ सिन्धुमाशयानं मायाविनं वृत्रमस्फुरन्निः।
अरेजेतां रोदसी भियाने कनिक्रदतो वृष्णो अस्य वज्रात् ॥९ ॥
अरोरवाद्वृष्णो अस्य वज्रोऽमानुषं यन्मानुषो निजूर्वीत्।
नि मायिनो दानवस्य माया अपादयत्पिवान्त्सुतस्य ॥१० ॥
धिष्वा शवः शूर येन वृत्रमवाभिनद्दानुमौर्णवाभम्।
आपवृणोर्ज्योतिरार्याय नि सव्यतः सादि दस्युरिन्द्र ॥१८ ॥
सनेम ये त ऊतिभिस्तरन्तो विश्वाः स्पृध आर्येण दस्यून्।
अस्मभ्यं तत्त्वाष्ट्रं विश्वरूपमरन्धयः साख्यस्य त्रिताय" ॥१९ ॥

ऋ.२/१२ "यो हत्वाहिमरिणात्सप्तसिन्धून्यो गा उदाजदपधा वलस्य।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक् समत्सु स जनास इन्द्रः ॥३॥
येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः।
श्वघ्नीव यो जिगीवां लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥४॥
यः शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान।
यः शर्धते नानुदाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥१०॥
यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥११॥
यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत्सर्तवे सप्त सिन्धून्।
यो रौहिणमस्फुरद्वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥१२॥
यःशंबरं पर्य्यतरत् कसीभिर्यो चारुकास्नापिबत् सुतस्य।
अन्तर्गिरौर्यजमानं बहुजनं यस्मिन्नामूर्च्छत् स जनास इन्द्रः ॥१३॥
यःसोमकामो हर्य्यश्वः सूरिर्यदस्माद् रेजन्ते भुवनानि विश्वा।
यो जघान शंबरं यश्च शुष्णं य एकवीरः स जनास इन्द्रः" ॥१४॥
ऋ.२/१४ "अध्वर्यवो यो अपो वव्रिवांसं वृत्रं जघानाशन्येव वृक्षम्।
तस्मा एतं भरत तद्वशायँ एष इन्द्रो अर्हति पीतिमस्य ॥२॥
अध्वर्यवो यो दृभीकं जघान यो गा उदाजदप हि बलं वः।
तस्मा एतमन्तरिक्षे न वातमिन्द्रं सोमैरोर्णुत जूर्न वस्त्रैः ॥३॥
अध्वर्यवो य उरणं जघान नव चख्वांसं नवतिं च बाहून्।
यो अर्बुदमव नीचा बबाधे तमिन्द्रं सोमस्य भृथे हिनोत ॥४॥
अध्वर्यवो यः स्वश्नं जघान यः शुष्णमशुषं यो व्यंसम्।
वः पिप्रुं नमुचिं यो रुधिक्रां तस्मा इन्द्रायान्धसो जुहोत ॥५॥
अध्वर्यवो यः शतं शम्बरस्य पुरो बिभेदाश्मनेव पूर्वीः।
यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रामपावपद्भरता सोममस्मै ॥६॥
अध्वर्यवो यः शतमा सहस्रं भूम्या उपस्थेऽवपज्जघन्वान्।
कुत्सस्यायोरतिथिग्वस्य वीरान्न्यवृणग्भरता सोममस्मै" ॥७॥
२/१५ "प्र घा न्वस्य महतो महानि सत्या सत्यस्य करणानि वोचम्!
त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्यास्य मदे अहिमिन्द्रो जघान ॥१॥
स्वप्नेनाभ्युप्या चुमुरिं धुनिं च जघन्य दस्युं प्रदभीतिमावः।
रम्भी चिदत्र विविदे हिरण्यं सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार" ॥९॥

२/१९ "स सुन्वत इन्द्रः सूर्यमा देवो रिणङ्मर्त्याय स्तवान्।
आ यद्रयिं गुहदवद्यमस्मै भरदंश नैतशो दशस्यन्॥५॥
स रन्धयत्सदिवः सारथये शुष्णमशुषं कुयवं कुत्साय।
दिवोदासाय नवतिं च नवेन्द्रः पुरो व्यैरच्छम्बरस्य"॥६॥
२/२० "सो अङ्गिरसामुचथा जुजुष्वान्ब्रह्मा तूतोदिन्द्रो गातु मिष्णन्।
मुष्णन्नुषसः सूर्येण स्तवानश्नस्य चिच्छिश्नथत्पूर्व्याणि॥५॥
स ह श्रुत इन्द्रो नाम देव ऊर्ध्वो भुवन्मनुषे दस्मतमः।
अव प्रियमर्शसानस्य साह्वाञ्छिरो भरद्दासस्य स्वधावान्॥६॥
स वृत्रहेन्द्रः कृष्णयोनीः पुरन्दरो दासीरैरयद्वि।
अजनयन्मनवे क्षामपश्च सत्रा शंसं यजमानस्य तूतोत्॥७॥
तस्मै तवस्य १ मनु दायि सत्रेन्द्राय देवेभिरर्णसातौ।
प्रति यदस्य वज्रं बाह्वोर्धुर्हत्वी दस्यून्पुर आयसीर्नितारीत्"॥८॥

दस्युओं का वध करने के कार्य की प्रशंसा करते हुए गृत्समद द्वारा इन्द्र की महिमा का गान

(२/११) "हे बलवान् हन्द्र ! अहि नाम के असुर (मेध, जो वर्षा को रोककर रखता है) से प्रतिबन्धित जिन श्रेष्ठ महान् जलों को तुमने समृद्ध बनाकर मुक्त किया है। स्तोत्रों से बढ़ते हुए, अहंकारी, न मरने वाले दास को भी तुमने नष्ट कर दिया है। अर्थात् अहि नामक मेघ जो जल की वृष्टि में बाधक हैं, उनको विद्युत् रूप इन्द्र छिन्न-भिन्न करके वृष्टि में सहायक होता है। वर्षा का जल सूर्य की किरणों से पूर्ण होने के कारण पुष्टिकारक है, समृद्ध है॥२॥

हे इन्द्र ! हम तेरे स्वच्छ ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले बनें तथा तेरे हाथ में देदीप्यमान वज्र धारण करने में सहायक बनें। हे इन्द्र ! तू वृद्धि को प्राप्त होता हुआ हमारी कष्टकारिणी असुरजाति की प्रजा को नष्ट कर दे। (अर्थात् इन्द्र वर्षा करके समस्त पाप कर्म के प्रवर्तक दूषित कर्मों को नष्ट कर देता है)॥४॥

हे इन्द्र ! तुम उस अहि असुर का संहार कर दो, जो गुफा में छिपे गुप्त जल (पर्वतों और बादलों में छिपे जल को) रोक कर रखता है। ऐसे अहि को अपने पराक्रम से नष्ट कर दो, जो मायायुक्त होता हुआ द्युलोक को और गुप्त जल को रोक कर रखता है। (अहि नाम का मेघ बादलों में छिपे जल की वृष्टि में बाधक होता है)।।५॥

इन्द्र ने जल का मार्ग रोक कर सोये हुए मायावी कपट-नीति-कुशल तथा विशाल-काय वृत्र को मार दिया। सनसनाते हुए वज्र की घोर आवाज से द्यावा-पृथिवी, दोनों लोक काँपने लग गये॥९॥

प्रजा को कष्ट देने वाले वृत्र को जब प्रजा के संरक्षक इन्द्र ने मार डाला, तब इस शूरवीर इन्द्र का घोर वज्र घोर ध्वनि करने लगा। सोम का पान करने वाले इन्द्र ने कपटी वृत्र के समस्त कपट पूर्ण कर्मों को दूर कर दिया॥१०॥

हे बलवान् इन्द्र! जैसे मकड़ी का जाला चारों ओर फैल जाता है, वैसे चारों ओर फैले वृत्रासुर को जिस शक्ति से तूने मारा था, वह शक्ति तू धारण कर। तूने उस शक्ति से वृत्र के टुकड़े-टुकड़े किये और सज्जनों को (आर्यों को) प्रकाश प्रदान किया, जिससे तूने असुरों को विपरीत दिशा में पहुँचा दिया था॥१८॥

हे इन्द्र! हम, जो तेरे भक्त हैं, वे तेरी सहायता से, तेरे द्वारा रक्षित, समस्त दस्युओं की ओर दुष्टों की सेना को पार करते हुए, धन प्राप्त करें। हे इन्द्र! तूने त्रित के साथ मित्रता के लिए उस त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप को हमारे वश में कर दिया था॥१९॥"

ऋग्वेद के ही २/१२ सूक्त में गृत्समद इत्यादि ऋषियों ने कहा - "हे लोगों! जिस इन्द्र ने बल नाम के असुर को मार कर उसके द्वारा छिपाई हुई गायों को मुक्त किया, जिसने अहि नाम के असुर (मेघ) को मारकर सातों नदियों में जल प्रवाहित किया, जिसने दो पत्थरों के बीच अग्नि (विद्युत) को उत्पन्न किया और जो संग्राम में शत्रु का संहारक है, वही इन्द्र है॥३॥

हे लोगो! जिसने इन समस्त लोकों को चलायमन बनाया है, जिसने दास वर्ण (असुर जाति को अधम लोकों में प्रतिष्ठित किया है, जिसने अपने लक्ष्य, अभीष्ट को जीत कर प्राप्त कर लिया है, जिसने शत्रु के पुष्टिकारक द्रव्यों को उसी प्रकार छीन लिया है जैसे कुत्तों से शिकार करने वाला व्याध शिकार को छीन लेता है॥४॥

हे लोगों! जिस इन्द्र ने बड़े-बड़े अपराधियों को मारा है। इन्द्र ने अपने हिंसक वज्र से विरोधी शत्रुओं को अपने वज्र से मारा है। जो इन्द्र अहंकारियों का अहंकार नाश करता है और जो दस्युओं का संहारक है, वह इन्द्र है॥१०॥

हे लोगो! जिसने पर्वतों में छिपे हुए शंबर को चालीसवें शरद् (वर्ष) में ढूँढ लिया, जिसने बलशाली सोते हुए दानव अहि को मारा, वह इन्द्र है॥११॥

हे लोगों! इन्द्र ने सात किरणों को धारण किया है, जो बलवान् है, जो ओजस्वी है, ऐसे इन्द्र ने सातों नदियों को बहाया है। जिस इन्द्र ने हाथ में वज्र धारण करके द्यौ पर चढ़ते हुए रौहिण असुर को नष्ट किया है, वह इन्द्र है॥१२॥

जिस इन्द्र ने शम्बर पर विजय प्राप्त की, जो विशिष्ट आयुध से युक्त होता हुआ सुन्दर दिखाई देता है, जिसने इस कसी से सोम का पान किया है, जो इस आयुध से पर्वत पर ऋत्विजों से युक्त यजमान को मूर्च्छित नहीं कर सका, हे लोगों! वह इन्द्र है॥३॥

जो इस सृष्टि का प्रेरक है, वह इन्द्र निरन्तर सोम की कामना करता है, जिसके वायु सदृश घोड़े इसे दूर दूर तक ले जाते हैं, जिससे ये समस्त लोक कांपते हैं, जिसने शम्बर का वध किया, जिसने शुष्ण का वध किया, जो इस सम्पूर्ण विश्व में एकमात्र (सर्वाधिक) वीर है, हे लोगों! वह इन्द्र है ॥४॥

२/१४ हे अध्वर्यु लोगों! इस इन्द्र ने अपने वज्र से जल के बाधक वृत्रासुर को वैसे ही मार दिया जैसे बिजली वृक्ष को नष्ट कर देती है। यह इन्द्र सोम पीने की योग्यता रखता है और वही इसकी इच्छा करता है अतः आप इसे सोम प्रदान करो ॥२॥

हे अध्वर्यु लोगों! जिसने दृभीक और वल नाम के असुर को मार कर गायों को मुक्त किया है। इन्द्र ने वल के घेरे को तोड़ा है। जैसे आकाश में आयु को स्थापित किया जाता है वैसे ही इस इन्द्र के लिए सोम स्थापित करो। इस इन्द्र को सोम से पूरी तरह ढक दो जैसे कोई निर्बल व्यक्ति वस्त्र से अपने तन को ढकता है ॥३॥

हे अध्वर्यु लोगों! जिस इन्द्र ने उरण को उसकी नौ आँखें और नब्बे भुजाओं को नष्ट करके मारा, जिसने अर्बुद को नीचे गिराया, उस इन्द्र को सोम का पान करने के लिए प्रेरित करो ॥४॥

हे अध्वर्यु लोगों! जिसने अश्न को मारा, जिसने न मरने योग्य शुष्ण को मारा, जिसने बाहुरहित अहि को मारा, जिसने पिप्रु, नमुचि और रूधिक्रा नाम के राक्षसों को मारा, ऐसे इन्द्र के लिए अन्न का हवन करो ॥५॥

हे अध्वर्यु लोगों! जिसने घोर वर्ची के सैकड़ों, सहस्त्रों वीरों को मारकर भूमि पर गिरा दिया, जिसने पत्थर के समान कठोर वज्र से शम्बर असुर के सैकड़ो पुराने नगरों को नष्ट कर दिया, उस इन्द्र के लिए सोम प्रदान करो ॥६॥

हे अध्वर्यु लोगों! जिसने इस पृथ्वी पर सैंकड़ों, सहस्त्रों असुरों को मार कर चारों ओर बिछा दिया, जिसने कुत्स, आयु और अतिथिग्व के वीरों को चारों ओर बिछा कर पतित किया, ऐसे इन्द्र के लिए सोम एकत्रित करो ॥७॥

२/१५-वह इन्द्र सत्यरूप है, जिसके समस्त कर्म महान् हैं, जिनको मैं कहता हूँ। इस इन्द्र ने तीन पात्रों में सोम का पान किया और उसके उत्साह में अहि का संहार किया ॥१॥

गृत्समद कहते हैं हे इन्द्र! तूने दुष्ट चुमुरि ओर धुनि नाम के राक्षसों को निद्रा-मग्न करके मार दिया और दभीति की रक्षा की, और रम्भी (द्वारपाल) ने धन प्राप्त किया। इन्द्र ने ये सभी कार्य सोम से प्राप्त उत्साह के कारण किये ॥९॥

ऋग्वेद के सूक्त संख्या २/१९ में ऋषि गृत्समद कहते हैं-"जैसे पिता अपने पुत्र को गुप्त धन का अंश प्रदान करता है वैसे ही इन्द्र को एतश अपना गुप्त धन देता है, तब प्रशंसित और तेजस्वी इन्द्र ने यज्ञकर्ताओं के लिए सूर्य को प्रकाशित किया ॥५॥

उस तेजस्वी इन्द्र ने अपने सारथि कुत्स के लिए शुष्ण, अशुष, कुयव नाम के असुरों को मारा, इसी इन्द्र ने दिवोदास के लिए शम्बर असुर को मार कर उसके निन्यानवें नगरों का ध्वंस किया ॥६ ॥

द्वितीय मण्डल के बीसवें सूक्त में गृत्समद कहते हैं-"वह इन्द्र अंगिरसों की प्रार्थना सुनता है और उन्हें अच्छे मार्ग पर प्रेरित करता है, ज्ञान में वृद्धि करता है। इन्द्र प्रातःकाल सूर्योदय के समय उषाओं को नष्ट कर देता है और अश्नासुर के पुराने नगरों को नष्ट कर देता है (रात्रि का सूर्योदय करके समाप्त करता है) ॥५ ॥

तेजस्वी, विचारशील, प्रसिद्ध, यशस्वी इन्द्र विचारशील मनुष्यों की रक्षा के लिए सदैव तत्पर रहता है। जो दास नाम के असुर दूसरों को कष्ट देते हैं, उनको शत्रुसंहर्ता बलवान् इन्द्र ने मस्तक का छेदन करके मार डाला ॥६ ॥

वृत्र को मारने वाले, शत्रुओं के नगरों का ध्वंस करने वाले इन्द्र ने कृष्णासुर की स्त्रियों का संहार किया। मनुष्यों के लिए भूमि और जल उत्पन्न किया, वह इन्द्र यजमान के प्रशंसनीय कर्म को बढावे ॥७ ॥

देवों ने उस इन्द्र को संग्राम के समय एकत्रित होकर शक्ति प्रदान की, इन्द्र ने अपनी भुजाओं में वज्र धारण करके दस्युओं का संहार करके, उनकी लोहनिर्मित नगरियों को ध्वंस कर दिया ॥८ ॥

वामदेवः

वामदेवो दस्युवधमनुकीर्तयन्निन्द्रमभिनन्दयामास।

ऋ.४/१६ "आदस्युघ्ना मनसा याह्यस्तं भुवत्ते कुत्सः सख्ये निकामः।
स्वे योनौ निषदतं सरूपावि वां चिकित्सदृतचिद्ध नारी ॥१० ॥
यासि कुत्सेन सरथमवस्युस्तोदो वातस्य हर्योरीशानः।
ऋज्रा वाजं न गध्यं युयूषन्कविर्यदहन्पार्याय भूषात् ॥११ ॥
कुत्साय शुष्णमशुषं निबर्हीः प्रपित्वे अह्नः कुयवं सहस्रा।
सद्यो दस्यून्प्रमृण कुत्स्येन प्रसुरश्चक्र वृहतादभीके ॥१२ ॥
त्वं पिप्रुं मृगयं शूशुवांसमृजिश्वने वैदथिनाय रन्धीः।
पञ्चाशत्कृष्णा नि वपः सहस्रात्कं न पुरो जरिमा विदर्दः" ॥१३ ॥
ऋ.४/१७ "त्वं महाँ इन्द्र तुभ्यं ह क्षा अनु क्षत्रं मंहना मन्यत द्यौः।
त्वं वृत्रं शवसा जघन्वान्त्सृजः सिन्धूँरहिना जग्रसानान् ॥१ ॥
त्वमध प्रथमं जायमानोऽमे विश्वा अधिया इन्द्र कृष्टीः।

त्वं प्रति प्रवत आशयानमहिं वज्रेण मघवन्वि वृश्चः ॥७॥
अयं चक्रमिषणत् सूर्यस्य न्येतशं रीरमत्ससृमाणम्।
आ कृष्ण ईं जुहुराणो जिघर्ति त्वचो बुध्ने रजसो अस्य योनौ" ॥१४॥
ऋ.४/१८ "ममच्चन ते मघवन्व्यंसो निविविध्वाँ अप हनू जघान।
अधा निविद्ध उत्तरो बभूवाञ्छिरो दासस्य संपिणग्वधेन" ॥९॥
ऋ.४/१९ "अतृप्णुवन्तं वियतमबुध्यमबुध्यमानं सुषुपाणमिन्द्र।
सप्त प्रति प्रवत आशयानमहिं वज्रेण विरिणा अप्रवन् ॥३॥
अक्षोदयच्छवसा क्षाम बुध्नं वार्ण वातस्तविषीभिरिन्द्रः।
दृळान्यौभ्नादुशमान ओजोऽवाभिनत्ककुभः पर्वतानाम् ॥४॥
अभि प्र दद्रुर्जनयो न गर्भं रथा इव प्रययुः साकमद्रयः।
अतर्पयो विसृत उब्ज ऊर्मीन्त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥५॥
त्वं महीमवनिं विश्वधेनां तुर्वीतये वय्याय क्षरन्तीम्।
अरमयो नमसैजदर्णः सुतरणाँ अकृणोरिन्द्र सिन्धून्' ॥६॥
इन्द्रस्य वामदेवः प्रियतम आसीदयं हि देवस्य।
इन्द्रस्य वामदेवः प्रियतम आसीदयं हि देवस्य।
इन्द्रस्य मूर्तिपूजां प्रचारयामास लोकेऽस्मिन् ॥१॥
ऋक्संहितातुरीयकमण्डलसूक्ते चतुर्विंशे।
दशमच्चैन्द्रप्रतिमां व्यक्रीणाद् धेनुभिर्दशभिः ॥२॥
सर्वप्रथमं मन्ये देवयुगे वामदेव एवायम्।
देवप्रतिमापूजां प्रचारयामास मानुषे लोके ॥३॥
यद्यपि ततोऽपि पूर्व सारस्वतसूर्य्यसदनेऽभूत्।
अपि सूर्य्यचक्रमूर्त्तेरुपासनारम्भ इत्याहुः ॥४॥
विज्ञानार्था सेयं किन्त्वासीत् सूर्य्यचक्रस्य।
दृष्टिपरीक्षोपासा देवप्रतिमार्चना नैवम् ॥५॥
योगस्त्रिधा क्रियाया भक्तेर्ज्ञानस्य भेदेन।
भक्तेस्ते चत्वारो हठलयसन्मन्त्रराजयोगाख्याः ॥६॥
देवप्रतिमोपासा प्रकल्पिता मन्त्रयोगविधा।
मन्त्राराधितदेवः प्रत्यासन्नोऽवति प्रायः ॥७॥
"देवानामिदवो महत् तदावृणीमहे वयम्।
वृष्णामस्मभ्यमूतये" ॥ (ऋ.८/८३/१)
उत्कृष्टं बहुमूल्यं विक्रीणन् द्रव्यमल्पमूल्येन।

पूजाफलोपलब्धौ समयं प्रत्यर्पणाय चक्रे सः ॥८॥
अत एवेन्द्रस्तमृषिं महयितुमिव वामदेवस्य।
प्रमहोत्सवेऽभिगरमनु वक्तुं प्रतिगरमिहान्तरोत्तस्थौ ॥९॥

वामदेव

दस्युओं का वध करने पर प्रशंसा करते हुए वामदेव द्वारा इन्द्र का अभिनन्दन

चतुर्थ मण्डल में वामदेव स्तुति-मन्त्रों से अभिनन्दन करते हैं-(४/१६)-हे इन्द्र ! तू दस्युओं को मारने की इच्छा रखते हुए हमारे निवास पर आ, तेरी इच्छा करने वाला कुत्स तुझसे मित्रता करे, समान स्वभाव वाले तुम दोनों (इन्द्र और कुत्स) एक साथ रहो, तब सत्य और ज्ञान से युक्त गृहिणी तुम्हारा सत्कार करे ॥१०॥

जब ज्ञानी कुत्स योग्य बल को प्राप्त करके, सरलता से चलने वाले घोड़ो को जोत कर रथ के द्वारा संकट से पार होने में तत्पर होता है, तब वायुवेग के समान घोड़ों का स्वामी, बुद्धिमान्, शत्रुओं को मारने वाला, कुत्स की रक्षा करने वाले हे इन्द्र ! तू कुत्स के साथ बैठ कर एक साथ चलता है ॥११॥

हे इन्द्र ! तूने कुत्स की रक्षा के लिए महाबलशाली शुष्ण दैत्य का संहार किया, तथा पूर्वाह्न में हे इन्द्र ! तूने हजारों सैनिकों के साथ कुयव को मारा तथा अनेक दस्युओं को शीघ्र ही अपने वज्र से मार दिया। उस युद्ध में तूने सूर्यचक्र (सूर्य के समान तेजस्वी शस्त्रास्त्रों) को नष्ट कर दिया ॥१२॥

हे इन्द्र ! तूने विदथि के पुत्र ऋजिश्वी के लिए पिप्रु नाम के असुर का संहार किया, तथा बलवान् मृगया नामक राक्षस को मारा। इन्द्र ने पचास हजार कृष्णवर्ण असुरा-का संहार किया। हे इन्द्र ! तूने शत्रु के नगरों को उसी तरह तोड़ दिया जैसे लोग जीर्ण कपड़ों को फाड़ डालते हैं ॥१३॥

४/१७ में वामदेव कहते हैं- हे इन्द्र ! तू महान् है, यह पृथ्वी तेरी ही महानता से चलायमान है। यह महिमामय द्यौः भी तेरी महत्ता स्वीकार करता है। तूने अपने बल से वृत्र का संहार किया तथा अहि के द्वारा रोका हुआ जल मुक्त करके नदियाँ बहायी ॥१॥

हे इन्द्र ! उत्पन्न होते ही तूने सबसे पहले युद्ध में समस्त प्रजाओं को धारण किया, तूने प्रवाहित जल को रोक कर शयन करने वाले अहि नामके दैत्य का वज्र से संहार किया ॥७॥

इस इन्द्र ने सूर्य-चक्र को प्रेरणा दे कर युद्ध के लिए आते हुए एतश दैत्य को लौटा दिया (चारों ओर छाये अन्धकार को नष्ट किया) कुटिल गति वाले काले मेघ में,

जो तेजस्वी जल का मूलभूत स्थान है, उस अन्तरिक्ष में इन्द्र को समाहित रखता है (दो काले मेघों में घर्षण से विद्युत् उत्पन्न होती है वही इन्द्र है) ॥१४॥

"हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र! व्यंस नामक असुर ने एक बार तुझ पर आक्रमण करते हुए तेरी ठोड़ी पर प्रहार किया, जिसके फलस्वरूप तू और भी अधिक बलशाली हुआ तब तूने उस दास के मस्तक को काट डाला॥"(४/१८/९)

४/१९ में वामदेव गौतम स्तुति करते हैं- हे इन्द्र! अतृप्त अबुध्य, स्वयं कुछ न जानने वाले, सोने की इच्छा रखने वाले (असुर) सात नदियों को घेर कर बैठने वाले तथा अन्तरिक्ष में रहने वाले अहि नाम के असुर को हे इन्द्र! तूने अपने वज्र से छिन्न-भिन्न कर दिया॥३॥

इन्द्र ने द्युलोक और पृथ्वीलोक को उसी तरह हिला दिया जैसे वायु से जल में हलचल हो जाती है। बलशाली इन्द्र ने अत्यन्त शक्तिशाली शत्रुओं का भी संहार कर दिया तथा पर्वतों के पंखो को काट दिया॥४॥

हे इन्द्र! जैसे मातायें अपने गर्भ की रक्षा करती हैं, वैसे ही ये शस्त्र तेरी रक्षा करते हैं। रथों के समान युद्ध में साथ चलने वाले शस्त्र तेरी रक्षा करते हैं। हे इन्द्र! तूने मेघों को फोड़ कर, जलों को प्रेरित करके नदियों को बहाया है॥५॥

हे इन्द्र! तूने तुर्वीति और वय्य के लिए, सबको तृप्त करने वाली, धान्य देने वाली विशाल पृथ्वी को प्रवाहयुक्त जल और अन्न से तृप्त किया है। हे इन्द्र! तूने नदियों को सरलता से पार करने योग्य बनाया है॥६॥

वामदेव इन्द्र देव के परमप्रिय थे, इन वामदेव ने इस लोक में इन्द्र की मूर्ति की पूजा का प्रचार किया॥१॥

ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल के चौबीसवें सूक्त की दसवीं ऋचा में इस इन्द्र की मूर्ति को दस गायों के बदले बेचा ऐसा वर्णन है॥२॥

मैं मानता हूँ कि देवयुग में सर्वप्रथम इन्हीं वामदेव ऋषि ने ही मनुष्यलोक में देव-प्रतिमा (मूर्ति) पूजा का प्रचार किया॥३॥

यद्यपि ऐसा कहा जाता है कि इससे भी पहले सरस्वती नगर में सूर्यसदन में सूर्य-मण्डल की मूर्ति की उपासना प्रारम्भ की गई थी॥४॥

परन्तु सूर्यचक्र की यह उपासना दृष्टिपरीक्षा द्वारा सूर्यमण्डल के सम्बन्ध में विश्लेषणात्मक विज्ञान के लिए की गई थी न कि यह सूर्य देव की मूर्ति की पूजा के लिए॥५॥

क्रिया, भक्ति और ज्ञान के भेद से योग तीन प्रकार का है, तथा भक्ति के चार भेद हैं-हठ (विशेष भावचिन्तन की रीति), लय (गहन एकाग्रता अथवा अनन्य भक्ति), सन्मन्त्र एवं राजयोग (हठयोगादि कठोर भक्ति मार्ग से भिन्न, राजाओं द्वारा भक्ति का एक सरल साधन)॥६॥

देवप्रतिभा की उपासना मन्त्रयोग-विधि से निश्चित की गई। मन्त्र द्वारा अराधना करने पर प्रायः देवता हृदय के निकट आ जाते हैं, प्रसन्न हो जाते हैं ॥७ ॥

वेद में भी लिखा है-"यह अग्नि देवताओं में निश्चय ही महान् है। इसलिए समस्त देवों में से हम उसी का चयन करते हैं। सबल व्यक्ति के समान यह अग्नि हमारी रक्षा के लिए उद्यत रहता है ॥"

श्रेष्ठ और बहुमूल्य मूर्ति को अल्पमूल्य में बेचते हुए वह पूजा द्वारा फल की प्राप्ति होने पर मूर्ति को वापस लौटाने की प्रतिज्ञा करता था ॥८ ॥

अत एव इन्द्र ऋषि वामदेव का महत्त्व-वर्धन करने के लिए उस प्रमहोत्सव में प्रार्थना के पश्चात् धन्यवादस्वरूप प्रत्युत्तर के लिए खड़े हुए ॥९ ॥

वामदेवं प्रतीन्द्रः स्वं चरितमनुवर्णयति।

ऋ.४/२६ "अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जेऽहं कविरुशना पश्यता मा ॥१ ॥
अहं भूमिमददामार्यायाऽहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन् ॥२ ॥
अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं नवसाकं नवतीः शम्बरस्य।
शततमं वेश्यं सर्वताता दिवोदासमतिथिग्वं यदावम्" ॥३ ॥
अथवा देवेन्द्रस्य व्याहृतिमयमेव वामदेव ऋषिः।
प्रतिनिधितयेन्द्रभावं स्वस्मिन्नारोप्य वक्ति स्म ॥१ ॥

वामदेव के प्रति इन्द्र द्वारा अपना चरित्र-वर्णन

४/२६ इन्द्र कहते हैं-"मैं इन्द्र अर्थात् आत्मा ही मनु हूँ, मैं ही सूर्य हूँ, मैं ही बुद्धिमान् कक्षीवान् ऋषि हूँ। मैंने ही अर्जुन के पुत्र कुत्स को समर्थ किया है, मैं ही दूरदर्शी उशना कवि हूँ, मुझे देखो ॥१ ॥

मैंने श्रेष्ठ पुरुषों के लिए भूमि प्रदान की है, मैंने दानशील पुरुषों के लिए जल की वृष्टि की है, मैं ही शब्द करते हुए जलों को आगे जाने के लिए प्रेरित करता हूँ और सभी देव मेरे ही संकल्पानुसार चलें ॥२ ॥

मैंने सरलतापूर्वक शम्बर नाम के असुर का संहार किया है और उसके निन्यानवें नगरों को एक साथ नष्ट कर दिया था तथा जब अतिथियों को गायों का दान करने वाले दिवोदास की रक्षा की, तब उसके लिए सौवें रहने योग्य नगर का निर्माण किया ॥३ ॥"

अथवा स्वयं वामदेव ऋषि ने ही देवराज इन्द्र के प्रतिनिधि रूप से स्वयं में इन्द्र भाव का आरोपण करके इन्द्र के इन वचनों को कहा है ॥१ ॥

पुनर्वामदेवोऽनुकीर्तयन्निन्द्रं महयति

ऋ.४/२८ "त्वा युजा तव तत्सोम सख्य इन्द्रो अपो मनवे सस्रुतस्कः।
अहन्नहिमरिणात्सप्त सिन्धूनपावृणोदपिहितेव खानि ॥१ ॥
त्वा युजा नि खिदत्सूर्यस्येन्द्रश्चक्रं सहसा सद्य इन्दो।
अधि ष्णुना बृहता वर्तमानं महो द्रुहो अप विश्वायु धायि ॥२ ॥
अहन्निन्द्रो अदहदग्निरिन्दो पुरा दस्यून्मध्यन्दिनादभीके।
दुर्गे दुरोणे क्रत्वा न यातां पुरू सहस्रा शर्वा नि बर्हीत् ॥३ ॥
विश्वस्मात्सीमधमाँ इन्द्र दस्यून्विशो दासीरकृणोरप्रशस्ताः।
अबाधेथाममृणतं नि शत्रूनविन्देथामपचितिं वधत्रैः" ॥४ ॥
ऋ. ४/३० "नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायाँ अस्ति वृत्रहन्।
नकिरेवा यथा त्वम् ॥१ ॥
सत्रा ते अनु कृष्टयो विश्वा चक्रेव वावृतुः।
सत्रा महाँ असि श्रुतः ॥२ ॥
विश्वे चनेदना त्वा देवास इन्द्र युयुधुः।
यदहा नक्तमातिरः ॥३ ॥
यत्रोत बाधितेभ्यश्चक्रं कुत्साय युध्यते।
मुषाय इन्द्र सूर्यम् ॥४ ॥
यत्र देवाँ ऋघायतो विश्वाँ अयुध्य एक इत्।
त्वमिन्द्र वनूँहन् ॥५ ॥
यत्रोत मर्त्याय कमरिणा इन्द्र सूर्यम्।
प्रावः शचीभिरेतशम् ॥६ ॥
किमादुतासि वृत्रहन् मघवन् मन्युमत्तमः।
अत्राह दानुमातिरः ॥७ ॥
एतद्घेदुत वीर्यमिन्द्र चकर्थ पौंस्यम्।
स्त्रियं यद्दुर्हणायुवं वधीर्दुहितरं दिवः ॥८ ॥
दिवश्चिद्घा दुहितरं महान्महीयमानाम्।
उषासमिन्द्र सम्पिणक् ॥९ ॥
अपोषा अनसः सरत्सम्पिष्टादह बिभ्युषी।
नि यत् सीं शिश्नथद्वृषा ॥१० ॥

एतदस्या अनः शये सुसम्पिष्टं विपाश्या।
ससार सीं परावतः ॥११॥
उत सिन्धुं विबाल्यं वितस्थानामधि क्षमि।
परि ष्ठा इन्द्र मायया ॥१२॥
उत शुष्णस्य धृष्णुया प्र मृक्षो अभि वेदनम्।
पुरो यदस्य सम्पिणक् ॥१३॥
उत दासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि।
अवाहन्निन्द्र शम्बरम् ॥१४॥
उत दासस्य वर्चिनः सहस्राणि शताऽवधीः।
अधि पञ्च प्रधीँरिव ॥१५॥
उत त्या सद्य आर्य्या सरयोरिन्द्र पारतः।
अर्णाचित्ररथावधीः ॥१८॥
शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत्
दिवोदासाय दाशुषे ॥२०॥
अस्वापयद्दभीतये सहस्रा त्रिंशतं हथैः।
दासानामिन्द्रो मायया" ॥२१॥

ऋ.४/३२ "प्र ते वोचाम वीर्या३ या मन्दसान आरुजः।
पुरो दासीरभीत्य ॥१०॥
ता ते गृणन्ति वेधसो यानि चकर्थ पौंस्या।
सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥११॥
सहस्रं व्यतीनां युक्तानामिन्द्रमीमहे।
शतं सोमस्य खार्यः ॥१७॥
सहस्रा ते शता सयं गवामा च्यावयामसि।
अस्मत्रा राध एतु ते ॥१८॥
दश ते कलशानां हिरण्यानामधीमहि।
भूरिदा असि वृत्रहन् ॥१९॥
भूरिदा भूरि देहि नो मा दभ्रं भूर्या भर।
भूरि घेदिन्द्र दित्ससि" ॥२०॥

पुनः वामदेव द्वारा इन्द्र की महिमा का गान

ऋग्वेद के ४/२८ सूक्त में वामदेव कहते हैं- "हे सोम! तेरी मित्रता होने पर इन्द्र ने तेरी सहायता से मनु के लिए (मनुष्यो के लिए) प्रवाहयुक्त जलों को उत्पन्न किया और बन्द द्वारों को खोल दिया॥१॥

हे सोम! इन्द्र ने तेरी सहायता से द्युलोक में चलने वाले सूर्यक्रम को शीघ्र ही बल के द्वारा अपने अधिकार में कर लिया। महान् द्रोही सूर्य के सर्वत्र विचरण करने वाले चक्र को अपने अधिकार में किया॥२॥

हे सोम! मध्याह्न से पहले ही युद्ध में इन्द्र ने शत्रुओं का संहार कर दिया और उन्हें अग्नि में जला दिया। कठिनाई से प्रवेश करने योग्य किले में छिपे रहने पर भी इन्द्र ने राक्षसों के हजारों नगरों को पराक्रम और बल से नष्ट कर दिया॥३॥

हे इन्द्र! तूने इन समस्त दस्युओं को दासभाव से युक्त किया, नीचा करके उनको निन्दनीय बनाया। हे इन्द्र और सोम! तुम दोनों ने शत्रुओं को रोककर उन्हें शस्त्रों से मारा। इसीलिए तुमने सम्मान प्राप्त किया"॥४॥

ऋग्वेद के ४/३० में वामदेव इन्द्र की स्तुति करते हुए कहते हैं-"हे इन्द्र! वृत्र-संहर्ता! तुझसे श्रेष्ठ कोई दूसरा नहीं है। तुझसे बड़ा भी कोई नहीं है। जैसा तू है वैसा कोई अन्य नहीं है॥१॥

हे इन्द्र! सभी प्रजाजन तेरे अनुकूल और तेरे साथ-साथ रहतें है। रथचक्र के समान सभी तेरे साथ चलते हैं। इसीलिए तू सचमुच महान् और प्रसिद्ध है॥२॥

हे इन्द्र! सभी देवता तुझ बलवान् को साथ लेकर युद्ध करने लगे। तब तूने दिन रात में शत्रुओं का संहार कर दिया॥३॥

हे इन्द्र! तूने शत्रु के साथ युद्ध करने वाले कुत्स की रक्षा के लिए युद्ध मे सूर्य-चक्र उठाया और अपने भक्त की सहायता की॥४॥

हे इन्द्र! देवों का नाश करने वाले राक्षसों का युद्ध में तू अकेला ही नाश करता रहा और हिंसा करने वाले दैत्यों को मारता रहा॥५॥

हे इन्द्र! तुमने जहाँ प्राणियों को सुख देने के लिए सूर्य को बनाया तथा अपनी रीति से एतश को रक्षा प्रदान की॥६॥

हे वृत्रहन्, धनवान् इन्द्र! तू शत्रुओं पर क्रोध करने वाला, अत्यन्त उत्साही है, तूने ही समस्त दानवों का संहार किया है॥७॥

हे इन्द्र! तुम्हारे जितने भी पुरुषार्थयुक्त कर्म हैं, (वे प्रशंसनीय हैं) मर्यादा से बाहर जाती हुई द्युलोक की पुत्री उषा को नष्ट किया है (सूर्योदय करके प्रातःकालीन लालिमा को समाप्त किया है)॥८॥

हे इन्द्र ! तू महान् है। तूने द्युलोक की महिमामयी पुत्री उषा के रथ को छिन्न-भिन्न कर दिया है ॥९ ॥

इन्द्र ने उषा का रथ तोड़ा तो वह टूटे रथ वाली उषा डरती हुए दूर हट गई ॥१० ॥

इस उषा का टूटा हुआ रथ विपाशा नदी के किनारे पड़ा और यह उषा वहाँ से भी दूर भाग गई ॥११ ॥

हे इन्द्र ! तूने इस वेगवती, जल से परिपूर्ण सिन्धु नदी को पृथ्वी पर अपने बल से स्थिर किया ॥१२ ॥

हे इन्द्र ! जब तूने शुष्ण के नगरों को नष्ट किया तो हे शत्रुसंहारक इन्द्र ! तूने उसके समस्त धन का भी हरण कर लिया ॥१३ ॥

हे इन्द्र ! तूने बहुत ऊँचे पर्वत से दास कुलितर के पुत्र शम्बर को नीचे गिरा कर मार दिया ॥१४ ॥

हे इन्द्र ! तूने विनाश करने वाले शत्रु के पांच लाख सैनिकों को, जो चक्र के अरे के समान परस्पर सम्बद्ध थे, सरलता से मार दिया ॥१५ ॥

हे इन्द्र ! उन आर्यों ने अर्ण और चित्ररथ को, जो सरयू पार रहते थे, शीघ्र ही मार दिया ॥१८ ॥

इन्द्र ने दारनवीर दिवोदास को शत्रु के सौ किलों वाले नगर प्रदान कर दिये ॥२० ॥

दुष्ट, विनाश करने वाले तीस हजार वीरों को दभीति की रक्षा के लिये इन्द्र ने सुला (मार) दिया ॥२१ ॥

ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल के ही बत्तीसवें सूक्त में वामदेव गौतम कहते हैं - "हे इन्द्र ! तूने प्रसन्नचित्त होते हुए आक्रमणकारी दास के नगरों को तोड़ दिया, तेरे उन पराक्रमों का हम वर्णन करते हैं ॥१० ॥

हे स्तुत्य इन्द्र ! ज्ञानी लोग तेरे द्वारा किये गये पराक्रमों की प्रशंसा करते हैं ॥११ ॥

हे इन्द्र ! हम याचना करते हैं कि तू हमें हजारों शत्रुसंहारक, योग्य एवं शिक्षित घोड़े प्रदान कर ॥७ ॥

हे इन्द्र ! हम तुझसे सैंकड़ों और हजारों गायें मांगते हैं, हमें तेरा समस्त ऐश्वर्य प्राप्त हो ॥१८ ॥

हे इन्द्र ! हम तेरे दस सुवर्णयुक्त कलशों को प्राप्त करते हैं, हे वृत्रहन् ! तू हमें दान देने वाला है ॥१९ ॥

हे दानवीर इन्द्र ! तू हमें अल्प नहीं अपितु बहुत मात्रा में धन प्रदान कर ! क्योंकि तू हमें बहुत अधिक धन देना चाहता है इसलिए वह हमें दे ॥२० ॥

जेता माधुच्छन्दसः स्तौति।

"पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत।
इन्द्रो विश्वस्य कर्म्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः" ॥१॥ (१/११/४)
"मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः।
विदुष्टे तस्य मेधिरास्तेषां श्रवाँस्युत्तिर" ॥२॥(१/११/७)

विजयी माधुच्छन्दस द्वारा स्तुति

युवा, मेधावी, प्रभूत बलशाली, सब कर्मों के परिपोषक, वज्रधारी और सर्व-स्तुत इन्द्र ने असुरों के नगर-विदारक रूप से जन्म ग्रहण किया था।(१/११/४)

इन्द्र! तुमने मायावी शुष्ण का माया द्वारा वध किया था। तुम्हारी महिमा मेधावी लोग जानते हैं। उन्हें शक्ति प्रदान करो।(१/११७)

सुमित्रो दुर्मित्रो वा कौत्सः स्तौति।

१०/१०५ "शतं वा यदसुर्य प्रति त्वा सुमित्र इत्थास्तौद्दुर्मित्र इत्थास्तौत्।
आवो यद्दस्युहत्ये कुत्सपुत्रं प्रावो यद्दस्युहत्ये कुत्सवत्सम्" ॥११॥

कुत्स के पुत्र सुमित्र अथवा दुर्मित्र द्वारा इन्द्र की स्तुति

ऋग्वेद के दसवें मण्डल के १०५वें सूक्त में कुत्स के पुत्र स्तुति करते हैं-"हे वीर्यवान् इन्द्र! जब तुमसे बहुत धन की इच्छा की, दस्युहत्या के समय कुत्सपुत्र सुमित्र और दुर्मित्र की रक्षा की, तब दुर्मित्र और सुमित्र ने तुम्हारी स्तुति की" ॥११॥

वभ्रुरात्रेयोऽभिनन्दयति।

ऋ.५/३० "परो यत्त्वं परम आजनिष्ठाः परावति श्रुत्यं नाम बिभ्रत्।
अतश्चिदिन्द्रादभयन्त देवा विश्वा अपो अजयद्दासपत्नीः ॥५॥
तुभ्येदेते मरुतः सुशेवा अर्चन्त्यर्कं सुन्वन्त्यन्धः।
अहिमोहानमप आशयानं प्र मायाभिर्मायिनं सक्षदिन्द्रः ॥६॥
वि षू मृधो जनुषा दानमिन्वन्नहन्गवा मघवन्त्सञ्चकानः।
अत्रा दासस्य नमुचेः शिरो यदवर्तयो मनवे गातुमिच्छन् ॥७॥
युजं हि मामकृथा आदिदिन्द्र शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन्।
अश्मानं चित्स्वर्यं वर्तमानं प्र चक्रियेव रोदसी मरुद्भ्यः ॥८॥
स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करन्नबला अस्य सेनाः।
अन्तर्ह्यख्यदुभे अस्य धेने अथोप प्रैद्युधये दस्युमिन्द्रः" ॥९॥

अत्रिपुत्र वभ्रु द्वारा अभिनन्दन

हे श्रेष्ठ इन्द्र ! दूर देश में उत्पन्न होने पर भी सभी दस्युओं में तेरा यश व्याप्त है, तू यश धारण करके ही उत्पन्न हुआ है, तभी से समस्त देवताओं में भी तेरा भय व्याप्त है तथा तूने दास के द्वारा रोके गये जलों को जीत लिया है ॥५ ॥

उत्तम सेवा करने योग्य ये मरुत् तेरे लिए सोम का सेवन करते हैं। इन्द्र ने अपनी कुशलता से मायावी देवों को कष्ट पहुंचाने वाले, जलों को रोक कर शयन करे वाले अहि असुर को मार दिया ॥६ ॥

हे मघवन् ! तूने जन्म लेते ही अपने वज्र से दानासुर का संहार किया। तू स्तुत्य है ! तुने मनु के मार्ग बनाने के लिए दास और नमुचि के सिर को अपने वज्र से काट डाला ॥७ ॥

हे इन्द्र ! तूने गर्जना करने वाले, मेघ के समान खड़े दास और नमुचि के सिर को काट दिया। तत्पश्चात् मरुतों को मित्र बनाकर उनके लिए घावापृथ्वी को दो भागों में विभक्त किया ॥८ ॥

तदन्तर दासों ने इन्द्र के भय से स्त्रियों की सेना बनाई। तब इन्द्र ने सोचा-यह अबला-सेना मेरा क्या बिगाड़ सकती है? यह विचार करके इन्द्र ने दास की अबला सेना में से दो सुन्दर स्त्रियों को बन्दी बना लिया (जिससे डरकर समस्त सेना भाग गई) और दस्यु पर आक्रमण कर दिया ॥९ ॥(५/३०)

अवस्युरात्रेयोऽभिनन्दयति

ऋ.५/३१ "इन्द्रो रथाय प्रवतं कृणोति यमध्यस्थानमघवा वाजयन्तम्।
यूथेव पश्वो व्युनोति गोपा अरिष्टो याति प्रथमः सिषासन् ॥१ ॥
अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन् त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम्।
ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्द्धयन्नहये हन्तवा उ ॥४ ॥
वृष्णे यत्ते वृषणो अर्कमर्चानिन्द्र ग्रावाणो अदितिः सजोषाः।
अनश्वासो ये पवयोऽरथा इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्यून् ॥५ ॥
प्र ते पूर्वाणि करणानि वोचं प्र नूतना मघवन्या चकर्थ।
शक्तीवो यद्विभरा रोदसी उभे जयन्नपो मनवे दानुचित्राः ॥६ ॥
तदिन्नु ते करणं दस्म विप्राहिं यद् ध्नन्नोजो अत्रामिमीथाः ॥
शुष्णस्य चित्परि माया अगृभ्णाः प्रपित्वं यन्नप दस्यूँरसेधः ॥७ ॥
त्वमपो यदवे तुर्वशायारमयः सुदुघाः पार इन्द्र।

उग्रमयातमवहो ह कुत्सं सं ह यद्वामुशनाऽरन्त देवाः ॥८ ॥
इन्द्राकुत्सा वहमाना रथेना वामत्या अपि कर्णे वहन्तु।
निःषीमद्भ्यो धमथो निः षेधस्थान्मघोनो हृदो वरथस्तमांसि" ॥९ ॥

२. अत्रि-पुत्र अवस्यु द्वारा इन्द्र का अभिनन्दन

ऋग्वेद के ५/३१ में कहते हैं-

यह ऐश्वर्यवान् जिस रथ पर भी बैठ जाता है, उसी रथ को द्रुतगतिमान् बना देता है। जिस प्रकार एक ग्वाला अपने पशुओं के झुण्ड को प्रेरित करता है, उसी प्रकार यह इन्द्र अपनी सेना को प्रेरणा देता हुआ, धन प्रदान करता हुआ, अपराजेय होता हुआ जाता है ॥१ ॥

हे पुरूहूत! शिल्पियों ने इन रथों को घोड़ों के लगाने के लिए बनाया, ऋषि त्वष्टा ने तेरे लिए वज्रायुध बनाया, तेरी स्तुति करने वालों ने अहि का वध करने के लिए तुझे इन्द्रस्तुति से उत्साहित किया ॥४ ॥

हे इन्द्र! बिना घोड़ों के रथों के साथ भी इन्द्र की प्रेरणा से जिन मरुतों ने दस्युओं का वध किया, तब उन बलवान् मरुतों ने तुझ वीर्यवान् की स्तुति की और कठोर पत्थरों से कूट कर सोम का सवन करने लगे ॥५ ॥

हे शक्तिशाली, ऐश्वर्यवान् इन्द्र! जब तूने द्यावा पृथिवी को जीत कर मनुष्य के लिए स्नेहपूर्ण जल को धारण किया, तब तेरे उन समस्त नवीन और प्राचीन कर्मों का मैं वर्णन करता हूँ ॥६ ॥

हे शोभनीय, बुद्धिमान् इन्द्र! तूने अहि नामक असुर को मारकर जो पराक्रम दिखाया है, शुष्ण की माया को प्रकाशित किया, युद्ध में उसका वध किया, तेरे वे सभी कर्म प्रशंसा के योग्य हैं ॥७ ॥

हे इन्द्र! तूने यदु और तुर्वश के लिए वनस्पतियों को उत्पन्न करने हेतु जलों को बहाया। तू दुःखनाशक है! तूने आक्रामक घोर शत्रु से कुत्स की रक्षा की, तब उशना, और देवों ने तुम्हारी स्तुति की ॥८ ॥

हे कुत्स और इन्द्र! तुम दोनों द्रुतगति से चलने वाले घोड़ों को युद्ध में ले जाओ। तुमने जल में छिपकर रहने वाले असुर का संहार किया, और उसे पदच्युत करके तुम दानी और धनवान् मनुष्य के हृदय में से भय और पाप का निराकरण करो ॥९ ॥

गातुरात्रेयोऽभिनन्दयति

ऋ. ५।३२ "अदर्दरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान्बद्बधानाँ अरम्णाः।
महान्तमिन्द्रपर्वतं वियद्वः सृ वि धारा अव दानवं हन् ॥१ ॥

त्वमुत्साँ ऋतुभिर्बद्बधानाँ अरंह ऊधः पर्वतस्य वज्रिन्।
अहिं चिदुग्र प्रयुतं शयानं जघन्वाँ इन्द्र तविषीमधत्थाः ॥२॥
त्वं चिदेषां स्वधया मदन्तं मिहो नपातं सुवृधं तमोगाम्॥
वृषप्रभर्मा दानवस्य भामं वज्रेण वज्री निजघान शुष्णम्॥४॥
त्वं चिदस्य क्रतुभिर्निषत्तममर्मणो विददिदस्य मर्म।
यदीं सुक्षत्र प्रभृता मदस्य युयुत्सन्तं तमसि हर्म्ये धाः॥५॥
त्वं चिदित्था कत्पयं शयानमसूर्ये तमसि वावृधानम्।
तं चिन्मन्दानो वृषभः सुतस्योच्चैरिन्द्रो अपगूर्या जघान॥६॥
त्वं चिदर्णं मधुपं शयानमसिन्वं वव्रं मह्याददुग्रः।
अपादमत्रं महता वधेन नि दुर्योण आवृणङ्मृध्रवाचम्" ॥८॥

अत्रिपुत्र गातु द्वारा इन्द्राभिनन्दन

५/३२ हे इन्द्र! तूने दानवों का संहार करके मेघों को विदीर्ण करके जल की वृष्टि की। तूने अन्दर से क्षुब्ध होते हुए जलों को मुक्ति प्रदान की। तूने बड़े-बड़े पर्वतों को तोड़ कर जल की धाराओं को प्रवाहित किया॥१॥

हे इन्द्र! तुमने वर्षाकालीन अन्दर ही अन्दर क्षुब्ध हो रहे मेघों को तोड़ा। हे वज्रिन्! तुमने मेघ असुर के बल का मर्दन करके सोये हुए बलवान् अहि असुर का वध किया। हे वीर! तूने बल को धारण किया है॥२॥

वर्षा करने वाले मेघ को गिराने वाले और वज्र धारणकर्ता इन्द्र ने प्राणियों के जल को बांध कर रखने वाले, प्राणियों के द्वारा ही दिये गये अन्न से पुष्ट होने वाले शुष्ण दानव के तेज को नष्ट करके उसका वध किया॥४॥

हे इन्द्र! जिस वृत्रासुर के रहस्य को कोई भी नहीं समझ सका उस वृत्रासुर को मर्म तुमने जाना है। हे वीर्यवान् इन्द्र! सोम के आनन्द से मस्त होते हुए तूने वृत्रासुर को अन्धकारपूर्ण स्थान पर बन्दी बना लिया॥५॥

बलवान् इन्द्र ने सोम से तृप्त होकर वज्र को उठाकर (प्रहार करते हुए) वृत्र को मारा, जो अन्धकारपूर्ण स्थान पर, सुखदायक जलों को रोक कर सो रहा था।।६॥

वीर इन्द्र ने उस वृत्रासुर का वध किया, जो असत्य भाषण करता था, सोमपान करके शयन करता था, पैरों के न होने पर भी वह आक्रमण करता था, शत्रुओं को परास्त करता था, और सबको आवृत कर देता था, ऐसे असुर को इन्द्र ने पकड़ कर वज्र से मार दिया॥८॥

संवरणः प्राजापत्योऽभिनन्दयति।

ऋ.५।३३ "पुरू यत्तं इन्द्र सन्त्युक्था गवे चकर्थोर्वरासु युध्यन्।
ततक्षे सूर्याय चिदोकसि स्वे वृषा समत्सु दासस्य नाम चित्" ॥४॥

ऋ.५ ।३४ "न पञ्चभिर्दशभिर्वष्ट्यारभं नासुन्वता सचते पुष्यता चन।
जिनाति वेदमुया हन्ति वा धुनिरा देवयुं भजति गोमति व्रजे ।।५ ।।
वित्वक्षणः समृतौ चक्रमासजोऽसुन्वतो विषुणः सुन्वतो वृधः।
इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथावशं नयति दासमार्यः" ।।६ ।।

प्रजापति के पुत्र संवरण द्वारा इन्द्र का अभिनन्दन

"हे इन्द्र ! तेरे स्तुति-सूक्तों में तेरा वर्णन करते हुए कहा गया है कि तूने भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए जल को मुक्त मूकिया, सूर्य को द्यौः में स्थापित किया तथा युद्ध में दास असुर का नामो निशान भी मिटा दिया ।।४ ।।. (५ ।३३ ।४)

"यह इन्द्र बलशाली है। यह पांच अथवा दस शत्रुओं के साथ भी युद्ध करते हुए सहायता की इच्छा नहीं करता है। यह धनवान् होते हुए भी सोमयाग न करने वाले से मित्रता नहीं करता है। शत्रुओं को कंपाने वाला यह इन्द्र यज्ञ न करने वाले को जीतता है, उसे मारता है और देवभक्त को उत्तम गायों से युक्त करता है ।। (५ ।३४ ।५)

युद्ध में अत्यन्त पराक्रमी और रथ पर ठीक से चक्र संयोजन करने वाला, सोमयाग न करने वाले का तिरस्कार करने वाला, सोम यजन करने वाले की उन्नति करने वाला, सम्पूर्ण विश्व का दमन करने वाला, शत्रुओं के लिए भयंकर तथा श्रेष्ठ इन्द्र समस्त शत्रुओं को अपने वश में करता है ।।५ ।३४ ।६ ।।

विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद् वासुक्रो वाऽभिनन्दयति।

ऋ.१०/२२ "आ न इन्द्र पृक्षसेऽस्माकं ब्रह्मोद्यतम्।
तत्त्वा याचामहेऽवः शुष्णं यद्धन्नामानुषम् ।।७ ।।
अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः।
त्वं तस्या मित्रहन्वधर्दासस्य दम्भय ।।८ ।।
मक्षू ता त इन्द्र दानाप्नस आक्षाणे शूर वज्रिवः।
यद्ध शुष्णस्य दम्भयो जातं विश्वं सयावभिः ।।११ ।
अहस्ता यदपदी वर्धत क्षाः शचीभिर्वेद्यानाम्।
शुष्णं परि प्रदक्षिणिद्विश्वायवे नि शिश्नथः" ।।१४ ।।

ऐन्द्र अथवा प्राजापत्य विमद अथवा वसुकृद् अथवा वासुक्र द्वारा इन्द्र का अभिनन्दन

ऋग्वेद के १०/२२ में इन्द्र का अभिनन्दन करते हुए कहते हैं- "हे देव इन्द्र ! सब तरह से हमारी रक्षा करो। हम अपनी स्तुतियाँ और यज्ञ की हवि-सामग्री तुम्हारे लिए ही देते हैं। हम तुझसे अलौकिक बल की तथा संरक्षण की याचना करते हैं, जिस बल से तूने शुष्ण असुर का वध किया है ।।७ ।।

हे. अरिनाशक इन्द्र ! जो असुर कर्म न करने वाले, सबका अपमान करने वाले, यज्ञ कर्म से रहित, आसुरी वृत्ति से परिपूर्ण हैं वे हमारे चारों ओर छाये हुऐ हैं, तू उनको दण्ड देते हुए नष्ट कर ॥८॥

हे बलवान् इन्द्र ! तूने जिस विश्वास के साथ मरुतों के संग रह कर शुष्ण असुर के सारे वंश का नाश किया है तथा युद्ध क्षेत्र में भी कृपा एवं दान से युक्त तेरे वे समस्त कर्म शीघ्रता से सक्रिय हुए हैं ॥११॥

यह पृथ्वी बिना हाथ-पैर की होते हुए भी विद्वानों की यज्ञ क्रियायों द्वारा वृद्धि को प्राप्त होती है तथा सम्पूर्ण विश्व का कल्याण करने के लिए चारों ओर से प्रशिक्षण करती है, इसी कल्याण की कामना से तुम दुष्ट शुष्ण का वध करते हो।" ॥१४॥

वसुक्रोऽभिनन्दयति।

ऋ.१०।२९ "प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम्।
अनु त्रिशोकः शतमावहन्नृन्कुत्सेन रतो यो असत्ससवान्" ॥२॥

वसुक्र द्वारा अभिनन्दन

"हे इन्द्र ! तू मनुष्यों में श्रेष्ठ है, हम प्रतिदिन उषाकाल में तेरी स्तुति करके उत्तम बनें। हे इन्द्र ! तुम्हारी स्तुति करके त्रिशोक ऋषि ने तुमसे सौ मनुष्यो की सहायता प्राप्त की। तेरी कृपा से ही कुत्स ऋषि ने रथ प्राप्त किया था॥" (१०/२९/२)

अष्टादंष्ट्रो वैरूपो महयति।

ऋ.१०।१११ "इन्द्रो दिवः प्रतिमानं पृथिव्या विश्वा वेद सवना हन्ति शुष्णम्।
महीं चिद्यामातनोत्सूर्य्येण चास्कम्भ चित्कम्भनेन स्कभीयान् ॥५॥
वज्रेण हि वृत्रहा वृत्रमस्तरदेवस्य शूशुवानस्य मायाः।
वि धृष्णो अत्र धृषता जघन्थाथाभवो मघवन्बाह्वोजाः ॥६॥
सचन्त यदुषसः सूर्येण चित्रामस्य केतवो रामविन्दन्।
आ यन्नक्षत्रं ददृशे दिवो न पुनर्यतो न किरद्धानु वेद ॥७॥
दूरं किल प्रथमा जग्मुरासामिन्द्रस्य याः प्रसवे सस्रुरापः।
क्व स्विदग्रं क्वं बुध्न आसामापो मध्यं क्व वो नूनमन्तः ॥८॥
सृजः सिन्धूँरहिना जग्रसानाँ आदिदेताः प्रविविज्रे जवेन।
मुमुक्षमाणा उत या मुमुच्रेऽधेदेता न रमन्ते नितिक्ताः ॥९॥
सध्रीचीः सिन्धुमुशतीरिवायन्त्सनाज्जार आरितः पूर्भिदासाम्।
अस्तमा ते पार्थिवा वसून्यस्मे जग्मूः सुनृता इन्द्र पूर्वीः" ॥१०॥

वैरूप अष्टादंष्ट्र द्वारा इन्द्र की महिमा का गान

ऋग्वेद के १०/१११ में ऋषि कहते हैं - "इन्द्र समस्त यज्ञों को जानता है, क्योंकि वह द्यावा-पृथ्वी का प्रतिनिधि है। इन्द्र शुष्ण ताप का वध करता है, वह विस्तारयुक्त पृथ्वी और आकाश को सूर्य से प्रकाशित करता है। इन्द्र पृथ्वी को अन्नादि और वृष्टि से सम्पन्न करता है। विश्व के संस्थापकों में से श्रेष्ठ संस्थापक इन्द्र के विश्व को ऊपर धारण कर रखा है ॥५ ॥

हे इन्द्र ! तुम वृत्रघ्न हो, तुमने वज्र से वृत्र का वध किया है। हे घर्षणशील इन्द्र ! उस वृत्र की अप्रकाशित, अज्ञानी और कुटिल माया को तुमने नष्ट कर दिया। हे इन्द्र ! तदनन्तर तुम्हारी भुजाओं का बल और अधिक पराक्रम से युक्त हुआ ॥६ ॥

सूर्य की किरणें और प्रातःकालीन उषा का परस्पर संयोग हुआ तो सूर्य की किरणों में अद्‌भुत वर्णों की शोभा छा गई। यह सत्य है कि दिन में जब सूर्य आकाश में ऊपर आ जाता है और नक्षत्र दिखाई नहीं देते हैं तो सूर्य की किरणों का कोई महत्व नहीं रहता ॥७ ॥

हे जल ! प्रारम्भ में जो जल इन्द्र की आज्ञा से बहाया गया था वही प्रारम्भिक अवस्था का जल बहुत दूर तक गया था, परन्तु शेष जल का आरम्भ, मध्य, मूल और अन्त भाग कहाँ है, इसका कोई पता नहीं है। (अर्थात् इन्द्र के आधार पर ही सब अपनी स्थिति धारण करते हैं अन्यथा नही) ॥८ ॥

हे इन्द्र ! जब वृत्रासुर द्वारा रोके गये जल को तुमने मुक्त करके प्रवाहित किया, तब वे बड़े वेग के साथ बहने लगे। जो जलधारा इन्द्र की इच्छा से मुक्त कर दी जाती है वह अत्यन्त तीव्र वेग के कारण एक स्थान पर ठहरती नहीं है तथा उनका जल भी शुद्ध हो जाता है ॥१९ ॥

एक साथ बहने वाली वेगवती जलधाराएँ समुद्र को उसी प्रकार प्राप्त करती हैं जैसे कामातुर स्त्री पति को प्राप्त करती हैं। शत्रु-संहारक, शत्रुओं के निवास-स्थान को नष्ट करने वाला इन्द्र सदैव ही जल का स्वामी रहा है। हे इन्द्र ! हमें इस पृथ्वी से विभिन्न प्रकार के ऐश्वर्य , सम्पत्ति, स्तोत्र और निवास प्रदान कर" ॥१० ॥

शतप्रभेदनो वैरूपो महयति।

ऋ.१० ।११३ "वृत्रेण यदहिना विभ्रदायुधा समस्थिथा युधये शंसमाविदे।
विश्वे ते अत्र मरुतः सह त्मनावर्धन्नुग्र महिमानमिन्द्रियम् ॥३ ॥
भूरि पक्षेभिर्वचनेभिऋक्वभिः सख्येभिः सख्यानि प्रवोचत।
इन्द्रो धुनिं च चुमुरिं च दम्भयञ्छ्रद्धामनस्या श्रृणुते दभीतये" ॥९ ॥

शतप्रभेदन वैरूप द्वारा इन्द्र की महिमा का गान

(१०/११३) - जब इन्द्र सामने से आते हुए वृत्र का युद्ध में अपने शस्त्रों को धारण किये हुए संग्राम करता है, तब उसकी यशोवृद्धि के लिए मैं स्तुति करता हूँ। हे घोर इन्द्र ! समस्त मरुद्गण तेरी सामर्थ्य को एक साथ बढ़ाते हैं ॥३ ॥

हे स्तुति करने वालो ! उत्कृष्ट ऋक् मन्त्रों से युक्त, मित्र के आनन्ददायी वचनों से, स्नेहमयी वाणी और मन से इन्द्र की स्तुति करो। इसी इन्द्र ने दभीति राजा की रक्षा के लिए धुनि और चुमुरि नामके असुरों का वध किया। ऐसा वह इन्द्र स्तोताओं की वाणी का श्रद्धापूर्वक श्रवण करता है ॥९ ॥

बृहदुक्थो वामदेव्यः श्लाघते।

ऋ.१० ।५४ "तां सु ते कीर्तिं मघवन्महित्वा यत्वा भीते रोदसी अह्वयेताम्।
प्रावो देवाँ आतिरो दासमोजः प्रजायै त्वस्यै यदशिक्ष इन्द्र ॥१ ॥
यदचरस्तन्वा वावृधानो बलानीन्द्र प्रबुवाणो जनेषु।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं ननु पुरा विवित्से ॥२ ॥
क उ नु ते महिमनः समस्यास्मत्पूर्व ऋषयोऽन्तमापुः।
यन्मातरं च पितरं च साकमजनयथास्तन्वः स्वायाः" ॥३ ॥

बृहदुक्थ वामदेव्य द्वारा श्लाघा

ऋग्वेद के १०/५४ सूक्त में ऋषि कहते हैं "हे मघवन् ! तेरी उस महान् कीर्ति का हम सुन्दर ढंग से गान करते हैं, जिसमें तूने यशोवृद्धि के कार्य किये हैं। यह द्यावा-पृथ्वी भी राक्षसों से भयभीत होकर तुझे बुलाती है, तुमने देवों की रक्षा की, देवों का विनाश करने वाले असुरों का संहार किया और प्रजाओं का भय दूर किया, मैं तेरी उसी कीर्ति का गान करता हूँ ॥१ ॥

हे इन्द्र ! तू लोगों द्वारा स्तुति किये जाने पर अपने बल में वृद्धि करता है और अपने उस बलयुक्त पराक्रम का तू लोगों में वर्णन करते हुए विचरण करता है। यह कार्य तेरा मायापूर्ण है, असत्य है। प्राचीन ऋषि लोग तेरे द्वारा किये गये विभिन्न युद्धों का वर्णन करते हैं वे भी असत्य और मायापूर्ण है, क्योंकि वास्तव में न तेरा कोई शत्रु है और न ही पहले कोई शत्रु था ॥२ ॥

हे इन्द्र ! वास्तव में तेरी महिमा का गान करने में पूर्ण पारंगत कोई नहीं हुआ, क्योंकि तु इस द्यावापृथिवी को अपने शरीर से एक साथ उत्पन्न करता है ॥३ ॥

वत्सः काण्वोऽभिनन्दयति।

ऋ.८।६ "विचिद्वत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा॥
शिरो बिभेदावृष्णिना॥६॥
नि शुष्ण इन्द्र धर्णसिं वज्रं जघन्थ दस्यवि।
वृषा ह्युग्र श्रृण्विषे"॥१४॥

कण्व के पुत्र वत्स द्वारा इन्द्राभिनन्दन

८/६ सूक्त में वत्स कहते हैं - "इन्द्र ने अपने सैकड़ों धाराओं वाले श्रेष्ठ वज्र से कम्पन करने वाले वृत्रासुर का सिर काट दिया॥६॥

हे इन्द्र! तुमने धाराओं वाले वज्र से शुष्ण नाम के असुर का वध किया, जिससे हे वीर इन्द्र! तुम विश्व में प्रसिद्ध हुए॥४॥"

श्रुष्टिगुः काण्वोऽभिनन्दयति।

ऋ.८।५१ "प्र यो ननक्षे अभ्योजसा क्रिविं वधैः शुष्णं निघोषयन्।
यदेदस्तम्भीत्प्रथयन्नमूं दिवमादिज्जनिष्ट पार्थिवः॥८॥
यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः।
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः"॥९॥

कण्व-पुत्र श्रुष्टिगु द्वारा इन्द्राभिनन्दन

जब वृद्धि को प्राप्त होते हुए असुरों ने इस द्युलोक को रोक दिया, तब इन्द्र ने अपने घोर अस्त्रों से तथा अपने बल से चिल्लाते हुए शुष्ण नामक राक्षस को मारा और इस पृथिवी को मुक्त करके समस्त पदार्थों को उत्पन्न किया॥८॥

जिस इन्द्र के कोष की समस्त आर्य और दास रक्षा करते हैं, वह इन्द्र सबका स्वामी है। हे इन्द्र! तेरे कारण ही रूशम और पवीरू ऋषियों का गुप्त धन प्रकट हुआ॥९॥

मेध्यः काण्वोऽभिष्टौति

ऋ.५।५३ "य आयुं कुत्समतिथिग्वमर्दयो वावृधानो दिवेदिवे।
तं त्वां वयं हर्य्यश्वं शतक्रतुं वाजयन्तो हवामहे"॥२॥

कण्व पुत्र मेध्य द्वारा इन्द्राभिनन्दन

हे इन्द्र! तूने आयु, कुत्स, अतिथिग्व को प्रतिदिन बढ़ाते हुए ऊँचा उठाया है। हे इन्द्र। तू हरि नामके घोड़ों को रखता है, सैंकड़ों शुभ कर्म करता है, ऐसे तुझे शक्ति प्राप्त करने की इच्छा से हम बुलाते हैं॥२॥ (८/५३)

गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनावभिनन्दयतः।

ऋ.८।१४ "अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः।
विश्वा यदजयः स्पृधः ॥१३॥
मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः।
अवदस्यूँरधूनुथाः" ॥१४॥

गोषूक्ति और अश्वसूक्ति नामक कण्व के पौत्रों द्वारा इन्द्राभिनन्दन

ऋग्वेद के ८/१४ में ऋषि स्तुति करते हैं - हे इन्द्र! तुमने सम्पूर्ण सेना को जीत कर पानी के झाग से नमुचि असुर का सिर काट दिया॥१३।

हे इन्द्र! तूने उन सभी राक्षसो को कम्पित कर दिया जो भी कुशलतापूर्वक द्युलोक चढ़ने की इच्छा रखते थे, जो सर्वत्र व्याप्त होने की इच्छा रखते थे॥१४॥"

नोधा गौतमोऽभिनन्दयति

ऋ.१।६१ "अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद्वव्ने भूरेरीशानः।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः" ॥१५॥
ऋ.१।६३ "त्वं सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान्त्वमृभुक्षा नर्यस्त्वं षाट्।
त्वं शुष्णं वृजने पृक्ष आणौ यूने कुत्साय द्युमते सचाहन्" ॥३॥

नोधा गौतम द्वारा इन्द्र का अभिनन्दन

"यह इन्द्र अकेला ही बहु धन का स्वामी है। यह इन्द्र जिस स्तोत्र को सुनने की इच्छा करता है, स्तोता उसी स्तोत्र का गान करते हैं। इन्द्र ने स्वश्व के पुत्र सूर्य के साथ युद्ध करते हुए सोमयाजी एतश की रक्षा की॥१५॥"

"हे इन्द्र! तुम सत्य के पालक हो, शत्रु संहारक हो, ऋभुओं के स्वामी हो, नेता हो, तुम सहनशील हो, तुमने शत्रुसंहारक घोर युद्ध में तेजस्वी, युवक कुत्स की रक्षा करते हुए शुष्ण का वध किया॥" (१/६३/३)

अङ्ग औरवोऽभिनन्दयति १-६।

ऋ.१०।१३८ "तव त्य इन्द्र सख्येषु वह्नय ऋतं मन्वाना व्यदर्दिरुर्वलम्।
यत्रा दशस्यन्नुषसो रिणन्नपः कुत्साय मन्मन्नह्यश्च दंसयः ॥१॥
अवासृजः प्रश्वः श्वञ्चयो गिरीनुदाज उस्रा अपिबो मधु प्रियम्।
अवर्धयो वनिनो अस्य दंससा शुशोच सूर्य्य ऋतजातया गिरा ॥२॥

वि सूर्यो मध्ये अमुचद्रथं दिवो विदद्दासाय प्रतिमानमार्यः।
दृळहानि पिप्रोरसुरस्य मायिन इन्द्रो व्यास्यच्चकृवाँ ऋजिश्वना ॥३॥
अनाधृष्टानि धृषितो व्यास्यन्निधीँरदेवाँ अमृणदयास्यः।
मासेव सूर्यो वसु पुर्यमाददे गृणानः शत्रूँरश्रृणाद्विरुक्मता ॥४॥
अयुद्धसेनो विभ्वा विभिन्दता दाशद्वृत्रहा तुज्यानि तेजते।
इन्द्रस्य वज्रादिबिभेदभिश्नथः प्राक्रामच्छुन्ध्यूरजहादुषा अनः ॥५॥
एता त्या ते श्रुत्यानि केवला यदेक एकमकृणोरयज्ञम्।
मासां विधानमदधा अधि द्यवि त्वया विभिन्नं भरति प्रधिं
पिता" ॥६॥

उरुपुत्र अङ्ग द्वारा ऋग्वेद के १०/१३८ में इन्द्राभिनन्दन

तेरी मित्रता में रहते हुए, हवि प्रदान करते हुए तेरे भक्तों ने बल नामक राक्षस का वध किया। हे इन्द्र! तेरी कृपा से तेरे रुचिकर स्तोत्रों का गान करते हुए कुत्स को उषाकाल का दर्शन कराया और जल को मुक्त किया, तब वृत्र द्वारा किये गये समस्त कर्म स्वयमेव नष्ट हो गये ॥१॥

हे इन्द्र! तूने मेघ से जल का निर्माण किया है। पर्वतों को प्रेरित किया। बलासुर द्वारा गुहा में छिपाई हुई गायों को मुक्त किया। तत्पश्चात् सोम का पान किया। वनों के वृक्ष वृष्टि से संवर्धित किये। स्तुति करने योग्य वेदवाणी से यज्ञ के समय जब इन्द्र की स्तुति की गई तब इन्द्र के कर्मों से सूर्य तेजस्वी हुआ ॥२॥

इन्द्र ने दासों का तिरस्कार किया, तब सूर्य ने द्युलोक में अपने रथ को चला दिया। इन्द्र ने राजर्षि ऋजिश्वा के साथ मित्रता करते हुए मायावी पिप्रु नाम के असुर की विशाल दुर्गम नगरियों को नष्ट कर दिया ॥३॥

अजेय इन्द्र ने शत्रुओं की सेना को नष्ट किया। अयास्य ऋषि के द्वारा स्तुति किये जाने पर इन्द्र ने बलशाली, ऐश्वर्यवान् असुरों का संहार किया। जैसे सूर्य निश्चित मास में भूमि का जल ले जाता है, उसी तरह इन्द्र शत्रु के नगरों का धन प्राप्त कर लेता है। तू शत्रुओं का प्रदीप्त और देदीप्यमान वज्र से संहार करता है ॥४॥

यह इन्द्र बिना सेना को लड़ाए ही शत्रुओं को वज्र से मारता है, वृत्रासुर का वध करता है, प्रियजनों को धन देता है। इस इन्द्र के वज्र से असुर भयभीत होते हैं। इन्द्र सूर्य को प्रकाशित करता है, तब उषा अपना रथ चलाती है ॥५॥

हे इन्द्र! तूने यज्ञों में बाधा पहुंचाने वालों का वध किया है, तेरे वीरतापूर्ण कर्म सुनने योग्य है। महिनों को बनाने वाला सूर्य तुम्हारे द्वारा द्युलोक में स्थापित किया गया और यह द्युलोक तेरे द्वारा ही बलयुक्त होकर चक्र को धारण करता है" ॥६॥

कृतज्ञतास्तुतिसूक्तपाठानन्तरमिन्द्रेण कुत्साय वेशभूषापरिच्छदैः स्वसारूप्यं सोमसग्धिश्चेति द्विविधं प्रीतिप्रसाददानम्।

इत्थं तत्र सभायां सभासदै राजभिर्मनुष्यैश्च।
ऋषिभिर्देवैरसुरैः सभाजितोऽभून्महोत्सवे स्वाराट्॥१॥
आराध्याः संभ्रान्ताः संभावितसज्जनाश्च समवेत्य।
सप्रश्रयं सविनयं न्यवेदयन् श्रद्धया कृतज्ञत्वम्॥२॥
तेषां कृतज्ञतां तामभिनन्द्य हृदा स्वभक्तिभाववम्।
प्रतिपद्य च सौहार्द्यं दर्शयितुं समयमनुमेने॥३॥
महसि च मघवानिन्द्रो महसा परितोषितः प्रददौ।
कुत्साय तत्र तस्मै सोमे सग्धि स्वसारूप्यम्॥४॥
तत इन्द्राकुत्साभ्यां सहभावं सह च सोमसवम्।
भूषावेषपरिच्छदपरिचरसाम्यं च तत्राभूत्॥५॥
इत्थं महःसमाप्तौ विश्वामित्रः सभां विसर्जयितुम्।
मन्त्रं विसर्जनीयं प्रत्युत्थायेन्द्रमन्वाख्यत्॥६॥
इन्द्रेण कृतो यावानुपकारस्तं पुनः प्रथयन्।
स्वीयां कृतज्ञतां च प्रदर्शयन्निन्द्रमस्तौत्सः॥७॥

कृतज्ञतासूचक स्तुति-सूक्तों के पाठ के अनन्तर इन्द्र द्वारा कुत्स को वेशभूषा और अलंकारों सहित अपने समान रूप तथा सोमपान का भागी बना कर प्रीति प्रसाद का द्विविध दान

इस प्रकार उस महोत्सव में सभी में बैठे हुए राजाओं, देवों, मनुष्यों, ऋषियों और असुरों द्वारा उस स्वाराट् इन्द्र का सम्मान किया गया॥१॥

पूजनीय, सम्भ्रान्त, सम्माननीय और सज्जन लोगों ने एकत्रित होकर शिष्टतापूर्वक, विनीत होकर तथा श्रद्धायुक्त होकर इन्द्र के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित की॥२॥

इन सबकी उस कृतज्ञता का हृदय से अभिनन्दन करके तथा अपने भक्ति-भाव को प्रकट करके उनके प्रति सौहार्द प्रदर्शित करने की प्रतिज्ञा की॥३॥

उस उत्सव में ऐश्वर्यवान् इन्द्र ने इस महोत्सव से सन्तुष्ट होकर उस ऋषि कुत्स को सोम-पान में सहभागिता तथा अपने समान स्वरूप प्रदान किया॥४॥

इस प्रकार इन्द्र और कुत्स की एक समान रूप, सोम-पान में सहभागिता, वेशभूषा-अलंकरण-सेवकगण इत्यादि सहित सभी प्रकार से समानरूपता हो गई॥५॥

इस प्रकार उत्सव के समाप्त होने पर विश्वामित्र ऋषि ने इन्द्र के पश्चात् उठ कर विसर्जनीय मन्त्र का उच्चारण किया ॥६ ॥

उन विश्वामित्र ऋषि ने इन्द्र के द्वारा किये गये जो उपकार थे, उनका पुनः वर्णन करते हुए, अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए इन्द्र की स्तुति की ॥७ ॥

देवेन्द्रस्य पुनः स्वर्गे गमनम्।

सभाविसर्जनावसरे जिगमिषुं देवेन्द्रं प्रति विश्वामित्रस्य प्रणयवचनम्।

ऋ.३/५३ "इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आ वहतं सुवीराः।
वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिळया मदन्ता ॥१ ॥
तिष्ठा सु कं मघवन्मा परागाः सोमस्य नु त्वा सुषुतस्य यक्षि।
पितुर्न पुत्रः सिचमा रभे त इन्द्र स्वादिष्ठया गिरा शचीवः ॥२ ॥
शंसावाध्वर्यो प्रति मे गृणीहीन्द्राय वाहः कृणवाव जुष्टम्।
एदं बर्हिर्यजमानस्य सीदाऽथा च भूदुक्थमिन्द्राय शस्तम् ॥३ ॥
जायेदस्तं मघवन्त्सेदु योनिस्तदित्त्वा युक्ता हरयो वहन्तु।
यदा कदा च सुनवाम सोममग्निष्ट्वा दूतो धन्वात्यच्छ ॥४ ॥
परा याहि मघवन्ना च याहीन्द्र भ्रातरुभयत्रा ते अर्थम्।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो रासभस्य ॥५ ॥
अपाः सोममस्तमिन्द्र प्रयाहि कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो दक्षिणावत् ॥६ ॥
इमे भोजा अङ्गिरसो विरूपा दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः।
विश्वामित्राय ददतो मघानि सहस्रसावे प्रतिरन्त आयुः ॥७ ॥
रूपं रूपं मघवा बोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्वं परि स्वाम्।
त्रिर्यद्दिवः परि मुहूर्तमागात्स्वैर्मन्त्रैरनृतुपा ऋतावा ॥८ ॥
महाँ ऋषिर्देवजा देवजूतोऽस्तभ्नात् सिन्धुमर्णवं नृचक्षाः।
विश्वामित्रो यदवहत्सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्रः ॥९ ॥
हंसा इव कृणुथ श्लोकमद्रिभिर्मदन्तो गीर्भिरध्वरे सुते सचा।
देवेभिर्विप्रा ऋषयो नृचक्षसो वि पिबध्वं कुशिकाः सोम्य मधु ॥१० ॥
उप प्रेत कुशिकाश्चेतयध्वमश्वं राये प्रमुञ्चता सुदासः।

राजा वृत्रं जङ्घनत्प्रागपागुदगथा यजाते वर आ पृथिव्याः ॥११॥
य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टवम्।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम् ॥१२॥
विश्वामित्रा अरासत ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे।
करदिन्नः सुराधसः ॥१३॥
किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुह्रे न तपन्ति घर्मम्"।
आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन्नन्धया नः" ॥१४॥

देवराज इन्द्र का पुनः स्वर्ग-गमन

सभाविसर्जन के अवसर पर जाने के इच्छुक देवराज को कहे गये विश्वामित्र के प्रार्थना-वचन

ऋग्वेद के तृतीय काण्ड के ५३वें सूक्त में देवराज इन्द्र को विश्वामित्र द्वारा प्रार्थना की गई है। विश्वामित्र कहते हैं-"हे इन्द्र और पर्वत! तुम अपने विशाल रथ के द्वारा आ कर उत्तम सन्तान तथा बहुत मात्रा में इच्छित धन प्रदान करो। हे देवों! तुम हमारी स्तुतियों से वृद्धि को प्राप्त होओ और हमारी आहुतियों को स्वीकार करो। हम तुम्हें जो अन्न प्रदान करते हैं तुम उससे आनन्द प्रात करो ॥१॥

हे मघवन् इन्द्र! तुम हमारे पास आकर बैठो, हमसें दूर मत जाओ! मैं तुम्हारे लिए अच्छी तरह से सेवन किये गये सोम का यज्ञ करता हूँ। वे बलवान् इन्द्र! मैं आनन्ददायी प्रार्थना करके तेरा उसी तरह आश्रय लेता हूँ जिस तरह एक पुत्र अपने पिता का सहारा लेता है ॥२॥

हे अध्वर्यो! तू मुझे (ऋत्विग् को) उत्साहित कर, तत्पश्चात् हम दोनों (ऋत्विग् और अध्वर्यु इन्द्र की स्तुति करेंगे। तू यजमान के इस आसन पर बैठ, जिससे हम दोनों इन्द्र के लिए प्रीतियुक्त और प्रशंसनीय स्तोत्रों का गान करें ॥३॥

हे धनवान् इन्द्र! पत्नी ही घर है, जो प्रमुख आश्रयस्थान है।अतः हे इन्द्र! तू अपने रथ में जुड़े हुए घोड़ों से उसी आश्रय स्थान पर जा। हमारे द्वारा तैयार किया गया सोम रस दूत के समान अग्नि तेरे पास पहुँचा देगा ॥४॥

हे मघवन्! हे भ्राता! तू हमारे पास रह अथवा हमसे दूर अपने निवासस्थान पर जा। दोनों जगह ही तेरी महत्ता है। अतः तू जहाँ भी जाये वहीं अपने रथ के हिनहिनाते हुए घोड़ों को खोल कर पूर्ण विश्राम कर ॥५॥

हे इन्द्र! तू सोम पान करके अपने निवास पर जा क्योंकि घर में प्रिय चाहने वाली और कल्याण करने वाली तेरी पत्नी तेरी प्रतीक्षा करती है। अतः वहाँ तुझे सुख की

प्राप्ति होगी। हे इन्द्र! तू जहाँ भी अपने रथ को रोकता है, वहीं अपने घोड़ों को खोल कर दक्षिणावत् होकर (दयालुता से) विश्राम कर॥६॥

तेजस्वी तथा वीर इन्द्र के पुत्रों ने तथा भोज, अंगिरस और विरूपों ने मुझ विश्वामित्र को अनेक प्रकार से धन प्रदान करके यज्ञ करने के लिए आयु में वृद्धि की॥७॥

यह ऐश्वर्यवान् इन्द्र अपनी मायामयी शक्ति से एक ही क्षण में द्युलोक से आ कर तीनों लोकों में व्याप्त हो जाता है। यह इन्द्र सोमपान करने वाला, ऋतु के अनुसार कर्मों का नियमन करने वाला अपना चमत्कारपूर्ण कर्म करता हुआ अनेक रूपों को धारण कर लेता है॥८॥

विश्व का हितचिन्तक, महान् देवों से उत्पन्न, देव-गुणों से युक्त और महान् है। उस विश्वामित्र ने जलपूर्ण नदी को रोका तथा सुदास के यज्ञ में जाकर कुशिकों के द्वारा इन्द्र के लिए स्नेह का स्थान निर्धारित कराया॥९॥

हे बुद्धिमान्, दूरदर्शी तथा मनुष्यों के शुभचिन्तक कुशिकों! यज्ञ में पत्थर से कूटकर सोम रस निकाल कर हंस के समान सुरीले तथा एक स्वर में एक ही स्तोत्र का उच्चारण करो और मधुर सोम रस का पान करो॥१०॥

हे कुशिकों! उत्साहित होकर पास आओ और ऐश्वर्यप्राप्ति हेतु सुदास के घोड़ों को खोल दो। तेजोमय इन्द्र ने आगे, पीछे और ऊपर चारों ओर से शत्रु का संहार किया है तथा वह शत्रु को मार कर पृथिवी के उत्तम स्थान पर बैठ कर यज्ञ करता है।।११॥

मैंने द्यावापृथिवी तथा इन्द्र की स्तुति की। मुझ विश्वामित्र द्वारा की गई यह स्तुति भरतवंशियों की उन्नति और रक्षा करती है॥१२॥

विश्व के मित्रों ने अर्थात् स्नेह करने वालों ने वज्रधारी इन्द्र के लिए स्तुतिपाठ की रचना की। अतः वह इन्द्र हमें उत्तम धन की प्राप्ति कराता है॥१३॥

हे मघवन्! कीकट (अनार्य) देशों में रहने वाली गायों से न तो इन्द्र को दुग्ध-लाभ होता है, न ही यज्ञ की अग्नि के लिए प्रदीप्त करने का ईधन प्राप्त होता है अतः उनसे कोई लाभ नहीं है। हे इन्द्र! तू सूदखोरों के धन को हमारे लिए लेकर आ, अनार्यों को हमारे लिए तू वश में कर"॥१४॥

इन्द्राकुत्सयोर्वेषादिसाम्यकृतसारूप्ययोः स्वर्गाय सह प्रस्थानम्।

कुत्सः सहानुगन्तुं मनो दधे शक्रसत्कृत्यै।
इन्द्रोपि तत्र कुत्सं सत्कर्तुं पथि पुरश्चक्रे॥१॥
इन्द्रसमानैर्मानैः कुत्सस्याभूत् पुरो यानम्।
तत्पश्चात् पथि शक्रः स्वपरिकरैर्यानमारेभे॥२॥
अस्ति सहस्त्रास्वीने पथि लोकः स्वर्ग इत्येवम्।
व्याचष्ट ऐतरेयः सहस्त्रमेतत्त्वनेकार्थम्॥३॥
इन्द्राकुत्सौ त्वश्वैस्त्रिभिर्दिनैर्जग्मतुः स्वर्गम्।

सह च सहस्रं हरयः किञ्चित् पश्चात्तु मारुती सेना ॥४ ॥
अमरावत्यां देवाः श्रुत्वा वैकुण्ठमागमिष्यन्तम् ।
पुरतः कृत्वेन्द्राणीमुपह्वरे स्वागतायागुः ॥५ ॥
अभ्यायान्तौ दूराद् दृष्ट्वेन्द्रौ द्वौ शचीन्द्राणी ।
चकितातिविस्मिता सा प्रोषितपत्यर्चने च संमुमुहे ॥६ ॥
मरुदुद्बोधितवृत्ता स्वामिनमवधार्य्य पूजयामास ।
सारूप्यदानविषये संवादं केन्द्रतश्चक्रे ॥७ ॥

वेशभूषादि से समान स्वरूप वाले इन्द्र और कुत्स का स्वर्ग के लिए सहगमन

कुत्स ने इन्द्र का सत्कार करने के लिए इन्द्र के साथ जाने का निश्चय किया। इन्द्र ने भी कुत्स का सत्कार करने के लिए मार्ग में कुत्स को आगे कर लिया (स्वयं ने कुत्स का अनुगमन किया) ॥१ ॥

इन्द्र के समान सम्मान प्राप्त करने से कुत्स की सवारी आगे-आगे चली तथा उसके पीछे अपने परिकरों सहित इन्द्र ने चलना प्रारम्भ किया ॥२ ॥

ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि सहस्रास्वीन मार्ग पर स्वर्ग लोक है। यह सहस्र शब्द अनेक अर्थों का वाचक है ॥३ ॥

इन्द्र और कुत्स तीन दिन में अश्वों के द्वारा स्वर्ग में पहुँचे, जिनके साथ में हजार घोड़े थे और कुछ पीछे दैवी सेना थी ॥४ ॥

अमरावती में देवों ने वैकुण्ठ-इन्द्र को आते हुए सुनकर, इन्द्राणी को आगे करके निजी स्थान (एकान्त-स्थान) में स्वागत के लिए गए ॥५ ॥

दूर से आते हुए दो इन्द्रों को देखकर इन्द्राणी शची अत्यन्त आश्चर्यचकित एवं विस्मित होती हुई प्रवासी पति के सम्मान में मोहित हो गई ॥६ ॥

देवों के द्वारा स्वामी का वृतान्त जानकर स्वामी का निश्चय करके इन्द्राणी ने पूजा की और सारूप्य दान के विषय में इन्द्र से वार्तालाप किया ॥७ ॥

स्वर्गे विजयाभिनन्दनीयः प्रमहः ।

अमरावत्यामिन्द्रः स्वीयं सदनं समासाद्य ।
सत्कारदानमानैः कुत्सं संभावयामास ॥१ ॥
मानुषलोके कुत्सप्रस्थानं दस्युसंहारम् ।
इन्द्रविजयमुपलक्ष्य च महोत्सवः कल्पितो देवैः ॥२ ॥
तत्र बृहस्पतिनुन्नः सप्तगुरिन्द्रं महोत्सवे प्रमुखः ।

विजयितमभितुष्टाव प्रोच्य विजयसिद्धमेतदुत्कर्षम् ।।३ ।।
आर्य्यं वर्णं दस्युभिरुपद्रुतं यो द्रुतं समाश्वास्य।
उदजापयत् तमिन्द्रं सप्तगुमुखतः सुरास्तदाऽभ्यगृणन् ।।४ ।।

स्वर्ग में विजयाभिनन्दन का उत्सव

अमरावती में इन्द्र ने अपने भवन में पहुंच कर सत्कार, दान और मान से कुत्स का सम्मान किया ।।१ ।।

मनुष्यलोक में कुत्स के प्रस्थान, दस्युओं के संहार और इन्द्र की विजय को लक्ष्य करके देवों के द्वारा इस महोत्सव का आयोजन किया गया ।।२ ।।

वहाँ बृहस्पति की प्रेरणा से महोत्सव में प्रधानतः सप्तगु ने विजय-प्राप्त इन्द्र की विजय से सिद्ध इस उत्कर्ष की प्रशंसा की ।।३ ।।

दस्युओं के द्वारा उपद्रवग्रस्त होने पर आर्य वर्ण को जिस इन्द्र ने शीघ्र ही आश्वासन देकर उनका उद्धार किया। इस प्रकार उस इन्द्र को देवताओं ने सप्तगु के माध्यम से सम्मानित किया ।।४ ।।

तत्रेन्द्रस्तुतिविधानाय नृमेधपुरुमेधौ देवेन्द्रसातेयं मरुद्गणममभिलक्ष्य मन्त्रयतः।

ऋ.८/८६ "बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम्।
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ।।१ ।।
अपाधमदभिशस्तीरशस्तिहाथेन्द्रो द्युम्न्याभवत्।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण ।।२ ।।
प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत।
वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ।।३ ।।
अभि प्र भर धृषता धृषन्मनः श्रवश्चित्ते असद् बृहत्।
अर्षन्त्वापो जवसा वि मातरो हनो वृत्रं जया स्वः" ।।४ ।।

वहाँ इन्द्र की स्तुति करने के लिए नृमेध और पुरुषमेध ने देवेन्द्र के साथ देवों को अभिलक्षित करके मन्त्रोच्चार किया।

ऋग्वेद के मण्डल ८, सूक्त ८९ में नृमेध और पुरुषमेध मरुद्गणको लक्ष्य करके देवेन्द्र के लिए कहते हैं—

"हे यज्ञ के वृद्धिकर्ता मरुद्गण ! जिस नियम से तुमने दिव्य तेज पूर्ण ज्योति को उत्पन्न किया है, उस बृहत् नामक छन्द को वृत्रहन्ता इन्द्र के लिए उच्चारित करो ॥१ ॥

हे अत्यन्त ज्योतिःसम्पन्न मरुद्गण ! इन्द्र ने उन समस्त हिंसक शत्रुओं को मारा है, जो भी बुरा कार्य करता है, इन्द्र उन सब को मारता है। उसी कार्य को करके इन्द्र तेजस्वी हुआ है। इन्द्र की मित्रता के लिए सब इन्द्र के पास जाते हैं ॥२ ॥

हे मरुद्गण ! वह इन्द्र तीक्ष्ण धार वाले वज्र से वृत्र को मारने वाला है, सैकड़ों शुभ कर्म करने वाला है तथा शत्रुओं को मारने वाला है। तुम उस इन्द्र के लिए स्तोत्रगान करो ॥३ ॥

हे सुदृढ़ मन वाले इन्द्र ! अपने दृढ़ तथा शक्तिशाली मन से हमें वह उत्तम अन्न प्रदान कर, भरपूर मात्रा में प्रदान कर जो तेरा ही है। हे इन्द्र ! तू वत्र को मार कर जलों को जीत और मातास्वरूप वेगवती नदियों को वेग से बहने के लिए प्रेरित कर ॥४ ॥

अथैतौ नृमेधपुरुमेधौ देवेन्द्रमेवाभिलक्ष्य महयतः स्म।

"यज्जायथा अपूर्व्य मघन्वृत्रहत्याय।
तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उत द्याम् ॥५ ॥
तत्ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः।
तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम् ॥६ ॥
आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो देवि।
धर्मं न सामन्तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत्" ॥७ ॥

तदनन्तर देवराज इन्द्र को लक्ष्य करके नृमेध और पुरुमेध ने इन्द्र की महिमा का गान किया

हे ऐश्वर्यशाली, अपूर्व कार्य करने वाले इन्द्र ! तूने जिस शक्ति से वृत्र का वध किया उसी शक्ति से तूने पृथिवी का विस्तार किया और उसी शक्ति से द्यौः को स्थिर किया ॥५ ॥

हे इन्द्र ! सर्वत्र सर्वस्व तेरा ही है। जो यज्ञ हुए, मन्त्रोचारण किये गये, वषट्कार (स्वाहा) भी तेरे लिए ही हुए हैं। संसार में जो कुछ उत्पन्न हुआ है, वह सब भी तेरा ही है ॥६ ॥

हे इन्द्र ! गायों में परिपक्व दुग्ध इन्द्र की महिमा से ही स्थापित हुआ है, सूर्य को द्युलोक में स्थापित किया। हे मनुष्यों ! तुम इन्द्र को उत्तम स्तोत्रों से उसी प्रकार बढ़ाओ, जिस प्रकार सामों से प्रवर्ग्य यज्ञ को बढ़ाते हैं। पूज्य इन्द्र के लिए प्रिय बृहत् साम का गान करो" ॥७ ॥

पुनरेतौ नृमेधपुरुमेधौ देवेन्द्रमभिवर्णयतः ।

ऋ.८/९० "आ नो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचीषमः ॥१ ॥
त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् ।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥२ ॥
ब्रह्मा त इन्द्र गिर्वणः क्रियन्ते अनतिद्भुता ।
इमा जुषस्व हर्यश्व योजनेन्द्र या ते अमन्महि ॥३ ॥
त्वं हि सत्यो मघन्ननानतो वृत्रा भूरि न्यृञ्जसे ।
स त्वं शविष्ठ वज्रहस्त दाशुषेऽर्वाञ्चं रयिमा कृधि ॥४ ॥
त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पते ।
त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इदनुत्ता चर्षणीधृता ॥५ ॥
तमु त्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधो भागमिवेमहे ।
महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र प्र ते सुम्ना नो अश्नवन्" ॥६ ॥

नृमेध और पुरुमेध द्वारा पुनः देवेन्द्र की महिमा का गान

"यह इन्द्र वृत्र को मारने वाला है, सोम पीने वालों में श्रेष्ठ, धनुष की उत्तम प्रत्यंचा रखता है, युद्धो में लोग जिसे सहायता के लिए बुलाते हैं, ऐसा वह इन्द्र हमारे मन्त्रों और यज्ञो को अलंकृत करे ॥१ ॥

हे इन्द्र ! तू श्रेष्ठ दान दाता है, तू सत्य पर सब प्रकार से शासन करता है। हम बल-पुत्र, अत्यन्त तेजस्वी इन्द्र के देने योग्य धन की कामना करते हैं ॥२ ॥

हे श्रेष्ठ घोड़ों वाले इन्द्र ! हम ध्यान से तेरे वास्तविक स्वरूप का चित्रण करने वाले जिन स्तोत्रों को बोलते हैं तथा जिन स्तोत्रों को बोलने के लिए दूसरों को प्रेरित करते हैं, उन स्तोत्रों को तू स्वीकार कर ॥३ ॥

हे मघवन् ! तू अनेक वृत्रों (मेघों) को मारता है, तू सत्यवक्ता है, तू दूसरे के सामने झुकता नहीं है हे वृत्रध्न ! बलवान् इन्द्र ! तू दाना-दाता के लिए अधिक धन प्रदान कर ॥४ ॥

हे बलों के स्वामी ! तू यशस्वी है, सोमपायी है, तू अपने घोर वज्र से अकेला ही मनुष्यों की उन वृत्रों से रक्षा करता है, जिनको मनुष्य जीत नहीं सकते, जो अजेय हैं ॥५ ॥

हे बुद्धिमान् इन्द्र ! हम तेरा सुख भोगना चाहते हैं। जिस प्रकार एक पुत्र अपने पिता से धन मांगता है उसी प्रकार हम इन्द्र से धन मांगते है। हे इन्द्र ! तू प्राण रक्षक है, तेरा आश्रय हमारे लिए एक कवच के समान है हम तुझसे धन मांगते हैं" ॥६ ॥(८/९०/१-६)

तिरश्चीर्द्युतानो वा मारुतोऽभिनन्दयति।

ऋ.८/९६ "अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः।
आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त॥१३॥
द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ॥१४॥
अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयत्तन्वं तित्विषाणः।
विशो अदेवीरभ्या३ चरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे॥१५॥
त्वं ह त्यत्सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र।
गूळहे द्यावापृथिवी अन्वविदो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः॥१६॥
त्वं ह त्यदप्रतिमानमोजो वज्रेण वज्रिन्धृषितो जघन्थ।
त्वं शुष्णस्यावातिरो वधत्रस्त्वं गा इन्द्रशच्येदविन्दः॥१७॥
त्वं ह त्यद् वृषभ चर्षणीनाङ् घनो वृत्राणां तविषो वभूथ।
त्वं सिन्धूँरसृजस्तस्तभानान् त्वमपो अंजयो दासपत्नीः"॥१८॥

तिरश्ची अथवा मरुत्पुत्र द्युतान द्वारा इन्द्राभिनन्दन

शीघ्रता से चलते हुए कृष्णासुर ने अपनी दस हजार सेनाओं के साथ अंशुमती नदी पर पहुँच कर डेरा डाला और अपनी पूर्ण शक्ति से गर्वित होते हुए कृष्णासुर का इन्द्र ने मुकाबला किया, जिसमें श्रेष्ठ इन्द्र ने शत्रु की समस्त सेना को नष्ट कर दिया॥१३॥

सूर्य के समान मैंने सामने खड़े हुए कृष्णासुर को और अंशुमती नदी के किनारे गुफा में विचरण करते हुए द्रप्स को देखा है। हे वृषण! मैं तुम्हारी सहायता चाहता हूँ, तुम उनसे युद्ध करो॥१४॥

तत्पश्चात् द्रप्स ने अंशुमती नदी के किनारे तेजस्वी होते हुए शरीर को धारण किया। बृहस्पति के साथ इन्द्र ने चारों ओर से युद्ध करती हुई शत्रुसेना को परास्त कर दिया॥१५॥

हे इन्द्र! जन्म से ही तेरा कोई शत्रु नहीं है, ऐसा तू उन सात असुरों का शत्रु बन गया और असुरों द्वारा छिपाये हुए द्युलोक और पृथिवी लोक को प्रकाशित किया, जिससे सभी लोक आनन्दित हो गये॥१६॥

हे वज्रिन् इन्द्र! अप्रतिम बलशाली उस वृत्र को तूने अपने वज्र से मारा। तूने अपने शस्त्रों से शुष्ण असुर का संहार करके गायों को अपनी सामर्थ्य से मुक्त करा दिया॥१७॥

हे मनुष्यों में श्रेष्ठ बलशाली इन्द्र! तू ही वृत्रों का वध करके शक्तिसंपन्न बना, तू ही रुकी हुई नदियों को बहाने वाला है, तूने ही दास द्वारा रोकी हुई नदियों के जलप्रवाह पर विजय प्राप्त की"॥१८॥(८/९६/१३-१८)

वभ्रो वैखानसः स्तौति।

ऋ.१०/९९ "स द्रुह्वणे मनुष ऊर्ध्वसान आ साविषदर्शसानाय शरुम्।
स नृतमो नहुषोऽस्मत्सुजातः पुरोभिनदर्हन् दस्युहत्ये ॥७॥
सो अभ्रियो न यवस उदन्यन्क्षयाय गातुं विदन्नो अस्मे॥
उप यत्सीददिन्दुं शरीरैः श्येनोऽयोपाष्टिर्हन्ति दस्यून् ॥८॥
स व्राधतः शवसानेभिरस्य कुत्साय शुष्णं कृपणे परादात्॥
अयं कविमनयच्छस्यमानमत्कं यो अस्य सनितोत नृणाम् ॥९॥
अस्य स्तोमेभिरौशिज ऋजिश्वा व्रजं दरद्वृषभेण पिप्रोः।
सुत्वा यद्यजतो दीदयद्गीः पुर इयानो अभि वर्षसा भूत्" ॥११॥

वैखानस वभ्र द्वारा स्तुति

वह श्रेष्ठ इन्द्र, दुष्ट और हिंसक मनुष्य का संहार करने के लिए वज्र को धारण करता है। वह नरश्रेष्ठ, उच्च कुल में उत्पन्न है, लेकिन दुष्ट पुरुषों को दण्ड देने के लिए घोर संग्राम में हमारे शत्रुओं का संहार करे और उनके दुर्धर्ष दुर्गों को तोड़े ॥७॥

वह बादलों के समान सर्वप्रथम अन्न की उत्पत्ति के लिए जल की वर्षा करने वाला है और हमें हमारे निवासस्थान दिखाने वाला है। वह इन्द्र श्येन पक्षी के तीक्ष्ण और कठोर पंजो से पकड़ने के समान शत्रुओं को पकड़ता है। जब वह सम्पूर्ण स्वरूप से सोम के पास जाता है तब वह शत्रु का संहार करता है ॥८॥

वह इन्द्र अपने बलशाली शस्त्रों से महाबली शत्रुओं को भी पराजित कर देता है, इस इन्द्र ने स्तुति करने वाले अपने भक्त कुत्स के लिए शुष्ण नामक असुर का संहार किया, उसने स्तोता, कवि उशना के विरोधियों को अपने वश में किया। यह उशना कवि वृष्टिकर्ता इन्द्र के व्यापक रूप, ज्ञान और अनुचर मरुतों को जानता था ॥९॥

इन्द्र के स्तोत्रों से बल प्राप्त उशिज के पुत्र ऋजिश्वा ने पिप्रु नामक असुर के मर्मस्थल को विदीर्ण किया जब उपासना करते हुए औशिज ने सोम प्रस्तुत करते हुए यज्ञ में स्तुतिपाठ किया, उसी समय शत्रुओं के नगरों को नष्ट करते हुए उन्हें भी नष्ट कर दिया ॥११॥
(१०/९९/७-११)

अथ प्रमहप्रमुखः सप्तगुः स्वर्णरः प्राधान्येनेन्द्रं महयति।

ऋ.१०/४७ "जगृभ्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनाम्।
विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥१॥
स्वायुधं स्ववसं सुनीथं चतुःसमुद्रं धरुणं रयीणाम्।

चर्कृत्यं शंस्यं भूरिवारमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥२ ॥
सुब्रह्माणं देववन्तं बृहन्तमुरुं गभीरं पृथुबुध्नमिन्द्र।
श्रुतऋषिमुग्रमभिमातिषाहमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥३ ॥
सनद्वाजं विप्रवीरं तरुत्रं धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम्।
दस्युहनं पूर्भिदमिन्द्र सत्यमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥४ ॥
अश्वावन्तं रथिनं वीरवन्तं सहस्रिणं शतिनं वाजमिन्द्र।
भद्रव्रातं विप्रवीरं स्वर्षामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥५ ॥
प्र सप्तगुमृतधीतिं सुमेधां बृहस्पतिं मतिरच्छा जिगाति।
य आङ्गिरसो नमसोपसद्योऽस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दा ॥६ ॥
वनीवानो मम दूतास इन्द्रं स्तोमाश्चरन्ति सुमतीरियानाः।
हृदिस्पृशो मनसा वच्यमाना अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥७ ॥
यत्त्वा यामि दद्धि तन्न इन्द्र बृहन्तं क्षयमसमं जनानाम्।
अभि तद् द्यावापृथिवी गृणीतामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः" ॥८ ॥

तदन्तर प्रमहप्रमुख स्वर्ग-मानव सप्तगु द्वारा प्रमुख रूप से इन्द्र की महिमा का गान

ऋग्वेद के १०/४७ में इन्द्र की स्तुति करते हुए कहते हैं- "हे धनों के स्वामी इन्द्र ! हम धन की इच्छा करने वाले तेरे दाहिने हाथ को ग्रहण करते हैं (दान देने वाला हाथ दाहिना हाथ है)। हे इन्द्र ! हम तुम्हें गायों का स्वामी जानते हैं। तू हमें विचित्र और इच्छित धन प्रदान कर ॥१ ॥

सुन्दर वज्रादि अस्त्रों से युक्त सबको अपने वश में करने वाला, सुनयन, चारों समुद्रों को यशसम्पन्न करने वाला, धरुण, पुनः पुनः धन का सम्पादन करने वाला, दुःखनिवारक, स्तुतियोग्य हे इन्द्र ! तू हमें अद्‌भुत धन प्रदान कर, हम तूझे जानते हैं ॥२ ॥

हे इन्द्र ! हम तुझे जानते हैं। तू देवभक्त है, महान् है, स्तुत्य है, व्यापक है, गंभीर विस्तृत और गहन ज्ञानसम्पन्न है, तेजस्वी और शत्रु-दमन-कर्ता है। इसलिए हे इन्द्र ! तू हमें पूज्य और श्रेष्ठ शक्तिसम्पन्न पुत्र प्रदान कर ॥३ ॥

अन्नयुक्त, श्रेष्ठ, शक्तिसम्पन्न धनपूरक, उन्नतिशील, उत्तम बलशाली, शत्रुसंहर्ता, शत्रु दुर्गों का संहारक, सत्य कर्म के कर्ता हे इन्द्र ! हम तुझे जानते हैं, तू हमें शक्तिसम्पन्न, इच्छित पुत्र प्रदान कर ॥४ ॥

हे इन्द्र ! अश्व, रथ, वीरयोद्धाओं से सम्पन्न, सैंकड़ों, हजारों सेवकों से युक्त, बलवान् और कल्याणकारी परिकरों से सम्पन्न, अत्यन्त श्रेष्ठवीर, सुखदाता तू हमें शक्तिसम्पन्न इच्छित और बलवान् पुत्र-रूपी धन प्रदान कर ॥५ ॥

मुझ सप्तगु को उत्तम और ज्ञानसम्पन्न बुद्धि प्राप्त हो। मैं सत्य कर्म करने वाला, श्रेष्ठ बुद्धिसम्पन्न बृहस्पति हूँ। मैं आंगिरस के वंश में उत्पन्न हुआ हूँ, मैं नमस्कार करके देवों के पास गया, इसलिए मुझे अतिविशिष्ट और बलवान् पुत्र रूपी धन प्रदान कर ॥६ ॥

स्नेहसम्पन्न प्रार्थना से युक्त दूत के समान स्तुतियाँ सुमति की इच्छा से इन्द्र को प्राप्त हों। ये स्तुतियाँ हृदय का स्पर्श करने वाली और मन से उच्चारण की गई हैं। अतः मुझे अतिविशिष्ट और धनवान् पुत्र रूपी धन की प्राप्ति हो ॥७ ॥

हे इन्द्र ! मैं जो कुछ तुझसे कामना करता हूँ वह तू मुझे प्रदान कर। सर्वश्रेष्ठ निवास स्थान और अतिविशिष्ट गृह प्रदान कर, जिसकी द्यावा पृथिवी में भी विशिष्टता गायी जाये। हे इन्द्र ! हमें अत्यन्त आश्चर्ययुक्त, समृद्ध धन प्रदान कर ॥८ ॥

अभिगरप्रतिगरनियमः

सदसि पुरातनसमये संवादेऽभ्यर्थनासु वा महताम्।
प्रथमं यद्वक्तव्यं सोऽभिगरः प्रतिगरस्तु तत्र परः ॥१ ॥
यं प्रत्यभिगर उक्तः सोऽभ्युपयन् प्रतिगरं कुरुते।
सोऽपगरोऽभिगरं चेदाक्षिपति त्रुटिमुदाहरँस्तस्य ॥२ ॥
स्वर्गे विजयमहोत्सव-संसदि सप्तगुकृतेऽर्थनाऽभिगरे।
प्रतिगरतया महेन्द्रोऽभ्युपयन्नूचे पुराकृतं त्राणम् ॥३ ॥

अभिगर-प्रतिगर का नियम

प्राचीन समय में सभा में, संवाद में अथवा महान् लोगों की स्तुतियों में प्रस्तुत किए जाने वाले प्रथम वक्तव्य को अभिगर कहते थे तथा उसके पश्चात् दिया जाने वाला वक्तव्य (प्रत्युत्तर) प्रतिगर होता था ॥१ ॥

जिसके प्रति अभिगर कहा गया है, वह अपगर यदि त्रुटि बताते हुए आक्षेप करता है तो वक्ता प्रतिगर करता है (प्रत्युत्तर देता है) ॥२ ॥

स्वर्ग में विजय महोत्सव की संसद् में ऋषि सप्तगु द्वारा किए गए प्रार्थना अभिगर के उच्चारण के बाद प्रतिगर के रूप में इन्द्र ने अपने पहले किए हुए त्राण (रक्षा) का उल्लेख करते हुए कहा ॥३ ॥

सप्तगुमुखेन देवानामभिगरे देवेन्द्रस्य प्रतिगरः।

१०/४८ "अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि सं जयामि शश्वतः।
मां हवन्ते पितरं न जन्तवोऽहं दाशुषे विभजामि भोजनम् ॥१ ॥
अहमिन्द्रो रोधो वक्षो अथर्वणस्त्रिताय गा अजनयमहेरधि।
अहं दस्युभ्यः परि नृम्णमा ददे गोत्रा शिक्षन् दधीचे मातरिश्वने ॥२ ॥

महां त्वष्टा वज्रमतक्षदायसं मयि देवासोऽवृजन्नपि क्रतुम्।
ममानीकं सूर्यस्येव दुष्टरं मामार्यन्ति कृतेन कर्त्वेन च॥३॥
अहमेतं गव्ययमश्व्यं पशुं पुरीषिणं सायकेना हिरण्ययम्।
पुरू सहस्रा निशिशामि दाशुषे यन्मा सोमास उक्थिनो अमन्दिषुः॥४॥
अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽक्तस्थे कदाचन।
सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन॥५॥
अहमेताञ्छाश्वसतो द्वाद्वेन्द्रं ये वज्रं युधयेऽकृण्वत।
आह्वयमानाँ अव हन्मनाहनं दृळहा वदन्ननमस्युर्नमस्विनः॥६॥
अभीदमेकमेको अस्मि निष्षाळभी द्वा किमु त्रयः करन्ति।
खले न पर्षान् प्रति हन्मि भूरि किं मा निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्राः॥७॥
अहं गुङ्गुभ्यो अतिथिग्वमिष्करमिषं न वृत्रतुरं विक्षु धारयम्।
यत्पर्णयघ्न उत वा करञ्जहे प्राहं महे वृत्रहत्ये अशुश्रवि॥८॥
प्र मे नमी साप्य इषे भुजे भूद्गवामेषे सख्या कृणुत द्विता।
दिद्युं यदस्य समिथेषु मंहयमादिदेनं शंस्यमुक्थ्यं करम्॥९॥
प्र नेमस्मिन्ददृशे सोमो अन्तर्गोपा नेममाविरस्था कृणोति।
स तिग्मश्रृङ्गं वृषभं युयुत्सन् द्रुहस्तस्थौ बहुले बद्धो अन्तः॥१०॥
आदित्यानां वसूनां रुद्रियाणां देवो देवानां न मिनामि धाम।
ते मा भद्राय शवसे ततक्षुरपराजितमस्तृतमषाळहम्"॥११॥

देवों के अभिगर के पश्चात् देवेन्द्र का प्रतिगर

१०/४८ में इन्द्र कहते हैं - "मैं सम्पत्तियों का अग्रणी स्वामी हूँ, मैं सदा ही शत्रुओं को उनके धन के साथ जीतता हूँ, जैसे पुत्र अपने पिता को आदरपूर्वक बुलाता है, वैसे ही समस्त प्राणिमात्र मुझे बुलाते हैं, मैं दानदाता हूँ, प्रजाओं को अन्नादि ऐश्वर्य प्रदान करता हूँ॥१॥

मैंने अथर्वणपुत्र दधीचि का मस्तक काट दिया, त्रित के उद्धार के लिए मैंने मेघ से जल को उत्पन्न किया था, मैंने दस्युओं से धन प्राप्त किया था, मैंने मातरिश्वा के पुत्र दधीचि के लिए मेघों को बरसाया ॥२॥

त्वष्टा ने मेरे लिए लोहे के समान कठोर वज्र का निर्माण किया, मेरे लिए देवता यज्ञ कर्म करते हैं, मेरी सेना सूर्य के समान दुर्जेय है, अपने किये हुए कर्मों के फलस्वरूप ही सभी लोग मुझे प्राप्त होते हैं॥३॥

जब स्तुतिकर्ता मुझे स्तुतियों और सोम से आनन्दित करते हैं तब मैं दानशील स्तुतिकर्ताओं के लिए सहस्रों आयुधों की धार तीक्ष्ण कर लेता हूँ, तब मैं शत्रुओं की गायें, अश्व, स्वर्ण, दुग्ध और जलयुक्त समस्त सम्पत्ति अपने आयुधों से जीत लेता हूँ ॥४ ॥

मैं इन्द्र अपने धन को कभी हार नहीं सकता हूँ, मैं मृत्यु से भी कभी स्वयं को जीता गया नहीं पाता हूँ, इसलिए सोम का सवन करने वाले हे यजमानों ! मुझसे ही धन की याचना करो । हे मनुष्यों ! मेरे साथ तुम्हारी मित्रता कभी समाप्त नहीं होनी चाहिये ॥५ ॥

मैं इन्द्र उन जीवनधारी शत्रुओं को दो-दो को एक साथ नष्ट कर देता हूँ, जो शत्रु-संहारक, वज्रधारी मुझ इन्द्र का युद्ध के लिए आह्वान करते हैं। उन आह्वानकर्ता शत्रुओं को बलहीन करके, स्वयं न झुकते हुए गर्जना करने वालों को उपायपूर्वक मार देता हूँ ॥६ ॥

मैं अकेला ही एक शत्रु को जीत सकता हूँ, शत्रुहीन मैं दो शत्रुओं को जीत सकता हूँ, तीन भी यदि हों तब भी मेरा क्या कर सकते हैं? मैं उन शत्रुओं को उसी तरह मर्दित कर देता हूँ जैसे किसान धान लिए गेहूँ की बाल को मर्दित करता है ॥ वे इन्द्र-विरोधी शत्रु मेरी क्या निन्दा करेंगे? ॥७ ॥

अन्न उत्पादक और शत्रुसंहर्ता, अतिथिग्व के पुत्र दिवोदास को गुंगुओं के देश की रक्षा के लिए प्रजाओं के बीच उसी तरह प्रतिष्ठित किया जैसे अन्न को प्रतिष्ठित किया जाता है। इसलिए मैं करंज और पर्णय नाम के शत्रुओं का वध करने के कारण महायुद्ध में प्रसिद्ध हुआ ॥८ ॥

मेरी स्तुति करने वाला सबके द्वारा आश्रय पाने योग्य, अन्नवान् और भोग्य पदार्थों का दाता होता है, उसे लोग गायों का दान लेने के लिए और मित्रता के लिए दो प्रकार से स्वीकार करते हैं ॥९ ॥

इन्द्र अपने दो स्तोताओं में से एक के पास अवश्य ही सोम को देखता है, यह पालनकर्ता इन्द्र अपने स्तोता के लिए स्वयं को वज्रसा ' प्रकट करता है। वह इन्द्र युद्ध के इच्छुक शत्रु के सामने तीक्ष्ण सींग वाले वृषभ क समान होकर घोर अन्धकार में खड़ा हो गया है ॥१० ॥

वह इन्द्र आदित्य, वसु, रुद्र और देवों के घरों को नष्ट नहीं करता है। ये समस्त देव मुझे कल्याण और बल प्रदान करने की कृपा करें। मैं अपराजित, उत्साहवान् और शक्तिशाली हूँ ॥११ ॥ (१०/४८/१-११)

स्वर्गप्रमहेण दस्युविजयनीयेन्द्रचरितपूर्णताख्यानम्।

इत्थं स्वाराड् दस्युनाशं व्यधात् प्राग् वैकुण्ठेन्द्रो नैषधेऽद्रौ स्थितः सन्।
कुत्सं राज्ये स्थापयित्वा स दस्यूनार्यो राष्ट्रे तान्निगृह्य स्वरागात् ॥१ ॥

कुत्सो राजाऽन्ये च राजान एते सिन्धोः प्रत्यग् नीवृति प्राग् यथाऽऽसन्।
सर्वे सभ्या आर्य्यराजास्त एते स्वं स्वं राज्यं प्राग्वदत्राध्यतिष्ठन्॥२॥

स्वर्गोत्सव द्वारा दस्युविजय से सम्बद्ध इन्द्रचरित की पूर्णता का आख्यान

इस प्रकार वैकुण्ठपति स्वाराट् इन्द्र ने निषध पर्वत पर स्थित रहकर पहले दस्युओं का नाश किया, फिर कुत्स को राज्य पर स्थापित करके दस्युओं के संहर्ता उस इन्द्र ने राष्ट्र में उन दस्युओं को निगृहीत करके स्वर्ग को गमन किया॥१॥

कुत्स तथा अन्य राजागण सिन्धु के पश्चिम देश के राजा थे। ये सभी सभ्य और आर्य राजा थे, ये जैसे थे वैसे ही अपने अपने स्थान पर पूर्ववत् पुनः अधिष्ठित हो गए॥२॥

अथोदयनीयं परिशिष्टाख्यानम्।

अथ दस्युभिः सारस्वतसूर्य्यापहरणम्।

इत्थं देवस्वाराट् प्रतापतः सर्वरूपायाम्।
विहितायामपि शान्तौ नातिष्ठत् सा चिरं शान्तिः॥१॥
धृष्टा उद्धतहृदयाः कुर्वाणाः पुनरुपद्रवं भूयः।
आक्रममाणाः सूर्य्यस्थाने पुनरप्यशांतिमातेनुः॥२॥
वैकुण्ठद्विषि हन्तुं देवकुलं प्रस्थितेऽसुराधीशे।
प्रह्लादे त्वार्य्याणां क्षोभाद् दस्युभिरयं हतः सूर्य्यः॥३॥
गान्धारस्थं सूर्य्यं विद्वेषाद् ध्वंसयन्तोऽन्ये।
असुरा यवनप्रान्ते पुनरैच्छन् तं निधापयितुम्॥४॥

तदनन्तर उत्तर काल का परिशिष्टाख्यान

इसके पश्चात् दस्युओं द्वारा सारस्वत सूर्य का अपहरण

इस प्रकार देव-स्वाराट् इन्द्र ने अपने प्रताप से समस्त प्रकार की शान्ति स्थापित कर दी तथापि वह शान्ति दीर्घकाल तक स्थित नहीं रही॥१॥

धृष्ट और उद्धत स्वभाव वालों ने उपद्रव करते हुए सूर्यस्थान पर आक्रमण करते हुए फिर से अशान्ति फैला दी॥२॥

वैकुण्ठ इन्द्र से द्वेष करने वाले असुरपति प्रह्लाद के देवकुल का संहार करने के लिए प्रस्थान करने पर आर्यों के क्षोभ (दुर्बलता) से इस सूर्य का अपहरण कर लिया गया ॥३ ॥

अन्य असुरों ने ईर्ष्यावश गान्धार देश में स्थित सूर्य को नष्ट करते हुए यवन प्रान्त में पुनः स्थापित करना चाहा ॥४ ॥

सीरियादेशे बालवकभवननिर्माणम्।

शामो रोमकतनयस्तद्दायः शामदेशो यः।
स च पश्चादवरुद्धः सुरैस्ततः सीरिया नाम ॥५ ॥
तस्मिन् देशे हेलिः पौलस्त्यो निर्म्ममे सौरम्।
भवनं बालवकाख्यं तस्मिन्शालाऽद्भुतस्कम्भा ॥६ ॥
अद्याप्येकः स्कम्भः श्वेताश्ममयोऽत्र दृश्यते भुग्नः।
चत्वारिंशत् सप्त च हस्ता ऊर्ध्वे परिस्तृतौ तु नव ॥७ ॥
तैरिदमद्भुतमासीत् सुदृढविशालैः शिलास्तम्भैः।
भवनं तत्र च शाला विहितासीत् पूर्वसाम्येन ॥८ ॥
नासीत्तत्र तु चक्रं शालैवासीद्विशालैषा।
चक्राभावात् तस्मिन् प्रतिबिम्बार्थं च न द्युरन्ध्राणि ॥९ ॥
*** अचरन् देवाश्चक्रं शालं त्वसुराः समाश्रिता आसन्।**
इत्थं शतपथ उक्तं काण्डे षष्ठेऽष्टमाध्याये ॥१० ॥
सैषाऽस्ति हि परिभाषा सर्वत्रैवोपनीयते तस्मात्।
चक्रमनस्तच्छालं कुम्भीत्येवं हविर्ग्रहणे ॥११ ॥
चक्रं त्वश्मा पृश्निः शालं यन्त्रं तु सूर्य्यविज्ञाने।
चक्रं परित्यजन्तः शालामेवाऽसुरा व्यदधुः ॥१२ ॥

सीरिया देश में बालवकभवन का निर्माण

रोमक का पुत्र शाम था, जिसके हिस्से का प्रदेश यह शाम देश (सामदेश) था, जो परवर्ती काल में देवों के द्वारा रोक दिया गया, इसलिए उसका नाम सीरिया पड़ा ॥५ ॥

उस सीरिया देश में पुलस्त्य के पुत्र "हेलि" ने "बालवक" नाम के सूर्य-भवन का निर्माण किया, जिसमें बड़े विचित्र स्तम्भों वाली शाला थी ॥६ ॥

---

* देवाश्चक्रमचरन् शालमसुरा आसन्। ते देवाश्चक्रेण चरन्त एतत्कर्म्मापश्यन्- (वनीवाहनम्)। तस्मादनस एव पौराडाशेषु यजूंषि-अनसोऽग्नौ। (शत. ६।८।१।१)

आज भी भग्नावस्था में एक स्तम्भ, जो श्वेत पत्थर से निर्मित है, यहाँ देखा जाता है। यह स्तम्भ सैंतालीस हाथ ऊँचा और नौ हाथ के घेरे का है ॥७॥

उन विशाल और सुदृढ़ शिलास्तम्भों से वह भवन अत्यन्त अद्भुत था और पूर्व के सूर्यभवन, की समानता से यहाँ अनेक शालाओं का निर्माण किया गया था ॥८॥

यह शाला ही विशाल थी, परन्तु इसमें चक्र नहीं था और चक्र के अभाव के कारण उस शाला में प्रतिबिम्ब के लिए आकाशीय छिद्र भी नहीं थे ॥९॥

देवों ने चक्र का आश्रय लिया और असुरगण उस शाला के ही आश्रित रह गए* ऐसा शतपथ ब्राह्मण के छठे काण्ड के अष्टम अध्याय में कहा गया है ॥१०॥

इसलिए यह वह परिभाषा है, जो सर्वत्र ग्रहण की जाती है। चक्र से तात्पर्य है शकट (गाड़ी) और शाल हवि का आहरण करने वाली कुम्भी (मिट्टी का पात्र) का नाम है ॥११॥

सूर्य-विज्ञान में चक्र से तात्पर्य अश्मा (विशिष्ट पत्थर) से है और शालयन्त्र से तात्पर्य पृश्नि (ज्योतिर्मण्डल अथवा गौ) है। असुरों ने चक्र का परित्याग करते हुए मात्र शाला का ही निर्माण किया ॥१२॥

सरस्वत्याख्यब्राह्मीसूर्य्यप्रातिनिधेनाब्राह्मीसूर्य्यप्रतिष्ठापना।

सिन्धुसरस्वत्योः प्राक्कूलात् प्राच्यां पुरा स्थितः सूर्य्यः।
सिन्धोरब्राह्म्या अपि नद्याः प्राच्यां प्रतिष्ठितः पश्चात् ॥१३॥
भूमध्यसागरस्य प्राक्कूले वहति या नाम्ना।
इवरिम नदीयमेवाब्राह्मी तां क्वचिदडोनिसं चाहुः ॥१४॥
संवत्सरे कदाचिज्जलमब्राह्म्या भवत्यस्याः।
नद्या लोहितमचिरात् तत्र न जानन्ति कारणं केचित् ॥१५॥
अब्राह्मी तु नदी या बालवकं नाम यद् भवनम्।
क्रोशा विंशतिरनयोरन्तरमस्तीह पश्चिमेऽस्ति नदी ॥१६॥
उज्जयनमध्यरेखापश्चिमदेशान्तरे स्थितं तदिदम्।
चत्वारिंशप्राये धाम चतुस्त्रिंशकेऽक्षांशे ॥१७॥
ऊनचत्वारिंशकेंऽशे सप्तविंशतिसाधिके।
(३९।२७।भारतीयपश्चिमदेशान्तरे)
उज्जायिन्याः पश्चिमतः स्थानं बालवकं स्थितम् ॥१८॥
तद् ग्रीनवीचस्तु प्राच्यां षट्त्रिंशके सपादेंऽशे।
(३६।१५ ग्रीनविचपूर्वदेशान्तरे)

---

* देवों ने चक्र की रचना की और असुरों ने शाला का आश्रय लिया। उन देवगणों ने चक्र का उपयोग करते हुए इस कर्म को देखा (वनीवाहन कर्म)। "अनस ही अग्नि है"। ऐसा यजुर्वेद का मन्त्र बोलते हुए (निर्धारित किया) कि पुरोडाश के लिए शकट (गाड़ी) से ही धान ग्रहण करना चाहिए।

बालवकाख्यं सौरं सद्माद्भुतमसुरनिर्म्मितं रेजे ॥१९ ॥
तत्र च बालवकाख्ये भवने यं स्थापयामासुः ।
सूर्य्यमदेवाः सोऽपि च तत्रागारे तमोमये विबभौ ॥२० ॥

सरस्वती नामक ब्रह्म से सम्बद्ध सूर्य के प्रतिनिधिस्वरूप अब्राह्मी (असुरों से सम्बद्ध) सूर्य की स्थापना

पुराकाल में सिन्धु और सरस्वती के पूर्वी किनारे के पूर्व भाग में यह सूर्य (सूर्य-संस्था) स्थित था और उत्तरकाल में अब्राह्मी नदी की भी पूर्व दिशा में यह सूर्य प्रतिष्ठित किया गया ॥१३ ॥

भूमध्य सागर के पूर्वी किनारे पर जो इवरिम नाम की नदी बहती है, जिसे कहीं "अड़ोनिस" नाम से कहा गया है, वह अब्राह्मी नदी है ॥१४ ॥

वर्ष के किसी भाग में इस अब्राह्मी नदी का जल कुछ समय से लाल हो जाता है, परन्तु इसका कारण कोई नहीं जानते हैं ॥१५ ॥

जो अब्राह्मी नदी है और जो बालवक नाम का भवन है, इन दोनों में बीस कोस का अन्तर है और इनमें नदी पश्चिम में है ॥१६ ॥

उज्जयिनी की मध्यरेखा के पश्चिम देशान्तर में लगभग ३४ अक्षांश तथा ४० अंश पर यह धाम स्थित है ॥१७ ॥

भारतीय पश्चिमी देशान्तर पर ३९ अक्षांश और २७ कला (३९/२७) पर उज्जयिनी से पश्चिमी भाग पर यह बालवक स्थान स्थित है ॥१८ ॥

और ग्रीनवीच से पूर्व की ओर ३६ अक्षांश और १५ कला (३६/१५ ग्रीनवीच पूर्व देशान्तर) पर असुरों के द्वारा निर्मित यह सौर बालवक नामक अद्भुत भवन शोभित होता था ॥१९ ॥

वहाँ उस बालवक नाम के भवन में असुरों ने जिस सूर्य को स्थापित किया, वह भी उस तमोमय आगार में सुशोभित था ॥२० ॥

पूर्वभारतस्य पश्चिमसीम्नि सूर्य्येऽस्तमिते पश्चिमभारतस्य पश्चिमसीम्नि किञ्चित्कालं सूर्यदर्शनम् ।

सूर्य्योऽस्ति यत्र दिशि तत्र भवन्ति देवास्तत्पृष्ठदिश्युपनमन्त्यसुराः पृथिव्याम् ।
सूर्य्येऽसुराक्रमणतोऽस्तमितेऽथ पश्चात् तामासुरीं दिशमनूदयते स सूर्य्यः ॥१ ॥

इयं वैज्ञानिकी संस्था नित्यं दृष्टाऽधिदैवतम् ।
साम्यं तथाधिभूतं च प्रकृतेहानुवर्तते ॥२ ॥

असुरैः प्रत्याक्रमणात् सूर्य्यः सारस्वतो जगामास्तम्।
भूमध्यसागरस्य प्राचीकूले पुनः स उदियाय ॥३ ॥
स्वभावतः सूर्य्य उदेति पूर्वतः प्रातः प्रतीचीं स इतोऽस्तमेति च।
पुनः पुरस्तात् स उदेति चक्रवत् क्रमात् पुनर्भारतमेवैएष्यति ॥४ ॥

पूर्वी भारत की पश्चिमी सीमा पर सूर्य के अस्त हो जाने पर पश्चिमी भारत की पश्चिमी सीमा पर कुछ समय के लिए सूर्यदर्शन

पृथिवी पर सूर्य जिस दिशा में है, वहाँ देव निवास करते हैं और उसकी पृष्ठ (विपरीत) दिशा में असुर निवास करते हैं। सूर्य पर असुरों का आक्रमण होने से सूर्य के अस्त हो जाने पर आसुरी दिशा में वह सूर्य उदय होता है ॥१ ॥

यह वैज्ञानिकी संस्था (विज्ञानभवन) नित्य प्रति अधिदैवत में देखी जाती है तथा उसके साम्य से वैसी ही वैज्ञानिकी संस्था का इस प्रकृत अधिभूत में अनुकरण किया गया है ॥२ ॥

असुरों के प्रत्याक्रमण से सारस्वत सूर्य अस्त हो गया तब वह भूमध्य सागर के पूर्वी किनारे पर पुनः उदित हुआ ॥३ ॥

स्वभाव से सूर्य प्रातःकाल पूर्व में उदय होता है फिर वहाँ से वह पश्चिम दिशा में अस्त होता है। फिर वह पूर्व दिशा में उदय होता है और चक्र के समान क्रम से भारत में ही आ जाएगा ॥४ ॥

भारतवर्षीयवैदिकधर्म्मस्योत्थानपतनयोर्दैवो हेतुः।

नाकस्थविष्णोः परितस्तु वेददृग्व्यासार्द्धजे संचरति ध्रुवं ध्रुवः।
वृत्ते ततः क्वापि पुरा युगे स हि प्राग्
मेरुखस्वस्तिकगोऽभिजित्यभूत् ॥१ ॥
प्राग्मेरुस्थे हंसपृष्ठेऽभिजिद्भागे ब्रह्मण्यासीत् सा ध्रुवो यत्र काले।
ब्रह्मादिष्टो वेदधर्म्मस्तदासीत् सर्वप्रीतो हृद्गतः प्रोन्नतश्च ॥२ ॥
तर्ह्येवासीद् भारते सोऽपि सूर्य्यो विज्ञानेनोच्छ्राययन् भारतीयान् ॥
अस्तं यातो भारतस्यैष सूर्य्यः क्लिश्यन्त्यार्य्यास्तेन बुद्ध्यन्धकारात् ॥३ ॥
प्राग्मेरुखस्वस्तिकमेष हित्वोत्तरस्य खस्वस्तिकमर्णवस्य ॥
गतो ध्रुवः कर्षति वेदधर्म्मविपर्य्ययेणाद्य विपर्य्ययस्थः ॥४ ॥
* तारावशादपि फलं ध्रुव एष दत्ते तेनाभिजित्परिगतः स हि वैदिकानाम् ॥

* "वर्षा धर्मो हिमं रात्रिः सन्ध्ये चैव दिनं तथा ॥ शुभाशुभफलानीह ध्रुवात् सर्वं प्रवर्त्तते ॥१ ॥"
(इति मत्स्यपुराणे १२५ अ. २८ श्लोकः)

प्रागुन्नतिं बहु चकार स चाधुनैषां वेदद्विषां सततमुन्नतिमातनोति ।।५ ।।
कालेन केन च परिक्रममाण एष प्राचीमुपेत्य पुनरेष्यति दक्षिणाशाम् ।।
तेन ध्रुवं ध्रुवं इहाभिजिति प्रपन्नो भूयः करिष्यति स
भारतधर्म्मवृद्धिम् ।।६ ।।

भारतवर्षीय वैदिक धर्म के उत्थान-पतन का दैवी कारण

"नाक" (वह कदम्बबिन्दु, जो ध्रुव के परिभ्रमणवृत्त के ठीक मध्य का बिन्दु अथवा केन्द्रस्थल है, जिसको आधार बना कर यह ध्रुव संचरण करता है) बिन्दु पर स्थित विष्णु (यही कदम्बवृत्त विष्णु का स्थान "तद् विष्णो परमं पदम्" बताया गया है) के चारों ओर २४ अंश के व्यासार्द्ध पर यह ध्रुव संचरण करता है। इसलिए प्राचीन युग में वह ध्रुव पामीर के ख-स्वस्तिक (उस कदम्बवृत्त को केन्द्र मानकर चारों दिशाओं में २४-२४ अंश का जो स्वस्तिक बनता है, वही उल्टा करने पर आकाशमण्डल पर एक २४-२४ अंश का स्वस्तिक बनाता है और यही ख स्वस्तिक है) पर अभिजित् नक्षत्र था ।।१ ।।

जिस समय पामीर स्थित ब्रह्मा के निवास (लौकिक ब्रह्मा के निवास) हंसपृष्ठ पर स्थित अभिजित् नक्षत्र में ध्रुव था, उस समय ब्रह्मा द्वारा आदिष्ट वैदिक धर्म सर्वमान्य और अत्यन्त उन्नत था ।।२ ।।

उसी समय भारतवर्ष में यह सूर्य भी विज्ञान के द्वारा भारतीयों का अभ्युदय करता था। (भारतीय जनता उन्नति को प्राप्त करती थी)। अब भारत का यह सूर्य अस्त हो गया, जिससे बौद्धिक अन्धकार से आर्य लोग कष्ट में पड़ गये हैं ।।३ ।।

प्राग्मेरु-स्थित ख स्वस्तिक को छोड़कर यह ध्रुव अब उत्तर समुद्र के ख स्वस्तिक पर चला गया है। तब से विरुद्ध दिशा में स्थित यह ध्रुव आज विरुद्ध रूप से वैदिक धर्म का कर्षण कर रहा है। (वैदिक धर्म ह्रास को प्राप्त हो रहा है) ।।४ ।।

*ताराओं के वश से भी यह ध्रुव शुभाशुभ फल देता है, इसलिए जब अभिजित् नक्षत्र पर यह ध्रुव स्थित था तब प्राचीन समय में इसने वैदिकों की बहुत उन्नति की। अब इस समय यह वेदविद्रोहियों की निरन्तर उन्नति कर रहा है ।।५ ।।

कुछ समय पश्चात् जब यह ध्रुव परिक्रमा करता हुआ पूर्व दिशा में पहुँच कर फिर से दक्षिण दिशा में पहुंचेगा, तब निश्च ही यह ध्रुव यहाँ अभिजित् नक्षत्र पर पहुंच कर भारतधर्म की उन्नति करेगा ।।६ ।।

---

* "वर्षा, सर्दी, गर्मी, रात, दिन, और दोनों काल की संध्याएँ और शुभाशुभ फल सभी यहाँ ध्रुव से प्रवृत्त होते हैं ।।" (मत्स्यपुराण १२५ अ. २८ श्लोक)

पश्चिमदेशीयसूर्य्योदयानन्तरं पुनः पूर्वदिशार्य्यसूर्य्योदयः ।

अथ गान्धारे देशे क्षोभणतः क्षोभणादित्यम् ॥
आर्य्याः क्षोभस्मृत्यै मार्त्तण्डं स्थापयामासुः ॥१ ॥
स्कान्दे प्रभासखण्डे कथितोऽयं शीलाध्याये ॥(१३९)
* चित्रादित्यस्तवने गान्धारे क्षोभणादित्यः ॥२ ॥
गान्धारे चित्रपथा चित्रा वा ब्रह्मकुण्डसंनिहिता ॥
नद्यस्ति सुप्रसिद्धा प्रावृट्काले वहत्येषा ॥३ ॥
चित्रादित्य इहासीच्चित्रेण स्थापितः सोऽयम् ॥
चत्वारिंशशतेऽस्मिन्नध्याये (१४०) वर्णितः स्कान्दे ॥४ ॥
कश्मीरे श्रीनगरादग्निदिशि काप्यदूरवद्देशे ॥
मट्टनसाहिबनाम्ना कुण्डः कोऽप्यस्ति तीर्थमार्य्याणाम् ॥५ ॥
तत्रैव पूर्वमासीदन्यन्मार्त्तण्डमन्दिरं तस्य ॥
भग्नावशेषमद्य तु कौरवपाण्डवमिति प्राहुः ॥६ ॥
अर्च्चामन्दिरमेतन्न तु तद्विज्ञानमन्दिरं सौरम् ॥
अनृषिभिरेव च जुष्टं तदपि यशःशेषतां यातम् ॥७ ॥
अन्तर्हितोऽत्र सूर्य्योऽप्यभवत् काले स दस्युनिकृतत्वात् ॥
स यथा राहुग्रस्तो दिवि सूर्य्योऽन्तर्हितो भवति ॥८ ॥
विज्ञानकूप आसीत् तमिदानीं चाह वाविलेत्याख्यम् ॥
म्लेच्छा विदुरिह निगडबद्धौ हारूतमारूतौ ॥९ ॥
विज्ञानकुण्डमपि तं मटनेत्याख्यं वदन्ति ते म्लेच्छाः ॥
वैज्ञानिकी व्यवस्था सर्वा विध्वंसिताऽनार्य्यैः ॥१० ॥
नीचप्रकृतिर्दस्युः परकीर्तिध्वंसकृद् भवति ॥
प्रतिपन्थी जगतामयमकारणं द्वेषमाचरति ॥११ ॥

---

* चित्रादित्यं ततो गच्छेद् ब्रह्मकुण्डसमीपतः॥ तत्र गच्छेत्ततः पूर्वं नदी चित्रपथाभिधाम् ॥१ ॥
ब्रह्मकुण्डसमीपस्था चित्रादित्यस्य मध्यतः॥ प्रतिष्ठा सागरे चित्रा नदी चित्रपथोच्यते ॥२ ॥
तस्मिन्कलियुगे सेयमन्तर्द्धानगता नदी॥ प्रावट्काले तु दृश्येत दुर्लभं तत्र दर्शनम् ॥३ ॥
यदैव दृश्यते तत्र चित्रा चित्रपथा नदी॥ प्रमाणदर्शनं तस्या न कालस्तत्र कारणम् ॥४ ॥
भुक्तो वाऽप्यथवाऽभुक्तो रात्रौ वा यदि वा दिवा ॥पूर्वकालेऽथवाऽकाले पवित्रो वाऽथवाशुचिः ॥५ ॥
तस्यां स्नात्वा नरो यस्तु चित्रादित्यं प्रपश्यति॥ स याति परमं स्थानं यत्र देवो दिवाकरः॥६ ॥
(स्कान्दे प्रभास ३९ अ.)

पश्चिम-देशीय सूर्योदय के पश्चात् पुनः पूर्व दिशा में आर्य-सूर्योदय

गान्धार देश में क्षोभण नाम के स्थान से (जहाँ देव-दस्यु-युद्ध हुआ) क्षोभ की स्मृति (युद्ध एवं युद्ध पराजय इत्यादि कष्ट की स्मृति) में आर्यों ने क्षोभणादित्य नाम के सूर्य की स्थापना की ॥१ ॥

स्कन्द पुराण के प्रभास खण्ड में १३९वें अध्याय में चित्रादित्य की स्तुति में गान्धार देश में इस क्षोभणादित्य नाम के सूर्य का उल्लेख है ॥२ ॥*

गान्धार देश में चित्रपथा अथवा चित्रा नाम की नदी है, जो ब्रह्मकुण्ड के समीप स्थित है। यह नदी वर्षाकाल में बहती है ॥३ ॥

यहाँ यह चित्रादित्य चित्र के द्वारा स्थापित किया गया था, इसका वर्णन स्कन्द पुराण के १४०वें अध्याय में किया गया है ॥४ ॥

काश्मीर के श्रीनगर में कुछ ही दूरी पर (समीप ही) अग्निकोण में मट्टन साहिब का नाम का एक को कुण्ड है, जो आर्यों का तीर्थस्थान है ॥५ ॥

उस मट्टन साहिब देश में ही प्राचीन काल में कोई अन्य ही सूर्यमन्दिर था, उसके भग्नावशेष (टूटे हुए हिस्से) आजकल कौरव-पाण्डव नाम से प्रसिद्ध है ॥६ ॥

यह सूर्यमन्दिर पूजार्चन करने का मन्दिर था, न कि विज्ञानमन्दिर (विज्ञानभवन) था। यह ऋषिभिन्न जनों के द्वारा सेवित था और आज तो वह (पूजार्चन का सूर्य मन्दिर) भी कीर्तिमात्र (नाम मात्र) ही शेष रह गया है ॥७ ॥

समय व्यतीत होने पर वह सूर्य भी दस्युओं के आक्रमण से उसी प्रकार अन्तर्हित (लुप्त) हो गया है, जिस प्रकार द्युलोक में राहु द्वारा ग्रसित होकर सूर्य अन्तर्हित हो जाता है ॥८ ॥

---

* तदनन्तर ब्रह्मकुण्ड के समीप चित्रादित्य स्थान पर जाना चाहिये तथा उससे पहले चित्रपथा नाम की नदी पर जाना चाहिये ॥१ ॥ ब्रह्मकुण्ड के समीप और चित्रादित्य के मध्य सागर में यह चित्रा नाम की नदी प्रतिष्ठित है, जिसे चित्रपथा भी कहा जाता है ॥२ ॥ कलियुग में यह नदी उस स्थान पर अन्तर्ध्यान (भूमिगत) हो गई है, जो वर्षा-काल में ही दिखाई दे सकती है, अन्यथा इसका दर्शन दुर्लभ है ॥३ ॥जब कभी यह चित्रा अथवा चित्रपथा नदी दिखाई देती है, तब इसका प्रमाण(कहाँ से कहाँ विस्तार की है) दिखाई नहीं देता है, इसमें कालचक्र ही एकमात्र कारण है ॥४ ॥ इस नदी में मनुष्य भोजन करके अथवा भोजन किए बिना, रात्रि में अथवा दिन में, समय से पूर्व अथवा समय व्यतीत होने के पश्चात्, पवित्रावस्था में अथवा अपवित्रावस्था में स्नान करके चित्रादित्य का दर्शन करता है, वह उस श्रेष्ठ सूर्यलोक को प्राप्त करता है ॥५-६ ॥

यहाँ कोई विज्ञानकूप भी था, जिसे आज "वाविल" नाम से कहा जाता है। म्लेच्छ लोग जानते हैं कि यहाँ "हारूत" और "मारूत" नाम के दो व्यक्ति बेड़ियों में बांध दिए गए थे ॥९ ॥

वे म्लेच्छ लोग इस विज्ञानकुण्ड को भी "मट्टन" नाम से कहते हैं और अनार्यों के द्वारा समस्त वैज्ञानिकी व्यवस्था नष्ट कर दी गई ॥१० ॥

दुष्ट प्रकृति का दस्यु दूसरे के यश का नाशक होता है, यह संसार का प्रतिगामी (विरुद्ध आचरण करने वाला) होता है और अकारण ही द्वेष रखता है ॥११ ॥

देशिकदस्युभिः परिपीडितानां भारतीयानां स्वदेशीयानामन्ततो विजयः।

त्रेधा लोकः कल्पितोऽयं यदासीदिन्द्रः स्वर्गे पूर्वकाले तदासीत् ॥
आसन्नस्मिन् भारते तर्हि विद्याः शौर्य्यं लक्ष्म्यः सिद्धयश्चानवद्याः ॥१ ॥
ब्रह्मवीर्य्यपरिवृद्धिहेतवः सूर्य्यसोमरसयज्ञधेनवः ॥
क्लेशसिन्धुतरणाय सेतवः संहता अथ विधिर्दधे नवम् ॥२ ॥
क्षत्रियाय इह सूर्य्यसोमजा ब्राह्मणाय इह यज्ञसूत्रिणः ॥
विड्व्रजा य इह धेनुपालकास्तेषु सन्ति विजया धियः श्रियः ॥३ ॥

विदेशी दस्युओं द्वारा पीड़ित स्वदेशी भारतीयों की अन्त में विजय

जब यह लोक तीन भागों में बंटा हुआ था, उस समय पूर्व काल में इन्द्र स्वर्ग में था। उस समय भारतवर्ष में विद्या, पराक्रम, समृद्धियाँ और दोषरहित समस्त प्रकार की सिद्धियाँ विद्यमान थीं ॥१ ॥

ब्रह्मवीर्य की पूर्ण वृद्धि के मुख्य कारण हैं - सूर्य, सोमरस, यज्ञ और गायें। क्लेश (कष्ट) रूपी सागर को पार करने के लिए ये सेतु के समान थे, जिनका संहार होने पर विधाता ने नये सेतु का निर्माण किया ॥२ ॥

सूर्य और सोम से उत्पन्न शक्तियाँ क्षत्रियों के लिए हैं और यज्ञ से उत्पन्न शक्तियाँ ब्राह्मणों के लिए हैं। वैश्यसमूह गोपालक था। ये-ये शक्तियाँ जिनमें हैं, उनके पास विजय, बुद्धि और शोभा विद्यमान है ॥३ ॥

ग्रन्थसंपूर्तिः ।

इतिवृत्तं सदसद्वा रजस्तथाऽऽकाशमपरं च ॥
आवरणं च तथाम्भोऽथामृतमृत्यू अहोरात्रौ ॥१ ॥
दैवः संशयवादः सिद्धान्तश्च श्रुतावुदिताः ॥
द्वादशवादा विहिताः शास्त्रेऽस्मिन् ब्रह्मविज्ञाने ॥२ ॥
तेष्वाद्ये विज्ञानेतिवृत्तवादे प्रकरणानि ॥(५)
ब्राह्मं दैवं भारतमार्षं विज्ञानसूत्रं च ॥३ ॥
तत्र च भारतवृत्ते पञ्च निरुक्ता. परिच्छेदाः ॥
भारतपरिचय आद्यस्तथार्य्यदासीय इत्यन्यः ॥४ ॥
विज्ञानभवनसंज्ञो दस्युवधो विजयकीर्तनप्रमहः ॥
पञ्चप्रसङ्गमित्थं भारतवृत्तं शुभायास्तु ॥५ ॥

इति मधुसूदनविद्यावाचस्पतिप्रणीतस्य ब्रह्मविज्ञानशास्त्रसंबन्धिनो विज्ञानेतिवृत्तवादस्य द्वितीयपर्वणि भारतवर्षीयार्य्योपाख्याने इन्द्रविजयाभिनन्दनं नाम पञ्चमः प्रसङ्गः सम्पूर्णः ।

मधुसूदनकृतमार्य्यविजयकाव्यं सम्पूर्णम् ॥

ग्रन्थपूर्ति

इस ब्रह्मविज्ञानशास्त्र में इतिवृत्तवाद, सदसद्वाद, रजोवाद, व्योमवाद, अपरवाद, आवरणवाद, अम्भोवाद, अमृतवाद, मृत्युवाद, अहोरात्रवाद, देववाद और संशयवाद तथा सिद्धान्त जो श्रुतियों में कहे गए हैं, ऐसे द्वादश वादों का प्रतिपादन किया गया है ॥१-२ ॥

इस विज्ञनेतिवृत्तवाद में पांच प्रकरण हैं, जिनके नाम हैं - ब्राह्म, दैव, भारत, आर्ष और विज्ञानसूत्र ॥३ ॥

इनमें भारतवृत्त (भारत नाम के प्रकरण) में पांच परिच्छेद कहे गए हैं। इन पांच परिच्छेदों में "भारतपरिचय" प्रथम प्रकरण है तथा आर्यदासीय प्रकरण द्वितीय प्रकरण है ॥४ ॥

विज्ञान भवन नाम का तृतीय प्रकरण है, दस्युवध (दस्युनिग्रह) चौथा तथा पांचवा विजय-कीर्तनप्रमह (इन्द्रविजयाभिनन्दन, नामक महोत्सव)। इस प्रकार पांच प्रसंगों से युक्त यह भारतवृत्त (भारतवर्षीयार्योपाख्यान) नाम का प्रसंग कल्याणकारी होवे ॥५॥

इस प्रकार विद्यावाचस्पति पं. मधुसूदन ओझा द्वारा प्रणीत ब्रह्मविज्ञानशास्त्र से सम्बद्ध विज्ञानेतिवृत्तवाद के द्वितीय पर्व में भारतवर्षीयार्योपाख्यान प्रकरण में इन्द्रविजयाभिनन्दन नाम के पंचम प्रसंग का अनुवाद समाप्त हुआ।

स्व. पं. श्री मधुसूदन ओझा द्वारा विरचित आर्यविजयकाव्य सम्पूर्ण।

